

[2000/10/22 v3.01 Landscape Pages (DPC)]

[2016/05/21 v2.44 Cross-referencing by name of section]

श्रीमद्‌रामायणम्
(भगवान् वाल्मीकी)

FOR PERSONAL USE ONLY
NOT FOR COMMERCIAL PRINTING/DISTRIBUTION

Contents

| | |
|---------------------------|----------|
| 1 बालकाण्डः | 3 |
| 1.1 प्रथमः सर्गः | 4 |
| 1.2 द्वितीयः सर्गः | 12 |
| 1.3 तृतीयः सर्गः | 16 |
| 1.4 चतुर्थः सर्गः | 19 |
| 1.5 पञ्चमः सर्गः | 22 |
| 1.6 षष्ठः सर्गः | 25 |
| 1.7 सप्तमः सर्गः | 28 |
| 1.8 अष्टमः सर्गः | 30 |
| 1.9 नवमः सर्गः | 33 |
| 1.10 दशमः सर्गः | 37 |
| 1.11 एकादशः सर्गः | 40 |
| 1.12 द्वादशः सर्गः | 43 |
| 1.13 त्रयोदशः सर्गः | 47 |
| 1.14 चतुर्दशः सर्गः | 52 |
| 1.15 पञ्चदशः सर्गः | 55 |
| 1.16 षोडशः सर्गः | 58 |
| 1.17 सप्तदशः सर्गः | 61 |
| 1.18 अष्टादशः सर्गः | 65 |
| 1.19 एकोनविंशः सर्गः | 68 |
| 1.20 विंशः सर्गः | 71 |
| 1.21 एकविंशः सर्गः | 73 |
| 1.22 द्वाविंशः सर्गः | 75 |
| 1.23 त्रयोविंशः सर्गः | 77 |
| 1.24 चतुर्विंशः सर्गः | 80 |
| 1.25 पञ्चविंशः सर्गः | 82 |
| 1.26 षड्विंशः सर्गः | 85 |
| 1.27 सप्तविंशः सर्गः | 88 |
| 1.28 अष्टाविंशः सर्गः | 90 |
| 1.29 एकोनत्रिंशः सर्गः | 92 |
| 1.30 त्रिंशः सर्गः | 95 |
| 1.31 एकत्रिंशः सर्गः | 98 |
| 1.32 द्वात्रिंशः सर्गः | 101 |
| 1.33 त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 104 |
| 1.34 चतुस्त्रिंशः सर्गः | 106 |
| 1.35 पञ्चत्रिंशः सर्गः | 109 |
| 1.36 षट्त्रिंशः सर्गः | 112 |
| 1.37 सप्तत्रिंशः सर्गः | 115 |
| 1.38 अष्टात्रिंशः सर्गः | 118 |
| 1.39 एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 121 |

| | |
|----------------------------|-----|
| 1.40 चत्वारिंशः सर्गः | 124 |
| 1.41 एकचत्वारिंशः सर्गः | 127 |
| 1.42 द्विचत्वारिंशः सर्गः | 130 |
| 1.43 त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 133 |
| 1.44 चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 136 |
| 1.45 पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 139 |
| 1.46 षट्चत्वारिंशः सर्गः | 142 |
| 1.47 सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 145 |
| 1.48 अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 149 |
| 1.49 एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 152 |
| 1.50 पञ्चाशत्तमः सर्गः | 155 |
| 1.51 एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 158 |
| 1.52 द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 161 |
| 1.53 त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 164 |
| 1.54 चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 167 |
| 1.55 पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 170 |
| 1.56 षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 173 |
| 1.57 सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 176 |
| 1.58 अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 179 |
| 1.59 एकोनषष्टितमः सर्गः | 182 |
| 1.60 षष्टितमः सर्गः | 186 |
| 1.61 एकषष्टितमः सर्गः | 189 |
| 1.62 द्विषष्टितमः सर्गः | 192 |
| 1.63 त्रिषष्टितमः सर्गः | 195 |
| 1.64 चतुःषष्टितमः सर्गः | 197 |
| 1.65 पञ्चषष्टितमः सर्गः | 200 |
| 1.66 षट्षष्टितमः सर्गः | 203 |
| 1.67 सप्तषष्टितमः सर्गः | 206 |
| 1.68 अष्टषष्टितमः सर्गः | 208 |
| 1.69 एकोनसप्ततितमः सर्गः | 210 |
| 1.70 सप्ततितमः सर्गः | 214 |
| 1.71 एकसप्ततितमः सर्गः | 217 |
| 1.72 द्विसप्ततितमः सर्गः | 220 |
| 1.73 त्रिसप्ततितमः सर्गः | 223 |
| 1.74 चतुःसप्ततितमः सर्गः | 226 |
| 1.75 पञ्चसप्ततितमः सर्गः | 229 |
| 1.76 षट्सप्ततितमः सर्गः | 232 |

| | |
|------------------------|------------|
| 2 अयोध्याकाण्डः | 235 |
| 2.1 प्रथमः सर्गः | 236 |
| 2.2 द्वितीयः सर्गः | 240 |
| 2.3 तृतीयः सर्गः | 244 |
| 2.4 चतुर्थः सर्गः | 248 |
| 2.5 पञ्चमः सर्गः | 253 |
| 2.6 षष्ठः सर्गः | 256 |
| 2.7 सप्तमः सर्गः | 259 |
| 2.8 अष्टमः सर्गः | 263 |
| 2.9 नवमः सर्गः | 266 |
| 2.10 दशमः सर्गः | 271 |
| 2.11 एकादशः सर्गः | 275 |

| | | |
|------|-----------------------|-----|
| 2.12 | द्वादशः सर्गः | 277 |
| 2.13 | त्रयोदशः सर्गः | 280 |
| 2.14 | चतुर्दशः सर्गः | 283 |
| 2.15 | पञ्चदशः सर्गः | 286 |
| 2.16 | षोडशः सर्गः | 288 |
| 2.17 | सप्तदशः सर्गः | 294 |
| 2.18 | अष्टादशः सर्गः | 298 |
| 2.19 | एकोनविंशः सर्गः | 302 |
| 2.20 | विंशः सर्गः | 305 |
| 2.21 | एकविंशः सर्गः | 309 |
| 2.22 | द्वाविंशः सर्गः | 312 |
| 2.23 | त्रयोविंशः सर्गः | 315 |
| 2.24 | चतुर्विंशः सर्गः | 319 |
| 2.25 | पञ्चविंशः सर्गः | 322 |
| 2.26 | षड्विंशः सर्गः | 324 |
| 2.27 | सप्तविंशः सर्गः | 327 |
| 2.28 | अष्टाविंशः सर्गः | 331 |
| 2.29 | एकोनत्रिंशः सर्गः | 334 |
| 2.30 | त्रिंशः सर्गः | 337 |
| 2.31 | एकत्रिंशः सर्गः | 340 |
| 2.32 | द्वात्रिंशः सर्गः | 344 |
| 2.33 | त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 347 |
| 2.34 | चतुस्त्रिंशः सर्गः | 349 |
| 2.35 | पञ्चत्रिंशः सर्गः | 353 |
| 2.36 | षट्त्रिंशः सर्गः | 357 |
| 2.37 | सप्तत्रिंशः सर्गः | 359 |
| 2.38 | अष्टात्रिंशः सर्गः | 362 |
| 2.39 | एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 365 |
| 2.40 | चत्वारिंशः सर्गः | 367 |
| 2.41 | एकचत्वारिंशः सर्गः | 370 |
| 2.42 | द्विचत्वारिंशः सर्गः | 374 |
| 2.43 | त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 377 |
| 2.44 | चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 379 |
| 2.45 | पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 382 |
| 2.46 | षट्चत्वारिंशः सर्गः | 385 |
| 2.47 | सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 393 |
| 2.48 | अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 397 |
| 2.49 | एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 401 |
| 2.50 | पञ्चाशत्तमः सर्गः | 403 |
| 2.51 | एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 406 |
| 2.52 | द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 409 |
| 2.53 | त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 412 |
| 2.54 | चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 415 |
| 2.55 | पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 418 |
| 2.56 | षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 421 |
| 2.57 | सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 423 |
| 2.58 | अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 427 |
| 2.59 | एकोनषष्टितमः सर्गः | 433 |
| 2.60 | षष्टितमः सर्गः | 435 |
| 2.61 | एकषष्टितमः सर्गः | 438 |

| | |
|----------------------------|-----|
| 2.62 द्विषष्टितमः सर्गः | 441 |
| 2.63 त्रिषष्टितमः सर्गः | 443 |
| 2.64 चतुःषष्टितमः सर्गः | 445 |
| 2.65 पञ्चषष्टितमः सर्गः | 448 |
| 2.66 षट्षष्टितमः सर्गः | 451 |
| 2.67 सप्तषष्टितमः सर्गः | 456 |
| 2.68 अष्टषष्टितमः सर्गः | 458 |
| 2.69 एकोनसप्ततितमः सर्गः | 461 |
| 2.70 सप्ततितमः सर्गः | 465 |
| 2.71 एकसप्ततितमः सर्गः | 468 |
| 2.72 द्विसप्ततितमः सर्गः | 471 |
| 2.73 त्रिसप्ततितमः सर्गः | 474 |
| 2.74 चतुःसप्ततितमः सर्गः | 476 |
| 2.75 पञ्चसप्ततितमः सर्गः | 479 |
| 2.76 षट्सप्ततितमः सर्गः | 481 |
| 2.77 सप्तसप्ततितमः सर्गः | 485 |
| 2.78 अष्टसप्ततितमः सर्गः | 488 |
| 2.79 एकोनाशीतितमः सर्गः | 490 |
| 2.80 अशीतितमः सर्गः | 493 |
| 2.81 एकाशीतितमः सर्गः | 496 |
| 2.82 द्व्यशीतितमः सर्गः | 499 |
| 2.83 त्र्यशीतितमः सर्गः | 502 |
| 2.84 चतुरशीतितमः सर्गः | 505 |
| 2.85 पञ्चाशीतितमः सर्गः | 508 |
| 2.86 षडशीतितमः सर्गः | 516 |
| 2.87 सप्ताशीतितमः सर्गः | 520 |
| 2.88 अष्टाशीतितमः सर्गः | 523 |
| 2.89 एकोननवतितमः सर्गः | 526 |
| 2.90 नवतितमः सर्गः | 529 |
| 2.91 एकनवतितमः सर्गः | 532 |
| 2.92 द्विनवतितमः सर्गः | 534 |
| 2.93 त्रिनवतितमः सर्गः | 536 |
| 2.94 चतुर्नवतितमः सर्गः | 541 |
| 2.95 पञ्चनवतितमः सर्गः | 547 |
| 2.96 षण्णवतितमः सर्गः | 552 |
| 2.97 सप्तनवतितमः सर्गः | 556 |
| 2.98 अष्टनवतितमः सर्गः | 559 |
| 2.99 एकोनशततमः सर्गः | 566 |
| 2.10 शततमः सर्गः | 569 |
| 2.10१ काधिकशततमः सर्गः | 571 |
| 2.10२ द्विधिकशततमः सर्गः | 575 |
| 2.10३ त्रिधिकशततमः सर्गः | 579 |
| 2.10४ चतुरधिकशततमः सर्गः | 583 |
| 2.10५ पञ्चाधिकशततमः सर्गः | 586 |
| 2.10६ षष्ठाधिकशततमः सर्गः | 589 |
| 2.10७ सप्तमाधिकशततमः सर्गः | 592 |
| 2.10८ अष्टमाधिकशततमः सर्गः | 595 |
| 2.10९ नवमाधिकशततमः सर्गः | 598 |
| 2.11 दशमाधिकशततमः सर्गः | 601 |
| 2.11१ एकादशाधिकशततमः सर्गः | 606 |

| | |
|----------------------------|-----|
| 3.1 प्रथमः सर्गः | 610 |
| 3.2 द्वितीयः सर्गः | 613 |
| 3.3 तृतीयः सर्गः | 616 |
| 3.4 चतुर्थः सर्गः | 619 |
| 3.5 पञ्चमः सर्गः | 623 |
| 3.6 षष्ठः सर्गः | 626 |
| 3.7 सप्तमः सर्गः | 629 |
| 3.8 अष्टमः सर्गः | 631 |
| 3.9 नवमः सर्गः | 634 |
| 3.10 दशमः सर्गः | 637 |
| 3.11 एकादशः सर्गः | 646 |
| 3.12 द्वादशः सर्गः | 650 |
| 3.13 त्रयोदशः सर्गः | 653 |
| 3.14 चतुर्दशः सर्गः | 657 |
| 3.15 पञ्चदशः सर्गः | 660 |
| 3.16 षोडशः सर्गः | 664 |
| 3.17 सप्तदशः सर्गः | 667 |
| 3.18 अष्टादशः सर्गः | 670 |
| 3.19 एकोनविंशः सर्गः | 673 |
| 3.20 विंशः सर्गः | 676 |
| 3.21 एकविंशः सर्गः | 678 |
| 3.22 द्वाविंशः सर्गः | 681 |
| 3.23 त्रयोविंशः सर्गः | 685 |
| 3.24 चतुर्विंशः सर्गः | 688 |
| 3.25 पञ्चविंशः सर्गः | 691 |
| 3.26 षड्विंशः सर्गः | 694 |
| 3.27 सप्तविंशः सर्गः | 696 |
| 3.28 अष्टाविंशः सर्गः | 699 |
| 3.29 एकोनत्रिंशः सर्गः | 702 |
| 3.30 त्रिंशः सर्गः | 706 |
| 3.31 एकत्रिंशः सर्गः | 709 |
| 3.32 द्वात्रिंशः सर्गः | 712 |
| 3.33 त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 715 |
| 3.34 चतुस्त्रिंशः सर्गः | 719 |
| 3.35 पञ्चत्रिंशः सर्गः | 722 |
| 3.36 षड्विंशः सर्गः | 725 |
| 3.37 सप्तत्रिंशः सर्गः | 728 |
| 3.38 अष्टात्रिंशः सर्गः | 731 |
| 3.39 एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 734 |
| 3.40 चत्वारिंशः सर्गः | 737 |
| 3.41 एकचत्वारिंशः सर्गः | 741 |
| 3.42 द्विचत्वारिंशः सर्गः | 746 |
| 3.43 त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 749 |
| 3.44 चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 753 |
| 3.45 पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 757 |
| 3.46 षट्चत्वारिंशः सर्गः | 762 |
| 3.47 सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 765 |
| 3.48 अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 769 |
| 3.49 एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 772 |

| | |
|---------------------------|-----|
| 3.50पञ्चाशत्तमः सर्गः | 776 |
| 3.51एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 781 |
| 3.52द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 784 |
| 3.53त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 787 |
| 3.54चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 791 |
| 3.55पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 795 |
| 3.56षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 798 |
| 3.57सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 801 |
| 3.58अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 804 |
| 3.59एकोनपष्टितमः सर्गः | 808 |
| 3.60षष्टितमः सर्गः | 811 |
| 3.61एकषष्टितमः सर्गः | 816 |
| 3.62द्विषष्टितमः सर्गः | 818 |
| 3.63त्रिषष्टितमः सर्गः | 820 |
| 3.64चतुःषष्टितमः सर्गः | 823 |
| 3.65पञ्चषष्टितमः सर्गः | 827 |
| 3.66षट्षष्टितमः सर्गः | 831 |
| 3.67सप्तषष्टितमः सर्गः | 833 |
| 3.68अष्टषष्टितमः सर्गः | 836 |
| 3.69एकोनसप्ततितमः सर्गः | 839 |
| 3.70सप्ततितमः सर्गः | 843 |
| 3.71एकसप्ततितमः सर्गः | 846 |

| | |
|---------------------------|------------|
| 4 किष्किन्धाकाण्डः | 849 |
| 4.1 प्रथमः सर्गः | 850 |
| 4.2 द्वितीयः सर्गः | 855 |
| 4.3 तृतीयः सर्गः | 858 |
| 4.4 चतुर्थः सर्गः | 861 |
| 4.5 पञ्चमः सर्गः | 864 |
| 4.6 षष्ठः सर्गः | 866 |
| 4.7 सप्तमः सर्गः | 869 |
| 4.8 अष्टमः सर्गः | 872 |
| 4.9 नवमः सर्गः | 877 |
| 4.10दशमः सर्गः | 880 |
| 4.11एकादशः सर्गः | 883 |
| 4.12द्वादशः सर्गः | 888 |
| 4.13त्रयोदशः सर्गः | 892 |
| 4.14चतुर्दशः सर्गः | 895 |
| 4.15पञ्चदशः सर्गः | 898 |
| 4.16षोडशः सर्गः | 901 |
| 4.17सप्तदशः सर्गः | 904 |
| 4.18अष्टादशः सर्गः | 909 |
| 4.19एकोनविंशः सर्गः | 915 |
| 4.20विंशः सर्गः | 918 |
| 4.21एकविंशः सर्गः | 921 |
| 4.22द्वाविंशः सर्गः | 923 |
| 4.23त्रयोविंशः सर्गः | 926 |
| 4.24चतुर्विंशः सर्गः | 929 |
| 4.25पञ्चविंशः सर्गः | 934 |
| 4.26षड्विंशः सर्गः | 938 |

| | |
|----------------------------|------|
| 4.27 सप्तविंशः सर्गः | 941 |
| 4.28 अष्टाविंशः सर्गः | 947 |
| 4.29 एकोनविंशः सर्गः | 951 |
| 4.30 त्रिंशः सर्गः | 957 |
| 4.31 एकत्रिंशः सर्गः | 962 |
| 4.32 द्वात्रिंशः सर्गः | 965 |
| 4.33 त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 968 |
| 4.34 चतुस्त्रिंशः सर्गः | 970 |
| 4.35 पञ्चत्रिंशः सर्गः | 973 |
| 4.36 षट्त्रिंशः सर्गः | 975 |
| 4.37 सप्तत्रिंशः सर्गः | 979 |
| 4.38 अष्टात्रिंशः सर्गः | 983 |
| 4.39 एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 987 |
| 4.40 चत्वारिंशः सर्गः | 993 |
| 4.41 एकचत्वारिंशः सर्गः | 998 |
| 4.42 द्विचत्वारिंशः सर्गः | 1003 |
| 4.43 त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 1009 |
| 4.44 चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 1011 |
| 4.45 पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 1013 |
| 4.46 षट्चत्वारिंशः सर्गः | 1015 |
| 4.47 सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 1017 |
| 4.48 अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 1020 |
| 4.49 एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1023 |
| 4.50 पञ्चाशत्तमः सर्गः | 1027 |
| 4.51 एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1029 |
| 4.52 द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1031 |
| 4.53 त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1035 |
| 4.54 चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1038 |
| 4.55 पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1040 |
| 4.56 षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 1043 |
| 4.57 सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1045 |
| 4.58 अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1049 |
| 4.59 एकोनषष्टितमः सर्गः | 1052 |
| 4.60 षष्टितमः सर्गः | 1055 |
| 4.61 एकषष्टितमः सर्गः | 1057 |
| 4.62 द्विषष्टितमः सर्गः | 1059 |
| 4.63 त्रिषष्टितमः सर्गः | 1061 |
| 4.64 चतुःषष्टितमः सर्गः | 1064 |
| 4.65 पञ्चषष्टितमः सर्गः | 1068 |
| 4.66 षट्षष्टितमः सर्गः | 1072 |

5 सुन्दरकाण्डः

1077

| | |
|--------------------|------|
| 5.1 प्रथमः सर्गः | 1078 |
| 5.2 द्वितीयः सर्गः | 1096 |
| 5.3 तृतीयः सर्गः | 1102 |
| 5.4 चतुर्थः सर्गः | 1106 |
| 5.5 पञ्चमः सर्गः | 1110 |
| 5.6 षष्ठः सर्गः | 1114 |
| 5.7 सप्तमः सर्गः | 1117 |
| 5.8 अष्टमः सर्गः | 1124 |

| | |
|--------------------------------------|------|
| 5.9 नवमः सर्गः | 1129 |
| 5.10 दशमः सर्गः | 1134 |
| 5.11 एकादशः सर्गः | 1137 |
| 5.12 द्वादशः सर्गः | 1144 |
| 5.13 त्रयोदशः सर्गः | 1149 |
| 5.14 चतुर्दशः सर्गः | 1154 |
| 5.15 पञ्चदशः सर्गः | 1158 |
| 5.16 षोडशः सर्गः | 1162 |
| 5.17 सप्तदशः सर्गः | 1165 |
| 5.18 अष्टादशः सर्गः | 1168 |
| 5.19 एकोनविंशः सर्गः | 1172 |
| 5.20 विंशः सर्गः | 1175 |
| 5.21 एकविंशः सर्गः | 1179 |
| 5.22 द्वाविंशः सर्गः | 1181 |
| 5.23 त्रयोविंशः सर्गः | 1185 |
| 5.24 चतुर्विंशः सर्गः | 1187 |
| 5.25 पञ्चविंशः सर्गः | 1192 |
| 5.26 षड्विंशः सर्गः | 1196 |
| 5.27 सप्तविंशः सर्गः | 1200 |
| 5.28 अष्टाविंशः सर्गः | 1202 |
| 5.29 एकोनत्रिंशः सर्गः | 1207 |
| 5.30 त्रिंशः सर्गः | 1209 |
| 5.31 एकत्रिंशः सर्गः | 1211 |
| 5.32 द्वात्रिंशः सर्गः | 1214 |
| 5.33 त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 1218 |
| 5.34 चतुस्त्रिंशः सर्गः | 1226 |
| 5.35 पञ्चत्रिंशः सर्गः | 1231 |
| 5.36 षट्त्रिंशः सर्गः | 1238 |
| 5.37 सप्तत्रिंशः सर्गः | 1244 |
| 5.38 अष्टात्रिंशः सर्गः | 1250 |
| 5.39 एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 1253 |
| 5.40 चत्वारिंशः सर्गः | 1256 |
| 5.41 एकचत्वारिंशः सर्गः | 1260 |
| 5.42 द्विचत्वारिंशः सर्गः | 1262 |
| 5.43 त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 1264 |
| 5.44 चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 1266 |
| 5.45 पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 1270 |
| 5.46 षट्चत्वारिंशः सर्गः | 1276 |
| 5.47 सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 1284 |
| 5.48 अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 1286 |
| 5.49 एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1288 |
| 5.50 पञ्चाशत्तमः सर्गः | 1292 |
| 5.51 एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1295 |
| 5.52 द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1299 |
| 5.53 त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1301 |
| 5.54 चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1304 |
| 5.55 पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1307 |
| 5.56 षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 1311 |
| 5.57 सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1324 |
| 5.58 अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1326 |

| | |
|------------------------|------|
| 5.59एकोनषष्टितमः सर्गः | 1329 |
| 5.60षष्टितमः सर्गः | 1332 |
| 5.61एकषष्टितमः सर्गः | 1336 |
| 5.62द्विषष्टितमः सर्गः | 1339 |
| 5.63त्रिषष्टितमः सर्गः | 1343 |
| 5.64चतुःषष्टितमः सर्गः | 1346 |
| 5.65पञ्चषष्टितमः सर्गः | 1348 |
| 5.66षट्षष्टितमः सर्गः | 1352 |

6 युद्धकाण्डः

1355

| | |
|--------------------------|------|
| 6.1 प्रथमः सर्गः | 1356 |
| 6.2 द्वितीयः सर्गः | 1358 |
| 6.3 तृतीयः सर्गः | 1361 |
| 6.4 चतुर्थः सर्गः | 1365 |
| 6.5 पञ्चमः सर्गः | 1374 |
| 6.6 षष्ठः सर्गः | 1377 |
| 6.7 सप्तमः सर्गः | 1379 |
| 6.8 अष्टमः सर्गः | 1381 |
| 6.9 नवमः सर्गः | 1383 |
| 6.10दशमः सर्गः | 1386 |
| 6.11एकादशः सर्गः | 1389 |
| 6.12द्वादशः सर्गः | 1395 |
| 6.13त्रयोदशः सर्गः | 1398 |
| 6.14चतुर्दशः सर्गः | 1401 |
| 6.15पञ्चदशः सर्गः | 1404 |
| 6.16षोडशः सर्गः | 1408 |
| 6.17सप्तदशः सर्गः | 1411 |
| 6.18अष्टादशः सर्गः | 1415 |
| 6.19एकोनविंशः सर्गः | 1420 |
| 6.20विंशः सर्गः | 1424 |
| 6.21एकविंशः सर्गः | 1427 |
| 6.22द्वाविंशः सर्गः | 1431 |
| 6.23त्रयोविंशः सर्गः | 1436 |
| 6.24चतुर्विंशः सर्गः | 1441 |
| 6.25पञ्चविंशः सर्गः | 1445 |
| 6.26षड्विंशः सर्गः | 1448 |
| 6.27सप्तविंशः सर्गः | 1452 |
| 6.28अष्टाविंशः सर्गः | 1455 |
| 6.29एकोनत्रिंशः सर्गः | 1459 |
| 6.30त्रिंशः सर्गः | 1461 |
| 6.31एकत्रिंशः सर्गः | 1464 |
| 6.32द्वात्रिंशः सर्गः | 1473 |
| 6.33त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 1477 |
| 6.34चतुस्त्रिंशः सर्गः | 1482 |
| 6.35पञ्चत्रिंशः सर्गः | 1485 |
| 6.36षट्त्रिंशः सर्गः | 1488 |
| 6.37सप्तत्रिंशः सर्गः | 1493 |
| 6.38अष्टात्रिंशः सर्गः | 1496 |
| 6.39एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 1500 |
| 6.40चत्वारिंशः सर्गः | 1504 |

| | |
|----------------------------|------|
| 6.41 एकचत्वारिंशः सर्गः | 1511 |
| 6.42 द्विचत्वारिंशः सर्गः | 1515 |
| 6.43 त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 1519 |
| 6.44 चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 1522 |
| 6.45 पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 1526 |
| 6.46 षट्चत्वारिंशः सर्गः | 1530 |
| 6.47 सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 1535 |
| 6.48 अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 1552 |
| 6.49 एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1561 |
| 6.50 पञ्चाशत्तमः सर्गः | 1565 |
| 6.51 एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1568 |
| 6.52 द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1573 |
| 6.53 त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1577 |
| 6.54 चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1583 |
| 6.55 पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1586 |
| 6.56 षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 1601 |
| 6.57 सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1603 |
| 6.58 अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 1613 |
| 6.59 एकोनषष्टितमः सर्गः | 1619 |
| 6.60 षष्टितमः सर्गः | 1630 |
| 6.61 एकषष्टितमः सर्गः | 1636 |
| 6.62 द्विषष्टितमः सर्गः | 1644 |
| 6.63 त्रिषष्टितमः सर्गः | 1649 |
| 6.64 चतुःषष्टितमः सर्गः | 1655 |
| 6.65 पञ्चषष्टितमः सर्गः | 1658 |
| 6.66 षट्षष्टितमः सर्गः | 1661 |
| 6.67 सप्तषष्टितमः सर्गः | 1665 |
| 6.68 अष्टषष्टितमः सर्गः | 1670 |
| 6.69 एकोनसप्ततितमः सर्गः | 1674 |
| 6.70 सप्ततितमः सर्गः | 1677 |
| 6.71 एकसप्ततितमः सर्गः | 1682 |
| 6.72 द्विसप्ततितमः सर्गः | 1685 |
| 6.73 त्रिसप्ततितमः सर्गः | 1689 |
| 6.74 चतुःसप्ततितमः सर्गः | 1693 |
| 6.75 पञ्चसप्ततितमः सर्गः | 1696 |
| 6.76 षट्सप्ततितमः सर्गः | 1700 |
| 6.77 सप्तसप्ततितमः सर्गः | 1704 |
| 6.78 अष्टसप्ततितमः सर्गः | 1708 |
| 6.79 एकोनाशीतितमः सर्गः | 1714 |
| 6.80 अशीतितमः सर्गः | 1716 |
| 6.81 एकाशीतितमः सर्गः | 1722 |
| 6.82 द्व्यशीतितमः सर्गः | 1726 |
| 6.83 त्र्यशीतितमः सर्गः | 1730 |
| 6.84 चतुरशीतितमः सर्गः | 1735 |
| 6.85 पञ्चाशीतितमः सर्गः | 1739 |
| 6.86 षडशीतितमः सर्गः | 1742 |
| 6.87 सप्ताशीतितमः सर्गः | 1745 |
| 6.88 अष्टाशीतितमः सर्गः | 1750 |
| 6.89 एकोननवतितमः सर्गः | 1756 |
| 6.90 नवतितमः सर्गः | 1760 |

| | |
|------------------------------|------|
| 6.91 एकनवतितमः सर्गः | 1764 |
| 6.92 द्विनवतितमः सर्गः | 1767 |
| 6.93 त्रिनवतितमः सर्गः | 1770 |
| 6.94 चतुर्नवतितमः सर्गः | 1773 |
| 6.95 पञ्चनवतितमः सर्गः | 1776 |
| 6.96 षण्णवतितमः सर्गः | 1779 |
| 6.97 सप्तनवतितमः सर्गः | 1782 |
| 6.98 अष्टनवतितमः सर्गः | 1786 |
| 6.99 एकोनशततमः सर्गः | 1789 |
| 6.10 शततमः सर्गः | 1794 |
| 6.10१ काधिकशततमः सर्गः | 1797 |
| 6.10२ द्विधिकशततमः सर्गः | 1802 |
| 6.10३ त्रिधिकशततमः सर्गः | 1806 |
| 6.10४ चतुरधिकशततमः सर्गः | 1809 |
| 6.10५ पञ्चाधिकशततमः सर्गः | 1812 |
| 6.10६ षष्ठाधिकशततमः सर्गः | 1815 |
| 6.10७ सप्तमाधिकशततमः सर्गः | 1818 |
| 6.10८ अष्टमाधिकशततमः सर्गः | 1822 |
| 6.10९ नवमाधिकशततमः सर्गः | 1824 |
| 6.11 दशमाधिकशततमः सर्गः | 1827 |
| 6.11१ एकादशाधिकशततमः सर्गः | 1830 |
| 6.11२ द्वादशाधिकशततमः सर्गः | 1833 |
| 6.11३ त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः | 1835 |
| 6.11४ चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः | 1840 |
| 6.11५ पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः | 1845 |
| 6.11६ षोडशाधिकशततमः सर्गः | 1850 |

7 उत्तरकाण्डः

1859

| | |
|----------------------|------|
| 7.1 प्रथमः सर्गः | 1860 |
| 7.2 द्वितीयः सर्गः | 1863 |
| 7.3 तृतीयः सर्गः | 1866 |
| 7.4 चतुर्थः सर्गः | 1870 |
| 7.5 पञ्चमः सर्गः | 1874 |
| 7.6 षष्ठः सर्गः | 1879 |
| 7.7 सप्तमः सर्गः | 1885 |
| 7.8 अष्टमः सर्गः | 1891 |
| 7.9 नवमः सर्गः | 1894 |
| 7.10 दशमः सर्गः | 1898 |
| 7.11 एकादशः सर्गः | 1902 |
| 7.12 द्वादशः सर्गः | 1907 |
| 7.13 त्रयोदशः सर्गः | 1910 |
| 7.14 चतुर्दशः सर्गः | 1914 |
| 7.15 पञ्चदशः सर्गः | 1917 |
| 7.16 षोडशः सर्गः | 1920 |
| 7.17 सप्तदशः सर्गः | 1923 |
| 7.18 अष्टादशः सर्गः | 1927 |
| 7.19 एकोनविंशः सर्गः | 1931 |
| 7.20 विंशः सर्गः | 1934 |
| 7.21 एकविंशः सर्गः | 1937 |
| 7.22 द्वाविंशः सर्गः | 1940 |

| | |
|----------------------------|------|
| 7.23 त्रयोविंशः सर्गः | 1945 |
| 7.24 चतुर्विंशः सर्गः | 1950 |
| 7.25 पञ्चविंशः सर्गः | 1954 |
| 7.26 षड्विंशः सर्गः | 1959 |
| 7.27 सप्तविंशः सर्गः | 1964 |
| 7.28 अष्टाविंशः सर्गः | 1968 |
| 7.29 एकोनविंशः सर्गः | 1973 |
| 7.30 त्रिंशः सर्गः | 1978 |
| 7.31 एकत्रिंशः सर्गः | 1982 |
| 7.32 द्वात्रिंशः सर्गः | 1986 |
| 7.33 त्रयस्त्रिंशः सर्गः | 1993 |
| 7.34 चतुस्त्रिंशः सर्गः | 1996 |
| 7.35 पञ्चत्रिंशः सर्गः | 2001 |
| 7.36 षड्विंशः सर्गः | 2008 |
| 7.37 सप्तत्रिंशः सर्गः | 2013 |
| 7.38 अष्टात्रिंशः सर्गः | 2015 |
| 7.39 एकोनचत्वारिंशः सर्गः | 2017 |
| 7.40 चत्वारिंशः सर्गः | 2020 |
| 7.41 एकचत्वारिंशः सर्गः | 2022 |
| 7.42 द्विचत्वारिंशः सर्गः | 2025 |
| 7.43 त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 2028 |
| 7.44 चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 2030 |
| 7.45 पञ्चचत्वारिंशः सर्गः | 2033 |
| 7.46 षट्चत्वारिंशः सर्गः | 2036 |
| 7.47 सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 2038 |
| 7.48 अष्टचत्वारिंशः सर्गः | 2040 |
| 7.49 एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2042 |
| 7.50 पञ्चाशत्तमः सर्गः | 2044 |
| 7.51 एकपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2047 |
| 7.52 द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2049 |
| 7.53 त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2051 |
| 7.54 चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2054 |
| 7.55 पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2057 |
| 7.56 षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः | 2060 |
| 7.57 सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2062 |
| 7.58 अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः | 2066 |
| 7.59 एकोनषष्टितमः सर्गः | 2068 |
| 7.60 षष्टितमः सर्गः | 2071 |
| 7.61 एकषष्टितमः सर्गः | 2073 |
| 7.62 द्विषष्टितमः सर्गः | 2077 |
| 7.63 त्रिषष्टितमः सर्गः | 2079 |
| 7.64 चतुःषष्टितमः सर्गः | 2081 |
| 7.65 पञ्चषष्टितमः सर्गः | 2083 |
| 7.66 षट्षष्टितमः सर्गः | 2086 |
| 7.67 सप्तषष्टितमः सर्गः | 2088 |
| 7.68 अष्टषष्टितमः सर्गः | 2090 |
| 7.69 एकोनसप्ततितमः सर्गः | 2092 |
| 7.70 सप्ततितमः सर्गः | 2095 |
| 7.71 एकसप्ततितमः सर्गः | 2097 |
| 7.72 द्विसप्ततितमः सर्गः | 2099 |

| | | |
|------|---------------------|------|
| 7.73 | त्रिसप्ततितमः सर्गः | 2102 |
| 7.74 | चतुःसप्ततितमः सर्गः | 2104 |
| 7.75 | पञ्चसप्ततितमः सर्गः | 2106 |
| 7.76 | षट्सप्ततितमः सर्गः | 2108 |
| 7.77 | सप्तसप्ततितमः सर्गः | 2111 |
| 7.78 | अष्टसप्ततितमः सर्गः | 2113 |
| 7.79 | एकोनाशीतितमः सर्गः | 2116 |
| 7.80 | अशीतितमः सर्गः | 2119 |
| 7.81 | एकाशीतितमः सर्गः | 2122 |
| 7.82 | द्वाशीतितमः सर्गः | 2125 |
| 7.83 | त्र्यशीतितमः सर्गः | 2127 |
| 7.84 | चतुरशीतितमः सर्गः | 2129 |
| 7.85 | पञ्चाशीतितमः सर्गः | 2131 |
| 7.86 | षडशीतितमः सर्गः | 2134 |
| 7.87 | सप्ताशीतितमः सर्गः | 2136 |
| 7.88 | अष्टाशीतितमः सर्गः | 2138 |
| 7.89 | एकोनवतितमः सर्गः | 2141 |
| 7.90 | नवतितमः सर्गः | 2143 |
| 7.91 | एकनवतितमः सर्गः | 2146 |
| 7.92 | द्विनवतितमः सर्गः | 2148 |
| 7.93 | त्रिनवतितमः सर्गः | 2150 |
| 7.94 | चतुर्नवतितमः सर्गः | 2152 |
| 7.95 | पञ्चनवतितमः सर्गः | 2154 |
| 7.96 | षण्णवतितमः सर्गः | 2156 |
| 7.97 | सप्तनवतितमः सर्गः | 2158 |
| 7.98 | अष्टनवतितमः सर्गः | 2160 |
| 7.99 | एकोनशततमः सर्गः | 2163 |
| 7.10 | शततमः सर्गः | 2165 |

Chapter 1

॥बालकाण्डः॥

॥प्रथमः सर्गः॥

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥₁॥

को न्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥₂॥

चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥₃॥

आत्मवान्को जितक्रोधो मतिमान्कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥₄॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥₅॥

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः ।
श्रूयतामिति चामन्त्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥₆॥

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥₇॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥₈॥

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्शत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥₉॥

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः ।

आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥₁₀॥

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥₁₁॥

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥₁₂॥

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥₁₃॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥₁₄॥

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैकप्रियदर्शनः ॥₁₅॥

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥₁₆॥

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥₁₇॥

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।
तमेवङ्गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥₁₈॥

ज्येष्ठं श्रेष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् ।
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः ॥₁₉॥

तस्याभिषेकसम्भारान्दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी ।
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत ।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥₂₀॥

स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः ।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥₂₁॥

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥₂₂॥

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
स्नेहाद्विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥₂₃॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ।
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ॥₂₄॥

पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ।
शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत् ॥₂₅॥

ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ।
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् ॥₂₆॥

रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ।
देवगन्धर्वसङ्काशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् ॥₂₇॥

चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ।
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् ॥₂₈॥

मृते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ।
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥₂₉॥

पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनः पुनः ।
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः ॥₃₀॥

स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ।
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया ॥₃₁॥

रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च ।
तत्रागमनमेकाग्रे दण्डकान्प्रविवेश ह ॥₃₂॥

विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह ।
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्य भ्रातरं तथा ॥₃₃॥

अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहेन्द्रं शरासनम् ।
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ ॥₃₄॥

वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ।
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम् ॥₃₅॥

तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी ।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥₃₆॥

ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान्सर्वराक्षसान् ।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥₃₇॥

निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् ।
रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश ॥₃₈॥

ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ।
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् ॥₃₉॥

वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ।
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते ॥₄₀॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ।
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा ॥₄₁॥

तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ।
जहार भार्या रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम् ॥₄₂॥

गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ।
राघवः शोकसन्तप्तो विललापाकुलेन्द्रियः ॥⁴³॥

ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ।
मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं सन्ददर्श ह ॥⁴⁴॥

कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ।
तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः ॥⁴⁵॥

स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ।
श्रमणीं धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव ।
सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥⁴⁶॥

शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः ।
पम्पातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ॥⁴⁷॥

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः ।
सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥⁴⁸॥

ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ।
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च ।
वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः ॥⁴⁹॥

प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ।
सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥⁵⁰॥

राघवः प्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् ।
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम् ॥⁵¹॥

बिभेद च पुनः सालान्सप्तैकेन महेषुणा ।
गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥⁵²॥

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः ।

किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥⁵³॥

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ।
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥⁵⁴॥

ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे ।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥⁵⁵॥

स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः ।
दिशः प्रस्थापयामास दिदक्षुर्जनकात्मजाम् ॥⁵⁶॥

ततो गृध्रस्य वचनात्सम्पातेर्हनुमान्वली ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुष्पुवे लवणार्णवम् ॥⁵⁷॥

तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् ।
ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥⁵⁸॥

निवेदयित्वाभिज्ञानं प्रवृत्तिं च निवेद्य च ।
समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥⁵⁹॥

पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि ।
शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥⁶⁰॥

अस्त्रेणोन्मुहमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् ।
मर्षयन्नाक्षसान्वीरो यन्त्रिणस्तान्यदृच्छया ॥⁶¹॥

ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥⁶²॥

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् ।
न्यवेदयदमेयात्मा दृष्ट्वा सीतेति तच्चतः ॥⁶³॥

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ।

समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसंनिभैः ॥⁶⁴॥

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः ।
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥⁶⁵॥

तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे ।
अभ्यषिञ्चत्स लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ॥⁶⁶॥

कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ॥⁶⁷॥

तथा परमसन्तुष्टैः पूजितः सर्वदैवतैः ।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥⁶⁸॥

देवताभ्यो वरान्प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् ।
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥⁶⁹॥

नन्दिग्रामे जटां हिवा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥⁷⁰॥

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरायमो अरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥⁷¹॥

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित् ।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥⁷²॥

न वातजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मञ्जन्ति जन्तवः ।
न चाग्निजं भयं किञ्चिद्वथा कृतयुगे तथा ॥⁷³॥

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ।
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम् ॥⁷⁴॥

राजवंशाञ्छतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः ।

चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति ॥ 75 ॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥ 76 ॥

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ 77 ॥

एतदाख्यानमायुष्यं पठन्नामायणं नरः ।
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥ 78 ॥

पठन्दिजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात्
जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥ 79 ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिः ॥₁॥

यथावत्पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तदा ।
आपृष्ट्वैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम् ॥₂॥

स मुहूर्तं गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्रविदूरतः ॥₃॥

स तु तीरं समासाद्य तमसाया महामुनिः ।
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ॥₄॥

अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय ।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा ॥₅॥

न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम ।
इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम् ॥₆॥

एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना ।
प्रायच्छत मुनेस्तस्य वल्कलं नियतो गुरोः ॥₇॥

स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः ।
विचचार ह पश्यंस्तत्सर्वतो विपुलं वनम् ॥₈॥

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम् ।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम् ॥₉॥

तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः ।

जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः ॥₁₀॥

तं शोणितपरीताङ्गं वेष्टमानं महीतले ।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करुणां गिरम् ॥₁₁॥

तथा तु तं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् ।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥₁₂॥

ततः करुणवेदिबादधर्मोऽयमिति द्विजः ।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₃॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥₁₄॥

तस्यैवं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहतं मया ॥₁₅॥

चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम् ।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ॥₁₆॥

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥₁₇॥

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ।
प्रतिजग्राह संहृष्टस्तस्य तुष्टोऽभवद्गुरुः ॥₁₈॥

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि ।
तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥₁₉॥

भरद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान्गुरोः ।
कलशं पूर्णमादाय पृष्ठतोऽनुजगाम ह ॥₂₀॥

स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ।

उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः ॥₂₁॥

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः ।
चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुङ्गवम् ॥₂₂॥

वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय वाग्यतः ।
प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः ॥₂₃॥

पूजयामास तं देवं पादार्घ्यासनवन्दनैः ।
प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ठानामयमव्ययम् ॥₂₄॥

अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते ।
वाल्मीकये महर्षये सन्दिदेशासनं ततः ॥₂₅॥

उपविष्टे तदा तस्मिन्साक्षालोकपितामहे ।
तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः ॥₂₆॥

पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना ।
यस्तादृशं चारुरवं क्रौञ्चं हन्यादकारणात् ॥₂₇॥

शोचन्नेव मुहुः क्रौञ्चीमुपश्लोकमिमं पुनः ।
जगावन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः ॥₂₈॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन्मुनिपुङ्गवम् ।
श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥₂₉॥

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्प्रवृत्तेयं सरस्वती ।
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥₃₀॥

धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः ।
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् ॥₃₁॥

रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ।

रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः ॥₃₂॥

वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ।
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति ॥₃₃॥

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ।
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् ॥₃₄॥

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥₃₅॥

यावद्रामस्य च कथा ब्रह्मकृता प्रचरिष्यति ।
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि ॥₃₆॥

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
ततः सशिष्यो वाल्मीकिर्मुनिर्विस्मयमाययौ ॥₃₇॥

तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ।
मुहुर्मुहुः प्रीयमाणाः प्राहुश्च भृशविस्मिताः ॥₃₈॥

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा ।
सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्रमागतः ॥₃₉॥

तस्य बुद्धिरियं जाता वाल्मीकेर्भावितात्मनः ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥₄₀॥

उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैः
तदास्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो
यशस्करं काव्यमुदारधीर्मुनिः ॥₄₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मात्मा धर्मसंहितम् ।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्धृत्तं तस्य धीमतः ॥₁॥

उपस्पृश्योदकं संयन्मुनिः स्थित्वा कृताञ्जलिः ।
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम् ॥₂॥

जन्म रामस्य सुमहद्वीर्यं सर्वानुकूलताम् ।
लोकस्य प्रियतां क्षान्तिं सौम्यतां सत्यशीलताम् ॥₃॥

नानाचित्राः कथाश्चान्या विश्वामित्रसहायने ।
जानक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम् ॥₄॥

रामरामविवादं च गुणान्दाशरथेस्तथा ।
तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावताम् ॥₅॥

व्याघातं चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम् ।
राज्ञः शोकं विलापं च परलोकस्य चाश्रयम् ॥₆॥

प्रकृतीनां विषादं च प्रकृतीनां विसर्जनम् ।
निषादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा ॥₇॥

गङ्गायाश्चाभिसन्तारं भरद्वाजस्य दर्शनम् ।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम् ॥₈॥

वास्तुकर्मनिवेशं च भरतागमनं तथा ।
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम् ॥₉॥

पादुकाग्न्याभिषेकं च नन्दिग्राम निवासनम् ।

दण्डकारण्यगमनं सुतीक्ष्णेन समागमम् ॥₁₀॥

अनसूयासमस्यां च अङ्गरागस्य चार्पणम् ।
शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा ॥₁₁॥

वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च ।
मारीचस्य वधं चैव वैदेह्या हरणं तथा ॥₁₂॥

राघवस्य विलापं च गृध्रराजनिबर्हणम् ।
कबन्धदर्शनं चैव पम्पायाश्चापि दर्शनम् ॥₁₃॥

शर्बर्या दर्शनं चैव हनूमदर्शनं तथा ।
विलापं चैव पम्पायां राघवस्य महात्मनः ॥₁₄॥

ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम् ।
प्रत्ययोत्पादनं सख्यं वालिसुग्रीवविग्रहम् ॥₁₅॥

वालिप्रमथनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम् ।
ताराविलापसमयं वर्षरात्रिनिवासनम् ॥₁₆॥

कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसङ्ग्रहम् ।
दिशः प्रस्थापनं चैव पृथिव्याश्च निवेदनम् ॥₁₇॥

अङ्गुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम् ।
प्रायोपवेशनं चैव सम्पातेश्चापि दर्शनम् ॥₁₈॥

पर्वतारोहणं चैव सागरस्य च लङ्घनम् ।
रात्रौ लङ्काप्रवेशं च एकस्यापि विचिन्तनम् ॥₁₉॥

आपानभूमिगमनमवरोधस्य दर्शनम् ।
अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम् ॥₂₀॥

अभिज्ञानप्रदानं च सीतायाश्चापि भाषणम् ।

राक्षसीतर्जनं चैव त्रिजटास्त्रप्रदर्शनम् ॥₂₁॥

मणिप्रदानं सीताया वृक्षभङ्गं तथैव च ।
राक्षसीविद्रवं चैव किङ्कराणां निबर्हणम् ॥₂₂॥

ग्रहणं वायुसूनोश्च लङ्कादाहाभिगर्जनम् ।
प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा ॥₂₃॥

राघवाश्चासनं चैव मणिनिर्यातनं तथा ।
सङ्गमं च समुद्रस्य नलसेतोश्च बन्धनम् ॥₂₄॥

प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम् ।
विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदनम् ॥₂₅॥

कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिबर्हणम् ।
रावणस्य विनाशं च सीतावाप्तिमरेः पुरे ॥₂₆॥

बिभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्य च दर्शनम् ।
अयोध्यायाश्च गमनं भरतेन समागमम् ॥₂₇॥

रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम् ।
स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ॥₂₈॥

अनागतं च यत्किञ्चिद्रामस्य वसुधातले ।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः ।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमात्मवान् ॥₁॥

कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं सहोत्तरम् ।
चिन्तयामास को न्वेतत्प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः ॥₂॥

तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
अगृह्णीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥₃॥

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥₄॥

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ ।
वेदोपबृह्मणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥₅॥

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।
पौलस्त्य वधमित्येव चकार चरितव्रतः ॥₆॥

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् ।
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥₇॥

हास्यशृङ्गारकारुण्यरौद्रवीरभयानकैः ।
बीभत्सादिरसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥₈॥

तौ तु गान्धर्वतत्त्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ॥₉॥

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ ।

बिम्बादिवोद्धृतौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ ॥₁₀॥

तौ राजपुत्रौ कात्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम् ।
वाचो विधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ ॥₁₁॥

ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे ।
यथोपदेशं तच्चज्ञौ जगत्तुस्तौ समाहितौ ।
महात्मानौ महाभागौ सर्वलक्षणलक्षितौ ॥₁₂॥

तौ कदाचित्समेतानामृषीणां भावितात्मनाम् ।
आसीनानां समीपस्थाविदं काव्यमगायताम् ॥₁₃॥

तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ।
साधु साध्वित्तावूचतुः परं विस्मयमागताः ॥₁₄॥

ते प्रीतमनसः सर्वे मुनयो धर्मवत्सलाः ।
प्रशशंसुः प्रशस्तव्यौ गायमानौ कुशीलवौ ॥₁₅॥

अहो गीतस्य माधुर्यं श्लोकानां च विशेषतः ।
चिरनिर्वृत्तमप्येतत्प्रत्यक्षमिव दर्शितम् ॥₁₆॥

प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु तदा भावमगायताम् ।
सहितौ मधुरं रक्तं सम्पन्नं स्वरसम्पदा ॥₁₇॥

एवं प्रशस्यमानौ तौ तपःश्लाघ्यैर्महर्षिभिः ।
संरक्ततरमत्यर्थं मधुरं तावगायताम् ॥₁₈॥

प्रीतः कश्चिन्मुनिस्ताभ्यां संस्थितः कलशं ददौ ।
प्रसन्नो वल्कलं कश्चिद्ददौ ताभ्यां महायशाः ॥₁₉॥

आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना सम्प्रकीर्तितम् ।
परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् ॥₂₀॥

प्रशस्यमानो सर्वत्र कदाचित्तत्र गायकौ ।
रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः ॥₂₁॥

स्ववेश्म चानीय ततो भ्रातरौ सकुशीलवौ ।
पूजयामास पूजार्हो रामः शत्रुनिबर्हणः ॥₂₂॥

आसीनः काश्चने दिव्ये स च सिंहासने प्रभुः ।
उपोपविष्टैः सचिवैर्भ्रातृभिश्च परन्तपः ॥₂₃॥

दृष्ट्वा तु रूपसम्पन्नौ तावुभौ वीणिनौ ततः ।
उवाच लक्ष्मणं रामः शत्रुघ्नं भरतं तथा ॥₂₄॥

श्रूयतामिदमाख्यानमनयोर्देववर्चसोः ।
विचित्रार्थपदं सम्यग्गायतोर्मधुरस्वरम् ॥₂₅॥

इमौ मुनी पार्थिवलक्ष्मणान्वितौ
कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ ।
ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्षते
महानुभावं चरितं निबोधत ॥₂₆॥

ततस्तु तौ रामवचः प्रचोदितौ
अगायतां मार्गविधानसम्पदा ।
स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्-
बुभूषयासक्तमना बभूव ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

सर्वापूर्वमियं येषामासीत्कृत्स्ना वसुन्धरा ।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् ॥₁॥

येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन् ॥₂॥

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ॥₃॥

तदिदं वर्तयिष्यामि सर्वं निखिलमादितः ।
धर्मकामार्थसहितं श्रोतव्यमनसूयया ॥₄॥

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥₅॥

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥₆॥

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥₇॥

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता ।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥₈॥

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः ।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥₉॥

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम् ।

सर्वयन्त्रायुधवतीमुपेतां सर्वशिल्पिभिः ॥₁₀॥

सूतमागधसम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम् ।
उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसङ्कुलाम् ॥₁₁॥

वधूनाटकसङ्घैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् ।
उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम् ॥₁₂॥

दुर्गगम्भीरपरिघां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् ।
वाजिवारणसम्पूर्णां गोभिरुष्टैः खरैस्तथा ॥₁₃॥

सामन्तराजसङ्घैश्च बलिकर्मभिरावृताम् ।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥₁₄॥

प्रसादै रत्नविकृतैः पर्वतैरुपशोभिताम् ।
कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥₁₅॥

चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणैर्युताम् ।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥₁₆॥

गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमौ निवेशिताम् ।
शालितण्डुलसम्पूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम् ॥₁₇॥

दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा ।
नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम् ॥₁₈॥

विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि ।
सुनिवेशितवेश्मान्तां नरोत्तमसमावृताम् ॥₁₉॥

ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरापरम् ।
शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदाः ॥₂₀॥

सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने ।

हत्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद्बाहुबलैरपि ॥₂₁॥

तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णा महारथैः ।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥₂₂॥

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृताम्
द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्गपारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्-
महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च केवलैः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

पुर्यां तस्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसङ्ग्रहः ।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥₁॥

इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मरतो वशी ।
महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकृषु विश्रुतः ॥₂॥

बलवान्निहतामित्रो मित्रवान्विजितेन्द्रियः ।
धनेश्च सश्वयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥₃॥

यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता ।
तथा दशरथो राजा वसञ्जगदपालयत् ॥₄॥

तेन सत्याभिसन्धेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता ।
पालिता सा पुरी श्रेष्ठेन्द्रेण इवामरावती ॥₅॥

तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मना बहुश्रुताः ।
नरास्तुष्टाधनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥₆॥

नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्चधनधान्यवान् ॥₇॥

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥₈॥

सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः ।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥₉॥

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।

नामृष्टो नानुलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥₁₀॥

नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् ।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥₁₁॥

नानाहिताग्निर्नायज्वा विप्रो नाप्यसहस्रदः ।
कश्चिदासीदयोध्यायां न च निर्वृत्तसङ्करः ॥₁₂॥

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः ।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥₁₃॥

न नास्तिको नानृतको न कश्चिदबहुश्रुतः ।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते तदा ॥₁₄॥

न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन ।
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ॥₁₅॥

वर्णेष्वग्न्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः ।
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः ॥₁₆॥

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः ।
शूद्राः स्वधर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥₁₇॥

सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता ।
यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता ॥₁₈॥

योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम् ।
सम्पूर्णाकृतविद्यानां गुहाकेसरिणामिव ॥₁₉॥

काम्बोजविषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः ।
वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णाहरिहयोपमैः ॥₂₀॥

विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि ।
मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः ॥₂₁॥

अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः ।
भद्रमन्दैर्भद्रमृगैर्मृगमन्दैश्च सा पुरी ॥₂₂॥

नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसंनिभैः ।
सा योजने च द्वे भूयः सत्यनामा प्रकाशते ॥₂₃॥

तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलाम्
गृहैर्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम् ।
पुरीमयोध्यां नृसहस्रसङ्कुलाम्
शशास वै शक्रसमो महीपतिः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः ।
शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः ॥₁॥

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो अर्थसाधकः ।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽभवत् ॥₂॥

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ ।
वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे ॥₃॥

श्रीमन्तश्च महात्मानः शास्त्रज्ञा दृढविक्रमाः ।
कीर्तिमन्तः प्रणिहिता यथावचनकारिणः ॥₄॥

तेजःक्षमायशःप्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः ।
क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः ॥₅॥

तेषामविदितं किञ्चित्स्त्रेषु नास्ति परेषु वा ।
क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम् ॥₆॥

कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः ।
प्राप्तकालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि ॥₇॥

कोशसङ्ग्रहणे युक्ता बलस्य च परिग्रहे ।
अहितं चापि पुरुषं न विहिंस्युरदूषकम् ॥₈॥

वीराश्च नियतोत्साहा राजशास्त्रमनुष्ठिताः ।
शुचीनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम् ॥₉॥

ब्रह्मक्षत्रमहिंसन्तस्ते कोशं समपूरयन् ।

सुतीक्ष्णदण्डाः सम्प्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम् ॥₁₀॥

शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां सम्प्रज्ञानताम् ।
नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित् ॥₁₁॥

कश्चिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः ।
प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥₁₂॥

सुवाससः सुवेशाश्च ते च सर्वे सुशीलिनः ।
हितार्थं च नरेन्द्रस्य जाग्रतो नयचक्षुषा ॥₁₃॥

गुरौ गुणगृहीताश्च प्रख्याताश्च पराक्रमैः ।
विदेशेष्वपि विज्ञाताः सर्वतो बुद्धिनिश्चयात् ॥₁₄॥

ईदृशैस्तैरमात्यैस्तु राजा दशरथोऽनघः ।
उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुन्धराम् ॥₁₅॥

अवेक्षमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रञ्जयन् ।
नाध्यगच्छद्विशिष्टं वा तुल्यं वा शत्रुमात्मनः ॥₁₆॥

तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहितैर्निविष्टैर्-
वृतोऽनुरक्तैः कुशलैः समर्थैः ।
स पार्थिवो दीप्तिमवाप युक्तः
तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

तस्य त्वेवं प्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः ।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥₁॥

चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः ।
सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥₂॥

स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान् ।
मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरेव कृतात्मभिः ॥₃॥

ततोऽब्रवीदिदं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ।
शीघ्रमानय मे सर्वान्गुरुस्तान्सपुरोहितान् ॥₄॥

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ।
ऋत्विग्निरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मया श्रुतः ॥₅॥

सनत्कुमारो भगवान्पूर्वं कथितवान्कथाम् ।
ऋषीणां संनिधौ राजंस्तव पुत्रागमं प्रति ॥₆॥

काश्यपस्य तु पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः ।
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति ॥₇॥

स वने नित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा ।
नान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रनुवर्तनात् ॥₈॥

द्वैविध्यं ब्रह्मचर्यस्य भविष्यति महात्मनः ।
लोकेषु प्रथितं राजन्विप्रेश्च कथितं सदा ॥₉॥

तस्यैवं वर्तमानस्य कालः समभिवर्तत ।

अग्निं शुश्रूषमाणस्य पितरं च यशस्विनम् ॥₁₀॥

एतस्मिन्नेव काले तु रोमपादः प्रतापवान् ।
अङ्गेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः ॥₁₁॥

तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा ।
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वभूतभयावहा ॥₁₂॥

अनावृष्ट्यां तु वृत्तायां राजा दुःखसमन्वितः ।
ब्राह्मणाञ्श्रुतवृद्धांश्च समानीय प्रवक्ष्यति ॥₁₃॥

भवन्तः श्रुतधर्माणो लोके चारित्रवेदिनः ।
समादिशन्तु नियमं प्रायश्चित्तं यथा भवेत् ॥₁₄॥

वक्ष्यन्ति ते महीपालं ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
विभाण्डकसुतं राजन्सर्वोपायैरिहानय ॥₁₅॥

आनाय्य च महीपाल ऋष्यशृङ्गं सुसत्कृतम् ।
प्रयच्छ कन्यां शान्तां वै विधिना सुसमाहितः ॥₁₆॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा राजा चिन्तां प्रपत्स्यते ।
केनोपायेन वै शक्यमिहानेतुं स वीर्यवान् ॥₁₇॥

ततो राजा विनिश्चित्य सह मन्त्रिभिरात्मवान् ।
पुरोहितममात्यांश्च प्रेषयिष्यति सत्कृतान् ॥₁₈॥

ते तु राज्ञो वचः श्रुत्वा व्यथिता वनताननाः ।
न गच्छेम ऋषेर्भीता अनुनेष्यन्ति तं नृपम् ॥₁₉॥

वक्ष्यन्ति चिन्तयित्वा ते तस्योपायांश्च तान्क्षमान् ।
आनेष्यामो वयं विप्रं न च दोषो भविष्यति ॥₂₀॥

एवमङ्गाधिपेनैव गणिकाभिर्ऋषेः सुतः ।

आनीतोऽवर्षयद्देवः शान्ता चास्मै प्रदीयते ॥₂₁॥

ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति ।
सनत्कुमारकथितमेतावद्ब्रूतं मया ॥₂₂॥

अथ हृष्टो दशरथः सुमन्त्रं प्रत्यभाषत ।
यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतो विस्तरेण ब्रूय्यताम् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

सुमन्त्रश्चोदितो राज्ञा प्रोवाचेदं वचस्तदा ।
यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतः शृणु मे मन्त्रिभिः सह ॥₁॥

रोमपादमुवाचेदं सहामात्यः पुरोहितः ।
उपायो निरपायोऽयमस्माभिरभिचिन्तितः ॥₂॥

ऋष्यशृङ्गो वनचरस्तपःस्वाध्यायने रतः ।
अनभिज्ञः स नारीणां विषयाणां सुखस्य च ॥₃॥

इन्द्रियार्थैरभिमतैर्नरचित्तप्रमाथिभिः ।
पुरमानाययिष्यामः क्षिप्रं चाध्यवसीयताम् ॥₄॥

गणिकास्तत्र गच्छन्तु रूपवत्यः स्त्रलङ्कृताः ।
प्रलोभ्य विविधोपायैरानेष्यन्तीह सत्कृताः ॥₅॥

श्रुत्वा तथेति राजा च प्रत्युवाच पुरोहितम् ।
पुरोहितो मन्त्रिणश्च तथा चक्रुश्च ते तदा ॥₆॥

वारमुख्यास्तु तच्छ्रुत्वा वनं प्रविविशुर्महत् ।
आश्रमस्याविदूरेऽस्मिन्यत्नं कुर्वन्ति दर्शने ॥₇॥

ऋषिपुत्रस्य घोरस्य नित्यमाश्रमवासिनः ।
पितुः स नित्यसन्तुष्टो नातिचक्राम चाश्रमात् ॥₈॥

न तेन जन्मप्रभृति दृष्टपूर्वं तपस्विना ।
स्त्री वा पुमान्वा यच्चान्यत्सत्त्वं नगरराष्ट्रजम् ॥₉॥

ततः कदाचित्तं देशमाजगाम यदृच्छया ।

विभाण्डकसुतस्तत्र ताश्चापश्यद्वराङ्गनाः ॥₁₀॥

ताश्चित्रवेषाः प्रमदा गायन्त्यो मधुरस्वरैः ।
ऋषिपुत्रमुपागम्य सर्वा वचनमब्रुवन् ॥₁₁॥

कस्त्वं किं वर्तसे ब्रह्मज्ञातुमिच्छामहे वयम् ।
एकस्त्वं विजने घोरे वने चरसि शंस नः ॥₁₂॥

अदृष्टरूपास्तास्तेन काम्यरूपा वने स्त्रियः ।
हार्दात्तस्य मतिर्जाता आख्यातुं पितरं स्वकम् ॥₁₃॥

पिता विभाण्डकोऽस्माकं तस्याहं सुत औरसः ।
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातं नाम कर्म च मे भुवि ॥₁₄॥

इहाश्रमपदोऽस्माकं समीपे शुभदर्शनाः ।
करिष्ये वोऽत्र पूजां वै सर्वेषां विधिपूर्वकम् ॥₁₅॥

ऋषिपुत्रवचः श्रुत्वा सर्वासां मतिरास वै ।
तदाश्रमपदं द्रष्टुं जग्मुः सर्वाश्च तेन ह ॥₁₆॥

गतानां तु ततः पूजामृषिपुत्रश्चकार ह ।
इदमर्घ्यमिदं पादमिदं मूलं फलं च नः ॥₁₇॥

प्रतिगृह्य तु तां पूजां सर्वा एव समुत्सुकाः ।
ऋषेर्भीताश्च शीघ्रं तु गमनाय मतिं दधुः ॥₁₈॥

अस्माकमपि मुख्यानि फलानीमानि वै द्विज ।
गृहाण प्रति भद्रं ते भक्षयस्व च मा चिरम् ॥₁₉॥

ततस्तास्तं समालिङ्ग्य सर्वा हर्षसमन्विताः ।
मोदकान्प्रददुस्तस्मै भक्ष्यांश्च विविधाञ्शुभान् ॥₂₀॥

तानि चास्वाद्य तेजस्वी फलानीति स्म मन्यते ।

अनास्वादितपूर्वाणि वने नित्यनिवासिनाम् ॥₂₁॥

आपृच्छ च तदा विप्रं व्रतचर्या निवेद्य च ।
गच्छन्ति स्मापदेशात्ता भीतास्तस्य पितुः स्त्रियः ॥₂₂॥

गतासु तासु सर्वासु काश्यपस्यात्मजो द्विजः ।
अस्वस्थहृदयश्चासीद्दुःखं स्म परिवर्तते ॥₂₃॥

ततोऽपरेद्युस्तं देशमाजगाम स वीर्यवान् ।
मनोज्ञा यत्र ता दृष्टा वारमुख्याः स्खलङ्कृताः ॥₂₄॥

दृष्ट्वैव च तदा विप्रमायान्तं हृष्टमानसाः ।
उपसृत्य ततः सर्वास्तास्तमूचुरिदं वचः ॥₂₅॥

एह्याश्रमपदं सौम्य अस्माकमिति चाब्रुवन् ।
तत्राप्येष विधिः श्रीमान्विशेषेण भविष्यति ॥₂₆॥

श्रुत्वा तु वचनं तासां सर्वासां हृदयङ्गमम् ।
गमनाय मतिं चक्रे तं च निन्युस्तदा स्त्रियः ॥₂₇॥

तत्र चानीयमाने तु विप्रे तस्मिन्महात्मनि ।
ववर्ष सहसा देवो जगत्प्रह्लादयंस्तदा ॥₂₈॥

वर्षेणैवागतं विप्रं विषयं स्वं नराधिपः ।
प्रत्युद्गम्य मुनिं प्रह्वः शिरसा च महीं गतः ॥₂₉॥

अर्घ्यं च प्रददौ तस्मै न्यायतः सुसमाहितः ।
वव्रे प्रसादं विप्रेन्द्रान्मा विप्रं मन्युराविशेत् ॥₃₀॥

अन्तःपुरं प्रविश्यास्मै कन्यां दत्त्वा यथाविधि ।
शान्तां शान्तेन मनसा राजा हर्षमवाप सः ॥₃₁॥

एवं स न्यवसत्तत्र सर्वकामैः सुपूजितः ।

ऋष्यशृङ्गो महातेजाः शान्तया सह भार्यया ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

भूय एव च राजेन्द्र शृणु मे वचनं हितम् ।
यथा स देवप्रवरः कथयामास बुद्धिमान् ॥₁॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातो भविष्यति सुधार्मिकः ।
राजा दशरथो नाम्ना श्रीमान्सत्यप्रतिश्रवः ॥₂॥

अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति ।
कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति ॥₃॥

पुत्रस्त्वङ्गस्य राज्ञस्तु रोमपाद इति श्रुतः ।
तं स राजा दशरथो गमिष्यति महायशाः ॥₄॥

अनपत्योऽस्मि धर्मात्मञ्शान्ताभर्ता मम क्रतुम् ।
आहरेत ब्रयाज्ञप्तः सन्तानार्थं कुलस्य च ॥₅॥

श्रुत्वा राज्ञोऽथ तद्वाक्यं मनसा स विचिन्त्य च ।
प्रदास्यते पुत्रवन्तं शान्ता भर्तारमात्मवान् ॥₆॥

प्रतिगृह्य च तं विप्रं स राजा विगतज्वरः ।
आहरिष्यति तं यज्ञं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥₇॥

तं च राजा दशरथो यष्टुकामः कृताञ्जलिः ।
ऋष्यशृङ्गं द्विजश्रेष्ठं वरयिष्यति धर्मवित् ॥₈॥

यज्ञार्थं प्रसवार्थं च स्वर्गार्थं च नरेश्वरः ।
लभते च स तं कामं द्विजमुख्याद्विशां पतिः ॥₉॥

पुत्राश्चास्य भविष्यन्ति चत्वारोऽमितविक्रमाः ।

वंशप्रतिष्ठानकराः सर्वलोकेषु विश्रुताः ॥₁₀॥

एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान्कथाम् ।
सनत्कुमारो भगवान्पुरा देवयुगे प्रभुः ॥₁₁॥

स त्वं पुरुषशार्दूल तमानय सुसत्कृतम् ।
स्वयमेव महाराज गत्वा सबलवाहनः ॥₁₂॥

अनुमान्य वसिष्ठं च सूतवाक्यं निशम्य च ।
सान्तःपुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः ॥₁₃॥

वनानि सरितश्चैव व्यतिक्रम्य शनैः शनैः ।
अभिचक्राम तं देशं यत्र वै मुनिपुङ्गवः ॥₁₄॥

आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम् ।
ऋषिपुत्रं ददर्शादौ दीप्यमानमिवानलम् ॥₁₅॥

ततो राजा यथान्यायं पूजां चक्रे विशेषतः ।
सखित्वात्तस्य वै राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥₁₆॥

रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते ।
सख्यं सम्बन्धकं चैव तदा तं प्रत्यपूजयत् ॥₁₇॥

एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः ।
सप्ताष्टदिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत् ॥₁₈॥

शान्ता तव सुता राजन्सह भर्त्रा विशाम्पते ।
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम् ॥₁₉॥

तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः ।
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया ॥₂₀॥

ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा ।

स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सह भार्यया ॥₂₁॥

तावन्योन्याञ्जलिं कृत्वा स्नेहात्संश्लिष्य चोरसा ।
ननन्दतुर्दशरथो रोमपादश्च वीर्यवान् ॥₂₂॥

ततः सुहृदमापृच्छ्य प्रस्थितो रघुनन्दनः ।
पौरेभ्यः प्रेषयामास दूतान्वै शीघ्रगामिनः ।
क्रियतां नगरं सर्वं क्षिप्रमेव स्वलङ्कृतम् ॥₂₃॥

ततः प्रहृष्टाः पौरास्ते श्रुत्वा राजानमागतम् ।
तथा प्रचक्रुस्तत्सर्वं राज्ञा यत्प्रेषितं तदा ॥₂₄॥

ततः स्वलङ्कृतं राजा नगरं प्रविवेश ह ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः पुरस्कृत्य द्विजर्षभम् ॥₂₅॥

ततः प्रमुदिताः सर्वे दृष्ट्वा वै नागरा द्विजम् ।
प्रवेश्यमानं सत्कृत्य नरेन्द्रेणेन्द्रकर्मणा ॥₂₆॥

अन्तःपुरं प्रवेश्यैनं पूजां कृत्वा तु शास्त्रतः ।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात् ॥₂₇॥

अन्तःपुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागताम् ।
सह भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन् ॥₂₈॥

पूज्यमाना च ताभिः सा राज्ञा चैव विशेषतः ।
उवास तत्र सुखिता कश्चित्कालं सह द्विजा ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे ।
वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत् ॥₁॥

ततः प्रसाद्य शिरसा तं विप्रं देववर्णिनम् ।
यज्ञाय वरयामास सन्तानार्थं कुलस्य च ॥₂॥

तथेति च स राजानमुवाच च सुसत्कृतः ।
सम्भाराः सम्प्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥₃॥

ततो राजाब्रवीद्वाक्यं सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ।
सुमन्त्रावाहय क्षिप्रमृत्विजो ब्रह्मवादिनः ॥₄॥

ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः ।
समानयत्स तान्विप्रान्समस्तान्वेदपारगान् ॥₅॥

सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ।
पुरोहितं वसिष्ठं च ये चान्ये द्विजसत्तमाः ॥₆॥

तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ।
इदं धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥₇॥

मम लालप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वै सुखम् ।
तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ॥₈॥

तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
ऋषिपुत्रप्रभावेन कामान्प्राप्स्यामि चाप्यहम् ॥₉॥

ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन् ।

वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखाच्युतम् ॥₁₀॥

ऋष्यशृङ्गपुरोगाश्च प्रत्यूचुर्नृपतिं तदा ।
सम्भाराः सम्प्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥₁₁॥

सर्वथा प्राप्यसे पुत्रांश्चतुरोऽमितविक्रमान् ।
यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता ॥₁₂॥

ततः प्रीतोऽभवद्राजा श्रुत्वा तद्विजभाषितम् ।
अमात्यांश्चाब्रवीद्राजा हर्षणेदं शुभाक्षरम् ॥₁₃॥

गुरूणां वचनाच्छीघ्रं सम्भाराः सम्प्रियन्तु मे ।
समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् ॥₁₄॥

सरख्याश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ।
शान्तयश्चाभिवर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि ॥₁₅॥

शक्यः कर्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता ।
नापराधो भवेत्कष्टो यदस्मिन्क्रतुसत्तमे ॥₁₆॥

छिद्रं हि मृगयन्तेऽत्र विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः ।
विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति ॥₁₇॥

तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते ।
तथाविधानं क्रियतां समर्थाः करणेष्विह ॥₁₈॥

तथेति च ततः सर्वे मन्त्रिणः प्रत्यपूजयन् ।
पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथाज्ञप्तमकुर्वत ॥₁₉॥

ततो द्विजास्ते धर्मज्ञमस्तुवन्पार्थिवर्षभम् ।
अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥₂₀॥

गतानां तु द्विजातीनां मन्त्रिणस्तान्नराधिपः ।

विसर्जयित्वा स्वं वेष्म प्रविवेश महाद्युतिः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

पुनः प्राप्ते वसन्ते तु पूर्णः संवत्सरोऽभवत् ।
अभिवाद्य वसिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च ॥₁॥

अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं प्रसवार्थं द्विजोत्तमम् ।
यज्ञो मे क्रियतां विप्र यथोक्तं मुनिपुङ्गव ॥₂॥

यथा न विघ्नः क्रियते यज्ञाङ्गेषु विधीयताम् ।
भवान्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो भवान् ॥₃॥

वोढव्यो भवता चैव भारो यज्ञस्य चोद्यतः ।
तथेति च स राजानमब्रवीद्विजसत्तमः ॥₄॥

करिष्ये सर्वमेवैतद्भवता यत्समर्थितम् ।
ततोऽब्रवीद्विजान्वृद्धान्यज्ञकर्मसु निष्ठितान् ॥₅॥

स्थापत्ये निष्ठितांश्चैव वृद्धान्परमधार्मिकान् ।
कर्मान्तिकाञ्चित्पकारान्वर्धकीन्खनकानपि ॥₆॥

गणकाञ्चित्पिनश्चैव तथैव नटनर्तकान् ।
तथा शुचीञ्चास्त्रविदः पुरुषान्सुबहुश्रुतान् ॥₇॥

यज्ञकर्म समीहन्तां भवन्तो राजशासनात् ।
इष्टका बहुसाहस्री शीघ्रमानीयतामिति ॥₈॥

औपकार्याः क्रियन्तां च राज्ञां बहुगुणान्विताः ।
ब्राह्मणावसथाश्चैव कर्तव्याः शतशः शुभाः ॥₉॥

भक्ष्यान्नपानैर्बहुभिः समुपेताः सुनिष्ठिताः ।

तथा पौरजनस्यापि कर्तव्या बहुविस्तराः ॥₁₀॥

आवासा बहुभक्ष्या वै सर्वकामैरुपस्थिताः ।
तथा जानपदस्यापि जनस्य बहुशोभनम् ॥₁₁॥

दातव्यमन्नं विधिवत्सत्कृत्य न तु लीलया ।
सर्ववर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः ॥₁₂॥

न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि ।
यज्ञकर्मसु येऽव्यग्राः पुरुषाः शिल्पिनस्तथा ॥₁₃॥

तेषामपि विशेषेण पूजा कार्या यथाक्रमम् ।
यथा सर्वं सुविहितं न किञ्चित्परिहीयते ॥₁₄॥

तथा भवन्तः कुर्वन्तु प्रीतिस्निग्धेन चेतसा ।
ततः सर्वे समागम्य वसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥₁₅॥

यथोक्तं तत्करिष्यामो न किञ्चित्परिहास्यते ।
ततः सुमन्त्रमाहूय वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥₁₆॥

निमन्त्रयस्य नृपतीन्पृथिव्यां ये च धार्मिकाः ।
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥₁₇॥

समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् ।
मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यविक्रमम् ॥₁₈॥

निष्ठितं सर्वशास्त्रेषु तथा वेदेषु निष्ठितम् ।
तमानय महाभागं स्वयमेव सुसत्कृतम् ।
पूर्वसम्बन्धिनं ज्ञात्वा ततः पूर्वं ब्रवीमि ते ॥₁₉॥

तथा काशिपतिं स्निग्धं सततं प्रियवादिनम् ।
सद्वृत्तं देवसङ्काशं स्वयमेवानयस्व ह ॥₂₀॥

तथा केकयराजानं वृद्धं परमधार्मिकम् ।
श्वशुरं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥²¹॥

अङ्गेश्वरं महाभागं रोमपादं सुसत्कृतम् ।
वयस्यं राजसिंहस्य तमानय यशस्विनम् ॥²²॥

प्राचीनान्सिन्धुसौवीरान्सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान् ।
दाक्षिणात्यान्नेरेन्द्रांश्च समस्तानानयस्व ह ॥²³॥

सन्ति स्निग्धाश्च ये चान्ये राजानः पृथिवीतले ।
तानानय यथाक्षिप्रं सानुगान्सहबान्धवान् ॥²⁴॥

वसिष्ठवाक्यं तच्छ्रुत्वा सुमन्त्रस्वरितस्तदा ।
व्यादिशत्पुरुषांस्तत्र राज्ञामानयने शुभान् ॥²⁵॥

स्वयमेव हि धर्मात्मा प्रययौ मुनिशासनात् ।
सुमन्त्रस्वरितो भूत्वा समानेतुं महीक्षितः ॥²⁶॥

ते च कर्मान्तिकाः सर्वे वसिष्ठाय च धीमते ।
सर्वं निवेदयन्ति स्म यज्ञे यदुपकल्पितम् ॥²⁷॥

ततः प्रीतो द्विजश्रेष्ठस्तान्सर्वान्पुनरब्रवीत् ।
अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा ।
अवज्ञया कृतं हन्याद्दातारं नात्र संशयः ॥²⁸॥

ततः कैश्चिदहोरात्रैरुपयाता महीक्षितः ।
बहूनि रत्नान्यादाय राज्ञो दशरथस्य ह ॥²⁹॥

ततो वसिष्ठः सुप्रीतो राजानमिदमब्रवीत् ।
उपयाता नरव्याघ्र राजानस्तव शासनात् ॥³⁰॥

मयापि सत्कृताः सर्वे यथार्हं राजसत्तमाः ।
यज्ञियं च कृतं राजन्पुरुषैः सुसमाहितैः ॥³¹॥

निर्यातु च भवान्यष्टुं यज्ञायतनमन्तिकात् ।
सर्वकामैरुपहृतैरुपेतं वै समन्ततः ॥₃₂॥

तथा वसिष्ठवचनादृष्यशृङ्गस्य चोभयोः ।
शुभे दिवस नक्षत्रे निर्यातो जगतीपतिः ॥₃₃॥

ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्व एव द्विजोत्तमाः ।
ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन्प्राप्ते तुरङ्गमे ।
सरखाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत ॥₁॥

ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य कर्म चक्रुर्द्विजर्षभाः ।
अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ॥₂॥

कर्म कुर्वन्ति विधिवद्वाजका वेदपारगाः ।
यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः ॥₃॥

प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः ।
चक्रुश्च विधिवत्सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः ॥₄॥

अभिपूज्य ततो हृष्टाः सर्वे चक्रुर्यथाविधि ।
प्रातःसवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुङ्गवाः ॥₅॥

न चाहुतमभूत्तत्र स्खलितं वापि किञ्चन ।
दृश्यते ब्रह्मवत्सर्वं क्षेमयुक्तं हि चक्रिरे ॥₆॥

न तेष्वहःसु श्रान्तो वा क्षुधितो वापि दृश्यते ।
नाविद्वान्ब्राह्मणस्तत्र नाशतानुचरस्तथा ॥₇॥

ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते ।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा ॥₈॥

वृद्धाश्च व्याधिताश्चैव स्त्रियो बालास्तथैव च ।
अनिशं भुञ्जमानानां न तृप्तिरुपलभ्यते ॥₉॥

दीयतां दीयतामन्नं वासांसि विविधानि च ।

इति सधोदितास्तत्र तथा चक्रुरनेकशः ॥₁₀॥

अन्नकूटाश्च बहवो दृश्यन्ते पर्वतोपमाः ।
दिवसे दिवसे तत्र सिद्धस्य विधिवत्तदा ॥₁₁॥

अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः ।
अहो तृप्ताः स्म भद्रं ते इति शुश्राव राघवः ॥₁₂॥

स्वलङ्कृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान्पर्यवेषयन् ।
उपासते च तानन्ये सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥₁₃॥

कर्मान्तरे तदा विप्रा हेतुवादान्बहूनपि ।
प्राहुः सुवाग्मिनो धीराः परस्परजिगीषया ॥₁₄॥

दिवसे दिवसे तत्र संस्तरे कुशला द्विजाः ।
सर्वकर्माणि चक्रुस्ते यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥₁₅॥

नाषडङ्गविदत्रासीन्नात्रतो नाबहुश्रुतः ।
सदस्यस्तस्य वै राज्ञो नावादकुशलो द्विजः ॥₁₆॥

प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन्पङ्खैः खादिरास्तथा ।
तावन्तो बिल्वसहिताः पर्णिनश्च तथापरे ॥₁₇॥

श्लेष्मातकमयो दिष्टो देवदारुमयस्तथा ।
द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहौ ॥₁₈॥

कारिताः सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः ।
शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालङ्कृता भवन् ॥₁₉॥

विन्यस्ता विधिवत्सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढाः ।
अष्टाश्रयः सर्व एव श्लक्ष्णरूपसमन्विताः ॥₂₀॥

आच्छादितास्ते वासोभिः पुष्पैर्गन्धैश्च भूषिताः ।

सप्तर्षयो दीप्तिमन्तो विराजन्ते यथा दिवि ॥₂₁॥

इष्टकाश्च यथान्यायं कारिताश्च प्रमाणतः ।
चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्र कुशलैः शुद्धकर्मणि ।
स चित्यो राजसिंहस्य सञ्चितः कुशलैर्द्विजैः ॥₂₂॥

गरुडो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः ।
नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम् ॥₂₃॥

उरगाः पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ।
शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जल चराश्च ये ॥₂₄॥

ऋत्विग्भिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा ।
पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा ।
अश्वरत्नोत्तमं तस्य राज्ञो दशरथस्य ह ॥₂₅॥

कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः ।
कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥₂₆॥

पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा ।
अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥₂₇॥

होताध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् ।
महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा ॥₂₈॥

पतत्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः ।
ऋत्विक्परम सम्पन्नः श्रपयामास शास्त्रतः ॥₂₉॥

धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिपः ।
यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन्यापमात्मनः ॥₃₀॥

हयस्य यानि चाङ्गानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः ।
अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत्समस्ताः षोडशर्बिजः ॥₃₁॥

प्लक्षशाखासु यज्ञानामन्येषां क्रियते हविः ।
अश्वमेधस्य चैकस्य वैतसो भाग इष्यते ॥³²॥

त्र्यहोऽश्वमेधः सङ्ख्यातः कल्पसूत्रेण ब्राह्मणैः ।
चतुष्टोममहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम् ॥³³॥

उक्थ्यं द्वितीयं सङ्ख्यातमतिरात्रं तथोत्तरम् ।
कारितास्तत्र बहवो विहिताः शास्त्रदर्शनात् ॥³⁴॥

ज्योतिष्टोमायुषी चैव अतिरात्रौ च निर्मितौ ।
अभिजिद्विश्वजिघैव अतोऽर्यामो महाक्रतुः ॥³⁵॥

प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥³⁶॥

उद्गात्रे तु तथोदीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता ।
अश्वमेधे महायज्ञे स्वयम्भुविहिते पुरा ॥³⁷॥

क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः ।
ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां क्रतुवर्धनः ॥³⁸॥

ऋत्विजस्त्वब्रुवन्सर्वे राजानं गतकल्मषम् ।
भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति ॥³⁹॥

न भूम्या कार्यमस्माकं न हि शक्ताः स्म पालने ।
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप ।
निष्क्रयं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति ॥⁴⁰॥

गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः ।
दशकोटिं सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम् ॥⁴¹॥

ऋत्विजस्तु ततः सर्वे प्रददुः सहिता वसु ।
ऋष्यशृङ्गाय मुनये वसिष्ठाय च धीमते ॥⁴²॥

ततस्ते न्यायतः कृत्वा प्रविभागं द्विजोत्तमाः ।
सुप्रीतमनसः सर्वे प्रत्यूचुर्मुदिता भृशम् ॥⁴³॥

ततः प्रीतमना राजा प्राप्य यज्ञमनुत्तमम् ।
पापापहं स्वर्नयनं दुस्तरं पार्थिवर्षभैः ॥⁴⁴॥

ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा ।
कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत ॥⁴⁵॥

तथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः ।
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्बहाः ॥⁴⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किञ्चिदिदमुत्तमम् ।
लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत् ॥₁॥

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात् ।
अथर्वशिरसि प्रोक्तेर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ॥₂॥

ततः प्राक्रमदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्र कारणात् ।
जुहाव चाग्नौ तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥₃॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
भागप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि ॥₄॥

ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन्सदसि देवताः ।
अब्रुवँल्लोककर्तारं ब्रह्माणं वचनं महत् ॥₅॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः ।
सर्वान्नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः ॥₆॥

त्वया तस्मै वरो दत्तः प्रीतेन भगवन्पुरा ।
मानयन्तश्च तं नित्यं सर्वं तस्य क्षमामहे ॥₇॥

उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छिन्तान्देष्टि दुर्मतिः ।
शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति ॥₈॥

ऋषीन्यक्षान्सगन्धर्वान्सुरान्ब्राह्मणांस्तथा ।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥₉॥

नैनं सूर्यः प्रतपति पार्श्वे वाति न मारुतः ।

चलोर्मिमाली तं दृष्ट्वा समुद्रोऽपि न कम्पते ॥₁₀॥

तन्मनन्नो भयं तस्माद्राक्षसाद्धोरदर्शनात् ।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि ॥₁₁॥

एवमुक्तः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् ।
हन्तायं विहितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥₁₂॥

तेन गन्धर्वयक्षाणां देवदानवरक्षसाम् ।
अवध्योऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया ॥₁₃॥

नाकीर्तयदवज्ञानात्तद्रक्षो मानुषांस्तदा ।
तस्मात्स मानुषाद्वध्यो मृतुर्नान्योऽस्य विद्यते ॥₁₄॥

एतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा ॥₁₅॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।
ब्रह्मणा च समागम्य तत्र तस्थौ समाहितः ॥₁₆॥

तमब्रुवन्सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ।
त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ॥₁₇॥

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।
तस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥₁₈॥

तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ।
अवध्यं देवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥₁₉॥

स हि देवान्सगन्धर्वान्सिद्धांश्च ऋषिसत्तमान् ।
राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योत्सेकेन बाधते ॥₂₀॥

तदुद्धतं रावणमृद्धतेजसम्
प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरद्विषम् ।
विरावणं साधु तपस्विकण्टकम्
तपस्विनामुद्धर तं भयावहम् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ।
जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः ।
यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥₂॥

एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् ।
मानुषीं तनुमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥₃॥

स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दम ।
येन तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा लोककृल्लोकपूजितः ॥₄॥

सन्तुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः ।
नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥₅॥

अवज्ञाताः पुरा तेन वरदानेन मानवाः ।
तस्मात्तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परन्तप ॥₆॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान् ।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥₇॥

स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन्काले महाद्युतिः ।
अयजत्पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः ॥₈॥

ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् ।
प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ॥₉॥

कृष्णं रक्ताम्बरधरं रक्तास्यं दुन्दुभिस्त्रनम् ।

स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रुप्रवरमूर्धजम् ॥₁₀॥

शुभलक्षणसम्पन्नं दिव्याभरणभूषितम् ।
शैलशृङ्गसमुत्सेधं दत्तशार्दूलविक्रमम् ॥₁₁॥

दिवाकरसमाकारं दीप्तानलशिखोपमम् ।
तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम् ॥₁₂॥

दिव्यपायससम्पूर्णा पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम् ।
प्रगृह्य विपुलां दोभ्यां स्वयं मायामयीमिव ॥₁₃॥

समवेक्ष्याब्रवीद्वाक्यमिदं दशरथं नृपम् ।
प्राजापत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृप ॥₁₄॥

ततः परं तदा राजा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
भगवन्स्त्वागतं तेऽस्तु किमहं करवाणि ते ॥₁₅॥

अथो पुनरिदं वाक्यं प्राजापत्यो नरोऽब्रवीत् ।
राजन्नर्चयता देवानद्य प्राप्तमिदं त्वया ॥₁₆॥

इदं तु नरशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ॥₁₇॥

भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै ।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान्यदर्थं यजसे नृप ॥₁₈॥

तथेति नृपतिः प्रीतः शिरसा प्रतिगृह्यताम् ।
पात्रीं देवान्नसम्पूर्णां देवदत्तां हिरण्मयीम् ॥₁₉॥

अभिवाद्य च तद्भूतमद्भुतं प्रियदर्शनम् ।
मुदा परमया युक्तश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥₂₀॥

ततो दशरथः प्राप्य पायसं देवनिर्मितम् ।

बभूव परमप्रीतः प्राप्य वित्तमिवाधनः ॥₂₁॥

ततस्तदद्भुतप्रख्यं भूतं परमभास्वरम् ।
संवर्तयित्वा तत्कर्म तत्रैवान्तरधीयत ॥₂₂॥

हर्षरश्मिभिरुद्योतं तस्यान्तःपुरमाबभौ ।
शारदस्याभिरामस्य चन्द्रस्येव नभोऽंशुभिः ॥₂₃॥

सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत् ।
पायसं प्रतिगृहीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः ॥₂₄॥

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा ।
अर्धादर्थं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥₂₅॥

कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात् ।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ॥₂₆॥

अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महीपतिः ।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक् ॥₂₇॥

तास्वेतत्पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमाः स्त्रियः ।
सम्मानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम् ॥₁॥

सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः ।
विष्णोः सहायान्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥₂॥

मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे ।
नयज्ञान्बुद्धिसम्पन्नान्विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥₃॥

असंहार्यानुपायज्ञान्दिव्यसंहननान्वितान् ।
सर्वास्त्रगुणसम्पन्नानमृतप्राशनानिव ॥₄॥

अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च ।
यक्षपन्नगकन्यासु ऋष्कविद्याधरीषु च ॥₅॥

किंनरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च ।
सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥₆॥

ते तथोक्ता भगवता तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् ।
जनयामासुरेवं ते पुत्रान्वानररूपिणः ॥₇॥

ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः ॥₈॥

ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः ।
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः ॥₉॥

ते गजाचलसङ्काशा वपुष्मन्तो महाबलाः ।

ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे ॥₁₀॥

यस्य देवस्य यद्रूपं वेषो यश्च पराक्रमः ।
अजायत समस्तेन तस्य तस्य सुतः पृथक् ॥₁₁॥

गोलाङ्गुलीषु चोत्पन्नाः केचित्सम्मतविक्रमाः ।
ऋक्षीषु च तथा जाता वानराः किंनरीषु च ॥₁₂॥

शिलाप्रहरणाः सर्वे सर्वे पादपयोधिनः ।
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ॥₁₃॥

विचालयेयुः शैलेन्द्रान्भेदयेयुः स्थिरान्द्रुमान् ।
क्षोभयेयुश्च वेगेन समुद्रं सरितां पतिम् ॥₁₄॥

दारयेयुः क्षितिं पद्भ्यामाल्लवेयुर्महार्णवम् ।
नभस्तलं विशेष्युश्च गृहीयुरपि तोयदान् ॥₁₅॥

गृहीयुरपि मातङ्गान्मत्तान्प्रव्रजतो वने ।
नर्दमानांश्च नादेन पातयेयुर्विहङ्गमान् ॥₁₆॥

ईदृशानां प्रसूतानि हरीणां कामरूपिणाम् ।
शतं शतसहस्राणि यूथपानां महात्मनाम् ।
बभूवुर्यूथपश्रेष्ठा वीरांश्चाजनयन्हरीन् ॥₁₇॥

अन्ये ऋक्षवतः प्रस्थानुपतस्थुः सहस्रशः ।
अन्ये नानाविधाञ्छैलान्काननानि च भेजिरे ॥₁₈॥

सूर्यपुत्रं च सुग्रीवं शक्रपुत्रं च वालिनम् ।
भ्रातरावुपतस्थुस्ते सर्व एव हरीश्वराः ॥₁₉॥

तैर्मेघवृन्दाचलतुल्यकायैर्-
महाबलैर्वानरयूथपालैः ।
बभूव भूर्भीमशरीररूपैः

समावृता रामसहायहेतोः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिन्हयमेधे महात्मनः ।
प्रतिगृह्य सुरा भागान्प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥₁॥

समाप्तदीक्षानियमः पत्नीगणसमन्वितः ।
प्रविवेश पुरीं राजा सभृत्यबलवाहनः ॥₂॥

यथार्हं पूजितास्तेन राज्ञा वै पृथिवीश्वराः ।
मुदिताः प्रययुर्देशान्प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥₃॥

गतेषु पृथिवीशेषु राजा दशरथः पुनः ।
प्रविवेश पुरीं श्रीमान्पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् ॥₄॥

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः ।
अन्वीयमानो राज्ञाथ सानुयात्रेण धीमता ॥₅॥

कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ।
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमिक्ष्वाकुनन्दनम् ॥₆॥

कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा ।
यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥₇॥

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥₈॥

अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ ।
वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥₉॥

राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक् ।

गुणवन्तोऽनुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः ॥₁₀॥

अतीत्यैकादशाहं तु नाम कर्म तथाकरोत् ।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम् ॥₁₁॥

सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा ।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कृतवांस्तदा ।
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् ॥₁₂॥

तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः ।
बभूव भूयो भूतानां स्वयम्भूरिव सम्मतः ॥₁₃॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ।
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ॥₁₄॥

तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ।
बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥₁₅॥

रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥₁₆॥

लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः ।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ॥₁₇॥

यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ।
तदैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ॥₁₈॥

भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः ।
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः ॥₁₉॥

स चतुर्भिर्महाभागैः पुत्रैर्दशरथः प्रियैः ।
बभूव परमप्रीतो देवैरिव पितामहः ॥₂₀॥

ते यदा ज्ञानसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः ॥₂₁॥

अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति ।
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः ॥₂₂॥

तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः ।
अभ्यागच्छन्महातेजो विश्वामित्रो महामुनिः ॥₂₃॥

स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह ।
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम् ॥₂₄॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजवेश्म प्रदुद्रुवुः ।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे तेन वाक्येन चोदिताः ॥₂₅॥

ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ।
प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा ॥₂₆॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः ।
प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः ॥₂₇॥

स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ।
प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत् ॥₂₈॥

स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् ॥₂₉॥

वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुङ्गवः ।
ऋषींश्च तान्यथा न्यायं महाभागानुवाच ह ॥₃₀॥

ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम् ।
विविशुः पूजितास्तत्र निषेदुश्च यथार्थतः ॥₃₁॥

अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम् ।
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन् ॥³²॥

यथामृतस्य सम्प्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य च ।
प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदये
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने ॥³³॥

कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः ।
पात्रभूतोऽसि मे विप्र दिष्ट्या प्राप्तोऽसि धार्मिक ।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥³⁴॥

पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ।
ब्रह्मर्षिब्रह्मनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ॥³⁵॥

तदद्भुतमिदं विप्र पवित्रं परमं मम ।
शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव सन्दर्शनात्प्रभो ॥³⁶॥

ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति ।
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थपरिवृद्धये ॥³⁷॥

कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि कौशिक ।
कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम ॥³⁸॥

इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यम्
श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम् ।
प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः
परम ऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥³⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥ अष्टादशः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् ।
हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥₁॥

सदृशं राजशार्दूल तवैतद्भुवि नान्यतः ।
महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः ॥₂॥

यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम् ।
कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः ॥₃॥

अहं नियममातिष्ठ सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ ।
तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥₄॥

व्रते मे बहुशस्त्रीर्णे समाप्त्यां राक्षसाविमौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ।
तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम् ॥₅॥

अवधूते तथा भूते तस्मिन्नियमनिश्चये ।
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे ॥₆॥

न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ।
तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते ॥₇॥

स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ।
काकपक्षधरं शूरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ॥₈॥

शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने ॥₉॥

श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ।
त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति ॥₁₀॥

न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथञ्चन ।
न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान् ॥₁₁॥

वीर्योत्सिक्तौ हि तौ पापौ कालपाशवशं गतौ ।
रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः ॥₁₂॥

न च पुत्रकृतं स्नेहं कर्तुमर्हसि पार्थिव ।
अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ ॥₁₃॥

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः ॥₁₄॥

यदि ते धर्मलाभं च यशश्च परमं भुवि ।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ॥₁₅॥

यद्यभ्यनुज्ञां काकुत्स्थ ददते तव मन्त्रिणः ।
वसिष्ठ प्रमुखाः सर्वे ततो रामं विसर्जय ॥₁₆॥

अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजं दातुमर्हसि ।
दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम् ॥₁₇॥

नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघव ।
तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः ॥₁₈॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ।
विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥₁₉॥

इति हृदयमनोविदारणम्
मुनिवचनं तदतीव शुश्रुवान् ।
नरपतिरगमद्भयं महद्-

व्यथितमनाः प्रचचाल चासनात् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल विश्वामित्रस्य भाषितम् ।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥₁॥

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥₂॥

इयमक्षौहिणी पूर्णा यस्याहं पतिरीश्वरः ।
अनया संवृतो गत्वा योधाहं तैर्निशाचरैः ॥₃॥

इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मेऽस्त्रविशारदाः ।
योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि ॥₄॥

अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि ।
यावत्प्राणान्धरिष्यामि तावद्योत्स्ये निशाचरैः ॥₅॥

निर्विघ्ना व्रतचर्या सा भविष्यति सुरक्षिता ।
अहं तत्र गमिष्यामि न राम नेतुमर्हसि ॥₆॥

बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम् ।
न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः ।
न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि ते ध्रुवम् ॥₇॥

विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि ॥₈॥

यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत ।
चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय ॥₉॥

षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ।
दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि ॥₁₀॥

चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ।
ज्येष्ठं धर्मप्रधानं च न रामं नेतुमर्हसि ॥₁₁॥

किं वीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते ।
कथं प्रमाणाः के चैतान्नक्षन्ति मुनिपुङ्गव ॥₁₂॥

कथं च प्रतिकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम् ।
मामकैर्वा बलैर्ब्रह्मन्मया वा कूटयोधिनाम् ॥₁₃॥

सर्वं मे शंस भगवन्कथं तेषां मया रणे ।
स्थातव्यं दुष्टभावानां वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः ॥₁₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ।
पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः ॥₁₅॥

स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ।
महाबलो महावीर्यो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥₁₆॥

श्रूयते हि महावीर्यो रावणो राक्षसाधिपः ।
साक्षाद्वैश्रवणभ्राता पुत्रो विश्रवसो मुनेः ॥₁₇॥

यदा स्वयं न यज्ञस्य विघ्नकर्ता महाबलः ।
तेन सधोदितौ तौ तु राक्षसौ सुमहा बलौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च यज्ञविघ्नं करिष्यतः ॥₁₈॥

इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा ।
न हि शक्तोऽस्मि सङ्ग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः ॥₁₉॥

स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके ।
देवदानवगन्धर्वा यक्षाः पतंग पन्नगाः ॥₂₀॥

न शक्ता रावणं सोढुं किं पुनर्मानवा युधि ।
स हि वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि राक्षसः ॥₂₁॥

तेन चाहं न शक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः ।
सबलो वा मुनिश्रेष्ठ सहितो वा ममात्मजैः ॥₂₂॥

कथमप्यमरप्रख्यं सङ्ग्रामाणामकोविदम् ।
बालं मे तनयं ब्रह्मन्नैव दास्यामि पुत्रकम् ॥₂₃॥

अथ कालोपमौ युद्धे सुतौ सुन्दोपसुन्दयोः ।
यज्ञविघ्नकरौ तौ ते नैव दास्यामि पुत्रकम् ॥₂₄॥

मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ।
तयोरन्यतरेणाहं योद्धा स्यां ससुहृद्गणः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम् ।
समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवच महीपतिम् ॥₁॥

पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि ।
रागवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥₂॥

यदिदं ते क्षमं राजन्ममिष्यामि यथागतम् ।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सबान्धवः ॥₃॥

तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः ।
चचाल वसुधा कृत्स्ना विवेश च भयं सुरान् ॥₄॥

त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः ।
नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥₅॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि ॥₆॥

त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः ।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥₇॥

संश्रुत्यैवं करिष्यामीत्यकुर्वाणस्य राघव ।
इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥₈॥

कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्यन्ति राक्षसाः ।
गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा ॥₉॥

एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः ।

एष बुद्ध्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥₁₀॥

एषोऽस्त्रान्विविधान्वेति त्रैलोके सचराचरे ।
नैनमन्यः पुमान्वेति न च वेत्स्यन्ति केचन ॥₁₁॥

न देवा नर्षयः केचिन्नासुरा न च राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥₁₂॥

सर्वास्त्राणि कृशाश्वस्य पुत्राः परमधार्मिकाः ।
कौशिकाय पुरा दत्ता यदा राज्यं प्रशासति ॥₁₃॥

तेऽपि पुत्राः कृशाश्वस्य प्रजापतिसुतासुताः ।
नकरूपा महावीर्या दीप्तिमन्तो जयावहाः ॥₁₄॥

जया च सुप्रभा चैव दक्षकन्ये सुमध्यमे ।
ते सुवातेऽस्त्रशस्त्राणि शतं परम भास्वरम् ॥₁₅॥

पञ्चाशतं सुताँल्लेभे जया नाम वरान्पुरा ।
वधायासुरसैन्यानाममेयान्कामरूपिणः ॥₁₆॥

सुप्रभाजनयच्चापि पुत्रान्पञ्चाशतं पुनः ।
संहारान्नाम दुर्धर्षान्दुराक्रामान्बलीयसः ॥₁₇॥

तानि चास्त्राणि वेत्येष यथावत्कुशिकात्मजः ।
अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित् ॥₁₈॥

एवं वीर्यो महातेजा विश्वामित्रो महातपाः ।
न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः सुतम् ।
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥₁॥

कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च ।
पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम् ॥₂॥

स पुत्रं मूर्ध्नुपाघ्राय राजा दशरथः प्रियम् ।
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥₃॥

ततो वायुः सुखस्पर्शो विरजस्को ववौ तदा ।
विश्वामित्रगतं रामं दृष्ट्वा राजीवलोचनम् ॥₄॥

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिस्वनः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि ॥₅॥

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः ।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥₆॥

कलापिनौ धनुष्पाणी शोभयानौ दिशो दश ।
विश्वामित्रं महात्मानं त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ।
अनुजग्मतुरक्षुद्रौ पितामहमिवाश्विनौ ॥₇॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युती ।
स्थाणुं देवमिवाचिन्त्यं कुमारविव पावकी ॥₈॥

अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे ।
रामेति मधुरा वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥₉॥

गृहाण वत्स सलिलं मा भूत्कालस्य पर्ययः ।
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा ॥₁₀॥

न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः ।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः ॥₁₁॥

न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ।
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत्सदृशस्तव ॥₁₂॥

न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये ।
नोत्तरे प्रतिपत्तव्यो समो लोके तवानघ ॥₁₃॥

एतद्विद्याद्वये लब्धे भविता नास्ति ते समः ।
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥₁₄॥

क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम ।
बलामतिबलां चैव पठतः पथि राघव ।
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाप्यतुलं भुवि ॥₁₅॥

पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ।
प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि धार्मिक ॥₁₆॥

कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ।
तपसा सम्भृते चैते बहुरूपे भविष्यतः ॥₁₇॥

ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ।
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः ।
विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भूरिविक्रमः ॥₁₈॥

गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजे ।
ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां सुसुखं त्रयः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

प्रभातायां तु शर्वर्या विश्वामित्रो महामुनिः ।
अभ्यभाषत काकुत्स्थं शयानं पर्णसंस्तरे ॥₁॥

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥₂॥

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नृपात्मजौ ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ॥₃॥

कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम् ।
अभिवाद्याभिसंहृष्टौ गमनायोपतस्थतुः ॥₄॥

तौ प्रयाते महावीर्यौ दिव्यं त्रिपथगां नदीम् ।
ददृशाते ततस्तत्र सरय्याः सङ्गमे शुभे ॥₅॥

तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणामुग्रतेजसाम् ।
बहुवर्षसहस्राणि तप्यतां परमं तपः ॥₆॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतौ राघवौ पुण्यमाश्रमम् ।
ऊचतुस्तं महात्मानं विश्वामित्रमिदं वचः ॥₇॥

कस्यायमाश्रमः पुण्यः को न्वस्मिन्वसते पुमान् ।
भगवञ्श्रोतुमिच्छावः परं कौतूहलं हि नौ ॥₈॥

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
अब्रवीच्छ्रूयतां राम यस्यायं पूर्व आश्रमः ॥₉॥

कन्दर्पो मूर्तिमानासीत्काम इत्युच्यते बुधैः ॥₁₀॥

तपस्यन्तमिह स्थाणुं नियमेन समाहितम् ।
कृतोद्वाहं तु देवेशं गच्छन्तं समरुद्रणम् ।
धर्षयामास दुर्मेधा हुङ्कृतश्च महात्मना ॥₁₁॥

दग्धस्य तस्य रौद्रेण चक्षुषा रघुनन्दन ।
व्यशीर्यन्त शरीरात्स्वात्सर्वगात्राणि दुर्मतेः ॥₁₂॥

तस्य गात्रं हतं तत्र निर्दग्धस्य महात्मना ।
अशरीरः कृतः कामः क्रोधाद्देवेश्वरेण ह ॥₁₃॥

अनङ्ग इति विख्यातस्तदा प्रभृति राघव ।
स चाङ्गविषयः श्रीमान्यत्राङ्गं स मुमोच ह ॥₁₄॥

तस्यायमाश्रमः पुण्यस्तस्येमे मुनयः पुरा ।
शिष्या धर्मपरा वीर तेषां पापं न विद्यते ॥₁₅॥

इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन ।
पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम् ॥₁₆॥

तेषां संवदतां तत्र तपो दीर्घेण चक्षुषा ।
विज्ञाय परमप्रीता मुनयो हर्षमागमन् ॥₁₇॥

अर्घ्यं पादं तथातिथ्यं निवेद्यकुशिकात्मजे ।
रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम् ॥₁₈॥

सत्कारं समनुप्राप्य कथाभिरभिरञ्जयन् ।
न्यवसन्सुखं तत्र कामाश्रमपदे तदा ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिन्दमौ ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ ॥₁॥

ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः ।
उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमथाब्रुवन् ॥₂॥

आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥₃॥

विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीन्भिपूज्य च ।
ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरं गमाम् ॥₄॥

अथ रामः सरिन्मध्ये पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ।
वारिणो भिद्यमानस्य किमयं तुमुलो ध्वनिः ॥₅॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा कौतूहल समन्वितम् ।
कथयामास धर्मात्मा तस्य शब्दस्य निश्चयम् ॥₆॥

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं सरः ।
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः ॥₇॥

तस्मात्सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते ।
सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता ॥₈॥

तस्यायमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्तते ।
वारिसङ्क्षोभजो राम प्रणामं नियतः कुरु ॥₉॥

ताभ्यां तु तावुभौ कृत्वा प्रणाममतिधार्मिकौ ।

तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ ॥₁₀॥

स वनं घोरसङ्काशं दृष्ट्वा नृपवरात्मजः ।
अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥₁₁॥

अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणनादितम् ।
भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः ॥₁₂॥

नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्त्वनैः ।
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम् ॥₁₃॥

धवाश्चकर्णककुभैर्बिहतिन्दुकपाटलैः ।
सङ्कीर्णं बदरीभिश्च किं न्विदं दारुणं वनम् ॥₁₄॥

तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ।
श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतद्दारुणं वनम् ॥₁₅॥

एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम ।
मलदाश्च करूपाश्च देवनिर्माणं निर्मितौ ॥₁₆॥

पुरा वृत्रवधे राम मलेन समभिप्लुतम् ।
क्षुधा चैव सहस्राक्षं ब्रह्महत्या यदाविशत् ॥₁₇॥

तमिन्द्रं स्नापयन्देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
कलशैः स्नापयामासुर्मलं चास्य प्रमोचयन् ॥₁₈॥

इह भूम्यां मलं दत्त्वा दत्त्वा कारुषमेव च ।
शरीरजं महेन्द्रस्य ततो हर्षं प्रपेदिरे ॥₁₉॥

निर्मलो निष्करूपश्च शुचिरिन्द्रो यदाभवत् ।
ददौ देशस्य सुप्रीतो वरं प्रभुरनुत्तमम् ॥₂₀॥

इमौ जनपदौ स्थीतौ ख्यातिं लोके गमिष्यतः ।

मलदाश्च करूषाश्च ममाङ्गमलधारिणौ ॥₂₁॥

साधु साध्विति तं देवाः पाकशासनमब्रुवन् ।
देशस्य पूजां तां दृष्ट्वा कृतां शक्रेण धीमता ॥₂₂॥

एतौ जनपदौ स्थितौ दीर्घकालमरिन्दम ।
मलदाश्च करूषाश्च मुदितौ धनधान्यतः ॥₂₃॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षी वै कामरूपिणी ।
बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ह्यभूत् ॥₂₄॥

ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः ।
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्रपराक्रमः ॥₂₅॥

इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव ।
मलदांश्च करूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी ॥₂₆॥

सेयं पन्थानमावार्य वसत्यत्यर्धयोजने ।
अत एव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः ॥₂₇॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम् ।
मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः ॥₂₈॥

न हि कश्चिदिमं देशं शक्रोत्यागन्तुमीदृशम् ।
यक्षिण्या घोरया राम उत्सादितमसह्यया ॥₂₉॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथैतद्वरुणं वनम् ।
यक्ष्या चोत्सादितं सर्वमद्यापि न निवर्तते ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

अथ तस्याप्रमेयस्य मुनेर्वचनमुत्तमम् ।
श्रुत्वा पुरुषशार्दूलः प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥₁॥

अल्पवीर्या यदा यक्षाः श्रूयन्ते मुनिपुङ्गव ।
कथं नागसहस्रस्य धारयत्यबला बलम् ॥₂॥

विश्वामित्रोऽब्रवीद्वाक्यं शृणु येन बलोत्तरा ।
वरदानकृतं वीर्यं धारयत्यबला बलम् ॥₃॥

पूर्वमासीन्महायक्षः सुकेतुर्नाम वीर्यवान् ।
अनपत्यः शुभाचारः स च तेपे महत्तपः ॥₄॥

पितामहस्तु सुप्रीतस्तस्य यक्षपतेस्तदा ।
कन्यारत्नं ददौ राम ताटकां नाम नामतः ॥₅॥

ददौ नागसहस्रस्य बलं चास्याः पितामहः ।
न ह्येव पुत्रं यक्षाय ददौ ब्रह्मा महायशाः ॥₆॥

तां तु जातां विवर्धन्तीं रूपयौवनशालिनीम् ।
जम्भपुत्राय सुन्दाय ददौ भार्या यशस्विनीम् ॥₇॥

कस्यचित्त्वथ कालल्स्य यक्षी पुत्रं व्यजायत ।
मारीचं नाम दुर्धर्षं यः शापाद्राक्षसोऽभवत् ॥₈॥

सुन्दे तु निहते राम अगस्त्यमृषिसत्तमम् ।
ताटका सह पुत्रेण प्रधर्षयितुमिच्छति ॥₉॥

राक्षसत्वं भजस्वेति मारीचं व्याजहार सः ।

अगस्त्यः परमक्रुद्धस्ताटकामपि शप्तवान् ॥₁₀॥

पुरुषादी महायक्षी विरूपा विकृतानना ।
इदं रूपमपहाय दारुणं रूपमस्तु ते ॥₁₁॥

सैषा शापकृतामर्षा ताटका क्रोधमूर्छिता ।
देशमुत्सादयत्येनमगस्त्यचरितं शुभम् ॥₁₂॥

एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम् ।
गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् ॥₁₃॥

न ह्येनां शापसंसृष्टां कश्चिदुत्सहते पुमान् ।
निहन्तुं त्रिषु लोकेषु बामृते रघुनन्दन ॥₁₄॥

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय कर्तव्यं राजसूनुना ॥₁₅॥

राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः ।
अधर्म्या जहि काकुत्श धर्मो ह्यस्या न विद्यते ॥₁₆॥

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप ।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत् ॥₁₇॥

विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी दृढव्रता ।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्तीं काव्यमाता निषूदिता ॥₁₈॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रमहात्मभिः ।
अधर्मनिरता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः ।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः ॥₁॥

पितुर्वचननिर्देशात्पितुर्वचनगौरवात् ।
वचनं कौशिकस्येति कर्तव्यमविशङ्कया ॥₂॥

अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना ।
पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं च तद्वचः ॥₃॥

सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा शासनाद्ब्रह्म वादिनः ।
करिष्यामि न सन्देहस्ताटकावधमुत्तमम् ॥₄॥

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्यास्य सुखाय च ।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥₅॥

एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बद्धा मुष्टिमरिन्दमः ।
ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं दिशः शब्देन पूरयन् ॥₆॥

तेन शब्देन वित्रस्तास्ताटका वनवासिनः ।
ताटका च सुसङ्क्रुद्धा तेन शब्देन मोहिता ॥₇॥

तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्छिता ।
श्रुत्वा चाभ्यद्रवद्वेगाद्यतः शब्दो विनिःसृतः ॥₈॥

तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम् ।
प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत ॥₉॥

पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः ।

भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च ॥₁₀॥

एनां पश्य दुराधर्षा माया बलसमन्विताम् ।
विनिवृत्तां करोम्यद्य हृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥₁₁॥

न ह्येनामुत्सहे हन्तुं स्त्रीस्त्वभावेन रक्षिताम् ।
वीर्यं चास्या गतिं चापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥₁₂॥

एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्छिता ।
उद्यम्य बाहू गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत ॥₁₃॥

तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव ।
शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च ॥₁₄॥

तां हतां भीमसङ्काशां दृष्ट्वा सुरपतिस्तदा ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं सुराश्च समपूजयन् ॥₁₅॥

उवाच परमप्रीतः सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
सुराश्च सर्वे संहृष्टा विश्वामित्रमथाब्रुवन् ॥₁₆॥

मुने कौशिके भद्रं ते सेन्द्राः सर्वे मरुद्गणाः ।
तोषिताः कर्मणानेन स्नेहं दर्शय राघवे ॥₁₇॥

प्रजापतेर्भृशाश्चस्य पुत्रान्सत्यपराक्रमान् ।
तपोबलभृतान्ब्रह्मन्नाघवाय निवेदय ॥₁₈॥

पात्रभूतश्च ते ब्रह्मंस्तवानुगमने धृतः ।
कर्तव्यं च महत्कर्म सुराणां राजसूनुना ॥₁₉॥

एवमुक्त्वा सुराः सर्वे हृष्टा जग्मुर्यथागतम् ।
विश्वामित्रं पूजयित्वा ततः सन्ध्या प्रवर्तते ॥₂₀॥

ततो मुनिवरः प्रीतिस्ताटका वधतोषितः ।

मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत् ॥₂₁॥

इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन ।
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

अथ तां रजनीमुष्य विश्वामिरो महायशः ।
प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुराक्षरम् ॥₁॥

पतितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥₂॥

देवासुरगणान्वापि सगन्धर्वोरगानपि ।
यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि ॥₃॥

तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ।
दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव ॥₄॥

धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च ।
विष्णुचक्रं तथात्युग्रमेन्द्रं चक्रं तथैव च ॥₅॥

वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव ॥₆॥

ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम् ।
गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी उभे ॥₇॥

प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज ।
धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च ॥₈॥

वारुणं पाशमस्त्रं च ददान्यहमनुत्तमम् ।
अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन ॥₉॥

ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा ।

आग्नेयमस्त्र दयितं शिखरं नाम नामतः ॥₁₀॥

वायव्यं प्रथमं नाम ददामि तव राघव ।
अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥₁₁॥

शक्तिं द्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव चानघ ।
कङ्कालं मुसलं घोरं कापालमथ कङ्कणम् ॥₁₂॥

धारयन्त्यसुरा यानि ददाम्येतानि सर्वशः ।
वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः ॥₁₃॥

असिरत्नं महाबाहो ददामि नृवरात्मज ।
गान्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः ॥₁₄॥

प्रस्त्रापनप्रशमने दद्धि सौरं च राघव ।
दर्पणं शोषणं चैव सन्तापनविलापने ॥₁₅॥

मदनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा ।
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः ।
प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः ॥₁₆॥

तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम् ।
संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज ॥₁₇॥

सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मायाधरं परम् ।
घोरं तेजःप्रभं नाम परतेजोऽपकर्षणम् ॥₁₈॥

सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदामनम् ।
दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम् ॥₁₉॥

एतान्नाम महाबाहो कामरूपान्महाबलान् ।
गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज ॥₂₀॥

स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्निवरतस्तदा ।
ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्राममनुत्तमम् ॥₂₁॥

जपतस्तु मुनेस्तस्य विश्वामित्रस्य धीमतः ।
उपतस्थुर्महार्हाणि सर्वाण्यस्त्राणि राघवम् ॥₂₂॥

ऊचुश्च मुदिता रामं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा ।
इमे स्म परमोदार किङ्करास्तव राघव ॥₂₃॥

प्रतिगृह्य च काकुत्स्थः समालभ्य च पाणिना ।
मनसा मे भविष्यध्वमिति तान्यभ्यचोदयत् ॥₂₄॥

ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम् ।
अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनः शुचिः ।
गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥₁॥

गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन्दुराधर्षः सुरैरपि ।
अस्त्राणां ब्रह्मिच्छामि संहारं मुनिपुङ्गव ॥₂॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महामुनिः ।
संहारं व्याजहाराथ धृतिमान्सुव्रतः शुचिः ॥₃॥

सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च ।
प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥₄॥

लक्षाक्षविषमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ ।
दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरो ॥₅॥

पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभसुनाभकौ ।
ज्योतिषं कृशनां चैव नैराश्व्य विमलावुभौ ॥₆॥

योगन्धरहरिद्रौ च दैत्यप्रमथनौ तथा ।
पित्र्यं सौमनसं चैव विधूतमकरावुभौ ॥₇॥

करवीरकरं चैव धनधान्यौ च राघव ।
कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा ॥₈॥

जृम्भकं सर्वनाभं च सन्तानवरणौ तथा ।
भृशश्वतनयान्नाम भास्वरान्कामरूपिणः ॥₉॥

प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ।

दिव्यभास्वरदेहाश्च मूर्तिमन्तः सुखप्रदाः ॥₁₀॥

रामं प्राञ्जलयो भूत्वाब्रुवन्मधुरभाषिणः ।
इमे स्म नरशार्दूल शाधि किं करवाम ते ॥₁₁॥

गम्यतामिति तानाह यथेष्टं रघुनन्दनः ।
मानसाः कार्यकालेषु साहाय्यं मे करिष्यथ ॥₁₂॥

अथ ते राममामन्त्र्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
एवमस्त्विति काकुत्स्थमुक्त्वा जग्मुर्यथागतम् ॥₁₃॥

स च तान्राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम् ।
गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥₁₄॥

किं न्वेतन्मेघसङ्काशं पर्वतस्याविदूरतः ।
वृक्षषण्डमितो भाति परं कौतूहलं हि मे ॥₁₅॥

दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च ।
नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुभाषैरलङ्कितम् ॥₁₆॥

निःसृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात् ।
अनया त्वगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥₁₇॥

सर्वं मे शंस भगवन्कस्याश्रमपदं त्विदम् ।
सम्प्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्ना दुष्टचारिणः ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

अथ तस्याप्रमेयस्य तद्वनं परिपृच्छतः ।
विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥₁॥

एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः ।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः ॥₂॥

एतस्मिन्नेव काले तु राजा वैरोचनिर्बलिः ।
निर्जित्य दैवतगणान्सेन्द्रांश्च समरुद्गणान् ।
कारयामास तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥₃॥

बलेस्तु यजमानस्य देवाः साग्निपुरोगमाः ।
समागम्य स्वयं चैव विष्णुमूचुरिहाश्रमे ॥₄॥

बलिर्वैरोचनिर्विष्णो यजते यज्ञमुत्तमम् ।
असमाप्ते क्रतौ तस्मिन्स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥₅॥

ये चैनमभिवर्तन्ते याचितार इतस्ततः ।
यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति ॥₆॥

स त्वं सुरहितार्थाय मायायोगमुपाश्रितः ।
वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥₇॥

अयं सिद्धाश्रमो नाम प्रसादात्ते भविष्यति ।
सिद्धे कर्मणि देवेश उत्तिष्ठ भगवन्नितः ॥₈॥

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत ।
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥₉॥

त्रीन्क्रमानथ भिक्षिवा प्रतिगृह्य च मानतः ।
आक्रम्य लोकाँल्लोकात्मा सर्वभूतहिते रतः ॥₁₀॥

महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमोजसा ।
त्रैलोक्यं स महातेजाश्चक्रे शक्रवशं पुनः ॥₁₁॥

तेनैष पूर्वमाक्रान्त आश्रमः श्रमनाशनः ।
मयापि भक्त्या तस्यैष वामनस्योपभुज्यते ॥₁₂॥

एतमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः ।
अत्र ते पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥₁₃॥

अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।
तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ॥₁₄॥

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः ।
उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥₁₅॥

यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते ।
तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम् ॥₁₆॥

मुहूर्तमथ विश्रान्तौ राजपुत्रावरिन्दमौ ।
प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ ॥₁₇॥

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्रं ते मुनिपुङ्गव ।
सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव ॥₁₈॥

एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ।
प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः ॥₁₉॥

कुमारावपि तां रात्रिमुषिवा सुसमाहितौ ।
प्रभातकाले चोत्थाय विश्वामित्रमवन्दताम् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिन्दमौ ।
देशे काले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः ॥₁॥

भगवञ्श्रोतुमिच्छावो यस्मिन्काले निशाचरौ ।
संरक्षणीयो तौ ब्रह्मन्नातिवर्तेत तत्क्षणम् ॥₂॥

एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ ब्रूमानौ युयुत्सया ।
सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ ॥₃॥

अद्य प्रभृति षड्रात्रं रक्षतं राघवौ युवाम् ।
दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनिबं च गमिष्यति ॥₄॥

तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ ।
अनिद्रौ षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम् ॥₅॥

उपासां चक्रतुर्वीरौ यत्तौ परमधन्विनौ ।
ररक्षतुर्मुनिवरं विश्वामित्रमरिन्दमौ ॥₆॥

अथ काले गते तस्मिन्पष्ठेऽहनि समागते ।
सौमित्रमब्रवीद्रामो यत्तौ भव समाहितः ॥₇॥

रामस्यैवं ब्रुवाणस्य ब्रूयितस्य युयुत्सया ।
प्रजज्वाल ततो वेदिः सोपाध्यायपुरोहिता ॥₈॥

मन्त्रवच्च यथान्यायं यज्ञोऽसौ सम्प्रवर्तते ।
आकाशे च महाञ्शब्दः प्रादुरासीद्भयानकः ॥₉॥

आवार्य गगनं मेघो यथा प्रावृषि निर्गतः ।

तथा मायां विकुर्वाणौ राक्षसावभ्यधावताम् ॥₁₀॥

मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा ।
आगम्य भीमसङ्काशा रुधिरौघानवासृजन् ॥₁₁॥

तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः ।
लक्ष्मणं त्वभिसम्प्रेक्ष्य रामो वचनमब्रवीत् ॥₁₂॥

पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान्नाक्षसान्पिशिताशनान् ।
मानवास्त्रसमाधूताननिलेन यथाघनान् ॥₁₃॥

मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम् ।
चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघवः ॥₁₄॥

स तेन परमास्त्रेण मानवेन समाहितः ।
सम्पूर्णं योजनशतं क्षिप्तः सागरसम्प्लवे ॥₁₅॥

विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषुबलपीडितम् ।
निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₁₆॥

पश्य लक्ष्मण शीतेषु मानवं धर्मसंहितम् ।
मोहयित्वा नयत्येनं न च प्राणैर्वियुज्यते ॥₁₇॥

इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः ।
राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान्नुधिराशनान् ॥₁₈॥

विगृह्य सुमहद्वास्तमाग्नेयं रघुनन्दनः ।
सुबाहुरसि चिक्षेप स विद्धः प्रापतद्भुवि ॥₁₉॥

शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः ।
राघवः परमोदारो मुनीनां मुदमावहन् ॥₂₀॥

स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः ।

ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥₂₁॥

अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः ।
निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥₂₂॥

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया ।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं राम महायशः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थो रामलक्षणौ ।
ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥₁॥

प्रभातायां तु शर्वर्या कृतपौर्वाहिकक्रियौ ।
विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहितावभिजग्मतुः ॥₂॥

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
ऊचतुर्मधुरोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ ॥₃॥

इमौ स्त्रो मुनिशार्दूल किङ्करो समुपस्थितौ ।
आज्ञापय यथेष्टं वै शासनं करवाव किम् ॥₄॥

एवमुक्ते ततस्ताभ्यां सर्व एव महर्षयः ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन् ॥₅॥

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति ।
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम् ॥₆॥

त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि ।
अद्भुतं च धनूरत्वं तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि ॥₇॥

तद्धि पूर्वं नरश्रेष्ठ दत्तं सदसि दैवतैः ।
अप्रमेयबलं घोरं मखे परमभास्वरम् ॥₈॥

नास्य देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ।
कर्तुमारोपणं शक्ता न कथञ्चन मानुषाः ॥₉॥

धनुषस्तस्य वीर्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः ।

न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः ॥₁₀॥

तद्धनुर्नरशार्दूल मैथिलस्य महात्मनः ।
तत्र द्रक्ष्यसि काकुत्स्थ यज्ञं चाद्भुतदर्शनम् ॥₁₁॥

तद्धि यज्ञफलं तेन मैथिलेनोत्तमं धनुः ।
याचितं नरशार्दूल सुनाभं सर्वदैवतैः ॥₁₂॥

एवमुक्त्वा मुनिवरः प्रस्थानमकरोत्तदा ।
सर्पिसङ्घः सकाकुत्स्थ आमन्त्र्य वनदेवताः ॥₁₃॥

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सिद्धः सिद्धाश्रमादहम् ।
उत्तरे जाह्नवीतीरे हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥₁₄॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥₁₅॥

तं व्रजन्तं मुनिवरमन्वगादनुसारिणाम् ।
शकटी शतमात्रं तु प्रयाणे ब्रह्मवादिनाम् ॥₁₆॥

मृगपक्षिगणाश्चैव सिद्धाश्रमनिवासिनः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं विश्वामित्रं महामुनिम् ॥₁₇॥

ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ।
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः ॥₁₈॥

तेऽस्तं गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य निषेदुरमितौजसः ॥₁₉॥

रामोऽपि सहसौमित्रिर्मुनींस्तानभिपूज्य च ।
अग्रतो निषसादाथ विश्वामित्रस्य धीमतः ॥₂₀॥

अथ रामो महातेजा विश्वामित्रं महामुनिम् ।

पप्रच्छ मुनिशार्दूलं कौतूहलसमन्वितः ॥₂₁॥

भगवन्को न्वयं देशः समृद्धवनशोभितः ।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तच्चतः ॥₂₂॥

चोदितो रामवाक्येन कथयामास सुव्रतः ।
तस्य देशस्य निखिलमृषिमध्ये महातपाः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥एकत्रिंशः सर्गः॥

ब्रह्मयोनिर्महानासीत्कुशो नाम महातपाः ।
वैदर्भ्या जनयामास चतुरः सदृशान्सुतान् ॥₁॥

कुशाम्बं कुशनाभं च आधूर्त रजसं वसुम् ।
दीप्तियुक्तान्महोत्साहान्क्षत्रधर्मचिकीर्षया ।
तानुवाच कुशः पुत्रान्धर्मिष्ठान्सत्यवादिनः ॥₂॥

कुशस्य वचनं श्रुत्वा चत्वारो लोकसम्मताः ।
निवेशं चक्रिरे सर्वे पुराणां नृवरास्तदा ॥₃॥

कुशाम्बस्तु महातेजाः कौशाम्बीमकरोत्पुरीम् ।
कुशनाभस्तु धर्मात्मा परं चक्रे महोदयम् ॥₄॥

आधूर्तरजसो राम धर्मारण्यं महीपतिः ।
चक्रे पुरवरं राजा वसुश्चक्रे गिरिव्रजम् ॥₅॥

एषा वसुमती राम वसोस्तस्य महात्मनः ।
एते शैलवराः पञ्च प्रकाशन्ते समन्ततः ॥₆॥

सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुताययौ ।
पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते ॥₇॥

सैषा हि मागधी राम वसोस्तस्य महात्मनः ।
पूर्वाभिचरिता राम सुक्षेत्रा सस्यमालिनी ॥₈॥

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम् ।
जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥₉॥

तास्तु यौवनशालिन्यो रूपवत्यः स्खलङ्कृताः ।
उद्यानभूमिमागम्य प्रावृषीव शतहृदाः ॥¹⁰॥

गायन्त्यो नृत्यमानाश्च वादयन्त्यश्च राघव ।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूषिताः ॥¹¹॥

अथ ताश्चारुसर्वाङ्गो रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
उद्यानभूमिमागम्य तारा इव घनान्तरे ॥¹²॥

ताः सर्वगुणसम्पन्ना रूपयौवनसंयुताः ।
दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत् ॥¹³॥

अहं वः कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ ।
मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ ॥¹⁴॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वायोरक्लिष्टकर्मणः ।
अपहास्य ततो वाक्यं कन्याशतमथाब्रवीत् ॥¹⁵॥

अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां त्वं सुरोत्तम ।
प्रभावज्ञाश्च ते सर्वाः किमस्मानवमन्यसे ॥¹⁶॥

कुशनाभसुताः सर्वाः समर्थास्त्वां सुरोत्तम ।
स्थानाच्यावयितुं देवं रक्षामस्तु तपो वयम् ॥¹⁷॥

मा भूत्स कालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनम् ।
नावमन्यस्व धर्मेण स्वयंवरमुपास्महे ॥¹⁸॥

पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं हि सः ।
यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ॥¹⁹॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परमकोपनः ।
प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान्प्रभुः ॥²⁰॥

ताः कन्या वायुना भग्ना विविशुर्नृपतेर्गृहम् ।
दृष्ट्वा भग्नास्तदा राजा सम्भ्रान्त इदमब्रवीत् ॥₂₁ ॥

किमिदं कथ्यतां पुत्र्यः को धर्ममवमन्यते ।
कुञ्जाः केन कृताः सर्वा वेष्टन्त्यो नाभिभाषथ ॥₂₂ ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुशनाभस्य धीमतः ।
शिरोभिश्चरणौ स्पृष्ट्वा कन्याशतमभाषत ॥₁॥

वायुः सर्वात्मको राजन्प्रधर्षयितुमिच्छति ।
अशुभं मार्गमास्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते ॥₂॥

पितृमत्यः स्म भद्रं ते स्वच्छन्दे न वयं स्थिताः ।
पितरं नो वृणीष्व त्वं यदि नो दास्यते तव ॥₃॥

तेन पापानुबन्धेन वचनं न प्रतीच्छता ।
एवं ब्रुवन्त्यः सर्वाः स्म वायुना निहता भृषम् ॥₄॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ।
प्रत्युवाच महातेजाः कन्याशतमनुत्तमम् ॥₅॥

क्षान्तं क्षमावतां पुत्र्यः कर्तव्यं सुमहत्कृतम् ।
ऐकमत्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम ॥₆॥

अलङ्कारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा ।
दुष्करं तच्च वः क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः ॥₇॥

यादृशीर्वः क्षमा पुत्र्यः सर्वासामविशेषतः ।
क्षमा दानं क्षमा यज्ञः क्षमा सत्यं च पुत्रिकाः ॥₈॥

क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत् ।
विसृज्य कन्याः काकुत्स्थ राजा त्रिदशविक्रमः ॥₉॥

मन्त्रज्ञो मन्त्रयामास प्रदानं सह मन्त्रिभिः ।

देशे काले प्रदानस्य सदृशे प्रतिपादनम् ॥₁₀॥

एतस्मिन्नेव काले तु चूली नाम महामुनिः ।
ऊर्ध्वरेताः शुभाचारो ब्राह्मं तप उपागमत् ॥₁₁॥

तप्यन्तं तमृषिं तत्र गन्धर्वी पर्युपासते ।
सोमदा नाम भद्रं ते ऊर्मिला तनया तदा ॥₁₂॥

सा च तं प्रणता भूत्वा शुश्रूषणपरायणा ।
उवास काले धर्मिष्ठा तस्यास्तुष्टोऽभवद्गुरुः ॥₁₃॥

स च तां कालयोगेन प्रोवाच रघुनन्दन ।
परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते किं करोमि तव प्रियम् ॥₁₄॥

परितुष्टं मुनिं ज्ञात्वा गन्धर्वी मधुरस्वरम् ।
उवाच परमप्रीता वाक्यज्ञा वाक्यकोविदम् ॥₁₅॥

लक्ष्म्या समुदितो ब्राह्म्या ब्रह्मभूतो महातपाः ।
ब्राह्मेण तपसा युक्तं पुत्रमिच्छामि धार्मिकम् ॥₁₆॥

अपतिश्चास्मि भद्रं ते भार्या चास्मि न कस्यचित् ।
ब्राह्मेणोपगतायाश्च दातुमर्हसि मे सुतम् ॥₁₇॥

तस्याः प्रसन्नो ब्रह्मर्षिर्ददौ पुत्रमनुत्तमम् ।
ब्रह्मदत्त इति ख्यातं मानसं चूलिनः सुतम् ॥₁₈॥

स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत्तदा ।
काम्पित्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम् ॥₁₉॥

स बुद्धिं कृतवान्राजा कुशनाभः सुधार्मिकः ।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा ॥₂₀॥

तमाहूय महातेजा ब्रह्मदत्तं महीपतिः ।

ददौ कन्याशतं राजा सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥₂₁॥

यथाक्रमं ततः पाणिं जग्राह रघुनन्दन ।
ब्रह्मदत्तो मही पालस्तासां देवपतिर्यथा ॥₂₂॥

स्पृष्टमात्रे ततः पाणौ विकुब्जा विगतज्वराः ।
युक्ताः परमया लक्ष्म्या बभूवुः कन्याशतं तदा ॥₂₃॥

स दृष्ट्वा वायुना मुक्ताः कुशनाभो महीपतिः ।
बभूव परमप्रीतो हर्षं लेभे पुनः पुनः ॥₂₄॥

कृतोद्वाहं तु राजानं ब्रह्मदत्तं महीपतिः ।
सदारं प्रेषयामास सोपाध्यायं गणं तदा ॥₂₅॥

सोमदापि सुसंहृष्टा पुत्रस्य सदृशीं क्रियाम् ।
यथान्यायं च गन्धर्वीं स्नुषास्ताः प्रत्यनन्दत ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

कृतोद्वाहे गते तस्मिन्ब्रह्मदत्ते च राघव ।
अपुत्रः पुत्रलाभाय पौत्रीमिष्टिमकल्पयत् ॥₁॥

इष्ट्यां तु वर्तमानायां कुशनाभं महीपतिम् ।
उवाच परमप्रीतः कुशो ब्रह्मसुतस्तदा ॥₂॥

पुत्रस्ते सदृशः पुत्र भविष्यति सुधार्मिकः ।
गाधिं प्राप्स्यसि तेन त्वं कीर्तिं लोके च शाश्वतीम् ॥₃॥

एवमुक्त्वा कुशो राम कुशनाभं महीपतिम् ।
जगामाकाशमाविश्य ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥₄॥

कस्यचिच्चथ कालस्य कुशनाभस्य धीमतः ।
जज्ञे परमधर्मिष्ठो गाधिरित्येव नामतः ॥₅॥

स पिता मम काकुत्स्थ गाधिः परमधार्मिकः ।
कुशवंशप्रसूतोऽस्मि कौशिको रघुनन्दन ॥₆॥

पूर्वजा भगिनी चापि मम राघव सुव्रता ।
नाम्ना सत्यवती नाम ऋचीके प्रतिपादिता ॥₇॥

सशरीरा गता स्वर्गं भर्तारमनुवर्तिनी ।
कौशिकी परमोदारा सा प्रवृत्ता महानदी ॥₈॥

दिव्या पुण्योदका रम्या हिमवन्तमुपाश्रिता ।
लोकस्य हितकामार्थं प्रवृत्ता भगिनी मम ॥₉॥

ततोऽहं हिमवत्पार्श्वे वसामि नियतः सुखम् ।

भगिन्याः स्नेहसंयुक्तः कौशिक्या रघुनन्दन ॥₁₀॥

सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मे प्रतिष्ठिता ।
पतिव्रता महाभागा कौशिकी सरितां वरा ॥₁₁॥

अहं हि नियमाद्राम हिवा तां समुपागतः ।
सिद्धाश्रममनुप्राप्य सिद्धोऽस्मि तव तेजसा ॥₁₂॥

एषा राम ममोत्पत्तिः स्वस्य वंशस्य कीर्तिता ।
देशस्य च महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥₁₃॥

गतोऽर्धरात्रः काकुत्स्थ कथाः कथयतो मम ।
निद्रामभ्येहि भद्रं ते मा भूद्विघ्नोऽध्वनीह नः ॥₁₄॥

निष्पन्दास्तरवः सर्वे निलीना मृगपक्षिणः ।
नैशेन तमसा व्याप्ता दिशश्च रघुनन्दन ॥₁₅॥

शनैर्वियुज्यते सन्ध्या नभो नेत्रैरिवावृतम् ।
नक्षत्रतारागहनं ज्योतिर्भिरवभासते ॥₁₆॥

उत्तिष्ठति च शीतांशुः शशी लोकतमोनुदः ।
ह्लादयन्प्राणिनां लोके मनांसि प्रभया विभो ॥₁₇॥

नैशानि सर्वभूतानि प्रचरन्ति ततस्ततः ।
यक्षराक्षससङ्घाश्च रौद्राश्च पिशिताशनाः ॥₁₈॥

एवमुक्त्वा महातेजा विरराम महामुनिः ।
साधु साध्विति तं सर्वे मुनयो ह्यभ्यपूजयन् ॥₁₉॥

रामोऽपि सह सौमित्रिः किञ्चिदागतविस्मयः ।
प्रशस्य मुनिशार्दूलं निद्रां समुपसेवते ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः ।
निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥₁॥

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय ॥₂॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम् ।
गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥₃॥

अयं शोणः शुभजलो गाधः पुलिनमण्डितः ।
कतरेण पथा ब्रह्मन्सन्तरिष्यामहे वयम् ॥₄॥

एवमुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ।
एष पन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः ॥₅॥

ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा ।
जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम् ॥₆॥

तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारससेविताम् ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे मुनयः सहराघवाः ।
तस्यास्तीरे ततश्चक्रुस्ते आवासपरिग्रहम् ॥₇॥

ततः स्नात्वा यथान्यायं सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
हुत्वा चैवाग्निहोत्राणि प्राश्य चामृतवद्भविः ॥₈॥

विविशुर्जाह्नवीतीरे शुचौ मुदितमानसाः ।
विश्वामित्रं महात्मानं परिवार्य समन्ततः ॥₉॥

सम्प्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ।
भगवञ्श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ।
त्रैलोक्यं कथमाक्रम्य गता नदनदीपतिम् ॥¹⁰॥

चोदितो राम वाक्येन विश्वामित्रो महामुनिः ।
वृद्धिं जन्म च गङ्गाया वक्तुमेवोपचक्रमे ॥¹¹॥

शैलेन्द्रो हिमवान्नाम धातूनामाकरो महान् ।
तस्य कन्या द्वयं राम रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥¹²॥

या मेरुदुहिता राम तयोर्माता सुमध्यमा ।
नाम्ना मेना मनोज्ञा वै पत्नी हिमवतः प्रिया ॥¹³॥

तस्यां गङ्गेयमभवञ्ज्येष्ठा हिमवतः सुता ।
उमा नाम द्वितीयाभूत्कन्या तस्यैव राघव ॥¹⁴॥

अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवतार्थचिकीर्षया ।
शैलेन्द्रं वरयामासुर्गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ॥¹⁵॥

ददौ धर्मेण हिमवांस्तनयां लोकपावनीम् ।
स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥¹⁶॥

प्रतिगृह्य त्रिलोकार्थं त्रिलोकहितकारिणः ।
गङ्गामादाय तेऽगच्छन्कृतार्थेनान्तरात्मना ॥¹⁷॥

या चान्या शैलदुहिता कन्यासीद्रघुनन्दन ।
उग्रं सा व्रतमास्थाय तपस्तेपे तपोधना ॥¹⁸॥

उग्रेण तपसा युक्तां ददौ शैलवरः सुताम् ।
रुद्रायाप्रतिरूपाय उमां लोकनमस्कृताम् ॥¹⁹॥

एते ते शैल राजस्य सुते लोकनमस्कृते ।
गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा उमा देवी च राघव ॥²⁰॥

एतत्ते धर्ममाख्यातं यथा त्रिपथगा नदी ।

खं गता प्रथमं तात गतिं गतिमतां वर ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

उक्त वाक्ये मुनौ तस्मिन्नुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
प्रतिनन्द्य कथां वीरावूचतुर्मुनिपुङ्गवम् ॥₁॥

धर्मयुक्तमिदं ब्रह्मन्कथितं परमं त्वया ।
दुहितुः शैलराजस्य ज्येष्ठाय वक्तुमर्हसि ॥₂॥

विस्तरं विस्तरज्ञोऽसि दिव्यमानुषसम्भवम् ।
त्रीन्यथो हेतुना केन पावयेल्लोकपावनी ॥₃॥

कथं गङ्गां त्रिपथगा विश्रुता सरिदुत्तमा ।
त्रिषु लोकेषु धर्मज्ञ कर्मभिः कैः समन्विता ॥₄॥

तथा ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रस्तपोधनः ।
निखिलेन कथां सर्वामृषिमध्ये न्यवेदयत् ॥₅॥

पुरा राम कृतोद्वाहः शितिकण्ठो महातपाः ।
दृष्ट्वा च स्पृहया देवीं मैथुनायोपचक्रमे ॥₆॥

शितिकण्ठस्य देवस्य दिव्यं वर्षशतं गतम् ।
न चापि तनयो राम तस्यामासीत्परन्तप ॥₇॥

ततो देवाः समुद्विग्नाः पितामहपुरोगमाः ।
यदिहोत्पद्यते भूतं कस्तत्प्रतिसहिष्यते ॥₈॥

अभिगम्य सुराः सर्वे प्रणिपत्येदमब्रुवन् ।
देवदेव महादेव लोकस्यास्य हिते रत ।
सुराणां प्रणिपातेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₉॥

न लोका धारयिष्यन्ति तव तेजः सुरोत्तम ।
ब्राह्मेण तपसा युक्तो देव्या सह तपश्चर ॥¹⁰॥

त्रैलोक्यहितकामार्थं तेजस्तेजसि धारय ।
रक्ष सर्वानिमाँल्लोकान्नालोकं कर्तुमर्हसि ॥¹¹॥

देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकमहेश्वरः ।
बाढमित्यब्रवीत्सर्वान्पुनश्चेदमुवाच ह ॥¹²॥

धारयिष्याम्यहं तेजस्तेजस्येव सहोमया ।
त्रिदशाः पृथिवी चैव निर्वाणमधिगच्छतु ॥¹³॥

यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजो ह्यनुत्तमम् ।
धारयिष्यति कस्तन्मे ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥¹⁴॥

एवमुक्तास्ततो देवाः प्रत्यूचुर्वृषभध्वजम् ।
यत्तेजः क्षुभितं ह्येतत्तद्धरा धारयिष्यति ॥¹⁵॥

एवमुक्तः सुरपतिः प्रमुमोच महीतले ।
तेजसा पृथिवी येन व्याप्ता सगिरिकानना ॥¹⁶॥

ततो देवाः पुनरिदमूचुश्चाथ हुताशनम् ।
प्रविश त्वं महातेजो रौद्रं वायुसमन्वितः ॥¹⁷॥

तदग्निना पुनर्व्याप्तं संजातः श्वेतपर्वतः ।
दिव्यं शरवणं चैव पावकादित्यसंनिभम् ।
यत्र जातो महातेजाः कार्तिकेयोऽग्निसम्भवः ॥¹⁸॥

अथोमां च शिवं चैव देवाः सर्पि गणास्तदा ।
पूजयामासुरत्यर्थं सुप्रीतमनसस्ततः ॥¹⁹॥

अथ शैल सुता राम त्रिदशानिदमब्रवीत् ।
समन्युरशपत्सर्वान्क्रोधसंरक्तलोचना ॥²⁰॥

यस्मान्निवारिता चैव सङ्गता पुत्रकाम्यया ।
अपत्यं स्त्रेषु दारेषु नोत्पादयितुमर्हथ ।
अद्य प्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः ॥₂₁॥

एवमुक्त्वा सुरान्सर्वाञ्छाप पृथिवीमपि ।
अवने नैकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि ॥₂₂॥

न च पुत्रकृतां प्रीतिं मत्क्रोधकलुषी कृता ।
प्राप्स्यसि त्वं सुदुर्मेधे मम पुत्रमनिच्छती ॥₂₃॥

तान्सर्वान्ब्रीडितान्दृष्ट्वा सुरान्सुरपतिस्तदा ।
गमनायोपचक्राम दिशं वरुणपालिताम् ॥₂₄॥

स गत्वा तप आतिष्ठत्पार्श्वे तस्योत्तरे गिरेः ।
हिमवत्प्रभवे शृङ्गे सह देव्या महेश्वरः ॥₂₅॥

एष ते विस्तरो राम शैलपुत्र्या निवेदितः ।
गङ्गायाः प्रभवं चैव शृणु मे सहलक्ष्मणः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

तप्यमाने तपो देवे देवाः सर्षिगणाः पुरा ।
सेनापतिमभीप्सन्तः पितामहमुपागमन् ॥₁॥

ततोऽब्रुवन्सुराः सर्वे भगवन्तं पितामहम् ।
प्रणिपत्य शुभं वाक्यं सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥₂॥

यो नः सेनापतिर्देव दत्तो भगवता पुरा ।
स तपः परमास्थाय तप्यते स्म सहोमया ॥₃॥

यदत्रानन्तरं कार्यं लोकानां हितकाम्यया ।
संविधत्स्व विधानज्ञ त्वं हि नः परमा गतिः ॥₄॥

देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ।
सान्त्वयन्मधुरैर्वाक्यैस्त्रिदशानिदमब्रवीत् ॥₅॥

शैलपुत्र्या यदुक्तं तन्न प्रजास्यथ पत्निषु ।
तस्या वचनमक्लिष्टं सत्यमेव न संशयः ॥₆॥

द्वयमाकाशगा गङ्गा यस्यां पुत्रं हुताशनः ।
जनयिष्यति देवानां सेनापतिमरिन्दमम् ॥₇॥

ज्येष्ठा शैलेन्द्रदुहिता मानयिष्यति तं सुतम् ।
उमायास्तद्वहुमतं भविष्यति न संशयः ॥₈॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतार्था रघुनन्दन ।
प्रणिपत्य सुराः सर्वे पितामहमपूजयन् ॥₉॥

ते गत्वा पर्वतं राम कैलासं धातुमण्डितम् ।

अग्निं नियोजयामासुः पुत्रार्थं सर्वदेवताः ॥₁₀॥

देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन ।
शैलपुत्र्यां महातेजो गङ्गायां तेज उत्सृज ॥₁₁॥

देवतानां प्रतिज्ञाय गङ्गामभ्येत्य पावकः ।
गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रियम् ॥₁₂॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्यं रूपमधारयत् ।
स तस्या महिमां दृष्ट्वा समन्तादवकीर्यत ॥₁₃॥

समन्ततस्तदा देवीमभ्यषिञ्चत पावकः ।
सर्वस्रोतांसि पूर्णानि गङ्गाया रघुनन्दन ॥₁₄॥

तमुवाच ततो गङ्गा सर्वदेवपुरोहितम् ।
अशक्ता धारणे देव तव तेजः समुद्धतम् ।
दह्यमानाग्निना तेन सम्प्रव्यथितचेतना ॥₁₅॥

अथाब्रवीदिदं गङ्गां सर्वदेवहुताशनः ।
इह हैमवते पादे गर्भोऽयं संनिवेश्यताम् ॥₁₆॥

श्रुत्वा ब्रह्मिवचो गङ्गा तं गर्भमतिभास्वरम् ।
उत्ससर्ज महातेजाः स्रोतोभ्यो हि तदानघ ॥₁₇॥

यदस्या निर्गतं तस्मात्तप्तजाम्बूनदप्रभम् ।
काञ्चनं धरणीं प्राप्तं हिरण्यममलं शुभम् ॥₁₈॥

ताम्रं कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत ।
मलं तस्याभवत्तत्र त्रपुसीसकमेव च ॥₁₉॥

तदेतद्धरणीं प्राप्य नानाधातुरवर्धत ॥₂₀॥

निक्षिप्तमात्रे गर्भे तु तेजोभिरभिरञ्जितम् ।
सर्वं पर्वतसंनद्धं सौवर्णमभवद्वनम् ॥₂₁॥

जातरूपमिति ख्यातं तदा प्रभृति राघव ।
सुवर्णं पुरुषव्याघ्रं हुताशनसमप्रभम् ॥²²॥

तं कुमारं ततो जातं सेन्द्राः सहमरुद्गणाः ।
क्षीरसम्भावनाथाय कृत्तिकाः समयोजयन् ॥²³॥

ताः क्षीरं जातमात्रस्य कृत्वा समयमुत्तमम् ।
ददुः पुत्रोऽयमस्माकं सर्वासामिति निश्चिताः ॥²⁴॥

ततस्तु देवताः सर्वाः कार्तिकेय इति ब्रुवन् ।
पुत्रस्त्रैलोक्यं विख्यातो भविष्यति न संशयः ॥²⁵॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा स्कन्नं गर्भपरिस्रवे ।
स्नापयन्परया लक्ष्म्या दीप्यमानमिवानलम् ॥²⁶॥

स्कन्द इत्यब्रुवन्देवाः स्कन्नं गर्भपरिस्रवात् ।
कार्तिकेयं महाभागं काकुत्स्थज्वलनोपमम् ॥²⁷॥

प्रादुर्भूतं ततः क्षीरं कृत्तिकानामनुत्तमम् ।
षण्णां षडाननो भूत्वा जग्राह स्तनजं पयः ॥²⁸॥

गृहीत्वा क्षीरमेकाह्ना सुकुमार वपुस्तदा ।
अजयत्स्वेन वीर्येण दैत्यसैन्यगणान्विभुः ॥²⁹॥

सुरसेनागणपतिं ततस्तममलद्युतिम् ।
अभ्यषिञ्चन्सुरगणाः समेत्याग्निपुरोगमाः ॥³⁰॥

एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया ।
कुमारसम्भवश्चैव धन्यः पुण्यस्तथैव च ॥³¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

तां कथां कौशिको रामे निवेद्य मधुराक्षरम् ।
पुनरेवापरं वाक्यं काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥₁॥

अयोध्याधिपतिः शूरः पूर्वमासीन्नराधिपः ।
सगरो नाम धर्मात्मा प्रजाकामः स चाप्रजः ॥₂॥

वैदर्भदुहिता राम केशिनी नाम नामतः ।
ज्येष्ठा सगरपत्नी सा धर्मिष्ठा सत्यवादिनी ॥₃॥

अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
द्वितीया सगरस्यासीत्पत्नी सुमतिसंज्ञिता ॥₄॥

ताभ्यां सह तदा राजा पत्नीभ्यां तप्तवांस्तपः ।
हिमवन्तं समासाद्य भृगुप्रस्रवणे गिरौ ॥₅॥

अथ वर्षं शते पूर्णे तपसाराधितो मुनिः ।
सगराय वरं प्रादाद्भृगुः सत्यवतां वरः ॥₆॥

अपत्यलाभः सुमहान्भविष्यति तवानघ ।
कीर्तिं चाप्रतिमां लोके प्राप्स्यसे पुरुषर्षभ ॥₇॥

एका जनयिता तात पुत्रं वंशकरं तव ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि अपरा जनयिष्यति ॥₈॥

भाषमाणं नरव्याघ्रं राजपत्न्यौ प्रसाद्य तम् ।
ऊचतुः परमप्रीते कृताञ्जलिपुटे तदा ॥₉॥

एकः कस्याः सुतो ब्रह्मन्का बहूञ्जनयिष्यति ।

श्रोतुमिच्छावहे ब्रह्मन्सत्यमस्तु वचस्तव ॥₁₀॥

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा भृगुः परम धार्मिकः ।
उवाच परमां वाणीं स्वच्छन्दोऽत्र विधीयताम् ॥₁₁॥

एको वंशकरो वास्तु बहवो वा महाबलाः ।
कीर्तिमन्तो महोत्साहाः का वा कं वरमिच्छति ॥₁₂॥

मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी रघुनन्दन ।
पुत्रं वंशकरं राम जग्राह नृपसंनिधौ ॥₁₃॥

षष्टिं पुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तदा ।
महोत्साहान्कीर्तिमतो जग्राह सुमतिः सुतान् ॥₁₄॥

प्रदक्षिणमृषिं कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ।
जगाम स्वपुरं राजा सभार्या रघुनन्दन ॥₁₅॥

अथ काले गते तस्मिञ्ज्येष्ठा पुत्रं व्यजायत ।
असमञ्ज इति ख्यातं केशिनी सगरात्मजम् ॥₁₆॥

सुमतिस्तु नरव्याघ्र गर्भतुम्बं व्यजायत ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि तुम्बभेदाद्विनिःसृताः ॥₁₇॥

घृतपूर्णेष्णु कुम्भेषु धात्र्यस्तान्समवर्धयन् ।
कालेन महता सर्वे यौवनं प्रतिपेदिरे ॥₁₈॥

अथ दीर्घेण कालेन रूपयौवनशालिनः ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्याभवंस्तदा ॥₁₉॥

स च ज्येष्ठो नरश्रेष्ठ सगरस्यात्मसम्भवः ।
बालान्गृहीत्वा तु जले सरय्या रघुनन्दन ।
प्रक्षिप्य प्रहसन्नित्यं मञ्जुतस्तान्निरीक्ष्य वै ॥₂₀॥

पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरात् ॥₂₁॥

तस्य पुत्रोऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ।
सम्मतः सर्वलोकस्य सर्वस्यापि प्रियंवदः ॥₂₂॥

ततः कालेन महता मतिः समभिजायत ।
सगरस्य नरश्रेष्ठ यजेयमिति निश्चिता ॥₂₃॥

स कृत्वा निश्चयं राजा सोपाध्यायगणस्तदा ।
यज्ञकर्मणि वेदज्ञो यष्टुं समुपचक्रमे ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा कथान्ते रघुनन्दन ।
उवाच परमप्रीतो मुनिं दीप्तमिवानलम् ॥₁॥

श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते विस्तरेण कथामिमाम् ।
पूर्वको मे कथं ब्रह्मन्यज्ञं वै समुपाहरत् ॥₂॥

विश्वामित्रस्तु काकुत्स्थमुवाच प्रहसन्निव ।
श्रूयतां विस्तरो राम सगरस्य महात्मनः ॥₃॥

शङ्करश्चशुरो नाम हिमवानचलोत्तमः ।
विन्ध्यपर्वतमासाद्य निरीक्षेते परस्परम् ॥₄॥

तयोर्मध्ये प्रवृत्तोऽभूद्यज्ञः स पुरुषोत्तम ।
स हि देशो नरव्याघ्र प्रशस्तो यज्ञकर्मणि ॥₅॥

तस्याश्वचर्या काकुत्स्थ दृढधन्वा महारथः ।
अंशुमानकरोत्तात सगरस्य मते स्थितः ॥₆॥

तस्य पर्वणि तं यज्ञं यजमानस्य वासवः ।
राक्षसीं तनुमास्थाय यज्ञियाश्वमपाहरत् ॥₇॥

ह्रियमाणे तु काकुत्स्थ तस्मिन्नश्चे महात्मनः ।
उपाध्याय गणाः सर्वे यजमानमथाब्रुवन् ॥₈॥

अयं पर्वणि वेगेन यज्ञियाश्वोऽपनीयते ।
हर्तारं जहि काकुत्स्थ हयश्चैवोपनीयताम् ॥₉॥

यज्ञच्छिद्रं भवत्येतत्सर्वेषामशिवाय नः ।

तत्तथा क्रियतां राजन्यथाछिद्रः क्रतुर्भवेत् ॥₁₀॥

उपाध्याय वचः श्रुत्वा तस्मिन्सदसि पार्थिवः ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁₁॥

गतिं पुत्रा न पश्यामि रक्षसां पुरुषर्षभाः ।
मन्त्रपूतैर्महाभागैरास्थितो हि महाक्रतुः ॥₁₂॥

तद्रच्छत विचिन्वध्वं पुत्रका भद्रमस्तु वः ।
समुद्रमालिनीं सर्वां पृथिवीमनुगच्छत ॥₁₃॥

एकैकं योजनं पुत्रा विस्तारमभिगच्छत ॥₁₄॥

यावत्तुरगसन्दर्शस्तावत्खनत मेदिनीम् ।
तमेव हयहर्तारं मार्गमाणा ममाज्ञया ॥₁₅॥

दीक्षितः पौत्रसहितः सोपाध्यायगणो ह्यहम् ।
इह स्थास्यामि भद्रं वो यावत्तुरगदर्शनम् ॥₁₆॥

इत्युक्त्वा हृष्टमनसो राजपुत्रा महाबलाः ।
जग्मुर्महीतलं राम पितुर्वचनयन्त्रिताः ॥₁₇॥

योजनायामविस्तारमेकैको धरणीतलम् ।
बिभिदुः पुरुषव्याघ्र वज्रस्पर्शसमैर्भुजैः ॥₁₈॥

शूलैरशनिकल्पैश्च हलैश्चापि सुदारुणैः ।
भिद्यमाना वसुमती ननाद रघुनन्दन ॥₁₉॥

नागानां वध्यमानानामसुराणां च राघव ।
राक्षसानां च दुर्धर्षः सत्त्वानां निनदोऽभवत् ॥₂₀॥

योजनानां सहस्राणि षष्टिं तु रघुनन्दन ।
बिभिदुर्धरणीं वीरा रसातलमनुत्तमम् ॥₂₁॥

एवं पर्वतसम्बाधं जम्बूद्वीपं नृपात्मजाः ।
खनन्तो नृपशार्दूल सर्वतः परिचक्रमुः ॥₂₂॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सासुराः सहपन्नगाः ।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे पितामहमुपागमन् ॥₂₃॥

ते प्रसाद्य महात्मानं विषण्णवदनास्तदा ।
ऊचुः परमसन्तस्ताः पितामहमिदं वचः ॥₂₄॥

भगवन्पृथिवी सर्वा खन्यते सगरात्मजैः ।
बहवश्च महात्मानो वध्यन्ते जलचारिणः ॥₂₅॥

अयं यज्ञहनोऽस्माकमनेनाश्वोऽपनीयते ।
इति ते सर्वभूतानि निघ्नन्ति सगरात्मजः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

देवतानां वचः श्रुत्वा भगवान्वै पितामहः ।
प्रत्युवाच सुसन्तस्तान्कृतान्तबलमोहितान् ॥₁॥

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः ।
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम् ॥₂॥

पृथिव्याश्चापि निर्भेदो दृष्ट एव सनातनः ।
सगरस्य च पुत्राणां विनाशोऽदीर्घजीविनाम् ॥₃॥

पितामहवचः श्रुत्वा त्रयस्त्रिंशदरिन्दमः ।
देवाः परमसंहृष्टाः पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥₄॥

सगरस्य च पुत्राणां प्रादुरासीन्महात्मनाम् ।
पृथिव्यां भिद्यमानायां निर्घात सम निःस्वनः ॥₅॥

ततो भित्त्वा महीं सर्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
सहिताः सगराः सर्वे पितरं वाक्यमब्रुवन् ॥₆॥

परिक्रान्ता मही सर्वा सत्त्ववन्तश्च सूदिताः ।
देवदानवरक्षांसि पिशाचोरगकिंनराः ॥₇॥

न च पश्यामहेऽश्वं तमश्चहर्तारमेव च ।
किं करिष्याम भद्रं ते बुद्धिरत्र विचार्यताम् ॥₈॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा पुत्राणां राजसत्तमः ।
समन्युरब्रवीद्वाक्यं सगरो रघुनन्दन ॥₉॥

भूयः खनत भद्रं वो निर्भिद्य वसुधातलम् ।

अश्वहर्तारमासाद्य कृतार्थाश्च निवर्तथ ॥₁₀॥

पितुर्वचनमास्थाय सगरस्य महात्मनः ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि रसातलमभिद्रवन् ॥₁₁॥

खन्यमाने ततस्तस्मिन्दृशुः पर्वतोपमम् ।
दिशागजं विरूपाक्षं धारयन्तं महीतलम् ॥₁₂॥

सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन ।
शिरसा धारयामास विरूपाक्षो महागजः ॥₁₃॥

यदा पर्वणि काकुत्स्थ विश्रमार्थं महागजः ।
खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तथा भवेत् ॥₁₄॥

तं ते प्रदक्षिणं कृत्वा दिशापालं महागजम् ।
मानयन्तो हि ते राम जग्मुर्भिच्चा रसातलम् ॥₁₅॥

ततः पूर्वां दिशं भिच्चा दक्षिणां बिभिदुः पुनः ।
दक्षिणस्यामपि दिशि ददृशुस्ते महागजम् ॥₁₆॥

महापद्मं महात्मानं सुमहापर्वतोपमम् ।
शिरसा धारयन्तं ते विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ॥₁₇॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा सगरस्य महात्मनः ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि पश्चिमां बिभिदुर्दिशम् ॥₁₈॥

पश्चिमायामपि दिशि महान्तमचलोपमम् ।
दिशागजं सौमनसं ददृशुस्ते महाबलाः ॥₁₉॥

तं ते प्रदक्षिणं कृत्वा पृष्ट्वा चापि निरामयम् ।
खनन्तः समुपक्रान्ता दिशं सोमवतीं तदा ॥₂₀॥

उत्तरस्यां रघुश्रेष्ठ ददृशुर्हिमपाण्डुरम् ।

भद्रं भद्रेण वपुषा धारयन्तं महीमिमाम् ॥₂₁॥

समालभ्य ततः सर्वे कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि बिम्बिदुर्वसुधातलम् ॥₂₂॥

ततः प्रागुत्तरां गत्वा सागराः प्रथितां दिशम् ।
रोषादभ्यखनन्सर्वे पृथिवीं सगरात्मजाः ॥₂₃॥

ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ।
हयं च तस्य देवस्य चरन्तमविदूरतः ॥₂₄॥

ते तं यज्ञहनं ज्ञात्वा क्रोधपर्याकुलेक्षणाः ।
अभ्यधावन्त सङ्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रुवन् ॥₂₅॥

अस्माकं ब्रं हि तुरगं यज्ञियं हतवानसि ।
दुर्मेधस्त्वं हि सम्प्राप्तान्विद्धि नः सगरात्मजान् ॥₂₆॥

श्रुत्वा तद्वचनं तेषां कपिलो रघुनन्दन ।
रोषेण महताविष्टो हुङ्कारमकरोत्तदा ॥₂₇॥

ततस्तेनाप्रमेयेन कपिलेन महात्मना ।
भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगरात्मजाः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ चत्वारिंशः सर्गः ॥

पुत्रांश्चिरगताञ्जात्वा सगरो रघुनन्दन ।
नसारमब्रवीद्राजा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥₁॥

शूरश्च कृतविद्यश्च पूर्वैस्तुल्योऽसि तेजसा ।
पितॄणां गतिमन्विच्छ येन चाश्वोऽपहारितः ॥₂॥

अन्तर्भौमानि सत्त्वानि वीर्यवन्ति महान्ति च ।
तेषां त्वं प्रतिघातार्थं सासिं गृहीष्व कार्मुकम् ॥₃॥

अभिवाद्याभिवाद्यांस्त्वं हत्वा विघ्नकरानपि ।
सिद्धार्थः संनिवर्तस्व मम यज्ञस्य पारगः ॥₄॥

एवमुक्तोऽशुमान्सम्यक्सगरेण महात्मना ।
धनुरादाय खड्गं च जगाम लघुविक्रमः ॥₅॥

स खातं पितृभिर्मार्गमन्तर्भौमं महात्मभिः ।
प्रापद्यत नरश्रेष्ठ तेन राज्ञाभिचोदितः ॥₆॥

दैत्यदानवरक्षोभिः पिशाचपतगोरगैः ।
पूज्यमानं महातेजा दिशागजमपश्यत ॥₇॥

स तं प्रदक्षिणं कृत्वा पृष्ट्वा चैव निरामयम् ।
पितॄन्स परिपप्रच्छ वाजिहर्तारमेव च ॥₈॥

दिशागजस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीत्याहांशुमतो वचः ।
आसमञ्जकृतार्थस्त्वं सहाश्वः शीघ्रमेष्यसि ॥₉॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वानेव दिशागजान् ।

यथाक्रमं यथान्यायं प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥₁₀॥

तैश्च सर्वैर्दिशापालैर्वाक्यज्ञैर्वाक्यकोविदैः ।
पूजितः सहयश्चैव गन्तासीत्यभिचोदितः ॥₁₁॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम लघुविक्रमः ।
भस्मराशीकृता यत्र पितरस्तस्य सागराः ॥₁₂॥

स दुःखवशमापन्नस्त्वसमञ्जसुतस्तदा ।
चुक्रोश परमार्तस्तु वधात्तेषां सुदुःखितः ॥₁₃॥

यज्ञियं च हयं तत्र चरन्तमविदूरतः ।
ददर्श पुरुषव्याघ्रो दुःखशोकसमन्वितः ॥₁₄॥

ददर्श पुरुषव्याघ्रो कर्तुकामो जलक्रियाम् ।
सलिलार्थी महातेजा न चापश्यञ्जलाशयम् ॥₁₅॥

विसार्य निपुणां दृष्टिं ततोऽपश्यत्खगाधिपम् ।
पितृणां मातुलं राम सुपर्णमनिलोपमम् ॥₁₆॥

स चैनमब्रवीद्वाक्यं वैनतेयो महाबलः ।
मा शुचः पुरुषव्याघ्र वधोऽयं लोकसम्मतः ॥₁₇॥

कपिलेनाप्रमेयेन दग्धा हीमे महाबलाः ।
सलिलं नार्हसि प्राज्ञ दातुमेषां हि लौकिकम् ॥₁₈॥

गङ्गा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषर्षभ ।
भस्मराशीकृतानेतान्यावयेल्लोकपावनी ॥₁₉॥

तया क्लिन्नमिदं भस्म गङ्गया लोककान्तया ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकं नयिष्यति ॥₂₀॥

गच्छ चाश्वं महाभाग सङ्गृह्य पुरुषर्षभ ।

यज्ञं पैतामहं वीर निर्वर्तयितुमर्हसि ॥₂₁॥

सुपर्णवचनं श्रुत्वा सोऽशुमानतिवीर्यवान् ।
त्वरितं हयमादाय पुनरायान्महायशाः ॥₂₂॥

ततो राजानमासाद्य दीक्षितं रघुनन्दन ।
न्यवेदयद्यथावृत्तं सुपर्णवचनं तथा ॥₂₃॥

तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं वाक्यमंशुमतो नृपः ।
यज्ञं निर्वर्तयामास यथाकल्पं यथाविधि ॥₂₄॥

स्वपुरं चागमच्छ्रीमानिष्टयज्ञो महीपतिः ।
गङ्गायाश्चागमे राजा निश्चयं नाध्यगच्छत ॥₂₅॥

अगत्वा निश्चयं राजा कालेन महता महान् ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

कालधर्मं गते राम सगरे प्रकृतीजनाः ।
राजानं रोचयामासुरंशुमन्तं सुधार्मिकम् ॥₁॥

स राजा सुमहानासीदंशुमान्रघुनन्दन ।
तस्य पुत्रो महानासीदिलीप इति विश्रुतः ॥₂॥

तस्मिन्नाज्यं समावेश्य दिलीपे रघुनन्दन ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे सुदारुणम् ॥₃॥

द्वाद्विंशच्च सहस्राणि वर्षाणि सुमहायशाः ।
तपोवनगतो राजा स्वर्गं लेभे तपोधनः ॥₄॥

दिलीपस्तु महातेजाः श्रुत्वा पैतामहं वधम् ।
दुःखोपहतया बुद्ध्या निश्चयं नाध्यगच्छत ॥₅॥

कथं गङ्गावतरणं कथं तेषां जलक्रिया ।
तारयेयं कथं चैतानिति चिन्ता परोऽभवत् ॥₆॥

तस्य चिन्तयतो नित्यं धर्मेण विदितात्मनः ।
पुत्रो भगीरथो नाम जज्ञे परमधार्मिकः ॥₇॥

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान् ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥₈॥

अगत्वा निश्चयं राजा तेषामुद्धरणं प्रति ।
व्याधिना नरशार्दूल कालधर्ममुपेयिवान् ॥₉॥

इन्द्रलोकं गतो राजा स्वार्जितेनैव कर्मणा ।

रम्ये भगीरथं पुत्रमभिषिच्य नरर्षभः ॥₁₀॥

भगीरथस्तु राजर्षिर्धार्मिको रघुनन्दन ।
अनपत्यो महातेजाः प्रजाकामः स चाप्रजः ॥₁₁॥

स तपो दीर्घमातिष्ठद्वोकर्णे रघुनन्दन ।
ऊर्ध्वबाहुः पञ्चतपा मासाहारो जितेन्द्रियः ॥₁₂॥

तस्य वर्षसहस्राणि घोरे तपसि तिष्ठतः ।
सुप्रीतो भगवान्ब्रह्मा प्रजानां पतिरीश्वरः ॥₁₃॥

ततः सुरगणैः सार्धमुपागम्य पितामहः ।
भगीरथं महात्मानं तप्यमानमथाब्रवीत् ॥₁₄॥

भगीरथ महाभाग प्रीतस्तेऽहं जनेश्वर ।
तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुव्रत ॥₁₅॥

तमुवाच महातेजाः सर्वलोकपितामहम् ।
भगीरथो महाभागः कृताञ्जलिरवस्थितः ॥₁₆॥

यदि मे भगवान्प्रीतो यद्यस्ति तपसः फलम् ।
सगरस्यात्मजाः सर्वे मत्तः सलिलमाप्नुयुः ॥₁₇॥

गङ्गायाः सलिलक्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनाम् ।
स्वर्गं गच्छेयुरत्यन्तं सर्वे मे प्रपितामहाः ॥₁₈॥

देया च सन्ततोर्देव नावसीदेत्कुलं च नः ।
इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मेऽस्तु वरः परः ॥₁₉॥

उक्तवाक्यं तु राजानं सर्वलोकपितामहः ।
प्रत्युवाच शुभां वाणीं मधुरां मधुराक्षराम् ॥₂₀॥

मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ ।

एवं भवतु भद्रं ते इक्ष्वाकुकुलवर्धन ॥₂₁॥

इयं हैमवती गङ्गा ज्येष्ठा हिमवतः सुता ।
तां वै धारयितुं राजन्हरस्तत्र नियुज्यताम् ॥₂₂॥

गङ्गायाः पतनं राजन्पृथिवी न सहिष्यते ।
तौ वै धारयितुं वीर नान्यं पश्यामि शूलिनः ॥₂₃॥

तमेवमुक्त्वा राजानं गङ्गां चाभाष्य लोककृत् ।
जगाम त्रिदिवं देवः सह सर्वैर्मरुद्गणैः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

देवदेवे गते तस्मिन्सोऽङ्गुष्ठाग्रनिपीडिताम् ।
कृत्वा वसुमतीं राम संवत्सरमुपासत ॥₁॥

अथ संवत्सरे पूर्णे सर्वलोकनमस्कृतः ।
उमापतिः पशुपती राजानमिदमब्रवीत् ॥₂॥

प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम् ।
शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम् ॥₃॥

ततो हैमवती ज्येष्ठा सर्वलोकनमस्कृता ।
तदा सातिमहद्रूपं कृत्वा वेगं च दुःसहम् ।
आकाशादपतद्राम शिवे शिवशिरस्युत ॥₄॥

नैव सा निर्गमं लेखे जटामण्डलमोहिता ।
तत्रैवाबभ्रमद्देवी संवत्सरगणान्बहून् ॥₅॥

अनेन तोषितश्चासीदत्यर्थं रघुनन्दन ।
विससर्ज ततो गङ्गां हरो बिन्दुसरः प्रति ॥₆॥

गगनाच्छङ्करशिरस्ततो धरणिमागता ।
व्यसर्पत जलं तत्र तीव्रशब्दपुरस्कृतम् ॥₇॥

ततो देवर्षिगन्धर्वा यक्षाः सिद्धगणास्तथा ।
व्यलोकयन्त ते तत्र गगनाद्गां गतां तदा ॥₈॥

विमानैर्नगराकारैर्हयैर्गजवरैस्तथा ।
पारिप्लवगताश्चापि देवतास्तत्र विष्टिताः ॥₉॥

तदद्भुततमं लोके गङ्गा पतनमुत्तमम् ।
दिदृक्षवो देवगणाः समेयुरमितौजसः ॥₁₀॥

सम्पतद्भिः सुरगणैस्तेषां चाभरणौजसा ।
शतादित्यमिवाभाति गगनं गततोयदम् ॥₁₁॥

शिंशुमारोरगगणैर्मिनैरपि च चञ्चलैः ।
विद्युद्भिरिव विक्षिप्तैराकाशमभवत्तदा ॥₁₂॥

पाण्डुरैः सलिलोत्पीडैः कीर्यमाणैः सहस्रधा ।
शारदाभ्रैरिवाक्रीत्णं गगनं हंससम्प्लवैः ॥₁₃॥

क्वचिद्भुततरं याति कुटिलं क्वचिदायतम् ।
विनतं क्वचिदुद्धूतं क्वचिद्याति शनैः शनैः ॥₁₄॥

सलिलेनैव सलिलं क्वचिदभ्याहतं पुनः ।
मुहुरूर्ध्वपथं गत्वा पपात वसुधां पुनः ॥₁₅॥

तच्छङ्करशिरोभ्रष्टं भ्रष्टं भूमितले पुनः ।
व्यरोचत तदा तोयं निर्मलं गतकल्मषम् ॥₁₆॥

तत्रर्षिगणगन्धर्वा वसुधातलवासिनः ।
भवाङ्गपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुः ॥₁₇॥

शापात्प्रपतिता ये च गगनाद्वसुधातलम् ।
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः ॥₁₈॥

धूपपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ सुभास्वता ।
पुनराकाशमाविश्य स्वाँल्लोकान्प्रतिपेदिरे ॥₁₉॥

मुमुदे मुदितो लोकस्तेन तोयेन भास्वता ।
कृताभिषेको गङ्गायां बभूव विगतक्लमः ॥₂₀॥

भगीरथोऽपि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः ।
प्रायादग्रे महातेजास्तं गङ्गा पृष्ठतोऽन्वगात् ॥₂₁॥

देवाः सर्षिगणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥₂₂॥

सर्वाश्चाप्सरसो राम भगीरथरथानुगाः ।
गङ्गामन्वगमन्ग्रीताः सर्वे जलचराश्च ये ॥₂₃॥

यतो भगीरथो राजा ततो गङ्गा यशस्विनी ।
जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

स गत्वा सागरं राजा गङ्गयानुगतस्तदा ।
प्रविवेश तलं भूमेर्यत्र ते भस्मसात्कृताः ॥₁॥

भस्मन्यथाप्लुते राम गङ्गायाः सलिलेन वै ।
सर्वं लोकप्रभुर्ब्रह्मा राजानमिदमब्रवीत् ॥₂॥

तारिता नरशार्दूल दिवं याताश्च देववत् ।
षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्य महात्मनः ॥₃॥

सागरस्य जलं लोके यावत्स्थास्यति पार्थिव ।
सगरस्यात्मजास्तावत्स्वर्गे स्थास्यन्ति देववत् ॥₄॥

इयं च दुहिता ज्येष्ठा तव गङ्गा भविष्यति ।
बत्कृतेन च नाम्ना वै लोके स्थास्यति विश्रुता ॥₅॥

गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च ।
त्रिपथो भावयन्तीति ततस्त्रिपथगा स्मृता ॥₆॥

पितामहानां सर्वेषां ब्रमत्र मनुजाधिप ।
कुरुष्व सलिलं राजन्प्रतिज्ञामपवर्जय ॥₇॥

पूर्वकेण हि ते राजंस्तेनातियशसा तदा ।
धर्मिणां प्रवरेणाथ नैष प्राप्तो मनोरथः ॥₈॥

तथैवांशुमता तात लोकेऽप्रतिमतेजसा ।
गङ्गां प्रार्थयता नेतुं प्रतिज्ञा नापवर्जिता ॥₉॥

राजर्षिणा गुणवता महर्षिसमतेजसा ।

मत्तुल्यतपसा चैव क्षत्रधर्मस्थितेन च ॥₁₀॥

दिलीपेन महाभाग तव पित्रातितेजसा ।
पुनर्न शङ्किता नेतुं गङ्गां प्रार्थयतानघ ॥₁₁॥

सा ब्रया समतिक्रान्ता प्रतिज्ञा पुरुषर्षभ ।
प्राप्तोऽसि परमं लोके यशः परमसम्मतम् ॥₁₂॥

यच्च गङ्गावतरणं ब्रया कृतमरिन्दम ।
अनेन च भवान्प्राप्तो धर्मस्यायतनं महत् ॥₁₃॥

प्लावयस्व ब्रमात्मानं नरोत्तम सदोचिते ।
सलिले पुरुषव्याघ्र शुचिः पुण्यफलो भव ॥₁₄॥

पितामहानां सर्वेषां कुरुष्व सलिलक्रियाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि स्वं लोकं गम्यतां नृप ॥₁₅॥

इत्येवमुक्त्वा देवेशः सर्वलोकपितामहः ।
यथागतं तथागच्छद्देवलोकं महायशाः ॥₁₆॥

भगीरथोऽपि राजर्षिः कृत्वा सलिलमुत्तमम् ।
यथाक्रमं यथान्यायं सागराणां महायशाः ।
कृतोदकः शुची राजा स्वपुरं प्रविवेश ह ॥₁₇॥

समृद्धार्थो नरश्रेष्ठ स्वराज्यं प्रशशास ह ।
प्रमुमोद च लोकस्तं नृपमासाद्य राघव ।
नष्टशोकः समृद्धार्थो बभूव विगतज्वरः ॥₁₈॥

एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया ।
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते सन्ध्याकालोऽतिवर्तते ॥₁₉॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं पुत्र्यमथापि च ।
इदमाख्यानमाख्यातं गङ्गावतरणं मया ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।
विस्मयं परमं गत्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥₁॥

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्कथितं परमं त्वया ।
गङ्गावतरणं पुण्यं सागरस्य च पूरणम् ॥₂॥

तस्य सा शर्वरी सर्वा सह सौमित्रिणा तदा ।
जगाम चिन्तयानस्य विश्वामित्रकथां शुभाम् ॥₃॥

ततः प्रभाते विमले विश्वामित्रं महामुनिम् ।
उवाच राघवो वाक्यं कृताह्निकमरिन्दमः ॥₄॥

गता भगवती रात्रिः श्रोतव्यं परमं श्रुतम् ।
क्षणभूतेव सा रात्रिः संवृत्तेयं महातपः ।
इमां चिन्तयतः सर्वा निखिलेन कथां तव ॥₅॥

तराम सरितां श्रेष्ठां पुण्यां त्रिपथगां नदीम् ।
नौरेषा हि सुखास्तीर्णा ऋषीणां पुण्यकर्मणाम् ।
भगवन्तमिह प्राप्तं ज्ञात्वा त्वरितमागता ॥₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
सन्तारं कारयामास सर्षिसङ्घः सराघवः ॥₇॥

उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यर्षिगणं तथ ।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम् ॥₈॥

ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहराघवः ।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥₉॥

अथ रामो महाप्राज्ञो विश्वामित्रं महामुनिम् ।
पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा विशालामुत्तमां पुरीम् ॥¹⁰॥

कतरो राजवंशोऽयं विशालायां महामुने ।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते परं कौतूहलं हि मे ॥¹¹॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्य मुनिपुङ्गवः ।
आख्यातुं तत्समारेभे विशालस्य पुरातनम् ॥¹²॥

श्रूयतां राम शक्रस्य कथां कथयतः शुभाम् ।
अस्मिन्देशे हि यद्वृत्तं शृणु तत्त्वेन राघव ॥¹³॥

पूर्वं कृतयुगे राम दितेः पुत्रा महाबलाः ।
अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥¹⁴॥

ततस्तेषां नरश्रेष्ठ बुद्धिरासीन्महात्मनाम् ।
अमरा निर्जराश्चैव कथं स्याम निरामयाः ॥¹⁵॥

तेषां चिन्तयतां राम बुद्धिरासीद्विपश्चिताम् ।
क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै ॥¹⁶॥

ततो निश्चित्य मथनं योक्तं कृत्वा च वासुकिम् ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः ॥¹⁷॥

अथ धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः ।
अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद्वरस्त्रियः ।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन् ॥¹⁸॥

षष्टिः कोट्योऽभवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम् ।
असङ्ख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः ॥¹⁹॥

न ताः स्म प्रतिगृह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।
अप्रतिग्रहणाच्चैव तेन साधारणाः स्मृताः ॥²⁰॥

वरुणस्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन ।
उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम् ॥₂₁॥

दितेः पुत्रा न तां राम जगृह्वरुणात्मजाम् ।
अदितेस्तु सुता वीर जगृहस्तामनिन्दिताम् ॥₂₂॥

असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः ।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन्वारुणी ग्रहणात्सुराः ॥₂₃॥

उच्चैःश्रवा ह्यश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ।
उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथैवामृतमुत्तमम् ॥₂₄॥

अथ तस्य कृते राम महानासीत्कुलक्षयः ।
अदितेस्तु ततः पुत्रा दितेः पुत्राण सूदयन् ॥₂₅॥

अदितेरात्मजा वीरा दितेः पुत्रान्निजघ्निरे ।
तस्मिन्धोरे महायुद्धे दैतेयादित्ययोर्भृशम् ॥₂₆॥

निहत्य दितिपुत्रांस्तु राज्यं प्राप्य पुरन्दरः ।
शशास मुदितो लोकान्सर्षिसङ्घान्सचारणान् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता ।
मारीचं काश्यपं राम भर्तारमिदमब्रवीत् ॥₁॥

हतपुत्रास्मि भगवंस्तव पुत्रैर्महाबलैः ।
शक्रहन्तारमिच्छामि पुत्रं दीर्घतपोऽर्जितम् ॥₂॥

साहं तपश्चरिष्यामि गर्भं मे दातुमर्हसि ।
ईदृशं शक्रहन्तारं त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥₃॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः काश्यपस्तदा ।
प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखिताम् ॥₄॥

एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने ।
जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शक्र हन्तारमाहवे ॥₅॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु शुचिर्यदि भविष्यसि ।
पुत्रं त्रैलोक्य हन्तारं मत्तस्त्वं जनयिष्यसि ॥₆॥

एवमुक्त्वा महातेजाः पाणिना स ममार्जं ताम् ।
समालभ्य ततः स्वस्तीत्युक्त्वा स तपसे ययौ ॥₇॥

गते तस्मिन्नरश्रेष्ठ दितिः परमहर्षिता ।
कुशप्लवनमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥₈॥

तपस्तस्यां हि कुर्वत्यां परिचर्यां चकार ह ।
सहस्राक्षो नरश्रेष्ठ परया गुणसम्पदा ॥₉॥

अग्निं कुशान्काष्ठमपः फलं मूलं तथैव च ।

न्यवेदयत्सहस्राक्षो यच्चान्यदपि काङ्क्षितम् ॥₁₀॥

गात्रसंवाहनेश्चैव श्रमापनयनैस्तथा ।
शक्रः सर्वेषु कालेषु दितिं परिचचार ह ॥₁₁॥

अथ वर्षसहस्रेतु दशोने रघु नन्दन ।
दितिः परमसम्प्रीता सहस्राक्षमथाब्रवीत् ॥₁₂॥

तपश्चरन्त्या वर्षाणि दश वीर्यवतां वर ।
अवशिष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यसे ततः ॥₁₃॥

तमहं बत्कृते पुत्र समाधास्ये जयोत्सुकम् ।
त्रैलोक्यविजयं पुत्र सह भोक्ष्यसि विज्वरः ॥₁₄॥

एवमुक्त्वा दितिः शक्रं प्राप्ते मध्यं दिवाकरे ।
निद्रयापहृता देवी पादौ कृत्वाथ शीर्षतः ॥₁₅॥

दृष्ट्वा तामशुचिं शक्रः पादतः कृतमूर्धजाम् ।
शिरःस्थाने कृतौ पादौ जहास च मुमोद च ॥₁₆॥

तस्याः शरीरविवरं विवेश च पुरन्दरः ।
गर्भं च सप्तधा राम बिभेद परमात्मवान् ॥₁₇॥

बिध्यमानस्ततो गर्भो वज्रेण शतपर्वणा ।
रुरोद सुस्वरं राम ततो दितिरबुध्यत ॥₁₈॥

मा रुदो मा रुदश्चेति गर्भं शक्रोऽभ्यभाषत ।
बिभेद च महातेजा रुदन्तमपि वासवः ॥₁₉॥

न हन्तव्यो न हन्तव्य इत्येवं दितिरब्रवीत् ।
निष्पपात ततः शक्रो मातुर्वचनगौरवात् ॥₂₀॥

प्राञ्जलिर्वज्रसहितो दितिं शक्रोऽभ्यभाषत ।

अशुचिर्देवि सुप्तसि पादयोः कृतमूर्धजा ॥₂₁॥

तदन्तरमहं लब्ध्वा शक्रहन्तारमाहवे ।
अभिन्दं सप्तधा देवि तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

सप्तधा तु कृते गर्भे दितिः परमदुःखिता ।
सहस्राक्षं दुराधर्षं वाक्यं सानुनयाब्रवीत् ॥₁॥

ममापराधाद्गर्भोऽयं सप्तधा विफलीकृतः ।
नापराधोऽस्ति देवेश तवात्र बलसूदन ॥₂॥

प्रियं तु कृतमिच्छामि मम गर्भविपर्यये ।
मरुतां सप्तं सप्तानां स्थानपाला भवन्निमे ॥₃॥

वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रकाः ।
मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः ॥₄॥

ब्रह्मलोकं चरत्वेक इन्द्रलोकं तथापरः ।
दिवि वायुरिति ख्यातस्तृतीयोऽपि महायशः ॥₅॥

चत्वारस्तु सुरश्रेष्ठ दिशो वै तव शासनात् ।
सञ्चरिष्यन्ति भद्रं ते देवभूता ममात्मजाः ।
बलकृतेनैव नाम्ना च मारुता इति विश्रुताः ॥₆॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं दितिं बलनिषूदनः ॥₇॥

सर्वमेतद्यथोक्तं ते भविष्यति न संशयः ।
विचरिष्यन्ति भद्रं ते देवभूतास्तवात्मजाः ॥₈॥

एवं तौ निश्चयं कृत्वा मातापुत्रौ तपोवने ।
जग्मतुस्त्रिदिवं राम कृतार्थाविति नः श्रुतम् ॥₉॥

एष देशः स काकुत्स्थ महेन्द्राध्युषितः पुरा ।
दितिं यत्र तपः सिद्धामेवं परिचचार सः ॥¹⁰॥

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः ।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः ॥¹¹॥

तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता ॥¹²॥

विशालस्य सुतो राम हेमचन्द्रो महाबलः ।
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः ॥¹³॥

सुचन्द्रतनयो राम धूम्राश्व इति विश्रुतः ।
धूम्राश्वतनयश्चापि सृञ्जयः समपद्यत ॥¹⁴॥

सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् ।
कुशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ॥¹⁵॥

कुशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान् ।
सोमदत्तस्य पुत्रस्तु काकुत्स्थ इति विश्रुतः ॥¹⁶॥

तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येष पुरीमिमाम् ।
आवसत्यमरप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः ॥¹⁷॥

इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः ।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥¹⁸॥

इहाद्य रजनीं राम सुखं वत्स्यामहे वयम् ।
श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ जनकं द्रष्टुमर्हसि ॥¹⁹॥

सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम् ।
श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः प्रत्युद्गच्छन्महायशः ॥²⁰॥

पूजां च परमां कृत्वा सोपाध्यायः सबान्धवः ।
प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥²¹॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे विषयं मुने ।
सम्प्राप्तो दर्शनं चैव नास्ति धन्यतरो मम ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्त्वारिंशः सर्गः॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

पृष्ट्वा तु कुशलं तत्र परस्परसमागमे ।
कथान्ते सुमतिर्वाक्यं व्याजहार महामुनिम् ॥₁॥

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ।
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ॥₂॥

पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥₃॥

यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ।
कथं पद्मामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥₄॥

भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ।
परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ॥₅॥

किमर्थं च नरश्रेष्ठौ सम्प्राप्तौ दुर्गमे पथि ।
वरायुधधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं न्यवेदयत् ।
सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा ॥₇॥

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राजा परमहर्षितः ।
अतिथी परमौ प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ।
पूजयामास विधिवत्सत्कारार्हौ महाबलौ ॥₈॥

ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ ।
उप्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः ॥₉॥

तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम् ।
साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन् ॥₁₀॥

मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः ।
पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥₁₁॥

श्रीमदाश्रमसङ्काशं किं न्विदं मुनिवर्जितम् ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्कस्यायं पूर्वं आश्रमः ॥₁₂॥

तच्छ्रुता राघवेणोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजा विश्वमित्रो महामुनिः ॥₁₃॥

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु तत्त्वेन राघव ।
यस्यैतदाश्रमपदं शप्तं कोपान्महात्मना ॥₁₄॥

गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः ।
आश्रमो दिव्यसङ्काशः सुरैरपि सुपूजितः ॥₁₅॥

स चेह तप आतिष्ठदहल्यासहितः पुरा ।
वर्षपूगान्यनेकानि राजपुत्र महायशः ॥₁₆॥

तस्यान्तरं विदित्वा तु सहस्राक्षः शचीपतिः ।
मुनिवेषधरोऽहल्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₇॥

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते ।
सङ्गमं ब्रह्मिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥₁₈॥

मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन ।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥₁₉॥

अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना ।
कृतार्थोऽसि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ।
आत्मानं मां च देवेश सर्वदा रक्ष मानदः ॥₂₀॥

इन्द्रस्तु प्रहसन्वाक्यमहल्यामिदमब्रवीत् ।
सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथागतम् ॥²¹॥

एवं सङ्गम्य तु तया निश्चक्रामोटजात्ततः ।
स सम्भ्रमाच्चरन्नाम शङ्कितो गौतमं प्रति ॥²²॥

गौतमं स ददर्शाथ प्रविशन्तं महामुनिम्
देवदानवदुर्धर्षं तपोबलसमन्वितम् ।
तीर्थोदकपरिक्लिन्नं दीप्यमानमिवानलम्
गृहीतसमिधं तत्र सकुशं मुनिपुङ्गवम् ॥²³॥

दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विषण्णवदनोऽभवत् ॥²⁴॥

अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः ।
दुर्वृत्तं वृत्तसम्पन्नो रोषाद्वचनमब्रवीत् ॥²⁵॥

मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते ।
अकर्तव्यमिदं यस्माद्विफलस्त्वं भविष्यति ॥²⁶॥

गौतमेनैवमुक्तस्य सरोषेण महात्मना ।
पेततुर्वृषणौ भूमौ सहस्राक्षस्य तत्क्षणात् ॥²⁷॥

तथा शप्त्वा स वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान् ।
इह वर्षसहस्राणि बहूनि त्वं निवत्स्यसि ॥²⁸॥

वायुभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी ।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि ॥²⁹॥

यदा चैतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः ।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ॥³⁰॥

तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता ।
मत्सकाशे मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि ॥³¹॥

एवमुक्त्वा महातेजा गौतमो दुष्टचारिणीम् ।
इममाश्रममुत्सृज्य सिद्धचारणसेविते ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपाः ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

अफलस्तु ततः शक्रो देवानग्निपुरोगमान् ।
अब्रवीत्तस्तवदनः सर्षिसङ्घान्सचारणान् ॥₁॥

कुर्वता तपसो विघ्नं गौतमस्य महात्मनः ।
क्रोधमुत्पाद्य हि मया सुरकार्यमिदं कृतम् ॥₂॥

अफलोऽस्मि कृतस्तेन क्रोधात्सा च निराकृता ।
शापमोक्षेण महता तपोऽस्यापहृतं मया ॥₃॥

तन्मां सुरवराः सर्वे सर्षिसङ्घाः सचारणाः ।
सुरसाह्यकरं सर्वे सफलं कर्तुमर्हथ ॥₄॥

शतक्रतोर्वचः श्रुत्वा देवाः साग्निपुरोगमाः ।
पितृदेवानुपेत्याहुः सह सर्वैर्मरुद्गणैः ॥₅॥

अयं मेषः सवृषणः शक्रो ह्यवृषणः कृतः ।
मेषस्य वृषणौ गृह्य शक्रायाशु प्रयच्छत ॥₆॥

अफलस्तु कृतो मेषः परां तुष्टिं प्रदास्यति ।
भवतां हर्षणार्थाय ये च दास्यन्ति मानवाः ॥₇॥

अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः ।
उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेदयन् ॥₈॥

तदा प्रभृति काकुत्स्थ पितृदेवाः समागताः ।
अफलान्भुञ्जते मेषान्फलैस्तेषामयोजयन् ॥₉॥

इन्द्रस्तु मेषवृषणस्तदा प्रभृति राघव ।

गौतमस्य प्रभावेन तपसश्च महात्मनः ॥₁₀॥

तदागच्छ महातेज आश्रमं पुण्यकर्मणः ।
तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम् ॥₁₁॥

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥₁₂॥

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् ।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ॥₁₃॥

प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव ।
धूमेनाभिपरीताङ्गीं पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥₁₄॥

सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव ।
मध्येऽम्भसो दुराधर्षा दीप्तां सूर्यप्रभामिव ॥₁₅॥

स हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह ।
त्रयाणामपि लोकानां यावद्रामस्य दर्शनम् ॥₁₆॥

राघवौ तु ततस्तस्याः पादौ जगृहतुस्तदा ।
स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा च तौ ॥₁₇॥

पादमर्घ्यं तथातिथ्यं चकार सुसमाहिता ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥₁₈॥

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिस्त्रनैः ।
गन्धर्वाप्सरसां चापि महानासीत्समागमः ॥₁₉॥

साधु साध्विति देवास्तामहल्यां समपूजयन् ।
तपोबलविशुद्धाङ्गीं गौतमस्य वशानुगाम् ॥₂₀॥

गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी ।

रामं सम्पूज्य विधिवत्तपस्तेपे महातपाः ॥₂₁॥

रामोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महामुनेः ।
सकाशाद्विधिवत्प्राप्य जगाम मिथिलां ततः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥₁॥

रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः ।
साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि जनकस्य महात्मनः ॥₂॥

बहूनीह सहस्राणि नानादेशनिवासिनाम् ।
ब्राह्मणानां महाभाग वेदाध्ययनशालिनाम् ॥₃॥

ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशतसङ्कुलाः ।
देशो विधीयतां ब्रह्मन्यत्र वत्स्यामहे वयम् ॥₄॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः ।
निवेशमकरोद्देशे विविक्ते सलिलायुते ॥₅॥

विश्वामित्रं मुनिश्रेष्ठं श्रुत्वा स नृपतिस्तदा ।
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितम् ॥₆॥

ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सबरम् ।
विश्वामित्राय धर्मेण ददुर्मन्त्रपुरस्कृतम् ॥₇॥

प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् ॥₈॥

स तांश्चापि मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्याय पुरोधसः ।
यथान्यायं ततः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवान् ॥₉॥

अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत ।

आसने भगवानास्तां सहैभिर्मुनिसत्तमैः ॥₁₀॥

जनकस्य वचः श्रुत्वा निषसाद महामुनिः ।
पुरोधा ऋबिजश्चैव राजा च सह मन्त्रिभिः ॥₁₁॥

आसनेषु यथान्यायमुपविष्टान्समन्ततः ।
दृष्ट्वा स नृपतिस्तत्र विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥₁₂॥

अद्य यज्ञसमृद्धिर्मे सफला दैवतैः कृता ।
अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया ॥₁₃॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव ।
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह ॥₁₄॥

द्वादशाहं तु ब्रह्मर्षे शेषमाहुर्मनीषिणः ।
ततो भागार्थिनो देवान्द्रष्टुमर्हसि कौशिक ॥₁₅॥

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं प्रहृष्टवदनस्तदा ।
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ॥₁₆॥

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ।
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ॥₁₇॥

पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥₁₈॥

यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ।
कथं पद्मामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥₁₉॥

वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने ।
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥₂₀॥

परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ।

काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तच्चतः ॥₂₁॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः ।
न्यवेदयन्महात्मानौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥₂₂॥

सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा ।
तच्चागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥₂₃॥

अहल्यादर्शनं चैव गौतमेन समागमम् ।
महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा ॥₂₄॥

एतत्सर्वं महातेजा जनकाय महात्मने ।
निवेद्य विररामाथ विश्वामित्रो महामुनिः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य धीमतः ।
हृष्टरोमा महातेजाः शतानन्दो महातपाः ॥₁॥

गौतमस्य सुतो ज्येष्ठस्तपसा द्योतितप्रभः ।
रामसन्दर्शनादेव परं विस्मयमागतः ॥₂॥

स तौ निषण्णौ सम्प्रेक्ष्य सुखासीनौ नृपात्मजौ ।
शतानन्दो मुनिश्रेष्ठं विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥₃॥

अपि ते मुनिशार्दूल मम माता यशस्विनी ।
दर्शिता राजपुत्राय तपो दीर्घमुपागता ॥₄॥

अपि रामे महातेजो मम माता यशस्विनी ।
वन्यैरुपाहरत्पूजां पूजार्हे सर्वदेहिनाम् ॥₅॥

अपि रामाय कथितं यथावृत्तं पुरातनम् ।
मम मातुर्महातेजो देवेन दुरनुष्ठितम् ॥₆॥

अपि कौशिक भद्रं ते गुरुणा मम सङ्गता ।
माता मम मुनिश्रेष्ठ रामसन्दर्शनादितः ॥₇॥

अपि मे गुरुणा रामः पूजितः कुशिकात्मज ।
इहागतो महातेजाः पूजां प्राप्य महात्मनः ॥₈॥

अपि शान्तेन मनसा गुरुर्मे कुशिकात्मज ।
इहागतेन रामेण प्रयतेनाभिवादितः ॥₉॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विश्वामित्रो महामुनिः ।

प्रत्युवाच शतानन्दं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥₁₀॥

नातिक्रान्तं मुनिश्रेष्ठ यत्कर्तव्यं कृतं मया ।
सङ्गता मुनिना पत्नी भार्गवेणेव रेणुका ॥₁₁॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विश्वामित्रस्य धीमतः ।
शतानन्दो महातेजा रामं वचनमब्रवीत् ॥₁₂॥

स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य महर्षिमपराजितम् ॥₁₃॥

अचिन्त्यकर्मा तपसा ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ।
विश्वामित्रो महातेजा वेत्स्येनं परमां गतिम् ॥₁₄॥

नास्ति धन्यतरो राम ब्रह्मोऽन्यो भुवि कश्चन ।
गोप्ता कुशिकपुत्रस्ते येन तप्तं महत्तपः ॥₁₅॥

श्रूयतां चाभिदास्यामि कौशिकस्य महात्मनः ।
यथाबलं यथावृत्तं तन्मे निगदतः शृणु ॥₁₆॥

राजाभूदेष धर्मात्मा दीर्घ कालमरिन्दमः ।
धर्मज्ञः कृतविद्यश्च प्रजानां च हिते रतः ॥₁₇॥

प्रजापतिसुतस्त्वासीत्कुशो नाम महीपतिः ।
कुशस्य पुत्रो बलवान्कुशनाभः सुधार्मिकः ॥₁₈॥

कुशनाभसुतस्त्वासीद्गाधिरित्येव विश्रुतः ।
गाधेः पुत्रो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥₁₉॥

विश्वामित्रो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् ।
बहुवर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥₂₀॥

कदाचित्तु महातेजा योजयित्वा वरूथिनीम् ।

अक्षौहिणीपरिवृतः परिचक्राम मेदिनीम् ॥₂₁॥

नगराणि च राष्ट्राणि सरितश्च तथा गिरीन् ।
आश्रमान्क्रमशो राजा विचरन्नाजगामह ॥₂₂॥

वसिष्ठस्याश्रमपदं नानापुष्पफलद्रुमम् ।
नानामृगगणाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥₂₃॥

देवदानवगन्धर्वैः किंनरैरुपशोभितम् ।
प्रशान्तहरिणाकीर्णं द्विजसङ्घनिषेवितम् ॥₂₄॥

ब्रह्मर्षिगणसङ्कीर्णं देवर्षिगणसेवितम् ।
तपश्चरणसंसिद्धैरग्निकल्पैर्महात्मभिः ॥₂₅॥

सततं सङ्कुलं श्रीमद्ब्रह्मकल्पैर्महात्मभिः ।
अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शीर्णपर्णाशनैस्तथा ॥₂₆॥

फलमूलाशनैर्दान्तैर्जितरोषैर्जितेन्द्रियैः ।
ऋषिभिर्वालखिल्यैश्च जपहोमपरायणैः ॥₂₇॥

वसिष्ठस्याश्रमपदं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।
ददर्श जयतां श्रेष्ठ विश्वामित्रो महाबलः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

स दृष्ट्वा परमप्रीतो विश्वामित्रो महाबलः ।
प्रणतो विनयाद्वीरो वसिष्ठं जपतां वरम् ॥₁॥

स्वागतं तव चेत्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना ।
आसनं चास्य भगवान्वसिष्ठो व्यादिदेश ह ॥₂॥

उपविष्टाय च तदा विश्वामित्राय धीमते ।
यथान्यायं मुनिवरः फलमूलमुपाहरत् ॥₃॥

प्रतिगृह्य च तां पूजां वसिष्ठाद्राजसत्तमः ।
तपोऽग्निहोत्रशिष्येषु कुशलं पर्यपृच्छत ॥₄॥

विश्वामित्रो महातेजा वनस्पतिगणे तथा ।
सर्वत्र कुशलं चाह वसिष्ठो राजसत्तमम् ॥₅॥

सुखोपविष्टं राजानं विश्वामित्रं महातपाः ।
पप्रच्छ जपतां श्रेष्ठो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥₆॥

कच्चित्ते कुशलं राजन्कच्चिद्धर्मेण रञ्जयन् ।
प्रजाः पालयसे राजन्राजवृत्तेन धार्मिक ॥₇॥

कच्चित्ते सुभृता भृत्याः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने ।
कच्चित्ते विजिताः सर्वे रिपवो रिपुसूदन ॥₈॥

कच्चिद्वले च कोशे च मित्रेषु च परन्तप ।
कुशलं ते नरव्याघ्र पुत्रपौत्रे तथानघ ॥₉॥

सर्वत्र कुशलं राजा वसिष्ठं प्रत्युदाहरत् ।

विश्वामित्रो महातेजा वसिष्ठं विनयान्वितः ॥₁₀॥

कृत्वोभौ सूचिरं कालं धर्मिष्ठौ ताः कथाः शुभाः ।
मुदा परमया युक्तौ प्रीयेतां तौ परस्परम् ॥₁₁॥

ततो वसिष्ठो भगवान्कथान्ते रघुनन्दन ।
विश्वामित्रमिदं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव ॥₁₂॥

आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि बलस्यास्य महाबल ।
तव चैवाप्रमेयस्य यथार्हं सम्प्रतीच्छ मे ॥₁₃॥

सत्क्रियां तु भवानेतां प्रतीच्छतु मयोद्यताम् ।
राजंस्त्वमतिथिश्रेष्ठः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥₁₄॥

एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महामतिः ।
कृतमित्यब्रवीद्राजा पूजावाक्येन मे त्वया ॥₁₅॥

फलमूलेन भगवन्विद्यते यत्तवाश्रमे ।
पादेनाचमनीयेन भगवद्दर्शनेन च ॥₁₆॥

सर्वथा च महाप्राज्ञ पूजार्हेण सुपूजितः ।
गमिष्यामि नमस्तेऽस्तु मैत्रेणेश्वर चक्षुषा ॥₁₇॥

एवं ब्रुवन्तं राजानं वसिष्ठः पुनरेव हि ।
न्यमन्त्रयत धर्मात्मा पुनः पुनरुदारधीः ॥₁₈॥

बाढमित्येव गाधेयो वसिष्ठं प्रत्युवाच ह ।
यथा प्रियं भगवतस्तथास्तु मुनिसत्तम ॥₁₉॥

एवमुक्तो महातेजा वसिष्ठो जपतां वरः ।
आजुहाव ततः प्रीतः कल्मषीं धूतकल्मषः ॥₂₀॥

एह्येहि शबले क्षिप्रं शृणु चापि वचो मम ।

सबलस्यास्य राजर्षेः कर्तुं व्यवसितोऽस्म्यहम् ।
भोजनेन महार्हेण सत्कारं संविधत्स्व मे ॥₂₁॥

यस्य यस्य यथाकामं षड्रसेष्वभिपूजितम् ।
तत्सर्वं कामधुग्दिव्ये अभिवर्षकृते मम ॥₂₂॥

रसेनान्नेन पानेन लेह्यचोष्येण संयुतम् ।
अन्नानां निचयं सर्वं सृजस्व शबले त्वर ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन ।
विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्य यथेप्सितम् ॥₁॥

इक्षून्मधूंस्तथा लाजान्मैरेयांश्च वरासवान् ।
पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्चोच्चावचांस्तथा ॥₂॥

उष्णाढ्यस्यौदनस्यापि राशयः पर्वतोपमाः ।
मृष्टान्नानि च सूपाश्च दधिकुल्यास्तथैव च ॥₃॥

नानास्वादुरसानां च षाडवानां तथैव च ।
भाजनानि सुपूर्णानि गौडानि च सहस्रशः ॥₄॥

सर्वमासीत्सुसन्तुष्टं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ।
विश्वामित्रबलं राम वसिष्ठेनाभितर्पितम् ॥₅॥

विश्वामित्रोऽपि राजर्षिर्हृष्टपुष्टस्तदाभवत् ।
सान्तः पुरवरो राजा सब्राह्मणपुरोहितः ॥₆॥

सामात्यो मन्त्रिसहितः सभृत्यः पूजितस्तदा ।
युक्तः परेण हर्षेण वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥₇॥

पूजितोऽहं त्वया ब्रह्मन्पूजार्हेण सुसत्कृतः ।
श्रूयतामभिधास्यामि वाक्यं वाक्यविशारद ॥₈॥

गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम ।
रत्नं हि भगवन्नेतद्रत्नहारी च पार्थिवः ।
तस्मान्मे शबलां देहि ममैषा धर्मतो द्विज ॥₉॥

एवमुक्तस्तु भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
विश्वामित्रेण धर्मात्मा प्रत्युवाच महीपतिम् ॥₁₀॥

नाहं शतसहस्रेण नापि कोटिशतैर्गवाम् ।
राजन्दास्यामि शबलां राशिभी रज्जतस्य वा ॥₁₁॥

न परित्यागमर्हेयं मत्सकाशादरिन्दम ।
शाश्वती शबला मह्यं कीर्तिरात्मवतो यथा ॥₁₂॥

अस्यां हव्यं च कव्यं च प्राणयात्रा तथैव च ।
आयत्तमग्निहोत्रं च बलिर्होमस्तथैव च ॥₁₃॥

स्वाहाकारवषट्कारौ विद्याश्च विविधास्तथा ।
आयत्तमत्र राजर्षे सर्वमेतन्न संशयः ॥₁₄॥

सर्वं स्वमेतत्सत्येन मम तुष्टिकरी सदा ।
कारणैर्बहुभी राजन्न दास्ये शबलां तव ॥₁₅॥

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु विश्वामित्रोऽब्रवीत्ततः ।
संरब्धतरमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₁₆॥

हैरण्यकक्ष्याग्रैवेयान्सुवर्णाङ्कुशभूषितान् ।
ददामि कुञ्जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश ॥₁₇॥

हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्युजाम् ।
ददामि ते शतान्यष्टौ किङ्किणीकविभूषितान् ॥₁₈॥

हयानां देशजातानां कुलजानां महौजसाम् ।
सहस्रमेकं दश च ददामि तव सुव्रत ॥₁₉॥

नानावर्णविभक्तानां वयःस्थानां तथैव च ।
ददाम्येकां गवां कोटिं शबला दीयतां मम ॥₂₀॥

एवमुक्तस्तु भगवान्विश्वामित्रेण धीमता ।
न दास्यामीति शबलां प्राह राजन्कथञ्चन ॥₂₁॥

एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम् ।
एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम् ॥₂₂॥

दर्शश्च पूर्णमासश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः ।
एतदेव हि मे राजन्विविधाश्च क्रियास्तथा ॥₂₃॥

अदोमूलाः क्रियाः सर्वा मम राजन्न संशयः ।
बहूनां किं प्रलापेन न दास्ये कामदोहिनीम् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

कामधेनुं वसिष्ठोऽपि यदा न त्यजते मुनिः ।
तदास्य शबलां राम विश्वामित्रोऽन्वकर्षत ॥₁॥

नीयमाना तु शबला राम राज्ञा महात्मना ।
दुःखिता चिन्तयामास रुदन्ती शोककर्षिता ॥₂॥

परित्यक्ता वसिष्ठेन किमहं सुमहात्मना ।
याहं राजभृतैर्दीना ह्रियेयं भृशदुःखिता ॥₃॥

किं मयापकृतं तस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
यन्मामनागसं भक्तामिष्टां त्यजति धार्मिकः ॥₄॥

इति सा चिन्तयित्वा तु निःश्वस्य च पुनः पुनः ।
जगाम वेगेन तदा वसिष्ठं परमौजसम् ॥₅॥

निर्धूय तांस्तदा भृत्याञ्शतशः शत्रुसूदन ।
जगामानिलवेगेन पादमूलं महात्मनः ॥₆॥

शबला सा रुदन्ती च क्रोशन्ती चेदमब्रवीत् ।
वसिष्ठस्याग्रतः स्थित्वा मेघदुन्दुभिराविणी ॥₇॥

भगवन्किं परित्यक्ता त्वयाहं ब्रह्मणः सुत ।
यस्माद्राजभृता मां हि नयन्ते त्वत्सकाशतः ॥₈॥

एवमुक्तस्तु ब्रह्मर्षिरिदं वचनमब्रवीत् ।
शोकसन्तप्तहृदयां स्वसारमिव दुःखिताम् ॥₉॥

न त्वां त्यजामि शबले नापि मेऽपकृतं त्वया ।

एष त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबलः ॥₁₀॥

न हि तुल्यं बलं मह्यं राजा त्वद्य विशेषतः ।
बली राजा क्षत्रियश्च पृथिव्याः पतिरेव च ॥₁₁॥

इयमक्षौहिणीपूर्णा सवाजिरथसङ्कुला ।
हस्तिध्वजसमाकीर्णा तेनासौ बलवत्तरः ॥₁₂॥

एवमुक्ता वसिष्ठेन प्रत्युवाच विनीतवत् ।
वचनं वचनज्ञा सा ब्रह्मर्षिममितप्रभम् ॥₁₃॥

न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणो बलवत्तरः ।
ब्रह्मन्ब्रह्मबलं दिव्यं क्षत्रात्तु बलवत्तरम् ॥₁₄॥

अप्रमेयबलं तुभ्यं न त्वया बलवत्तरः ।
विश्वामित्रो महावीर्यस्तेजस्तव दुरासदम् ॥₁₅॥

नियुञ्ज मां महातेजस्वद्ब्रह्मबलसम्भृताम् ।
तस्य दर्पं बलं यत्तन्नाशयामि दुरात्मनः ॥₁₆॥

इत्युक्तस्तु तया राम वसिष्ठः सुमहायशाः ।
सृजस्वेति तदोवाच बलं परबलारुजम् ॥₁₇॥

तस्या हुम्भारवोत्सृष्टाः पल्लवाः शतशो नृप ।
नाशयन्ति बलं सर्वं विश्वामित्रस्य पश्यतः ॥₁₈॥

स राजा परमक्रुद्धः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
पल्लवान्नाशयामास शस्त्रैरुच्चावचैरपि ॥₁₉॥

विश्वामित्रादितान्दृष्ट्वा पल्लवाञ्शतशस्तदा ।
भूय एवासृजद्धोराञ्शकान्यवनमिश्रितान् ॥₂₀॥

तैरासीत्संवृता भूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः ।

प्रभावद्भिर्महावीर्यैर्हमकिञ्चल्कसंनिभैः ॥₂₁॥

दीर्घासिपट्टिशधरैर्हमवर्णाम्बरावृतैः ।
निर्दग्धं तद्धलं सर्वं प्रदीप्तैरिव पावकैः ॥₂₂॥

ततोऽस्त्राणि महातेजा विश्वामित्रो मुमोच ह ॥₂₃॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततस्तानाकुलान्दृष्ट्वा विश्वामित्रास्त्रमोहितान् ।
वसिष्ठश्चोदयामास कामधुक्सृज योगतः ॥₁॥

तस्या हुम्भारवाञ्जाताः काम्बोजा रविसंनिभाः ।
ऊधसस्त्वथ संजाताः पल्लवाः शस्त्रपाणयः ॥₂॥

योनिदेशाच्च यवनः शकृद्देशाच्छकास्तथा ।
रोमकूपेषु मेच्छाश्च हरीताः सकिरातकाः ॥₃॥

तैस्तन्निषूदितं सैन्यं विश्वामित्रस्य तत्क्षणात् ।
सपदातिगजं साश्वं सरथं रघुनन्दन ॥₄॥

दृष्ट्वा निषूदितं सैन्यं वसिष्ठेन महात्मना ।
विश्वामित्रसुतानां तु शतं नानाविधायुधम् ॥₅॥

अभ्यधावत्सुसङ्क्रुद्धं वसिष्ठं जपतां वरम् ।
हुङ्कारेणैव तान्सर्वान्निर्ददाह महानृषिः ॥₆॥

ते साश्वरथपादाता वसिष्ठेन महात्मना ।
भस्मीकृता मुहूर्तेन विश्वामित्रसुतास्तदा ॥₇॥

दृष्ट्वा विनाशितान्पुत्रान्बलं च सुमहायशाः ।
सव्रीडश्चिन्तयाविष्टो विश्वामित्रोऽभवत्तदा ॥₈॥

सन्दुर इव निर्वेगो भग्नदंष्ट्र इवोरगः ।
उपरक्त इवादित्यः सदो निष्प्रभतां गतः ॥₉॥

हतपुत्रबलो दीनो लूनपक्ष इव द्विजः ।

हतदर्पो हतोत्साहो निर्वेदं समपद्यत ॥₁₀॥

स पुत्रमेकं राज्याय पालयेति नियुज्य च ।
पृथिवीं क्षत्रधर्मेण वनमेवान्वपद्यत ॥₁₁॥

स गत्वा हिमवत्पार्श्वं किंनरोग्रसेवितम् ।
महादेवप्रसादार्थं तपस्तेपे महातपाः ॥₁₂॥

केनचिच्चथ कालेन देवेशो वृषभध्वजः ।
दर्शयामास वरदो विश्वामित्रं महामुनिम् ॥₁₃॥

किमर्थं तप्यसे राजन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
वरदोऽस्मि वरो यस्ते काङ्क्षितः सोऽभिधीयताम् ॥₁₄॥

एवमुक्तस्तु देवेन विश्वामित्रो महातपाः ।
प्रणिपत्य महादेवमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₅॥

यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ ।
साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम् ॥₁₆॥

यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु ।
गन्धर्वयक्षरक्षःसु प्रतिभान्तु ममानघ ॥₁₇॥

तव प्रसादाद्भवतु देवदेव ममेप्सितम् ।
एवमस्त्विति देवेशो वाक्यमुक्त्वा दिवं गतः ॥₁₈॥

प्राप्य चास्त्राणि राजर्षिर्विश्वामित्रो महाबलः ।
दर्पेण महता युक्तो दर्पपूर्णोऽभवत्तदा ॥₁₉॥

विवर्धमानो वीर्येण समुद्र इव पर्वणि ।
हतमेव तदा मेने वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥₂₀॥

ततो गत्वाश्रमपदं मुमोचास्त्राणि पार्थिवः ।

यैस्तत्तपोवनं सर्वं निर्दग्धं चास्त्रतेजसा ॥₂₁॥

उदीर्यमाणमस्त्रं तद्विश्वामित्रस्य धीमतः ।
दृष्ट्वा विप्रद्रुता भीता मुनयः शतशो दिशः ॥₂₂॥

वसिष्ठस्य च ये शिष्यास्तथैव मृगपक्षिणः ।
विद्रवन्ति भयाद्भीता नानादिग्भ्यः सहस्रशः ॥₂₃॥

वसिष्ठस्याश्रमपदं शून्यमासीन्महात्मनः ।
मुहूर्तमिव निःशब्दमासीदीरिणसंनिभम् ॥₂₄॥

वदतो वै वसिष्ठस्य मा भैष्टेति मुहुर्मुहुः ।
नाशयाम्यद्य गाधेयं नीहारमिव भास्करः ॥₂₅॥

एवमुक्त्वा महातेजा वसिष्ठो जपतां वरः ।
विश्वामित्रं तदा वाक्यं सरोषमिदमब्रवीत् ॥₂₆॥

आश्रमं चिरसंवृद्धं यद्विनाशितवानसि ।
दुराचारोऽसि यन्मूढ तस्माच्च न भविष्यसि ॥₂₇॥

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो दण्डमुद्यम्य सत्वरः ।
विधूम इव कालाग्निर्यमदण्डमिवापरम् ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महाबलः ।
आग्नेयमस्त्रमुत्क्षिप्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥₁॥

वसिष्ठो भगवान्क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥₂॥

क्षत्रबन्धो स्थितोऽस्म्येष यद्वलं तद्विदर्शय ।
नाशयाम्येष ते दर्पं शस्त्रस्य तव गाधिज ॥₃॥

क्व च ते क्षत्रियबलं क्व च ब्रह्मबलं महत् ।
पश्य ब्रह्मबलं दिव्यं मम क्षत्रियपांसन ॥₄॥

तस्यास्त्रं गाधिपुत्रस्य घोरमाग्नेयमुत्तमम् ।
ब्रह्मदण्डेन तच्छान्तमग्नेर्वेग इवाम्भसा ॥₅॥

वारुणं चैव रौद्रं च ऐन्द्रं पाशुपतं तथा ।
ऐषीकं चापि चिक्षेप रुषितो गाधिनन्दनः ॥₆॥

मानवं मोहनं चैव गान्धर्वं स्वापनं तथा ।
जृम्भणं मोहनं चैव सन्तापनविलापने ॥₇॥

शोषणं दारणं चैव वज्रमस्त्रं सुदुर्जयम् ।
ब्रह्मपाशं कालपाशं वारुणं पाशमेव च ॥₈॥

पिनाकास्त्रं च दयितं शुष्कार्द्रं अशनी तथा ।
दण्डास्त्रमथ पैशाचं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥₉॥

धर्मचक्रं कालचक्रं विष्णुचक्रं तथैव च ।
वायव्यं मथनं चैव अस्त्रं हयशिरस्तथा ॥₁₀॥

शक्तिद्वयं च चिक्षेप कङ्कालं मुसलं तथा ।
वैद्याधरं महास्त्रं च कालास्त्रमथ दारुणम् ॥₁₁॥

त्रिशूलमस्त्रं घोरं च कापालमथ कङ्कणम् ।
एतान्यस्त्राणि चिक्षेप सर्वाणि रघुनन्दन ॥₁₂॥

वसिष्ठे जपतां श्रेष्ठे तदद्भुतमिवाभवत् ।
तानि सर्वाणि दण्डेन ग्रसते ब्रह्मणः सुतः ॥₁₃॥

तेषु शान्तेषु ब्रह्मास्त्रं क्षिप्तवान्गाधिनन्दनः ।
तदस्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा देवाः साग्निपुरोगमाः ॥₁₄॥

देवर्षयश्च सम्भ्रान्ता गन्धर्वाः समहोरगाः ।
त्रैलोक्यमासीत्सन्तस्तं ब्रह्मास्त्रे समुदीरिते ॥₁₅॥

तदप्यस्त्रं महाघोरं ब्राह्मं ब्राह्मेण तेजसा ।
वसिष्ठो ग्रसते सर्वं ब्रह्मदण्डेन राघव ॥₁₆॥

ब्रह्मास्त्रं ग्रसमानस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
त्रैलोक्यमोहनं रौद्रं रूपमासीत्सुदारुणम् ॥₁₇॥

रोमकूपेषु सर्वेषु वसिष्ठस्य महात्मनः ।
मरीच्य इव निष्पेतुरग्नेर्धूमाकुलार्चिषः ॥₁₈॥

प्राज्वलद्ब्रह्मदण्डश्च वसिष्ठस्य करोद्यतः ।
विधूम इव कालाग्निर्यमदण्ड इवापरः ॥₁₉॥

ततोऽस्तुवन्मुनिगणा वसिष्ठं जपतां वरम् ।
अमोघं ते बलं ब्रह्मस्तेजो धारय तेजसा ॥₂₀॥

निगृहीतस्त्वया ब्रह्मन्विश्वामित्रो महातपाः ।
प्रसीद जपतां श्रेष्ठ लोकाः सन्तु गतव्यथाः ॥₂₁॥

एवमुक्तो महातेजाः शमं चक्रे महातपाः ।
विश्वामित्रोऽपि निकृतो विनिःश्वस्येदमब्रवीत् ॥₂₂॥

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥₂₃॥

तदेतत्समवेक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रियमानसः ।
तपो महत्समास्थास्ये यद्वै ब्रह्मब्रकारकम् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥षट्चाशत्तमः सर्गः॥

ततः सन्तप्तहृदयः स्मरन्निग्रहमात्मनः ।
विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य कृतवैरो महात्मना ॥₁॥

स दक्षिणां दिशं गत्वा महिष्या सह राघव ।
तताप परमं घोरं विश्वामित्रो महातपाः ।
फलमूलाशनो दान्तश्चचार परमं तपः ॥₂॥

अथास्य जज्ञिरे पुत्राः सत्यधर्मपरायणाः ।
हविष्पन्दो मधुष्पन्दो दृढनेत्रो महारथः ॥₃॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विश्वामित्रं तपोधनम् ॥₄॥

जिता राजर्षिलोकास्ते तपसा कुशिकात्मज ।
अनेन तपसा त्वां हि राजर्षिरिति विद्महे ॥₅॥

एवमुक्त्वा महातेजा जगाम सह दैवतैः ।
त्रिविष्टपं ब्रह्मलोकं लोकानां परमेश्वरः ॥₆॥

विश्वामित्रोऽपि तच्छ्रुत्वा हिया किञ्चिदवाङ्मुखः ।
दुःखेन महताविष्टः समन्युरिदमब्रवीत् ॥₇॥

तपश्च सुमहत्तप्तं राजर्षिरिति मां विदुः ।
देवाः सर्षिगणाः सर्वे नास्ति मन्ये तपःफलम् ॥₈॥

एवं निश्चित्य मनसा भूय एव महातपाः ।
तपश्चचार काकुत्स्थ परमं परमात्मवान् ॥₉॥

एतस्मिन्नेव काले तु सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
त्रिशङ्कुरिति विख्यात इक्ष्वाकु कुलनन्दनः ॥₁₀॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना यजेयमिति राघव ।
गच्छेयं स्वशरीरेण देवानां परमां गतिम् ॥₁₁॥

स वसिष्ठं समाहूय कथयामास चिन्तितम् ।
अशक्यमिति चाप्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना ॥₁₂॥

प्रत्याख्यातो वसिष्ठेन स ययौ दक्षिणां दिशम् ।
वसिष्ठा दीर्घ तपसस्तपो यत्र हि तेपिरे ॥₁₃॥

त्रिशङ्कुः सुमहातेजाः शतं परमभास्वरम् ।
वसिष्ठपुत्रान्दृष्टे तप्यमानान्यशस्त्रिनः ॥₁₄॥

सोऽभिगम्य महात्मानः सर्वानेव गुरोः सुतान् ।
अभिवाद्यानुपूर्व्येण द्विया किञ्चिदवाङ्मुखः ।
अब्रवीत्सुमहातेजाः सर्वानेव कृताञ्जलिः ॥₁₅॥

शरणं वः प्रपद्येऽहं शरण्याञ्शरणागतः ।
प्रत्याख्यातोऽस्मि भद्रं वो वसिष्ठेन महात्मना ॥₁₆॥

यष्टुकामो महायज्ञं तदनुज्ञातुमर्थथ ।
गुरुपुत्रानहं सर्वान्नमस्कृत्य प्रसादये ॥₁₇॥

शिरसा प्रणतो याचे ब्राह्मणांस्तपसि स्थितान् ।
ते मां भवन्तः सिद्ध्यर्थं याजयन्तु समाहिताः ।
सशरीरो यथाहं हि देवलोकमवाप्नुयाम् ॥₁₈॥

प्रत्याख्यातो वसिष्ठेन गतिमन्यां तपोधनाः ।
गुरुपुत्रानृते सर्वान्नाहं पश्यामि काश्चन ॥₁₉॥

इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमा गतिः ।

तस्मादनन्तरं सर्वे भवन्तो दैवतं मम ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्चाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततस्त्रिशङ्कोर्वचनं श्रुत्वा क्रोधसमन्वितम् ।
ऋषिपुत्रशतं राम राजानमिदमब्रवीत् ॥₁॥

प्रत्याख्यातोऽसि दुर्बुद्धे गुरुणा सत्यवादिना ।
तं कथं समतिक्रम्य शाखान्तरमुपेयिवान् ॥₂॥

इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमा गतिः ।
न चातिक्रमितुं शक्यं वचनं सत्यवादिनः ॥₃॥

अशक्यमिति चोवाच वसिष्ठो भगवानृषिः ।
तं वयं वै समाहर्तुं क्रतुं शक्ताः कथं तव ॥₄॥

बालिशस्त्वं नरश्रेष्ठ गम्यतां स्वपुरं पुनः ।
याजने भगवाञ्शक्तस्त्रैलोक्यस्यापि पार्थिव ॥₅॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ।
स राजा पुनरेवैतानिदं वचनमब्रवीत् ॥₆॥

प्रत्याख्यातोऽस्मि गुरुणा गुरुपुत्रैस्तथैव च ।
अन्यां गतिं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु तपोधनाः ॥₇॥

ऋषिपुत्रास्तु तच्छ्रुत्वा वाक्यं घोराभिसंहितम् ।
शेषुः परमसङ्क्रुद्धाश्चण्डालत्वं गमिष्यसि ।
एवमुक्त्वा महात्मानो विविशुस्ते स्वमाश्रमम् ॥₈॥

अथ रात्र्यां व्यतीतायां राजा चण्डालतां गतः ।
नीलवस्त्रधरो नीलः परुषो ध्वस्तमूर्धजः ।
चित्यमाल्यानुलेपश्च आयसाभरणोऽभवत् ॥₉॥

तं दृष्ट्वा मन्त्रिणः सर्वे त्यक्त्वा चण्डालरूपिणम् ।
प्राद्रवन्सहिता राम पौरा येऽस्यानुगामिनः ॥¹⁰॥

एको हि राजा काकुत्स्थ जगाम परमात्मवान् ।
दह्यमानो दिवारात्रं विश्वामित्रं तपोधनम् ॥¹¹॥

विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा राजानं विफलीकृतम् ।
चण्डालरूपिणं राम मुनिः कारुण्यमागतः ॥¹²॥

कारुण्यात्स महातेजा वाक्यं परम धार्मिकः ।
इदं जगाद भद्रं ते राजानं घोरदर्शनम् ॥¹³॥

किमागमनकार्यं ते राजपुत्र महाबल ।
अयोध्याधिपते वीर शापाच्चण्डालतां गतः ॥¹⁴॥

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा चण्डालतां गतः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥¹⁵॥

प्रत्याख्यातोऽस्मि गुरुणा गुरुपुत्रैस्तथैव च ।
अनवाप्यैव तं कामं मया प्राप्तो विपर्ययः ॥¹⁶॥

सशरीरो दिवं यायामिति मे सौम्यदर्शनम् ।
मया चेष्टं क्रतुशतं तच्च नावाप्यते फलम् ॥¹⁷॥

अनृतं नोक्त पूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
कृच्छ्रेष्वपि गतः सौम्य क्षत्रधर्मेण ते शपे ॥¹⁸॥

यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं प्रजा धर्मेण पालिताः ।
गुरवश्च महात्मानः शीलवृत्तेन तोषिताः ॥¹⁹॥

धर्मे प्रयतमानस्य यज्ञं चाहर्तुमिच्छतः ।
परितोषं न गच्छन्ति गुरवो मुनिपुङ्गव ॥²⁰॥

दैवमेव परं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ।
दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः ॥₂₁॥

तस्य मे परमार्तस्य प्रसादमभिकाङ्क्षतः ।
कर्तुमर्हसि भद्रं ते दैवोपहतकर्मणः ॥₂₂॥

नान्यां गतिं गमिष्यामि नान्यः शरणमस्ति मे ।
दैवं पुरुषकारेण निवर्तयितुमर्हसि ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

उक्तवाक्यं तु राजानं कृपया कुशिकात्मजः ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साक्षाच्चण्डालरूपिणम् ॥₁॥

इक्ष्वाको स्वागतं वत्स जानामि त्वां सुधार्मिकम् ।
शरणं ते भविष्यामि मा भैषीर्नृपपुङ्गव ॥₂॥

अहमामन्त्रये सर्वान्महर्षीन्पुण्यकर्मणः ।
यज्ञसाह्यकरान्राजंस्ततो यक्ष्यसि निर्वृतः ॥₃॥

गुरुशापकृतं रूपं यदिदं त्वयि वर्तते ।
अनेन सह रूपेण सशरीरो गमिष्यसि ॥₄॥

हस्तप्राप्तमहं मन्ये स्वर्गं तव नरेश्वर ।
यस्त्वं कौशिकमागम्य शरण्यं शरणं गतः ॥₅॥

एवमुक्त्वा महातेजाः पुत्रान्परमधार्मिकान् ।
व्यादिदेश महाप्राज्ञान्यज्ञसम्भारकारणात् ॥₆॥

सर्वाञ्शिष्यान्समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥₇॥

सर्वानृषिवरान्वत्सा आनयध्वं ममाज्ञया ।
सशिष्यान्सुहृदश्चैव सर्बिजः सुबहुश्रुतान् ॥₈॥

यदन्यो वचनं ब्रूयान्मद्वाक्यबलचोदितः ।
तत्सर्वमखिलेनोक्तं ममाख्येयमनादृतम् ॥₉॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दिशो जग्मुस्तदाज्ञया ।
आजग्मुरथ देशेभ्यः सर्वेभ्यो ब्रह्मवादिनः ॥₁₀॥

ते च शिष्याः समागम्य मुनिं ज्वलिततेजसम् ।
ऊचुश्च वचनं सर्वे सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम् ॥¹¹॥

श्रुत्वा ते वचनं सर्वे समायान्ति द्विजातयः ।
सर्वदेशेषु चागच्छन्वर्जयित्वा महोदयम् ॥¹²॥

वासिष्ठं तच्छतं सर्वं क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ।
यदाह वचनं सर्वं शृणु त्वं मुनिपुङ्गव ॥¹³॥

क्षत्रियो याजको यस्य चण्डालस्य विशेषतः ।
कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षयः ॥¹⁴॥

ब्राह्मणा वा महात्मानो भुक्त्वा चण्डालभोजनम् ।
कथं स्वर्गं गमिष्यन्ति विश्वामित्रेण पालिताः ॥¹⁵॥

एतद्वचनं नैष्ठुर्यमूचुः संरक्तलोचनाः ।
वासिष्ठा मुनिशार्दूल सर्वे ते समहोदयाः ॥¹⁶॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सर्वेषां मुनिपुङ्गवः ।
क्रोधसंरक्तनयनः सरोषमिदमब्रवीत् ॥¹⁷॥

यदूषयन्त्यदुष्टं मां तप उग्रं समास्थितम् ।
भस्मीभूता दुरात्मानो भविष्यन्ति न संशयः ॥¹⁸॥

अद्य ते कालपाशेन नीता वैवस्वतक्षयम् ।
सप्तजातिशतान्येव मृतपाः सन्तु सर्वशः ॥¹⁹॥

श्वमांसनियताहारा मुष्टिका नाम निर्घृणाः ।
विकृताश्च विरूपाश्च लोकाननुचरन्त्विमान् ॥²⁰॥

महोदयश्च दुर्बुद्धिर्मामदूष्यं ह्यदूषयत् ।
दूषिटः सर्वलोकेषु निषादत्वं गमिष्यति ॥²¹॥

प्राणातिपातनिरतो निरनुक्रोशतां गतः ।
दीर्घकालं मम क्रोधाद्गुर्गतिं वर्तयिष्यति ॥₂₂॥

एतावदुक्त्वा वचनं विश्वामित्रो महातपाः ।
विरराम महातेजा ऋषिमध्ये महामुनिः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

तपोबलहतान्कृत्वा वासिष्ठान्समहोदयान् ।
ऋषिमध्ये महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥₁॥

अयमिक्ष्वाकुदायादस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ।
धर्मिष्ठश्च वदान्यश्च मां चैव शरणं गतः ।
स्वनानेन शरीरेण देवलोकजिगीषया ॥₂॥

यथायं स्वशरीरेण देवलोकं गमिष्यति ।
तथा प्रवर्त्यतां यज्ञो भवद्भिश्च मया सह ॥₃॥

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ।
ऊचुः समेत्य सहिता धर्मज्ञा धर्मसंहितम् ॥₄॥

अयं कुशिकदायादो मुनिः परमकोपनः ।
यदाह वचनं सम्यगेतत्कार्यं न संशयः ॥₅॥

अग्निकल्पो हि भगवाञ्क्षापं दास्यति रोषितः ।
तस्मात्प्रवर्त्यतां यज्ञः सशरीरो यथा दिवम् ।
गच्छेदिक्ष्वाकुदायादो विश्वामित्रस्य तेजसा ॥₆॥

ततः प्रवर्त्यतां यज्ञः सर्वे समधितिष्ठते ॥₇॥

एवमुक्त्वा महर्षयः संजहुस्ताः क्रियास्तदा ।
याजकाश्च महातेजा विश्वामित्रोऽभवत्क्रतौ ॥₈॥

ऋत्विजश्चानुपूर्व्येण मन्त्रवन्मन्त्रकोविदाः ।
चक्रुः सर्वाणि कर्माणि यथाकल्पं यथाविधि ॥₉॥

ततः कालेन महता विश्वामित्रो महातपाः ।

चकारावाहनं तत्र भागार्थं सर्वदेवताः ॥₁₀॥

नाह्यागमंस्तदाहूता भागार्थं सर्वदेवताः ।
ततः क्रोधसमाविष्टो विश्वमित्रो महामुनिः ॥₁₁॥

स्रुवमुद्यम्य सक्रोधस्त्रिशङ्कुमिदमब्रवीत् ।
पश्य मे तपसो वीर्यं स्वार्जितस्य नरेश्वर ॥₁₂॥

एष त्वां स्वशरीरेण नयामि स्वर्गमोजसा ।
दुष्प्रापं स्वशरीरेण दिवं गच्छ नराधिप ॥₁₃॥

स्वार्जितं किञ्चिदप्यस्ति मया हि तपसः फलम् ।
राजंस्त्वं तेजसा तस्य सशरीरो दिवं व्रज ॥₁₄॥

उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्सशरीरो नरेश्वरः ।
दिवं जगाम काकुत्स्थ मुनीनां पश्यतां तदा ॥₁₅॥

देवलोकगतं दृष्ट्वा त्रिशङ्कुं पाकशासनः ।
सह सर्वैः सुरगणैरिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₆॥

त्रिशङ्को गच्छ भूयस्त्वं नासि स्वर्गकृतालयः ।
गुरुशापहतो मूढ पत भूमिमवाक्शिराः ॥₁₇॥

एवमुक्तो महेन्द्रेण त्रिशङ्कुरपतत्पुनः ।
विक्रोशमानस्त्राहीति विश्वामित्रं तपोधनम् ॥₁₈॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य क्रोशमानस्य कौशिकः ।
रोषमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥₁₉॥

ऋषिमध्ये स तेजस्वी प्रजापतिरिवापरः ।
सृजन्दक्षिणमार्गस्थान्सप्तर्षीनपरान्पुनः ॥₂₀॥

नक्षत्रमालामपरामसृजत्क्रोधमूर्छितः ।
दक्षिणां दिशमास्थाय मुनिमध्ये महायशाः ॥₂₁॥

सृष्ट्वा नक्षत्रवंशं च क्रोधेन कलुषीकृतः ।
अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रकः ।
दैवतान्यपि स क्रोधात्स्रष्टुं समुपचक्रमे ॥₂₂॥

ततः परमसम्भ्रान्ताः सर्षिसङ्घाः सुरर्षभाः ।
विश्वामित्रं महात्मानमूचुः सानुनयं वचः ॥₂₃॥

अयं राजा महाभाग गुरुशापपरिक्षतः ।
सशरीरो दिवं यातुं नार्हत्येव तपोधन ॥₂₄॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां मुनिपुङ्गवः ।
अब्रवीत्सुमहद्वाक्यं कौशिकः सर्वदेवताः ॥₂₅॥

सशरीरस्य भद्रं वस्तिशङ्कोरस्य भूपतेः ।
आरोहणं प्रतिज्ञाय नानृतं कर्तुमुत्सहे ॥₂₆॥

सर्गोऽस्तु सशरीरस्य त्रिशङ्कोरस्य शाश्वतः ।
नक्षत्राणि च सर्वाणि मामकानि ध्रुवाण्यथ ॥₂₇॥

यावल्लोका धरिष्यन्ति तिष्ठन्चेतानि सर्वशः ।
मत्कृतानि सुराः सर्वे तदनुज्ञातुमर्हथ ॥₂₈॥

एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्मुनिपुङ्गवम् ॥₂₉॥

एवं भवतु भद्रं ते तिष्ठन्चेतानि सर्वशः ।
गगने तान्यनेकानि वैश्वानरपथाद्बहिः ॥₃₀॥

नक्षत्राणि मुनिश्रेष्ठ तेषु ज्योतिःषु जाज्वलन् ।
अवाक्शिरास्त्रिशङ्कुश्च तिष्ठत्बमरसंनिभः ॥₃₁॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा सर्वदेवैरभिष्टुतः ।

ऋषिभिश्च महातेजा बाढमित्याह देवताः ॥₃₂॥

ततो देवा महात्मानो मुनयश्च तपोधनाः ।
जग्मुर्यथागतं सर्वे यज्ञस्यान्ते नरोत्तम ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्ठितमः सर्गः॥

विश्वामित्रो महात्माथ प्रस्थितान्प्रेक्ष्य तानृषीन् ।
अब्रवीन्नरशार्दूल सर्वास्तान्वनवासिनः ॥₁॥

महाविघ्नः प्रवृत्तोऽयं दक्षिणामास्थितो दिशम् ।
दिशमन्यां प्रपत्स्यामस्तत्र तप्स्यामहे तपः ॥₂॥

पश्चिमायां विशालायां पुष्करेषु महात्मनः ।
सुखं तपश्चरिष्यामः परं तद्धि तपोवनम् ॥₃॥

एवमुक्त्वा महातेजाः पुष्करेषु महामुनिः ।
तप उग्रं दुराधर्षं तेपे मूलफलाशनः ॥₄॥

एतस्मिन्नेव काले तु अयोध्याधिपतिर्नृपः ।
अम्बरीष इति ख्यातो यष्टुं समुपचक्रमे ॥₅॥

तस्य वै यजमानस्य पशुमिन्द्रो जहार ह ।
प्रनष्टे तु पशौ विप्रो राजानमिदमब्रवीत् ॥₆॥

पशुरद्य हृतो राजन्प्रनष्टस्तव दुर्नयात् ।
अरक्षितारं राजानं घ्नन्ति दोषा नरेश्वर ॥₇॥

प्रायश्चित्तं महद्ध्येतन्नरं वा पुरुषर्षभ ।
आनयस्व पशुं शीघ्रं यावत्कर्म प्रवर्तते ॥₈॥

उपाध्याय वचः श्रुत्वा स राजा पुरुषर्षभ ।
अन्वियेष महाबुद्धिः पशुं गोभिः सहस्रशः ॥₉॥

देशाञ्जनपदांस्तांस्तान्नगराणि वनानि च ।

आश्रमाणि च पुण्यानि मार्गमाणो महीपतिः ॥₁₀॥

स पुत्रसहितं तात सभार्यं रघुनन्दन ।
भृगुतुन्दे समासीनमृचीकं सन्ददर्श ह ॥₁₁॥

तमुवाच महातेजाः प्रणम्याभिप्रसाद्य च ।
ब्रह्मर्षिं तपसा दीप्तं राजर्षिरमितप्रभः ।
पृष्ट्वा सर्वत्र कुशलमृचीकं तमिदं वचः ॥₁₂॥

गवां शतसहस्रेण विक्रीणीषे सुतं यदि ।
पशोरर्थे महाभाग कृतकृत्योऽस्मि भार्गव ॥₁₃॥

सर्वे परिसृता देशा यज्ञियं न लभे पशुम् ।
दातुमर्हसि मूल्येन सुतमेकमितो मम ॥₁₄॥

एवमुक्तो महातेजा ऋचीकस्त्वब्रवीद्वचः ।
नाहं ज्येष्ठं नरश्रेष्ठं विक्रीणीयां कथञ्चन ॥₁₅॥

ऋचीकस्य वचः श्रुत्वा तेषां माता महात्मनाम् ।
उवाच नरशार्दूलमम्बरीषं तपस्विनी ॥₁₆॥

ममापि दयितं विद्धि कनिष्ठं शुनकं नृप ॥₁₇॥

प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठाः पितृषु वल्लभाः ।
मातृणां च कनीयांसस्तस्माद्रक्षे कनीयसम् ॥₁₈॥

उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्मुनिपत्न्यां तथैव च ।
शुनःशेषः स्वयं राम मध्यमो वाक्यमब्रवीत् ॥₁₉॥

पिता ज्येष्ठमविक्रेयं माता चाह कनीयसम् ।
विक्रीतं मध्यमं मन्ये राजन्पुत्रं नयस्व माम् ॥₂₀॥

गवां शतसहस्रेण शुनःशेषं नरेश्वरः ।
गृहीत्वा परमप्रीतो जगाम रघुनन्दन ॥₂₁॥

अम्बरीषस्तु राजर्षी रथमारोप्य सत्वरः ।

शुनःशेषं महातेजा जगामाशु महायशाः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

शुनःशेषं नरश्रेष्ठ गृहीत्वा तु महायशाः ।
व्यश्राम्यत्पुष्करे राजा मध्याह्ने रघुनन्दन ॥₁॥

तस्य विश्रममाणस्य शुनःशेषो महायशाः ।
पुष्करं श्रेष्ठमागम्य विश्वामित्रं ददर्श ह ॥₂॥

विषण्णवदनो दीनस्तृष्ण्या च श्रमेण च ।
पपाताङ्के मुने राम वाक्यं चेदमुवाच ह ॥₃॥

न मेऽस्ति माता न पिता ज्ञातयो बान्धवाः कुतः ।
त्रातुमर्हसि मां सौम्य धर्मेण मुनिपुङ्गव ॥₄॥

त्राता त्वं हि मुनिश्रेष्ठ सर्वेषां त्वं हि भावनः ।
राजा च कृतकार्यः स्यादहं दीर्घायुरव्ययः ॥₅॥

स्वर्गलोकमुपाश्रीयां तपस्तत्त्वा ह्यनुत्तमम् ।
स मे नाथो ह्यनाथस्य भव भव्येन चेतसा ।
पितेव पुत्रं धर्मात्मंस्त्रातुमर्हसि किञ्चिषात् ॥₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः ।
सान्त्वयित्वा बहुविधं पुत्रानिदमुवाच ह ॥₇॥

यत्कृते पितरः पुत्राञ्जनयन्ति शुभार्थिनः ।
परलोकहितार्थाय तस्य कालोऽयमागतः ॥₈॥

अयं मुनिसुतो बालो मत्तः शरणमिच्छति ।
अस्य जीवितमात्रेण प्रियं कुरुत पुत्रकाः ॥₉॥

सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे धर्मपरायणाः ।
पशुभूता नरेन्द्रस्य तृप्तिमग्नेः प्रयच्छत ॥₁₀॥

नाथवांश्च शुनःशेपो यज्ञश्चाविघ्नतो भवेत् ।
देवतास्तर्पिताश्च स्युर्मम चापि कृतं वचः ॥₁₁॥

मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा मधुष्यन्दादयः सुताः ।
साभिमानं नरश्रेष्ठ सलीलमिदमब्रुवन् ॥₁₂॥

कथमात्मसुतान्हिवा त्रायसेऽन्यसुतं विभो ।
अकार्यमिव पश्यामः श्वमांसमिव भोजने ॥₁₃॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा पुत्राणां मुनिपुङ्गवः ।
क्रोधसंरक्तनयनो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥₁₄॥

निःसाध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपि विगर्हितम् ।
अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोमहर्षणम् ॥₁₅॥

श्वमांसभोजिनः सर्वे वासिष्ठा इव जातिषु ।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनुवत्स्यथ ॥₁₆॥

कृत्वा शापसमायुक्तान्पुत्रान्मुनिवरस्तदा ।
शुनःशेपमुवाचार्तं कृत्वा रक्षां निरामयाम् ॥₁₇॥

पवित्रपाशैरासक्तो रक्तमाल्यानुलेपनः ।
वैष्णवं यूपमासाद्य वाग्भिरग्निमुदाहर ॥₁₈॥

इमे तु गाथे द्वे दिव्ये गायेथा मुनिपुत्रक ।
अम्बरीषस्य यज्ञेऽस्मिंस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥₁₉॥

शुनःशेपो गृहीत्वा ते द्वे गाथे सुसमाहितः ।
त्वरया राजसिंहं तमम्बरीषमुवाच ह ॥₂₀॥

राजसिंह महासत्त्व शीघ्रं गच्छावहे सदः ।
निवर्तयस्व राजेन्द्र दीक्षां च समुपाहर ॥₂₁॥

तद्वाक्यमृषिपुत्रस्य श्रुत्वा हर्षं समुत्सुकः ।
जगाम नृपतिः शीघ्रं यज्ञवाटमतन्द्रितः ॥₂₂॥

सदस्यानुमते राजा पवित्रकृतलक्षणम् ।
पशुं रक्ताम्बरं कृत्वा यूपे तं समबन्धयत् ॥₂₃॥

स बद्धो वाग्भिरग्न्याभिरभितुष्टाव वै सुरौ ।
इन्द्रमिन्द्रानुजं चैव यथावन्मुनिपुत्रकः ॥₂₄॥

ततः प्रीतः सहस्राक्षो रहस्यस्तुतितर्पितः ।
दीर्घमायुस्तदा प्रादाच्छूनःशेषाय राघव ॥₂₅॥

स च राजा नरश्रेष्ठ यज्ञस्य च समाप्तवान् ।
फलं बहुगुणं राम सहस्राक्षप्रसादजम् ॥₂₆॥

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा भूयस्तेपे महातपाः ।
पुष्करेषु नरश्रेष्ठ दशवर्षशतानि च ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु व्रतस्नातं महामुनिम् ।
अभ्यागच्छन्सुराः सर्वे तपःफलचिकीर्षवः ॥₁॥

अब्रवीत्सुमहातेजा ब्रह्मा सुरुचिरं वचः ।
ऋषिस्त्वमसि भद्रं ते स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः ॥₂॥

तमेवमुक्त्वा देवेशस्त्रिदिवं पुनरभ्यगात् ।
विश्वामित्रो महातेजा भूयस्तेपे महत्तपः ॥₃॥

ततः कालेन महता मेनका परमाप्सराः ।
पुष्करेषु नरश्रेष्ठ स्नातुं समुपचक्रमे ॥₄॥

तां ददर्श महातेजा मेनकां कुशिकात्मजः ।
रूपेणाप्रतिमां तत्र विद्युतं जलदे यथा ॥₅॥

दृष्ट्वा कन्दर्पवशगो मुनिस्तामिदमब्रवीत् ।
अप्सरः स्वागतं तेऽस्तु वस चेह ममाश्रमे ।
अनुगृहीष्व भद्रं ते मदनेन सुमोहितम् ॥₆॥

इत्युक्त्वा सा वरारोहा तत्रावासमथाकरोत् ।
तपसो हि महाविघ्नो विश्वामित्रमुपागतः ॥₇॥

तस्यां वसन्त्यां वर्षाणि पञ्च पञ्च च राघव ।
विश्वामित्राश्रमे सौम्य सुखेन व्यतिचक्रमुः ॥₈॥

अथ काले गते तस्मिन्विश्वामित्रो महामुनिः ।
सत्रीड इव संवृत्तश्चिन्ताशोकपरायणः ॥₉॥

बुद्धिर्मुनेः समुत्पन्ना सामर्षा रघुनन्दन ।
सर्वं सुराणां कर्मैतत्तपोऽपहरणं महत् ॥₁₀॥

अहोरात्रापदेशेन गताः संवत्सरा दश ।
काममोहाभिभूतस्य विघ्नोऽयं प्रत्युपस्थितः ॥₁₁॥

विनिःश्वसन्मुनिवरः पश्चात्तापेन दुःखितः ॥₁₂॥

भीतामप्सरसं दृष्ट्वा वेपन्तीं प्राञ्जलिं स्थिताम् ।
मेनकां मधुरैर्वाक्यैर्विसृज्य कुशिकात्मजः ।
उत्तरं पर्वतं राम विश्वामित्रो जगाम ह ॥₁₃॥

स कृत्वा नैष्ठिकीं बुद्धिं जेतुकामो महायशः ।
कौशिकीतीरमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥₁₄॥

तस्य वर्षसहस्रं तु घोरं तप उपासतः ।
उत्तरे पर्वते राम देवतानामभूद्भयम् ॥₁₅॥

अमन्त्रयन्समागम्य सर्वे सर्षिगणाः सुराः ।
महर्षिशब्दं लभतां साध्वयं कुशिकात्मजः ॥₁₆॥

देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विश्वामित्रं तपोधनम् ॥₁₇॥

महर्षे स्वागतं वत्स तपसोग्रेण तोषितः ।
महत्त्वमृषिमुख्यत्वं ददामि तव कौशिक ॥₁₈॥

ब्रह्मणः स वचः श्रुत्वा विश्वामित्रस्तपोधनः ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम् ॥₁₉॥

ब्रह्मर्षि शब्दमतुलं स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः ।
यदि मे भगवानाह ततोऽहं विजितेन्द्रियः ॥₂₀॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा न तावच्चं जितेन्द्रियः ।

यतस्व मुनिशार्दूल इत्युक्त्वा त्रिदिवं गतः ॥₂₁॥

विप्रस्थितेषु देवेषु विश्वामित्रो महामुनिः ।
ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बो वायुभक्षस्तपश्चरन् ॥₂₂॥

धर्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्त्राकाशसंश्रयः ।
शिशिरे सलिलस्थायी रात्र्यहानि तपोधनः ॥₂₃॥

एवं वर्षसहस्रं हि तपो घोरमुपागमत् ।
तस्मिन्सन्तप्यमाने तु विश्वामित्रे महामुनौ ॥₂₄॥

सम्भ्रमः सुमहानासीत्सुराणां वासवस्य च ।
रम्भामप्सरसं शक्रः सह सर्वैर्मरुद्गणैः ॥₂₅॥

उवाचात्महितं वाक्यमहितं कौशिकस्य च॥₂₆॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

सुरकार्यमिदं रम्भे कर्तव्यं सुमहत्त्वया ।
लोभनं कौशिकस्येह काममोहसमन्वितम् ॥₁॥

तथोक्ता साप्सरा राम सहस्राक्षेण धीमता ।
व्रीडिता प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच सुरेश्वरम् ॥₂॥

अयं सुरपते घोरो विश्वामित्रो महामुनिः ।
क्रोधमुत्स्रक्ष्यते घोरं मयि देव न संशयः ।
ततो हि मे भयं देव प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₃॥

तामुवाच सहस्राक्षो वेपमानां कृताञ्जलिम् ।
मा भैषि रम्भे भद्रं ते कुरुष्व मम शासनम् ॥₄॥

कोकिलो हृदयग्राही माधवे रुचिरद्रुमे ।
अहं कन्दर्पसहितः स्थास्यामि तव पार्श्वतः ॥₅॥

त्वं हि रूपं बहुगुणं कृत्वा परमभास्वरम् ।
तमृषिं कौशिकं रम्भे भेदयस्व तपस्विनम् ॥₆॥

सा श्रुत्वा वचनं तस्य कृत्वा रूपमनुत्तमम् ।
लोभयामास ललिता विश्वामित्रं शुचिस्मिता ॥₇॥

कोकिलस्य तु शुश्राव वल्गु व्याहरतः स्वनम् ।
सम्प्रहृष्टेन मनसा तत एनामुदैक्षत ॥₈॥

अथ तस्य च शब्देन गीतेनाप्रतिमेन च ।
दर्शनेन च रम्भाया मुनिः सन्देहमागतः ॥₉॥

सहस्राक्षस्य तत्कर्म विज्ञाय मुनिपुङ्गवः ।
रम्भां क्रोधसमाविष्टः शशाप कुशिकात्मजः ॥₁₀॥

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम् ।
दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे ॥₁₁॥

ब्राह्मणः सुमहातेजास्तपोबलसमन्वितः ।
उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥₁₂॥

एवमुक्त्वा महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ।
अशक्नुवन्धारयितुं कोपं सन्तापमागतः ॥₁₃॥

तस्य शापेन महता रम्भा शैली तदाभवत् ।
वचः श्रुत्वा च कन्दर्पो महर्षेः स च निर्गतः ॥₁₄॥

कोपेन स महातेजास्तपोऽपहरणे कृते ।
इन्द्रियैरजितै राम न लेभे शान्तिमात्मनः ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

अथ हैमवतीं राम दिशं त्यक्त्वा महामुनिः ।
पूर्वा दिशमनुप्राप्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥₁॥

मौनं वर्षसहस्रस्य कृत्वा व्रतमनुत्तमम् ।
चकाराप्रतिमं राम तपः परमदुष्करम् ॥₂॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु काष्ठभूतं महामुनिम् ।
विघ्नैर्बहुभिराधूतं क्रोधो नान्तरमाविशत् ॥₃॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः पन्नगासुरराक्षसाः ।
मोहितास्तेजसा तस्य तपसा मन्दरश्मयः ।
कश्मलोपहताः सर्वे पितामहमथाब्रुवन् ॥₄॥

बहुभिः कारणैर्देव विश्वामित्रो महामुनिः ।
लोभितः क्रोधितश्चैव तपसा चाभिवर्धते ॥₅॥

न ह्यस्य वृजिनं किञ्चिद्दृश्यते सूक्ष्ममप्यथ
न दीयते यदि त्वस्य मनसा यदभीप्सितम् ।
विनाशयति त्रैलोक्यं तपसा सचराचरम्
व्याकुलाश्च दिशः सर्वा न च किञ्चित्प्रकाशते ॥₆॥

सागराः क्षुभिताः सर्वे विशीर्यन्ते च पर्वताः ।
प्रकम्पते च पृथिवी वायुर्वाति भृशाकुलः ॥₇॥

बुद्धिं न कुरुते यावन्नाशे देव महामुनिः ।
तावत्प्रसाद्यो भगवानग्निरूपो महाद्युतिः ॥₈॥

कालाग्निना यथा पूर्वं त्रैलोक्यं दह्यतेऽखिलम् ।

देवराज्ये चिकीर्षेत दीयतामस्य यन्मतम् ॥९॥

ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः ।
विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन् ॥१०॥

ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ।
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक ॥११॥

दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन्ददामि समरुद्रणः ।
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥१२॥

पितामहवचः श्रुत्वा सर्वेषां च दिवौकसाम् ।
कृत्वा प्रणामं मुदितो व्याजहार महामुनिः ॥१३॥

ब्राह्मण्यं यदि मे प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च ।
ओङ्कारोऽथ वषट्कारो वेदाश्च वरयन्तु माम् ॥१४॥

क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि ।
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मामेवं वदतु देवताः ।
यद्ययं परमः कामः कृतो यान्तु सुरर्षभाः ॥१५॥

ततः प्रसादितो देवैर्वसिष्ठो जपतां वरः ।
सख्यं चकार ब्रह्मर्षिरिवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥१६॥

ब्रह्मर्षिबन्धं न सन्देहः सर्वं सम्पत्स्यते तव ।
इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम् ॥१७॥

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम् ।
पूजयामास ब्रह्मर्षिं वसिष्ठं जपतां वरम् ॥१८॥

कृतकामो महीं सर्वां चचार तपसि स्थितः ।
एवं बनेन ब्राह्मण्यं प्राप्तं राम महात्मना ॥१९॥

एष राम मुनिश्रेष्ठ एष विग्रहवांस्तपः ।
एष धर्मः परो नित्यं वीर्यस्यैष परायणम् ॥₂₀॥

शतानन्दवचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणसंनिधौ ।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम् ॥₂₁॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव ।
यज्ञं काकुत्स्थ सहितः प्राप्तवानसि धार्मिक ॥₂₂॥

पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन्दर्शनेन महामुने ।
गुणा बहुविधाः प्राप्तास्तव सन्दर्शनान्मया ॥₂₃॥

विस्तरेण च ते ब्रह्मन्कीर्त्यमानं महत्तपः ।
श्रुतं मया महातेजो रामेण च महात्मना ॥₂₄॥

सदस्यैः प्राप्य च सदः श्रुतास्ते बहवो गुणाः ॥₂₅॥

अप्रमेयं तपस्तुभ्यमप्रमेयं च ते बलम् ।
अप्रमेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मज ॥₂₆॥

तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे विभो ।
कर्मकालो मुनिश्रेष्ठ लम्बते रविमण्डलम् ॥₂₇॥

श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः ।
स्वागतं तपसां श्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि ॥₂₈॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं वैदेहो मिथिलाधिपः ।
प्रदक्षिणं चकाराशु सोपाध्यायः सबान्धवः ॥₂₉॥

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा सहरामः सलक्ष्मणः ।
स्वं वाटमभिचक्राम पूज्यमानो महर्षिभिः ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः ।
विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥₁॥

तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह ॥₂॥

भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि तवानघ ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम् ॥₃॥

एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना ।
प्रत्युवाच मुनिर्वीरं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₄॥

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ ।
द्रष्टुकामौ धनुः श्रेष्ठं यदेतच्चयि तिष्ठति ॥₅॥

एतद्दर्शय भद्रं ते कृतकामौ नृपात्मजौ ।
दर्शनादस्य धनुषो यथेष्टं प्रतियास्यतः ॥₆॥

एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम् ।
श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिह तिष्ठति ॥₇॥

देवरात इति ख्यातो निमेः षष्ठो महीपतिः ।
न्यासोऽयं तस्य भगवन्हस्ते दत्तो महात्मना ॥₈॥

दक्षयज्ञवधे पूर्वं धनुरायम्य वीर्यवान् ।
रुद्रस्तु त्रिदशान्नोषात्सलीलमिदमब्रवीत् ॥₉॥

यस्माद्भागार्थिनो भागान्नाकल्पयत मे सुराः ।

वराङ्गानि महार्हाणि धनुषा शातयामि वः ॥₁₀॥

ततो विमनसः सर्वे देवा वै मुनिपुङ्गव ।
प्रसादयन्ति देवेशं तेषां प्रीतोऽभवद्भवः ॥₁₁॥

प्रीतियुक्तः स सर्वेषां ददौ तेषां महात्मनाम् ॥₁₂॥
तदेतद्देवदेवस्य धनूरत्नं महात्मनः ।
न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्माकं पूर्वके विभो ॥₁₃॥

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता मम ।
क्षेत्रं शोधयता लब्ध्वा नाम्ना सीतेति विश्रुता ॥₁₄॥

भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा ।
वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ॥₁₅॥

भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् ।
वरयामासुरागम्य राजानो मुनिपुङ्गव ॥₁₆॥

तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ।
वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम् ॥₁₇॥

ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुङ्गव ।
मिथिलामभ्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा ॥₁₈॥

तेषां जिज्ञासमानानां वीर्यं धनुरुपाहृतम् ।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा ॥₁₉॥

तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने ।
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन ॥₂₀॥

ततः परमकोपेन राजानो मुनिपुङ्गव ।
अरुन्धन्मिथिलां सर्वे वीर्यसन्देहमागताः ॥₂₁॥

आत्मानमवधूतं ते विज्ञाय मुनिपुङ्गव ।
रोषेण महताविष्टाः पीडयन्मिथिलां पुरीम् ॥₂₂॥

ततः संवत्सरे पूर्णे क्षयं यातानि सर्वशः ।
साधनानि मुनिरेष्ठ ततोऽहं भृशदुःखितः ॥₂₃॥

ततो देवगणान्सर्वास्तपसाहं प्रसादयम् ।
ददुश्च परमप्रीताश्चतुरङ्गबलं सुराः ॥₂₄॥

ततो भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः ।
अवीर्या वीर्यसन्दिग्धा सामात्याः पापकारिणः ॥₂₅॥

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत ॥₂₆॥

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने ।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चषष्ठितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः ।
धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम् ॥₁॥

ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह ।
धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यविभूषितम् ॥₂॥

जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन्पुरीम् ।
तद्धनुः पुरतः कृत्वा निर्जग्मुः पार्थिवाज्ञया ॥₃॥

नृपां शतानि पञ्चाशद्वायतानां महात्मनाम् ।
मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथञ्चन ॥₄॥

तामादाय तु मञ्जूषामायतीं यत्र तद्धनुः ।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥₅॥

इदं धनुर्वरं राजन्पूजितं सर्वराजभिः ।
मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदीच्छसि ॥₆॥

तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत ।
विश्वामित्रं महात्मानं तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥₇॥

इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम् ।
राजभिश्च महावीर्यैरशक्यं पूरितुं तदा ॥₈॥

नैतत्सुरगणाः सर्वे नासुरा न च राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥₉॥

क्व गतिर्मानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे ।

आरोपणे समायोगे वेपने तोलनेऽपि वा ॥₁₀॥

तदेतद्धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुङ्गव ।
दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥₁₁॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥₁₂॥

महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः ।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥₁₃॥

इदं धनुर्वरं ब्रह्मन्संस्पृशामीह पाणिना ।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥₁₄॥

बाढमित्येव तं राजा मुनिश्च समभाषत ।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥₁₅॥

पश्यतां नृषहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
आरोपयत्स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥₁₆॥

आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास वीर्यवान् ।
तद्वभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥₁₇॥

तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः ।
भूमिकम्पश्च सुमहान्पर्वतस्येव दीर्यतः ॥₁₈॥

निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः ।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥₁₉॥

प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन् राजा विगतसाध्वसः ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुङ्गवम् ॥₂₀॥

भगवन्दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः ।

अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥₂₁॥

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता ।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥₂₂॥

मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिक ।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता ॥₂₃॥

भवतोऽनुमते ब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः ।
मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः ॥₂₄॥

राजानं प्रश्नितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम ।
प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः ॥₂₅॥

मुनिगुप्तौ च काकुत्स्थौ कथयन्तु नृपाय वै ।
प्रीयमाणं तु राजानमानयन्तु सुशीघ्रगाः ॥₂₆॥

कौशिकश्च तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः ।
अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनात् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

॥सप्तषष्टितमः सर्गः॥

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः ।
त्रिरात्रमुषित्वा मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम् ॥₁॥

ते राजवचनाद्दूता राजवेश्मप्रवेशिताः ।
ददृशुर्देवसङ्काशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥₂॥

बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः ।
राजानं प्रयता वाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥₃॥

मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः ।
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम् ॥₄॥

मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंयुक्तया गिरा ।
जनकस्त्वां महाराज पृच्छते सपुरःसरम् ॥₅॥

पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः ।
कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥₆॥

पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा ।
राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥₇॥

सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्र पुरःसरैः ।
यदृच्छयागतैर्वीरिर्निर्जिता तव पुत्रकैः ॥₈॥

तच्च राजन्धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना ।
रामेण हि महाराज महत्यां जनसंसदि ॥₉॥

अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने ।

प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥₁₀॥

सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः ।
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥₁₁॥

प्रीतिं च मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि ।
पुत्रयोरुभयोरेव प्रीतिं त्वमपि लप्स्यसे ॥₁₂॥

एवं विदेहाधिपतिर्मधुरं वाक्यमब्रवीत् ।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः शतानन्दमते स्थितः ॥₁₃॥

दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः ।
वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणोऽन्यांश्च सोऽब्रवीत् ॥₁₄॥

गुप्तः कुशिकपुत्रेण कौसल्यानन्दवर्धनः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विदेहेषु वसत्यसौ ॥₁₅॥

दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना ।
सम्प्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥₁₆॥

यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः ।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥₁₇॥

मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः ।
सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति स मन्त्रिणः ॥₁₈॥

मन्त्रिणस्तु नरेन्द्रस्य रात्रिं परमसत्कृताः ।
ऊषुः प्रमुदिताः सर्वे गुणैः सर्वैः समन्विताः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तषष्ठितमः सर्गः॥

॥अष्टषष्टितमः सर्गः॥

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः ।
राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥₁॥

अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् ।
व्रजन्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥₂॥

चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः ।
ममाज्ञासमकालं च यानयुग्यमनुत्तमम् ॥₃॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा ॥₄॥

एते द्विजाः प्रयान्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ।
यथा कालात्ययो न स्याद्दूता हि ब्रूयन्ति माम् ॥₅॥

वचनाच्च नरेन्द्रस्य सा सेना चतुरङ्गिणी ।
राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वगात् ॥₆॥

गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् ।
राजा तु जनकः श्रीमाञ्श्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥₇॥

ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम् ।
जनको मुदितो राजा हर्षं च परमं ययौ ।
उवाच न नरश्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम् ॥₈॥

स्वागतं ते महाराज दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ।
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम् ॥₉॥

दिष्टा प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः ।
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः ॥₁₀॥

दिष्टा मे निर्जिता विघ्ना दिष्टा मे पूजितं कुलम् ।
राघवैः सह सम्बन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महात्मभिः ॥₁₁॥

श्वः प्रभाते नरेन्द्रेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि ।
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसम्मतम् ॥₁₂॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥₁₃॥

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा ।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम् ॥₁₄॥

तद्धर्मिष्ठं यशस्यं च वचनं सत्यवादिनः ।
श्रुत्वा विदेहाधिपतिः परं विस्मयमागतः ॥₁₅॥

ततः सर्वे मुनिगणाः परस्परसमागमे ।
हर्षेण महता युक्तास्तां निशामवसन्सुखम् ॥₁₆॥

राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः ।
उवास परमप्रीतो जनकेन सुपूजितः ॥₁₇॥

जनकोऽपि महातेजाः क्रिया धर्मेण तत्त्ववित् ।
यज्ञस्य च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिमुवास ह ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः॥

॥एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम् ॥₁॥

भ्राता मम महातेजा यवीयानतिधार्मिकः ।
कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥₂॥

वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम् ।
साङ्काश्यां पुण्यसङ्काशां विमानमिव पुष्पकम् ॥₃॥

तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः ।
प्रीतिं सोऽपि महातेजा इहमां भोक्ता मया सह ॥₄॥

शासनात्तु नरेन्द्रस्य प्रययुः शीघ्रवाजिभिः ।
समानेतुं नरव्याघ्रं विष्णुमिन्द्राज्ञया यथा ॥₅॥

आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः ॥₆॥

स ददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम् ।
सोऽभिवाद्य शतानन्दं राजानं चापि धार्मिकम् ॥₇॥

राजार्हं परमं दिव्यमासनं चाध्यरोहत ।
उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितौजसौ ॥₈॥

प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम् ।
गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमेक्ष्वाकममितप्रभम् ।
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्त्र समन्त्रिणम् ॥₉॥

औपकार्या स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम् ।
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥₁₀॥

अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः ।
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम् ॥¹¹॥

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तदा ।
सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते ॥¹²॥

स राजा मन्त्रिसहितः सोपाध्यायः सबान्धवः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत् ॥¹³॥

विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम् ।
वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः ॥¹⁴॥

विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः सह सर्वैर्महर्षिभिः ।
एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो मे यथाक्रमम् ॥¹⁵॥

तूष्णीम्भूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोहितम् ॥¹⁶॥

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः ।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥¹⁷॥

विवस्वान्कश्यपाञ्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्मृतः ।
मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥¹⁸॥

तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् ।
इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत ॥¹⁹॥

विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् ।
बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान् ॥²⁰॥

अनरण्यात्पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोः सुतः ।
त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशः ॥²¹॥

धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः ।
युवनाश्वसुतः श्रीमान्मान्धाता पृथिवीपतिः ॥²²॥

मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान्सुसन्धिरुदपद्यत ।
सुसन्धेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित् ॥²³॥

यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः ।
भरतात्तु महातेजा असितो नाम जायत ॥²⁴॥

सह तेन गरेणैव जातः स सगरोऽभवत् ।
सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् ॥²⁵॥

दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ।
भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थस्य रघुस्तथा ॥²⁶॥

रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ।
कल्माषपादो ह्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खुणः ॥²⁷॥

सुदर्शनः शङ्खुणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ।
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः ॥²⁸॥

मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात् ।
अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषः पृथिवीपतिः ॥²⁹॥

नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ।
नाभागस्य भभूवाज्ज अजादशरथोऽभवत् ।
तस्मादशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥³⁰॥

आदिवंशविशुद्धानां राज्ञां परमधर्मिणाम् ।
इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणां सत्यवादिनाम् ॥³¹॥

रामलक्ष्मणयोरर्थे ब्रह्मसुते वरये नृप ।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥³²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्ततितमः सर्गः॥

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
श्रोतुमर्हसि भद्रं ते कुलं नः कीर्तितं परम् ॥₁॥

प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः ।
वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामुने ॥₂॥

राजाभूत्तिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा ।
निमिः परमधर्मात्मा सर्वसच्चवतां वरः ॥₃॥

तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथि पुत्रकः ।
प्रथमो जनको नाम जनकादप्युदावसुः ॥₄॥

उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः ।
नन्दिवर्धन पुत्रस्तु सुकेतुर्नाम नामतः ॥₅॥

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति श्रुतः ॥₆॥

बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान् ।
महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः ॥₇॥

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ।
धृष्टकेतोस्तु राजर्षेर्हर्यश्च इति विश्रुतः ॥₈॥

हर्यश्चस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः ।
प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः ॥₉॥

पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः ।

देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः ॥₁₀॥

महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः ।
कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत ॥₁₁॥

महारोंणस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोणस्तु राजर्षेर्हस्वरोमा व्यजायत ॥₁₂॥

तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे धर्मज्ञस्य महात्मनः ।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः ॥₁₃॥

मां तु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य नराधिपः ।
कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः ॥₁₄॥

वृद्धे पितरि स्वर्याति धर्मेण धुरमावहम् ।
भ्रातरं देवसङ्काशं स्नेहात्पश्यन्कुशध्वजम् ॥₁₅॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य साङ्काश्यादगमत्पुरात् ।
सुधन्वा वीर्यवान्राजा मिथिलामवरोधकः ॥₁₆॥

स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम् ।
सीता कन्या च पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति ॥₁₇॥

तस्याप्रदानाद्ब्रह्मर्षे युद्धमासीन्मया सह ।
स हतोऽभिमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे ॥₁₈॥

निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम् ।
साङ्काश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम् ॥₁₉॥

कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने ।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव ॥₂₀॥

सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय च ।

वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥₂₁॥

द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः ।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते रघुनन्दन ॥₂₂॥

रामलक्ष्मणयो राजन्गोदानं कारयस्व ह ।
पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु ॥₂₃॥

मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीये दिवसे प्रभो ।
फल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्ततितमः सर्गः॥

॥एकसप्ततितमः सर्गः॥

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः ।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥₁॥

अचिन्त्यान्यप्रमेयानि कुलानि नरपुङ्गव ।
इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन ॥₂॥

सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदा ।
रामलक्ष्मणयो राजन्सीता चोर्मिलया सह ॥₃॥

वक्तव्यं न नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम ॥₄॥

भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ।
अस्य धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
सुता द्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे ॥₅॥

भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः ।
वरयेम सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः ॥₆॥

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः ।
लोकपालोपमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ॥₇॥

उभयोरपि राजेन्द्र सम्बन्धेनानुबध्यताम् ।
इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः ॥₈॥

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा ।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ ॥₉॥

सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयथः स्वयम् ।
एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते द्वमे ।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥₁₀॥

एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने ।
पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ॥₁₁॥

उत्तरे दिवसे ब्रह्मन्फल्गुनीभ्यां मनीषिणः ।
वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः ॥₁₂॥

एवमुक्त्वा वचः सौम्यं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
उभौ मुनिवरौ राजा जनको वाक्यमब्रवीत् ॥₁₃॥

परो धर्मः कृतो मह्यं शिष्योऽस्मि भवतोः सदा ।
इमान्यासनमुख्यानि आसेतां मुनिपुङ्गवौ ॥₁₄॥

यथा दशरथस्येयं तथायोध्या पुरी मम ।
प्रभुत्वे नासित्सन्देहो यथार्हं कर्तुमर्हथः ॥₁₅॥

तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः ।
राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥₁₆॥

युवामसङ्ख्येय गुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥₁₇॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामि स्वमालयम् ।
श्राद्धकर्माणि सर्वाणि विधास्य इति चाब्रवीत् ॥₁₈॥

तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा ।
मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः ॥₁₉॥

स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥₂₀॥

गवां शतसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः ।
एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्धिष्य धर्मतः ॥₂₁॥

सुवर्णशृङ्गाः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः ।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः ॥₂₂॥

वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः ।
ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः ॥₂₃॥

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतश्च नृपतिस्तदा ।
लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः॥

॥द्विसप्ततितमः सर्गः॥

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम् ।
तस्मिंस्तु दिवसे शूरो युधाजित्समुपेयिवान् ॥₁॥

पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः ।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत् ॥₂॥

केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत् ।
येषां कुशलकामोऽसि तेषां सम्प्रत्यनामयम् ॥₃॥

स्वस्त्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महीपते ।
तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन ॥₄॥

श्रुत्वा बहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान् ।
मिथिलामुपयातास्तु ब्रूया सह महीपते ॥₅॥

ब्रूयाभुपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम् ।
अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थिम ॥₆॥

दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजार्हं समपूजयत् ।
ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥₇॥

ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ।
युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः ।
भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः ॥₈॥

वसिष्ठं पुरतः कृत्वा महर्षीनपरानपि ॥₉॥

राजा रशरथो राजन्कृतकौतुकमङ्गलैः ।
पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठ दातारमभिकाङ्क्षते ॥₁₀॥

दातृप्रतिग्रहीतृभ्यां सर्वार्थाः प्रभवन्ति हि ।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व कृत्वा वैवाह्यमुत्तमम् ॥₁₁॥

इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना ।
प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित् ॥₁₂॥

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञा सम्प्रतीक्ष्यते ।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ॥₁₃॥

कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः ।
मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥₁₄॥

सञ्जोऽहं बत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः ।
अविघ्नं कुरुतां राजा किमर्थं हि विलम्ब्यते ॥₁₅॥

तद्वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा ।
प्रवेशयामास सुतान्सर्वानृषिगणानपि ॥₁₆॥

अब्रवीञ्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम् ।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृहीष्व पाणिना ॥₁₇॥

लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया ।
प्रतीच्छ पाणिं गृहीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥₁₈॥

तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत ।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन ॥₁₉॥

शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीञ्जनकेश्वरः ।
श्रुतकीर्त्या महाबाहो पाणिं गृहीष्व पाणिना ॥₂₀॥

सर्वे भवन्तः संयाश्च सर्वे सुचरितव्रताः ।
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥₂₁॥

जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन्याणिभिरस्पृशन् ।
चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः ॥₂₂॥

अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च ।
ऋषींश्चैव महात्मानः सह भार्या रघूत्तमाः ।
यथोक्तेन तथा चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम् ॥₂₃॥

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदन्तरिक्षात्सुभास्वरा ।
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ॥₂₄॥

ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा गन्धर्वाश्च जगुः कलम् ।
विवाहे रघुमुख्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥₂₅॥

ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्धुष्टनिनादिते ।
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः ॥₂₆॥

अथोपकार्या जग्मुस्ते सदारा रघुनन्दनः ।
राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः॥

॥त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः ।
आपृच्छ तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥₁॥

विश्वामित्रो गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम् ।
आपृच्छाथ जगामाशु राजा दशरथः पुरीम् ॥₂॥

अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु ।
गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥₃॥

कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमकोट्यम्बराणि च ।
हस्त्यश्वरथपादातं दिव्यरूपं स्वलङ्कृतम् ॥₄॥

ददौ कन्या पिता तासां दासीदासमनुत्तमम् ।
हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तानां विद्रुमस्य च ॥₅॥

ददौ परमसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम् ।
दत्त्वा बहुधनं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम् ॥₆॥

प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः ।
राजाप्ययोध्याधिपतिः सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥₇॥

ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम सबलानुगः ।
गच्छन्तं तु नरव्याघ्रं सर्षिसङ्घं सराघवम् ॥₈॥

घोराः स्म पक्षिणो वाचो व्याहरन्ति ततस्ततः ।
भौमाश्चैव मृगाः सर्वे गच्छन्ति स्म प्रदक्षिणम् ॥₉॥

तान्दृष्ट्वा राजशार्दूलो वसिष्ठं पर्यपृच्छत ।

असौम्याः पक्षिणो घोरा मृगाश्चापि प्रदक्षिणाः ।
किमिदं हृदयोत्कम्पि मनो मम विषीदति ॥₁₀॥

राज्ञो दशरथस्यैतच्छ्रुत्वा वाक्यं महानृषिः ।
उवाच मधुरां वाणीं श्रूयतामस्य यत्फलम् ॥₁₁॥

उपस्थितं भयं घोरं दिव्यं पक्षिमुखाच्च्युतम् ।
मृगाः प्रशमयन्त्येते सन्तापस्त्यज्यतामयम् ॥₁₂॥

तेषां संवदतां तत्र वायुः प्रादुर्बभूव ह ।
कम्पयन्मेदिनीं सर्वा पातयंश्च द्रुमाञ्शुभान् ॥₁₃॥

तमसा संवृतः सूर्यः सर्वा न प्रबभुर्दिशः ।
भस्मना चावृतं सर्वं सम्मूढमिव तद्वलम् ॥₁₄॥

वसिष्ठ ऋषयश्चान्ये राजा च ससुतस्तदा ।
ससंज्ञा इव तत्रासन्सर्वमन्यद्विचेतनम् ॥₁₅॥

तस्मिंस्तमसि घोरे तु भस्मच्छन्नेव सा चमूः ।
ददर्श भीमसङ्काशं जटामण्डलधारिणम् ॥₁₆॥

कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम् ।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्नैः ॥₁₇॥

स्कन्धे चासज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम् ।
प्रगृह्य शरमुख्यं च त्रिपुरघ्नं यथा हरम् ॥₁₈॥

तं दृष्ट्वा भीमसङ्काशं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
वसिष्ठप्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः ।
सङ्गता मुनयः सर्वे संजजल्पुरथो मिथः ॥₁₉॥

कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति ।
पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः ।

क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम् ॥₂₀॥

एवमुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम् ।
ऋषयो राम रामेति मधुरां वाचमब्रुवन् ॥₂₁॥

प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान् ।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

॥चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽधुतम् ।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥₁॥

तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्त्वया ।
तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम् ॥₂॥

तदिदं घोरसङ्काशं जामदग्न्यं महद्भुः ।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥₃॥

तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽस्य प्रपूरणे ।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमिदं तव ॥₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरतःस्तदा ।
विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥₅॥

क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणस्य महायशाः ।
बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ॥₆॥

भार्गवाणां कुले जातः स्वाध्यायव्रतशालिनाम् ।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं निक्षिप्तवानसि ॥₇॥

स त्वं धर्मपरो भूत्वा काश्यपाय वसुन्धराम् ।
दत्त्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतनः ॥₈॥

मम सर्वविनाशाय सम्प्राप्तस्त्वं महामुने ।
न चैकस्मिन्हते रामे सर्वे जीवामहे वयम् ॥₉॥

ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान् ।

अनादृत्यैव तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥₁₀॥

इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे दिव्ये लोकाभिविश्रुते ।
दृढे बलवती मुख्ये सुकृते विश्वकर्मणा ॥₁₁॥

अतिसृष्टं सुरैरेकं त्र्यम्बकाय युयुत्सवे ।
त्रिपुरघ्नं नरश्रेष्ठ भग्नं काकुत्श यत्नया ॥₁₂॥

इदं द्वितीयं दुर्धर्षं विष्णोर्दत्तं सुरोत्तमैः ।
समानसारं काकुत्स्थ रौद्रेण धनुषा त्विदम् ॥₁₃॥

तदा तु देवताः सर्वाः पृच्छन्ति स्म पितामहम् ।
शितिकण्ठस्य विष्णोश्च बलाबलनिरीक्षया ॥₁₄॥

अभिप्रायं तु विज्ञाय देवतानां पितामहः ।
विरोधं जनयामास तयोः सत्यवतां वरः ॥₁₅॥

विरोधे च महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ।
शितिकण्ठस्य विष्णोश्च परस्परजयैषिणोः ॥₁₆॥

तदा तञ्जुम्भितं शैवं धनुर्भीमपराक्रमम् ।
हुङ्कारेण महादेवः स्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः ॥₁₇॥

देवैस्तदा समागम्य सर्षिसङ्घैः सचारणैः ।
याचितौ प्रशमं तत्र जग्मतुस्तौ सुरोत्तमौ ॥₁₈॥

जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः ।
अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तदा ॥₁₉॥

धनू रुद्रस्तु सङ्क्रुद्धो विदेहेषु महायशाः ।
देवरातस्य राजर्षेर्ददौ हस्ते ससायकम् ॥₂₀॥

इदं च विष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् ।

ऋचीके भार्गवे प्रादाद्विष्णुः स न्यासमुत्तमम् ॥₂₁॥

ऋचीकस्तु महातेजाः पुत्रस्याप्रतिकर्मणः ।
पितुर्मम ददौ दिव्यं जमदग्नेर्महात्मनः ॥₂₂॥

न्यस्तशस्त्रे पितरि मे तपोबलसमन्विते ।
अर्जुनो विदधे मृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः ॥₂₃॥

वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम् ।
क्षत्रमुत्सादयं रोषाञ्जातं जातमनेकशः ॥₂₄॥

पृथिवीं चाखिलां प्राप्य काश्यपाय महात्मने ।
यज्ञस्यान्ते तदा राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ॥₂₅॥

दत्त्वा महेन्द्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः ।
श्रुतवान्धनुषो भेदं ततोऽहं द्रुतमागतः ॥₂₆॥

तदिदं वैष्णवं राम पितृपैतामहं महत् ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृहीष्व धनुरुत्तमम् ॥₂₇॥

योजयस्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजयम् ।
यदि शक्रोपि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

॥पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

श्रुत्वा तञ्जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा ।
गौरवाद्यन्तितकथः पितू राममथाब्रवीत् ॥₁॥

श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृतवानसि भार्गव ।
अनुरुन्ध्यामहे ब्रह्मन्पितुरानृण्यमास्थितः ॥₂॥

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव ।
अवजानामि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥₃॥

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम् ।
शरं च प्रतिसङ्गृह्य हस्तालघुपराक्रमः ॥₄॥

आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह ।
जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥₅॥

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥₆॥

इमां वा बद्धतिं राम तपोबलसमार्जितान् ।
लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामि यदिच्छसि ॥₇॥

न ह्ययं वैष्णवो दिव्यः शरः परपुरंजयः ।
मोघः पतति वीर्येण बलदर्पविनाशनः ॥₈॥

वरायुधधरं राम द्रष्टुं सर्षिगणाः सुराः ।
पितामहं पुरस्कृत्य समेतास्तत्र सङ्घशः ॥₉॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धचारणकिंनराः ।

यक्षराक्षसनागाश्च तद्गृष्टं महद्भुतम् ॥₁₀॥

जडीकृते तदा लोके रामे वरधनुधरे ।
निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रमो राममुदैक्षत ॥₁₁॥

तेजोभिर्हतवीर्यत्वाञ्जामदग्न्यो जडीकृतः ।
रामं कमल पत्राक्षं मन्दं मन्दमुवाच ह ॥₁₂॥

काश्यपाय मया दत्ता यदा पूर्वं वसुन्धरा ।
विषये मे न वस्तव्यमिति मां काश्यपोऽब्रवीत् ॥₁₃॥

सोऽहं गुरुवचः कुर्वन्पृथिव्यां न वसे निशाम् ।
इति प्रतिज्ञा काकुत्स्थ कृता वै काश्यपस्य ह ॥₁₄॥

तदिमां त्वं गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव ।
मनोजवं गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥₁₅॥

लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया ।
जहि ताञ्शरमुख्येन मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥₁₆॥

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात्स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥₁₇॥

एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः ।
त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥₁₈॥

न चेयं मम काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति ।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः ॥₁₉॥

शरमप्रतिमं राम मोक्तुमर्हसि सुव्रत ।
शरमोक्षे गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥₂₀॥

तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् ।

रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥₂₁॥

ततो वितिमिराः सर्वा दिशा चोपदिशस्तथा ।
सुराः सर्पिगणा रामं प्रशशंसुरुदायुधम् ॥₂₂॥

रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रशस्य च ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

॥षट्सप्ततितमः सर्गः॥

गते रामे प्रशान्तात्मा रामो दाशरथिर्धनुः ।
वरुणायाप्रमेयाय ददौ हस्ते ससायकम् ॥₁॥

अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठ प्रमुखानृषीन् ।
पितरं विह्वलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥₂॥

जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी ।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता ॥₃॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम् ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय राघवम् ॥₄॥

गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः ।
चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् ॥₅॥

पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्भुष्टनिनादिताम् ।
सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम् ॥₆॥

राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलवादिभिः ।
सम्पूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलङ्कृताम् ॥₇॥

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा ।
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः ॥₈॥

ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् ।
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपपत्नयः ॥₉॥

मङ्गलालापनैश्चैव शोभिताः क्षौमवाससः ।

देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन् ॥₁₀॥

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहिता रहः ॥₁₁॥

कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः ।
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः ॥₁₂॥

तेषामतियशा लोके रामः सत्यपराक्रमः ।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥₁₃॥

रामस्तु सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् ।
मनस्वी तद्रतस्तस्या नित्यं हृदि समर्पितः ॥₁₄॥

प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ।
गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयो व्यवर्धत ॥₁₅॥

तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते ।
अन्तर्जातमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ॥₁₆॥

तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा ।
देवताभिः समा रूपे सीता श्रीरिव रूपिणी ॥₁₇॥

तया स राजर्षिसुतोऽभिरामया
समेयिवानुत्तमराजकन्यया ।
अतीव रामः शुशुभेऽतिकामया
विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्षप्ततितमः सर्गः॥

Chapter 2

॥ अयोध्याकाण्डः ॥

॥प्रथमः सर्गः॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ।
भरतं केकयीपुत्रमब्रवीद्रघुनन्दनः ॥₁॥

अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक ।
त्वां नेतुमागतो वीर युधाजिन्मातुलस्तव ॥₂॥

श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः केकयीसुतः ।
गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥₃॥

आपृच्छ पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम् ।
मातृश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥₄॥

युधाजित्प्राप्य भरतं सशत्रुघ्नं प्रहर्षितः ।
स्वपुरं प्राविशद्वीरः पिता तस्य तुतोष ह ॥₅॥

स तत्र न्यवसद्भात्रा सह सत्कारसत्कृतः ।
मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः ॥₆॥

तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः ।
भ्रातरौ स्मरतां वीरौ वृद्धं दशरथं नृपम् ॥₇॥

राजापि तौ महातेजाः सस्मार प्रोषितौ सुतौ ।
उभौ भरतशत्रुघ्नौ महेन्द्रवरुणोपमौ ॥₈॥

सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः ।
स्वशरीराद्धिनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः ॥₉॥

तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ।

स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥₁₀॥

गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
पितरं देवसङ्काशं पूजयामासतुस्तदा ॥₁₁॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः ।
चकार रामो धर्मात्मा प्रियाणि च हितानि च ॥₁₂॥

मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः ।
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत ॥₁₃॥

एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा ।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः ॥₁₄॥

स हि नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥₁₅॥

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥₁₆॥

शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सञ्जनैः ।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥₁₇॥

कल्याणाभिजनः साधुरदीनः सत्यवागृजुः ।
वृद्धैरभिविनीतश्च द्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः ॥₁₈॥

धर्मार्थकामतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभावनान् ।
लौकिके समयाचरे कृतकल्पो विशारदः ॥₁₉॥

शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः ।
यः प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः ॥₂₀॥

आयकर्मण्युपायज्ञः सन्दृष्टव्ययकर्मवित् ।

श्रेष्ठं शास्त्रसमूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेष्वपि ॥²¹॥

अर्थधर्मो च सङ्गृह्य सुखतन्त्रो न चालसः ।
वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित् ॥²²॥

आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम् ।
धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसम्मतः ॥²³॥

अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः ।
अप्रधृष्यश्च सङ्ग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः ॥²⁴॥

अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो न च मत्सरी ।
न चावमन्ता भूतानां न च कालवशानुगः ॥²⁵॥

एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः ।
सम्मतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः ।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्येणापि शचीपतेः ॥²⁶॥

तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः ।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः ॥²⁷॥

तमेवंवृत्तसम्पन्नमप्रधृष्य पराक्रमम् ।
लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी ॥²⁸॥

एतैस्तु बहुभिर्युक्तं गुणैरनुपमैः सुतम् ।
दृष्ट्वा दशरथो राजा चक्रे चिन्तां परन्तपः ॥²⁹॥

एषा ह्यस्य परा प्रीतिर्हृदि सम्परिवर्तते ।
कदा नाम सुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमहं प्रियम् ॥³⁰॥

वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पनः ।
मत्तः प्रियतरो लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥³¹॥

यमशक्रसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ।
महीधरसमो धृत्यां मत्तश्च गुणवत्तरः ॥₃₂॥

महीमहमिमां कृत्स्नामधितिष्ठन्तमात्मजम् ।
अनेन वयसा दृष्ट्वा यथा स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥₃₃॥

तं समीक्ष्य महाराजो युक्तं समुदितैर्गुणैः ।
निश्चित्य सचिवैः सार्धं युवराजममन्यत ॥₃₄॥

नानानगरवास्तव्यान्पृथग्नानपदानपि ।
समानिनाय मेदिन्याः प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥₃₅॥

अथ राजवितीर्णेषु विविधेष्वासनेषु च ।
राजानमेवाभिमुखा निषेदुर्नियता नृपाः ॥₃₆॥

स लब्धमानैर्विनयान्वितैर्नृपैः
पुरालयैर्जानपदैश्च मानवैः ।
उपोपविष्टैर्नृपतिर्वृतो बभौ
सहस्रचक्षुर्भगवानिवामरैः ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

ततः परिषदं सर्वामामन्त्य वसुधाधिपः ।
हितमुद्धर्षणं चेदमुवाचाप्रतिमं वचः ॥₁॥

दुन्दुभिस्त्वनकल्पेन गम्भीरेणानुनादिना ।
स्वरेण महता राजा जीग्मूत इव नादयन् ॥₂॥

सोऽहमिक्ष्वाकुभिः पूर्वैर्नरैः परिपालितम् ।
श्रेयसा योक्तुकामोऽस्मि सुखार्हमखिलं जगत् ॥₃॥

मयाप्याचरितं पूर्वेः पन्थानमनुगच्छता ।
प्रजा नित्यमतन्द्रेण यथाशक्त्यभिरक्षता ॥₄॥

इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम् ।
पाण्डुरस्यातपत्रस्यच्छायायां जरितं मया ॥₅॥

प्राप्य वर्षसहस्राणि बहून्यायूंषि जीवितः ।
जीर्णस्यास्य शरीरस्य विश्रान्तिमभिरोचये ॥₆॥

राजप्रभावजुष्टां हि दुर्वहामजितेन्द्रियैः ।
परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वी धर्मधुरं वहन् ॥₇॥

सोऽहं विश्रममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते ।
संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥₈॥

अनुजातो हि मे सर्वैर्गुणैर्ज्येष्ठो ममात्मजः ।
पुरन्दरसमो वीर्ये रामः परपुरंजयः ॥₉॥

तं चन्द्रमिव पुष्येण युक्तं धर्मभृतां वरम् ।

यौवराज्येन योक्तास्मि प्रीतः पुरुषपुङ्गवम् ॥₁₀॥

अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीर्वाँल्लक्ष्मणाग्रजः ।
त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम् ॥₁₁॥

अनेन श्रेयसा सद्यः संयोज्याहमिमां महीम् ।
गतक्लेशो भविष्यामि सुते तस्मिन्निवेश्य वै ॥₁₂॥

इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दनृपा नृपम् ।
वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्तमिव बर्हिणः ॥₁₃॥

तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः ।
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥₁₄॥

अनेकवर्षसाहस्रो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव ।
स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम् ॥₁₅॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा तेषां मनःप्रियम् ।
अजानन्निव जिज्ञासुरिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₆॥

कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति ।
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं ममात्मजम् ॥₁₇॥

ते तमूचुर्महात्मानं पौरजानपदैः सह ।
बहवो नृप कल्याणा गुणाः पुत्रस्य सन्ति ते ॥₁₈॥

दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामः सत्यपराक्रमः ।
इक्ष्वाकुभ्यो हि सर्वेभ्योऽप्यतिरक्तो विशाम्पते ॥₁₉॥

रामः सत्पुरुषो लोके सत्यधर्मपरायणः ।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च शीलवाननसूयकः ॥₂₀॥

क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः ।

मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः ॥₂₁॥

प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ।
बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता ॥₂₂॥

तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्च वर्धते ।
देवासुरमनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः ॥₂₃॥

यदा व्रजति सङ्ग्रामं ग्रामार्थे नगरस्य वा ।
गत्वा सौमित्रिसहितो नाविजित्य निवर्तते ॥₂₄॥

सङ्ग्रामात्पुनरागम्य कुञ्जरेण रथेन वा ।
पौरान्स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ॥₂₅॥

पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ।
निखिलेनानुपूर्व्या च पिता पुत्रानिवोरसान् ॥₂₆॥

शुश्रूषन्ते च वः शिष्याः कच्चित्कर्मसु दंशिताः ।
इति नः पुरुषव्याघ्रः सदा रामोऽभिभाषते ॥₂₇॥

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥₂₈॥

सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
वत्सः श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्यासौ तव राघवः ।
दिष्ट्या पुत्रगुणैर्युक्तो मारीच इव कश्यपः ॥₂₉॥

बलमारोग्यमायुश्च रामस्य विदितात्मनः ।
आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा ॥₃₀॥

अभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः ।
स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायम्प्रातः समाहिताः ॥₃₁॥

सर्वान्देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे यशस्विनः ।
तेषामायाचितं देव त्वत्प्रसादात्समृध्यताम् ॥³²॥

राममिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ॥³³॥

तं देवदेवोपममात्मजं ते
सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम् ।
हिताय नः क्षिप्रमुदारजुष्टम्
मुदाभिषेक्तुं वरद त्वमर्हसि ॥³⁴॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः ।
प्रतिगृह्याब्रवीद्राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः ॥₁॥

अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम ।
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ ॥₂॥

इति प्रत्यर्च्य तान्राजा ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च तेषामेवोपशृण्वताम् ॥₃॥

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः ।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥₄॥

कृतमित्येव चाब्रूतामभिगम्य जगत्पतिम् ।
यथोक्तवचनं प्रीतौ हर्षयुक्तौ द्विजर्षभौ ॥₅॥

ततः सुमन्त्रं द्युतिमान्राजा वचनमब्रवीत् ।
रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति ॥₆॥

स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात् ।
रामं तत्रानयां चक्रे रथेन रथिनां वरम् ॥₇॥

अथ तत्र समासीनास्तदा दशरथं नृपम् ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भूमिपाः ॥₈॥

म्लेच्छाश्चार्याश्च ये चान्ये वनशैलान्तवासिनः ।
उपासां चक्रिरे सर्वे तं देवा इव वासवम् ॥₉॥

तेषां मध्ये स राजर्षिर्मरुतामिव वासवः ।

प्रासादस्थो रथगतं ददर्शयान्तमात्मजम् ॥₁₀॥

गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ।
दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् ॥₁₁॥

चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम् ।
रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ॥₁₂॥

घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः ।
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः ॥₁₃॥

अवतार्य सुमन्त्रस्तं राघवं स्यन्दनोत्तमात् ।
पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥₁₄॥

स तं कैलासशृङ्गाभं प्रासादं नरपुङ्गवः ।
आरुरोह नृपं द्रष्टुं सह सूतेन राघवः ॥₁₅॥

स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके ।
नाम स्वं श्रावयन्नामो ववन्दे चरणौ पितुः ॥₁₆॥

तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं नृपः ।
गृह्याञ्जलौ समाकृष्य सस्त्रजे प्रियमात्मजम् ॥₁₇॥

तस्मै चाभ्युद्यतं श्रीमान्मणिकाञ्चनभूषितम् ।
दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम् ॥₁₈॥

तदासनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः ।
स्वयेव प्रभया मेरुमुदये विमलो रविः ॥₁₉॥

तेन विभ्राजिता तत्र सा सभाभिव्यरोचत ।
विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना ॥₂₀॥

तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ।

अलङ्कृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥₂₁॥

स तं सस्मितमाभाष्य पुत्रं पुत्रवतां वरः ।
उवाचेदं वचो राजा देवेन्द्रमिव कश्यपः ॥₂₂॥

ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः ।
उत्पन्नस्त्वं गुणश्रेष्ठो मम रामात्मजः प्रियः ॥₂₃॥

त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः ।
तस्माच्च पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि ॥₂₄॥

कामतस्त्वं प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानसि ।
गुणवत्यपि तु स्नेहात्पुत्रं वक्ष्यामि ते हितम् ॥₂₅॥

भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः ।
कामक्रोधसमुत्थानि त्यजेथा व्यसनानि च ॥₂₆॥

परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा ।
अमात्यप्रभृतीः सर्वाः प्रकृतीश्चानुरञ्जय ॥₂₇॥

तुष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम् ।
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वामृतमिवामराः ।
तस्मात्पुत्रं त्वमात्मानं नियम्यैव समाचर ॥₂₈॥

तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः ।
त्वरिताः शीघ्रमभ्येत्य कौसल्यायै न्यवेदयन् ॥₂₉॥

सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च ।
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा ॥₃₀॥

अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः ।
ययौ स्वं द्युतिमद्वैश्व जनौघैः प्रतिपूजितः ॥₃₁॥

ते चापि पौरा नृपतेर्वचस्तत्
श्रुत्वा तदा लाभमिवेष्टमाप्य ।
नरेन्द्रमामन्त्य गृहाणि गत्वा
देवान्समानर्चुरतीव हृष्टाः ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

गतेष्वथ नृपो भूयः पौरेषु सह मन्त्रिभिः ।
मन्त्रयित्वा ततश्चक्रे निश्चयज्ञः स निश्चयम् ॥₁॥

अथ एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्येत मे सुतः ।
रामो राजीवताम्राक्षो यौवराज्य इति प्रभुः ॥₂॥

अथान्तर्गृहमाविश्य राजा दशरथस्तदा ।
सूतमाज्ञापयामास रामं पुनरिहानय ॥₃॥

प्रतिगृह्य स तद्वाक्यं सूतः पुनरुपाययौ ।
रामस्य भवनं शीघ्रं राममानयितुं पुनः ॥₄॥

द्वाःस्थैरावेदितं तस्य रामायागमनं पुनः ।
श्रुत्वा चापि रामस्तं प्राप्तं शङ्कान्वितोऽभवत् ॥₅॥

प्रवेश्य चैनं त्वरितं रामो वचनमब्रवीत् ।
यदागमनकृत्यं ते भूयस्तद्ब्रूयशेषतः ॥₆॥

तमुवाच ततः सूतो राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
श्रुत्वा प्रमाणमत्र त्वं गमनायेतराय वा ॥₇॥

इति सूतवचः श्रुत्वा रामोऽथ त्वरयान्वितः ।
प्रययौ राजभवनं पुनर्द्रष्टुं नरेश्वरम् ॥₈॥

तं श्रुत्वा समनुप्राप्तं रामं दशरथो नृपः ।
प्रवेशयामास गृहं विविक्षुः प्रियमुत्तमम् ॥₉॥

प्रविशन्नेव च श्रीमान्नाघवो भवनं पितुः ।

ददर्श पितरं दूरात्प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥₁₀॥

प्रणमन्तं समुत्थाप्य तं परिष्वज्य भूमिपः ।
प्रदिश्य चास्मै रुचिरमासनं पुनरब्रवीत् ॥₁₁॥

राम वृद्धोऽस्मि दीर्घायुर्भुक्ता भोगा मयेप्सिताः ।
अन्नवद्भिः ऋतुशतैस्तथेष्टं भूरिदक्षिणैः ॥₁₂॥

जातमिष्टमपत्यं मे त्वमद्यानुपमं भुवि ।
दत्तमिष्टमधीतं च मया पुरुषसत्तम ॥₁₃॥

अनुभूतानि चेष्टानि मया वीर सुखानि च ।
देवर्षि पितृविप्राणामनृणोऽस्मि तथात्मनः ॥₁₄॥

न किञ्चिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात् ।
अतो यत्त्वामहं ब्रूयां तन्मे त्वं कर्तुमर्हसि ॥₁₅॥

अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम् ।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक ॥₁₆॥

अपि चाद्याशुभान्नाम स्वप्नान्प्रश्यामि दारुणान् ।
सनिर्घाता महोल्काश्च पतन्तीह महास्वनाः ॥₁₇॥

अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणैर्ग्रहैः ।
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः ॥₁₈॥

प्रायेण हि निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे ।
राजा वा मृत्युमाप्नोति घोरां वापदमृच्छति ॥₁₉॥

तद्यावदेव मे चेतो न विमुह्यति राघव ।
तावदेवाभिषिञ्चस्व चला हि प्राणिनां मतिः ॥₂₀॥

अद्य चन्द्रोऽभ्युपगतः पुष्यात्पूर्वं पुनर्वसुम् ।

श्वः पुष्य योगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः ॥²¹॥

तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्वरयतीव माम् ।
श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परन्तप ॥²²॥

तस्माच्चयाद्य व्रतिना निशेयं नियतात्मना ।
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भप्रस्तरशायिना ॥²³॥

सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्वद्य समन्ततः ।
भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि ॥²⁴॥

विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः ।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ॥²⁵॥

कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः ।
ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ॥²⁶॥

किं तु चित्तं मनुष्याणामनित्यमिति मे मतिः ।
सतां च धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघव ॥²⁷॥

इत्युक्तः सोऽभ्यनुज्ञातः श्वोभाविन्यभिषेचने ।
व्रजेति रामः पितरमभिवाद्याभ्ययाद्गृहम् ॥²⁸॥

प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञोद्दिष्टेऽभिषेचने ।
तस्मिन्क्षणे विनिर्गत्य मातुरन्तःपुरं ययौ ॥²⁹॥

तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम् ।
वाग्यतां देवतागारे ददर्श याचतीं श्रियम् ॥³⁰॥

प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा ।
सीता चानायिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम् ॥³¹॥

तस्मिन्काले हि कौसल्या तस्थावामीलितेक्षणा ।

सुमित्रयान्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च ॥³²॥

श्रुत्वा पुष्येण पुत्रस्य यौवराज्याभिषेचनम् ।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ॥³³॥

तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च ।
उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं तदा ॥³⁴॥

अम्ब पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजापालनकर्मणि ।
भविता श्वोऽभिषेको मे यथा मे शासनं पितुः ॥³⁵॥

सीतयाप्युपवस्तव्या रजनीयं मया सह ।
एवमृत्विगुपाध्यायैः सह मामुक्तवान्पिता ॥³⁶॥

यानि यान्यत्र योग्यानि श्वोभाविन्यभिषेचने ।
तानि मे मङ्गलान्यद्य वैदेह्याश्चैव कारय ॥³⁷॥

एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकाङ्क्षितम् ।
हर्षबाष्पकलं वाक्यमिदं राममभाषत ॥³⁸॥

वत्स राम चिरं जीव हतास्ते परिपन्थिनः ।
ज्ञातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय ॥³⁹॥

कल्याणे बत नक्षत्रे मयि जातोऽसि पुत्रक ।
येन त्वया दशरथो गुणैराराधितः पिता ॥⁴⁰॥

अमोघं बत मे क्षान्तं पुरुषे पुष्करेक्षणे ।
येयमिक्ष्वाकुराज्यश्रीः पुत्र त्वां संश्रयिष्यति ॥⁴¹॥

इत्येवमुक्तो मात्रेदं रामो भारतमब्रवीत् ।
प्राञ्जलिं प्रहृमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव ॥⁴²॥

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम् ।

द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरूपस्थिता ॥₄₃॥

सौमित्रे भुङ्क्ते भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च ।
जीवितं च हि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥₄₄॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च ।
अभ्यनुज्ञाप्य सीतां च जगाम स्वं निवेशनम् ॥₄₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

सन्दिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने ।
पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥₁॥

गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन ।
श्रीयशोराज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रतम् ॥₂॥

तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदां वरः ।
स्वयं वसिष्ठो भगवान्ययौ रामनिवेशनम् ॥₃॥

स रामभवनं प्राप्य पाण्डुराभ्रघनप्रभम् ।
तिस्रः कक्ष्या रथेनैव विवेश मुनिसत्तमः ॥₄॥

तमागतमृषिं रामस्त्वरन्निव ससम्भ्रमः ।
मानयिष्यन्स मानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥₅॥

अभ्येत्य त्वरमाणश्च रथाभ्याशं मनीषिणः ।
ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात्स्वयम् ॥₆॥

स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा सम्भाष्याभिप्रसाद्य च ।
प्रियार्हं हर्षयन्नाममित्युवाच पुरोहितः ॥₇॥

प्रसन्नस्ते पिता राम यौवराज्यमवाप्स्यसि ।
उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया ॥₈॥

प्रातस्त्वामभिषेक्ता हि यौवराज्ये नराधिपः ।
पिता दशरथः प्रीत्या ययातिं नहुषो यथा ॥₉॥

इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतम् ।

मन्त्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं मुनिः ॥₁₀॥

ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः ।
अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात् ॥₁₁॥

सुहृद्भिस्तत्र रामोऽपि ताननुज्ञाप्य सर्वशः ।
सभाजितो विवेशाथ ताननुज्ञाप्य सर्वशः ॥₁₂॥

हृष्टनारी नरयुतं रामवेश्म तदा बभौ ।
यथा मत्तद्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः ॥₁₃॥

स राजभवनप्रख्यात्तस्माद्रामनिवेशनात् ।
निर्गत्य ददृशे मार्गं वसिष्ठो जनसंवृतम् ॥₁₄॥

वृन्दवृन्दैरयोध्यायां राजमार्गाः समन्ततः ।
बभूवुरभिसम्बाधाः कुतूहलजनैर्वृताः ॥₁₅॥

जनवृन्दोर्मिसङ्घर्षहर्षस्वनवतस्तदा ।
बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निस्वनः ॥₁₆॥

सिक्तसम्मृष्टरथ्या हि तदहर्वनमालिनी ।
आसीदयोध्या नगरी समुच्छ्रितगृहध्वजा ॥₁₇॥

तदा ह्ययोध्या निलयः सस्त्रीबालाबलो जनः ।
रामाभिषेकमाकाङ्क्षन्नाकाङ्क्षन्नुदयं रवेः ॥₁₈॥

प्रजालङ्कारभूतं च जनस्यानन्दवर्धनम् ।
उत्सुकोऽभूञ्जनो द्रष्टुं तमयोध्या महोत्सवम् ॥₁₉॥

एवं तं जनसम्बाधं राजमार्गं पुरोहितः ।
व्यूहन्निव जनौघं तं शनै राज कुलं ययौ ॥₂₀॥

सिताभ्रशिखरप्रख्यं प्रासदमधिरुह्य सः ।

समियाय नरेन्द्रेण शक्रेणेव बृहस्पतिः ॥₂₁॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य हिवा राजासनं नृपः ।
पप्रच्छ स च तस्मै तत्कृतमित्यभ्यवेदयत् ॥₂₂॥

गुरुणा त्वभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्य तम् ।
विवेशान्तःपुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव ॥₂₃॥

तदग्न्यवेषप्रमदाजनाकुलम्
महेन्द्रवेश्मप्रतिमं निवेशनम् ।
व्यदीपयंश्चारु विवेश पार्थिवः
शशीव तारागणसङ्कुलं नभः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः ।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ॥₁॥

प्रगृह्य शिरसा पात्रीं हविषो विधिवत्तदा ।
महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितेऽनले ॥₂॥

शेषं च हविषस्तस्य प्राश्याशास्यात्मनः प्रियम् ।
ध्यायन्नारायणं देवं स्वास्तीर्णे कुशसंस्तरे ॥₃॥

वाग्यतः सह वैदेह्या भूत्वा नियतमानसः ।
श्रीमत्यायतने विष्णोः शिष्ये नरवरात्मजः ॥₄॥

एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रतिविबुध्य सः ।
अलङ्कारविधिं कृत्स्नं कारयामास वेश्मनः ॥₅॥

तत्र शृण्वन्सुखा वाचः सूतमागधबन्दिनाम् ।
पूर्वा सन्ध्यामुपासीनो जजाप यतमानसः ॥₆॥

तुष्टाव प्रणतश्चैव शिरसा मधुसूदनम् ।
विमलक्षौमसंवीतो वाचयामास च द्विजान् ॥₇॥

तेषां पुण्याहघोषोऽथ गम्भीरमधुरस्तदा ।
अयोध्यां पूरयामास तूर्यघोषानुनादितः ॥₈॥

कृतोपवासं तु तदा वैदेह्या सह राघवम् ।
अयोध्या निलयः श्रुत्वा सर्वः प्रमुदितो जनः ॥₉॥

ततः पौरजनः सर्वः श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ।

प्रभातां रजनीं दृष्ट्वा चक्रे शोभां परां पुनः ॥₁₀॥

सिताभ्रशिखराभेषु देवतायतनेषु च ।
चतुष्पथेषु रथ्यासु चैत्येष्वट्टालकेषु च ॥₁₁॥

नानापण्यसमृद्धेषु वणिजामापणेषु च ।
कुटुम्बिनां समृद्धेषु श्रीमत्सु भवनेषु च ॥₁₂॥

सभासु चैव सर्वासु वृक्षेष्वालक्षितेषु च ।
ध्वजाः समुच्छ्रिताश्चित्राः पताकाश्चाभवंस्तदा ॥₁₃॥

नटनर्तकसङ्घानां गायकानां च गायताम् ।
मनःकर्णसुखा वाचः शुश्रुवुश्च ततस्ततः ॥₁₄॥

रामाभिषेकयुक्ताश्च कथाश्चक्रुर्मिथो जनाः ।
रामाभिषेके सम्प्राप्ते चत्तरेषु गृहेषु च ॥₁₅॥

बाला अपि क्रीडमाना गृहद्वारेषु सङ्घशः ।
रामाभिषेकसंयुक्ताश्चक्रुरेव मिथः कथाः ॥₁₆॥

कृतपुष्पोपहारश्च धूपगन्धाधिवासितः ।
राजमार्गः कृतः श्रीमान्यौरै रामाभिषेचने ॥₁₇॥

प्रकाशीकरणार्थं च निशागमनशङ्कया ।
दीपवृक्षांस्तथा चक्रुरनु रथ्यासु सर्वशः ॥₁₈॥

अलङ्कारं पुरस्यैवं कृत्वा तत्पुरवासिनः ।
आकाङ्क्षमाणा रामस्य यौवराज्याभिषेचनम् ॥₁₉॥

समेत्य सङ्घशः सर्वे चत्तरेषु सभासु च ।
कथयन्तो मिथस्तत्र प्रशशंसुर्जनाधिपम् ॥₂₀॥

अहो महात्मा राजायमिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।

ज्ञात्वा यो वृद्धमात्मानं रामं राज्येऽह्विषेक्ष्यति ॥₂₁॥

सर्वे ह्यनुगृहीताः स्म यन्नो रामो महीपतिः ।
चिराय भविता गोप्ता दृष्टलोकपरावरः ॥₂₂॥

अनुद्धतमना विद्वान्धर्मात्मा भ्रातृवत्सलः ।
यथा च भ्रातृषु स्निग्धस्तथास्मास्त्वपि राघवः ॥₂₃॥

चिरं जीवतु धर्मात्मा राजा दशरथोऽनघः ।
यत्प्रसादेनाभिषिक्तं रामं द्रक्ष्यामहे वयम् ॥₂₄॥

एवंविधं कथयतां पौराणां शुश्रुवुस्तदा ।
दिग्भ्योऽपि श्रुतवृत्तान्ताः प्राप्ता जानपदा जनाः ॥₂₅॥

ते तु दिग्भ्यः पुरीं प्राप्ता द्रष्टुं रामाभिषेचनम् ।
रामस्य पूरयामासुः पुरीं जानपदा जनाः ॥₂₆॥

जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिः शुश्रुवे तत्र निस्त्रनः ।
पर्वसूदीर्णवेगस्य सागरस्येव निस्त्रनः ॥₂₇॥

ततस्तदिन्द्रक्षयसंनिभं पुरम्
दिदृक्षुभिर्जानपदैरुपागतैः ।
समन्ततः सस्त्रनमाकुलं बभौ
समुद्रयादोभिरिवार्णवोदकम् ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्यास्तु सहोषिता ।
प्रासादं चन्द्रसङ्काशमारुरोह यदृच्छया ॥₁॥

सिक्तराजपथां कृत्स्नां प्रकीर्णकमलोत्पलाम् ।
अयोध्यां मन्थरा तस्मात्प्रासादादन्ववैक्षत ॥₂॥

पताकाभिर्वरार्हाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृताम् ।
सिक्तां चन्दनतोयैश्च शिरःस्नातजनैर्वृताम् ॥₃॥

अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा ।
उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरा सती ॥₄॥

राममाता धनं किं नु जनेभ्यः सम्प्रयच्छति ।
अतिमात्रं प्रहर्षोऽयं किं जनस्य च शंस मे ।
कारयिष्यति किं वापि सम्प्रहृष्टो महीपतिः ॥₅॥

विदीर्यमाणा हर्षेण धात्री परमया मुदा ।
आचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम् ॥₆॥

श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन राघवम् ।
राजा दशरथो राममभिषेचयितानघम् ॥₇॥

धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता ।
कैलास शिखराकारात्प्रासादादवरोहत ॥₈॥

सा दह्यमाना कोपेन मन्थरा पापदर्शिनी ।
शयानामेत्य कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत् ॥₉॥

उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते ।
उपप्लुतमहौघेन किमात्मानं न बुध्यसे ॥₁₀॥

अनिष्टे सुभगाकारे सौभाग्येन विकत्थसे ।
चलं हि तव सौभाग्यं नद्यः स्रोत इवोष्णगे ॥₁₁॥

एवमुक्ता तु कैकेयी रुष्टया परुषं वचः ।
कुञ्जया पापदर्शिन्या विषादमगमत्परम् ॥₁₂॥

कैकेयी ब्रवीत्कुञ्जां कच्चित्क्षेमं न मन्थरे ।
विषण्णवदनां हि त्वां लक्षये भृशदुःखिताम् ॥₁₃॥

मन्थरा तु वचः श्रुत्वा कैकेय्या मधुराक्षरम् ।
उवाच क्रोधसंयुक्ता वाक्यं वाक्यविशारदा ॥₁₄॥

सा विषण्णतरा भूत्वा कुञ्जा तस्या हितैषिणी ।
विषादयन्ती प्रोवाच भेदयन्ती च राघवम् ॥₁₅॥

अक्षेमं सुमहद्देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम् ।
रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥₁₆॥

सास्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोकसमन्विता ।
दह्यमानानलेनेव त्वद्वितार्थमिहागता ॥₁₇॥

तव दुःखेन कैकेयि मम दुःखं महद्भवेत् ।
त्वद्वृद्धौ मम वृद्धिश्च भवेदत्र न संशयः ॥₁₈॥

नराधिपकुले जाता महिषी त्वं महीपतेः ।
उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे ॥₁₉॥

धर्मवादी शठो भर्ता श्लक्ष्णवादी च दारुणः ।
शुद्धभावे न जानीषे तेनैवमतिसन्धिता ॥₂₀॥

उपस्थितं पयुञ्जानस्त्वयि सान्त्वमनर्थकम् ।
अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति ॥ 21 ॥

अपवाह्य स दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु ।
काल्यं स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके ॥ 22 ॥

शत्रुः पतिप्रवादेन मात्रेव हितकाम्यया ।
आशीविष इवाङ्केन बाले परिधृतस्त्वया ॥ 23 ॥

यथा हि कुर्यात्सर्पो वा शत्रुर्वा प्रत्युपेक्षितः ।
राज्ञा दशरथेनाद्य सपुत्रा त्वं तथा कृता ॥ 24 ॥

पापेनानृतसन्धेन बाले नित्यं सुखोचिते ।
रामं स्थापयता राज्ये सानुबन्धा हता ह्यसि ॥ 25 ॥

सा प्राप्तकालं कैकेयि क्षिप्रं कुरु हितं तव ।
त्रायस्व पुत्रमात्मानं मां च विस्मयदर्शने ॥ 26 ॥

मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात्स शुभानना ।
एवमाभरणं तस्यै कुञ्जायै प्रददौ शुभम् ॥ 27 ॥

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुञ्जायै प्रमदोत्तमा ।
कैकेयी मन्थरां हृष्टा पुनरेवाब्रवीदिदम् ॥ 28 ॥

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यासि परमं प्रियम् ।
एतन्मे प्रियमाख्यातुः किं वा भूयः करोमि ते ॥ 29 ॥

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये ।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राज्ञा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ 30 ॥

न मे परं किञ्चिदितस्त्वया पुनः
प्रियं प्रियार्हं सुवचं वचो वरम् ।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरम्

वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

मन्थरा त्वभ्यसूयैनामुत्सृज्याभरणं च तत् ।
उवाचेदं ततो वाक्यं कोपदुःखसमन्विता ॥₁॥

हर्षं किमिदमस्थाने कृतवत्यसि बालिशे ।
शोकसागरमध्यस्थमात्मानं नावबुध्यसे ॥₂॥

सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते ।
यौवराज्येन महता श्वः पुष्येण द्विजोत्तमैः ॥₃॥

प्राप्तां सुमहतीं प्रीतिं प्रतीतां तां हतद्विषम् ।
उपस्थास्यसि कौसल्यां दासीव त्वं कृताञ्जलिः ॥₄॥

हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः ।
अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये ॥₅॥

तां दृष्ट्वा परमप्रीतां ब्रुवन्तीं मन्थरां ततः ।
रामस्यैव गुणान्देवी कैकेयी प्रशशंस ह ॥₆॥

धर्मज्ञो गुरुभिर्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक्शुचिः ।
रामो राज्ञः सुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥₇॥

भ्रातृभृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति ।
सन्तप्यसे कथं कुञ्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥₈॥

भरतश्चापि रामस्य ध्रुवं वर्षशतात्परम् ।
पितृपैतामहं राज्यमवाप्स्यति नरर्षभः ॥₉॥

सा त्वमभ्युदये प्राप्ते वर्तमाने च मन्थरे ।

भविष्यति च कल्याणे किमर्थं परितप्यसे ।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम् ॥₁₀॥

कैकेय्या वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता ।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥₁₁॥

अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुध्यसे ।
शोकव्यसनविस्तीर्णे मञ्जन्ती दुःखसागरे ॥₁₂॥

भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः ।
राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते ॥₁₃॥

न हि राज्ञः सुताः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति भामिनि ।
स्थाप्यमानेषु सर्वेषु सुमहाननयो भवेत् ॥₁₄॥

तस्माज्ज्येष्ठे हि कैकेयि राज्यतन्त्राणि पार्थिवाः ।
स्थापयन्त्यनवद्याङ्गि गुणवत्स्वितरेष्वपि ॥₁₅॥

असावत्यन्तनिर्भग्नस्तव पुत्रो भविष्यति ।
अनाथवत्सुखेभ्यश्च राजवंशाच्च वत्सले ॥₁₆॥

साहं त्वदर्थे सम्प्राप्ता त्वं तु मां नावबुध्यसे ।
सपत्न्यवृद्धौ या मे त्वं प्रदेयं दातुमिच्छसि ॥₁₇॥

ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम् ।
देशान्तरं नाययित्वा लोकान्तरमथापि वा ॥₁₈॥

बाल एव हि मातुल्यं भरतो नायितस्त्वया ।
संनिकर्षाच्च सौहार्दं जायते स्थावरेष्वपि ॥₁₉॥

गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः ।
अश्विनोरिव सौभ्रात्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम् ॥₂₀॥

तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किञ्चित्करिष्यति ।
रामस्तु भरते पापं कुर्यादिति न संशयः ॥₂₁॥

तस्माद्राजगृहादेव वनं गच्छतु ते सुतः ।
एतद्धि रोचते मह्यं भृशं चापि हितं तव ॥₂₂॥

एवं ते ज्ञातिपक्षस्य श्रेयश्चैव भविष्यति ।
यदि चेद्भरतो धर्मात्पित्र्यं राज्यमवाप्स्यति ॥₂₃॥

स ते सुखोचितो बालो रामस्य सहजो रिपुः ।
समृद्धार्थस्य नष्टार्थो जीविष्यति कथं वशे ॥₂₄॥

अभिद्रुतमिवारण्ये सिंहेन गजयूथपम् ।
प्रच्छाद्यमानं रामेण भरतं त्रातुमर्हसि ॥₂₅॥

दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्तया ।
राममाता सपत्नी ते कथं वैरं न यातयेत् ॥₂₆॥

यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यति
ध्रुवं प्रनष्टो भरतो भविष्यति ।
अतो हि सञ्चिन्तय राज्यमात्मजे
परस्य चादौव विवास कारणम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना ।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत् ॥₁॥

अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम् ।
यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमेवाभिषेचये ॥₂॥

इदं त्विदानीं सम्पश्य केनोपायेन मन्थरे ।
भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथञ्चन ॥₃॥

एवमुक्ता तया देव्या मन्थरा पापदर्शिनी ।
रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥₄॥

हन्तेदानीं प्रवक्ष्यामि कैकेयि श्रूयतां च मे ।
यथा ते भरतो राज्यं पुत्रः प्राप्स्यति केवलम् ॥₅॥

श्रुत्वैवं वचनं तस्या मन्थरायास्तु कैकेयी ।
किञ्चिदुत्थाय शयनात्स्वास्तीर्णादिदमब्रवीत् ॥₆॥

कथय त्वं ममोपायं केनोपायेन मन्थरे ।
भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथञ्चन ॥₇॥

एवमुक्ता तया देव्या मन्थरा पापदर्शिनी ।
रामार्थमुपहिंसन्ती कुञ्जा वचनमब्रवीत् ॥₈॥

तव देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः ।
अगच्छत्त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ॥₉॥

दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान्प्रति ।

वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥₁₀॥

स शम्बर इति ख्यातः शतमायो महासुरः ।
ददौ शक्रस्य सङ्ग्रामं देवसङ्घैरनिर्जितः ॥₁₁॥

तस्मिन्महति सङ्ग्रामे राजा दशरथस्तदा ।
अपवाह्य ब्रया देवि सङ्ग्रामान्नष्टचेतनः ॥₁₂॥

तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ।
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने ॥₁₃॥

स ब्रयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरौ ।
गृहीयामिति तत्तेन तथेत्युक्तं महात्मना ।
अनभिज्ञा ह्यहं देवि ब्रयैव कथितं पुरा ॥₁₄॥

तौ वरौ याच भर्तारं भरतस्याभिषेचनम् ।
प्रव्राजनं च रामस्य त्वं वर्षाणि चतुर्दश ॥₁₅॥

क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्वपतेः सुते ।
शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी ।
मा स्मैनं प्रत्युदीक्षेथा मा चैनमभिभाषथाः ॥₁₆॥

दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः ।
त्वत्कृते च महाराजो विशेदपि हुताशनम् ॥₁₇॥

न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां प्रत्युदीक्षितुम् ।
तव प्रियार्थं राजा हि प्राणानपि परित्यजेत् ॥₁₈॥

न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः ।
मन्दस्वभावे बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः ॥₁₉॥

मणिमुक्तासुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ।
दद्याद्दशरथो राजा मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥₂₀॥

यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथोऽददात् ।
तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो मा त्वामतिक्रमेत् ॥₂₁॥

यदा तु ते वरं दद्यात्स्वयमुत्थाप्य राघवः ।
व्यवस्थाप्य महाराजं त्वमिमं वृणुया वरम् ॥₂₂॥

रामं प्रव्राजयारण्ये नव वर्षाणि पञ्च च ।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभः ॥₂₃॥

एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति ।
भरतश्च हतामित्रस्तव राजा भविष्यति ॥₂₄॥

येन कालेन रामश्च वनात्प्रत्यागमिष्यति ।
तेन कालेन पुत्रस्ते कृतमूलो भविष्यति ।
सङ्गृहीतमनुष्यश्च सुहृद्भिः सार्धमात्मवान् ॥₂₅॥

प्राप्तकालं तु ते मन्ये राजानं वीतसाध्वसा ।
रामाभिषेकसङ्कल्पान्निगृह्य विनिवर्तय ॥₂₆॥

अनर्थमर्थरूपेण ग्राहिता सा ततस्तया ।
हृष्टा प्रतीता कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत् ॥₂₇॥

कुञ्जे त्वां नाभिजानामि श्रेष्ठां श्रेष्ठाभिधायिनीम् ।
पृथिव्यामसि कुञ्जानामुत्तमा बुद्धिनिश्चये ॥₂₈॥

त्वमेव तु ममार्थेषु नित्ययुक्ता हितैषिणी ।
नाहं समवबुध्येयं कुञ्जे राज्ञश्चिकीर्षितम् ॥₂₉॥

सन्ति दुःसंस्थिताः कुञ्जा वक्राः परमपापिकाः ।
त्वं पद्ममिव वातेन संनता प्रियदर्शना ॥₃₀॥

उरस्तेऽभिनिविष्टं वै यावत्स्कन्धात्समुन्नतम् ।
अधस्ताच्चोदरं शान्तं सुनाभमिव लज्जितम् ॥₃₁॥

जघनं तव निर्घुष्टं रशनादामशोभितम् ।
जङ्घे भृशमुपन्यस्ते पादौ चाप्यायतावुभौ ॥³²॥

त्वमायताभ्यां सक्थिभ्यां मन्थरे क्षौमवासिनि ।
अग्रतो मम गच्छन्ती राजहंसीव राजसे ॥³³॥

तवेदं स्थगु यद्दीर्घं रथघोणमिवायतम् ।
मतयः क्षत्रविद्याश्च मायाश्चात्र वसन्ति ते ॥³⁴॥

अत्र ते प्रतिमोक्ष्यामि मालां कुञ्जे हिरण्मयीम् ।
अभिषिक्ते च भरते राघवे च वनं गते ॥³⁵॥

जात्येन च सुवर्णेन सुनिष्ठेन सुन्दरि ।
लब्धार्था च प्रतीता च लेपयिष्यामि ते स्थगु ॥³⁶॥

मुखे च तिलकं चित्रं जातरूपमयं शुभम् ।
कारयिष्यामि ते कुञ्जे शुभान्याभरणानि च ॥³⁷॥

परिधाय शुभे वस्त्रे देवदेव चरिष्यसि ।
चन्द्रमाह्वयमानेन मुखेनाप्रतिमानना ।
गमिष्यसि गतिं मुख्यां गर्वयन्ती द्विषञ्जनम् ॥³⁸॥

तवापि कुङ्गाः कुङ्गायाः सर्वाभरणभूषिताः ।
पादौ परिचरिष्यन्ति यथैव त्वं सदा मम ॥³⁹॥

इति प्रशस्यमाना सा कैकेयीमिदमब्रवीत् ।
शयानां शयने शुभ्रे वेदामग्निशिखामिव ॥⁴⁰॥

गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते ।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानमनुदर्शय ॥⁴¹॥

तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह ।
क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता ॥⁴²॥

अनेकशतसाहस्रं मुक्ताहारं वराङ्गना ।
अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च ॥₄₃॥

ततो हेमोपमा तत्र कुञ्जा वाक्यं वशं गता ।
संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत् ॥₄₄॥

इह वा मां मृतां कुञ्जे नृपायावेदयिष्यसि ।
वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यति क्षितिम् ॥₄₅॥

अथैतदुक्त्वा वचनं सुदारुणम्
निधाय सर्वाभरणानि भामिनी ।
असंवृतामास्तरणेन मेदिनीम्
तदाधिशिष्ये पतितेव किन्नरी ॥₄₆॥

उदीर्णसंरम्भतमोवृतानना
तथावमुक्तोत्तममाल्यभूषणा ।
नरेन्द्रपत्नी विमना बभूव सा
तमोवृता द्यौरिव मग्नतारका ॥₄₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

आज्ञाप्य तु महाराजो राघवस्याभिषेचनम् ।
प्रियार्हा प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी ॥₁॥

तां तत्र पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम् ।
प्रतप्त इव दुःखेन सोऽपश्यञ्जगतीपतिः ॥₂॥

स वृद्धस्तरुणीं भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
अपापः पापसङ्कल्पां ददर्श धरणीतले ॥₃॥

करेणुमिव दिग्धेन विद्धां मृगयुणा वने ।
महागज इवारण्ये स्नेहात्परिममर्श ताम् ॥₄॥

परिमृश्य च पाणिभ्यामभिसन्तस्तचेतनः ।
कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् ॥₅॥

न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम् ।
देवि केनाभियुक्तसि केन वासि विमानिता ॥₆॥

यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु ।
भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याण चेतसि ।
भूतोपहतचित्तेव मम चित्तप्रमाथिनी ॥₇॥

सन्ति मे कुशला वैद्या अभितुष्टाश्च सर्वशः ।
सुखितां त्वां करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनि ॥₈॥

कस्य वा ते प्रियं कार्यं केन वा विप्रियं कृतम् ।
कः प्रियं लभतामद्य को वा सुमहदप्रियम् ॥₉॥

अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम् ।

दरिद्रः को भवद्बाढ्यो द्रव्यवान्वाप्यकिञ्चनः ॥₁₀॥

अहं चैव मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः ।

न ते कश्चिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे ॥₁₁॥

आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहि यन्मनसेच्छसि ।

यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुन्धरा ॥₁₂॥

तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तुकामा तदप्रियम् ।

परिपीडयितुं भूयो भर्तारमुपचक्रमे ॥₁₃॥

नास्मि विप्रकृता देव केनचिन्न विमानिता ।

अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तमिच्छामि त्वया कृतम् ॥₁₄॥

प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि ।

अथ तद्वाहरिष्यामि यदभिप्रार्थितं मया ॥₁₅॥

एवमुक्तस्तया राजा प्रियया स्त्रीवशं गतः ।

तामुवाच महातेजाः कैकेयीमीषदुत्स्मितः ॥₁₆॥

अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम ।

मनुजो मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते ॥₁₇॥

भद्रे हृदयमप्येतदनुमृश्योद्धरस्व मे ।

एतत्समीक्ष्य कैकेयि ब्रूहि यत्साधु मन्यसे ॥₁₈॥

बलमात्मनि पश्यन्ती न मां शङ्कितुमर्हसि ।

करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥₁₉॥

तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः ।

व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम् ॥₂₀॥

यथाक्रमेण शपसि वरं मम ददासि च ।
तच्छृण्वन्तु त्रयस्त्रिंशद्देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥₂₁॥

चन्द्रादित्यौ नभश्चैव ग्रहा रात्र्यहनी दिशः ।
जगच्च पृथिवी चैव सगन्धर्वा सराक्षसा ॥₂₂॥

निशाचराणि भूतानि गृहेषु गृहदेवताः ।
यानि चान्यानि भूतानि जानीयुर्भाषितं तव ॥₂₃॥

सत्यसन्धो महातेजा धर्मज्ञः सुसमाहितः ।
वरं मम ददात्येष तन्मे शृण्वन्तु देवताः ॥₂₄॥

इति देवी महेष्वासं परिगृह्याभिषस्य च ।
ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम् ॥₂₅॥

वरौ यौ मे त्वया देव तदा दत्तौ महीपते ।
तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः ॥₂₆॥

अभिषेक समारम्भो राघवस्योपकल्पितः ।
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम् ॥₂₇॥

नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।
चीराजिनजटाधारी रामो भवतु तापसः ॥₂₈॥

भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम् ।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने ॥₂₉॥

ततः श्रुत्वा महाराज कैकेय्या दारुणं वचः ।
व्यथितो विलवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः ॥₃₀॥

असंवृतायामासीनो जगत्यां दीर्घमुच्छ्वसन् ।
अहो धिगिति सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः ।
मोहमापेदिवान्भूयः शोकोपहतचेतनः ॥₃₁॥

चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रतिलभ्य सुदुःखितः ।
कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥³²॥

नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ।
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा ॥³³॥

सदा ते जननी तुल्यां वृत्तिं वहति राघवः ।
तस्यैव त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता ॥³⁴॥

त्वं मयात्मविनाशाय भवनं स्वं प्रवेशिता ।
अविज्ञानान्नृपसुता व्याली तीक्ष्णविषा यथा ॥³⁵॥

जीवलोको यदा सर्वो रामस्येह गुणस्तवम् ।
अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम् ॥³⁶॥

कौसल्यां वा सुमित्रां वा त्यजेयमपि वा श्रियम् ।
जीवितं वात्मनो रामं न त्वेव पितृवत्सलम् ॥³⁷॥

परा भवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् ।
अपश्यतस्तु मे रामं नष्टा भवति चेतना ॥³⁸॥

तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना ।
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम् ॥³⁹॥

तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये ।
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे ॥⁴⁰॥

स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्
स्त्रिया गृहीतो दृहयेऽतिमात्रता ।
पपात देव्याश्चरणौ प्रसारितौ
उभावसंस्पृश्य यथातुरस्तथा ॥⁴¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

अतदर्हं महाराजं शयानमतथोचितम् ।
ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकात्परिच्युतम् ॥₁॥

अनर्थरूपा सिद्धार्था अभीता भयदर्शिनी ।
पुनराकारयामास तमेव वरमङ्गना ॥₂॥

त्वं कत्थसे महाराज सत्यवादी दृढव्रतः ।
मम चेमं वरं कस्माद्विधारयितुमिच्छसि ॥₃॥

एवमुक्तस्तु कैकेय्या राजा दशरथस्तदा ।
प्रत्युवाच ततः क्रुद्धो मुहूर्तं विह्वलन्निव ॥₄॥

मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुङ्गवे ।
हन्तानार्ये ममामित्रे रामः प्रव्राजितो वनम् ॥₅॥

यदि सत्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्यं भविष्यति ।
अकीर्तिरतुला लोके ध्रुवं परिभवश्च मे ॥₆॥

तथा विलपतस्तस्य परिभ्रमितचेतसः ।
अस्तमभ्यगमत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥₇॥

स त्रियामा तथार्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता ।
राज्ञो विलपमानस्य न व्यभासत शर्वरी ॥₈॥

तथैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः ।
विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः ॥₉॥

न प्रभातं त्वयेच्छामि मयायं रचितोऽञ्जलिः ।

अथ वा गम्यतां शीघ्रं नाहमिच्छामि निर्घृणाम् ।
नृशंसां कैकेयीं द्रष्टुं यत्कृते व्यसनं महत् ॥₁₀॥

एवमुक्त्वा ततो राजा कैकेयीं संयताञ्जलिः ।
प्रसादयामास पुनः कैकेयीं चेदमब्रवीत् ॥₁₁॥

साधुवृत्तस्य दीनस्य बद्धतस्य गतायुषः ।
प्रसादः क्रियतां देवि भद्रे राज्ञो विशेषतः ॥₁₂॥

शून्येन खलु सुश्रोणि मयेदं समुदाहृतम् ।
कुरु साधु प्रसादं मे बाले सहृदया ह्यसि ॥₁₃॥

विशुद्धभावस्य हि दुष्टभावा
ताम्रेक्षणस्याश्रुकलस्य राज्ञः ।
श्रुत्वा विचित्रं करुणं विलापम्
भर्तुर्नृशंसा न चकार वाक्यम् ॥₁₄॥

ततः स राजा पुनरेव मूर्छितः
प्रियामतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम् ।
समीक्ष्य पुत्रस्य विवासनं प्रति
क्षितौ विसंज्ञो निपपात दुःखितः ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

पुत्रशोकार्दितं पापा विसंज्ञं पतितं भुवि ।
विवेष्टमानमुदीक्ष्य सैक्षाकमिदमब्रवीत् ॥₁॥

पापं कृत्वेव किमिदं मम संश्रुत्य संश्रवम् ।
शेषे क्षितितले सन्नः स्थित्यां स्थातुं त्वमर्हसि ॥₂॥

आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः ।
सत्यमाश्रित्य हि मया त्वं च धर्मं प्रचोदितः ॥₃॥

संश्रुत्य शैब्यः श्येनाय स्वां तनुं जगतीपतिः ।
प्रदाय पक्षिणो राजञ्जगाम गतिमुत्तमाम् ॥₄॥

तथ ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे ।
याचमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमना ददौ ॥₅॥

सरितां तु पतिः स्वल्पां मर्यादां सत्यमन्वितः ।
सत्यानुरोधात्समये वेलां स्वां नातिवर्तते ॥₆॥

समयं च ममार्येमं यदि त्वं न करिष्यसि ।
अग्रतस्ते परित्यक्ता परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥₇॥

एवं प्रचोदितो राजा कैकेय्या निर्विशङ्कया ।
नाशकत्पाशमुन्मोक्तुं बलिरिन्द्रकृतं यथा ॥₈॥

उद्भ्रान्तहृदयश्चापि विवर्णवनदोऽभवत् ।
स धुर्यो वै परिस्पन्दन्युगचक्रान्तरं यथा ॥₉॥

विह्वलाभ्यां च नेत्राभ्यामपश्यन्निव भूमिपः ।

कृच्छ्राद्वैर्येण संस्तभ्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥₁₀॥

यस्ते मन्त्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः ।
तं त्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह ब्रूया ॥₁₁॥

ततः पापसमाचारा कैकेयी पार्थिवं पुनः ।
उवाच परुषं वाक्यं वाक्यज्ञा रोषमूर्छिता ॥₁₂॥

किमिदं भाषसे राजन्वाक्यं गररुजोपमम् ।
आनाययितुमक्लिष्टं पुत्रं राममिहार्हसि ॥₁₃॥

स्थाप्य राज्ये मम सुतं कृत्वा रामं वनेचरम् ।
निःसपत्नां च मां कृत्वा कृतकृत्यो भविष्यसि ॥₁₄॥

स नुन्न इव तीक्ष्णेण प्रतोदेन हयोत्तमः ।
राजा प्रदोचितोऽभीक्ष्णं कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥₁₅॥

धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना ।
ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम् ॥₁₆॥

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा कैकेयी तदनन्तरम् ।
स्वयमेवाब्रवीत्सूतं गच्छ त्वं राममानय ॥₁₇॥

ततः स राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति ।
शोकारक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः ॥₁₈॥

सुमन्तः करुणं श्रुत्वा दृष्ट्वा दीनं च पार्थिवम् ।
प्रगृहीताञ्जलिः किञ्चित्तस्माद्देशादपाक्रमन् ॥₁₉॥

यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः ।
तदा सुमन्तं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥₂₀॥

सुमन्त रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् ।

स मन्यमानः कल्याणं हृदयेन ननन्द च ॥₂₁॥

सुमन्त्रश्चिन्तयामास बरितं चोदितस्तया ।
व्यक्तं रामोऽभिषेकार्थमिहायास्यति धर्मवित् ॥₂₂॥

इति सूतो मतिं कृत्वा हर्षेण महता पुनः ।
निर्जगाम महातेजा राघवस्य दिदृक्षया ॥₂₃॥

ततः पुरस्तात्सहसा विनिर्गतो
महीपतीन्द्रारगतान्विलोकयन् ।
ददर्श पौरान्विविधान्महाधनान्
उपस्थितान्द्वारमुपेत्य विष्टितान् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

ते तु तां रजनीमुष्य ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपतस्थुरुपस्थानं सहराजपुरोहिताः ॥₁॥

अमात्या बलमुख्याश्च मुख्या ये निगमस्य च ।
राघवस्याभिषेकार्थे प्रीयमाणास्तु सङ्गताः ॥₂॥

उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाभ्यागतेऽहनि ।
अभिषेकाय रामस्य द्विजेन्द्रैरुपकल्पितम् ॥₃॥

काञ्चना जलकुम्भाश्च भद्रपीठं स्वलङ्कृतम् ।
रामश्च सम्यगास्तीर्णो भास्वरा व्याघ्रचर्मणा ॥₄॥

गङ्गायमुनयोः पुण्यात्सङ्गमादाहतं जलम् ।
याश्चान्याः सरितः पुण्या हृदाः कूपाः सरांसि च ॥₅॥

प्राग्वाहाश्चोर्ध्ववाहाश्च तिर्यग्वाहाः समाहिताः ।
ताभ्यश्चैवाहतं तोयं समुद्रेभ्यश्च सर्वशः ॥₆॥

क्षौद्रं दधिघृतं लाजा धर्माः सुमनसः पयः ।
सलाजाः क्षीरिभिश्छन्ना घटाः काञ्चनराजताः ।
पद्मोत्पलयुता भान्ति पूर्णाः परमवारिणा ॥₇॥

चन्द्रांशुविकचप्रख्यं पाण्डुरं रत्नभूषितम् ।
सञ्जं तिष्ठति रामस्य वालव्यजनमुत्तमम् ॥₈॥

चन्द्रमण्डलसङ्काशमातपत्रं च पाण्डुरम् ।
सञ्जं द्युतिकरं श्रीमदभिषेकपुरस्कृतम् ॥₉॥

पाण्डुरश्च वृषः सञ्जः पाण्डुराश्च सुस्थितः ।
प्रसूतश्च गजः श्रीमानौपवाह्यः प्रतीक्षते ॥₁₀॥

अष्टौ कन्याश्च मङ्गल्याः सर्वाभरणभूषिताः ।
वादित्राणि च सर्वाणि बन्दिनश्च तथापरे ॥₁₁॥

इक्ष्वाकूणां यथा राज्ये सम्भ्रियेताभिषेचनम् ।
तथा जातीयामादाय राजपुत्राभिषेचनम् ॥₁₂॥

ते राजवचनात्तत्र समवेता महीपतिम् ।
अपश्यन्तोऽब्रुवन्को नु राज्ञो नः प्रतिवेदयेत् ॥₁₃॥

न पश्यामश्च राजानमुदितश्च दिवाकरः ।
यौवराज्याभिषेकश्च सञ्जो रामस्य धीमतः ॥₁₄॥

इति तेषु ब्रुवाणेषु सार्वभौमान्महीपतीन् ।
अब्रवीत्तानिदं सर्वान्सुमन्तो राजसत्कृतः ॥₁₅॥

अयं पृच्छामि वचनात्सुखमायुष्मतामहम् ।
राज्ञः सम्प्रतिबुद्धस्य यच्चागमनकारणम् ॥₁₆॥

इत्युक्तान्तःपुरद्वारमाजगाम पुराणवित् ।
आशीर्भिर्गुणयुक्ताभिरभितुष्टाव राघवम् ॥₁₇॥

गता भगवती रात्रिरहः शिवमुपस्थितम् ।
बुध्यस्व नृपशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम् ॥₁₈॥

ब्राह्मणा बलमुख्याश्च नैगमाश्चागता नृप ।
दर्शनं प्रतिकाङ्क्षन्ते प्रतिबुध्यस्व राघव ॥₁₉॥

स्तुवन्तं तं तदा सूतं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम् ।
प्रतिबुध्य ततो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥₂₀॥

न चैव सम्प्रसृतोऽहमानयेदाशु राघवम् ।
इति राजा दशरथः सूतं तत्रान्वशात्पुनः ॥₂₁॥

स राजवचनं श्रुत्वा शिरसा प्रतिपूज्य तम् ।
निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानः प्रियं महत् ॥₂₂॥

प्रपन्नो राजमार्गं च पताका ध्वजशोभितम् ।
स सूतस्तत्र शुश्राव रामाधिकरणाः कथाः ॥₂₃॥

ततो ददर्श रुचिरं कैलाससदृशप्रभम् ।
रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्रवेश्मसमप्रभम् ॥₂₄॥

महाकपाटपिहितं वितर्दिशतशोभितम् ।
काञ्चनप्रतिमैकाग्रं मणिविद्रुमतोरणम् ॥₂₅॥

शारदाभ्रघनप्रख्यं दीप्तं मेरुगुहोपमम् ।
दामभिर्वरमाल्यानां सुमहद्भिरलङ्कितम् ॥₂₆॥

स वाजियुक्तेन रथेन सारथिर्-
नराकुलं राजकुलं विलोकयन् ।
ततः समासाद्य महाधनं महत्
प्रहृष्टरोमा स बभूव सारथिः ॥₂₇॥

तदद्रिकूटाचलमेघसंनिभम्
महाविमानोत्तमवेश्मसङ्घवत् ।
अवार्यमाणः प्रविवेश सारथिः
प्रभूतरत्नं मकरो यथार्णवम् ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम् ।
प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससाद पुराणवित् ॥₁॥

प्रासकार्मुकबिभ्रद्भिर्युवभिर्मृष्टकुण्डलैः ।
अप्रमादिभिरेकाग्रैः स्वनुरक्तैरधिष्ठिताम् ॥₂॥

तत्र काषायिणो वृद्धान्वेत्रपाणीन्स्वलङ्कृतान् ।
ददर्श विष्ठितान्द्वारि स्त्यध्यक्षान्सुसमाहितान् ॥₃॥

ते समीक्ष्य समायान्तं रामप्रियचिकीर्षवः ।
सहभार्याय रामाय क्षिप्रमेवाचचक्षिरे ॥₄॥

प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः ।
तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥₅॥

तं वैश्रवणसङ्काशमुपविष्टं स्वलङ्कृतम् ।
दादर्श सूतः पर्यङ्के सौवर्णो सोत्तरच्छदे ॥₆॥

वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगन्धिना ।
अनुलितं परार्धेन चन्दनेन परन्तपम् ॥₇॥

स्थितया पार्श्वतश्चापि वालव्यजनहस्तया ।
उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा ॥₈॥

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा ।
ववन्दे वरदं बन्दी नियमज्ञो विनीतवत् ॥₉॥

प्राञ्जलिस्तु सुखं पृष्ट्वा विहारशयनासने ।

राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्तो राजसत्कृतः ॥₁₀॥

कौसल्या सुप्रभा देव पिता त्वं द्रष्टुमिच्छति ।
महिष्या सह कैकेय्या गम्यतां तत्र माचिरम् ॥₁₁॥

एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः ।
ततः सम्मानयामास सीतामिदमुवाच ह ॥₁₂॥

देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे ।
मन्त्रेयेते ध्रुवं किञ्चिदभिषेचनसंहितम् ॥₁₃॥

लक्षयित्वा ह्यभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा ।
सञ्चोदयति राजानं मदर्थं मदिरेक्षणा ॥₁₄॥

यादृशी परिषत्तत्र तादृशो दूत आगतः ।
ध्रुवमद्यैव मां राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥₁₅॥

हन्त शीघ्रमितो गत्वा द्रक्ष्यामि च महीपतिः ।
सह त्वं परिवारेण सुखमास्त्व रमस्य च ॥₁₆॥

पतिसम्मानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा ।
आद्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ॥₁₇॥

स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च ।
ततः पावकसङ्काशमारुरोह रथोत्तमम् ॥₁₈॥

मुष्णन्तमिव चक्षूषि प्रभया हेमवर्चसम् ।
करेणुशिशुकल्पैश्च युक्तं परमवाजिभिः ॥₁₉॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवाशुगम् ।
प्रययौ तूर्णमास्थाय राघवो ज्वलितः श्रिया ॥₂₀॥

स पर्जन्य इवाकाशे स्वनवानभिनादयन् ।

निकेतान्निर्ययौ श्रीमान्महाभ्रादिव चन्द्रमाः ॥₂₁॥

छत्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः ।
जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः ॥₂₂॥

ततो हलहलाशब्दस्तुमुलः समजायत ।
तस्य निष्क्रममाणस्य जनौघस्य समन्ततः ॥₂₃॥

स राघवस्तत्र कथाप्रलापम्
शुश्राव लोकस्य समागतस्य ।
आत्माधिकारा विविधाश्च वाचः
प्रहृष्टरूपस्य पुरे जनस्य ॥₂₄॥

एष श्रियं गच्छति राघवोऽद्य; राजप्रसादाद्विपुलां गमिष्यन् ।
एते वयं सर्वसमृद्धकामा; येषामयं नो भविता प्रशास्ता ।
लाभो जनस्यास्य यदेष सर्वम्; प्रपत्स्यते राष्ट्रमिदं चिराय ॥₂₅॥

स घोषवद्भिश्च हयैः सनागैः
पुरःसरैः स्वस्तिकसूतमागधैः ।
महीयमानः प्रवरैश्च वादकैः
अभिष्टुतो वैश्रवणो यथा ययौ ॥₂₆॥

करेणुमातङ्गरथाश्चसङ्कुलम्
महाजनौघैः परिपूर्णचत्वरम् ।
प्रभूतरत्नं बहुपण्यसञ्चयम्
ददर्श रामो रुचिरं महापथम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

स रामो रथमास्थाय सम्प्रहृष्टसुहृज्जनः ।
अपश्यन्नगरं श्रीमान्नानाजनसमाकुलम् ॥₁॥

स गृहैरभ्रसङ्काशैः पाण्डुरैरुपशोभितम् ।
राजमार्गं ययौ रामो मध्येनागरुधूपितम् ॥₂॥

शोभमानमसम्बाधं तं राजपथमुत्तमम् ।
संवृतं विविधैः पण्यैर्भक्ष्यैरुच्चावचैरपि ॥₃॥

आशीर्वादान्बहूञ्शृण्वन्सुहृद्भिः समुदीरितान् ।
यथार्हं चापि सम्पूज्य सर्वानेव नरान्ययौ ॥₄॥

पितामहैराचरितं तथैव प्रपितामहैः ।
अद्योपादाय तं मार्गमभिषिक्तोऽनुपालय ॥₅॥

यथा स्म लालिताः पित्रा यथा पूर्वेः पितामहैः ।
ततः सुखतरं सर्वे रामे वत्स्याम राजनि ॥₆॥

अलमद्य हि भुक्तेन परमार्थैरलं च नः ।
यथा पश्याम निर्यान्तं रामं राज्ये प्रतिष्ठितम् ॥₇॥

अतो हि न प्रियतरं नान्यत्किञ्चिद्भविष्यति ।
यथाभिषेको रामस्य राज्येनामिततेजसः ॥₈॥

एताश्चान्याश्च सुहृदामुदासीनः कथाः शुभाः ।
आत्मसम्पूजनीः शृण्वन्ययौ रामो महापथम् ॥₉॥

न हि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात् ।

नरः शक्रोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे ॥₁₀॥

सर्वेषां स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरुते दयाम् ।
चतुर्णां हि वयःस्थानां तेन ते तमनुव्रताः ॥₁₁॥

स राजकुलमासाद्य महेन्द्रभवनोपमम् ।
राजपुत्रः पितुर्वैष्म प्रविवेश श्रिया ज्वलन् ॥₁₂॥

स सर्वाः समतिक्रम्य कक्ष्या दशरथात्मजः ।
संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमभ्यगात् ॥₁₃॥

ततः प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा
जनः स सर्वो मुदितो नृपात्मजे ।
प्रतीक्षते तस्य पुनः स्म निर्गमम्
यथोदयं चन्द्रमसः सरित्पतिः ॥₁₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

स ददर्शासने रामो निषण्णं पितरं शुभे ।
कैकेयीसहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥₁॥

स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत् ।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ॥₂॥

रामेत्युक्त्वा च वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥₃॥

तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम् ।
रामोऽपि भयमापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ॥₄॥

इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसन्तापकर्षितम् ।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥₅॥

ऊर्मि मालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम् ।
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥₆॥

अचिन्त्यकल्पं हि पितुस्तं शोकमुपधारयन् ।
बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि ॥₇॥

चिन्तयामास च तदा रामः पितृहिते रतः ।
किंस्त्रिदशैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥₈॥

अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति ।
तस्य मामद्य सम्प्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ॥₉॥

स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः ।

कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत् ॥₁₀॥

कच्चिन्मया नापराधमज्ञानाद्येन मे पिता ।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वं चैवेनं प्रसादय ॥₁₁॥

विवर्णवदनो दीनो न हि मामभिभाषते ।
शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते ।
सन्तापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥₁₂॥

कच्चिन्न किञ्चिद्भरते कुमारे प्रियदर्शने ।
शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातृणां वा ममाशुभम् ॥₁₃॥

अतोषयन्महाराजमकुर्वन्वा पितुर्वचः ।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥₁₄॥

यतोमूलं नरः पश्येत्प्रादुर्भावमिहात्मनः ।
कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥₁₅॥

कच्चित्ते परुषं किञ्चिदभिमानात्पिता मम ।
उक्तो भवत्या कोपेन यत्रास्य लुलितं मनः ॥₁₆॥

एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः ।
किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे ॥₁₇॥

अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मञ्जयेयमपि चार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥₁₈॥

तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥₁₉॥

तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम् ।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥₂₀॥

पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव ।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ॥₂₁॥

तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् ।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥₂₂॥

यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि ।
आत्मानं च नररेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥₂₃॥

स निदेशे पितुस्तिष्ठ यथा तेन प्रतिश्रुतम् ।
द्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥₂₄॥

सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।
अभिषेकमिमं त्यक्त्वा जटाचीरधरो वस ॥₂₅॥

भरतः कोसलपुरे प्रशास्तु वसुधामिमाम् ।
नानारत्नसमाकीर्णा सवाजिरथकुञ्जराम् ॥₂₆॥

तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम् ।
श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत् ॥₂₇॥

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वतः ।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥₂₈॥

इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः ।
नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापुरमरिन्दमः ॥₂₉॥

मन्युर्न च त्वया कार्यो देवि ब्रूहि तवाग्रतः ।
यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥₃₀॥

हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च ।
नियुज्यमानो विश्रब्धं किं न कुर्यादहं प्रियम् ॥₃₁॥

अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहतीव मे ।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥₃₂॥

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान्धनानि च ।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरतायाप्रचोदितः ॥₃₃॥

किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः ।
तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥₃₄॥

तदाश्वासय हीमं त्वं किं न्विदं यन्महीपतिः ।
वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति ॥₃₅॥

गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात् ॥₃₆॥

दण्डकारण्यमेषोऽहमितो गच्छामि सत्वरः ।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समावस्तुं चतुर्दश ॥₃₇॥

सा हृष्टा तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकयी ।
प्रस्थानं श्रद्धधाना हि त्वरयामास राघवम् ॥₃₈॥

एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादुपावर्तयितुं नराः ॥₃₉॥

तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् ।
राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ॥₄₀॥

व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते ।
नैतत्किञ्चिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥₄₁॥

यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादभित्वरन् ।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ॥₄₂॥

धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः ।
मूर्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते ॥⁴³॥

रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेय्याभिप्रचोदितः ।
कश्येवाहतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ॥⁴⁴॥

तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदरम् ।
श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥⁴⁵॥

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्ममास्थितम् ॥⁴⁶॥

यदत्रभवतः किञ्चिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया ।
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥⁴⁷॥

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥⁴⁸॥

अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम् ।
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश ॥⁴⁹॥

न नूनं मयि कैकेयि किञ्चिदाशंससे गुणम् ।
यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती ॥⁵⁰॥

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् ।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥⁵¹॥

भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा ।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः ॥⁵²॥

स रामस्य वचः श्रुत्वा भृशं दुःखहतः पिता ।
शोकादशक्नुवन्बाष्पं प्ररुरोद महास्वनम् ॥⁵³॥

वन्दिता चरणौ रामो विसंज्ञस्य पितुस्तदा ।
कैकेय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युतिः ॥⁵⁴॥

स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम् ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्स्वं ददर्श सुहृञ्जनम् ॥⁵⁵॥

तं बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतोऽनुजगाम ह ।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥⁵⁶॥

आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा रामः प्रदक्षिणम् ।
शनैर्जगाम सापेक्षो दृष्टिं तत्राविचालयन् ॥⁵⁷॥

न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति ।
लोककान्तस्य कान्तत्वं शीतरश्मेरिव क्षपा ॥⁵⁸॥

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम् ।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥⁵⁹॥

धारयन्मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च ।
प्रविवेशात्मवान्वेश्म मातुरप्रियशंसिवान् ॥⁶⁰॥

प्रविश्य वेश्मातिभृशं मुदान्वितम्
समीक्ष्य तां चार्थविपत्तिमागताम् ।
न चैव रामोऽत्र जगाम विक्रियाम्
सुहृञ्जनस्यात्मविपत्तिशङ्कया ॥⁶¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

रामस्तु भृशमायस्तो निःश्वसन्निव कुञ्जरः ।
जगाम सहितो भ्रात्रा मातुरन्तःपुरं वशी ॥₁॥

सोऽपश्यत्पुरुषं तत्र वृद्धं परमपूजितम् ।
उपविष्टं गृहद्वारि तिष्ठतश्चापरान्बहून् ॥₂॥

प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः ।
ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्वृद्धान्नाज्ञाभिसत्कृतान् ॥₃॥

प्रणम्य रामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श सः ।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥₄॥

वर्धयित्वा प्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः ।
न्यवेदयन्त बरिता राम मातुः प्रियं तदा ॥₅॥

कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता ।
प्रभाते बकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी ॥₆॥

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥₇॥

प्रविश्य च तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम् ।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥₈॥

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥₉॥

तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः ।

कौसल्या पुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः ॥₁₀॥

वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम् ।
प्राप्तुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चोपहितं कुले ॥₁₁॥

सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव ।
अदौव हि त्वां धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥₁₂॥

मातरं राघवः किञ्चित्प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ।
स स्वभावविनीतश्च गौरवाच्च तदानतः ॥₁₃॥

देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम् ।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥₁₄॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
मधुमूलफलैर्जीवन्हि त्वा मुनिवदामिषम् ॥₁₅॥

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति ।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥₁₆॥

तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव ।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम् ॥₁₇॥

उपावृत्योत्थितां दीनां वडवामिव वाहिताम् ।
पांशुगुण्ठितसर्वाङ्गीं विममर्श च पाणिना ॥₁₈॥

सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता ।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥₁₉॥

यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव ।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजा ॥₂₀॥

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानवः ।

अप्रजास्मीति सन्तापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥₂₁॥

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे ।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥₂₂॥

सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् ।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां वरा सती ।
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति ॥₂₃॥

त्वयि संनिहितेऽप्येवमहमासं निराकृता ।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव मे ॥₂₄॥

यो हि मां सेवते कश्चिदथ वाप्यनुवर्तते ।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥₂₅॥

दश सप्त च वर्षाणि तव जातस्य राघव ।
अतीतानि प्रकाङ्क्षन्त्या मया दुःखपरिक्षयम् ॥₂₆॥

उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः ।
दुःखं संवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥₂₇॥

स्थिरं तु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते ।
प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥₂₈॥

ममैव नूनं मरणं न विद्यते
न चावकाशोऽस्ति यमक्षये मम ।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति
प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव ॥₂₉॥

स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसम्
न भिद्यते यद्भुवि नावदीर्यते ।
अनेन दुःखेन च देहमर्पितम्
ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते ॥₃₀॥

इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे
व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि ।
तपश्च तप्तं यदपत्यकारणात्
सुनिष्फलं बीजमिवोत्तमूषरे ॥₃₁॥

यदि ह्यकाले मरणं स्वयेच्छया
लभेत कश्चिद्गुरु दुःख कर्षितः ।
गताहमदौव परेत संसदम्
विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥₃₂॥

भृशमसुखममर्षिता तदा
बहु विललाप समीक्ष्य राघवम् ।
व्यसनमुपनिशाम्य सा महत्
सुतमिव बद्धमवेक्ष्य किंनरी ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥अष्टादशः सर्गः॥

तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम् ।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥₁॥

न रोचते ममाप्येतदार्ये यद्राघवो वनम् ।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत्स्त्रिया वाक्यवशं गतः ॥₂॥

विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोदमानः समन्मथः ॥₃॥

नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथा विधम् ।
येन निर्वास्यते राष्ट्राद्वनवासाय राघवः ॥₄॥

न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः ।
अमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत् ॥₅॥

देवकल्पमृजुं दान्तं रिपूणामपि वत्सलम् ।
अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात् ॥₆॥

तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः ।
पुत्रः को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन् ॥₇॥

यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः ।
तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम् ॥₈॥

मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव ।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः ॥₉॥

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ ।

करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये ॥₁₀॥

भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति ।
सर्वानेतान्वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ॥₁₁॥

त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम् ।
कस्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन ॥₁₂॥

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तच्चतः ।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥₁₃॥

दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यते ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥₁₄॥

हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः ।
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ॥₁₅॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
उवाच रामं कौसल्या रुदन्ती शोकलालसा ॥₁₆॥

भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया ।
यदत्रानन्तरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते ॥₁₇॥

न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम् ।
विहाय शोकसन्तप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥₁₈॥

धर्मज्ञ यदि धर्मिष्ठो धर्मं चरितुमिच्छसि ।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥₁₉॥

शुश्रूषुर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन् ।
परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः ॥₂₀॥

यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् ।

त्वां नाहमनुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥₂₁॥

बद्धियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन वा ।
त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ॥₂₂॥

यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम् ।
अहं प्रायमिहासिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम् ॥₂₃॥

ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्रं निरयं लोकविश्रुतम् ।
ब्रह्महत्यामिवाधर्मात्समुद्रः सरितां पतिः ॥₂₄॥

विलपन्तीं तथा दीनां कौसल्यां जननीं ततः ।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥₂₅॥

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रामितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥₂₆॥

ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता व्रतचारिणा ।
गौर्हता जानता धर्मं कण्डुनापि विपश्चिता ॥₂₇॥

अस्माकं च कुले पूर्वं सगरस्याज्ञया पितुः ।
खनद्भिः सागरैर्भूतिमवाप्तः सुमहान्वधः ॥₂₈॥

जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननीं स्वयम् ।
कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारिणा ॥₂₉॥

न खल्वेतन्मयैकेन क्रियते पितृशासनम् ।
पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते ॥₃₀॥

तदेतत्तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा ।
पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीयते ॥₃₁॥

तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् ।

तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।
अभिप्रायमविज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च ॥³²॥

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मसंश्रितमेतच्च पितुर्वचनमुत्तमम् ॥³³॥

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥³⁴॥

सोऽहं न शक्यामि पितुर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥³⁵॥

तदेनां विसृजानार्या क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥³⁶॥

तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद्भातरं लक्ष्मणाग्रजः ।
उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिः शिरसानतः ॥³⁷॥

अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम् ।
शापितासि मम प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे ।
तीर्णप्रतिज्ञश्च वनात्पुनरेष्याम्यहं पुरीम् ॥³⁸॥

यशो ह्यहं केवलराज्यकारणात्
न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकाले न तु देवि जीविते
वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥³⁹॥

प्रसादयन्नरवृषभः स मातरम्
पराक्रमाञ्जिगमिषुरेव दण्डकान् ।
अथानुजं भृशमनुशास्य दर्शनम्
चकार तां हृदि जननीं प्रदक्षिणम् ॥⁴⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम् ।
श्वसन्तमिव नागेन्द्रं रोषविस्फारितेक्षणम् ॥₁॥

आसाद्य रामः सौमित्रिं सुहृदं भ्रातरं प्रियम् ।
उवाचेदं स धैर्येण धारयन्सत्त्वमात्मवान् ॥₂॥

सौमित्रे योऽभिषेकार्थं मम सम्भारसम्भ्रमः ।
अभिषेकनिवृत्त्यर्थं सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः ॥₃॥

यस्या मदभिषेकार्थं मानसं परितप्यते ।
माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुरु ॥₄॥

तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥₅॥

न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन ।
मातृणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम् ॥₆॥

सत्यः सत्याभिसन्धश्च नित्यं सत्यपराक्रमः ।
परलोकभयाद्भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥₇॥

तस्यापि हि भवेदस्मिन्कर्मण्यप्रतिसंहते ।
सत्यं नेति मनस्तापस्तस्य तापस्तपेच्च माम् ॥₈॥

अभिषेकविधानं तु तस्मात्संहृत्य लक्ष्मण ।
अन्वगेवाहमिच्छामि वनं गन्तुमितः पुनः ॥₉॥

मम प्रव्राजनादद्य कृतकृत्या नृपात्मजा ।

सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयिता ततः ॥₁₀॥

मयि चीराजिनधरे जटामण्डलधारिणि ।
गतेऽरण्यं च कैकेय्या भविष्यति मनःसुखम् ॥₁₁॥

बुद्धिः प्रणीता येनेयं मनश्च सुसमाहितम् ।
तत्तु नार्हामि सङ्केष्टुं प्रव्रजिष्यामि माचिरम् ॥₁₂॥

कृतान्तस्त्वेव सौमित्रे द्रष्टव्यो मत्प्रवासने ।
राज्यस्य च वितीर्णस्य पुनरेव निवर्तने ॥₁₃॥

कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम पीडने ।
यदि भावो न दैवोऽयं कृतान्तविहितो भवेत् ॥₁₄॥

जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् ।
भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥₁₅॥

सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्च दुर्वचैः ।
उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यद्देवात्समर्थये ॥₁₆॥

कथं प्रकृतिसम्पन्ना राजपुत्री तथागुणा ।
ब्रूयात्सा प्राकृतेव स्त्री मत्पीडां भर्तृसंनिधौ ॥₁₇॥

यदचिन्त्यं तु तद्वैवं भूतेष्वपि न हन्यते ।
व्यक्तं मयि च तस्यां च पतितो हि विपर्ययः ॥₁₈॥

कश्चिद्देवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
यस्य न ग्रहणं किञ्चित्कर्मणोऽन्यत्र दृश्यते ॥₁₉॥

सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ ।
यस्य किञ्चित्तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत् ॥₂₀॥

व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ।

तस्मादपरितापः संस्त्वमप्यनुविधाय माम् ।
प्रतिसंहारय क्षिप्रमाभिषेचनिकीं क्रियाम् ॥₂₁॥

न लक्ष्मणास्मिन्मम राज्यविघ्ने
माता यवीयस्यतिशङ्कनीया ।
दैवाभिपन्ना हि वदन्त्यनिष्टम्
जानासि दैवं च तथाप्रभावम् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽधःशिरा मुहुः ।
श्रुत्वा मध्यं जगामेव मनसा दुःखहर्षयोः ॥₁॥

तदा तु बद्धा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभ ।
निशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥₂॥

तस्य दुष्प्रतिवीक्ष्यं तद्भ्रुकुटीसहितं तदा ।
बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ॥₃॥

अग्रहस्तं विधुन्वंस्तु हस्ती हस्तमिवात्मनः ।
तिर्यगूर्ध्वं शरीरे च पातयित्वा शिरोधराम् ॥₄॥

अग्राक्ष्णा वीक्षमाणस्तु तिर्यग्भ्रातरमब्रवीत् ।
अस्थाने सम्भ्रमो यस्य जातो वै सुमहानयम् ॥₅॥

धर्मदोषप्रसङ्गेन लोकस्यानतिशङ्कया ।
कथं ह्येतदसम्भ्रान्तस्त्वद्विधो वक्तुमर्हति ॥₆॥

यथा दैवमशौण्डीरं शौण्डीरः क्षत्रियर्षभः ।
किं नाम कृपणं दैवमशक्तमभिशांससि ॥₇॥

पापयोस्ते कथं नाम तयोः शङ्का न विद्यते ।
सन्ति धर्मोपधाः श्लक्ष्णा धर्मात्मन्किं न बुध्यसे ॥₈॥

लोकविद्विष्टमारब्धं त्वदन्यस्याभिषेचनम् ।
येनेयमागता द्वैधं तव बुद्धिर्महीपते ।
स हि धर्मो मम द्वेष्यः प्रसङ्गादस्य मुह्यसि ॥₉॥

यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते दैवी चापि तयोर्मतम् ।
तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥₁₀॥

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥₁₁॥

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥₁₂॥

द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च ।
दैवमानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति ॥₁₃॥

अद्य मत्पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः ।
यद्वैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम् ॥₁₄॥

अत्यङ्कुशमिवोद्दामं गजं मदबलोद्धतम् ।
प्रधावितमहं दैवं पौरुषेण निवर्तये ॥₁₅॥

लोकपालाः समस्तास्ते नाद्य रामाभिषेचनम् ।
न च कृत्स्नास्त्रयो लोका विहन्युः किं पुनः पिता ॥₁₆॥

यैर्विवासस्तवारण्ये मिथो राजन्समर्थितः ।
अरण्ये ते विवत्स्यन्ति चतुर्दश समास्तथा ॥₁₇॥

अहं तदाशां छेत्स्यामि पितुस्तस्याश्च या तव ।
अभिषेकविघातेन पुत्रराज्याय वर्तते ॥₁₈॥

मद्वलेन विरुद्धाय न स्याद्दैवबलं तथा ।
प्रभविष्यति दुःखाय यथोग्रं पौरुषं मम ॥₁₉॥

ऊर्ध्वं वर्षसहस्रान्ते प्रजापाल्यमनन्तरम् ।
आर्यपुत्राः करिष्यन्ति वनवासं गते त्वयि ॥₂₀॥

पूर्वराजर्षिवृत्त्या हि वनवासो विधीयते ।
प्रजा निक्षिप्य पुत्रेषु पुत्रवत्परिपालने ॥²¹॥

स चेद्राजन्यनेकाग्रे राज्यविभ्रमशङ्कया ।
नैवमिच्छसि धर्मात्मनाज्यं राम त्वमात्मनि ॥²²॥

प्रतिजाने च ते वीर मा भूवं वीरलोकभाक् ।
राज्यं च तव रक्षेयमहं वेलेव सागरम् ॥²³॥

मङ्गलैरभिषिञ्चस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव ।
अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥²⁴॥

न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥²⁵॥

अमित्रदमनार्थं मे सर्वमेतच्चतुष्टयम् ।
न चाहं कामयेऽत्यर्थं यः स्याच्छत्रुर्मतो मम ॥²⁶॥

असिना तीक्ष्णधारेण विद्युच्चलितवर्चसा ।
प्रगृहीतेन वै शत्रुं वज्रिणं वा न कल्पये ॥²⁷॥

खड्गनिष्पेषनिष्पिष्टैर्गहना दुश्चरा च मे ।
हस्त्यश्चनरहस्तोरुशिरोभिर्भविता मही ॥²⁸॥

खड्गधाराहता मेऽद्य दीप्यमाना इवाद्रयः ।
पतिष्यन्ति द्विपा भूमौ मेघा इव सविद्युतः ॥²⁹॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणे प्रगृहीतशरासने ।
कथं पुरुषमानी स्यात्पुरुषाणां मयि स्थिते ॥³⁰॥

बहुभिश्चैकमत्यस्यन्नेकेन च बहूञ्जनान् ।
विनियोक्ष्याम्यहं बाणान्नृवाजिगजमर्मसु ॥³¹॥

अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति ।
राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥₃₂॥

अद्य चन्दनसारस्य केयूरामोक्षणस्य च ।
वसूनां च विमोक्षस्य सुहृदां पालनस्य च ॥₃₃॥

अनुरूपाविमौ बाहू राम कर्म करिष्यतः ।
अभिषेचनविघ्नस्य कर्तृणां ते निवारणे ॥₃₄॥

ब्रवीहि कोऽद्वैव मया वियुज्यताम्
तवासुहृत्प्राणयशः सुहृञ्जनैः ।
यथा तवेयं वसुधा वशे भवेत्
तथैव मां शाधि तवास्मि किङ्करः ॥₃₅॥

विमृज्य बाष्पं परिसान्द्र्य चासकृत्
स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः ।
उवाच पित्र्ये वचने व्यवस्थितम्
निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

तं समीक्ष्य ब्रवहितं पितुर्निर्देशपालने ।
कौसल्या बाष्पसंरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥₁॥

अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ।
मयि जातो दशरथात्कथमुञ्छेन वर्तयेत् ॥₂॥

यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते ।
कथं स भोक्ष्यते नाथो वने मूलफलान्ययम् ॥₃॥

क एतच्छ्रद्धधेच्छ्रुत्वा कस्य वा न भवेद्भयम् ।
गुणवान्दयितो राज्ञो राघवो यद्विवास्यते ॥₄॥

ब्रया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान् ।
प्रधक्ष्यति यथा कक्षं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥₅॥

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तं नानुगच्छति ।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र पुत्र गमिष्यसि ॥₆॥

तथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः ।
श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥₇॥

कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥₈॥

भर्तुः किल परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥₉॥

यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः ।

शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः ॥₁₀॥

एवमुक्ता तु रामेण कौसल्या शुभ दर्शना ।
तथेत्युवाच सुप्रीता राममक्लिष्टकारिणम् ॥₁₁॥

एवमुक्तस्तु वचनं रामो धर्मभृतां वरः ।
भूयस्तामब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥₁₂॥

मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः ।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥₁₃॥

इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च ।
वर्षाणि परमप्रीतः स्थास्यामि वचने तव ॥₁₄॥

एवमुक्ता प्रियं पुत्रं बाष्पपूर्णानना तदा ।
उवाच परमार्ता तु कौसल्या पुत्रवत्सला ॥₁₅॥

आसां राम सपत्नीनां वस्तुं मध्ये न मे क्षमम् ।
नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यं मृगीं यथा ।
यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया ॥₁₆॥

तां तथा रुदतीं रामो रुदन्वचनमब्रवीत् ।
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ।
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥₁₇॥

भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ।
भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ॥₁₈॥

यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः ।
श्रमं नावाप्नुयात्किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु ॥₁₉॥

व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ।
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ॥₂₀॥

शुश्रूषमेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ।
एष धर्मः पुरा दृष्टो लोके वेदे श्रुतः स्मृतः ॥₂₁॥

पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सुव्रताः ।
एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकाङ्क्षिणी ॥₂₂॥

प्राप्स्यसे परमं कामं मयि प्रत्यागते सति ।
यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यति जीवितम् ॥₂₃॥

एवमुक्त्वा तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ।
गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो ॥₂₄॥

तथा हि रामं वनवासनिश्चितम्
समीक्ष्य देवी परमेण चेतसा ।
उवाच रामं शुभलक्षणं वचो
बभूव च स्वस्त्ययनाभिकाङ्क्षिणी ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

सापनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचि ।
चकार माता रामस्य मङ्गलानि मनस्विनी ॥₁॥

स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षयः ।
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ॥₂॥

ऋतवश्चैव पक्षाश्च मासाः संवत्सराः क्षपाः ।
दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥₃॥

स्मृतिर्धृतिश्च धर्मश्च पान्तु त्वां पुत्र सर्वतः ।
स्कन्दश्च भगवान्देवः सोमश्च सबृहस्पतिः ॥₄॥

सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः ।
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहाश्च सहदेवताः ।
महावनानि चरतो मुनिवेषस्य धीमतः ॥₅॥

प्लवगा वृश्चिका दंशा मशकाश्चैव कानने ।
सरीसृपाश्च कीटाश्च मा भूवन्गहने तव ॥₆॥

महाद्विपाश्च सिंहाश्च व्याघ्रा ऋक्षाश्च दंष्ट्रिणः ।
महिषाः शृङ्गिणो रौद्रा न ते द्रुह्यन्तु पुत्रक ॥₇॥

नृमांसभोजना रौद्रा ये चान्ये सत्त्वजातयः ।
मा च त्वां हिंसिषुः पुत्र मया सम्पूजितास्त्रिह ॥₈॥

आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः ।
सर्वसम्पत्तयो राम स्वस्तिमान्गच्छ पुत्रक ॥₉॥

स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः ।
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिनः ॥₁₀॥

सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतभर्ता तथर्षयः ।
ये च शेषाः सुरास्ते त्वां रक्षन्तु वनवासिनम् ॥₁₁॥

इति माल्यैः सुरगणान्गन्धैश्चापि यशस्विनी ।
स्तुतिभिश्चानुरूपाभिरानर्चायतलोचना ॥₁₂॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥₁₃॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥₁₄॥

ओषधीं चापि सिद्धार्था विशल्यकरणीं शुभाम् ।
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च ॥₁₅॥

आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी ।
अवदत्पुत्र सिद्धार्थो गच्छ राम यथासुखम् ॥₁₆॥

अरोगं सर्वसिद्धार्थमयोध्यां पुनरागतम् ।
पश्यामि त्वां सुखं वत्स सुस्थितं राजवेश्मनि ॥₁₇॥

मयार्चिता देवगणाः शिवादयो
महर्षयो भूतमहासुरोरगाः ।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते
हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव ॥₁₈॥

इतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना
समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि ।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवम्
पुनः पुनश्चापि निपीड्य सस्त्रजे ॥₁₉॥

तथा तु देव्या स कृतप्रदक्षिणो
निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः ।
जगाम सीतानिलयं महायशाः
स राघवः प्रज्वलितः स्वया श्रिया ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

अभिवाद्य तु कौसल्यां रामः सम्प्रस्थितो वनम् ।
कृतस्वस्त्ययनो मात्रा धर्मिष्ठे वर्त्मनि स्थितः ॥₁॥

विराजयन् राजसुतो राजमार्गं नरैर्वृतम् ।
हृदयान्याममन्थेव जनस्य गुणवत्तया ॥₂॥

वैदेही चापि तत्सर्वं न शुश्राव तपस्विनी ।
तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्याभिषेचनम् ॥₃॥

देवकार्यं स्म सा कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना ।
अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्रं प्रतीक्षते ॥₄॥

प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम् ।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं हिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥₅॥

अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम् ।
अपश्यच्छोकसन्तप्तं चिन्ताव्याकुलिलेन्द्रियम् ॥₆॥

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् ।
आह दुःखाभिसन्तप्ता किमिदानीमिदं प्रभो ॥₇॥

अद्य बार्हस्पतः श्रीमान्युक्तः पुष्यो न राघव ।
प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः ॥₈॥

न ते शतशलाकेन जलफेननिभेन च ।
आवृतं वदनं वल्गु छत्रेणाभिविराजते ॥₉॥

व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम् ।

चन्द्रहंसप्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम् ॥₁₀॥

वाग्मिनो बन्दिनश्चापि प्रहृष्टास्त्वं नरर्षभ ।
स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मङ्गलैः सूतमागधाः ॥₁₁॥

न ते क्षौद्रं च दधि च ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
मूर्ध्नि मूर्धावसिक्तस्य दधति स्म विधानतः ॥₁₂॥

न त्वां प्रकृतयः सर्वा श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः ।
अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजापपदास्तथा ॥₁₃॥

चतुर्भिर्वेगसम्पन्नैर्हयैः काञ्चनभूषणैः ।
मुख्यः पुष्यरथो युक्तः किं न गच्छति तेऽग्रतः ॥₁₄॥

न हस्ती चाग्रतः श्रीमांस्तव लक्षणपूजितः ।
प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरि प्रभः ॥₁₅॥

न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन ।
भद्रासनं पुरस्कृत्य यान्तं वीरपुरःसरम् ॥₁₆॥

अभिषेको यदा सञ्जः किमिदानीमिदं तव ।
अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥₁₇॥

इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः ।
सीते तत्रभवांस्तात प्रव्राजयति मां वनम् ॥₁₈॥

कुले महति सम्भूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि ।
शृणु जानकि येनेदं क्रमेणाभ्यागतं मम ॥₁₉॥

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन मे ।
कैकेय्यै प्रीतमनसा पुरा दत्तौ महावरौ ॥₂₀॥

तयाद्य मम सञ्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते ।

प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥₂₁॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया ।
पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ।
सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ॥₂₂॥

भरतस्य समीपे ते नाहं कथ्यः कदाचन ।
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम ॥₂₃॥

नापि त्वं तेन भर्तव्या विशेषेण कदाचन ।
अनुकूलतया शक्यं समीपे तस्य वर्तितुम् ॥₂₄॥

अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् ।
वनमदैव यास्यामि स्थिरा भव मनस्विनि ॥₂₅॥

याते च मयि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम् ।
व्रतोपवासरतया भवितव्यं त्वयानघे ॥₂₆॥

काल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि ।
वन्दितव्यो दशरथः पिता मम नरेश्वरः ॥₂₇॥

माता च मम कौसल्या वृद्धा सन्तापकर्षिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥₂₈॥

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः ॥₂₉॥

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया लक्ष्मणशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥₃₀॥

विप्रियं न च कर्तव्यं भरतस्य कदाचन ।
स हि राजा प्रभुश्चैव देशस्य च कुलस्य च ॥₃₁॥

आराधिता हि शीलेन प्रयत्नेश्चोपसेविताः ।
राजानः सम्प्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ॥₃₂॥

औरसानपि पुत्रान्हि त्यजन्त्यहितकारिणः ।
समर्थान्सम्प्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥₃₃॥

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये
त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्य चित्
तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी ।
प्रणयादेव सङ्क्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥₁॥

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्नानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥₂॥

भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥₃॥

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥₄॥

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्वैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्वन्ती कुशकण्टकान् ॥₅॥

ईर्ष्या रोषौ बहिष्कृत्य भुक्तशेषमिवोदकम् ।
नय मां वीर विश्रब्धः पापं मयि न विद्यते ॥₆॥

प्रासादाग्रैर्विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥₇॥

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥₈॥

सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रीँल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥₉॥

शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।

सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥₁₀॥

त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम सम्परिपालनम् ।
अन्यस्य पै जनस्येह किं पुनर्मम मानद ॥₁₁॥

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती सह त्वया ॥₁₂॥

इच्छामि सरितः शैलान्पल्लवानि वनानि च ।
द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता ॥₁₃॥

हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः ।
इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण सङ्गता ॥₁₄॥

सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी ।
एवं वर्षसहस्राणां शतं वाहं त्वया सह ॥₁₅॥

स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ।
त्वया मम नरव्याघ्र नाहं तमपि रोचये ॥₁₆॥

अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमम्
मृगायुतं वानरवारणैर्युतम् ।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे
तवैव पादावुपगृह्य सम्मता ॥₁₇॥

अनन्यभावामनुरक्तचेतसम्
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनाम्
न ते मयातो गुरुता भविष्यति ॥₁₈॥

तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलो
न च स्म सीतां नृवरो निनीषति ।
उवाच चैनां बहु संनिवर्तने

वने निवासस्य च दुःखितां प्रति ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ।
निर्वर्तनार्थं धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁॥

सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा ।
इहाचर स्वधर्मं त्वं मा यथा मनसः सुखम् ॥₂॥

सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाबले ।
वने दोषा हि बहवो वदतस्तान्निबोध मे ॥₃॥

सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः ।
बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ॥₄॥

हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते ।
सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥₅॥

गिरिनिर्झरसम्भूता गिरिकन्दरवासिनाम् ।
सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥₆॥

सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयं भग्नासु भूतले ।
रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखतरं वनम् ॥₇॥

उपवासश्च कर्तव्या यथाप्राणेन मैथिलि ।
जटाभारश्च कर्तव्यो वल्कलाम्बरधारिणा ॥₈॥

अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चात्र नित्यशः ।
भयानि च महान्त्यत्र ततो दुःखतरं वनम् ॥₉॥

सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि ।

चरन्ति पृथिवीं दर्पादतो दुःखतरं वनम् ॥₁₀॥

नदीनिलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।
तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥₁₁॥

पतङ्गा वृश्चिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह ।
बाधन्ते नित्यमबले सर्वं दुःखमतो वनम् ॥₁₂॥

द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशकाशाश्च भामिनि ।
वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखतरं वनम् ॥₁₃॥

तदलं ते वनं गत्वा क्षमं न हि वनं तव ।
विमृशन्निह पश्यामि बहुदोषतरं वनम् ॥₁₄॥

वनं तु नेतुं न कृता मतिस्तदा
बभूव रामेण यदा महात्मना ।
न तस्य सीता वचनं चकार तत्
ततोऽब्रवीद्राममिदं सुदुःखिता ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता ।
प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

ये ब्रूया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति ।
गुणानित्येव तान्विद्धि तव स्नेहपुरस्कृतान् ॥₂॥

ब्रूया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया ।
बद्धियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥₃॥

न च मां ब्रूत्समीपस्थमपि शक्नोति राघव ।
सुराणामीश्वरः शक्रः प्रधर्षयितुमोजसा ॥₄॥

पतिहीना तु या नारी न सा शक्यति जीवितुम् ।
काममेवंविधं राम ब्रूया मम विदर्शितम् ॥₅॥

अथ चापि महाप्राज्ञ ब्राह्मणानां मया श्रुतम् ।
पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे वने ॥₆॥

लक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाहं वचनं गृहे ।
वनवासकृतोत्साहा नित्यमेव महाबल ॥₇॥

आदेशो वनवासस्य प्राप्तव्यः स मया किल ।
सा ब्रूया सह तत्राहं यास्यामि प्रिय नान्यथा ॥₈॥

कृतादेशा भविष्यामि गमिष्यामि सह ब्रूया ।
कालश्चायं समुत्पन्नः सत्यवाग्भवतु द्विजः ॥₉॥

वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल ।

प्राप्यन्ते नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥₁₀॥

कन्यया च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया ।
भिक्षिण्याः साधुवृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः ॥₁₁॥

प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं वै बहुविधं प्रभो ।
गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया ॥₁₂॥

कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव ।
वनवासस्य शूरस्य चर्या हि मम रोचते ॥₁₃॥

शुद्धात्मन्प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा ।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि मम दैवतम् ॥₁₄॥

प्रेत्यभावेऽपि कल्याणः सङ्गमो मे सह त्वया ।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥₁₅॥

इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महामते ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥₁₆॥

एवमस्मात्स्वकां नारीं सुवृत्तां हि पतिव्रताम् ।
नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥₁₇॥

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥₁₈॥

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थाय मृत्युकारणात् ॥₁₉॥

एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति ।
नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥₂₀॥

एवमुक्ता तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता ।

स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥₂₁॥

चिन्तयन्तीं तथा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् ।
क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं काकुत्स्थो बह्वसान्त्वयत् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

सान्ध्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
वनवासनिमित्ताय भर्तारमिदमब्रवीत् ॥₁॥

सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥₂॥

किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥₃॥

अनृतं बललोकोऽयमज्ञानाद्यद्धि वक्ष्यति ।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥₄॥

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
यत्परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥₅॥

द्युमत्सेनसुतं वीर सत्यवन्तमनुव्रताम् ।
सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥₆॥

न त्वहं मनसाप्यन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ ।
त्वया राघव गच्छेयं यथान्या कुलपांसनी ॥₇॥

स्वयं तु भार्या कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥₈॥

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थातुमर्हसि ।
तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात्सह त्वया ॥₉॥

न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रमः ।

पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्वपि ॥₁₀॥

कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह ब्रया ॥₁₁॥

महावात समुद्धूतं यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मन्ये परार्ध्यमिव चन्दनम् ॥₁₂॥

शाद्वलेषु यदासिष्ये वनान्ते वनगोरचा ।
कुथास्तरणतल्पेषु किं स्यात्सुखतरं ततः ॥₁₃॥

पत्रं मूलं फलं यच्चमल्पं वा यदि वा बहु ।
दास्यसि स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥₁₄॥

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः ।
आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ॥₁₅॥

न च तत्र गतः किञ्चिद्द्रष्टुमर्हसि विप्रियम् ।
मत्कृते न च ते शोको न भविष्यामि दुर्भरा ॥₁₆॥

यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना ।
इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह ॥₁₇॥

अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसि ।
विषमद्यैव पास्यामि मा विशं द्विषतां वशम् ॥₁₈॥

पश्चादपि हि दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम् ।
उज्झितायास्त्वया नाथ तदैव मरणं वरम् ॥₁₉॥

इदं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥₂₀॥

इति सा शोकसन्तप्ता विलप्य करुणं बहु ।

चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥₂₁॥

सा विद्धा बहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिव गजाङ्गना ।
चिर संनियतं बाष्पं मुमोचाग्निमिवारणिः ॥₂₂॥

तस्याः स्फटिकसङ्काशं वारि सन्तापसम्भवम् ।
नेत्राभ्यां परिसुस्नाव पङ्कजाभ्यामिवोदकम् ॥₂₃॥

तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम् ।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा ॥₂₄॥

न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।
न हि मेऽस्ति भयं किञ्चित्स्वयम्भोरिव सर्वतः ॥₂₅॥

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने ।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥₂₆॥

यत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिलि ।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥₂₇॥

धर्मस्तु गजनासोरु सद्गिराचरितः पुरा ।
तं चाहमनुवर्तेऽद्य यथा सूर्यं सुवर्चला ॥₂₈॥

एष धर्मस्तु सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता ।
अतश्चाज्ञां व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥₂₉॥

स मां पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः ।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ।
अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव ॥₃₀॥

ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् ।
देहि चाशंसमानेभ्यः सन्त्वरस्व च माचिरम् ॥₃₁॥

अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः ।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेवोपचक्रमे ॥₃₂॥

ततः प्रहृष्टा परिपूर्णमानसा
यशस्विनी भर्तुरवेक्ष्य भाषितम् ।
धनानि रत्नानि च दातुमङ्गना
प्रचक्रमे धर्मभृतां मनस्विनी ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः ।
स्थितं प्राग्गामिनं वीरं याचमानं कृताञ्जलिम् ॥₁॥

मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् ।
को भरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥₂॥

अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव ।
स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः ॥₃॥

सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपतेः सुता ।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम् ॥₄॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥₅॥

तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति ।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नात्र संशयः ॥₆॥

कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रमपि मद्विधान् ।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीवनम् ॥₇॥

धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधरः ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानमनुदर्शयन् ॥₈॥

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च ।
वन्यानि यानि चान्यानि स्वाहाराणि तपस्विनाम् ॥₉॥

भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते ।

अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥₁₀॥

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् ।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृञ्जनम् ॥₁₁॥

ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् ।
जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥₁₂॥

अभेद्यकवचे दिव्ये तूणी चाक्षयसायकौ ।
आदित्यविमलौ चोभौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥₁₃॥

सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्भानि ।
स त्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ॥₁₄॥

स सुहृञ्जनमामन्त्य वनवासाय निश्चितः ।
इक्ष्वाकुगुरुमामन्त्य जग्राहायुधमुत्तमम् ॥₁₅॥

तद्विव्यं राजशार्दूलः सत्कृतं माल्यभूषितम् ।
रामाय दर्शयामास सौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥₁₆॥

तमुवाचात्मवान्नामः प्रीत्या लक्ष्मणमागतम् ।
काले त्वमागतः सौम्य काङ्क्षिते मम लक्ष्मण ॥₁₇॥

अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परन्तप ॥₁₈॥

वसन्तीह दृढं भक्त्या गुरुषु द्विजसत्तमाः ।
तेषामपि च मे भूयः सर्वेषां चोपजीविनाम् ॥₁₉॥

वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यम्
त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम् ।
अभिप्रयास्यामि वनं समस्तान्
अभ्यर्च्य शिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

ततः शासनमाज्ञाय भ्रातुः शुभतरं प्रियम् ।
गत्वा स प्रविवेशाशु सुयज्ञस्य निवेशनम् ॥₁॥

तं विप्रमग्नगारस्थं वन्दित्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
सखेऽभ्यागच्छ पश्य त्वं वेश्म दुष्करकारिणः ॥₂॥

ततः सन्ध्यामुपास्याशु गत्वा सौमित्रिणा सह ।
जुष्टं तत्प्राविशलक्ष्म्या रम्यं रामनिवेशनम् ॥₃॥

तमागतं वेदविदं प्राञ्जलिः सीतया सह ।
सुयज्ञमभिचक्राम राघवोऽग्निमिवार्चितम् ॥₄॥

जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैः शुभैः ।
सहेम सूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥₅॥

अन्यैश्च रत्नैर्बहुभिः काकुत्स्थः प्रत्यपूजयत् ।
सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीताप्रचोदितः ॥₆॥

हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय ।
रशनां चाधुना सीता दातुमिच्छति ते सखे ॥₇॥

पर्यङ्कमग्न्यास्तरणं नानारत्नविभूषितम् ।
तमपीच्छति वैदेही प्रतिष्ठापयितुं त्वयि ॥₈॥

नागः शत्रुं जयो नाम मातुलो यं ददौ मम ।
तं ते गजसहस्रेण ददामि द्विजपुङ्गव ॥₉॥

इत्युक्तः स हि रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् ।

रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥₁₀॥

अथ भ्रातरमव्यग्रं प्रियं रामः प्रियंवदः ।
सौमित्रिं तमुवाचेदं ब्रह्मेव त्रिदशेश्वरम् ॥₁₁॥

अगस्त्यं कौशिकं चैव तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ ।
अर्चयाहूय सौमित्रे रत्नैः सस्यमिवाम्बुभिः ॥₁₂॥

कौसल्यां च य आशीर्भिर्भक्तः पर्युपतिष्ठति ।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्च वेदवित् ॥₁₃॥

तस्य यानं च दासीश्च सौमित्रे सम्प्रदापय ।
कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति स द्विजः ॥₁₄॥

सूतश्चित्ररथश्चार्यः सचिवः सुचिरोषितः ।
तोषयेनं महार्हेश्च रत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा ॥₁₅॥

शालिवाहसहस्रं च द्वे शते भद्रकांस्तथा ।
व्यञ्जनार्थं च सौमित्रे गोसहस्रमुपाकुरु ॥₁₆॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं लक्ष्मणः स्वयम् ।
यथोक्तं ब्राह्मणेन्द्राणामददाद्धनदो यथा ॥₁₇॥

अथाब्रवीद्वाष्पकलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः ।
सम्प्रदाय बहु द्रव्यमेकैकस्योपजीविनः ॥₁₈॥

लक्ष्मणस्य च यद्वैश्वं गृहं च यदिदं मम ।
अशून्यं कार्यमेकैकं यावदागमनं मम ॥₁₉॥

इत्युक्त्वा दुःखितं सर्वं जनं तमुपजीविनम् ।
उवाचेदं धनध्यक्षं धनमानीयतामिति ।
ततोऽस्य धनमाजह्युः सर्वमेवोपजीविनः ॥₂₀॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं सहलक्ष्मणः ।
द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्योऽभ्यदापयत् ॥₂₁॥

तत्रासीत्पिङ्गलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः ।
आ पञ्चमायाः कक्ष्याया नैनं कश्चिदवारयत् ॥₂₂॥

स राजपुत्रमासाद्य त्रिजटो वाक्यमब्रवीत् ।
निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महायशः ।
उञ्छवृत्तिर्वने नित्यं प्रत्यवेक्षस्व मामिति ॥₂₃॥

तमुवाच ततो रामः परिहाससमन्वितम् ।
गवां सहस्रमप्येकं न तु विश्राणितं मया ।
परिक्षिपसि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसि ॥₂₄॥

स शार्टीं ब्रूयितः कट्यां सम्भ्रान्तः परिवेष्ट्य ताम् ।
आविध्य दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगितः ॥₂₅॥

उवाच च ततो रामस्तं गार्ग्यमभिसान्ब्रूयन् ।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः परिहासो ह्ययं मम ॥₂₆॥

ततः सभार्यस्त्रिजटो महामुनिर्-
गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः ।
यशोबलप्रीतिसुखोपबृंहिणीः
तदाशिषः प्रत्यवदन्महात्मनः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु ।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥₁॥

ततो गृहीते दुष्प्रेक्ष्ये अशोभेतां तदायुधे ।
मालादामभिरासक्ते सीतया समलङ्कृते ॥₂॥

ततः प्रासादहर्म्याणि विमानशिखराणि च ।
अधिरुह्य जनः श्रीमानुदासीनो व्यलोकयत् ॥₃॥

न हि रथ्याः स्म शक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः ।
आरुह्य तस्मात्प्रासादान्दीनाः पश्यन्ति राघवम् ॥₄॥

पदातिं वर्जितच्छत्रं रामं दृष्ट्वा तदा जनाः ।
ऊचुर्बहुविधा वाचः शोकोपहतचेतसः ॥₅॥

यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् ।
तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥₆॥

ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन्कामिनां चैव कामदः ।
नेच्छत्येवानृतं कर्तुं पितरं धर्मगौरवात् ॥₇॥

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि ।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥₈॥

अङ्गरागोचितां सीतां रक्तचन्दन सेविनीम् ।
वर्षमुष्णं च शीतं च नेष्यत्याशु विवर्णताम् ॥₉॥

अद्य नूनं दशरथः सत्त्वमाविश्य भाषते ।

न हि राजा प्रियं पुत्रं विवासयितुमर्हति ॥₁₀॥

निर्गुणस्यापि पुत्रस्या काथं स्याद्विप्रवासनम् ।
किं पुनर्यस्य लोकोऽयं जितो वृत्तेन केवलम् ॥₁₁॥

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः ।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषोत्तमम् ॥₁₂॥

तस्मात्तस्योपघातेन प्रजाः परमपीडिताः ।
औदकानीव सत्त्वानि ग्रीष्मे सलिलसङ्ख्यात् ॥₁₃॥

पीडया पीडितं सर्वं जगदस्य जगत्पतेः ।
मूलस्येवोपघातेन वृक्षः पुष्पफलोपगः ॥₁₄॥

ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं सपत्न्यः सहबान्धवाः ।
गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति राघवः ॥₁₅॥

उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
एकदुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम् ॥₁₆॥

समुद्धृतनिधानानि परिध्वस्ताजिराणि च ।
उपात्तधनधान्यानि हृतसाराणि सर्वशः ॥₁₇॥

रजसाभ्यवकीर्णानि परित्यक्तानि दैवतैः ।
अस्मत्त्यक्तानि वेश्मानि कैकेयी प्रतिपद्यताम् ॥₁₈॥

वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः ।
अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं सम्पद्यतां वनम् ॥₁₉॥

बिलानि दंष्ट्रिणः सर्वे सानूनि मृगपक्षिणः ।
अस्मत्त्यक्तं प्रपद्यन्तां सेव्यमानं त्यजन्तु च ॥₂₀॥

इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः ।

शुश्राव रामः श्रुत्वा च न विचक्रेऽस्य मानसम् ॥₂₁॥

प्रतीक्षमाणोऽभिजनं तदार्तम्
अनार्तरूपः प्रहसन्निवाथ ।
जगाम रामः पितरं दिदृक्षुः
पितुर्निदेशं विधिवच्चिकीर्षुः ॥₂₂॥

तत्पूर्वमैक्ष्वाकसुतो महात्मा
रामो गमिष्यन्वनमार्तरूपम् ।
व्यतिष्ठत प्रेक्ष्य तदा सुमन्त्रम्
पितुर्महात्मा प्रतिहारणार्थम् ॥₂₃॥

पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो
वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः ।
स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवीत्
निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥एकत्रिंशः सर्गः॥

स रामप्रेषितः क्षिप्रं सन्तापकलुषेन्द्रियः ।
प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वसन्तं ददर्श ह ॥₁॥

आलोक्य तु महाप्राज्ञः परमाकुल चेतसम् ।
राममेवानुशोचन्तं सूतः प्राञ्जलिरासदत् ॥₂॥

अयं स पुरुषव्याघ्र द्वारि तिष्ठति ते सुतः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा सर्वं चैवोपजीविनाम् ॥₃॥

स त्वा पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः ।
सर्वान्सुहृद आपृच्छ्य त्वामिदानीं दिदृक्षते ॥₄॥

गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपते ।
वृतं राजगुणैः सर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः ॥₅॥

स सत्यवादी धर्मात्मा गाम्भीर्यात्सागरोपमः ।
आकाश इव निष्पङ्क्तो नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम् ॥₆॥

सुमन्त्रानय मे दारान्ये केचिदिह मामकाः ।
दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥₇॥

सोऽन्तःपुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत् ।
आर्यो ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र माचिरम् ॥₈॥

एवमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण नृपाज्ञया ।
प्रचक्रमुस्तद्भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥₉॥

अर्धसप्तशतास्तास्तु प्रमदास्ताम्रलोचनाः ।

कौसल्यां परिवार्याथ शनैर्जग्मुर्धृतव्रताः ॥₁₀॥

आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः ।
उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥₁₁॥

स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तदा ।
जगामाभिमुखस्तूर्णं सकाशं जगतीपतेः ॥₁₂॥

स राजा पुत्रमायान्तं दृष्ट्वा दूरात्कृताञ्जलिम् ।
उत्पपातासनात्तूर्णमार्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥₁₃॥

सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशां पतिः ।
तमसम्प्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥₁₄॥

तं रामोऽभ्यपातत्क्षिप्रं लक्ष्मणश्च महारथः ।
विसंज्ञमिव दुःखेन सशोकं नृपतिं तदा ॥₁₅॥

स्त्रीसहस्रनिनादश्च संजज्ञे राजवेश्मनि ।
हाहा रामेति सहसा भूषणध्वनिमूर्छितः ॥₁₆॥

तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥₁₇॥

अथ रामो मुहूर्तेन लब्धसंज्ञं महीपतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा शोकार्णवपरिप्लुतम् ॥₁₈॥

आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः ।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥₁₉॥

लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेति मां वनम् ।
कारणैर्बहुभिस्तथैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः ॥₂₀॥

अनुजानीहि सर्वान्नः शोकमुत्सृज्य मानद ।

लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिव प्रजाः ॥₂₁॥

प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः ।
उवाच रर्जा सम्प्रेक्ष्य वनवासाय राघवम् ॥₂₂॥

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायास्त्वमेवाद भव राजा निगृह्य माम् ॥₂₃॥

एवमुक्तो नृपतिना रामो धर्मभृतां वरः ।
प्रत्युवाचाञ्जलिं कृत्वा पितरं वाक्यकोविदः ॥₂₄॥

भवान्वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः ।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे कार्यं त्वयानृतम् ॥₂₅॥

श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च ।
गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥₂₆॥

अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा ।
मातरं मां च सम्पश्यन्वसेमामद्य शर्वरीम् ।
तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वःकाले साधयिष्यसि ॥₂₇॥

अथ रामस्तथा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा दीनो वचनमब्रवीत् ॥₂₈॥

प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान्प्रदास्यति ।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥₂₉॥

इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला ।
मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम् ॥₃₀॥

अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः ।
न हि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितां पतिः ॥₃₁॥

नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मैथिलीम् ।
त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ ॥³²॥

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला
मया निसृष्टा भरताय दीयताम् ।
अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन्
वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम् ॥³³॥

मया निसृष्टां भरतो महीमिमाम्
सशैलखण्डां सपुरां सकाननाम् ।
शिवां सुसीमामनुशास्तु केवलम्
त्वया यदुक्तं नृपते यथास्तु तत् ॥³⁴॥

न मे तथा पार्थिव धीयते मनो
महत्सु कामेषु न चात्मनः प्रिये ।
यथा निदेशे तव शिष्टसम्मते
व्यपैतु दुःखं तव मत्कृतेऽनघ ॥³⁵॥

तदद्य नैवानघ राज्यमव्ययम्
न सर्वकामान्न सुखं न मैथिलीम् ।
न जीवितं त्वामनृतेन योजयन्
वृणीय सत्यं व्रतमस्तु ते तथा ॥³⁶॥

फलानि मूलानि च भक्षयन्वने
गिरींश्च पश्यन्सरितः सरांसि च ।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपम्
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥³⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

ततः सुमन्त्रमैश्वराकः पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया ।
सबाष्पमतिनिःश्वस्य जगादेदं पुनः पुनः ॥₁॥

सूत रत्नसुसम्पूर्णा चतुर्विधबला चमूः ।
रागवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥₂॥

रूपाजीवा च शालिन्यो वणिजश्च महाधनाः ।
शोभयन्तु कुमारस्य वाहिनीं सुप्रसारिताः ॥₃॥

ये चैनमुपजीवन्ति रमते यैश्च वीर्यतः ।
तेषां बहुविधं दत्त्वा तानप्यत्र नियोजय ॥₄॥

निघ्नन्मृगान्कुञ्जरांश्च पिबंश्चारण्यकं मधु ।
नदीश्च विविधाः पश्यन् राज्यं संस्मरिष्यति ॥₅॥

धान्यकोशश्च यः कश्चिद्धनकोशश्च मामकः ।
तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥₆॥

यजन्पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चातदक्षिणाः ।
ऋषिभिश्च समागम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥₇॥

भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति ।
सर्वकामैः पुनः श्रीमान्नामः संसाध्यतामिति ॥₈॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् ।
मुखं चाप्यगमाच्छेषं स्वरश्चापि न्यरुध्यत ॥₉॥

सा विषण्णा च सन्तस्ता कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ।

राज्यं गतजनं साधो पीतमण्डां सुरामिव ।
निरास्त्वाद्यतमं शून्यं भरतो नाभिपत्स्यते ॥₁₀॥

कैकेय्यां मुक्तलज्जायां वदन्त्यामतिदारुणम् ।
राजा दशरथो वाक्यमुवाचायतलोचनाम् ।
वहन्तं किं तुदसि मां नियुज्य धुरि माहिते ॥₁₁॥

कैकेयी द्विगुणं क्रुद्धा राजानमिदमब्रवीत् ।
तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठं पुत्रमुपारुधत् ।
असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति ॥₁₂॥

एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् ।
व्रीडितश्च जनः सर्वः सा च तन्नावबुध्यत ॥₁₃॥

तत्र वृद्धो महामात्रः सिद्धार्थो नाम नामतः ।
शुचिर्बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥₁₄॥

असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडितः पथि दारकान् ।
सरख्याः प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥₁₅॥

तं दृष्ट्वा नागरः सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रुवन् ।
असमञ्जं वृषीण्वैकमस्मान्वा राष्ट्रवर्धन ॥₁₆॥

तानुवाच ततो राजा किंनिमित्तमिदं भयम् ।
ताश्चापि राज्ञा सम्पृष्टा वाक्यं प्रकृतयोऽब्रुवन् ॥₁₇॥

क्रीडितस्त्वेष नः पुत्रान्बालानुद्धान्तचेतनः ।
सरख्यां प्रक्षिपन्मौख्यादितुलां प्रीतिमश्नुते ॥₁₈॥

स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिप ।
तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥₁₉॥

इत्येवमत्यजद्राजा सगरो वै सुधार्मिकः ।

रामः किमकरोत्पापं येनैवमुपरुध्यते ॥₂₀॥

श्रुत्वा तु सिद्धार्थवचो राजा श्रान्ततरस्वनः ।
शोकोपहतया वाचा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥₂₁॥

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य रामम्
राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च ।
सहैव राज्ञा भरतेन च त्वम्
यथा सुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

महामात्रवचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा ।
अन्वभाषत वाक्यं तु विनयज्ञो विनीतवत् ॥₁॥

त्यक्तभोगस्य मे राजन्वने वन्येन जीवतः ।
किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः ॥₂॥

यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।
रञ्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥₃॥

तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्या जगत्पते ।
सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥₄॥

खनित्रपिटके चोभे ममानयत गच्छतः ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतो मम ॥₅॥

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् ।
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥₆॥

स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते ।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥₇॥

लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे ।
तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥₈॥

अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।
समीक्ष्य चीरं सन्त्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥₉॥

सा व्यपत्रपमाणेव प्रतिगृह्य च दुर्मनाः ।

गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ।
कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः ॥₁₀॥

कृत्वा कण्ठे च सा चीरमेकमादाय पाणिना ।
तस्थौ ह्यकुषला तत्र व्रीडिता जनकात्मज ॥₁₁॥

तस्यास्तत्क्षिप्रमागम्य रामो धर्मभृतां वरः ।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥₁₂॥

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् ।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्कां दशरथं ब्रूति ॥₁₃॥

स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ।
कैकेयि कुशचीरेण न सीता गन्तुमर्हति ॥₁₄॥

ननु पर्याप्तमेतत्ते पापे रामविवासनम् ।
किमेभिः कृपणैर्भूयः पातकैरपि ते कृतैः ॥₁₅॥

एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः सम्प्रस्थितो वनम् ।
अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₆॥

इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी ।
वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देवगर्हिते ॥₁₇॥

मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् ।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः सम्मन्तुमर्हसि ॥₁₈॥

इमां महेन्द्रोपमजातगर्भिणीम्
तथा विधातुं जनमीं ममार्हसि ।
यथा वनस्थे मयि शोककर्षिता
न जीवितं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम् ।
समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः ॥₁॥

नैनं दुःखेन सन्तप्तः प्रत्यवैक्षत राघवम् ।
न चैनमभिसम्प्रेक्ष्य प्रत्यभाषत दुर्मनाः ॥₂॥

स मुहूर्तमिवासंज्ञो दुःखितश्च महीपतिः ।
विललाप महाबाहू राममेवानुचिन्तयन् ॥₃॥

मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः ।
प्राणिनो हिंसिता वापि तस्मादिदमुपस्थितम् ॥₄॥

न त्वेवानागते काले देहाच्च्यवति जीवितम् ।
कैकेय्या क्लिश्यमानस्य मृत्युर्मम न विद्यते ॥₅॥

योऽहं पावकसङ्काशं पश्यामि पुरतः स्थितम् ।
विहाय वसने सूक्ष्मे तापसाच्छादमात्मजम् ॥₆॥

एकस्याः खलु कैकेय्याः कृतेऽयं क्लिश्यते जनः ।
स्वार्थे प्रयतमानायाः संश्रित्य निकृतिं त्विमाम् ॥₇॥

एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण पिहितेक्ष्णह ।
रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥₈॥

संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात्स महीपतिः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥₉॥

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः ।

प्रापयेनं महाभागमितो जनपदात्परम् ॥₁₀॥

एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते ।
पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम् ॥₁₁॥

राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः ।
योजयिष्यायौ तत्र रथमश्वैरलङ्कितम् ॥₁₂॥

तं रथं राजपुत्राय सूतः कनकभूषितम् ।
आचक्षेऽञ्जलिं कृत्वा युक्तं परमवाजिभिः ॥₁₃॥

राजा सत्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसन्धये ।
उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचि ॥₁₄॥

वासांसि च महार्हाणि भूषणानि वराणि च ।
वर्षाण्येतानि सङ्ख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय ॥₁₅॥

नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः ।
प्रायच्छत्सर्वमाहृत्य सीतायै क्षिप्रमेव तत् ॥₁₆॥

सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थिता वनम् ।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥₁₇॥

व्यराजयत वैदेही वेश्म तत्सुविभूषिता ।
उद्यतोऽशुमतः काले खं प्रभेव विवस्वतः ॥₁₈॥

तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत् ।
अनाचरन्तीं कृपणं मूढ्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥₁₉॥

असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन्सततं सत्कृताः प्रियैः ।
भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥₂₀॥

स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो मम ।

तव दैवतमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥₂₁॥

विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥₂₂॥

करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् ।
अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥₂₃॥

न मामसञ्जनेनार्या समानयितुमर्हति ।
धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥₂₄॥

नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः ।
नापतिः सुखमेधते या स्यादपि शतात्मजा ॥₂₅॥

मितं ददाति हि पिता मितं माता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥₂₆॥

साहमेवङ्गता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा ।
आर्ये किमवमन्येयं स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम् ॥₂₇॥

सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयङ्गमम् ।
शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥₂₈॥

तां प्राञ्जलिरभिक्रम्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् ।
रामः परमधर्मज्ञो मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥₂₉॥

अम्ब मा दुःखिता भूस्त्वं पश्य त्वं पितरं मम ।
क्षयो हि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥₃₀॥

सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नववर्षाणि पञ्च च ।
सा समग्रमिह प्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्भूतम् ॥₃₁॥

एतावदभिनीतार्थमुक्त्वा स जननीं वचः ।

त्रयः शतशतार्था हि ददर्शवेक्ष्य मातरः ॥₃₂॥

ताश्चापि स तथैवार्ता मातृर्दशरथात्मजः ।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं निजगाद कृताञ्जलिः ॥₃₃॥

संवासात्परुषं किञ्चिदज्ञानाद्वापि यत्कृतम् ।
तन्मे समनुजानीत सर्वाश्चामन्त्रयामि वः ॥₃₄॥

जज्ञेऽथ तासां संनादः क्रौञ्चीनामिव निःस्वनः ।
मानवेन्द्रस्य भार्याणामेवं वदति राघवे ॥₃₅॥

मुरजपणवमेघघोषवद्-
दशरथवेश्म बभूव यत्पुरा ।
विलपित परिदेवनाकुलम्
व्यसनगतं तदभूत्सुदुःखितम् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
उपसङ्गृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम् ॥₁॥

तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सीतया सह ।
राघवः शोकसम्मूढो जननीमभ्यवादयत् ॥₂॥

अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् ।
अथ मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥₃॥

तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रिमब्रवीत् ।
हितकामा महाबाहुं मूर्ध्नुपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥₄॥

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृञ्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥₅॥

व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥₆॥

इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु च ॥₇॥

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥₈॥

ततः सुमन्तः काकुत्स्थं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
विनीतो विनयज्ञश्च मातलिर्वासवं यथा ॥₉॥

रथमारोह भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।

क्षिप्रं त्वां प्रापयिष्यामि यत्र मां राम वक्ष्यसि ॥₁₀॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यानि वने त्वया ।
तान्युपक्रमितव्यानि यानि देव्यासि चोदितः ॥₁₁॥

तं रथं सूर्यसङ्काशं सीता हृष्टेन चेतसा ।
आरुरोह वरारोहा कृत्वालङ्कारमात्मनः ॥₁₂॥

तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि च ।
रथोपस्थे प्रतिन्यस्य सचर्मकठिनं च तत् ॥₁₃॥

सीतातृतीयानारूढान्दृष्ट्वा धृष्टमचोदयत् ।
सुमन्त्रः सम्मतानश्चान्वायुवेगसमाञ्जवे ॥₁₄॥

प्रयाते तु महारण्यं चिररात्राय राघवे ।
बभूव नगरे मूर्च्छा बलमूर्च्छा जनस्य च ॥₁₅॥

तत्समाकुलसम्भ्रान्तं मत्तसङ्कुपित द्विपम् ।
हयशिञ्जितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम् ॥₁₆॥

ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता ।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ॥₁₇॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः ।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशदुःखिताः ॥₁₈॥

संयच्छ वाजिनां रश्मीन्सूत याहि शनैः शनैः ।
मुखं द्रक्ष्यामि रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥₁₉॥

आयसं हृदयं नूनं राममातुरसंशयम् ।
यद्देवगर्भप्रतिमे वनं याति न भिद्यते ॥₂₀॥

कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम् ।

न जहाति रता धर्मे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥₂₁॥

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततां प्रियवादिनम् ।
भ्रातरं देवसङ्काशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥₂₂॥

महत्येषा हि ते सिद्धिरेष चाभ्युदयो महान् ।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ।
एवं वदन्तस्ते सोढुं न शेकुर्बाष्पमागतम् ॥₂₃॥

अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः ।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन्गृहात् ॥₂₄॥

शुश्रुवे चाग्रतः स्त्रीणां रुदन्तीनां महास्वनः ।
यथा नादः करेणूनां बद्धे महति कुञ्जरे ॥₂₅॥

पिता च राजा काकुत्स्थः श्रीमान्सन्नस्तदा बभौ ।
परिपूर्णः शशी काले ग्रहेणोपप्लुतो यथा ॥₂₆॥

ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः ।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम् ॥₂₇॥

हा रामेति जनाः केचिद्राममातेति चापरे ।
अन्तःपुरं समृद्धं च क्रोशन्तं पर्यदेवयन् ॥₂₈॥

अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् ।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ।
धर्मपाशेन सङ्क्षिप्तः प्रकाशं नाभ्युदैक्षत ॥₂₉॥

पदातिनौ च यानार्हावदुःखाहौ सुखोचितौ ।
दृष्ट्वा सञ्चोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम् ॥₃₀॥

न हि तत्पुरुषव्याघ्रो दुःखदं दर्शनं पितुः ।
मातुश्च सहितुं शक्तस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥₃₁॥

तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम् ।
क्रोशन्तीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ।
असकृत्प्रैक्षत तदा नृत्यन्तीमिव मातरम् ॥₃₂॥

तिष्ठेति राजा चुक्रोष याहि याहीति राघवः ।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥₃₃॥

नाश्रौषमिति राजानमुपालब्धोऽपि वक्ष्यसि ।
चिरं दुःखस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत् ॥₃₄॥

रामस्य स वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम् ।
व्रजतोऽपि हयाञ्शीघ्रं चोदयामास सारथिः ॥₃₅॥

न्यवर्तत जनो राज्ञो रामं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
मनसाप्यश्रुवेगैश्च न न्यवर्तत मानुषम् ॥₃₆॥

यमिच्छेत्पुनरायान्तं नैनं दूरमनुव्रजेत् ।
इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥₃₇॥

तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नम्
प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः ।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो
व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥₃₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे निष्क्रामति कृताञ्जलौ ।
आर्तशब्दो हि संजज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे महान् ॥₁॥

अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः ।
यो गतिं शरणं चासीत्स नाथः क्व नु गच्छति ॥₂॥

न क्रुध्यत्यभिशस्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् ।
क्रुद्धान्प्रसादयन्सर्वान्समदुःखः क्व गच्छति ॥₃॥

कौसल्यायां महातेजा यथा मातरि वर्तते ।
तथा यो वर्ततेऽस्मासु महात्मा क्व नु गच्छति ॥₄॥

कैकेय्या क्लिश्यमानेन राज्ञा सञ्चोदितो वनम् ।
परित्राता जनस्यास्य जगतः क्व नु गच्छति ॥₅॥

अहो निश्चेतनो राजा जीवलोकस्य सम्प्रियम् ।
धर्म्यं सत्यव्रतं रामं वनवासो प्रवत्स्यति ॥₆॥

इति सर्वा महिष्यस्ता विवत्सा इव धेनवः ।
रुरुदुश्चैव दुःखार्ताः सस्वरं च विचुक्रुशुः ॥₇॥

स तमन्तःपुरे घोरमार्तशब्दं महीपतिः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः श्रुत्वा चासीत्सुदुःखितः ॥₈॥

नाग्निहोत्राण्यहूयन्त सूर्यश्चान्तरधीयत ।
व्यसृजन्कवलान्नागा गावो वत्सान्न पाययन् ॥₉॥

त्रिशङ्कुर्लोहिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि ।

दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ॥₁₀॥

नक्षत्राणि गतार्चीषि ग्रहाश्च गततेजसः ।
विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे ॥₁₁॥

अकस्मान्नागरः सर्वो जनो दैन्यमुपागमत् ।
आहारे वा विहारे वा न कश्चिदकरोन्मनः ॥₁₂॥

बाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः ।
न हृष्टो लक्ष्यते कश्चित्सर्वः शोकपरायणः ॥₁₃॥

न वाति पवनः शीतो न शशी सौम्यदर्शनः ।
न सूर्यस्तपते लोकं सर्वं पर्याकुलं जगत् ॥₁₄॥

अनर्थिनः सुताः स्त्रीणां भर्तारो भ्रातरस्तथा ।
सर्वे सर्वं परित्यज्य राममेवान्वचिन्तयन् ॥₁₅॥

ये तु रामस्य सुहृदः सर्वे ते मूढचेतसः ।
शोकभारेण चाक्रान्ताः शयनं न जुहुस्तदा ॥₁₆॥

ततस्त्वयोध्या रहिता महात्मना
पुरन्दरेणेव मही सपर्वता ।
चचाल घोरं भयभारपीडिता
सनागयोधाश्चगणा ननाद च ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत ।
नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥₁॥

यावद्राजा प्रियं पुत्रं पश्यत्यत्यन्तधार्मिकम् ।
तावद्व्यवर्धतेवास्य धरण्यां पुत्रदर्शने ॥₂॥

न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः ।
तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥₃॥

तस्य दक्षिणमन्वगात्कौसल्या बाहुमङ्गना ।
वामं चास्यान्वगात्पार्श्वं कैकेयी भरतप्रिया ॥₄॥

तां नयेन च सम्पन्नो धर्मेण निवयेन च ।
उवाच राजा कैकेयीं समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः ॥₅॥

कैकेयि मा ममाङ्गानि स्म्राक्षीस्त्वं दुष्टचारिणी ।
न हि त्वां द्रष्टुमिच्छामि न भार्या न च बान्धवी ॥₆॥

ये च त्वामुपजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम ।
केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥₇॥

अगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत् ।
अनुजानामि तत्सर्वमस्मिँल्लोके परत्र च ॥₈॥

भरतश्चेत्प्रतीतः स्याद्राज्यं प्राप्येदमव्ययम् ।
यन्मे स दद्यात्पित्रर्थं मा मा तद्वत्तमागमत् ॥₉॥

अथ रेणुसमुध्वस्तं तमुत्थाप्य नराधिपम् ।

न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्षिता ॥₁₀॥

हबेव ब्राह्मणं कामात्स्पृष्टाग्निमिव पाणिना ।
अन्वतप्यत धर्मात्मा पुत्रं सच्चिन्त्य तापसम् ॥₁₁॥

निवृत्यैव निवृत्यैव सीदतो रथवर्त्मसु ।
राज्ञो नातिबभौ रूपं ग्रस्तस्यांशुमतो यथा ॥₁₂॥

विललाप च दुःखार्तः प्रियं पुत्रमनुस्मरन् ।
नगरान्तमनुप्राप्तं बुद्ध्वा पुत्रमथाब्रवीत् ॥₁₃॥

वाहनानां च मुख्यानां वहतां तं ममात्मजम् ।
पदानि पथि दृश्यन्ते स महात्मा न दृश्यते ॥₁₄॥

स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
काष्ठं वा यदि वाश्मानमुपधाय शयिष्यते ॥₁₅॥

उत्थास्यति च मेदिन्याः कृपणः पांशुगुण्ठितः ।
विनिःश्वसन्प्रस्रवणात्करेणूनामिवर्षभः ॥₁₆॥

द्रक्ष्यन्ति नूनं पुरुषा दीर्घबाहुं वनेचराः ।
राममुत्थाय गच्छन्तं लोकनाथमनाथवत् ॥₁₇॥

सकामा भव कैकेयि विधवा राज्यमावस ।
न हि तं पुरुषव्याघ्रं विना जीवितुमुत्सहे ॥₁₈॥

इत्येवं विलपन्नाजा जनौघेनाभिसंवृतः ।
अपस्नात इवारिष्टं प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥₁₉॥

शून्यचत्वरवेश्मान्तां संवृतापणदेवताम् ।
क्लान्तदुर्बलदुःखार्ता नात्याकीर्णमहापथाम् ॥₂₀॥

तामवेक्ष्य पुरीं सर्वा राममेवानुचिन्तयन् ।

विलपन्नाविशद्राजा गृहं सूर्य इवाम्बुदम् ॥₂₁॥

महाहृदमिवाक्षोभ्यं सुपर्णेन हतोरगम् ।
रामेण रहितं वेश्म वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥₂₂॥

कौसल्याया गृहं शीघ्रं राम मातुर्नयन्तु माम् ।
इति ब्रुवन्तं राजानमनयन्द्वारदर्शितः ॥₂₃॥

ततस्तत्र प्रविष्टस्य कौसल्याया निवेशनम् ।
अधिरुह्यापि शयनं बभूव लुलितं मनः ॥₂₄॥

तच्च दृष्ट्वा महाराजो भुजमुदम्य वीर्यवान् ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश हा राघव जहासि माम् ॥₂₅॥

सुखिता बत तं कालं जीविष्यन्ति नरोत्तमाः ।
परिष्वजन्तो ये रामं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥₂₆॥

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥₂₇॥

तं राममेवानुविचिन्तयन्तम्
समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम् ।
उपोपविश्याधिकमार्तरूपा
विनिःश्वसन्ती विललाप कृच्छ्रम् ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

ततः समीक्ष्य शयने सन्नं शोकेन पार्थिवम् ।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता तमुवाच महीपतिम् ॥₁॥

राघवो नरशार्दूल विषमुत्त्वा द्विजिह्ववत् ।
विचरिष्यति कैकेयी निर्मुक्तेव हि पन्नगी ॥₂॥

विवास्य रामं सुभगा लब्धकामा समाहिता ।
त्रासयिष्यति मां भूयो दुष्टाहिरिव वेष्मनि ॥₃॥

अथ स्म नगरे रामश्चरन्भैक्षं गृहे वसेत् ।
कामकारो वरं दातुमपि दासं ममात्मजम् ॥₄॥

पातयित्वा तु कैकेय्या रामं स्थानाद्यथेष्टतः ।
प्रदिष्टो रक्षसां भागः पर्वणीवाहिताग्निना ॥₅॥

गजराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः ।
वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥₆॥

वने बद्धदुःखानां कैकेय्यानुमते ब्रया ।
त्यक्तानां वनवासाय का न्ववस्था भविष्यति ॥₇॥

ते रत्नहीनास्तरुणाः फलकाले विवासिताः ।
कथं वत्स्यन्ति कृपणाः फलमूलैः कृताशनाः ॥₈॥

अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः ।
सभार्यं यत्सह भ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥₉॥

श्रुत्वैवोपस्थितौ वीरौ कदायोध्या भविष्यति ।

यशस्विनी हृष्टजना सूच्छ्रितध्वजमालिनी ॥₁₀॥

कदा प्रेक्ष्य नरव्याघ्रावरण्यात्पुनरागतौ ।
नन्दिष्यति पुरी हृष्टा समुद्र इव पर्वणि ॥₁₁॥

कदायोध्यां महाबाहुः पुरीं वीरः प्रवेक्ष्यति ।
पुरस्कृत्य रथे सीतां वृषभो गोवधूमिव ॥₁₂॥

कदा प्राणिसहस्राणि राजमार्गे ममात्मजौ ।
लाजैरवकरिष्यन्ति प्रविशन्तावरिन्दमौ ॥₁₃॥

कदा सुमनसः कन्या द्विजातीनां फलानि च ।
प्रदिशन्त्यः पुरीं हृष्टाः करिष्यन्ति प्रदक्षिणम् ॥₁₄॥

कदा परिणतो बुद्ध्या वयसा चामरप्रभः ।
अभ्युपैष्यति धर्मज्ञस्त्रिवर्ष इव मां ललन् ॥₁₅॥

निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीर कदर्यया ।
पातु कामेषु वत्सेषु मातृणां शातिताः स्तनाः ॥₁₆॥

साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सला कृता ।
कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात् ॥₁₇॥

न हि तावद्गुणैर्जुष्टं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
एकपुत्रा विना पुत्रमहं जीवितुमुत्सहे ॥₁₈॥

न हि मे जीविते किञ्चित्सामर्थमिह कल्प्यते ।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं महाबाहुं महाबलम् ॥₁₉॥

अयं हि मां दीपयते समुत्थितः
तनूजशोकप्रभवो हुताशनः ।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो
यथा निदाघे भगवान्दिवाकरः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम् ।
इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः पुत्रः स पुरुषोत्तमः ।
किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥₂॥

यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः ।
साधु कुर्वन्महात्मानं पितरं सत्यवादिनाम् ॥₃॥

शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये ।
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन ॥₄॥

वर्तते चोत्तमां वृत्तिं लक्ष्मणोऽस्मिन्सदानघः ।
दयावान्सर्वभूतेषु लाभस्तस्य महात्मनः ॥₅॥

अरण्यवासे यदुःखं जानती वै सुखोचिता ।
अनुगच्छति वैदेही धर्मात्मानं तवात्मजम् ॥₆॥

कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रामयति प्रभुः ।
दमसत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥₇॥

व्यक्तं रामस्य विज्ञाय शौचं माहात्म्यमुत्तमम् ।
न गात्रमंशुभिः सूर्यः सन्तापयितुमर्हति ॥₈॥

शिवः सर्वेषु कालेषु काननेभ्यो विनिःसृतः ।
राघवं युक्तशीतोष्णः सेविष्यति सुखोऽनिलः ॥₉॥

शयानमनघं रात्रौ पितेवाभिपरिष्वजन् ।

रश्मिभिः संस्पृशञ्शीतैश्चन्द्रमा ह्लादयिष्यति ॥₁₀॥

ददौ चास्त्राणि दिव्यानि यस्मै ब्रह्मा महौजसे ।
दानवेन्द्रं हतं दृष्ट्वा तिमिध्वजसुतं रणे ॥₁₁॥

पृथिव्या सह वैदेह्या श्रिया च पुरुषर्षभः ।
क्षिप्रं तिसृभिरेताभिः सह रामोऽभिषेक्ष्यते ॥₁₂॥

दुःखजं विसृजन्त्यस्रं निष्क्रामन्तमुदीक्ष्य यम् ।
समुत्स्रक्ष्यसि नेत्राभ्यां क्षिप्रमानन्दजं पयः ॥₁₃॥

अभिवादयमानं तं दृष्ट्वा ससुहृदं सुतम् ।
मुदाश्रु मोक्ष्यसे क्षिप्रं मेघलेकेव वार्षिकी ॥₁₄॥

पुत्रस्ते वरदः क्षिप्रमयोध्यां पुनरागतः ।
कराभ्यां मृदुपीनाभ्यां चरणौ पीडयिष्यति ॥₁₅॥

निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यम्
रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः ।
सद्यः शरीरे विननाश शोकः
शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चत्वारिंशः सर्गः॥

अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपरक्रमम् ।
अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः ॥₁॥

निवर्तितेऽपि च बलात्सुहृद्भर्गे च राजिनि ।
नैव ते संन्यवर्तन्त रामस्यानुगता रथम् ॥₂॥

अयोध्यानिलयानां हि पुरुषाणां महायशाः ।
बभूव गुणसम्पन्नः पूर्णचन्द्र इव प्रियः ॥₃॥

स याच्यमानः काकुत्स्थः स्वाभिः प्रकृतिभिस्तदा ।
कुर्वाणः पितरं सत्यं वनमेवान्वपद्यत ॥₄॥

अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव ।
उवाच रामः स्नेहेन ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव ॥₅॥

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम् ।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा निवेश्यताम् ॥₆॥

स हि कल्याण चारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः ।
करिष्यति यथावद्वः प्रियाणि च हितानि च ॥₇॥

ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुर्वीर्यगुणान्वितः ।
अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥₈॥

स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः ।
अपि चापि मया शिष्टैः कार्यं वो भर्तृशासनम् ॥₉॥

न च तप्येद्यथा चासौ वनवासं गते मयि ।

महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥₁₀॥

यथा यथा दाशरथिर्धर्ममेवास्थितोऽभवत् ।
तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकामयन् ॥₁₁॥

बाष्पेण पिहितं दीनं रामः सौमित्रिणा सह ।
चकर्षेव गुणैर्बद्धा जनं पुनरिवासनम् ॥₁₂॥

ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा ।
वयःप्रकम्पशिरसो दूरादूचुरिदं वचः ॥₁₃॥

वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरङ्गमाः ।
निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवत भर्तारि ।
उपवाह्यस्तु वो भर्ता नापवाह्यः पुराद्वनम् ॥₁₄॥

एवमार्तप्रलापांस्तान्वृद्धान्प्रलपतो द्विजान् ।
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥₁₅॥

पद्भ्यामेव जगामाथ ससीतः सहलक्ष्मणः ।
संनिकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः ॥₁₆॥

द्विजार्तीस्तु पदार्तीस्तान्नामश्चारित्रवत्सलः ।
न शशाक घृणाचक्षुः परिमोक्तुं रथेन सः ॥₁₇॥

गच्छन्तमेव तं दृष्ट्वा रामं सम्भ्रान्तमानसाः ।
ऊचुः परमसन्तप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः ॥₁₈॥

ब्राह्मण्यं कृत्स्नमेतत्त्वां ब्रह्मण्यमनुगच्छति ।
द्विजस्कन्धाधिरूढास्त्वामग्नयोऽप्यनुयान्त्यमी ॥₁₉॥

वाजपेयसमुत्थानि छत्राण्येतानि पश्य नः ।
पृष्ठतोऽनुप्रयातानि हंसानिव जलात्यये ॥₂₀॥

अनवाप्तातपत्रस्य रश्मिसन्तापितस्य ते ।
एभिश्छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयिकैः ॥²¹॥

या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी ।
ब्रह्मकृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी ॥²²॥

हृदयेष्ववतिष्ठन्ते वेदा ये नः परं धनम् ।
वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥²³॥

न पुनर्निश्चयः कार्यस्त्वद्गतौ सुकृता मतिः ।
ब्रूयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद्धर्ममवेक्षितुम् ॥²⁴॥

याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः ।
शिरोभिर्निभृताचार महीपतनपांशुलैः ॥²⁵॥

बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः ।
तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने ॥²⁶॥

भक्तिमन्ति हि भूतानि जङ्गमाजङ्गमानि च ।
याचमानेषु तेषु त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय ॥²⁷॥

अनुगन्तुमशक्तास्त्वां मूलैरुद्धृतवेगिभिः ।
उन्नता वायुवेगेन विक्रोशन्तीव पादपाः ॥²⁸॥

निश्चेष्टाहारसञ्चारा वृक्षैकस्थानविष्ठिताः ।
पक्षिणोऽपि प्रयाचन्ते सर्वभूतानुकम्पिनम् ॥²⁹॥

एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने ।
ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥³⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

ततस्तु तमसा तीरं रम्यमाश्रित्य राघवः ।
सीतामुद्रीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

इयमद्य निशा पूर्वा सौमित्रे प्रस्थिता वनम् ।
वनवासस्य भद्रं ते स नोत्कण्ठितुमर्हसि ॥₂॥

पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः ।
यथानिलयमायद्भिर्निर्लीनानि मृगद्विजैः ॥₃॥

अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम ।
सस्त्रीपुंसा गतानस्माञ्शोचिष्यति न संशयः ॥₄॥

भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे ।
धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति ॥₅॥

भरतस्यानृशंसत्वं सच्चिन्त्याहं पुनः पुनः ।
नानुशोचामि पितरं मातरं चापि लक्ष्मण ॥₆॥

त्वया कार्यं नरव्याघ्र मामनुव्रजता कृतम् ।
अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थे सहायता ॥₇॥

अद्भिरेव तु सौमित्रे वत्स्याम्यद्य निशामिमाम् ।
एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति ॥₈॥

एवमुक्त्वा तु सौमित्रं सुमन्त्रमपि राघवः ।
अप्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव सौम्येत्युवाच ह ॥₉॥

सोऽश्वान्सुमन्त्रः संयम्य सूर्येऽस्तं समुपागते ।

प्रभूतयवसान्कृत्वा बभूव प्रत्यनन्तरः ॥₁₀॥

उपास्यतु शिवां सन्ध्यां दृष्ट्वा रात्रिमुपस्थिताम् ।
रामस्य शयनं चक्रे सूतः सौमित्रिणा सह ॥₁₁॥

तां शय्यां तमसातीरे वीक्ष्य वृक्षदलैः कृताम् ।
रामः सौमित्रिणां सार्धं सभार्यः संविवेश ह ॥₁₂॥

सभार्यं सम्प्रसुप्तं तं भ्रातरं वीक्ष्य लक्ष्मणः ।
कथयामास सूताय रामस्य विविधान्गुणान् ॥₁₃॥

जाग्रतो ह्येव तां रात्रिं सौमित्रेरुदितो रविः ।
सूतस्य तमसातीरे रामस्य ब्रुवतो गुणान् ॥₁₄॥

गोकुलाकुलतीरायास्तमसाया विदूरतः ।
अवसत्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥₁₅॥

उत्थाय तु महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च ।
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ॥₁₆॥

अस्मद्वपेक्षान्सौमित्रे निरपेक्षान्गृहेष्वपि ।
वृक्षमूलेषु संसुप्तान्यथ लक्ष्मण साम्प्रतम् ॥₁₇॥

यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने ।
अपि प्राणानसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम् ॥₁₈॥

यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु ।
रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम् ॥₁₉॥

अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः ।
स्वपेयुरनुरक्ता मां वृक्षमूलानि संश्रिताः ॥₂₀॥

पौरा ह्यात्मकृताद्दुःखाद्विप्रमोच्या नृपात्मजैः ।

न तु खत्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः ॥₂₁॥

अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् ।
रोचते मे महाप्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति ॥₂₂॥

सूतस्ततः सन्त्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः ।
योजयित्वाथ रामाय प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ॥₂₃॥

मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः ।
उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमास्थाय सारथे ॥₂₄॥

मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निर्गतय रथं पुनः ।
यथा न विदुः पौरा मां तथा कुरु समाहितः ॥₂₅॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स सारथिः ।
प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् ॥₂₆॥

तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः ।
शीघ्रगामाकुलावर्ता तमसामतरन्नदीम् ॥₂₇॥

स सन्तीर्य महाबाहुः श्रीमाञ्शिवमकण्टकम् ।
प्रापद्यत महामार्गमभयं भयदर्शिनाम् ॥₂₈॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवो विना ।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः ॥₂₉॥

शोकजाश्रुपरिदूना वीक्षमाणास्ततस्ततः ।
आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः ॥₃₀॥

ततो मार्गानुसारेण गत्वा किञ्चित्क्षणं पुनः ।
मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुतः ॥₃₁॥

रथस्य मार्गनाशेन न्यवर्तन्त मनस्विनः ।

किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥₃₂॥

ततो यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः ।
अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसञ्जनाम् ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

अनुगम्य निवृत्तानां रामं नगरवासिनाम् ।
उद्धतानीव सत्त्वानि बभूवुरमनस्विनाम् ॥₁॥

स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः ।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे बाष्पेण पिहिताननाः ॥₂॥

न चाहृष्यन्न चामोदन्वणिजो न प्रसारयन् ।
न चाशोभन्त पण्यानि नापचन्गृहमेधिनः ॥₃॥

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन्विपुलं वा धनागमम् ।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥₄॥

गृहे गृहे रुदन्त्यश्च भर्तारं गृहमागतम् ।
व्यगर्हयन्तो दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपान् ॥₅॥

किं नु तेषां गृहैः कार्यं किं दारैः किं धनेन वा ।
पुत्रैर्वा किं सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम् ॥₆॥

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया ।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन्वने ॥₇॥

आपगाः कृतपुण्यास्ताः पद्मिन्यश्च सरांसि च ।
येषु स्नास्यति काकुत्स्थो विगाह्य सलिलं शुचि ॥₈॥

शोभयिष्यन्ति काकुत्स्थमटव्यो रम्यकाननाः ।
आपगाश्च महानूपाः सानुमन्तश्च पर्वताः ॥₉॥

काननं वापि शैलं वा यं रामोऽभिगमिष्यति ।

प्रियातिथिमिव प्राप्तं नैनं शक्ष्यन्त्यनर्चितुम् ॥₁₀॥

विचित्रकुसुमापीडा बहुमञ्जरिधारिणः ।
अकाले चापि मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च ।
दर्शयिष्यन्त्यनुक्रोशाद्विरयो राममागतम् ॥₁₁॥

विदर्शयन्तो विविधान्भूयश्चित्रांश्च निर्झरान् ।
पादपाः पर्वताग्रेषु रमयिष्यन्ति राघवम् ॥₁₂॥

यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ।
स हि शूरो महाबाहुः पुत्रो दशरथस्य च ॥₁₃॥

पुरा भवति नो दूरादनुगच्छाम राघवम् ।
पादच्छाया सुखा भर्तुस्तादृशस्य महात्मनः ।
स हि नाथो जनस्यास्य स गतिः स परायणम् ॥₁₄॥

वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं तु राघवम् ।
इति पौरस्त्रियो भर्तृन्दुःखार्तास्तत्तदब्रुवन् ॥₁₅॥

युष्माकं राघवोऽरण्ये योगक्षेमं विधास्यति ।
सीता नारीजनस्यास्य योगक्षेमं करिष्यति ॥₁₆॥

को न्वनेनाप्रतीतेन सोत्कण्ठितजनेन च ।
सम्प्रीयेतामनोज्ञेन वासेन हृतचेतसा ॥₁₇॥

कैकेय्या यदि चेद्राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत् ।
न हि नो जीवितेनार्थः कुतः पुत्रैः कुतो धनैः ॥₁₈॥

यया पुत्रश्च भर्ता च त्यक्तावैश्वर्यकारणात् ।
कं सा परिहरेदन्यं कैकेयी कुलपांसनी ॥₁₉॥

कैकेय्या न वयं राज्ये भृतका निवसेमहि ।
जीवन्त्या जातु जीवन्त्यः पुत्रैरपि शपामहे ॥₂₀॥

या पुत्रं पार्थिवेन्द्रस्य प्रवासयति निर्घृणा ।
कस्तां प्राप्य सुखं जीवेदधर्म्यां दुष्टचारिणीम् ॥₂₁॥

न हि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः ।
मृते दशरथे व्यक्तं विलोपस्तदनन्तरम् ॥₂₂॥

ते विषं पिबतालोड्य क्षीणपुण्याः सुदुर्गताः ।
राघवं वानुगच्छध्वमश्रुतिं वापि गच्छत ॥₂₃॥

मिथ्या प्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
भरते संनिषृष्टाः स्मः सौनिके पशवो यथा ॥₂₄॥

तास्तथा विलपन्त्यस्तु नगरे नागरस्त्रियः ।
चुक्रुशुर्भृशसन्तप्ता मृत्योरिव भयागमे ॥₂₅॥

तथा स्त्रियो रामनिमित्तमातुरा
यथा सुते भ्रातरि वा विवासिते ।
विलप्य दीना रुरुदुर्विचेतसः
सुतैर्हि तासामधिको हि सोऽभवत् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम् ।
जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥₁॥

तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद्रजनी शिवा ।
उपास्य स शिवां सन्ध्यां विषयान्तं व्यगाहत ॥₂॥

ग्रामान्विकृष्टसीमांस्तान्पुष्पितानि वनानि च ।
पश्यन्नतिययौ शीघ्रं शरैरिव हयोत्तमैः ॥₃॥

शृण्वन्वाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनाम् ।
राजानं धिग्दशरथं कामस्य वशमागतम् ॥₄॥

हा नृशंसाद्य कैकेयी पापा पापानुबन्धिनी ।
तीक्ष्णा सम्मिन्नमर्यादा तीक्ष्णे कर्मणि वर्तते ॥₅॥

या पुत्रमीदृशं राज्ञः प्रवासयति धार्मिकम् ।
वन वासे महाप्राज्ञं सानुक्रोशमतन्द्रितम् ॥₆॥

एता वाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनाम् ।
शृण्वन्नतिययौ वीरः कोसलान्कोसलेश्वरः ॥₇॥

ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम् ।
उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम् ॥₈॥

गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतजलां नदीम् ।
गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरङ्गमाम् ॥₉॥

गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः ।

मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम् ॥₁₀॥

स महीं मनुना राज्ञा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा ।
स्फीतां राष्ट्रावृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत् ॥₁₁॥

सूत इत्येव चाभाष्य सारथिं तमभीक्ष्णशः ।
हंसमत्तस्त्वरः श्रीमानुवाच पुरुषर्षभः ॥₁₂॥

कदाहं पुनरागम्य सरखाः पुष्पिते वने ।
मृगयां पर्याटप्यामि मात्रा पित्रा च सङ्गतः ॥₁₃॥

नात्यर्थमभिकाङ्क्षामि मृगयां सरयूवने ।
रतिर्ह्येषातुला लोके राजर्षिगणसम्मता ॥₁₄॥

स तमध्वानमैक्ष्वाकः सूतं मधुरया गिरा ।
तं तमर्थमभिप्रेत्य ययौवाक्यमुदीरयन् ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

विशालान्कोसलान्त्रम्यान्यात्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
आससाद महाबाहुः शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥₁॥

तत्र त्रिपथगां दिव्यां शिवतोयामशैवलाम् ।
ददर्श राघवो गङ्गां पुण्यामृषिनिसेविताम् ॥₂॥

हंससारससङ्घुष्टां चक्रवाकोपकूजिताम् ।
शिंशुमरैश्च नक्रैश्च भुजङ्गैश्च निषेविताम् ॥₃॥

तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः ।
सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥₄॥

अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान् ।
सुमहानिङ्गुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे ॥₅॥

लक्षणश्च सुमन्त्रश्च बाढमित्येव राघवम् ।
उक्त्वा तमिङ्गुदीवृक्षं तदोपययतुर्हयैः ॥₆॥

रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
रथादवातरत्तस्मात्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥₇॥

सुमन्त्रोऽप्यवतीर्यैव मोचयित्वा हयोत्तमान् ।
वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥₈॥

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा ।
निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥₉॥

स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम् ।

वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः ॥₁₀॥

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादवस्थितम् ।
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहेन सः ॥₁₁॥

तमार्तः सम्परिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् ।
यथायोध्या तथेदं ते राम किं करवाणि ते ॥₁₂॥

ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम् ।
अर्घ्यं चोपानयत्क्षिप्रं वाक्यं चेदमुवाच ह ॥₁₃॥

स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही ।
वयं प्रेष्या भवान्भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः ॥₁₄॥

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेदमुपस्थितम् ।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते ॥₁₅॥

गुहमेव ब्रुवाणं तं राघवः प्रत्युवाच ह ।
अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वथा वयम् ॥₁₆॥

पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसन्दर्शनेन च ।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन्वाक्यमब्रवीत् ॥₁₇॥

दिष्ट्वा त्वां गुह पश्यामि अरोगं सह बान्धवैः ।
अपि ते कूशलं राष्ट्रे मित्रेषु च धनेषु च ॥₁₈॥

यत्त्विदं भवता किञ्चित्प्रीत्या समुपकल्पितम् ।
सर्वं तदनुजानामि न हि वर्ते प्रतिग्रहे ॥₁₉॥

कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम् ।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥₂₀॥

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित् ।

एतावतात्रभवता भविष्यामि सुपूजितः ॥₂₁॥

एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे ।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥₂₂॥

अश्वानां प्रतिपानं च खादनं चैव सोऽन्वशात् ।
गुहस्तत्रैव पुरुषांस्त्वरितं दीयतामिति ॥₂₃॥

ततश्चीरोत्तरासङ्गः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥₂₄॥

तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः ।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥₂₅॥

गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन् ।
अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥₂₆॥

तथा शयानस्य ततोऽस्य धीमतो
यशस्विनो दाशरथेर्महात्मनः ।
अदृष्टदुःखस्य सुखोचितस्य सा
तदा व्यतीयाय चिरेण शर्वरी ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

तं जाग्रतमदम्भेन भ्रातुरर्थाय लक्ष्मणम् ।
गुहः सन्तापसन्तप्तो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता ।
प्रत्याश्वसिहि साध्वस्यां राजपुत्र यथासुखम् ॥₂॥

उचितोऽयं जनः सर्वः क्लेशानां त्वं सुखोचितः ।
गुप्त्यर्थं जागरिष्यामः काकुत्स्थस्य वयं निशाम् ॥₃॥

न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन ।
ब्रवीम्येतदहं सत्यं सत्येनैव च ते शपे ॥₄॥

अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहदशः ।
धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थावाप्तिं च केवलाम् ॥₅॥

सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया ।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वतो ज्ञातिभिः सह ॥₆॥

न हि मेऽविदितं किञ्चिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा ।
चतुरङ्गं ह्यपि बलं सुमहत्प्रसहेमहि ॥₇॥

लक्ष्मणस्तं तदोवाच रक्ष्यमाणास्त्वयानघ ।
नात्र भीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥₈॥

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया ।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा ॥₉॥

यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि ।

तं पश्य सुखसंविष्टं तृणेषु सह सीतया ॥₁₀॥

यो मन्त्र तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः ।
एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः ॥₁₁॥

अस्मिन्प्रव्रजितो राजा न चिरं वर्तयिष्यति ।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥₁₂॥

विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः ।
निर्घोषोपरतं तात मन्ये राजनिवेशनम् ॥₁₃॥

कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम ।
नाशंसे यदि जीवन्ति सर्वे ते शर्वरीमिमाम् ॥₁₄॥

जीवेदपि हि मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया ।
तद्दुःखं यत्तु कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति ॥₁₅॥

अनुरक्तजनाकीर्णा सुखालोकप्रियावहा ।
राजव्यसनसंसृष्टा सा पुरी विनशिष्यति ॥₁₆॥

अतिक्रान्तमतिक्रान्तमनवाप्य मनोरथम् ।
राज्ये राममनिक्षिप्य पिता मे विनशिष्यति ॥₁₇॥

सिद्धार्थाः पितरं वृत्तं तस्मिन्काले ह्युपस्थिते ।
प्रेतकार्येषु सर्वेषु संस्करिष्यन्ति भूमिपम् ॥₁₈॥

रम्यचत्वरसंस्थानां सुविभक्तमहापथाम् ।
हर्म्यप्रासादसम्पन्नां गणिकावरशोभिताम् ॥₁₉॥

रथाश्चगजसम्बाधां तूर्यनादविनादिताम् ।
सर्वकल्याणसम्पूर्णां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥₂₀॥

आरामोद्यानसम्पन्नां समाजोत्सवशालिनीम् ।

सुखिता विचरिष्यन्ति राजधानीं पितुर्मम ॥₂₁॥

अपि सत्यप्रतिज्ञेन सार्धं कुशलिना वयम् ।
निवृत्ते वनवासेऽस्मिन्नयोध्यां प्रविशेमहि ॥₂₂॥

परिदेवयमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः ।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत ॥₂₃॥

तथा हि सत्यं ब्रुवति प्रजाहिते
नरेन्द्रपुत्रे गुरुसौहृदाद्गुहः ।
मुमोच बाष्पं व्यसनाभिपीडितो
ज्वरातुरो नाग इव व्यथातुरः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

प्रभातायां तु शर्वर्या पृथु वृक्षा महायशाः ।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥₁॥

भास्करोदयकालोऽयं गता भगवती निशा ।
असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति ॥₂॥

बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने ।
तराम जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरङ्गमाम् ॥₃॥

विज्ञाय रामस्य वचः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
गुहमामन्त्र्य सूतं च सोऽतिष्ठद्भातुरग्रतः ॥₄॥

ततः कलापान्संनह्य खड्गौ बद्धा च धन्विनौ ।
जग्मतुर्येन तौ गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥₅॥

राममेव तु धर्मज्ञमुपगम्य विनीतवत् ।
किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥₆॥

निवर्तस्वेत्युवाचेनमेतावद्धि कृतं मम ।
यानं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम् ॥₇॥

आत्मानं त्वभ्यनुज्ञातमवेक्ष्यार्तः स सारथिः ।
सुमन्तः पुरुषव्याघ्रमैक्ष्वाकमिदमब्रवीत् ॥₈॥

नातिक्रान्तमिदं लोके पुरुषेणेह केनचित् ।
तव सभ्रातृभार्यस्य वासः प्राकृतवद्वने ॥₉॥

न मन्ये ब्रह्मचर्येऽस्ति स्वधीते वा फलोदयः ।

मार्दवार्जवयोर्वापि त्वां चेद्वसनमागतम् ॥₁₀॥

सह राघव वैदेह्या भ्रात्रा चैव वने वसन् ।
त्वं गतिं प्राप्स्यसे वीर त्रीँल्लोकांस्तु जयन्निव ॥₁₁॥

वयं खलु हता राम ये तयाप्युपवञ्चिताः ।
कैकेय्या वशमेष्यामः पापाया दुःखभागिनः ॥₁₂॥

इति ब्रुवन्नात्म समं सुमन्तः सारथिस्तदा ।
दृष्ट्वा दुर गतं रामं दुःखार्तो रुरुदे चिरम् ॥₁₃॥

ततस्तु विगते बाष्पे सूतं स्पृष्टोदकं शुचिम् ।
रामस्तु मधुरं वाक्यं पुनः पुनरुवाच तम् ॥₁₄॥

इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये ।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत्तथा कुरु ॥₁₅॥

शोकोपहत चेताश्च वृद्धश्च जगतीपतिः ।
काम भारावसन्नश्च तस्मादेतद्वीमि ते ॥₁₆॥

यद्यदाज्ञापयेत्किञ्चित्स महात्मा महीपतिः ।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं कार्यं तदविकाङ्क्षया ॥₁₇॥

एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासति नरेश्वराः ।
यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते ॥₁₈॥

तद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति ।
न च ताम्यति दुःखेन सुमन्त कुरु तत्तथा ॥₁₉॥

अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् ।
ब्रूयास्त्वमभिवादैव मम हेतोरिदं वचः ॥₂₀॥

नैवाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च मैथिली ।

अयोध्यायाश्च्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥₂₁॥

चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसि क्षिप्रमागतान् ॥₂₂॥

एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे ।
अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनः पुनः ॥₂₃॥

आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम् ।
सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥₂₄॥

ब्रूयाश्च हि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय ।
आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥₂₅॥

भरतं च परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषिच्य च ।
अस्मत्सन्तापजं दुःखं न त्वामभिभविष्यति ॥₂₆॥

भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे ।
तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्त्वेवाविशेषतः ॥₂₇॥

यथा च तव कैकेयी सुमित्रा चाविशेषतः ।
तथैव देवी कौसल्या मम माता विशेषतः ॥₂₈॥

निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः शोककर्षितः ।
तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥₂₉॥

यदहं नोपचारेण ब्रूयां स्नेहादविक्लवः ।
भक्तिमानिति तत्तावद्वाक्यं त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥₃₀॥

कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् ।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकाकुलामिव ॥₃₁॥

सराममपि तावन्मे रथं दृष्ट्वा तदा जनः ।

विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी ॥₃₂॥

दैन्यं हि नगरी गच्छेद्दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम् ।
सूतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे ॥₃₃॥

दूरेऽपि निवसन्तं त्वां मानसेनाग्रतः स्थितम् ।
चिन्तयन्त्योऽद्य नूनं त्वां निराहाराः कृताः प्रजाः ॥₃₄॥

आर्तनादो हि यः पौरैर्मुक्तस्तद्विप्रवासने ।
रथस्थं मां निशाम्यैव कुर्युः शतगुणं ततः ॥₃₅॥

अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया ।
नीतोऽसौ मातुलकुलं सन्तापं मा कृथा इति ॥₃₆॥

असत्यमपि नैवाहं ब्रूयां वचनमीदृशम् ।
कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां सत्यमिदं वचः ॥₃₇॥

मम तावन्नियोगस्थास्त्वद्वन्धुजनवाहिनः ।
कथं रथं त्वया हीनं प्रवक्ष्यन्ति हयोत्तमाः ॥₃₈॥

यदि मे याचमानस्य त्यागमेव करिष्यसि ।
सरथोऽग्निं प्रवेक्ष्यामि त्यक्त मात्र इह त्वया ॥₃₉॥

भविष्यन्ति वने यानि तपोविघ्नकराणि ते ।
रथेन प्रतिबाधिष्ये तानि सत्त्वानि राघव ॥₄₀॥

तत्कृतेन मया प्राप्तं रथ चर्या कृतं सुखम् ।
आशंसे त्वत्कृतेनाहं वनवासकृतं सुखम् ॥₄₁॥

प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः ।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे पत्यनन्तरः ॥₄₂॥

तव शुश्रूषणं मूर्ध्ना करिष्यामि वने वसन् ।

अयोध्यां देवलोकं वा सर्वथा प्रजहाम्यहम् ॥⁴³॥

न हि शक्या प्रवेष्टुं सा मयायोध्या त्वया विना ।
राजधानी महेन्द्रस्य यथा दुष्कृतकर्मणा ॥⁴⁴॥

इमे चापि हया वीर यदि ते वनवासिनः ।
परिचर्यां करिष्यन्ति प्राप्स्यन्ति परमां गतिम् ॥⁴⁵॥

वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः ।
यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः ॥⁴⁶॥

चतुर्दश हि वर्षाणि सहितस्य त्वया वने ।
क्षणभूतानि यास्यन्ति शतशस्तु ततोऽन्यथा ॥⁴⁷॥

भृत्यवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृपुत्रगते पथि ।
भक्तं भृत्यं स्थितं स्थित्यां त्वं न मां हातुमर्हसि ॥⁴⁸॥

एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः ।
रामो भृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥⁴⁹॥

जानामि परमां भक्तिं मयि ते भर्तृवत्सल ।
शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः ॥⁵⁰॥

नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी ।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥⁵¹॥

परितुष्टा हि सा देवि वनवासं गते मयि ।
राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥⁵²॥

एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी ।
भरतारक्षितं स्फीतं पुत्रराज्यमवाप्नुयात् ॥⁵³॥

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सरथस्त्वं पुरीं व्रज ।

सन्दिष्टश्चासि यानर्थास्तांस्तान्ब्रूयास्तथातथा ॥⁵⁴॥

इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ।
गुहं वचनमक्लीबं रामो हेतुमदब्रवीत् ।
जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय ॥⁵⁵॥

तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत् ।
लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोञ्जटाः ॥⁵⁶॥

तौ तदा चीरवसनौ जटामण्डलधारिणौ ।
अशोभेतामृषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥⁵⁷॥

ततो वैखानसं मार्गमास्थितः सहलक्ष्मणः ।
व्रतमादिष्टवान्रामः सहायं गुहमब्रवीत् ॥⁵⁸॥

अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा ।
भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम् ॥⁵⁹॥

ततस्तं समनुज्ञाय गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
जगाम तूर्णमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥⁶⁰॥

स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
तितीर्षुः शीघ्रगां गङ्गामिदं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥⁶¹॥

आरोह त्वं नर व्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः ।
सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम् ॥⁶²॥

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन् ।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥⁶³॥

अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः ।
ततो निषादाधिपतिर्गुहो ज्ञातीनचोदयत् ॥⁶⁴॥

अनुज्ञाय सुमन्त्रं च सबलं चैव तं गुहम् ।
आस्थाय नावं रामस्तु चोदयामास नाविकान् ॥ 65 ॥

ततस्तैश्चोदिता सा नौः कर्णधारसमाहिता ।
शुभस्फ्यवेगाभिहता शीघ्रं सलिलमत्यगात् ॥ 66 ॥

मध्यं तु समनुप्राप्य भागीरथ्यास्त्वनिन्दिता ।
वैदेही प्राञ्जलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥ 67 ॥

पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ।
निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः ॥ 68 ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥ 69 ॥

ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ।
यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकामसमृद्धये ॥ 70 ॥

त्वं हि त्रिपथगा देवि ब्रह्म लोकं समीक्षसे ।
भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्सम्प्रदृश्यसे ॥ 71 ॥

सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ।
प्राप्त राज्ये नरव्याघ्र शिवेन पुनरागते ॥ 72 ॥

गवां शतसहस्राणि वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥ 73 ॥

तथा सम्भाषमाणा सा सीता गङ्गामनिन्दिता ।
दक्षिणा दक्षिणं तीरं क्षिप्रमेवाभ्युपागमत् ॥ 74 ॥

तीरं तु समनुप्राप्य नावं हिन्वा नरर्षभः ।
प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परन्तपः ॥ 75 ॥

अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम् ।
अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ॥ 76 ॥

पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि त्वां च सीतां च पालयन् ।
अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति ॥ 77 ॥

गतं तु गङ्गापरपारमाशु
रामं सुमन्त्रः प्रततं निरीक्ष्य ।
अध्वप्रकर्षाद्विनिवृत्तदृष्टिर्-
मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी ॥ 78 ॥

तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्
वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम् ।
आदाय मेध्यं त्वरितं बुभुक्षितौ
वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम् ॥ 79 ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षट्त्वारिंशः सर्गः ॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

स तं वृक्षं समासाद्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम् ॥₁॥

अद्वेयं प्रथमा रात्रिर्याता जनपदाद्बहिः ।
या सुमन्त्रेण रहिता तां नोत्कण्ठितुमर्हसि ॥₂॥

जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्य प्रभृति रात्रिषु ।
योगक्षेमो हि सीताया वर्तते लक्ष्मणावयोः ॥₃॥

रात्रिं कथञ्चिदेवेमां सौमित्रे वर्तयामहे ।
उपावर्तामहे भूमावास्तीर्य स्वयमार्जितैः ॥₄॥

स तु संविश्य मेदिन्यां महार्हशयनोचितः ।
इमाः सौमित्रये रामो व्याजहार कथाः शुभाः ॥₅॥

ध्रुवमद्य महाराजो दुःखं स्वपिति लक्ष्मण ।
कृतकामा तु कैकेयी तुष्टा भवितुमर्हति ॥₆॥

सा हि देवी महाराजं कैकेयी राज्यकारणात् ।
अपि न च्यावयेत्प्राणान्दृष्ट्वा भरतमागतम् ॥₇॥

अनाथश्चैव वृद्धश्च मया चैव विनाकृतः ।
किं करिष्यति कामात्मा कैकेय्या वशमागतः ॥₈॥

इदं व्यसनमालोक्य राज्ञश्च मतिविभ्रमम् ।
काम एवार्धधर्माभ्यां गरीयानिति मे मतिः ॥₉॥

को ह्यविद्वानपि पुमान्प्रमदायाः कृते त्यजेत् ।

छन्दानुवर्तिनं पुत्रं तातो मामिव लक्ष्मण ॥₁₀॥

सुखी बत सभार्यश्च भरतः कैकेयीसुतः ।
मुदितान्कोसलानेको यो भोक्ष्यत्यधिराजवत् ॥₁₁॥

स हि सर्वस्य राज्यस्य मुखमेकं भविष्यति ।
ताते च वयसातीते मयि चारण्यमाश्रिते ॥₁₂॥

अर्थधर्मौ परित्यज्य यः काममनुवर्तते ।
एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा ॥₁₃॥

मन्ये दशरथान्ताय मम प्रव्राजनाय च ।
कैकेयी सौम्य सम्प्राप्ता राज्याय भरतस्य च ॥₁₄॥

अपीदानीं न कैकेयी सौभाग्यमदमोहिता ।
कौसल्यां च सुमित्रां च सम्प्रबाधेत मत्कृते ॥₁₅॥

मा स्म मत्कारणाद्देवी सुमित्रा दुःखमावसेत् ।
अयोध्यामित एव त्वं काले प्रविश लक्ष्मण ॥₁₆॥

अहमेको गमिष्यामि सीतया सह दण्डकान् ।
अनाथाया हि नाथस्त्वं कौसल्याया भविष्यसि ॥₁₇॥

क्षुद्रकर्मा हि कैकेयी द्वेषादन्याय्यमाचरेत् ।
परिदद्या हि धर्मज्ञे भरते मम मातरम् ॥₁₈॥

नूनं जात्यन्तरे कस्मिं स्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः ।
जनन्या मम सौमित्रे तदप्येतदुपस्थितम् ॥₁₉॥

मया हि चिरपुष्टेन दुःखसंवर्धितेन च ।
विप्रायुज्यत कौसल्या फलकाले धिगस्तु माम् ॥₂₀॥

मा स्म सीमन्तिनी काचिञ्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ।

सौमित्रे योऽहमम्बाया दद्वि शोकमनन्तकम् ॥²¹॥

मन्ये प्रीतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मणसारिका ।
यस्यास्तच्छ्रूयते वाक्यं शुक पादमरेर्दश ॥²²॥

शोचन्त्याश्चाल्पभाग्याया न किञ्चिदुपकुर्वता ।
पुत्रेण किमपुत्राया मया कार्यमरिन्दम ॥²³॥

अल्पभाग्या हि मे माता कौसल्या रहिता मया ।
शेते परमदुःखार्ता पतिता शोकसागरे ॥²⁴॥

एको ह्यहमयोध्यां च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
तरेयमिषुभिः क्रुद्धो ननु वीर्यमकारणम् ॥²⁵॥

अधर्मभय भीतश्च परलोकस्य चानघ ।
तेन लक्ष्मण नाद्याहमात्मानमभिषेचये ॥²⁶॥

एतदन्यच्च करुणं विलप्य विजने बहु ।
अश्रुपूर्णमुखो रामो निशि तूष्णीमुपाविशत् ॥²⁷॥

विलप्योपरतं रामं गतार्चिषमिवानलम् ।
समुद्रमिव निर्वेगमाश्वासयत लक्ष्मणः ॥²⁸॥

ध्रुवमद्य पुरी राम अयोध्या युधिनां वर ।
निष्प्रभा ब्रिये निष्क्रान्ते गतचन्द्रेव शर्वरी ॥²⁹॥

नैतदौपयिकं राम यदिदं परितप्यसे ।
विषादयसि सीतां च मां चैव पुरुषर्षभ ॥³⁰॥

न च सीता ब्रया हीना न चाहमपि राघव ।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥³¹॥

न हि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप ।

द्रष्टुमिच्छेयमदाहं स्वर्गं वापि त्वया विना ॥₃₂॥

स लक्ष्मणस्योत्तम पुष्कलं वचो
निशम्य चैवं वनवासमादरात् ।
समाः समस्ता विदधे परन्तपः
प्रपद्य धर्मं सुचिराय राघवः ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

ते तु तस्मिन्महावृक्ष उषित्वा रजनीं शिवाम् ।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद्देशात्प्रतस्थिरे ॥₁॥

यत्र भागीरथी गङ्गा यमुनामभिवर्तते ।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥₂॥

ते भूमिमागान्विविधान्देशांश्चापि मनोरमान् ।
अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः ॥₃॥

यथाक्षेमेण गच्छन्स पश्यंश्च विविधान्द्रुमान् ।
निवृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥₄॥

प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुन्नतम् ।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः ॥₅॥

नूनं प्राप्ताः स्म सम्भेदं गङ्गायमुनयोर्वयम् ।
तथा हि श्रूयते शम्बुदो वारिणा वारिघट्टितः ॥₆॥

दारूणि परिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः ।
भरद्वाजाश्रमे चैते दृश्यन्ते विविधा द्रुमाः ॥₇॥

धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे ।
गङ्गायमुनयोः सन्धौ प्रापतुर्निलयं मुनेः ॥₈॥

रामस्त्वाश्रममासाद्य त्रासयन्मृगपक्षिणः ।
गत्वा मुहूर्तमध्वानं भरद्वाजमुपागमत् ॥₉॥

ततस्त्वाश्रममासाद्य मुनेर्दर्शनकाङ्क्षिणौ ।

सीतयानुगतौ वीरौ दूरादेवावतस्थतुः ॥₁₀॥

हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागं कृताञ्जलिः ।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत् ॥₁₁॥

न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः ।
पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन्नामलक्ष्मणौ ॥₁₂॥

भार्या ममेयं वैदेही कल्याणी जनकात्मजा ।
मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥₁₃॥

पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः ।
अयमन्वगमद्भाता वनमेव दृढव्रतः ॥₁₄॥

पित्रा नियुक्ता भगवन्प्रवेष्ट्यामस्तपोवनम् ।
धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥₁₅॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः ॥₁₆॥

मृगपक्षिभिरासीनो मुनिभिश्च समन्ततः ।
राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनाह तं मुनिः ॥₁₇॥

प्रतिगृह्य च तामर्चामुपविष्टं सराघवम् ।
भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥₁₈॥

चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्यामि त्वामिहागतम् ।
श्रुतं तव मया चेदं विवासनमकारणम् ॥₁₉॥

अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे ।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसन्निह भगान्सुखम् ॥₂₀॥

एवमुक्तस्तु वचनं भरद्वाजेन राघवः ।

प्रत्युवाच शुभं वाक्यं रामः सर्वहिते रतः ॥₂₁॥

भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदो जनः ।
आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः ।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ॥₂₂॥

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम् ।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥₂₃॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनिः ।
राघवस्य ततो वाक्यमर्थं ग्राहकमब्रवीत् ॥₂₄॥

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि ।
महर्षिसेवितः पुण्यः सर्वतः सुख दर्शनः ॥₂₅॥

गोलाङ्गूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः ।
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंनिभः ॥₂₆॥

यावता चित्र कूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते ।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः ॥₂₇॥

ऋषयस्तत्र बहवो विहृत्य शरदां शतम् ।
तपसा दिवमारूढाः कपालशिरसा सह ॥₂₈॥

प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम् ।
इह वा वनवासाय वस राम मया सह ॥₂₉॥

स रामं सर्वकामैस्तं भरद्वाजः प्रियातिथिम् ।
सभार्य सह च भ्रात्रा प्रतिजग्राह धर्मवित् ॥₃₀॥

तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः ।
प्रपन्ना रजनी पुण्या चित्राः कथयतः कथाः ॥₃₁॥

प्रभातायां रजन्यां तु भरद्वाजमुपागमत् ।
उवाच नरशार्दूलो मुनिं ज्वलिततेजसम् ॥³²॥

शर्वरीं भवनन्नद्य सत्यशील तवाश्रमे ।
उषिताः स्मेह वसतिमनुजानातु नो भवान् ॥³³॥

रात्र्यां तु तस्यां व्युष्टायां भरद्वाजोऽब्रवीदिदम् ।
मधुमूलफलोपेतं चित्रकूटं व्रजेति ह ॥³⁴॥

तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चाभितः ।
विचरन्ति वनान्तेषु तानि द्रक्ष्यसि राघव ॥³⁵॥

प्रहृष्टकोयष्टिककोकिलस्वनैर्-
विनादितं तं वसुधाधरं शिवम् ।
मृगैश्च मत्तैर्बहुभिश्च कुञ्जरैः
सुरम्यमासाद्य समावसाश्रमम् ॥³⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

उषिढ्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिन्दमौ ।
महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति ॥₁॥

प्रस्थितांश्चैव तान्प्रेक्ष्य पिता पुत्रानिवान्वगात् ।
ततः प्रचक्रमे वक्तुं वचनं स महामुनिः ॥₂॥

अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतसमापगाम् ।
तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम् ॥₃॥

ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम् ।
विवृद्धं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम् ॥₄॥

क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं द्रक्ष्यथ काननम् ।
पलाशबदरीमिश्रं राम वंशैश्च यामुनैः ॥₅॥

स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतः सुबहुशो मया ।
रम्यो मार्दवयुक्तश्च वनदावैर्विवर्जितः ।
इति पन्थानमावेद्य महर्षिः स न्यवर्तत ॥₆॥

उपावृत्ते मुनौ तस्मिन्नामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
कृतपुण्याः स्म सौमित्रे मुनिर्यन्नोऽनुकम्पते ॥₇॥

इति तौ पुरुषव्याघ्रौ मन्त्रयित्वा मनस्विनौ ।
सीतामेवाग्रतः कृत्वा कालिन्दीं जग्मतुर्नदीम् ॥₈॥

तौ काष्ठसङ्घाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम् ।
चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाः सुखमानसम् ॥₉॥

तत्र श्रियमिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिः प्रियाम् ।
ईषत्संलज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम् ॥₁₀॥

ततः प्लवेनांशुमतीं शीघ्रगामूर्मिमालिनीम् ।
तीरजैर्बहुभिर्वृक्षैः सन्तेरुर्यमुनां नदीम् ॥₁₁॥

ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात् ।
श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम् ॥₁₂॥

कौसल्यां चैव पश्येयं सुमित्रां च यशस्विनीम् ।
इति सीताञ्जलिं कृत्वा पर्यगच्छद्वनस्पतिम् ॥₁₃॥

क्रोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने ॥₁₄॥

विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते
शुभे वने वारणवानरायुते ।
समं नदीवप्रमुपेत्य सम्मतम्
निवासमाजग्मुरदीनदर्शनः ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

अथ रात्र्यां व्यतीतायामवसुप्तमनन्तरम् ।
प्रबोधयामास शनैर्लक्ष्मणं रघुनन्दनः ॥₁॥

सौमित्रे शृणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम् ।
सम्प्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परन्तप ॥₂॥

स सुप्तः समये भ्रात्रा लक्ष्मणः प्रतिबोधितः ।
जहौ निद्रां च तन्द्रीं च प्रसक्तं च पथि श्रमम् ॥₃॥

तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् ।
पन्थानमृषिणोद्दिष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥₄॥

ततः सम्प्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह ।
सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ॥₅॥

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान्नगान् ।
स्त्रैः पुष्पैः किंशुकान्यथ मालिनः शिशिरात्यये ॥₆॥

पथ्य भल्लातकान्फुल्लान्नरैरनुपसेवितान् ।
फलपत्रैरवनतान्नूनं शक्यामि जीवितुम् ॥₇॥

पथ्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण ।
मधूनि मधुकारीभिः सम्भृतानि नगे नगे ॥₈॥

एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति ।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसङ्कटे ॥₉॥

मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसङ्घानुनादितम् ।

चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ॥₁₀॥

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया ।
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम् ॥₁₁॥

तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम् ।
अयं वासो भवेत्तावदत्र सौम्य रमेमहि ॥₁₂॥

लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च ।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥₁₃॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् ।
आजहार ततश्चक्रे पर्णं शालामरिं दम ॥₁₄॥

शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदं वचनमब्रवीत् ।
ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् ॥₁₅॥

स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं पतापवान् ।
अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि ॥₁₆॥

तं तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम् ।
लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत् ॥₁₇॥

अयं कृष्णः समाप्ताङ्गः शृतः कृष्ण मृगो यथा ।
देवता देवसङ्काश यजस्व कुशलो ह्यसि ॥₁₈॥

रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्छप्यकोविदः ।
पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ॥₁₉॥

तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञाम्
यथाप्रदेशं सुकृतां निवाताम् ।
वासाय सर्वे विविशुः समेताः
सभां यथा देव गणाः सुधर्मा ॥₂₀॥

अनेकनानामृगपक्षिसङ्कुले
विचित्रपुष्पस्तबलैर्द्रुमैर्युते ।
वनोत्तमे व्यालमृगानुनादिते
तथा विजह्नुः सुसुखं जितेन्द्रियाः ॥₂₁॥

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटम्
नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टाम्
जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

कथयित्वा सुदुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह ।
रामे दक्षिण कूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः ॥₁॥

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान् ।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः ॥₂॥

स वनानि सुगन्धीनि सरितश्च सरांसि च ।
पश्यन्नतिययौ शीघ्रं ग्रामाणि नगराणि च ॥₃॥

ततः सायाह्नसमये तृतीयेऽहनि सारथिः ।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥₄॥

स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः ।
सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः ॥₅॥

कच्चिन्न सगजा साश्वा सजना सजनाधिपा ।
राम सन्तापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी ।
इति चिन्तापरः सूतस्त्वरितः प्रविवेश ह ॥₆॥

सुमन्त्रमभियान्तं तं शतशोऽथ सहस्रशः ।
क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः ॥₇॥

तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ राघवम् ।
अनुज्ञातो निवृत्तोऽस्मि धार्मिकेण महात्मना ॥₈॥

ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा जनाः ।
अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति च चुक्रुशुः ॥₉॥

शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम् ।
हताः स्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम् ॥₁₀॥

दानयज्ञविवाहेषु समाजेषु महत्सु च ।
न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा ॥₁₁॥

किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम् ।
इति रामेण नगरं पितृवत्परिपालितम् ॥₁₂॥

वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम् ।
रामशोकाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनम् ॥₁₃॥

स राजमार्गमध्येन सुमन्तः पिहिताननः ।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम् ॥₁₄॥

सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च ।
कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः ॥₁₅॥

ततो दशरथस्त्रीणां प्रासादेभ्यस्ततस्ततः ।
रामशोकाभितप्तानां मन्दं शुश्राव जल्पितम् ॥₁₆॥

सह रामेण निर्यातो विना राममिहागतः ।
सूतः किं नाम कौसल्यां शोचन्तीं प्रतिवक्ष्यति ॥₁₇॥

यथा च मन्ये दुर्जीवमेवं न सुकरं ध्रुवम् ।
आच्छिद्य पुत्रे निर्याते कौसल्या यत्र जीवति ॥₁₈॥

सत्य रूपं तु तद्वाक्यं राज्ञः स्त्रीणां निशामयन् ।
प्रदीप्तमिव शोकेन विवेश सहसा गृहम् ॥₁₉॥

स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुलम् ।
पुत्रशोकपरिदूनमपश्यत्पाण्डरे गृहे ॥₂₀॥

अभिगम्य तमासीनं नरेन्द्रमभिवाद्य च ।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥²¹॥

स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विभ्रान्त चेतनः ।
मूर्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकाभिपीडितः ॥²²॥

ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्छिते पृथिवीपतौ ।
उद्धृत्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ॥²³॥

सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम् ।
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् ॥²⁴॥

इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः ।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥²⁵॥

अद्येममनयं कृत्वा व्यपत्रपसि राघव ।
उत्तिष्ठ सुकृतं तेऽस्तु शोके न स्यात्सहायता ॥²⁶॥

देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम् ।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम् ॥²⁷॥

सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा ।
धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥²⁸॥

एवं विलपतीं दृष्ट्वा कौसल्यां पतितां भुवि ।
पतिं चावेक्ष्य ताः सर्वाः सस्वरं रुरुदुः स्त्रियः ॥²⁹॥

ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितम्
समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः
पुरं तदासीत्पुनरेव सङ्कुलम् ॥³⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतः पुनः ।
अथाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् ॥₁॥

वृद्धं परमसन्तप्तं नवग्रहमिव द्विपम् ।
विनिःश्वसन्तं ध्यायन्तमस्वस्थमिव कुञ्जरम् ॥₂॥

राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम् ।
अश्रु पूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत् ॥₃॥

क्व नु वत्स्यति धर्मात्मा वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
सोऽत्यन्तसुखितः सूत किमशिष्यति राघवः ।
भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथवत् ॥₄॥

यं यान्तमनुयान्ति स्म पदाति रथकुञ्जराः ।
स वत्स्यति कथं रामो विजनं वनमाश्रितः ॥₅॥

व्यालैर्मृगैराचरितं कृष्णसर्पनिषेवितम् ।
कथं कुमारो वैदेह्या सार्धं वनमुपस्थितौ ॥₆॥

सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया ।
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ ॥₇॥

सिद्धार्थः खलु सूत त्वं येन दृष्टौ ममात्मजौ ।
वनान्तं प्रविशन्तौ तावन्निनाविव मन्दरम् ॥₈॥

किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः ।
सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली ।
आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय ॥₉॥

इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सञ्जमानया ।
उवाच वाचा राजानं सबाष्पपरिरब्धया ॥₁₀॥

अब्रवीन्मां महाराज धर्ममेवानुपालयन् ।
अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥₁₁॥

सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः ।
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यो पादौ महात्मनः ॥₁₂॥

सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया ।
आरोग्यमविशेषेण यथार्हं चाभिवादनम् ॥₁₃॥

माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् ।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय ॥₁₄॥

भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च ।
सर्वास्त्रेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥₁₅॥

वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।
पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय ॥₁₆॥

इत्येवं मां महाराज ब्रुवन्नेव महायशाः ।
रामो राजीवताम्राक्षो भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥₁₇॥

लक्ष्मणस्तु सुसङ्कुद्धो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत् ।
केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः ॥₁₈॥

यदि प्रव्राजितो रामो लोभकारणकारितम् ।
वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ।
रामस्य तु परित्यागे न हेतुमुपलक्षये ॥₁₉॥

असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात् ।
जनयिष्यति सङ्क्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥₂₀॥

अहं तावन्महाराजे पितृबन्धं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥₂₁॥

सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रतम् ।
सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं त्वानेन कर्मणा ॥₂₂॥

जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी ।
भूतोपहतचित्तेव विष्ठिता वृष्मृता स्थिता ॥₂₃॥

अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी ।
तेन दुःखेन रुदती नैव मां किञ्चिदब्रवीत् ॥₂₄॥

उद्वीक्षमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता ।
मुमोच सहसा बाष्पं मां प्रयान्तमुदीक्ष्य सा ॥₂₅॥

तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः
स्थितोऽभवलक्ष्मणबाहुपालितः ।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी
निरीक्षते राजरथं तथैव माम् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि ।
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे सम्प्रस्थिते वनम् ॥₁॥

उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम् ।
प्रस्थितो रथमास्थाय तद्दुःखमपि धारयन् ॥₂॥

गुहेव सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्बहून् ।
आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ॥₃॥

विषये ते महाराज रामव्यसनकर्षिताः ।
अपि वृक्षाः परिम्लानः सपुष्पाङ्कुरकोरकाः ॥₄॥

न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च ।
रामशोकाभिभूतं तन्निष्कूजमभवद्वनम् ॥₅॥

लीनपुष्करपत्राश्च नरेन्द्र कलुषोदकाः ।
सन्तप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहङ्गमाः ॥₆॥

जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि च ।
नाद्य भान्त्यल्पगन्धीनि फलानि च यथा पुरम् ॥₇॥

प्रविशन्तमयोध्यां मां न कश्चिदभिनन्दति ।
नरा राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः ॥₈॥

हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्य रथमागतम् ।
हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्षिताः ॥₉॥

आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः ।

अन्योन्यमभिवीक्षन्ते व्यक्तमार्ततराः स्त्रियः ॥₁₀॥

नामित्राणां न मित्राणामुदासीनजनस्य च ।
अहमार्ततया कश्चिद्विशेषं नोपलक्षये ॥₁₁॥

अप्रहृष्टमनुष्या च दीननागतुरङ्गमा ।
आर्तस्वरपरिभ्राना विनिःश्वसितनिःस्वना ॥₁₂॥

निरानन्दा महाराज रामप्रव्राजनातुला ।
कौसल्या पुत्र हीनेव अयोध्या प्रतिभाति मा ॥₁₃॥

सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया ।
बाष्पोपहतया राजा तं सूतमिदमब्रवीत् ॥₁₄॥

कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभावया ।
मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम् ॥₁₅॥

न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा न नैगमैः ।
मयायमर्थः सम्मोहात्स्त्रीहेतोः सहसा कृतः ॥₁₆॥

भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत् ।
कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया ॥₁₇॥

सूत यद्यस्ति ते किञ्चिन्मयापि सुकृतं कृतम् ।
त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः सन्त्वरयन्ति माम् ॥₁₈॥

यद्यद्यापि ममैवाज्ञा निवर्तयतु राघवम् ।
न शक्यामि विना राम मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥₁₉॥

अथ वापि महाबाहुर्गतो दूरं भविष्यति ।
मामेव रथमारोप्य शीघ्रं रामाय दर्शय ॥₂₀॥

वृत्तदंष्ट्रो महेष्वासः क्वासौ लक्ष्मणपूर्वजः ।

यदि जीवामि साध्वेनं पश्येयं सह सीतया ॥₂₁॥

लोहिताक्षं महाबाहुमामुक्तमणिकुण्डलम् ।
रामं यदि न पश्यामि गमिष्यामि यमक्षयम् ॥₂₂॥

अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम् ॥₂₃॥

हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनी ।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ।
दुस्तरौ जीवता देवि मयायं शोकसागरः ॥₂₄॥

अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवम्
दिदृक्षमाणो न लभे सलक्ष्मणम् ।
इतीव राजा विलपन्महायशाः
पपात तूर्णं शयने स मूर्छितः ॥₂₅॥

इति विलपति पार्थिवे प्रनष्टे
करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः ।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवी
भयमगमत्पुनरेव राममाता ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः ।
धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत् ॥₁॥

नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः ।
तान्विना क्षणमप्यत्र जीवितुं नोत्सहे ह्यहम् ॥₂॥

निवर्तय रथं शीघ्रं दण्डकान्नय मामपि ।
अथ तान्नानुगच्छामि गमिष्यामि यमक्षयम् ॥₃॥

बाष्पवेगौपहतया स वाचा सञ्जमानया ।
इदमाश्वासयन्देवीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥₄॥

त्यज शोकं च मोहं च सम्भ्रमं दुःखजं तथा ।
व्यवधूय च सन्तापं वने वत्स्यति राघवः ॥₅॥

लक्ष्मणश्चापि रामस्य पादौ परिचरन्वने ।
आराधयति धर्मज्ञः परलोकं जितेन्द्रियः ॥₆॥

विजनेऽपि वने सीता वासं प्राप्य गृहेष्विव ।
विस्रम्भं लभतेऽभीता रामे संन्यस्त मानसा ॥₇॥

नास्या दैन्यं कृतं किञ्चित्सुसूक्ष्ममपि लक्षये ।
उचितेव प्रवासानां वैदेही प्रतिभाति मा ॥₈॥

नगरोपवनं गत्वा यथा स्म रमते पुरा ।
तथैव रमते सीता निर्जनेषु वनेष्वपि ॥₉॥

बालेव रमते सीता बालचन्द्रनिभानना ।

रामा रामे ह्यदीनात्मा विजनेऽपि वने सती ॥₁₀॥

तद्वतं हृदयं ह्यस्यास्तदधीनं च जीवितम् ।
अयोध्यापि भवेत्तस्या राम हीना तथा वनम् ॥₁₁॥

पथि पृच्छति वैदेही ग्रामांश्च नगराणि च ।
गतिं दृष्ट्वा नदीनां च पादपान्विविधानपि ॥₁₂॥

अध्वना वात वेगेन सम्भ्रमेणातपेन च ।
न हि गच्छति वैदेह्याश्चन्द्रांशुसदृशी प्रभा ॥₁₃॥

सदृशं शतपत्रस्य पूर्णचन्द्रोपमप्रभम् ।
वदनं तद्वदान्याया वैदेह्या न विकम्पते ॥₁₄॥

अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ ।
अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोशसमप्रभौ ॥₁₅॥

नूपुरोद्धुष्टहेलेव खेलं गच्छति भामिनी ।
इदानीमपि वैदेही तद्रागा न्यस्तभूषणा ॥₁₆॥

गजं वा वीक्ष्य सिंहं वा व्याघ्रं वा वनमाश्रिता ।
नाहारयति सन्नासं बाहू रामस्य संश्रिता ॥₁₇॥

न शोच्यास्ते न चात्मा ते शोच्यो नापि जनाधिपः ।
इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम् ॥₁₈॥

विधूय शोकं परिहृष्टमानसा
महर्षियाते पथि सुव्यवस्थिताः ।
वने रता वन्यफलाशनाः पितुः
शुभां प्रतिज्ञां परिपालयन्ति ते ॥₁₉॥

तथापि सूतेन सुयुक्तवादिना
निवार्यमाणा सुतशोककर्षिता ।

न चैव देवी विरगाम कूजितात्
प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

वनं गते धर्मपरे रामे रमयतां वरे ।
कौसल्या रुदती स्वार्ता भर्तारमिदमब्रवीत् ॥₁॥

यद्यपित्रिषु लोकेषु प्रथितं ते मयद्यशः ।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः ॥₂॥

कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया ।
दुःखितौ सुखसंवृद्धौ वने दुःखं सहिष्यतः ॥₃॥

सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता ।
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली प्रसहिष्यते ॥₄॥

भुक्ताशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम् ।
वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ॥₅॥

गीतवादित्रनिर्घोषं श्रुत्वा शुभमनिन्दिता ।
कथं क्रव्यादसिंहानां शब्दं श्रोष्यत्यशोभनम् ॥₆॥

महेन्द्रध्वजसङ्काशः क्व नु शेते महाभुजः ।
भुजं परिघसङ्काशमुपधाय महाबलः ॥₇॥

पद्मवर्णं सुकेशान्तं पद्मनिःश्वासमुत्तमम् ।
कदा द्रक्ष्यामि रामस्य वदनं पुष्करेक्षणम् ॥₈॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः ।
अपश्यन्त्या न तं यद्वै फलतीदं सहस्रधा ॥₉॥

यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति ।

जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतेनोपभोक्ष्यते ॥₁₀॥

एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशां पते ।
भ्राता ज्येष्ठा वरिष्ठाश्च किमर्थं नावमंस्यते ॥₁₁॥

न परेणाहतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति ।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते ॥₁₂॥

हविराज्यं पुरोडाशाः कुशा यूपाश्च खादिराः ।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे ॥₁₃॥

तथा ह्यात्तमिदं राज्यं हतसारां सुरामिव ।
नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम् ॥₁₄॥

नैवंविधमसत्कारं राघवो मर्षयिष्यति ।
बलवानिव शार्दूलो बालधेरभिमर्शनम् ॥₁₅॥

स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा ॥₁₆॥

द्विजाति चरितो धर्मः शास्त्रदृष्टः सनातनः ।
यदि ते धर्मनिरते ब्रूया पुत्रे विवासिते ॥₁₇॥

गतिरेवाक्पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः ।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नेह विद्यते ॥₁₈॥

तत्र त्वं चैव मे नास्ति रामश्च वनमाश्रितः ।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हि हता ब्रूया ॥₁₉॥

हतं ब्रूया राज्यमिदं सराष्ट्रम्
हतस्तथात्मा सह मन्त्रिभिश्च ।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः
सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ॥₂₀॥

इमां गिरं दारुणशब्दसंश्रिताम्
निशम्य राजापि मुमोह दुःखितः ।
ततः स शोकं प्रविवेश पार्थिवः
स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तदास्मरत् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥षट्धाशत्तमः सर्गः॥

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया ।
श्रावितः परुषं वाक्यं चिन्तयामास दुःखितः ॥₁॥

तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात्कर्म दुष्कृतम् ।
यदनेन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना ॥₂॥

अमनास्तेन शोकेन रामशोकेन च प्रभुः ।
दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह भूपतिः ॥₃॥

प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः ।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ॥₄॥

भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा ।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥₅॥

सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावर ।
नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम् ॥₆॥

तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् ।
कौसल्या व्यसृजद्वाष्पं प्रणालीव नवोदकम् ॥₇॥

स मूढ्रिह्ण बद्धा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम् ।
सम्भ्रमादब्रवीत्तस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ॥₈॥

प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निततितास्मि ते ।
याचितास्मि हता देव हन्तव्याहं न हि त्वया ॥₉॥

नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता ।

उभयोर्लोकयोर्वीर पत्या या सम्प्रसाद्यते ॥₁₀॥

जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् ।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् ॥₁₁॥

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् ।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥₁₂॥

शयमापतितः सोढुं प्रहरो रिपुहस्ततः ।
सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते ॥₁₃॥

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽद्य गण्यते ।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम ॥₁₄॥

तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते ।
अदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत् ॥₁₅॥

एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः ।
मन्दरश्मिरभूत्सुर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥₁₆॥

अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः ।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान् ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षट्षाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

प्रतिबुद्धो मुहुर्तेन शोकोपहतचेतनः ।
अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत ॥₁॥

रामलक्ष्मणयोश्चैव विवासाद्वासवोपमम् ।
आविवेशोपसर्गस्तं तमः सूर्यमिवासुरम् ॥₂॥

स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्रजिते वनम् ।
अर्धरात्रे दशरथः संस्मरन्दुष्कृतं कृतम् ।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥₃॥

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम् ।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥₄॥

गुरु लाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम् ।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते ॥₅॥

कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति ।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्रः स शोचति फलागमे ॥₆॥

सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च न्यषेचयम् ।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः ॥₇॥

लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता ।
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम् ।
तदिदं मेऽनुसम्प्राप्तं देवि दुःखं स्वयं कृतम् ॥₈॥

सम्मोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् ।
एवं ममाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमयं फलम् ॥₉॥

देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् ।
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मदकामविवर्धिनी ॥₁₀॥

उपास्यहि रसान्भौमांस्तत्त्वा च जगदंशुभिः ।
परेताचरितां भीमां रविराविशते दिशम् ॥₁₁॥

उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशिरे घनाः ।
ततो जहृषिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः ॥₁₂॥

पतितेनाम्भसा छन्नः पतमानेन चासकृत् ।
आबभौ मत्तसारङ्गस्तोयराशिरिवाचलः ॥₁₃॥

तस्मिन्नतिसुखे काले धनुष्मानिषुमान्रथी ।
व्यायाम कृतसङ्कल्पः सरयूमन्वगां नदीम् ॥₁₄॥

निपाने महिषं रात्रौ गजं वाभ्यागतं नदीम् ।
अन्यं वा श्वापदं कश्चिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः ॥₁₅॥

अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पर्यतः ।
अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः ॥₁₆॥

ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् ।
अमुधं निशितं बाणमहमाशीविषोपमम् ॥₁₇॥

तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनौकसः ।
हा हेति पततस्तोये वागभूत्तत्र मानुषी ।
कथमस्मद्विधे शस्त्रं निपतेत्तु तपस्विनि ॥₁₈॥

प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः ।
इषुणाभिहतः केन कस्य वा किं कृतं मया ॥₁₉॥

ऋषेर्हि न्यस्त दण्डस्य वने वन्येन जीवतः ।
कथं नु शस्त्रेण वधो मद्विधस्य विधीयते ॥₂₀॥

जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः ।
को वधेन ममार्थी स्यात्किं वास्यापकृतं मया ॥₂₁॥

एवं निष्फलमारब्धं केवलानर्थसंहितम् ।
न कश्चित्साधु मन्येत यथैव गुरुतल्पगम् ॥₂₂॥

नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः ।
मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्विधे ॥₂₃॥

तदेतान्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया ।
मयि पञ्चद्वमापन्ने कां वृत्तिं वर्तयिष्यति ॥₂₄॥

वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः ।
केन स्म निहताः सर्वे सुबालेनाकृतात्मना ॥₂₅॥

तं गिरं करुणां श्रुत्वा मम धर्मानुकाङ्क्षिणः ।
कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि ॥₂₆॥

तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः ।
अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम् ॥₂₇॥

स मामुद्धीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्त्वस्थचेतसम् ।
इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा ॥₂₈॥

किं तवापकृतं राजन्वने निवसता मया ।
जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया ॥₂₉॥

एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि ।
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे ॥₃₀॥

तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ ।
चिरमाशाकृतां तृष्णां कष्टां सन्धारयिष्यतः ॥₃₁॥

न नूनं तपसो वास्ति फलयोगः श्रुतस्य वा ।
पिता यन्मां न जानाति शयानं पतितं भुवि ॥³²॥

जानन्नपि च किं कुर्यादशक्तिरपरिक्रमः ।
भिद्यमानमिवाशक्तस्त्वातुमन्यो नगो नगम् ॥³³॥

पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव ।
न त्वामनुदहेत्क्रुद्धो वनं वह्निरिवैधितः ॥³⁴॥

इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः ।
तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वां स कुपितः शपेत् ॥³⁵॥

विशत्यं कुरु मां राजन्मर्म मे निशितः शरः ।
रुणद्धि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा ॥³⁶॥

न द्विजातिरहं राजन्मा भूते मनसो व्यथा ।
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो जनपदाधिप ॥³⁷॥

इतीव वदतः कृच्छ्राद्वाणाभिहतमर्मणः ।
तस्य त्वानम्यमानस्य तं बाणमहमुद्धरम् ॥³⁸॥

जलार्द्रगात्रं तु विलप्य कृच्छ्रान्
मर्मव्रणं सन्ततमुच्छसन्तम् ।
ततः सरखां तमहं शयानम्
समीक्ष्य भद्रे सुभृशं विषण्णः ॥³⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तदज्ञानान्महत्पापं कृत्वा सङ्कुलितेन्द्रियः ।
एकस्त्वचिन्तयं बुद्ध्या कथं नु सुकृतं भवेत् ॥₁॥

ततस्तं घटमादय पूर्णं परमवारिणा ।
आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ॥₂॥

तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ ।
अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविव द्विजौ ॥₃॥

तन्निमित्ताभिरासीनौ कथाभिरपरिक्रमौ ।
तामाशां मत्कृते हीनावुदासीनावनाथवत् ॥₄॥

पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत ।
किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय ॥₅॥

यन्निमित्तमिदं तात सलिले क्रीडितं ब्रूया ।
उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम् ॥₆॥

यद्वलीकं कृतं पुत्र मात्रा ते यदि वा मया ।
न तन्मनसि कर्तव्यं ब्रूया तात तपस्विना ॥₇॥

त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् ।
समासक्तास्त्वयि प्राणाः किञ्चिन्नौ नाभिभाषसे ॥₈॥

मुनिमव्यक्तया वाचा तमहं सञ्जमानया ।
हीनव्यञ्जनया प्रेक्ष्य भीतो भीत इवाब्रुवम् ॥₉॥

मनसः कर्म चेष्टाभिरभिसंस्तभ्य वाग्बलम् ।

आचक्षे बहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम् ॥₁₀॥

क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः ।
सञ्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम् ॥₁₁॥

भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः ।
जिघांसुः श्वापदं किञ्चिन्निपाने वागतं गजम् ॥₁₂॥

तत्र श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः ।
द्विपोऽयमिति मत्वा हि बाणेनाभिहतो मया ॥₁₃॥

गत्वा नद्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि ।
विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम् ॥₁₄॥

भगवञ्शब्दमालक्ष्य मया गजजिघांसुना ।
विसृष्टोऽम्भसि नाराचस्तेन ते निहतः सुतः ॥₁₅॥

स चोद्धृतेन बाणेन तत्रैव स्वर्गमास्थितः ।
भगवन्तावुभौ शोचन्नन्धाविति विलप्य च ॥₁₆॥

अज्ञानाद्भवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया ।
शेषमेवङ्गते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः ॥₁₇॥

स तच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं निःश्वसञ्शोककर्षितः ।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥₁₈॥

यदेतदशुभं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् ।
फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा ॥₁₉॥

क्षत्रियेण वधो राजन्वानप्रस्थे विशेषतः ।
ज्ञानपूर्वं कृतः स्थानाच्यावयेदपि वज्रिणम् ॥₂₀॥

अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं तेनैव जीवसि ।

अपि ह्यद्य कुलं नस्याद्राघवाणां कुतो भवान् ॥₂₁॥

नय नौ नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत ।
अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनम् ॥₂₂॥

रुधिरेणावसिताङ्गं प्रकीर्णाजिनवाससम् ।
शयानं भुवि निःसंज्ञं धर्मराजवशं गतम् ॥₂₃॥

अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ ।
अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया ॥₂₄॥

तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ ।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चास्येदमब्रवीत् ॥₂₅॥

न न्वहं ते प्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिक ।
किं नु नालिङ्गसे पुत्र सुकुमार वचो वद ॥₂₆॥

कस्य वापररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयङ्गमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥₂₇॥

को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ॥₂₈॥

कन्दमूलफलं हृत्वा को मां प्रियमिवातिथिम् ।
भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ॥₂₉॥

इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम् ।
कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम् ॥₃₀॥

तिष्ठ मा मा गमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति ।
श्वो मया सह गन्तासि जनन्या च समेधितः ॥₃₁॥

उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने ।

क्षिप्रमेव गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ॥₃₂॥

ततो वैवस्वतं दृष्ट्वा तं प्रवक्ष्यामि भारतीम् ।
क्षमतां धर्मराजो मे बिभृयात्पितरावयम् ॥₃₃॥

अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा ।
तेन सत्येन गच्छाशु ये लोकाः शस्त्रयोधिनाम् ॥₃₄॥

यान्ति शूरा गतिं यां च सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
हतास्त्रभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ॥₃₅॥

यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः ।
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ॥₃₆॥

या गतिः सर्वसाधूनां स्वाध्यायात्पतसश्च या ।
भूमिदस्याहिताग्रेष्व एकपत्नीव्रतस्य च ॥₃₇॥

गोसहस्रप्रदातृणां या या गुरुभृतामपि ।
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ।
न हि तस्मिन्कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम् ॥₃₈॥

एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत् ।
ततोऽस्मै कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सह भार्यया ॥₃₉॥

स तु दिव्येन रूपेण मुनिपुत्रः स्वकर्मभिः ।
आश्वास्य च मुहूर्तं तु पितरौ वाक्यमब्रवीत् ॥₄₀॥

स्थानमस्मि महत्प्राप्तो भवतोः परिचारणात् ।
भवन्तावपि च क्षिप्रं मम मूलमुपैष्यतः ॥₄₁॥

एवमुक्त्वा तु दिव्येन विमानेन वपुष्मता ।
आरुरोह दिवं क्षिप्रं मुनिपुत्रो जितेन्द्रियः ॥₄₂॥

स कृत्वा तूदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया ।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥⁴³॥

अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा ।
यच्छरेणैकपुत्रं मां त्वमकार्षीरपुत्रकम् ॥⁴⁴॥

त्वया तु यदविज्ञानान्निहतो मे सुतः शुचिः ।
तेन त्वामभिषप्स्यामि सुदुःखमतिदारुणम् ॥⁴⁵॥

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम् ।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥⁴⁶॥

तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः ।
यदहं पुत्रशोकेन सन्त्यक्ष्याम्यद्य जीवितम् ॥⁴⁷॥

यदि मां संस्पृशेद्रामः सकृदद्यालभेत वा ।
न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् ॥⁴⁸॥

चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते ।
दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम् ॥⁴⁹॥

अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये ।
न हि पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्यमम् ॥⁵⁰॥

न ते मनुष्या देवास्ते ये चारुशुभकुण्डलम् ।
मुखं द्रक्ष्यन्ति रामस्य वर्षे पञ्चदशे पुनः ॥⁵¹॥

पद्मपत्रेक्षणं सुभ्रु सुदंष्ट्रं चारुनासिकम् ।
धन्या द्रक्ष्यन्ति रामस्य ताराधिपनिभं मुखम् ॥⁵²॥

सदृशं शारदस्येन्दोः फुल्लस्य कमलस्य च ।
सुगन्धि मम नाथस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति तन्मुखम् ॥⁵³॥

निवृत्तवनवासं तमयोध्यां पुनरागतम् ।
द्रक्ष्यन्ति सुखिनो रामं शुक्रं मार्गगतं यथा ॥⁵⁴॥

अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतनम् ।
संसादयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ॥⁵⁵॥

हा राघव महाबाहो हा ममायास नाशन ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ॥⁵⁶॥

तथा तु दीनं कथयन्नराधिपः
प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः ।
गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितः
तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ॥⁵⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

अथ रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरेवापरेऽहनि ।
बन्दिनः पर्युपातिष्ठंस्तत्पार्थिवनिवेशनम् ॥₁॥

ततः शुचिसमाचाराः पर्युपस्थान कोविदः ।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठा उपतस्थुर्यथापुरम् ॥₂॥

हरिचन्दनसम्पृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः ।
आनिन्युः स्नानशिक्षाज्ञा यथाकालं यथाविधि ॥₃॥

मङ्गलालम्बनीयानि प्राशनीयानुपस्करान् ।
उपनिन्युस्तथाप्यन्याः कुमारी बहुलाः स्त्रियः ॥₄॥

अथ याः कोसलेन्द्रस्य शयनं प्रत्यनन्तराः ।
ताः स्त्रियस्तु समागम्य भर्तारं प्रत्यबोधयन् ॥₅॥

ता वेपथुपरीताश्च राज्ञः प्राणेषु शङ्किताः ।
प्रतिस्रोतस्तृणाग्राणां सदृशं सञ्चकम्पिरे ॥₆॥

अथ संवेपमनानां स्त्रीणां दृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
यत्तदाशङ्कितं पापं तस्य जज्ञे विनिश्चयः ॥₇॥

ततः प्रचुक्रुशुर्दीनाः सस्वरं ता वराङ्गनाः ।
करेणव इवारण्ये स्थानप्रच्युतयूथपाः ॥₈॥

तासामाक्रन्द शब्देन सहसोद्गतचेतने ।
कौसल्या च सुमित्रा च त्यक्तनिद्रे बभूवतुः ॥₉॥

कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।

हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ॥₁₀॥

सा कोसलेन्द्रदुहिता वेष्टमाना महीतले ।
न बभ्राज रजोध्वस्ता तारेव गगनच्युता ॥₁₁॥

तत्समुत्तस्तसम्भ्रान्तं पर्युत्सुकजनाकुलम् ।
सर्वतस्तुमुलाक्रन्दं परितापार्तबान्धवम् ॥₁₂॥

सद्यो निपतितानन्दं दीनविक्लवदर्शनम् ।
बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥₁₃॥

अतीतमाज्ञाय तु पार्थिवर्षभम्
यशस्विनं सम्परिवार्य पत्नयः ।
भृशं रुदन्त्यः करुणं सुदुःखिताः
प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत् ॥₁₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्टितमः सर्गः॥

तमग्निमिव संशान्तमम्बुहीनमिवार्णवम् ।
हतप्रभमिवादित्यं स्वर्गं प्रेक्ष्य भूमिपम् ॥₁॥

कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधं शोककर्षिता ।
उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्यभाषत ॥₂॥

सकामा भव कैकेयि भुङ्क्व राज्यमकण्टकम् ।
त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि ॥₃॥

विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम ।
विपथे सार्धहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे ॥₄॥

भर्तारं तं परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः ।
इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः ॥₅॥

न लुब्धो बुध्यते दोषान्किं पाकमिव भक्षयन् ।
कुञ्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणान्कुलं हतम् ॥₆॥

अनियोगे नियुक्तेन राज्ञा रामं विवासितम् ।
सभार्यं जनकः श्रुत्वा पतितप्स्यत्यहं यथा ॥₇॥

रामः कमलपत्राक्षो जीवनाशमितो गतः ।
विदेहराजस्य सुता तहा सीता तपस्विनी ।
दुःखस्यानुचिता दुःखं वने पर्युद्विजिष्यति ॥₈॥

नदतां भीमघोषाणां निशासु मृगपक्षिणाम् ।
निशम्य नूनं संस्त्रस्ता राघवं संश्रयिष्यति ॥₉॥

वृद्धश्चैवाल्पपुत्रश्च वैदेहीमनिचिन्तयन् ।
सोऽपि शोकसमाविष्टो ननु त्यक्ष्यति जीवितम् ॥₁₀॥

तां ततः सम्परिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम् ।
व्यपनिन्युः सुदुःखार्ता कौसल्यां व्यावहारिकाः ॥₁₁॥

तैलद्रोण्यामथामात्याः संवेश्य जगतीपतिम् ।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् ॥₁₂॥

न तु सङ्कलनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः ।
सर्वज्ञाः कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् ॥₁₃॥

तैलद्रोण्यां तु सचिवैः शायितं तं नराधिपम् ।
हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ताः पर्यदेवयन् ॥₁₄॥

बाहूनुद्यम्य कृपणा नेत्रप्रस्रवणैर्मुखैः ।
रुदन्त्यः शोकसन्तप्ताः कृपणं पर्यदेवयन् ॥₁₅॥

निशानक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता ।
पुरी नाराजतायोध्या हीना राज्ञा महात्मना ॥₁₆॥

बाष्पपर्याकुलजना हाहाभूतकुलाङ्गना ।
शून्यचत्वरवेश्मान्ता न बभ्राज यथापुरम् ॥₁₇॥

गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विना
व्यपेतनक्षत्रगणेव शर्वरी ।
पुरी बभासे रहिता महात्मना
न चास्रकण्ठाकुलमार्गचत्वरा ॥₁₈॥

नराश्च नार्यश्च समेत्य सङ्घशो
विगर्हमाणा भरतस्य मातरम् ।
तदा नगर्यां नरदेवसङ्घये
बभूवुरार्ता न च शर्म लेभिरे ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः ।
समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥₁॥

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः ।
कात्ययनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ॥₂॥

एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन् ।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठो राजपुरोहितम् ॥₃॥

अतीता शर्वरी दुःखं या नो वर्षशतोपमा ।
अस्मिन्पञ्चत्वारिंशत्पुत्रशोकेन पार्थिवे ॥₄॥

स्वर्गतश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः ।
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह ॥₅॥

उभौ भरतशत्रुघ्नौ क्लेकयेषु परन्तपौ ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने ॥₆॥

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् ।
अराजकं हि नो राष्ट्रं न विनाशमवाप्नुयात् ॥₇॥

नाराजले जनपदे विद्युन्माली महास्वनः ।
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ॥₈॥

नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते ।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥₉॥

अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके ।

इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके ॥₁₀॥

नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नराः ।
उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च ॥₁₁॥

नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः ।
सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥₁₂॥

नाराजके जनपदे प्रभूतनटनर्तकाः ।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः ॥₁₃॥

नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः ।
कथाभिरनुरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः ॥₁₄॥

नाराजके जनपदे वाहनैः शीघ्रगामिभिः ।
नरा निर्यान्त्यरण्यानि नारीभिः सह कामिनः ॥₁₅॥

नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः ।
शेरते विवृत द्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः ॥₁₆॥

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः ।
गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपुण्यसमाचिताः ॥₁₇॥

नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी ।
भावयन्नात्मनात्मानं यत्रसायङ्गृहो मुनिः ॥₁₈॥

नाराजके जनपदे योगक्षेमं प्रवर्तते ।
न चाप्यराजके सेना शत्रून्विषहते युधि ॥₁₉॥

यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम् ।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥₂₀॥

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।

मत्स्या इव नरा नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥₂₁॥

येहि सम्भिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशयाः ।
तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिताः ॥₂₂॥

अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन ।
राजा चेन्न भवेँल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी ॥₂₃॥

जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम् ।
नातिक्रमामहे सर्वे वेलां प्राप्येव सागरः ॥₂₄॥

स नः समीक्ष्य द्विजवर्यवृत्तम्
नृपं विना राज्यमरण्यभूतम् ।
कुमारमिक्ष्वाकुसुतं वदान्यम्
त्वमेव राजानमिहाभिषिञ्चय ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
मित्रामात्यगणान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदं वचः ॥₁॥

यदसौ मातुलकुले पुरे राजगृहे सुखी ।
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन समन्वितः ॥₂॥

तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितैर्हयैः ।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम् ॥₃॥

गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन् ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥₄॥

एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन ।
श्रूयतामिति कर्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः ॥₅॥

पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः ।
त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम ॥₆॥

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥₇॥

मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम् ।
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामिमं क्षयम् ॥₈॥

कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च ।
क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत ।
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः सन्त्वरिता ययुः ॥₉॥

ते हस्तिन पुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखः ययुः ।
पाञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम् ॥₁₀॥

ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नानाविहगसेविताम् ।
उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जनाकुलाम् ॥₁₁॥

निकूलवृक्षमासाद्य दिव्यं सत्योपयाचनम् ।
अभिगम्याभिवाद्य तं कुलिङ्गां प्राविशन्पुरीम् ॥₁₂॥

अभिकालं ततः प्राप्य तेजोऽभिभवनाच्युताः ।
ययुर्मध्येन बाह्लीकान्सुदामानं च पर्वतम् ।
विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शात्मलीम् ॥₁₃॥

ते श्रान्तवाहना दूता विकृष्टेन सता पथा ।
गिरि व्रजं पुर वरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा ॥₁₄॥

भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थम्
भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम् ।
अहेडमानास्त्वरया स्म दूता
रात्र्यां तु ते तत्पुरमेव याताः ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

यामेव रात्रिं ते दूताः प्रविशन्ति स्म तां पुरीम् ।
भरतेनापि तां रात्रिं स्वप्नो दृष्टोऽयमप्रियः ॥₁॥

व्युष्टामेव तु तां रात्रिं दृष्ट्वा तं स्वप्नमप्रियम् ।
पुत्रो राजाधिराजस्य सुभृशं पर्यतप्यत ॥₂॥

तप्यमानं समाज्ञाय वयस्याः प्रियवादिनः ।
आयासं हि विनेष्यन्तः सभायां चक्रिरे कथाः ॥₃॥

वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे ।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ॥₄॥

स तैर्महात्मा भरतः सखिभिः प्रिय वादिभिः ।
गोष्ठीहास्यानि कुर्वद्भिर्न प्राहृष्यत राघवः ॥₅॥

तमब्रवीत्प्रियसखो भरतं सखिभिर्वृतम् ।
सुहृद्भिः पर्युपासीनः किं सखे नानुमोदसे ॥₆॥

एवं ब्रुवाणं सुहृदं भरतः प्रत्युवाच ह ।
शृणु त्वं यन्निमित्तम्मे दैन्यमेतदुपागतम् ॥₇॥

स्वप्ने पितरमद्राक्षं मलिनं मुक्तमूर्धजम् ।
पतन्तमद्रिशिखरात्कलुषे गोमये हृदे ॥₈॥

प्लवमानश्च मे दृष्टः स तस्मिन्गोमयहृदे ।
पिबन्नञ्जलिना तैलं हसन्निव मुहुर्मुहुः ॥₉॥

ततस्तिलोदनं भुक्त्वा पुनः पुनरधःशिराः ।

तैलेनाभ्यक्तसर्वाङ्गस्तैलमेवावगाहत ॥₁₀॥

स्वप्नेऽपि सागरं शुष्कं चन्द्रं च पतितं भुवि ।
सहसा चापि संशन्तं ज्वलितं जातवेदसम् ॥₁₁॥

अवदीर्णां च पृथिवीं शुष्कांश्च विविधान्द्रुमान् ।
अहं पश्यामि विध्वस्तान्सधूमांश्चैव पार्वतान् ॥₁₂॥

पीठे कार्ष्णायसे चैनं निषण्णं कृष्णवाससम् ।
प्रहसन्ति स्म राजानं प्रमदाः कृष्णपिङ्गलाः ॥₁₃॥

त्वरमाणश्च धर्मात्मा रक्तमाल्यानुलेपनः ।
रथेन खरयुक्तेन प्रयातो दक्षिणामुखः ॥₁₄॥

एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम् ।
अहं रामोऽथ वा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति ॥₁₅॥

नरो यानेन यः स्वप्ने खरयुक्तेन याति हि ।
अचिरात्तस्य धूमाग्रं चितायां सम्प्रदृश्यते ।
एतन्निमित्तं दीनोऽहं तन्न वः प्रतिपूजये ॥₁₆॥

शुष्यतीव च मे कण्ठो न स्वस्थमिव मे मनः ।
जुगुप्सन्निव चात्मानं न च पश्यामि कारणम् ॥₁₇॥

इमां हि दुःस्वप्नगतिं निशाम्य ताम्
अनेकरूपामवितर्कितां पुरा ।
भयं महत्तद्धृदयान्न याति मे
विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

भरते ब्रुवति स्वप्नं दूतास्ते क्लान्तवाहनाः ।
प्रविश्यासह्यपरिखं रम्यं राजगृहं पुरम् ॥₁॥

समागम्य तु राज्ञा च राजपुत्रेण चार्चिताः ।
राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु तमूचुर्भरतं वचः ॥₂॥

पुरोहितस्त्वा कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥₃॥

अत्र विंशतिकोट्यस्तु नृपतेर्मातुलस्य ते ।
दशकोट्यस्तु सम्पूर्णास्तथैव च नृपात्मज ॥₄॥

प्रतिगृह्य च तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृञ्जने ।
दूतानुवाच भरतः कामैः सम्प्रतिपूज्य तान् ॥₅॥

कच्चित्सुकुशली राजा पिता दशरथो मम ।
कच्चिच्चारगता रामे लक्ष्मणे वा महात्मनि ॥₆॥

आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ।
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः ॥₇॥

कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या ।
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य सारोगा चापि मध्यमा ॥₈॥

आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी ।
अरोगा चापि कैकेयी माता मे किमुवाच ह ॥₉॥

एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना ।

ऊचुः सम्प्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा ।
कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि ॥₁₀॥

भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत ।
आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः सन्त्वरयन्ति माम् ॥₁₁॥

एवमुक्त्वा तु तान्दूतान्भरतः पार्थिवात्मजः ।
दूतैः सन्धोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह ॥₁₂॥

राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः ।
पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि ॥₁₃॥

भरतेनैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा ।
तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम् ॥₁₄॥

गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया ।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परन्तप ॥₁₅॥

पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः ।
तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरु रामलक्ष्मणौ ॥₁₆॥

तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलानजिनानि च ।
अभिसत्कृत्य कैकेयो भरताय धनं ददौ ॥₁₇॥

रुक्म निष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्चशतानि च ।
सत्कृत्य कैकेयी पुत्रं कैकेयो धनमादिशत् ॥₁₈॥

तथामात्यानभिप्रेतान्विश्वास्यांश्च गुणान्वितान् ।
ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः ॥₁₉॥

ऐरावतानैन्द्रशिरान्नागान्वै प्रियदर्शनान् ।
खराञ्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽस्मै धनं ददौ ॥₂₀॥

अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्यबलान्वितान् ।
दंष्ट्रायुधान्महाकायाञ्छुनश्चोपायनं ददौ ॥₂₁॥

स मातामहमापृच्छ मातुलं च युधाजितम् ।
रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥₂₂॥

रथान्मण्डलचक्रांश्च योजयित्वा परःशतम् ।
उष्ट्रगोऽश्वखरैर्भृत्या भरतं यान्तमन्वयुः ॥₂₃॥

बलेन गुप्तो भरतो महात्मा
सहार्यकस्यात्मसमैरमात्यैः ।
आदाय शत्रुघ्नमपेतशत्रुर्-
गृहाद्ययौ सिद्ध इवेन्द्रलोकात् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्वाय वीर्यवान् ।
ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरङ्गिणीम् ।
शतद्रूमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥₁॥

एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वटान् ।
शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्तनम् ॥₂॥

सत्यसन्धः शुचिः श्रीमान्प्रेक्षमाणः शिलावहाम् ।
अत्ययात्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति ॥₃॥

वेगिनीं च कुलिङ्गाख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम् ।
यमुनां प्राप्य सन्तीर्णो बलमाश्वासयत्तदा ॥₄॥

शीतीकृत्य तु गात्राणि क्लान्तानाश्वास्य वाजिनः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायादादाय चोदकम् ॥₅॥

राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम् ।
भद्रो भद्रेण यानेन मारुतः खमिवात्ययात् ॥₆॥

तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थमुपागमत् ।
वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः ॥₇॥

तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ ।
उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः ॥₈॥

सालांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः ।
अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं बरितो ययौ ॥₉॥

वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तानकां नदीम् ।
अन्या नदीश्च विविधाः पार्वतीयैस्तुरङ्गमैः ॥₁₀॥

हस्तिपृष्ठकमासाद्य कुटिकामत्यवर्तत ।
ततार च नरव्याघ्रो लौहित्ये स कपीवतीम् ।
एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीं नदीम् ॥₁₁॥

कलिङ्ग नगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा ।
भरतः क्षिप्रमागच्छत्सुपरिश्रान्तवाहनः ॥₁₂॥

वनं च समतीत्याशु शर्वर्यामरुणोदये ।
अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह ॥₁₃॥

तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषिटः पथि ।
अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा रथे सारथिमब्रवीत् ॥₁₄॥

एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी ।
अयोध्या दृश्यते दूरात्सारथे पाण्डुमृत्तिका ॥₁₅॥

यज्वभिर्गुणसम्पन्नैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
भूयिष्ठमृष्टैराकीर्णा राजर्षिवरपालिता ॥₁₆॥

अयोध्यायां पुराशब्दः श्रूयते तुमुलो महान् ।
समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम् ॥₁₇॥

उद्यानानि हि सायाह्ने क्रीडिबोपरतैर्नरैः ।
समन्ताद्विप्रधावद्भिः प्रकाशन्ते ममान्यदा ॥₁₈॥

तान्यद्यानुरुदन्तीव परित्यक्तानि कामिभिः ।
अरण्यभूतेव पुरी सारथे प्रतिभाति मे ॥₁₉॥

न ह्यत्र यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः ।
निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथापुरम् ॥₂₀॥

अनिष्टानि च पापानि पश्यामि विविधानि च ।
निमित्तान्यमनोज्ञानि तेन सीदति ते मनः ॥₂₁॥

द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः ।
द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्टस्तेः सहितो ययौ ॥₂₂॥

स बनेकाग्रहृदयो द्वाःस्थं प्रत्यर्च्य तं जनम् ।
सूतमश्वपतेः क्लान्तमब्रवीत्तत्र राघवः ॥₂₃॥

श्रुता नो यादृशाः पूर्वं नृपतीनां विनाशने ।
आकारास्तानहं सर्वानिह पश्यामि सारथे ॥₂₄॥

मलिनं चाश्रुपूर्णाक्षं दीनं ध्यानपरं कृशम् ।
सस्त्री पुंसं च पश्यामि जनमुत्कण्ठितं पुरे ॥₂₅॥

इत्येवमुक्त्वा भरतः सूतं तं दीनमानसः ।
तान्यनिष्टान्ययोध्यायां प्रेक्ष्य राजगृहं ययौ ॥₂₆॥

तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्याम्
रजोऽरुणद्वारकपाटयन्त्राम् ।
दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरी प्रकाशाम्
दुःखेन सम्पूर्णतरो बभूव ॥₂₇॥

बहूनि पश्यन्मनसोऽप्रियाणि
यान्यन्यदा नास्य पुरे बभूवुः ।
अवाक्शिरा दीनमना नहृष्टः
पितुर्महात्मा प्रविवेश वेष्म ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चषष्ठितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये ।
जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये ॥₁॥

अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी प्रोषितं सुतम् ।
उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमानसम् ॥₂॥

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम् ।
भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ॥₃॥

तं मूर्ध्नि समुपाधाय परिष्वज्य यशस्विनम् ।
अङ्गे भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥₄॥

अद्य ते कतिचिद्रात्र्यश्नुतस्यार्यकवेश्मनः ।
अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव ॥₅॥

आर्यकस्ते सुकुशलो युधाजिन्मातुलस्तव ।
प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि ॥₆॥

एवं पृष्ठस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः ।
आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः ॥₇॥

अद्य मे सप्तमी रात्रिश्नुतस्यार्यकवेश्मनः ।
अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे ॥₈॥

यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परन्तपः ।
परिश्रान्तं पथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः ॥₉॥

राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः ।

यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बा वक्तुमर्हसि ॥₁₀॥

शून्योऽयं शयनीयस्ते पर्यङ्को हेमभूषितः ।
न चायमिक्ष्वाकुजनः प्रहृष्टः प्रतिभाति मे ॥₁₁॥

राजा भवति भूयिष्कमिहाम्बाया निवेशने ।
तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः ॥₁₂॥

पितुर्ग्रहीष्ये चरणौ तं ममाख्याहि पृच्छतः ।
आहोस्त्रिदम्ब ज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने ॥₁₃॥

तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद्धोरमप्रियम् ।
अजानन्तं प्रजानन्ती राज्यलोभेन मोहिता ।
या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः ॥₁₄॥

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं धर्माभिजनवाञ्छुचिः ।
पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः ॥₁₅॥

ततः शोकेन संवीतः पितुर्मरणदुःखितः ।
विललाप महातेजा भ्रान्ताकुलितचेतनः ॥₁₆॥

एतत्सुरुचिरं भाति पितुर्मे शयनं पुरा ।
तदिदं न विभात्यद्य विहीनं तेन धीमता ॥₁₇॥

तमार्तं देवसङ्काशं समीक्ष्य पतितं भुवि ।
उत्थापयित्वा शोकार्तं वचनं चेदमब्रवीत् ॥₁₈॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे राजपुत्र महायशः ।
बद्धिधा न हि शोचन्ति सन्तः सदसि सम्मताः ॥₁₉॥

स रुदत्या चिरं कालं भूमौ विपरिवृत्य च ।
जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृतः ॥₂₀॥

अभिपेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यति ।
इत्यहं कृतसङ्कल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम् ॥₂₁॥

तदिदं ह्यन्यथा भूतं व्यवदीर्णं मनो मम ।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥₂₂॥

अम्ब केनात्यगाद्राजा व्याधिना मय्यनागते ।
धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतः स्वयम् ॥₂₃॥

न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान् ।
उपजिघ्रेद्धि मां मूर्ध्नि तातः संनम्य सबरम् ॥₂₄॥

क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः ।
येन मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥₂₅॥

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि धीमतः ।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्ट कर्मणः ॥₂₆॥

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥₂₇॥

आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ।
पश्चिमं साधुसन्देशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः ॥₂₈॥

इति पृष्टा यथातच्चं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ।
रामेति राजा विलपन्हा सीते लक्ष्मणेति च ।
स महात्मा परं लोकं गतो गतिमतां वरः ॥₂₉॥

इमां तु पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव ।
काल धर्मपरिक्षितः पाशैरिव महागजः ॥₃₀॥

सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सीतया सह ।
लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥₃₁॥

तच्छ्रुत्वा विषसादैव द्वितीया प्रियशंसनात् ।
विषण्णवदनो भूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम् ॥³²॥

क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समं गतः ॥³³॥

तथा पृष्टा यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ।
मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशङ्कया ॥³⁴॥

स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम् ।
दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ॥³⁵॥

तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया ।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥³⁶॥

कच्चिन्न ब्राह्मणवधं हृतं रामेण कस्यचित् ।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ॥³⁷॥

कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते ।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्रूणहेव विवासितः ॥³⁸॥

अथास्य चपला माता तत्स्वकर्म यथातथम् ।
तेनैव स्त्रीस्वभावेन व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥³⁹॥

न ब्राह्मण धनं किञ्चिद्धृतं रामेण कस्यचित् ।
कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ।
न रामः परदारांश्च चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ॥⁴⁰॥

मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्यैवाभिषेचनम् ।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम् ॥⁴¹॥

स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत् ।
रामश्च सहसौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया ॥⁴²॥

तमपश्यन्प्रियं पुत्रं महीपालो महायशाः ।
पुत्रशोकपरिदूनः पञ्चत्वमुपपेदिवान् ॥₄₃॥

त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम् ।
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम् ॥₄₄॥

तत्पुत्र शीघ्रं विधिना विधिज्ञैर्-
वसिष्ठमुख्यैः सहितो द्विजेन्द्रैः ।
सङ्काल्य राजानमदीनसत्त्वम्
आत्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व ॥₄₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

॥सप्तषष्टितमः सर्गः॥

श्रुत्वा तु पितरं वृत्तं भ्रातरु च विवासितौ ।
भरतो दुःखसन्तप्त इदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

किं नुष्कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ॥₂॥

दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवादधाः ।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ॥₃॥

कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता ।
अङ्गारमुपगूह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ॥₄॥

कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीडिते ।
दुष्करं यदि जीवेतां प्राप्य त्वां जननीं मम ॥₅॥

ननु त्वार्योऽपि धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम् ।
वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते ॥₆॥

तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी ।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते ॥₇॥

तस्याः पुत्रं कृतात्मानं चीरवल्कलवाससम् ।
प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसि ॥₈॥

अपापदर्शिनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम् ।
प्रव्राज्य चीरवसनं किं नु पश्यसि कारणम् ॥₉॥

लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं प्रति ।

तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं ब्रूया नीतो महानयम् ॥₁₀॥

अहं हि पुरुषव्याघ्रावपथ्यन्नामलक्ष्मणौ ।
केन शक्तिप्रभावेन राज्यं रक्षितुमुत्सहे ॥₁₁॥

तं हि नित्यं महाराजो बलवन्तं महाबलः ।
अपाश्रितोऽभूद्धर्मात्मा मेरुर्मैरुवनं यथा ॥₁₂॥

सोऽहं कथमिमं भारं महाधुर्यसमुद्यतम् ।
दम्यो धुरमिवासाद्य सहेयं केन चौजसा ॥₁₃॥

अथ वा मे भवेच्छक्तियोगैर्बुद्धिबलेन वा ।
सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्धिनीम् ।
निवर्तयिष्यामि वनाद्भातरं स्वजनप्रियम् ॥₁₄॥

इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा
प्रियेतरेर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम् ।
शोकातुरश्चापि ननाद भूयः
सिंहो यथा पर्वतगह्वरस्थः ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तषष्ठितमः सर्गः॥

॥अष्टषष्टितमः सर्गः॥

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा ।
रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥₁॥

राज्याद्भ्रंशस्तु कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि ।
परित्यक्ता च धर्मेण मा मृतं रुदती भव ॥₂॥

किं नु तेऽदूषयद्राजा रामो वा भृशधार्मिकः ।
ययोर्मृत्युर्विवासश्च बलकृते तुल्यमागतौ ॥₃॥

भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात् ।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च भर्तुः सलोकताम् ॥₄॥

यत्त्वया हीदृशं पापं कृतं घोरेण कर्मणा ।
सर्वलोकप्रियं हि त्वा ममाप्यापादितं भयम् ॥₅॥

बलकृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः ।
अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः ॥₆॥

मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके ।
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि ॥₇॥

कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या मम मातरः ।
दुःखेन महताविष्टास्त्वां प्राप्य कुलदूषिणीम् ॥₈॥

न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः ।
राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः ॥₉॥

यत्त्वया धार्मिको रामो नित्यं सत्यपरायणः ।

वनं प्रस्थापितो दुःखात्पिता च त्रिदिवं गतः ॥₁₀॥

यत्प्रधानासि तत्पापं मयि पित्रा विनाकृते ।
भ्रातृभ्यां च परित्यक्ते सर्वलोकस्य चाप्रिये ॥₁₁॥

कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये ।
कृत्वा कं प्राप्स्यसे त्वद्य लोकं निरयगामिनी ॥₁₂॥

किं नावबुध्यसे क्रूरे नियतं बन्धुसंश्रयम् ।
ज्येष्ठं पितृसमं रामं कौसल्यायात्मसम्भवम् ॥₁₃॥

अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चापि जायते ।
तस्मात्प्रियतरो मातुः प्रियत्वान्न तु बान्धवः ॥₁₄॥

अन्यदा किल धर्मज्ञा सुरभिः सुरसम्मता ।
वहमानो ददर्शोर्व्यां पुत्रो विगतचेतसौ ॥₁₅॥

तावर्धदिवसे श्रान्तौ दृष्ट्वा पुत्रौ महीतले ।
रुरोद पुत्र शोकेन बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥₁₆॥

अधस्ताद्व्रजतस्तस्याः सुरराज्ञो महात्मनः ।
बिन्दवः पतिता गात्रे सूक्ष्माः सुरभिगन्धिनः ॥₁₇॥

तां दृष्ट्वा शोकसन्तप्तां वज्रपाणिर्यशस्विनीम् ।
इन्द्रः प्राञ्जलिरुद्विग्नः सुरराजोऽब्रवीद्वचः ॥₁₈॥

भयं कच्चिन्न चास्मासु कुतश्चिद्विद्यते महत् ।
कुतो निमित्तः शोकस्ते ब्रूहि सर्वहितैषिणि ॥₁₉॥

एवमुक्ता तु सुरभिः सुरराजेन धीमता ।
पत्युवाच ततो धीरा वाक्यं वाक्यविशारदा ॥₂₀॥

शान्तं पातं न वः किञ्चित्कुतश्चिदमराधिप ।

अहं तु मग्नौ शोचामि स्वपुत्रौ विषमे स्थितौ ॥₂₁॥

एतौ दृष्ट्वा कृषौ दीनौ सूर्यरश्मिप्रतापिनौ ।
वध्यमानौ बलीवर्दौ कर्षकेण सुराधिप ॥₂₂॥

मम कायात्प्रसूतौ हि दुःखितौ भार पीडितौ ।
यौ दृष्ट्वा परितप्येऽहं नास्ति पुत्रसमः प्रियः ॥₂₃॥

यस्याः पुत्र सहस्राणि सापि शोचति कामधुक् ।
किं पुनर्या विना रामं कौसल्या वर्तयिष्यति ॥₂₄॥

एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं ब्रया कृता ।
तस्माच्च सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे ॥₂₅॥

अहं ह्यपचितिं भ्रातुः पितुश्च सकलामिमाम् ।
वर्धनं यशसश्चापि करिष्यामि न संशयः ॥₂₆॥

आनाययित्वा तनयं कौसल्याया महाद्युतिम् ।
स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम् ॥₂₇॥

इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशचोदितः ।
पपात भुवि सङ्क्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥₂₈॥

संरक्तनेत्रः शिथिलाम्बरस्तदा
विधूतसर्वाभरणः परन्तपः ।
बभूव भूमौ पतितो नृपात्मजः
शचीपतेः केतुरिवोत्सवक्षये ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः॥

॥एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः ।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रामिदमब्रवीत् ॥₁॥

आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥₂॥

एवमुक्त्वा सुमित्रां सा विवर्णा मलिनाम्बरा ।
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना ॥₃॥

स तु रामानुजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा ।
प्रतस्थे भरतो यत्र कौसल्याया निवेशनम् ॥₄॥

ततः शत्रुघ्न भरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ ।
पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम् ॥₅॥

भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ।
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥₆॥

प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥₇॥

क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ।
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ॥₈॥

अथ वा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् ।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः ॥₉॥

कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि ।
यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्यते मे तपः सुतः ॥₁₀॥

इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् ।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥₁₁॥

एवं विलपमानां तां भरतः प्राञ्जलिस्तदा ।
कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् ॥₁₂॥

आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकिद्विषम् ।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थिरां जानासि राघवे ॥₁₃॥

कृता शास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूतस्य कदाचन ।
सत्यसन्धः सतां श्रेष्ठो यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₁₄॥

प्रेष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु ।
हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₁₅॥

कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₁₆॥

परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् ।
ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₁₇॥

बलिषद्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षतः प्रजाः ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₁₈॥

संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञदक्षिणाम् ।
तां विप्रलपतां पापं यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₁₉॥

हस्त्यश्वरथसम्बाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले ।
मा स्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₀॥

उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता ।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₁॥

पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः ।
गुरुंश्चाप्यवजानातु यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₂॥

पुत्रैदरिश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः ।
स एको मृष्टमश्नातु यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₃॥

राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते ।
भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥₂₄॥

उभे सन्ध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते ।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₅॥

यदग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे ।
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥₂₆॥

देवतानां पितृणां च माता पित्रोस्तथैव च ।
मा स्म कार्षीत्स शुश्रूषां यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₇॥

सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सञ्जुष्टात्कर्मणस्तथा ।
भ्रश्यतु क्षिप्रमद्वैव यस्मार्योऽनुमते गतः ॥₂₈॥

विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ।
एवमाश्वसयन्नेव दुःखार्तो निपपात ह ॥₂₉॥

तथा तु शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् ।
भरतं शोकसन्तप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥₃₀॥

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥₃₁॥

दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्ष्मणः ।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो मे सतां लोकानवाप्स्यसि ॥₃₂॥

एवं विलपमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः ।
मोहाच्च शोकसंरोधाद्भूव लुलितं मनः ॥₃₃॥

लालप्यमानस्य विचेतनस्य
प्रनष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ ।
मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घम्
सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्ततितमः सर्गः॥

तमेवं शोकसन्तप्तं भरतं केकयीसुतम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः ॥₁॥

अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तरम् ॥₂॥

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धारणां गतः ।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि कारयामास धर्मवित् ॥₃॥

उद्धृतं तैलसङ्केदात्स तु भूमौ निवेशितम् ।
आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम् ॥₄॥

निवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते ।
ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः ॥₅॥

किं ते व्यवसितं राजन्प्रोषिते मय्यनागते ।
विवास्य रामं धर्मज्ञं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥₆॥

क्व यास्यसि महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् ।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥₇॥

योगक्षेमं तु ते राजन्कोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे ।
त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामे च वनमाश्रिते ॥₈॥

विधवा पृथिवी राजंस्त्वया हीना न राजते ।
हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभाति माम् ॥₉॥

एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् ।

अब्रवीद्वचनं भूयो वसिष्ठस्तु महानृषिः ॥₁₀॥

प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशाम्पतेः ।
तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम् ॥₁₁॥

तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यास्त्वरयामास सर्वशः ॥₁₂॥

ये त्वग्रतो नरेन्द्रस्य अग्न्यगाराद्वहिष्कृताः ।
ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव ते हियन्ते यथाविधि ॥₁₃॥

शिविलायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् ।
बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूहुः परिचारकाः ॥₁₄॥

हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च ।
प्रकिरन्तो जना मार्गं नृपतेरग्रतो ययुः ॥₁₅॥

चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा ।
देवदारूणि चाहृत्य चितां चक्रुस्तथापरे ॥₁₆॥

गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र दत्त्वाथ भूमिपम् ।
ततः संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः ॥₁₇॥

तथा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः ।
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः ॥₁₈॥

शिविकाभिश्च यानैश्च यथार्हं तस्य योषितः ।
नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तदा ॥₁₉॥

प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम् ।
स्त्रियश्च शोकसन्तप्ताः कौसल्या प्रमुखास्तदा ॥₂₀॥

क्रौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे ।

आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः ॥₂₁॥

ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः ।
यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्वराङ्गनाः ॥₂₂॥

कृतोदकं ते भरतेन सार्धम्
नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च ।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा
भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्ततितमः सर्गः॥

॥एकसप्ततितमः सर्गः॥

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः ।
द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥₁॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ रत्नं धनमन्नं च पुष्कलम् ।
बास्तिकं बहुशुक्लं च गाश्चापि शतशस्तथा ॥₂॥

दासीदासं च यानं च वेश्मानि सुमहान्ति च ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुत्रो राज्ञस्तस्योर्ध्वदैहिकम् ॥₃॥

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ त्रयोदशे ।
विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्छितः ॥₄॥

शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः ।
चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः ॥₅॥

तात यस्मिन्निषृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे ।
तस्मिन्वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥₆॥

यथागतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तामम्बां तात कौसल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप ॥₇॥

दृष्ट्वा भस्मारुणं तच्च दग्धास्थिस्थानमण्डलम् ।
पितुः शरीर निर्वाणं निष्टनन्विषसाद ह ॥₈॥

स तु दृष्ट्वा रुदन्दीनः पपात धरणीतले ।
उत्थाप्यमानः शक्रस्य यन्त्र ध्वज इव च्युतः ॥₉॥

अभिपेतुस्ततः सर्वे तस्यामात्याः शुचिव्रतम् ।

अन्तकाले निपतितं ययातिमृषयो यथा ॥₁₀॥

शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम् ।
विसंज्ञो न्यपतद्भूमौ भूमिपालमनुस्मरन् ॥₁₁॥

उन्मत्त इव निश्चेता विललाप सुदुःखितः ।
स्मृत्वा पितुर्गुणाङ्गानि तानि तानि तदा तदा ॥₁₂॥

मन्थरा प्रभवस्तीव्रः कैकेयीग्राहसङ्कुलः ।
वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमञ्जयच्छोकसागरः ॥₁₃॥

सुकुमारं च बालं च सततं लालितं ब्रूया ।
क्व तात भरतं हिवा विलपन्तं गतो भवान् ॥₁₄॥

ननु भोज्येषु पानेषु वस्त्रेष्वभरणेषु च ।
प्रवारयसि नः सर्वास्तन्नः कोऽद्य करिष्यति ॥₁₅॥

अवदारण काले तु पृथिवी नावदीर्यते ।
विहीना या ब्रूया राज्ञा धर्मज्ञेन महात्मना ॥₁₆॥

पितरि स्वर्गमापन्ने रामे चारण्यमाश्रिते ।
किं मे जीवितं सामर्थ्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥₁₇॥

हीनो भ्रात्रा च पित्रा च शून्यामिक्ष्वाकुपालिताम् ।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि तपोवनम् ॥₁₈॥

तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चान्ववेक्ष्य तत् ।
भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवानुगामिनः ॥₁₉॥

ततो विषण्णो श्रान्तो च शत्रुघ्न भरतावुभौ ।
धरण्यां संव्यचेष्टेतां भग्नशृङ्गाविवर्षभौ ॥₂₀॥

ततः प्रकृतिमान्वेद्यः पितुरेषां पुरोहितः ।

वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह ॥₂₁॥

त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः ।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हति ॥₂₂॥

सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च ।
श्रावयामास तच्चज्ञः सर्वभूतभवाभवौ ॥₂₃॥

उत्थितौ तौ नरव्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ ।
वर्षातपपरिक्लिन्नौ पृथगिन्द्रध्वजाविव ॥₂₄॥

अश्रूणि परिमृद्रन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ ।
अमात्यास्त्वरयन्ति स्म तनयौ चापराः क्रियाः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः॥

॥द्विसप्ततितमः सर्गः॥

अत्र यात्रां समीहन्तं शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः ।
भरतं शोकसन्तप्तमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः ।
स रामः सत्त्व सम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम् ॥₂॥

बलवान्वीर्य सम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम् ॥₃॥

पूर्वमेव तु निग्राह्यः समवेक्ष्य नयानयौ ।
उत्पथं यः समारूढो नार्या राजा वशं गतः ॥₄॥

इति सम्भाषमाणे तु शत्रुघ्ने लक्ष्मणानुजे ।
प्राग्द्वारेऽभूत्तदा कुञ्जा सर्वाभरणभूषिता ॥₅॥

लिप्ता चन्दनसारेण राजवस्त्राणि बिभ्रती ।
मेखला दामभिश्चित्रै रञ्जुबद्धेव वानरी ॥₆॥

तां समीक्ष्य तदा द्वाःस्थो भृशं पापस्य कारिणीम् ।
गृहीत्वाकरुणं कुञ्जां शत्रुघ्नाय न्यवेदयत् ॥₇॥

यस्याः कृते वने रामो न्यस्तदेहश्च वः पिता ।
सेयं पापा नृशंसा च तस्याः कुरु यथामति ॥₈॥

शत्रुघ्नश्च तदाज्ञाय वचनं भृशदुःखितः ।
अन्तःपुरचरान्सर्वानित्युवाच धृतव्रतः ॥₉॥

तीव्रमुत्पादितं दुःखं भ्रातॄणां मे तथा पितुः ।

यया सेयं नृशंसस्य कर्मणः फलमश्नुताम् ॥₁₀॥

एवमुक्ता च तेनाशु सखी जनसमावृता ।
गृहीता बलवत्कुञ्जा सा तद्ब्रह्मनादयत् ॥₁₁॥

ततः सुभृश सन्तप्तस्तस्याः सर्वः सखीजनः ।
क्रुद्धमाज्ञाय शत्रुघ्नं व्यपलायत सर्वशः ॥₁₂॥

अमन्त्रयत कृत्स्नश्च तस्याः सर्वसखीजनः ।
यथायं समुपक्रान्तो निःशेषं नः करिष्यति ॥₁₃॥

सानुक्रोशां वदान्यां च धर्मज्ञां च यशस्विनीम् ।
कौसल्यां शरणं यामः सा हि नोऽस्तु ध्रुवा गतिः ॥₁₄॥

स च रोषेण ताम्राक्षः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ।
विचकर्ष तदा कुञ्जां क्रोशन्तीं पृथिवीतले ॥₁₅॥

तस्या ह्याकृष्यमाणाया मन्थरायास्ततस्ततः ।
चित्रं बहुविधं भाण्डं पृथिव्यां तद्वशीर्यत ॥₁₆॥

तेन भाण्डेन सङ्कीर्णं श्रीमद्राजनिवेशनम् ।
अशोभत तदा भूयः शारदं गगनं यथा ॥₁₇॥

स बली बलवत्क्रोधाद्गृहीत्वा पुरुषर्षभः ।
कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य बभाषे परुषं वचः ॥₁₈॥

तैर्वाक्यैः परुषैर्दुःखैः कैकेयी भृशदुःखिता ।
शत्रुघ्नं भयसन्तस्ता पुत्रं शरणमागता ॥₁₉॥

तां प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ॥₂₀॥

हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।

यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥₂₁॥

इमामपि हतां कुङ्गां यदि जानाति राघवः ।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् ॥₂₂॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः ।
न्यवर्तत ततो रोषात्तां मुमोच च मन्थराम् ॥₂₃॥

सा पादमूले कैकेय्या मन्थरा निपपात ह ।
निःश्वसन्ती सुदुःखार्ता कृपणं विललाप च ॥₂₄॥

शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञाम्
समीक्ष्य कुङ्गां भरतस्य माता ।
शनैः समाश्वासयदार्तरूपाम्
क्रौर्धीं विलग्नमिव वीक्षमाणाम् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः॥

॥त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे ।
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥₁॥

गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः ।
रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥₂॥

त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः ।
सङ्गत्या नापराधोति राज्यमेतदनायकम् ॥₃॥

आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव ।
प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥₄॥

राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं महत् ।
अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान्नरर्षभ ॥₅॥

आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम् ।
भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥₆॥

ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः ।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥₇॥

रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः ।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥₈॥

युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला ।
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥₉॥

आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् ।

पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ॥₁₀॥

तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम् ।
आनेष्यामि तु वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ॥₁₁॥

न सकामा करिष्यामि स्वमिमां मातृगन्धिनीम् ।
वने वत्स्याम्यहं दुर्गे रामो राजा भविष्यति ॥₁₂॥

क्रियतां शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च ।
रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः ॥₁₃॥

एवं सम्भाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम् ।
प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् ॥₁₄॥

एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरूपतिष्ठताम् ।
यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥₁₅॥

अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मज
प्रभाषितं संश्रवणे निशम्य च ।
प्रहर्षजास्तं प्रति बाष्पबिन्दवो
निपेतुरार्यानननेत्रसम्भवाः ॥₁₆॥

ऊचुस्ते वचनमिदं निशम्य हृष्टाः
सामात्याः सपरिषदो वियातशोकाः ।
पन्थानं नरवरभक्तिमाञ्जनश्च
व्यादिष्टस्तव वचनाच्च शिल्पिवर्गः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

॥चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः ।
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा ॥₁॥

कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः ।
तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः ॥₂॥

कूपकाराः सुधाकारा वंशकर्मकृतस्तथा ।
समर्था ये च द्रष्टारः पुरतस्ते प्रतस्थिरे ॥₃॥

स तु हर्षान्तमुद्देशं जनौघो विपुलः प्रयान् ।
अशोभत महावेगः सागरस्येव पर्वणि ॥₄॥

ते स्ववारं समास्थाय वर्त्मकर्माणि कोविदाः ।
करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्सम्प्रतस्थिरे ॥₅॥

लतावल्लीश्च गुल्मांश्च स्थाणूनश्मन एव च ।
जनास्ते चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान् ॥₆॥

अवृक्षेषु च देशेषु केचिद्वृक्षानरोपयन् ।
केचित्कुठारैष्टङ्कैश्च दात्रैश्छिन्दन्क्वचित्क्वचित् ॥₇॥

अपरे वीरणस्तम्बान्बलिनो बलवत्तराः ।
विधमन्ति स्म दुर्गाणि स्थलानि च ततस्ततः ॥₈॥

अपरेऽपूरयन्कूपान्यांसुभिः श्वभ्रमायतम् ।
निम्नभागांस्तथा केचित्समांश्चक्रुः समन्ततः ॥₉॥

बबन्धुर्बन्धनीयांश्च क्षोद्यान्सञ्चुक्षुदुस्तदा ।

बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान्देशान्नरास्तदा ॥₁₀॥

अचिरेणैव कालेन परिवाहान्बहूदकान् ।
चक्रुर्बहुविधाकारान्सागरप्रतिमान्बहून् ।
उदपानान्बहुविधान्वेदिका परिमण्डितान् ॥₁₁॥

ससुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः ।
मत्तोद्धुष्टद्विजगणः पताकाभिरलङ्कृतः ॥₁₂॥

चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः ।
बह्वशोभत सेनायाः पन्थाः स्वर्गपथोपमः ॥₁₃॥

आज्ञाप्याथ यथाज्ञप्ति युक्तास्तेऽधिकृता नराः ।
रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादुफलेषु च ॥₁₄॥

यो निवेशस्त्रभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः ।
भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् ॥₁₅॥

नक्षत्रेषु प्रशस्तेषु मुहूर्तेषु च तद्विदः ।
निवेशं स्थापयामासुर्भरतस्य महात्मनः ॥₁₆॥

बहुपांसुचयाश्चापि परिखापरिवारिताः ।
तत्रेन्द्रकीलप्रतिमाः प्रतोलीवरशोभिताः ॥₁₇॥

प्रासादमालासंयुक्ताः सौधप्राकारसंवृताः ।
पताका शोभिताः सर्वे सुनिर्मितमहापथाः ॥₁₈॥

विसर्पन्निरिवाकाशे विटङ्काग्रविमानकैः ।
समुच्छ्रितैर्निवेशास्ते बभुः शक्रपुरोपमाः ॥₁₉॥

जाह्नवीं तु समासाद्य विविधद्रुम काननाम् ।
शीतलामलपानीयां महामीनसमाकुलाम् ॥₂₀॥

सचन्द्रतारागणमण्डितं यथा
नभःक्षपायाममलं विराजते ।
नरेन्द्रमार्गः स तथा व्यराजत
क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

॥पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

ततो नान्दीमुखीं रात्रिं भरतं सूतमागधाः ।
तुष्टुवुर्वाग्विशेषज्ञाः स्तवैर्मङ्गलसंहितैः ॥₁॥

सुवर्णकोणाभिहतः प्राणदद्यामदुन्दुभिः ।
दध्मुः शङ्खांश्च शतशो वाद्यांश्चोच्चावचस्वरान् ॥₂॥

स तूर्य घोषः सुमहान्दिवमापूरयन्निव ।
भरतं शोकसन्तप्तं भूयः शोकैररन्ध्रयत् ॥₃॥

ततो प्रबुद्धो भरतस्तं घोषं संनिवर्त्य च ।
नाहं राजेति चाप्युक्त्वा शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥₄॥

पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोकस्यापकृतं महत् ।
विसृज्य मयि दुःखानि राजा दशरथो गतः ॥₅॥

तस्यैषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः ।
परिभ्रमति राजश्रीर्नौरिवाकर्णिका जले ॥₆॥

इत्येवं भरतं प्रेक्ष्य विलपन्तं विचेतनम् ।
कृपणं रुरुदुः सर्वाः सस्वरं योषितस्तदा ॥₇॥

तथा तस्मिन्विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित् ।
सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः ॥₈॥

शात कुम्भमयीं रम्यां मणिरत्नसमाकुलाम् ।
सुधर्माविव धर्मात्मा सगणः प्रत्यपद्यत ॥₉॥

स काञ्चनमयं पीठं परार्ध्यास्तरणावृतम् ।

अध्यास्त सर्ववेदज्ञो दूताननुशशास च ॥₁₀॥

ब्राह्मणान्क्षत्रियान्योधानमात्यान्गणबल्लभान् ।
क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्ययिकं हि नः ॥₁₁॥

ततो हलहलाशब्दो महान्समुदपद्यत ।
रथैरश्वैर्गजैश्चापि जनानामुपगच्छताम् ॥₁₂॥

ततो भरतमायान्तं शतक्रतुमिवामराः ।
प्रत्यनन्दन्प्रकृतयो यथा दशरथं तथा ॥₁₃॥

हृद इव तिमिनागसंवृतः
स्तिमितजलो मणिशङ्खशर्करः ।
दशरथसुतशोभिता सभा
सदशरथेव बभौ यथा पुरा ॥₁₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

॥षट्सप्ततितमः सर्गः॥

तामार्यगणसम्पूर्णा भरतः प्रग्रहां सभाम् ।
ददर्श बुद्धिसम्पन्नः पूर्णचन्द्रां निशामिव ॥₁॥

आसनानि यथान्यायमार्याणां विशतां तदा ।
अदृश्यत घनापाये पूर्णचन्द्रेव शर्वरी ॥₂॥

राज्ञस्तु प्रकृतीः सर्वाः समग्राः प्रेक्ष्य धर्मवित् ।
इदं पुरोहितो वाक्यं भरतं मृदु चाब्रवीत् ॥₃॥

तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन् ।
धन धान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव ॥₄॥

रामस्तथा सत्यधृतिः सतां धर्ममनुस्मरन् ।
नाजहात्पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः ॥₅॥

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम् ।
तद्गुह्यं मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय ॥₆॥

उदीच्याश्च प्रतीच्याश्च दक्षिणात्याश्च केवलाः ।
कोट्यापरान्ताः सामुद्रा रत्नान्यभिहरन्तु ते ॥₇॥

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः ।
जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया ॥₈॥

स बाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा ।
विललाप सभामध्ये जगर्हं च पुरोहितम् ॥₉॥

चरितब्रह्मचर्यस्य विद्या स्नातस्य धीमतः ।

धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत् ॥₁₀॥

कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः ।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ॥₁₁॥

ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुषोपमः ।
लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा ॥₁₂॥

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्या पापमहं यदि ।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः ॥₁₃॥

यद्धि मात्रा कृतं पापं नाहं तदभिरोचये ।
इहस्थो वनदुर्गस्थं नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥₁₄॥

राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः ।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति ॥₁₅॥

तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ।
हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः ॥₁₆॥

यदि त्वार्यं न शक्यामि विनिवर्तयितुं वनात् ।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा ॥₁₇॥

सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं बलात् ।
समक्षमार्यं मिश्राणां साधूनां गुणवर्तिनाम् ॥₁₈॥

एवमुक्त्वा तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
समीपस्थमुवाचेदं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम् ॥₁₉॥

तूर्णमुत्थाय गच्छ त्वं सुमन्त्र मम शासनात् ।
यात्रामाज्ञापय क्षिप्रं बलं चैव समानय ॥₂₀॥

एवमुक्तः सुमन्त्रस्तु भरतेन महात्मना ।

प्रहृष्टः सोऽदिशत्सर्वं यथा सन्दिष्टमिष्टवत् ॥₂₁॥

ताः प्रहृष्टाः प्रकृतयो बलाध्यक्षा बलस्य च ।
श्रुत्वा यात्रां समाज्ञप्तां राघवस्य निवर्तने ॥₂₂॥

ततो योधाङ्गनाः सर्वा भर्तृन्सर्वान्गृहेगृहे ।
यात्रा गमनमाज्ञाय त्वरयन्ति स्म हर्षिताः ॥₂₃॥

ते हयैर्गोरथैः शीघ्रैः स्यन्दनैश्च मनोजवैः ।
सह योधैर्बलाध्यक्षा बलं सर्वमचोदयन् ॥₂₄॥

सञ्जं तु तद्वलं दृष्ट्वा भरतो गुरुसंनिधौ ।
रथं मे त्वरयस्वेति सुमन्त्रं पार्श्वतोऽब्रवीत् ॥₂₅॥

भरतस्य तु तस्याज्ञां प्रतिगृह्य प्रहर्षितः ।
रथं गृहीत्वा प्रययौ युक्तं परमवाजिभिः ॥₂₆॥

स राघवः सत्यधृतिः प्रतापवान्
ब्रुवन्सुयुक्तं दृढसत्यविक्रमः ।
गुरुं महारण्यगतं यशस्विनम्
प्रसादयिष्यन्भरतोऽब्रवीत्तदा ॥₂₇॥

तूण समुत्थाय सुमन्त्रं गच्छ
बलस्य योगाय बलप्रधानान् ।
आनेतुमिच्छामि हि तं वनस्थम्
प्रसाद्य रामं जगतो हिताय ॥₂₈॥

स सूतपुत्रो भरतेन सम्यक्
आज्ञापितः सम्परिपूर्णकामः ।
शशास सर्वान्प्रकृतिप्रधानान्
बलस्य मुख्यांश्च सुहृञ्जनं च ॥₂₉॥

ततः समुत्थाय कुले कुले ते

राजन्यवैश्या वृषलाश्च विप्राः ।

अयूयुजन्नुष्टरथान्वरांश्च

नागान्हयांश्चैव कुलप्रसूतान् ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षट्षप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्तसप्ततितमः सर्गः॥

ततः समुत्थितः काल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् ।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाङ्क्षया ॥₁॥

अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोधसः ।
अधिरुह्य हयैर्युक्तान्नथान्सूर्यरथोपमान् ॥₂॥

नवनागसहस्राणि कल्पितानि यथाविधि ।
अन्वयुर्भरतं यान्तमिक्ष्वाकु कुलनन्दनम् ॥₃॥

षष्ठी रथसहस्राणि धन्विनो विविधायुधाः ।
अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ॥₄॥

शतं सहस्राण्यश्चानां समारूढानि राघवम् ।
अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ॥₅॥

कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी ।
रामानयनसंहृष्टा ययुर्यानेन भास्वता ॥₆॥

प्रयाताश्चार्यसङ्घाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् ।
तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः ॥₇॥

मेघश्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढव्रतम् ।
कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम् ॥₈॥

दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः ।
तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः ॥₉॥

इत्येवं कथयन्तस्ते सम्प्रहृष्टाः कथाः शुभाः ।

परिष्वजानाश्चान्योन्यं ययुर्नागरिकास्तदा ॥₁₀॥

ये च तत्रापरे सर्वे सम्मता ये च नैगमाः ।
रामं प्रति ययुर्हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयस्तदा ॥₁₁॥

मणि काराश्च ये केचित्कुम्भकाराश्च शोभनाः ।
सूत्रकर्मकृतश्चैव ये च शस्त्रोपजीविनः ॥₁₂॥

मायूरकाः क्राकचिका रोचका वेधकास्तथा ।
दन्तकाराः सुधाकारास्तथा गन्धोपजीविनः ॥₁₃॥

सुवर्णकाराः प्रख्यातास्तथा कम्बलधावकाः ।
स्नापकाच्छादका वैद्या धूपकाः शौण्डिकास्तथा ॥₁₄॥

रजकास्तुन्नवायाश्च ग्रामघोषमहत्तराः ।
शैलूषाश्च सह स्त्रीभिर्यान्ति कैवर्तकास्तथा ॥₁₅॥

समाहिता वेदविदो ब्राह्मणा वृत्तसम्मताः ।
गोरथैर्भरतं यान्तमनुजग्मुः सहस्रशः ॥₁₆॥

सुवेषाः शुद्धवसनास्ताम्रमृष्टानुलेपनाः ।
सर्वे ते विविधैर्यानिः शनैर्भरतमन्वयुः ॥₁₇॥

प्रहृष्टमुदिता सेना सान्वयात्कैकयीसुतम् ।
व्यतिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी ॥₁₈॥

निरीक्ष्यानुगतां सेनां तां च गङ्गां शिवोदकाम् ।
भरतः सचिवान्सर्वानब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥₁₉॥

निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेण सर्वशः ।
विश्रान्तः प्रतरिष्यामः श्व इदानीं महानदीम् ॥₂₀॥

दातुं च तावदिच्छामि स्वर्गतस्य महीपतेः ।

और्ध्वदेह निमित्तार्थमवतीर्योदकं नदीम् ॥₂₁॥

तस्यैवं ब्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वा समाहिताः ।
न्यवेशयंस्तांश्छन्देन स्वेन स्वेन पृथक्पृथक् ॥₂₂॥

निवेश्य गङ्गामनु तां महानदीम्
चमूं विधानैः परिबर्ह शोभिनीम् ।
उवास रामस्य तदा महात्मनो
विचिन्तयानो भरतो निवर्तनम् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः॥

॥अष्टसप्ततितमः सर्गः॥

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गङ्गामन्वाश्रितां नदीम् ।
निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्सन्वरितोऽब्रवीत् ॥₁॥

महतीयमतः सेना सागराभा प्रदृश्यते ।
नास्यान्तमवगच्छामि मनसापि विचिन्तयन् ॥₂॥

स एष हि महाकायः कोविदारध्वजो रथे ।
बन्धयेष्यति वा दाशानथ वास्मान्वधिष्यति ॥₃॥

अथ दाशरथिं रामं पित्रा राज्याद्विवासितम् ।
भरतः कैकेयीपुत्रो हन्तुं समधिगच्छति ॥₄॥

भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम ।
तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत ॥₅॥

तिष्ठन्तु सर्वदाशाश्च गङ्गामन्वाश्रिता नदीम् ।
बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः ॥₆॥

नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम् ।
संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्बल्यभ्यचोदयत् ॥₇॥

यदा तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति ।
सेयं स्वस्तिमयी सेना गङ्गामद्य तरिष्यति ॥₈॥

इत्युक्तोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च ।
अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ॥₉॥

तमायान्तं तु सम्प्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान् ।

भरतायाचक्षेऽथ विनयज्ञो विनीतवत् ॥₁₀॥

एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः ।
कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो भ्रातुश्च ते सखा ॥₁₁॥

तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो गुहः ।
असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥₁₂॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुमन्ताद्भरतः शुभम् ।
उवाच वचनं शीघ्रं गुहः पश्यतु मामिति ॥₁₃॥

लब्ध्वाभ्यनुज्ञां संहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः ।
आगम्य भरतं प्रहो गुहो वचनमब्रवीत् ॥₁₄॥

निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् ।
निवेदयामस्ते सर्वे स्वके दाशकुले वस ॥₁₅॥

अस्ति मूलं फलं चैव निषादैः समुपाहृतम् ।
आर्द्रं च मांसं शुष्कं च वन्यं चोच्चावचं महत् ॥₁₆॥

आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यतीमां विभावरीम् ।
अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः॥

॥एकोनाशीतितमः सर्गः॥

एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम् ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥₁॥

ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे ।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामेकोऽभ्यर्चितुमिच्छसि ॥₂॥

इत्युक्त्वा तु महातेजा गुहं वचनमुत्तमम् ।
अब्रवीद्भरतः श्रीमान्निषादाधिपतिं पुनः ॥₃॥

कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं गुह ।
गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः ॥₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं गुहो गहनगोचरः ॥₅॥

दाशास्त्रनुगमिष्यन्ति धन्विनः सुसमाहिताः ।
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महायशः ॥₆॥

कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ॥₇॥

तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः ।
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत् ॥₈॥

मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि ।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मम ॥₉॥

तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् ।

बुद्धिरन्या न ते कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते ॥₁₀॥

स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम् ।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः ॥₁₁॥

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले ।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥₁₂॥

शाश्वती खलु ते कीर्तिलोकाननुचरिष्यति ।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥₁₃॥

एवं सम्भाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा ।
बभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥₁₄॥

संनिवेश्य स तां सेनां गुहेन परितोषितः ।
शत्रुघ्नेन सह श्रीमाञ्शयनं पुनरागमत् ॥₁₅॥

रामचिन्तामयः शोको भरतस्य महात्मनः ।
उपस्थितो ह्यनर्हस्य धर्मप्रेक्षस्य तादृशः ॥₁₆॥

अन्तर्दाहेन दहनः सन्तापयति राघवम् ।
वनदाहाभिसन्तप्तं गूढोऽग्निरिव पादपम् ॥₁₇॥

प्रसूतः सर्वगात्रेभ्यः स्वेदः शोकाग्निसम्भवः ।
यथा सूर्याशुसन्तप्तो हिमवान्प्रसूतो हिमम् ॥₁₈॥

ध्याननिर्दरशैलेन विनिश्चसितधातुना ।
दैन्यपादपसङ्घेन शोकायासाधिशृङ्गिणा ॥₁₉॥

प्रमोहानन्तसत्त्वेन सन्तापौषधिवेणुना ।
आक्रान्तो दुःखशैलेन महता कैकयीसुतः ॥₂₀॥

गुहेन सार्धं भरतः समागतो

महानुभावः सजनः समाहितः ।
सुदुर्मनास्तं भरतं तदा पुनर्-
गुहः समाश्वासयदग्रजं प्रति ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः॥

॥अशीतितमः सर्गः॥

आचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः ॥₁॥

तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम् ।
भ्रातृ गुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रवम् ॥₂॥

इयं तात सुखा शय्या बद्धमपकल्पिता ।
प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन ॥₃॥

उचितोऽयं जनः सर्वे दुःखानां त्वं सुखोचितः ।
धर्मात्मस्तस्य गुप्त्यर्थं जागरिष्यामहे वयम् ॥₄॥

न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन ।
मोत्सुको भूर्ब्रवीम्येतदप्यसत्यं तवाग्रतः ॥₅॥

अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ।
धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थावाप्तिं च केवलाम् ॥₆॥

सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया ।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिः सह ॥₇॥

न हि मेऽविदितं किञ्चिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा ।
चतुरङ्गं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि ॥₈॥

एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना ।
अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥₉॥

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया ।

शक्या निद्रामया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा ॥₁₀॥

यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि ।
तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया ॥₁₁॥

महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः ।
एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः ॥₁₂॥

अस्मिन्प्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति ।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥₁₃॥

विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः ।
निर्घोषोपरतं नूनमद्य राजनिवेशनम् ॥₁₄॥

कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम ।
नाशंसे यदि ते सर्वे जीवेयुः शर्वरीमिमाम् ॥₁₅॥

जीवेदपि हि मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया ।
दुःखिता या तु कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति ॥₁₆॥

अतिक्रान्तमतिक्रान्तमनवाप्य मनोरथम् ।
राज्ये राममनिक्षिप्य पिता मे विनशिष्यति ॥₁₇॥

सिद्धार्थाः पितरं वृत्तं तस्मिन्काले ह्युपस्थिते ।
प्रेतकार्येषु सर्वेषु संस्करिष्यन्ति भूमिपम् ॥₁₈॥

रम्यचत्वरसंस्थानां सुविभक्तमहापथाम् ।
हर्म्यप्रासादसम्पन्नां सर्वरत्नविभूषिताम् ॥₁₉॥

गजाश्वरथसम्बाधां तूर्यनादविनादिताम् ।
सर्वकल्याणसम्पूर्णां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥₂₀॥

आरामोद्यानसम्पूर्णां समाजोत्सवशालिनीम् ।

सुखिता विचरिष्यन्ति राजधानीं पितुर्मम ॥₂₁॥

अपि सत्यप्रतिज्ञेन सार्धं कुशलिना वयम् ।
निवृत्ते समये ह्यस्मिन्सुखिताः प्रविशेमहि ॥₂₂॥

परिदेवयमानस्य तस्यैवं सुमहात्मनः ।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत ॥₂₃॥

प्रभाते विमले सूर्ये कारयित्वा जटा उभौ ।
अस्मिन्भागीरथी तीरे सुखं सन्तारितौ मया ॥₂₄॥

जटाधरौ तौ द्रुमचीरवाससौ
महाबलौ कुञ्जरयूथपोपमौ ।
वरेषुचापासिधरौ परन्तपौ
व्यवेक्षमाणौ सह सीतया गतौ ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अशीतितमः सर्गः॥

॥एकाशीतितमः सर्गः॥

गुहस्य वचनं श्रुत्वा भरतो भृशमप्रियम् ।
ध्यानं जगाम तत्रैव यत्र तच्छ्रुतमप्रियम् ॥₁॥

सुकुमारो महासत्त्वः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।
पुण्डरीक विशालाक्षस्तरुणः प्रियदर्शनः ॥₂॥

प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः ।
पपात सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः ॥₃॥

तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तर स्थितः ।
परिष्वज्य रुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्षितः ॥₄॥

ततः सर्वाः समापेतुर्मातरो भरतस्य ताः ।
उपवास कृशा दीना भर्तृव्यसनकर्षिताः ॥₅॥

ताश्च तं पतितं भूमौ रुदन्त्यः पर्यवारयन् ।
कौसल्या बनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे ॥₆॥

वत्सला स्वं यथा वत्समुपगूह्य तपस्विनी ।
परिपप्रच्छ भरतं रुदन्ती शोकलालसा ॥₇॥

पुत्रव्याधिर्न ते कञ्चिच्छरीरं परिबाधते ।
अद्य राजकुलस्यास्य ब्रह्मदधीनं हि जीवितम् ॥₈॥

त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते ।
वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः ॥₉॥

कञ्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र श्रुतं ते किञ्चिदप्रियम् ।

पुत्र वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते ॥₁₀॥

स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः ।
कौसल्यां परिसान्त्वेदं गुहं वचनमब्रवीत् ॥₁₁॥

भ्राता मे क्वावसद्रात्रिं क्व सीता क्व च लक्ष्मणः ।
अस्वपच्छयने कस्मिन्किं भुक्त्वा गुहं शंस मे ॥₁₂॥

सोऽब्रवीद्भरतं पृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः ।
यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहितेऽतिथौ ॥₁₃॥

अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च ।
रामायाभ्यवहारार्थं बहुचोपहृतं मया ॥₁₄॥

तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः ।
न हि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥₁₅॥

न ह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा ।
इति तेन वयं राजन्ननुनीता महात्मना ॥₁₆॥

लक्ष्मणेन समानीतं पीत्वा वारि महायशाः ।
औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया ॥₁₇॥

ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा ।
वाग्यतास्ते त्रयः सन्ध्यामुपासत समाहिताः ॥₁₈॥

सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम् ।
स्वयमानीय बर्हीषि क्षिप्रं राघव कारणात् ॥₁₉॥

तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सह सीतया ।
प्रक्षाल्य च तयोः पादावपचक्राम लक्ष्मणः ॥₂₀॥

एतत्तदिङ्गुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम् ।

यस्मिन्नामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ ॥₂₁॥

नियम्य पृष्ठे तु तलाङ्गुलित्रवान्
शरैः सुपूर्णाविषुधी परन्तपः ।
महद्धनुः सज्यमुपोह्य लक्ष्मणो
निशामतिष्ठत्परितोऽस्य केवलम् ॥₂₂॥

ततस्त्वहं चोत्तमबाणचापधृक्
स्थितोऽभवं तत्र स यत्र लक्ष्मणः ।
अतन्द्रिभिर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकैर्-
महेन्द्रकल्पं परिपालयंस्तदा ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः॥

॥द्व्यशीतितमः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः ।
इङ्गुदीमूलमागम्य रामशय्यामवेक्ष्य ताम् ॥₁॥

अब्रवीञ्जननीः सर्वा इह तेन महात्मना ।
शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम् ॥₂॥

महाभागकुलीनेन महाभागेन धीमता ।
जातो दशरथेनोर्व्या न रामः स्वप्नुमर्हति ॥₃॥

अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसञ्चये ।
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ॥₄॥

प्रासादाग्र विमानेषु वलभीषु च सर्वदा ।
हैमराजतभौमेषु वरास्तरणशालिषु ॥₅॥

पुष्पसञ्चयचित्रेषु चन्दनागरुगन्धिषु ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशेषु शुकसङ्घरुतेषु च ॥₆॥

गीतवादित्रनिर्घोषैर्वराभरणनिःस्वनैः ।
मृदङ्गवरशब्दैश्च सततं प्रतिबोधितः ॥₇॥

बन्दिभिर्वन्दितः काले बहुभिः सूतमागधैः ।
गाथाभिरनुरूपाभिः स्तुतिभिश्च परन्तपः ॥₈॥

अश्रद्धेयमिदं लोके न सत्यं प्रतिभाति मा ।
मुह्यते खलु मे भावः स्वप्नोऽयमिति मे मतिः ॥₉॥

न नूनं दैवतं किञ्चित्कालेन बलवत्तरम् ।

यत्र दाशरथी रामो भूमावेवं शयीत सः ॥₁₀॥

विदेहराजस्य सुता सीता च प्रियदर्शना ।
दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च ॥₁₁॥

द्वयं शय्या मम भ्रातुरिदं हि परिवर्तितम् ।
स्थण्डिले कठिने सर्वं गात्रैर्विमृदितं तृणम् ॥₁₂॥

मन्ये साभरणा सुप्ता सीतास्मिञ्शयने तदा ।
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकबिन्दवः ॥₁₃॥

उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा ।
तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः ॥₁₄॥

मन्ये भर्तुः सुखा शय्या येन बाला तपस्विनी ।
सुकुमारी सती दुःखं न विजानाति मैथिली ॥₁₅॥

सार्वभौम कुले जातः सर्वलोकसुखावहः ।
सर्वलोकप्रियस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् ॥₁₆॥

कथमिन्दीवरश्यामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः ।
सुखभागी च दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः ॥₁₇॥

सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम् ।
वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना ॥₁₈॥

अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मा ।
गते दशरथे स्वर्गे रामे चारण्यमाश्रिते ॥₁₉॥

न च प्रार्थयते कश्चिन्मनसापि वसुन्धराम् ।
वनेऽपि वसतस्तस्य बाहुवीर्याभिरक्षिताम् ॥₂₀॥

शून्यसंवरणारक्षामयन्त्रितहयद्विपाम् ।

अपावृतपुरद्वारां राजधानीमरक्षिताम् ॥₂₁॥

अप्रहृष्टबलां न्यूनां विषमस्थामनावृताम् ।
शत्रवो नाभिमन्यन्ते भक्ष्यान्विषकृतानिव ॥₂₂॥

अद्य प्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा ।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥₂₃॥

तस्यार्थमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने ।
तं प्रतिश्रवमामुच्य नास्य मिथ्या भविष्यति ॥₂₄॥

वसन्तं भ्रातुरर्थाय शत्रुघ्नो मानुवत्स्यति ।
लक्ष्मणेन सह त्वार्यो अयोध्यां पालयिष्यति ॥₂₅॥

अभिषेक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः ।
अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम् ॥₂₆॥

प्रसाद्यमानः शिरसा मया स्वयम्
बहुप्रकारं यदि न प्रपत्स्यते ।
ततोऽनुवत्स्यामि चिराय राघवम्
वने वसन्नार्हति मामुपेक्षितुम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्वशीतितमः सर्गः॥

॥त्र्यशीतितमः सर्गः॥

व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः ।
भरतः काल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥₁॥

शत्रुघोत्तिष्ठ किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम् ।
शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम् ॥₂॥

जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्यं विचिन्तयन् ।
इत्येवमब्रवीद्भात्रा शत्रुघ्नोऽपि प्रचोदितः ॥₃॥

इति संवदतोरेवमन्योन्यं नरसिंहयोः ।
आगम्य प्राञ्जलिः काले गुहो भरतमब्रवीत् ॥₄॥

कच्चित्सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम् ।
कच्चिच्च सह सैन्यस्य तव सर्वमनामयम् ॥₅॥

गुहस्य तत्तु वचनं श्रुत्वा स्नेहादुदीरितम् ।
रामस्यानुवशो वाक्यं भरतोऽपीदमब्रवीत् ॥₆॥

सुखा नः शर्वरी राजन्पूजिताश्चापि ते वयम् ।
गङ्गां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः सन्तारयन्तु नः ॥₇॥

ततो गुहः सन्त्वरितः श्रुत्वा भरतशासनम् ।
प्रतिप्रविश्य नगरं तं ज्ञातिजनमब्रवीत् ॥₈॥

उत्तिष्ठत प्रबुध्यध्वं भद्रमस्तु हि वः सदा ।
नावः समनुकर्षध्वं तारयिष्याम वाहिनीम् ॥₉॥

ते तथोक्ताः समुत्थाय बरिता राजशासनात् ।

पञ्च नावां शतान्येव समानिन्युः समन्ततः ॥₁₀॥

अन्याः स्वस्तिकविज्ञेया महाघण्डा धरा वराः ।
शोभमानाः पताकिन्यो युक्तवाताः सुसंहताः ॥₁₁॥

ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम् ।
सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत् ॥₁₂॥

तामारुरोह भरतः शत्रुघ्नश्च महाबलः ।
कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः ॥₁₃॥

पुरोहितश्च तत्पूर्वं गुरवे ब्राह्मणाश्च ये ।
अनन्तरं राजदारास्तथैव शकटापणाः ॥₁₄॥

आवासमादीपयतां तीर्थं चाप्यवगाहताम् ।
भाण्डानि चाददानानां घोषस्त्रिदिवमस्पृशत् ॥₁₅॥

पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः ।
वहन्त्यो जनमारूढं तदा सम्पेतुराशुगाः ॥₁₆॥

नारीणामभिपूर्णास्तु काश्चित्काश्चित्तु वाजिनाम् ।
कश्चित्तत्र वहन्ति स्म यानयुग्यं महाधनम् ॥₁₇॥

ताः स्म गत्वा परं तीरमवरोप्य च तं जनम् ।
निवृत्ताः काण्डचित्राणि क्रियन्ते दाशबन्धुभिः ॥₁₈॥

सवैजयन्तास्तु गजा गजारोहैः प्रचोदिताः ।
तरन्तः स्म प्रकाशन्ते सध्वजा इव पर्वताः ॥₁₉॥

नावश्चारुरुहस्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे ।
अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः ॥₂₀॥

सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः सन्तारिता स्वयम् ।

मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम् ॥₂₁॥

आश्वासयित्वा च चमूं महात्मा
निवेशयित्वा च यथोपजोषम् ।
द्रष्टुं भरद्वाजमृषिप्रवर्यम्
ऋत्विग्वृतः सन्भरतः प्रतस्थे ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः॥

॥चतुरशीतितमः सर्गः॥

भरद्वाजाश्रमं दृष्ट्वा क्रोशादेव नरर्षभः ।
बलं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः ॥₁॥

पद्भ्यामेव हि धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः ।
वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोहितम् ॥₂॥

ततः सन्दर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः ।
मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानु पुरोहितम् ॥₃॥

वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः ।
सञ्चचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन् ॥₄॥

समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः ।
अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम् ॥₅॥

ताभ्यामर्घ्यं च पादं च दत्त्वा पश्चात्फलानि च ।
आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले ॥₆॥

अयोध्यायां बले कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु ।
जानन्दशरथं वृत्तं न राजानमुदाहरत् ॥₇॥

वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम् ।
शरीरेऽग्निषु वृक्षेषु शिष्येषु मृगपक्षिषु ॥₈॥

तथेति च प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महातपाः ।
भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात् ॥₉॥

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ।

एतदाचक्ष्व मे सर्वं न हि मे शुध्यते मनः ॥₁₀॥

सुषुवे यम मित्रघ्नं कौसल्यानन्दवर्धनम् ।
भ्रात्रा सह सभार्यो यश्चिरं प्रव्राजितो वनम् ॥₁₁॥

नियुक्तः स्त्रीनियुक्तेन पित्रा योऽसौ महायशाः ।
वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश ॥₁₂॥

कच्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि ।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥₁₃॥

एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह ।
पर्यश्रु नयनो दुःखाद्वाचा संसञ्जमानया ॥₁₄॥

हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते ।
मत्तो न दोषमाशङ्केनैवं मामनुशाधि हि ॥₁₅॥

न चैतदिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे ।
नाहमेतेन तुष्टश्च न तद्वचनमाददे ॥₁₆॥

अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः ।
प्रतिनेतुमयोध्यां च पादौ तस्याभिवन्दितुम् ॥₁₇॥

त्वं मामेवं गतं मत्वा प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
शंस मे भगवन्नामः क्व सम्प्रति महीपतिः ॥₁₈॥

उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद्भरतं वचः ।
त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्रं युक्तं राघववंशजे ।
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥₁₉॥

जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति ।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन् ॥₂₀॥

असौ वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ ।
श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः ।
एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद ॥₂₁॥

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः
प्रतीतरूपो भरतोऽब्रवीद्वचः ।
चकार बुद्धिं च तदा महाश्रमे
निशानिवासाय नराधिपात्मजः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः॥

॥पञ्चाशीतितमः सर्गः॥

कृतबुद्धिं निवासाय तथैव स मुनिस्तदा ।
भरतं कैकयी पुत्रमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ॥₁॥

अब्रवीद्भरतस्त्वेनं नन्विदं भवता कृतम् ।
पादमर्घ्यं तथातिथ्यं वने यदूपपद्यते ॥₂॥

अथोवाच भरद्वाजो भरतं प्रहसन्निव ।
जाने त्वां प्रीति संयुक्तं तुष्येस्त्वं येन केनचित् ॥₃॥

सेनायास्तु तवैतस्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् ।
मम प्रितिर्यथा रूपा त्वमर्हो मनुजर्षभ ॥₄॥

किमर्थं चापि निक्षिप्य दूरे बलमिहागतः ।
कस्मान्नेहोपयातोऽसि सबलः पुरुषर्षभ ॥₅॥

भरतः प्रत्युवाचेदं प्राञ्जलिस्तं तपोधनम् ।
ससैन्यो नोपयातोऽस्मि भगवन्भगवद्भयात् ॥₆॥

वाजि मुख्या मनुष्याश्च मत्ताश्च वर वारणाः ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिं भगवन्ननुयान्ति माम् ॥₇॥

ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेषूटजांस्तथा ।
न हिंस्युरिति तेनाहमेक एवागतस्ततः ॥₈॥

आनीयतामितः सेनेत्याज्ञप्तः परमर्षिणा ।
तथा तु चक्रे भरतः सेनायाः समुपागमम् ॥₉॥

अग्निशालां प्रविश्याथ पीत्वापः परिमृज्य च ।

आतिथ्यस्य क्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥₁₀॥

आह्वये विश्वकर्माणमहं त्वष्टारमेव च ।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम् ॥₁₁॥

प्राक्स्रोतसश्च या नद्यः प्रत्यक्स्रोतस एव च ।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च समायान्बद्ध सर्वशः ॥₁₂॥

अन्याः स्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम् ।
अपराश्चोदकं शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम् ॥₁₃॥

आह्वये देवगन्धर्वान्विश्वावसुहहाहुहून् ।
तथैवाप्सरसो देवीर्गन्धर्वीश्चापि सर्वशः ॥₁₄॥

घृताचीमथ विश्वार्चीं मिश्रकेशीमलम्बुसाम् ।
शक्रं याश्चोपतिष्ठन्ति ब्रह्माणं याश्च भामिनीः ।
सर्वास्तुम्बुरुणा सार्धमाह्वये सपरिच्छदाः ॥₁₅॥

वनं कुरुषु यद्विव्यं वासो भूषणपत्रवत् ।
दिव्यनारीफलं शश्वत्तत्कौबेरमिहैव तु ॥₁₆॥

इह मे भगवान्सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम् ।
भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु ॥₁₇॥

विचित्राणि च माल्यानि पादपप्रच्युतानि च ।
सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च ॥₁₈॥

एवं समाधिना युक्तस्तेजसाप्रतिमेन च ।
शिक्षास्वरसमायुक्तं तपसा चाब्रवीन्मुनिः ॥₁₉॥

मनसा ध्यायतस्तस्य प्राङ्मुखस्य कृताञ्जलेः ।
आजग्मुस्तानि सर्वाणि दैवतानि पृथक्पृथक् ॥₂₀॥

मलयं दुर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः ।
उपस्पृश्य ववौ युक्त्या सुप्रियात्मा सुखः शिवः ॥₂₁॥

ततोऽभ्यवर्तन्त घना दिव्याः कुसुमवृष्टयः ।
देवदुन्दुभिघोषश्च दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥₂₂॥

प्रववुश्चोत्तमा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा वीणा प्रमुमुचुः स्वरान् ॥₂₃॥

स शब्दो द्यां च भूमिं च प्राणिनां श्रवणानि च ।
विवेशोच्चारितः श्लक्ष्णः समो लयगुणान्वितः ॥₂₄॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे दिव्ये श्रोत्रसुखे नृणाम् ।
ददर्श भारतं सैन्यं विधानं विश्वकर्मणः ॥₂₅॥

बभूव हि समा भूमिः समन्तात्पञ्चयोजनम् ।
शाद्वलैर्बहुभिश्छन्ना नीलवैदूर्यसंनिभैः ॥₂₆॥

तस्मिन्बिह्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः ।
आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्च फलभूषणाः ॥₂₇॥

उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च वनं दिव्योपभोगवत् ।
आजगाम नदी दिव्या तीरजैर्बहुभिर्वृता ॥₂₈॥

चतुःशालानि शुभ्राणि शालाश्च गजवाजिनाम् ।
हर्म्यप्रासादसङ्घातास्तोरणानि शुभानि च ॥₂₉॥

सितमेघनिभं चापि राजवेश्म सुतोरणम् ।
शुक्लमाल्यकृताकारं दिव्यगन्धसमुक्षितम् ॥₃₀॥

चतुरस्रमसम्बाधं शयनासनयानवत् ।
दिव्यैः सर्वरसैर्युक्तं दिव्यभोजनवस्त्ववत् ॥₃₁॥

उपकल्पित सर्वान्नं धौतनिर्मलभाजनम् ।
क्लृप्तसर्वासनं श्रीमत्स्वास्तीर्णशयनोत्तमम् ॥₃₂॥

प्रविवेश महाबाहुरनुज्ञातो महर्षिणा ।
वेश्म तद्रत्नसम्पूर्णं भरतः कैकयीसुतः ॥₃₃॥

अनुजग्मुश्च तं सर्वे मन्त्रिणः सपुरोहिताः ।
बभूवुश्च मुदा युक्ता तं दृष्ट्वा वेश्म संविधिम् ॥₃₄॥

तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च ।
भरतो मन्त्रिभिः सार्धमभ्यवर्तत राजवत् ॥₃₅॥

आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च ।
वालव्यजनमादाय न्यषीदत्सचिवासने ॥₃₆॥

आनुपूर्व्यान्निषेदुश्च सर्वे मन्त्रपुरोहिताः ।
ततः सेनापतिः पश्चात्प्रशास्ता च निषेदतुः ॥₃₇॥

ततस्तत्र मुहूर्तेन नद्यः पायसकर्दमाः ।
उपातिष्ठन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनत् ॥₃₈॥

तासामुभयतः कूलं पाण्डुमृत्तिकलेपनाः ।
रम्याश्चावसथा दिव्या ब्रह्मणस्तु प्रसादजाः ॥₃₉॥

तेनैव च मुहूर्तेन दिव्याभरणभूषिताः ।
आगुर्विंशतिसाहस्रा ब्राह्मणा प्रहिताः स्त्रियः ॥₄₀॥

सुवर्णमणिमुक्तेन प्रवालेन च शोभिताः ।
आगुर्विंशतिसाहस्राः कुबेरप्रहिताः स्त्रियः ॥₄₁॥

याभिर्गृहीतः पुरुषः सोन्माद इव लक्ष्यते ।
आगुर्विंशतिसाहस्रा नन्दनादप्सरोगणाः ॥₄₂॥

नारदस्तुम्बुरुर्गोपः पर्वतः सूर्यवर्चसः ।
एते गन्धर्वराजानो भरतस्याग्रतो जगुः ॥₄₃॥

अलम्बुसा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ वामना ।
उपानृत्यंस्तु भरतं भरद्वाजस्य शासनात् ॥₄₄॥

यानि माल्यानि देवेषु यानि चैत्ररथे वने ।
प्रयागे तान्यदृश्यन्त भरद्वाजस्य शासनात् ॥₄₅॥

बिह्वा मार्दङ्गिका आसञ्जम्या ग्राहा बिभीतकाः ।
अश्वत्था नर्तकाश्चासन्भरद्वाजस्य तेजसा ॥₄₆॥

ततः सरलतालाश्च तिलका नक्तमालकाः ।
प्रहृष्टास्तत्र सम्पेतुः कुञ्जाभूताथ वामनाः ॥₄₇॥

शिंशपामलकी जम्बूर्याश्चान्याः कानने लताः ।
प्रमदा विग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन् ॥₄₈॥

सुरां सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः ।
मांसनि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यावदिच्छथ ॥₄₉॥

उत्साद्य स्नापयन्ति स्म नदीतीरेषु वल्गुषु ।
अप्येकमेकं पुरुषं प्रमदाः सत्प चाष्ट च ॥₅₀॥

संवहन्त्यः समापेतुर्नार्यो रुचिरलोचनाः ।
परिमृज्य तथा न्यायं पाययन्ति वराङ्गनाः ॥₅₁॥

हयान्गजान्खरानुष्ट्रांस्तथैव सुरभेः सुतान् ।
इक्षूंश्च मधुजालांश्च भोजयन्ति स्म वाहनान् ।
इक्ष्वाकुवरयोधानां चोदयन्तो महाबलाः ॥₅₂॥

नाश्वबन्धोऽश्वमाजानान्न गजं कुञ्जरग्रहः ।
मत्तप्रमत्तमुदिता चमूः सा तत्र सम्बभौ ॥₅₃॥

तर्पिता सर्वकामैस्ते रक्तचन्दनरूषिताः ।
अप्सरोगणसंयुक्ताः सैन्या वाचमुदैरयन् ॥⁵⁴॥

नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान् ।
कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम् ॥⁵⁵॥

इति पादातयोधाश्च हस्त्यश्चारोहबन्धकाः ।
अनाथास्तं विधिं लब्ध्वा वाचमेतामुदैरयन् ॥⁵⁶॥

सम्प्रहृष्टा विनेदुस्ते नरास्तत्र सहस्रशः ।
भरतस्यानुयातारः स्वर्गेऽयमिति चाब्रुवन् ॥⁵⁷॥

ततो भुक्तवतां तेषां तदन्नममृतोपमम् ।
दिव्यानुद्धीक्ष्य भक्ष्यांस्तानभवद्भक्षणे मतिः ॥⁵⁸॥

प्रेष्याश्चेत्यश्च वध्वश्च बलस्थाश्चापि सर्वशः ।
बभूवुस्ते भृशं तृप्ताः सर्वे चाहतवाससः ॥⁵⁹॥

कुञ्जराश्च खरोष्ट्रश्च गोऽश्वाश्च मृगपक्षिणः ।
बभूवुः सुभृतास्तत्र नान्यो ह्यन्यमकल्पयत् ॥⁶⁰॥

नाशुक्लवासास्तत्रासीत्क्षुधितो मलिनोऽपि वा ।
रजसा ध्वस्तकेशो वा नरः कश्चिददृश्यत ॥⁶¹॥

आजैश्चापि च वाराहैर्निष्ठानवरसञ्चयैः ।
फलनिर्वृहसंसिद्धैः सूपैर्गन्धरसान्वितैः ॥⁶²॥

पुष्पध्वजवतीः पूर्णाः शुक्लस्यान्नस्य चाभितः ।
ददृशुर्विस्मितास्तत्र नरा लौहीः सहस्रशः ॥⁶³॥

बभूवुर्वनपार्श्वेषु कूपाः पायसकर्दमाः ।
ताश्च कामदुघा गावो द्रुमाश्चासन्मधुश्श्रुतः ॥⁶⁴॥

वाप्यो मैरेय पूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः ।
प्रतप्त पिठरैश्चापि मार्गमायूरकौक्कुटैः ॥⁶⁵॥

पात्रीणां च सहस्राणि शातकुम्भमयानि च ।
स्थाल्यः कुम्भ्यः करम्भ्यश्च दधिपूर्णाः सुसंस्कृताः ।
यौवनस्थस्य गौरस्य कपित्थस्य सुगन्धिनः ॥⁶⁶॥

हृदाः पूर्णा रसालस्य दध्नः श्वेतस्य चापरे ।
बभूवुः पायसस्यान्ते शर्करायाश्च सञ्चयाः ॥⁶⁷॥

कल्कांश्चूर्णकषायांश्च स्नानानि विविधानि च ।
ददृशुर्भाजनस्थानि तीर्थेषु सरितां नराः ॥⁶⁸॥

शुक्लानंशुमतश्चापि दन्तधावनसञ्चयान् ।
शुक्लांश्चन्दनकल्कांश्च समुद्रेष्ववतिष्ठतः ॥⁶⁹॥

दर्पणान्परिमृष्टांश्च वाससां चापि सञ्चयान् ।
पादुकोपानहां चैव युग्मान्यत्र सहस्रशः ॥⁷⁰॥

आञ्जनीः कङ्कतान्कूर्चाश्छत्राणि च धनूंषि च ।
मर्मत्राणानि चित्राणि शयनान्यासनानि च ॥⁷¹॥

प्रतिपानहृदान्पूर्णान्खरोष्ट्रगजवाजिनाम् ।
अवगाह्य सुतीर्थाश्च हृदान्सोत्पल पुष्करान् ॥⁷²॥

नीलवैदूर्यवर्णाश्च मृदून्यवससञ्चयान् ।
निर्वापार्थं पशूनां ते ददृशुस्तत्र सर्वशः ॥⁷³॥

व्यस्मयन्त मनुष्यास्ते स्वप्नकल्पं तदद्भुतम् ।
दृष्ट्वातिथ्यं कृतं तादृग्भरतस्य महर्षिणा ॥⁷⁴॥

इत्येवं रममाणानां देवानामिव नन्दने ।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत ॥⁷⁵॥

प्रतिजग्मुश्च ता नद्यो गन्धर्वाश्च यथागतम् ।
भरद्वाजमनुज्ञाप्य ताश्च सर्वा वराङ्गनाः ॥₇₆॥

तथैव मत्ता मदिरोत्कटा नराः
तथैव दिव्यागुरुचन्दनोक्षिताः ।
तथैव दिव्या विविधाः स्रगुत्तमाः
पृथक्प्रकीर्णा मनुजैः प्रमर्दिताः ॥₇₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः॥

॥षडशीतितमः सर्गः॥

ततस्तां रजनीमुष्य भरतः सपरिच्छदः ।
कृतातिथ्यो भरद्वाजं कामादभिजगाम ह ॥₁॥

तमृषिः पुरुषव्याघ्रं प्रेक्ष्य प्राञ्जलिमागतम् ।
हुताग्निहोत्रो भरतं भरद्वाजोऽभ्यभाषत ॥₂॥

कच्चिदत्र सुखा रात्रिस्तवास्मद्विषये गता ।
समग्रस्ते जनः कच्चिदातिथ्ये शंस मेऽनघ ॥₃॥

तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च ।
आश्रमादभिनिष्क्रान्तमृषिमुत्तम तेजसम् ॥₄॥

सुखोषितोऽस्मि भगवन्समग्रबलवाहनः ।
तर्पितः सर्वकामैश्च सामात्यो बलवत्त्वया ॥₅॥

अपेतक्लमसन्तापाः सुभक्ष्याः सुप्रतिश्रयाः ।
अपि प्रेष्यानुपादाय सर्वे स्म सुसुखोषिताः ॥₆॥

आमन्त्रयेऽहं भगवन्कामं त्वामृषिसत्तम ।
समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैरेणेक्षस्व चक्षुषा ॥₇॥

आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः ।
आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे ॥₈॥

इति पृष्टस्तु भरतं भ्रातृदर्शनलालसम् ।
प्रत्युवाच महातेजा भरद्वाजो महातपाः ॥₉॥

भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने ।

चित्रकूटो गिरिस्तत्र रम्यनिर्दरकाननः ॥₁₀॥

उत्तरं पार्श्वमासाद्य तस्य मन्दाकिनी नदी ।
पुष्पितद्रुमसञ्छन्ना रम्यपुष्पितकानना ॥₁₁॥

अनन्तरं तत्सरितश्चित्रकूटश्च पर्वतः ।
ततो पर्णकुटी तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम् ॥₁₂॥

दक्षिणेनैव मार्गेण सव्यदक्षिणमेव च ।
गजवाजिरथाकीर्णा वाहिनीं वाहिनीपते ।
वाहयस्व महाभाग ततो द्रक्ष्यसि राघवम् ॥₁₃॥

प्रयाणमिति च श्रुत्वा राजराजस्य योषितः ।
हिक्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥₁₄॥

वेपमाना कृशा दीना सह देव्या सुमन्त्रिया ।
कौसल्या तत्र जग्राह कराभ्यां चरणौ मुनेः ॥₁₅॥

असमृद्धेन कामेन सर्वलोकस्य गर्हिता ।
कैकेयी तस्य जग्राह चरणौ सव्यपत्रपा ॥₁₆॥

तं प्रदक्षिणमागम्य भगवन्तं महामुनिम् ।
अदूराद्भरतस्यैव तस्थौ दीनमनास्तदा ॥₁₇॥

ततः पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो दृढव्रतः ।
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातृणां तव राघव ॥₁₈॥

एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः ।
उवाच प्राञ्जलिभूत्वा वाक्यं वचनकोविदः ॥₁₉॥

यामिमां भगवन्दीनां शोकानशनकर्षिताम् ।
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि ॥₂₀॥

एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा ॥²¹॥

अस्या वामभुजं श्लिष्टा यैषा तिष्ठति दुर्मनाः ।
कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे ॥²²॥

एतस्यास्तौ सुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ ।
उभौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ ॥²³॥

यस्याः कृते नरयाघ्रौ जीवनाशमितो गतौ ।
राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः ॥²⁴॥

ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम् ।
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् ।
यतोमूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः ॥²⁵॥

इत्युक्त्वा नरशार्दूलो बाष्पगद्गदया गिरा ।
स निशश्वास ताम्राक्षो क्रुद्धो नाग इवासकृत् ॥²⁶॥

भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा ।
प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवत् ॥²⁷॥

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।
रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदकं भविष्यति ॥²⁸॥

अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् ।
आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामित्यचोदयत् ॥²⁹॥

ततो वाजिरथान्युक्त्वा दिव्यान्हेमपरिष्कितान् ।
अध्यारोहत्प्रयाणार्थी बहून्बहुविधो जनः ॥³⁰॥

गजकन्यागजाश्चैव हेमकक्ष्याः पताकिनः ।
जीमूता इव घर्मान्ते सघोषाः सम्प्रतस्थिरे ॥³¹॥

विविधान्यपि यानानि महानि च लघूनि च ।
प्रययुः सुमहार्हाणि पादैरेव पदातयः ॥₃₂॥

अथ यानप्रवेकैस्तु कौसल्याप्रमुखाः स्त्रियः ।
रामदर्शनकाङ्क्षिण्यः प्रययुर्मुदितास्तदा ॥₃₃॥

स चार्कतरुणाभासां नियुक्तां शिबिकां शुभाम् ।
आस्थाय प्रययौ श्रीमान्भरतः सपरिच्छदः ॥₃₄॥

सा प्रयाता महासेना गजवाजिरथाकुला ।
दक्षिणां दिशमावृत्य महामेघ इवोत्थितः ।
वनानि तु व्यतिक्रम्य जुष्टानि मृगपक्षिभिः ॥₃₅॥

सा सम्प्रहृष्टद्विपवाजियोधा
वित्रासयन्ती मृगपक्षिसङ्घान् ।
महद्वनं तत्प्रविगाहमाना
रराज सेना भरतस्य तत्र ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षडशीतितमः सर्गः॥

॥सप्ताशीतितमः सर्गः॥

तया महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः ।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाः सम्प्रदुद्रुवुः ॥₁॥

ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च रुरवश्च समन्ततः ।
दृश्यन्ते वनराजीषु गिरिष्वपि नदीषु च ॥₂॥

स सम्प्रतस्थे धर्मात्मा प्रीतो दशरथात्मजः ।
वृतो महत्या नादिन्या सेनया चतुरङ्गया ॥₃॥

सागरौघनिभा सेना भरतस्य महात्मनः ।
महीं सञ्छादयामास प्रावृषि द्यामिवाम्बुदः ॥₄॥

तुरङ्गौघैरवतता वारणैश्च महाजवैः ।
अनालक्ष्या चिरं कालं तस्मिन्काले बभूव भूः ॥₅॥

स यात्रा दूरमध्वानं सुपरिश्रान्त वाहनः ।
उवाच भरतः श्रीमान्वसिष्ठं मन्त्रिणां वरम् ॥₆॥

यादृशं लक्ष्यते रूपं यथा चैव श्रुतं मया ।
व्यक्तं प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् ॥₇॥

अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी ।
एतत्प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥₈॥

गिरेः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य सम्प्रति ।
वारणैरवमृद्यन्ते मामकैः पर्वतोपमैः ॥₉॥

मुञ्चन्ति कुसुमान्येते नगाः पर्वतसानुषु ।

नीला इवातपापाये तोयं तोयधरा घनाः ॥₁₀॥

किन्नराचरितोद्देशं पश्य शत्रुघ्न पर्वतम् ।
हयैः समन्तादाकीर्णं मकरैरिव सागरम् ॥₁₁॥

एते मृगगणा भान्ति शीघ्रवेगाः प्रचोदिताः ।
वायुप्रविद्धाः शरदि मेघराज्य इवाम्बरे ॥₁₂॥

कुर्वन्ति कुसुमापीडाञ्छिरःसु सुरभीनमी ।
मेघप्रकाशैः फलकैर्दक्षिणात्या यथा नराः ॥₁₃॥

निष्कूजमिव भूत्वेदं वनं घोरप्रदर्शनम् ।
अयोध्येव जनाकीर्णा सम्प्रति प्रतिभाति मा ॥₁₄॥

खुरैरुदीरितो रेणुर्दिवं प्रच्छाद्य तिष्ठति ।
तं वहत्यनिलः शीघ्रं कुर्वन्निव मम प्रियम् ॥₁₅॥

स्यन्दनांस्तुरगोपेतान्सूतमुख्यैरधिष्ठितान् ।
एतान्सम्पततः शीघ्रं पश्य शत्रुघ्न कानने ॥₁₆॥

एतान्वित्रासितान्यस्य बर्हिणः प्रियदर्शनान् ।
एतमाविशतः शैलमधिवासं पतत्रिणाम् ॥₁₇॥

अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञः प्रतिभाति मा ।
तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथो यथा ॥₁₈॥

मृगा मृगीभिः सहिता बहवः पृषता वने ।
मनोज्ञ रूपा लक्ष्यन्ते कुसुमैरिव चित्रितः ॥₁₉॥

साधु सैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् ।
यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ ॥₂₀॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः ।

विविशुस्तद्वनं शूरा धूमं च ददृशुस्ततः ॥₂₁॥

ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः ।
नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ ॥₂₂॥

अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परन्तपौ ।
अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः ॥₂₃॥

तच्छ्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधु सम्मतम् ।
सैन्यानुवाच सर्वास्तानमित्रबलमर्दनः ॥₂₄॥

यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः ।
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो गुरुरेव च ॥₂₅॥

एवमुक्तास्ततः सर्वे तत्र तस्थुः समन्ततः ।
भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत् ॥₂₆॥

व्यवस्थिता या भरतेन सा चमूर्-
निरीक्षमाणापि च धूममग्रतः ।
बभूव हृष्टा नचिरेण जानती
प्रियस्य रामस्य समागमं तदा ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः॥

॥अष्टाशीतितमः सर्गः॥

दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौ गिरिवनप्रियः ।
विदेह्याः प्रियमाकाङ्क्षन् च चित्तं विलोभयन् ॥₁॥

अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत् ।
भार्याममरसङ्काशः शचीमिव पुरन्दरः ॥₂॥

न राज्याद्भ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः ।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ॥₃॥

पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम् ।
शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ॥₄॥

केचिद्रजतसङ्काशाः केचित्क्षतजसंनिभाः ।
पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः ॥₅॥

पुष्पार्ककेतुकाभाश्च केचिज्ज्योती रसप्रभाः ।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ॥₆॥

नानामृगगणद्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः ।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः ॥₇॥

आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः ।
अङ्गोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः ॥₈॥

काश्मर्यरिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैस्तथा ।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः ॥₉॥

पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।

एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः ॥₁₀॥

शैलप्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान्कामहर्षणान् ।
किन्नरान्द्वन्द्वशो भद्रे रममाणान्मनस्विनः ॥₁₁॥

शाखावसक्तान्खड्गांश्च प्रवराण्यम्बराणि च ।
पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडेद्देशान्मनोरमान् ॥₁₂॥

जलप्रपातैरुद्धेदैर्निष्यन्दैश्च क्वचित्क्वचित् ।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः ॥₁₃॥

गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान्वहन् ।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत् ॥₁₄॥

यदीह शरदोऽनेकास्त्रया सार्धमनिन्दिते ।
लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधक्ष्यति ॥₁₅॥

बहुपुष्पफले रम्ये नानाद्विजगणायुते ।
विचित्रशिखरे ह्यस्मिन्नतवानस्मि भामिनि ॥₁₆॥

अनेन वनवासेन मया प्राप्तं फलद्वयम् ।
पितुश्चानृणता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा ॥₁₇॥

वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह ।
पश्यन्ती विविधान्भावान्मनोवाक्कायसंयतान् ॥₁₈॥

इदमेवामृतं प्राहू राज्ञां राजर्षयः परे ।
वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः ॥₁₉॥

शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः ।
बहुला बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतसितारुणैः ॥₂₀॥

निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव ।

ओषध्यः स्वप्रभा लक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः ॥₂₁॥

केचित्क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यानसंनिभाः ।
केचिदेकशिला भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि ॥₂₂॥

भिच्चेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः ।
चित्रकूटस्य कूटोऽसौ दृश्यते सर्वतः शिवः ॥₂₃॥

कुष्ठपुंनागतगरभूर्जपत्रोत्तरच्छदान् ।
कामिनां स्वास्तरान्पश्य कुशेशयदलायुतान् ॥₂₄॥

मृदिताश्चापविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रजः ।
कामिभिर्वनिते पश्य फलानि विविधानि च ॥₂₅॥

वस्त्रौकसारां नलिनीमत्येतीवोत्तरान्कुरून् ।
पर्वतश्चित्रकूटोऽसौ बहुमूलफलोदकः ॥₂₆॥

इमं तु कालं वनिते विजहिषाम्
ह्वया च सीते सह लक्ष्मणेन च ।
रतिं प्रपत्स्ये कुलधर्मवर्धिनीम्
सतां पथि स्वैर्नियमैः परैः स्थितः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः॥

॥एकोननवतितमः सर्गः॥

अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोसलेश्वरः ।
अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥₁॥

अब्रवीच्च वरारोहां चारुचन्द्रनिभाननाम् ।
विदेहराजस्य सुतां रामो राजीवलोचनः ॥₂॥

विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् ।
कुसुमैरुपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥₃॥

नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः ।
राजन्तीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः ॥₄॥

मृगयूथनिपीतानि कलुषाम्भांसि साम्प्रतम् ।
तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे ॥₅॥

जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः ।
ऋषयस्त्रवगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ॥₆॥

आदित्यमुपतिष्ठन्ते नियमादूर्ध्वबाहवः ।
एतेऽपरे विशालाक्षि मुनयः संशितव्रताः ॥₇॥

मारुतोद्धूत शिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः ।
पादपैः पत्रपुष्पाणि सृजद्भिरभितो नदीम् ॥₈॥

कच्चिन्मणिनिकाशोदां कच्चित्पुलिनशालिनीम् ।
कच्चित्सिद्धजनाकीर्णां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥₉॥

निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसञ्चयान् ।

पोषूयमानानपरान्पश्य त्वं जलमध्यगान् ॥₁₀॥

तांश्चातिवल्गु वचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः ।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः ॥₁₁॥

दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने ।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये च तव दर्शनात् ॥₁₂॥

विधूतकलुषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः ।
नित्यविक्षोभित जलां विहाहस्व मया सह ॥₁₃॥

सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दकिनीमिमाम् ।
कमलान्यवमञ्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि ॥₁₄॥

त्वं पौरजनवद्बालानयोध्यामिव पर्वतम् ।
मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम् ॥₁₅॥

लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः ।
त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयथो मम ॥₁₆॥

उपस्पृशंस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः ।
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहयेऽद्य त्वया सह ॥₁₇॥

इमां हि रम्यां गजयूथलोलिताम्
निपीततोयां गजसिंहवानरैः ।
सुपुष्पितैः पुष्पधरैरलङ्कृताम्
न सोऽस्ति यः स्यान्न गतक्रमः सुखी ॥₁₈॥

इतीव रामो बहुसङ्गतं वचः
प्रिया सहायः सरितं प्रति ब्रुवन् ।
चचार रम्यं नयनाञ्जनप्रभम्
स चित्रकूटं रघुवंशवर्धनः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः॥

॥नवतितमः सर्गः॥

तथा तत्रासतस्तस्य भरतस्योपयायिनः ।
सैन्य रेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभः स्पृशौ ॥₁॥

एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः ।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथा दुद्रुवुर्दिशः ॥₂॥

स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्रुव राघवः ।
तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ॥₃॥

तांश्च विद्रवतो दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा स निःस्वनम् ।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥₄॥

हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया ।
भीमस्तनितगम्भीरस्तुमुलः श्रूयते स्वनः ॥₅॥

राजा वा राजमात्रो वा मृगयामटते वने ।
अन्यद्वा श्वापदं किञ्चित्सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि ।
सर्वमेतद्यथातत्त्वमचिराज्ज्ञातुमर्हसि ॥₆॥

स लक्ष्मणः सन्त्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम् ।
प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वा दिशमवैक्षत ॥₇॥

उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम् ।
रथाश्चगजसम्बाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः ॥₈॥

तामश्चगजसम्पूर्णां रथध्वजविभूषिताम् ।
शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत् ॥₉॥

अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम् ।
सज्यं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा ॥₁₀॥

तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह ।
अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येतां मन्यसे चमूम् ॥₁₁॥

एवमुक्लस्तु रामेण लक्ष्माणो वाक्यमब्रवीत् ।
दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा ॥₁₂॥

सम्पन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम् ।
आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः ॥₁₃॥

एष वै सुमहाज्ज्रीमान्विटपी सम्प्रकाशते ।
विराजत्युद्गतस्कन्धः कोविदार ध्वजो रथे ॥₁₄॥

भजन्त्येते यथाकाममश्चानारुह्य शीघ्रगान् ।
एते भ्राजन्ति संहृष्टा जगानारुह्य सादिनः ॥₁₅॥

गृहीतधनुषौ चावां गिरिं वीर श्रयावहे ।
अपि नौ वशमागच्छेत्कोविदारध्वजो रणे ॥₁₆॥

अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत् ।
त्वया राघव सम्प्राप्तं सीतया च मया तथा ॥₁₇॥

यन्निमित्तं भवान्राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतीम् ।
सम्प्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव मे ॥₁₈॥

भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव ।
पूर्वापकरिणां त्यागे न ह्यधर्मो विधीयते ।
एतस्मिन्निहते कृत्स्नामनुशाधि वसुन्धराम् ॥₁₉॥

अद्य पुत्रं हतं सङ्क्षो कैकेयी राज्यकामुका ।
मया पश्येत्सुदुःखार्ता हस्तिभग्नमिव द्रुमम् ॥₂₀॥

कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम् ।
कलुषेणाद्य महता मेदिनी परिमुच्यताम् ॥₂₁॥

अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद ।
मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् ॥₂₂॥

अद्यैतच्चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः ।
भिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् ॥₂₃॥

शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा ।
श्वापदाः परिकर्षन्तु नराश्च निहतान्मया ॥₂₄॥

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मि महावने ।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे नवतितमः सर्गः॥

॥एकनवतितमः सर्गः॥

सुसंरब्धं तु सौमित्रिं लक्ष्मणं क्रोधमूर्छितम् ।
रामस्तु परिसान्द्राथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥₁॥

किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा ।
महेष्वासे महाप्राज्ञे भरते स्वयमागते ॥₂॥

प्राप्तकालं यदेषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमिच्छति ।
अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किञ्चिदाचरेत् ॥₃॥

विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा न किम् ।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं योऽत्र शङ्कसे ॥₄॥

न हि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः ।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥₅॥

कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्याश्चिदापदि ।
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः ॥₆॥

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे ।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥₇॥

उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तच्चतः ।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव वक्ष्यति ॥₈॥

तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः ।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया ॥₉॥

व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह ।

एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः ॥₁₀॥

वनवासमनुध्याय गृहाय प्रतिनेष्यति ।
इमां वाप्येश वैदेहीमत्यन्तसुखसेविनीम् ॥₁₁॥

एतौ तौ सम्प्रकाशेते गोत्रवन्तौ मनोरमौ ।
वायुवेगसमौ वीर जवनौ तुरगोत्तमौ ॥₁₂॥

स एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे ।
नागः शत्रुंजयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः ॥₁₃॥

अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिंजयः ।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥₁₄॥

भरतेनाथ सन्दिष्टा सम्मर्दो न भवेदिति ।
समन्तात्तस्य शैलस्य सेनावासमकल्पयत् ॥₁₅॥

अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य सा ।
पार्श्वे न्यविशदावृत्य गजवाजिरथाकुला ॥₁₆॥

सा चित्रकूटे भरतेन सेना
धर्मं पुरस्कृत्य विधूय दर्पम् ।
प्रसादनार्थं रघुनन्दनस्य
विरोचते नीतिमता प्रणीता ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकनवतितमः सर्गः॥

॥द्विनवतितमः सर्गः॥

निवेश्य सेनां तु विभुः पद्भ्यां पादवतां वरः ।
अभिगन्तुं स काकुत्स्थमियेष गुरुवर्तकम् ॥₁॥

निविष्ट मात्रे सैन्ये तु यथोद्देशं विनीतवत् ।
भरतो भ्रातरं वाक्यं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥₂॥

क्षिप्रं वनमिदं सौम्य नरसङ्घैः समन्ततः ।
लुब्धैश्च सहितैरेभिस्त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥₃॥

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम् ।
वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति ॥₄॥

यावन्न चन्द्रसङ्काशं द्रक्ष्यामि शुभमाननम् ।
भ्रातुः पद्मपलाशाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ॥₅॥

यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिव व्यञ्जनान्वितौ ।
शिरसा धारयिष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति ॥₆॥

यावन्न राज्ये राज्यार्हः पितृपैतामहे स्थितः ।
अभिषेकजलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति ॥₇॥

कृतकृत्या महाभागा वैदेही जनकात्मजा ।
भर्तारं सागरान्तायाः पृथिव्या यानुगच्छति ॥₈॥

सुभगश्चित्रकूटोऽसौ गिरिराजोपमो गिरिः ।
यस्मिन्वसति काकुत्स्थः कुबेर इवनन्दने ॥₉॥

कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम् ।

यदध्यास्ते महातेजा रामः शस्त्रभृतां वरः ॥₁₀॥

एवमुक्त्वा महातेजा भरतः पुरुषर्षभः ।
पद्भ्यामेव महातेजाः प्रविवेश महद्वनम् ॥₁₁॥

स तानि द्रुमजालानि जातानि गिरिसानुषु ।
पुष्पिताग्राणि मध्येन जगाम वदतां वरः ॥₁₂॥

स गिरेश्चित्रकूटस्य सालमासाद्य पुष्पितम् ।
रामाश्रमगतस्याग्नेर्ददर्श ध्वजमुच्छ्रितम् ॥₁₃॥

तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्मुमोद सहबान्धवः ।
अत्र राम इति ज्ञात्वा गतः पारमिवाम्भसः ॥₁₄॥

स चित्रकूटे तु गिरौ निशाम्य
रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम् ।
गुहेन सार्धं बरितो जगाम
पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः॥

॥त्रिनवतितमः सर्गः॥

निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्तदा ।
जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥₁॥

ऋषिं वसिष्ठं सन्दिश्य मातृमे शीघ्रमानय ।
इति तरितमग्रे स जागम गुरुवत्सलः ॥₂॥

सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत ।
रामदार्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च ॥₃॥

गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम् ।
भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह ॥₄॥

शालायास्त्वग्रतस्तस्या ददर्श भरतस्तदा ।
काष्ठानि चावभग्नानि पुष्पाण्यवचितानि च ॥₅॥

ददर्श च वने तस्मिन्महतः सञ्चयान्कृतान् ।
मृगाणां महिषाणां च करीषैः शीतकारणात् ॥₆॥

गच्छनेव महाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा ।
शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टानमात्यांश्च सर्वशः ॥₇॥

मन्ये प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् ।
नातिदूरे हि मन्येऽहं नदीं मन्दाकिनीमितः ॥₈॥

उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदयम् ।
अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तुमिच्छता ॥₉॥

इदं चोदात्तदन्तानां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।

शैलपार्श्वे परिक्रान्तमन्योन्यमभिगर्जताम् ॥₁₀॥

यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने ।
तस्यासौ दृश्यते धूमः सङ्कुलः कृष्टवर्त्मनः ॥₁₁॥

अत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम् ।
आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टो महर्षिमिव राघवम् ॥₁₂॥

अथ गत्वा मुहूर्तं तु चित्रकूटं स राघवः ।
मन्दाकिनीमनुप्राप्तस्तं जनं चेदमब्रवीत् ॥₁₃॥

जगत्यां पुरुषव्याघ्र आस्ते वीरासने रतः ।
जनेन्द्रो निर्जनं प्राप्य धिन्मे जन्म सजीवितम् ॥₁₄॥

मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः ।
सराङ्कामान्परित्यज्य वने वसति राघवः ॥₁₅॥

इति लोकसमाक्रुष्टः पादेष्वद्य प्रसादयन् ।
रामस्य निपतिष्यामि सीतायाश्च पुनः पुनः ॥₁₆॥

एवं स विलपंस्तस्मिन्वने दशरथात्मजः ।
ददर्श महतीं पुण्यां पर्णशालां मनोरमाम् ॥₁₇॥

सालतालाश्चकर्णानां पर्णेर्बहुभिरावृताम् ।
विशालां मृदुभिस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे ॥₁₈॥

शक्रायुध निकाशैश्च कार्मुकैर्भारसाधनैः ।
रुक्मपृष्ठैर्महासारैः शोभितां शत्रुबाधकैः ॥₁₉॥

अर्करश्मिप्रतीकाशैर्घोरैस्तूणीगतैः शरैः ।
शोभितां दीप्तवदनैः सर्पैर्भोगवतीमिव ॥₂₀॥

महारजतवासोभ्यामसिभ्यां च विराजिताम् ।

रुक्मबिन्दुविचित्राभ्यां चर्मभ्यां चापि शोभिताम् ॥₂₁॥

गोधाङ्गुलित्रैरासाक्तैश्चित्रैः काञ्चनभूषितैः ।
अरिसङ्घैरनाधृष्यां मृगैः सिंहगुहामिव ॥₂₂॥

प्रागुदक्स्त्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम् ।
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥₂₃॥

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनां जटामण्डलधारिणम् ॥₂₄॥

तं तु कृष्णाजिनधरं चीरवल्कलवाससम् ।
ददर्श राममासीनमभितः पावकोपमम् ॥₂₅॥

सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ।
पृथिव्याः सगरान्ताया भर्तारं धर्मचारिणम् ॥₂₆॥

उपविष्टं महाबाहुं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ।
स्थण्डिले दर्भसम्स्तीर्णे सीतया लक्ष्मणेन च ॥₂₇॥

तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः ।
अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः कैकयीसुतः ॥₂₈॥

दृष्ट्वा च विललापार्तो बाष्पसन्दिग्धया गिरा ।
अशक्नुवन्धारयितुं धैर्याद्वचनमब्रवीत् ॥₂₉॥

यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद्युक्त उपासितुम् ।
वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः ॥₃₀॥

वासोभिर्बहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः ।
मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन् ॥₃₁॥

अधारयद्यो विविधाश्चित्राः सुमनसस्तदा ।

सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम् ॥³²॥

यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य सञ्चयः ।
शरीरं क्लेशसम्भूतं स धर्मं परिमार्गते ॥³³॥

चन्दनेन महार्हेण यस्याङ्गमुपसेवितम् ।
मलेन तस्याङ्गमिदं कथमार्यस्य सेव्यते ॥³⁴॥

मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः ।
धिष्णीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥³⁵॥

इत्येवं विलपन्दीनः प्रस्त्रिन्नमुखपङ्कजः ।
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन् ॥³⁶॥

दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः ।
उत्कार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किञ्चन ॥³⁷॥

बाष्पापिहित कण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम् ।
आर्येत्येवाभिसङ्कुश्य व्याहर्तुं नाशकत्ततः ॥³⁸॥

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन् ।
तावुभौ स समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत् ॥³⁹॥

ततः सुमन्त्रेण गुहेन चैव
समीयतू राजसुतावरण्ये ।
दिवाकरश्चैव निशाकरश्च
यथाम्बरे शुक्रबृहस्पतिभ्याम् ॥⁴⁰॥

तान्यार्थिवान्वारणयूथपाभान्
समागतांस्तत्र महत्यरण्ये ।
वनौकसस्तेऽपि समीक्ष्य सर्वे
अप्यश्रूण्यमुश्चन्प्रविहाय हर्षम् ॥⁴¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः॥

॥चतुर्नवतितमः सर्गः॥

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवः ।
अङ्गे भरतमारोप्य पर्यपृच्छत्समाहितः ॥₁॥

क्व नु तेऽभूत्पिता तात यदरण्यं त्वमागतः ।
न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तुमर्हसि ॥₂॥

चिरस्य बत पश्यामि दूराद्भरतमागतम् ।
दुष्प्रतीकमरण्येऽस्मिन्किं तात वनमागतः ॥₃॥

कच्चिदशरथो राजा कुशली सत्यसङ्गरः ।
राजसूयाश्वमेधानामाहर्ता धर्मनिश्चयः ॥₄॥

स कच्चिद्वाह्मणो विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युतिः ।
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥₅॥

तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती ।
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी ॥₆॥

कच्चिद्विनय सम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः ।
अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥₇॥

कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥₈॥

इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविशारदम् ।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित्त्वं तात मन्यसे ॥₉॥

कच्चिदात्म समाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।

कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः ॥₁₀॥

मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।
सुसंवृतो मन्त्रधरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः ॥₁₁॥

कच्चिन्निद्रावशं नैषि कचित्काले विबुध्यसे ।
कच्चिंश्चापररात्रिषु चिन्तयस्वर्थनैपुणम् ॥₁₂॥

कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति ॥₁₃॥

कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम् ।
क्षिप्रमारभसे कर्तुं न दीर्घयसि राघव ॥₁₄॥

कच्चित्तु सुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः ।
विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्तव्यानि पार्थिवाः ॥₁₅॥

कच्चिन्न तर्कैर्युक्ता वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः ।
त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम् ॥₁₆॥

कच्चित्सहस्रान्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत् ॥₁₇॥

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यदुपास्ते महीपतिः ।
अथ वाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥₁₈॥

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजमात्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥₁₉॥

कच्चिन्मुख्या महत्त्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः ॥₂₀॥

अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्शुचीन् ।

श्रेष्ठाञ्श्रेष्ठेषु कच्चिच्चं नियोजयसि कर्मसु ॥₂₁॥

कच्चिच्चां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ॥₂₂॥

उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसन्दूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्यकामं च यो न हन्ति स वध्यते ॥₂₃॥

कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान्मतिमाञ्शुचिः ।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ॥₂₄॥

बलवन्तश्च कच्चित्ते मुख्या युद्धविशारदाः ।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ॥₂₅॥

कचिद्वलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे ॥₂₆॥

कालातिक्रमणे ह्येव भक्त वेतनयोर्भृताः ।
भर्तुः कुप्यन्ति दुष्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्स्मृतः ॥₂₇॥

कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः ।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु सन्त्यजन्ति समाहिताः ॥₂₈॥

कच्चिज्ज्ञानपदो विद्वान्दक्षिणः प्रतिभानवान् ।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ॥₂₉॥

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥₃₀॥

कच्चिद्वपास्तानहितान्प्रतियातांश्च सर्वदा ।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन ॥₃₁॥

कच्चिन्न लोकायतिकान्ब्राह्मणांस्तात सेवसे ।

अनर्थ कुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ॥₃₂॥

धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः ।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते ॥₃₃॥

वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः ।
सत्यनामां दृढद्वारां हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ॥₃₄॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः स्त्रकर्मनिरतैः सदा ।
जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृतामात्यैः सहस्रशः ॥₃₅॥

प्रासादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम् ।
कच्चित्समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसि ॥₃₆॥

कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्टजनाकुलः ।
देवस्थानैः प्रपाभिश्च तडागैश्चोपशोभितः ॥₃₇॥

प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सवशोभितः ।
सुकृष्टसीमा पशुमान्हिंसाभिरभिवर्जितः ॥₃₈॥

अदेवमातृको रम्यः श्वापदैः परिवर्जितः ।
कच्चिञ्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव ॥₃₉॥

कच्चित्ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोको हि सुखमेधते ॥₄₀॥

तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित्ते भरणं कृतम् ।
रक्ष्या हि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः ॥₄₁॥

कच्चित्स्त्रियः सान्त्वयसि कच्चित्ताश्च सुरक्षिताः ।
कच्चिन्न श्रद्धास्यासां कच्चिद्गुह्यं न भाषसे ॥₄₂॥

कच्चिन्नाग वनं गुप्तं कुञ्जराणं च तृप्यसि ।

कच्चिद्दर्शयसे नित्यं मनुष्याणां विभूषितम् ।
उत्थायोत्थाय पूर्वाह्ने राजपुत्रो महापथे ॥⁴³॥

कच्चित्सर्वाणि दुर्गाणि धनधान्यायुधोदकैः ।
यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥⁴⁴॥

आयस्ते विपुलः कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः ।
अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव ॥⁴⁵॥

देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च ।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद्गच्छति ते व्ययः ॥⁴⁶॥

कच्चिदार्यो विशुद्धात्मा क्षारितश्चोरकर्मणा ।
अपृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्बध्यते शुचिः ॥⁴⁷॥

गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः ।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ ॥⁴⁸॥

व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुगतस्य च राघव ।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः ॥⁴⁹॥

यानि मिथ्याभिज्ञस्तानां पतन्त्यस्त्राणि राघव ।
तानि पुत्रपशून्मन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥⁵⁰॥

कच्चिद्बुधांश्च बालांश्च वैद्यमुख्यांश्च राघव ।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे ॥⁵¹॥

कच्चिद्गुरुंश्च वृद्धांश्च तापसान्देवतातिथीन् ।
चैत्यांश्च सर्वान्सिद्धार्थान्ब्राह्मणांश्च नमस्यसि ॥⁵²॥

कच्चिदर्थेन वा धर्मं धर्मं धर्मेण वा पुनः ।
उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन न विबाधसे ॥⁵³॥

कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च जयतां वर ।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान्भरत सेवसे ॥⁵⁴॥

कच्चित्ते ब्राह्मणाः शर्म सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
आशंसन्ते महाप्राज्ञ पौरजानपदैः सह ॥⁵⁵॥

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् ।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ॥⁵⁶॥

एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम् ।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिलक्षणम् ॥⁵⁷॥

मङ्गलस्याप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वशः ।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान्राजदोषांश्चतुर्दश ॥⁵⁸॥

कच्चित्स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव ।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि ॥⁵⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः॥

॥पञ्चनवतितमः सर्गः॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह ।
किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति ॥₁॥

शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ ।
ज्येष्ठ पुत्रे स्थिते राजन्न कनीयान्भवेन्नृपः ॥₂॥

स समृद्धां मया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव ।
अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः ॥₃॥

राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे सम्मतो मम ।
यस्य धर्मार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम् ॥₄॥

केकयस्थे च मयि तु ह्ययि चारण्यमाश्रिते ।
दिवमार्यं गतो राजा यायजूकः सतां मतः ॥₅॥

उत्तिष्ठ पुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकं पितुः ।
अहं चायं च शत्रुघ्नः पूर्वमेव कृतोदकौ ॥₆॥

प्रियेण किल दत्तं हि पितृलोकेषु राघव ।
अक्षय्यं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः ॥₇॥

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम् ।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः ॥₈॥

वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं परन्तपः ।
प्रगृह्य बाहू रामो वै पुष्पिताग्रो यथा द्रुमः ।
वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह ॥₉॥

तथा हि पतितं रामं जगत्यां जगतीपतिम् ।
कूलघातपरिश्रान्तं प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥₁₀॥

भ्रातरस्ते महेष्वासं सर्वतः शोककर्षितम् ।
रुदन्तः सह वैदेह्या सिषिचुः सलिलेन वै ॥₁₁॥

स तु संज्ञां पुनर्लब्ध्वा नेत्राभ्यामास्रमुत्सृजन् ।
उपाक्रामत काकुत्स्थः कृपणं बहुभाषितुम् ॥₁₂॥

किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जतिन महात्मना ।
यो मृतो मम शोकेन न मया चापि संस्कृतः ॥₁₃॥

अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा ह्वयानघ ।
शत्रुघेण च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः ॥₁₄॥

निष्प्रधानामनेकाग्रं नरेन्द्रेण विनाकृताम् ।
निवृत्तवनवासोऽपि नायोध्यां गन्तुमुत्सहे ॥₁₅॥

समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परन्तप ।
को नु शासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरं गते ॥₁₆॥

पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन् ।
वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतः कर्णसुखान्यहम् ॥₁₇॥

एवमुक्त्वा स भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः ।
उवाच शोकसन्तप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥₁₈॥

सीते मृतस्ते श्वशुरः पित्रा हीनोऽसि लक्ष्मण ।
भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतं पृथिवीपतिम् ॥₁₉॥

सान्त्वयित्वा तु तां रामो रुदन्तीं जनकात्मजाम् ।
उवाच लक्ष्मणं तत्र दुःखितो दुःखितं वचः ॥₂₀॥

आनयेद्भुदिपिण्याकं चीरमाहर चोत्तरम् ।
जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः ॥²¹॥

सीता पुरस्ताद्भ्रजतु ब्रमेनामभितो व्रज ।
अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा ॥²²॥

ततो नित्यानुगस्तेषां विदितात्मा महामतिः ।
मृदुर्दान्तश्च शान्तश्च रामे च दृढ भक्तिमान् ॥²³॥

सुमन्तस्तैर्नृपसुतैः सार्धमाश्वास्य राघवम् ।
अवातारयदालम्ब्य नदीं मन्दाकिनीं शिवाम् ॥²⁴॥

ते सुतीर्था ततः कृच्छ्रादुपागम्य यशस्विनः ।
नदीं मन्दाकिनीं रम्यां सदा पुष्पितकाननाम् ॥²⁵॥

शीघ्रस्रोतसमासाद्य तीर्थं शिवमकर्ममम् ।
सिषिचुस्तूदकं राज्ञे तत एतद्भवत्विति ॥²⁶॥

प्रगृह्य च महीपालो जलपूरितमञ्जलिम् ।
दिशं याम्यामभिमुखो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥²⁷॥

एतत्ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम् ।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥²⁸॥

ततो मन्दाकिनी तीरात्प्रत्युत्तीर्य स राघवः ।
पितृश्चकार तेजस्वी निवापं भ्रातृभिः सह ॥²⁹॥

ऐङ्गुदं बदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे ।
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥³⁰॥

इदं भुङ्क्त्व महा राजप्रीतो यदशना वयम् ।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥³¹॥

ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्युत्तीर्य नदीतटात् ।
आरुरोह नरव्याघ्रो रम्यसानुं महीधरम् ॥³²॥

ततः पर्णकुटीद्वारमासाद्य जगतीपतिः ।
परिजग्राह पाणिभ्यामुभौ भरतलक्ष्मणौ ॥³³॥

तेषां तु रुदतां शब्दात्प्रतिश्रुत्काभवद्गिरौ ।
भ्रातृणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव ॥³⁴॥

विज्ञाय तुमुलं शब्दं त्रस्ता भरतसैनिकाः ।
अब्रुवंश्चापि रामेण भरतः सङ्गतो ध्रुवम् ।
तेषामेव महाशब्दः शोचतां पितरं मृतम् ॥³⁵॥

अथ वासान्परित्यज्य तं सर्वेऽभिमुखाः स्वनम् ।
अप्येक मनसो जग्मुर्यथास्थानं प्रधाविताः ॥³⁶॥

हयैरन्ये गजैरन्ये रथैरन्ये स्खलङ्कृतैः ।
सुकुमारास्तथैवान्ये पद्भिरेव नरा ययुः ॥³⁷॥

अचिरप्रोषितं रामं चिरविप्रोषितं यथा ।
द्रष्टुकामो जनः सर्वो जगाम सहसाश्रमम् ॥³⁸॥

भ्रातृणां त्वरितास्ते तु द्रष्टुकामाः समागमम् ।
ययुर्बहुविधैर्यानिः खुरनेमिसमाकुलैः ॥³⁹॥

सा भूमिर्बहुभिर्यानिः खुरनेमिसमाहता ।
मुमोच तुमुलं शब्दं द्यौरिवाभ्रसमागमे ॥⁴⁰॥

तेन वित्रासिता नागाः करेणुपरिवारिताः ।
आवासयन्तो गन्धेन जग्मुरन्यद्वनं ततः ॥⁴¹॥

वराहमृगसिंहाश्च महिषाः सक्ष्वानराः ।
व्याघ्र गोकर्णगवया वित्रेषुः पृषतैः सह ॥⁴²॥

रथाङ्गसाह्या नत्यूहा हंसाः कारण्डवाः प्लवाः ।
तथा पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञा भेजिरे दिशः ॥⁴³॥

तेन शब्देन वित्रस्तैराकाशं पक्षिभिर्वृतम् ।
मनुष्यैरावृता भूमिरुभयं प्रबभौ तदा ॥⁴⁴॥

तान्नरान्बाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान् ।
पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ॥⁴⁵॥

स तत्र कांश्चित्परिषस्वजे नरान्
नराश्च केचित्तु तमभ्यवादयन् ।
चकार सर्वान्सवयस्यबान्धवान्
यथार्हमासाद्य तदा नृपात्मजः ॥⁴⁶॥

ततः स तेषां रुदतां महात्मनाम्
भुवं च खं चानुविनादयन्स्वनः ।
गुहा गिरीणां च दिशश्च सन्ततम्
मृदङ्गघोषप्रतिमो विशुश्रुवे ॥⁴⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः॥

॥षण्णवतितमः सर्गः॥

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च ।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः ॥₁॥

राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति ।
ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् ॥₂॥

कौसल्या बाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ।
सुमित्रामब्रवीद्दीना याश्चान्या राजयोषितः ॥₃॥

इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्ट कर्मणाम् ।
वने प्राक्केवलं तीर्थं ये ते निर्विषयी कृताः ॥₄॥

इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः ।
स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात् ॥₅॥

दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु सा ददर्श महीतले ।
पितुरिङ्गुदिपिण्याकं न्यस्तमायतलोचना ॥₆॥

तं भूमौ पितुरार्तेन न्यस्तं रामेण वीक्ष्य सा ।
उवाच देवी कौसल्या सर्वा दशरथस्त्रियः ॥₇॥

इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महात्मनः ।
राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि ॥₈॥

तस्य देवसमानस्य पार्थिवस्य महात्मनः ।
नैतदौपयिकं मन्ये भुक्तभोगस्य भोजनम् ॥₉॥

चतुरन्तां महीं भुक्त्वा महेन्द्र सदृशो भुवि ।

कथमिङ्गुदिपिण्याकं स भुङ्क्ते वसुधाधिपः ॥₁₀॥

अतो दुःखतरं लोके न किञ्चित्प्रतिभाति मा ।
यत्र रामः पितुर्दद्यादिङ्गुदीक्षोदमृद्धिमान् ॥₁₁॥

रामेणेङ्गुदिपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे ।
कथं दुःखेन हृदयं न स्फोटति सहस्रधा ॥₁₂॥

एवमार्ता सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वास्य तां तदा ।
ददृशुश्चाश्रमे रामं स्वर्गाच्च्युतमिवामरम् ॥₁₃॥

सर्वभोगैः परित्यक्तं राम सम्प्रेक्ष्य मातरः ।
आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्षिताः ॥₁₄॥

तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाञ्शुभान् ।
मातृणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसङ्गरः ॥₁₅॥

ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः ।
प्रममार्जुं रजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः ॥₁₆॥

सौमित्रिरपि ताः सर्वा मातृह्सम्प्रेक्ष्य दुःखितः ।
अभ्यवादयतासक्तं शनै रामादनन्तरम् ॥₁₇॥

यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वा ववृतिरे स्त्रियः ।
वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे ॥₁₈॥

सीतापि चरणांस्तासामुपसङ्गृह्य दुःखिता ।
श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी सा बभूवाग्रतः स्थिता ॥₁₉॥

तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा ।
वनवासकृशां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥₂₀॥

विदेहराजस्य सुता स्नुषा दशरथस्य च ।
रामपत्नी कथं दुःखं सम्प्राप्ता निर्जने वने ॥₂₁॥

पद्ममातपसन्तप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम् ।
काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः ॥₂₂॥

मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम् ।
भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसम्भवः ॥₂₃॥

ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः ।
पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य स राघवः ॥₂₄॥

पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै
बृहस्पतेरिन्द्र इवामराधिपः ।
प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः
सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥₂₅॥

ततो जघन्यं सहितैः स मन्त्रिभिः
पुरप्रधानैश्च सहैव सैनिकैः ।
जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवान्
उपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् ॥₂₆॥

उपोपविष्टस्तु तदा स वीर्यवाम्
तपस्त्रिवेषेण समीक्ष्य राघवम् ।
श्रिया ज्वलन्तं भरतः कृताञ्जलिर्-
यथा महेन्द्रः प्रयतः प्रजापतिम् ॥₂₇॥

किमेष वाक्यं भरतोऽद्य राघवम्
प्रणम्य सत्कृत्य च साधु वक्ष्यति ।
इतीव तस्यार्यजनस्य तत्त्वतो
बभूव कौतूहलमुत्तमं तदा ॥₂₈॥

स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो

महानुभावो भरतश्च धार्मिकः ।
वृताः सुहृद्भिश्च विरेजुरध्वरे
यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः॥

॥सप्तनवतितमः सर्गः॥

तं तु रामः समाश्वास्य भ्रातरं गुरुवत्सलम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥₁॥

किमेतदिच्छेयमहं श्रोतुं प्रव्याहृतं त्वया ।
यस्माच्चमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी ॥₂॥

यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः ।
हिक्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥₃॥

इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना ।
प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥₄॥

आर्यं तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ॥₅॥

स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परन्तप ।
चकार सुमहत्पापमिदमात्मयशोहरम् ॥₆॥

सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्षिता ।
पतिष्यति महाघोरे निरये जननी मम ॥₇॥

तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥₈॥

इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातुरश्च याः ।
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₉॥

तदानुपूर्व्या युक्तं च युक्तं चात्मनि मानद ।

राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदः कुरु ॥₁₀॥

भवत्वविधवा भूमिः समग्रा पतिना त्वया ।
शशिना विमलेनेव शारदी रजनी यथा ॥₁₁॥

एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₁₂॥

तदिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् ।
पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रमितुमुत्सहे ॥₁₃॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः केकयीसुतः ।
रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः ॥₁₄॥

तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥₁₅॥

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेत्तद्विधो जनः ॥₁₆॥

न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरि सूदन ।
न चापि जननीं बाल्यात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥₁₇॥

यावत्पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते ।
तावद्धर्मभृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥₁₈॥

एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव ।
माता पितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे ॥₁₉॥

त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् ।
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा ॥₂₀॥

एवं कृत्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ ।

व्यादिश्य च महातेजा दिवं दशरथो गतः ॥₂₁॥

स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव ।
पित्रा दत्तं यथाभागमुपभोक्तुं ब्रूमर्हसि ॥₂₂॥

चतुर्दश समाः सौम्य दण्डकारण्यमाश्रितः ।
उपभोक्ष्ये ब्रह्म दत्तं भागं पित्रा महात्मना ॥₂₃॥

यदब्रवीन्मां नरलोकसत्कृतः
पिता महात्मा विबुधाधिपोपमः ।
तदेव मन्ये परमात्मनो हितम्
न सर्वलोकेश्वरभावमव्ययम् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः॥

॥अष्टनवतितमः सर्गः॥

ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः ।
शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत ॥₁॥

रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्धृताः ।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन् ॥₂॥

तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत् ।
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामवचनमब्रवीत् ॥₃॥

सान्निता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्दामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥₄॥

महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे ।
दुरावारं बदन्येन राज्यखण्डमिदं महत् ॥₅॥

गतिं खर इवाश्वस्य ताक्ष्यस्येव पतत्रिणः ।
अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते ॥₆॥

सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते ।
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥₇॥

यथा तु रोपितो वृक्षः पुरुषेण विवर्धितः ।
ह्रस्वकेन दुरारोहो रूढस्कन्धो महाद्रुमः ॥₈॥

स यदा पुष्पितो भूत्वा फलानि न विदर्शयेत् ।
स तां नानुभवेत्प्रीतिं यस्य हेतोः प्रभावितः ॥₉॥

एषोपमा महाबाहो बमर्थं वेत्तुमर्हसि ।

यदि त्वमस्मानृषभो भर्ता भृत्यान् शधि हि ॥₁₀॥

श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्राश्च सर्वशः ।
प्रतपन्तमिवादित्यं राज्ये स्थितमरिन्दमम् ॥₁₁॥

तवानुयाने काकुत्ष्ठ मत्ता नर्दन्तु कुञ्जराः ।
अन्तःपुर गता नार्यो नन्दन्तु सुसमाहिताः ॥₁₂॥

तस्य साध्वित्यमन्यन्त नागरा विविधा जनाः ।
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः ॥₁₃॥

तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् ।
रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान् ॥₁₄॥

नात्मनः कामकारोऽस्ति पुरुषोऽयमनीश्वरः ।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥₁₅॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥₁₆॥

यथा फलानं पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् ।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥₁₇॥

यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वावसीदति ।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशं गताः ॥₁₈॥

अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥₁₉॥

आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि ।
आयुस्ते हीयते यस्य स्थितस्य च गतस्य च ॥₂₀॥

सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति ।

गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते ॥₂₁॥

गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः ।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत् ॥₂₂॥

नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमिते रवौ ।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ॥₂₃॥

हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिहागतम् ।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसङ्क्षयः ॥₂₄॥

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे ।
समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कश्चन ॥₂₅॥

एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ॥₂₆॥

नात्र कश्चिदथा भावं प्राणी समभिवर्तते ।
तेन तस्मिन्न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः ॥₂₇॥

यथा हि सार्धं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः ।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥₂₈॥

एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पितृपैतामहो ध्रुवः ।
तमापन्नः कथं शोचेदस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥₂₉॥

वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥₃₀॥

धर्मात्मा स शुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।
धूतपापो गतः स्वर्गं पिता नः पृथिवीपतिः ॥₃₁॥

भृत्यानां भरणात्सम्यक्प्रजानां परिपालनात् ।

अर्थादानाच्च धर्मेण पिता नस्त्रिदिवं गतः ॥₃₂॥

इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैर्भोगांश्चावाप्य पुष्कलान् ।
उत्तमं चायुरासाद्य स्वर्गतः पृथिवीपतिः ॥₃₃॥

स जीर्णं मानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः ।
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ॥₃₄॥

तं तु नैवं विधः कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति ।
बद्धिधो यद्विधश्चापि श्रुतवान्बुद्धिमत्तरः ॥₃₅॥

एते बहुविधाः शोका विलाप रुदिते तथा ।
वर्जनीया हि धीरेण सर्वावस्थासु धीमता ॥₃₆॥

स स्वस्थो भव मा शोचो यात्रा चावस तां पुरीम् ।
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदताम्बर ॥₃₇॥

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा ।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ॥₃₈॥

न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिन्दम ।
तत्त्वयापि सदा मान्यं स वै बन्धुः स नः पिता ॥₃₉॥

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत् ।
उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः ॥₄₀॥

को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिन्दम ।
न त्वां प्रव्यथयेद्दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ॥₄₁॥

सम्मतश्चासि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान् ।
यथा मृतस्तथा जीवन्वथासति तथा सति ॥₄₂॥

यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात्परितप्येत केन सः ।

स एवं व्यसनं प्राप्य न विषीदितुमर्हति ॥⁴³॥

अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसङ्गरः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांश्चासि राघव ॥⁴⁴॥

न त्वामेवं गुणैर्युक्तं प्रभवाभवकोविदम् ।
अविषह्यतमं दुःखमासादयितुमर्हति ॥⁴⁵॥

प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् ।
क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥⁴⁶॥

धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम् ।
हन्मि तीव्रेण दण्डेन दण्डार्हा पापकारिणीम् ॥⁴⁷॥

कथं दशरथाज्जातः शुद्धाभिजनकर्मणः ।
जानन्धर्ममधर्मिष्ठं कुर्या कर्म जुगुप्सितम् ॥⁴⁸॥

गुरुः क्रियावान्वृद्धश्च राजा प्रेतः पितेति च ।
तातं न परिगर्हेयं दैवतं चेति संसदि ॥⁴⁹॥

को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृशं कर्म किंलिषम् ।
स्त्रियाः प्रियचिकीर्षुः सन्कुर्याद्धर्मज्ञ धर्मवित् ॥⁵⁰॥

अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुराश्रुतिः ।
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता ॥⁵¹॥

साध्वर्थमभिसन्धाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात् ।
तातस्य यदतिक्रान्तं प्रत्याहरतु तद्भवान् ॥⁵²॥

पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते ।
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा ॥⁵³॥

तदपत्यं भवानस्तु मा भवान्दुष्कृतं पितुः ।

अभिपत्तत्कृतं कर्म लोके धीरविगर्हितम् ॥⁵⁴॥

कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः ।
पौरजानपदान्सर्वास्त्रातु सर्वमिदं भवान् ॥⁵⁵॥

क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् ।
ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ॥⁵⁶॥

अथ क्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि ।
धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि ॥⁵⁷॥

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमाश्रमम् ।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमर्हसि ॥⁵⁸॥

श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम् ।
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति ॥⁵⁹॥

हीनबुद्धिगुणो बालो हीनः स्थानेन चाप्यहम् ।
भवता च विना भूतो न वर्तयितुमुत्सहे ॥⁶⁰॥

इदं निखिलमव्यग्रं पित्र्यं राज्यमकण्टकम् ।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञ सह बान्धवैः ॥⁶¹॥

इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु धर्मज्ञ सह बान्धवैः ।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रवन्मन्त्रकोविदाः ॥⁶²॥

अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यां पालने व्रज ।
विजित्य तरसा लोकान्मरुद्भिरिव वासवः ॥⁶³॥

ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन्दुर्हदः साधु निर्दहन् ।
सुहृदस्तर्पयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम् ॥⁶⁴॥

अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने ।

अद्य भीताः पालयन्तां दुर्हृदस्ते दिशो दश ॥ 65 ॥

आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ ।
अद्य तत्र भवन्तं च पितरं रक्ष किंलिषात् ॥ 66 ॥

शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि ।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥ 67 ॥

अथ वा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः ।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम् ॥ 68 ॥

तथापि रामो भरतेन ताम्यत
प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ॥ 69 ॥

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे
समं जनो हर्षमवाप दुःखितः ।
न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्
स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ॥ 70 ॥

तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभाः
तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः ।
तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः
प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ॥ 71 ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः ॥

॥एकोनशततमः सर्गः॥

पुनरेवं ब्रुवाणं तु भरतं लक्ष्मणाग्रजः ।
प्रत्युवच ततः श्रीमाञ्जातिमध्येऽतिसत्कृतः ॥₁॥

उपपन्नमिदं वाक्यं यत्त्वमेवमभाषथाः ।
जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात् ॥₂॥

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्रहन् ।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ॥₃॥

देवासुरे च सङ्ग्रामे जनन्ये तव पार्थिवः ।
सम्प्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ॥₄॥

ततः सा सम्प्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी ।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ॥₅॥

तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा ।
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ॥₆॥

तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ॥₇॥

सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः ।
शीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥₈॥

भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् ।
कर्तुमर्हति राजेन्द्रं क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥₉॥

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् ।

पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥₁₀॥

श्रूयते हि पुरा तात श्रुतिर्गीता यशस्विनी ।
गयेन यजमानेन गयेष्वेव पितृन्प्रति ॥₁₁॥

पुं नाम्ना नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितृन्यत्पाति वा सुतः ॥₁₂॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः ।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद्भयां व्रजेत् ॥₁₃॥

एवं राजर्षयः सर्वे प्रतीता राजनन्दन ।
तस्मात्त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात्प्रभो ॥₁₄॥

अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरनुरञ्जय ।
शत्रुघ्न सहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः ॥₁₅॥

प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन् ।
आभ्यां तु सहितो राजन्वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥₁₆॥

त्वं राजा भव भरत स्वयं नराणाम्
वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम् ।
गच्छ त्वं पुरवरमद्य सम्प्रहृष्टः
संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये ॥₁₇॥

छायां ते दिनकरभाः प्रबाधमानम्
वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम् ।
एतेषामहमपि काननद्रुमाणाम्
छायां तामतिशयिनीं सुखं श्रियिष्ये ॥₁₈॥

शत्रुघ्नः कुशलमतिस्तु ते सहायः
सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम् ।
चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रम्

सत्यस्थं भरत चराम मा विषादम् ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकोनशततमः सर्गः॥

॥शततमः सर्गः॥

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः ।
उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः ॥₁॥

साधु राघव मा भूते बुद्धिरेवं निरर्थका ।
प्राकृतस्य नरस्येव आर्य बुद्धेस्तपस्विनः ॥₂॥

कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् ।
यदेको जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥₃॥

तस्मान्माता पिता चेति राम सञ्जेत यो नरः ।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति काचिद्धि कस्यचित् ॥₄॥

यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चित्क्वचिद्वसेत् ।
उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ॥₅॥

एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु ।
आवासमात्रं काकुत्स्थ सञ्जन्ते नात्र सञ्जनाः ॥₆॥

पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हति नरोत्तम ।
आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ॥₇॥

समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय ।
एकवेणीधरा हि त्वां नगरी सम्प्रतीक्षते ॥₈॥

राजभोगाननुभवन्महार्हान्यार्थिवात्मज ।
विहर त्वमयोध्यायां यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥₉॥

न ते कश्चिद्वशरतःस्त्वं च तस्य न कश्चन ।

अन्यो राजा ब्रमन्यश्च तस्मात्कुरु यदुच्यते ॥₁₀॥

गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै ।
प्रवृत्तिरेषा मर्त्यानां ब्रं तु मिथ्या विहन्यसे ॥₁₁॥

अर्थधर्मपरा ये ये तांस्ताञ्शोचामि नेतरान् ।
ते हि दुःखमिह प्राप्य विनाशं प्रेत्य भेजिरे ॥₁₂॥

अष्टका पितृदैवत्यमित्ययं प्रसृतो जनः ।
अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति ॥₁₃॥

यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात्प्रवसतः श्राद्धं न तत्पथ्यशनं भवेत् ॥₁₄॥

दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः ।
यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व सन्त्यज ॥₁₅॥

स नास्ति परमित्येव कुरु बुद्धिं महामते ।
प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥₁₆॥

सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकनिदर्शिनीम् ।
राज्यं ब्रं प्रतिगृहीष्व भरतेन प्रसादितः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे शततमः सर्गः॥

॥एकाधिकशततमः सर्गः॥

जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यात्मनां वरः ।
उवाच परया युक्त्या स्वबुद्ध्या चाविपन्नया ॥₁॥

भवान्मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान् ।
अकार्यं कार्यसङ्काशमपथ्यं पथ्यसम्मितम् ॥₂॥

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः ।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥₃॥

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ॥₄॥

अनारयस्त्वार्य सङ्काशः शौचाद्धीनस्तथा शुचिः ।
लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ॥₅॥

अधर्मं धर्मवेषेण यदीमं लोकसङ्करम् ।
अभिपत्स्ये शुभं हिंत्वा क्रियाविधिविवर्जितम् ॥₆॥

कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः ।
बहु मंस्यति मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥₇॥

कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम् ।
अनया वर्तमानोऽहं वृत्त्या हीनप्रतिज्ञया ॥₈॥

कामवृत्तस्त्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते ।
यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ॥₉॥

सत्यमेवानृशंस्यं च राजवृत्तं सनातनम् ।

तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥₁₀॥

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परमं गच्छति क्षयम् ॥₁₁॥

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः ।
धर्मः सत्यं परो लोके मूलं स्वर्गस्य चोच्यते ॥₁₂॥

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्यं पद्मा समाश्रिता ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥₁₃॥

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥₁₄॥

एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् ।
मञ्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते ॥₁₅॥

सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये ।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतः ॥₁₆॥

नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥₁₇॥

असत्यसन्धस्य सतश्चलस्यास्थिरचेतसः ।
नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम् ॥₁₈॥

प्रत्यगात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं स्वयम् ।
भारः सत्पुरुषाचीर्णस्तदर्थमभिनन्द्यते ॥₁₉॥

क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम् ।
क्षुद्रोर्नृशंसैर्लुब्धैश्च सेवितं पापकर्मभिः ॥₂₀॥

कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्य च ।

अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम् ॥₂₁॥

भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि ।
स्वर्गस्थं चानुबध्नन्ति सत्यमेव भजेत तत् ॥₂₂॥

श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्यादद्भवानवधार्य माम् ।
आह युक्तिकरैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह ॥₂₃॥

कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः ।
भरतस्य करिष्यामि वचो हि त्वा गुरोर्वचः ॥₂₄॥

स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ ।
प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा ॥₂₅॥

वनवासं वसन्नेवं शुचिर्नियतभोजनः ।
मूलैः पुष्पैः फलैः पुण्यैः पितृन्देवांश्च तर्पयन् ॥₂₆॥

सन्तुष्टपञ्चवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रवर्तये ।
अकुहः श्रद्धधानः सन्कार्याकार्यविचक्षणः ॥₂₇॥

कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम् ।
अग्निर्वायुश्च सोमश्च कर्मणां फलभागिनः ॥₂₈॥

शतं क्रतूनामाहृत्य देवराट्ट्रिदिवं गतः ।
तपांस्युग्राणि चास्थाय दिवं याता महर्षयः ॥₂₉॥

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च
भूतानुकम्पां प्रियवादितां च ।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च
पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ॥₃₀॥

धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेताः
तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः ।

अहिंसका वीतमलाश्च लोके
भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकाधिकशततमः सर्गः॥

॥द्व्यधिकशततमः सर्गः॥

क्रुद्धमाज्ञाय राम तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्य गतागतिम् ।
निवर्तयितु कामस्तु त्वामेतद्वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

इमां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथ निबोध मे ।
सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी यत्र निर्मिता ।
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयम्भूर्देवतैः सह ॥₂॥

स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्झहार वसुन्धराम् ।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥₃॥

आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः ।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥₄॥

विवस्वान्कश्यपाञ्जज्ञे मनुर्वेवस्वतः स्मृतः ।
स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥₅॥

यस्येयं प्रथमं दत्ता समृद्धा मनुना मही ।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् ॥₆॥

इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरेवेति विश्रुतः ।
कुक्षेरथात्मजो वीरो विकुक्षिरुदपद्यत ॥₇॥

विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् ।
बाणस्य तु महाबाहुरनरण्यो महायशः ॥₈॥

नाना वृष्टिर्बभूवास्मिन्न दुर्भिक्षं सतां वरे ।
अनरण्ये महाराजे तस्करो वापि कश्चन ॥₉॥

अनरण्यान्महाबाहुः पृथू राजा बभूव ह ।
तस्मात्पृथोर्महाराजस्त्रिशङ्कुरुदपद्यत ।
स सत्यवचनाद्वीरः सशरीरो दिवं गतः ॥₁₀॥

त्रिशङ्कोरभवत्सूनुर्धुन्धुमारो महायशाः ।
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्चो व्यजायत ॥₁₁॥

युवनाश्च सुतः श्रीमान्मान्धाता समपद्यत ।
मान्धातुस्तु महातेजाः सुसन्धिरुदपद्यत ॥₁₂॥

सुसन्धेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित् ।
यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो रिपुसूदनः ॥₁₃॥

भरतात्तु महाबाहोरसितो नाम जायत ।
यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः ।
हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः ॥₁₄॥

तांस्तु सर्वान्प्रतिव्यूह्य युद्धे राजा प्रवासितः ।
स च शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः ।
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः ॥₁₅॥

भार्गवश्चवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः ।
तमृषिं समुपागम्य कालिन्दी बभ्यवादयत् ॥₁₆॥

स तामभ्यवदद्विप्रो वरेप्सुं पुत्रजन्मनि ।
ततः सा गृहमागम्य देवी पुत्रं व्यजायत ॥₁₇॥

सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ।
गरेण सह तेनैव जातः स सगरोऽभवत् ॥₁₈॥

स राजा सगरो नाम यः समुद्रमखानयत् ।
द्विष्टा पर्वणि वेगेन त्रासयन्तमिमाः प्रजाः ॥₁₉॥

असमञ्जस्तु पुत्रोऽभूत्सगरस्येति नः श्रुतम् ।
जीवन्नेव स पित्रा तु निरस्तः पापकर्मकृत् ॥²⁰॥

अंशुमानिति पुत्रोऽभूदसमञ्जस्य वीर्यवान् ।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ॥²¹॥

भगीरथात्ककुत्स्थस्तु काकुत्स्था येन तु स्मृताः ।
ककुत्स्थस्य तु पुत्रोऽभूद्रघुर्येन तु राघवः ॥²²॥

रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ।
कल्माषपादः सौदास इत्येवं प्रथितो भुवि ॥²³॥

कल्माषपादपुत्रोऽभूच्छङ्खणस्त्विति विश्रुतः ।
यस्तु तद्वीर्यमासाद्य सहसेनो व्यनीनशत् ॥²⁴॥

शङ्खणस्य तु पुत्रोऽभूच्छूरः श्रीमान्सुदर्शनः ।
सुदर्शनस्याग्निवर्ण अग्निवर्षस्य शीघ्रगः ॥²⁵॥

शीघ्रगस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रशुश्रुकः ।
प्रशुश्रुकस्य पुत्रोऽभूदम्बरीषो महाद्युतिः ॥²⁶॥

अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषः सत्यविक्रमः ।
नहुषस्य च नाभागः पुत्रः परमधार्मिकः ॥²⁷॥

अजश्च सुव्रतश्चैव नाभागस्य सुतावुभौ ।
अजस्य चैव धर्मात्मा राजा दशरथः सुतः ॥²⁸॥

तस्य ज्येष्ठोऽसि दायादो राम इत्यभिविश्रुतः ।
तद्गृहाण स्वकं राज्यमवेक्षस्व जगन्नृप ॥²⁹॥

इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः ।
पूर्वजेनावरः पुत्रो ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते ॥³⁰॥

स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः
सनातनं नाद्य विहातुमर्हसि ।
प्रभूतरत्नामनुशाधि मेदिनीम्
प्रभूतराष्ट्रां पितृवन्महायशाः ॥₃₁ ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे द्वाधिकशततमः सर्गः॥

॥त्र्यधिकशततमः सर्गः॥

वसिष्ठस्तु तदा राममुक्त्वा राजपुरोहितः ।
अब्रवीद्धर्मसंयुक्तं पुनरेवापरं वचः ॥₁॥

पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवस्त्रयः ।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव ॥₂॥

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात्स गुरुरुच्यते ॥₃॥

स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परन्तप ।
मम त्वं वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥₄॥

इमा हि ते परिषदः श्रेणयश्च समागताः ।
एषु तात चरन्धर्मं नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥₅॥

वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्यवर्तितुम् ।
अस्यास्तु वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥₆॥

भरतस्य वचः कुर्वन्याचमानस्य राघव ।
आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम ॥₇॥

एवं मधुरमुक्तस्तु गुरुणा राघवः स्वयम् ।
प्रत्युवाच समासीनं वसिष्ठं पुरुषर्षभः ॥₈॥

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा ।
न सुप्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ॥₉॥

यथाशक्ति प्रदानेन स्नापनाच्छादनेन च ।

नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च ॥₁₀॥

स हि राजा जनयिता पिता दशरथो मम ।
आज्ञातं यन्मया तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति ॥₁₁॥

एवमुक्तस्तु रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम् ।
उवाच परमोदारः सूतं परमदुर्मनाः ॥₁₂॥

इह मे स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे ।
आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे न प्रसीदति ॥₁₃॥

अनाहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः ।
शेष्ये पुरस्ताच्छालाया यावन्न प्रतियास्यति ॥₁₄॥

स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मनाः ।
कुशोत्तरमुपस्थाप्य भूमावेवास्तरत्स्वयम् ॥₁₅॥

तमुवाच महातेजा रामो राजर्षिसत्तमाः ।
किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसि ॥₁₆॥

ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान्नोद्धुमिहार्हति ।
न तु मूर्धावसिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने ॥₁₇॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल हिबैतद्दारुणं व्रतम् ।
पुरवर्यामितः क्षिप्रमयोध्यां याहि राघव ॥₁₈॥

आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् ।
उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ ॥₁₉॥

ते तमूचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः ।
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः ॥₂₀॥

एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति ।

अत एव न शक्ताः स्मो व्यावर्तयितुमञ्जसा ॥₂₁॥

तेषामाज्ञाय वचनं रामो वचनमब्रवीत् ।
एवं निबोध वचनं सुहृदां धर्मचक्षुषाम् ॥₂₂॥

एतच्चैवोभयं श्रुत्वा सम्यक्सम्पश्य राघव ।
उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम् ॥₂₃॥

अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः श्रेणयस्तथा ॥₂₄॥

न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम् ।
आर्यं परमधर्मज्ञमभिजानामि राघवम् ॥₂₅॥

यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः ।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥₂₆॥

धर्मात्मा तस्य तथ्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः ।
उवाच रामः सम्प्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् ॥₂₇॥

विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवता मम ।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा ॥₂₈॥

उपधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः ।
युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् ॥₂₉॥

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम् ।
सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसन्धे महात्मनि ॥₃₀॥

अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः ।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥₃₁॥

वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् ।

अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे त्र्यधिकशततमः सर्गः॥

॥चतुरधिकशततमः सर्गः॥

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम् ।
विस्मिताः सङ्गमं प्रेक्ष्य समवेता महर्षयः ॥₁॥

अन्तर्हितास्त्वृषिगणाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
तौ भ्रातरौ महात्मानौ काकुत्स्थौ प्रशशंसिरे ॥₂॥

स धन्यो यस्य पुत्रौ द्वौ धर्मज्ञौ धर्मविक्रमौ ।
श्रुत्वा वयं हि सम्भाषामुभयोः स्पृहयामहे ॥₃॥

ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः ।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः सङ्गता वचः ॥₄॥

कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः ।
ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे ॥₅॥

सदानृणमिमं रामं वयमिच्छामहे पितुः ।
अनृणत्वाच्च कैकेय्याः स्वर्गं दशरथो गतः ॥₆॥

एतावदुक्त्वा वचनं गन्धर्वाः समहर्षयः ।
राजर्षयश्चैव तथा सर्वे स्वां स्वां गतिं गताः ॥₇॥

ह्लादितस्तेन वाक्येन शुभेन शुभदर्शनः ।
रामः संहृष्टवदनस्तानृषीन्भ्यपूजयत् ॥₈॥

स्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सञ्जमानया ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत् ॥₉॥

राजधर्ममनुप्रेक्ष्य कुलधर्मानुसन्ततिम् ।

कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ मम मातुश्च याचनाम् ॥₁₀॥

रक्षितुं सुमहद्राज्यमहमेकस्तु नोत्सहे ।
पौरजानपदांश्चापि रक्तात्रञ्जयितुं तथा ॥₁₁॥

ज्ञातयश्च हि योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः ।
त्वामेव प्रतिकाङ्क्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ॥₁₂॥

इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि ।
शक्तिमानसि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने ॥₁₃॥

इत्युक्त्वा न्यपतद्भातुः पादयोर्भरतस्तदा ।
भृशं सम्प्रार्थयामास राममेवं प्रियं वदः ॥₁₄॥

तमङ्गे भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयम् ॥₁₅॥

आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या ।
भृशमुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥₁₆॥

अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः ।
सर्वकार्याणि सम्मन्य सुमहान्त्यपि कारय ॥₁₇॥

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात्सागरो वेलं न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥₁₈॥

कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् ।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ॥₁₉॥

एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत् ।
तेजसादित्यसङ्काशं प्रतिपद्यन्द्रदर्शनम् ॥₂₀॥

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।

एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥₂₁॥

सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके ह्यवरुह्य च ।
प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥₂₂॥

स पादुके ते भरतः प्रतापवान्
स्वलङ्कृते सम्परिगृह्य धर्मवित् ।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवम्
चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥₂₃॥

अथानुपूर्व्यात्प्रतिपूज्य तं जनम्
गुरुंश्च मन्त्रिप्रकृतीस्तथानुजौ ।
व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः
स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ॥₂₄॥

तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठो
दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः ।
स त्वेव मातृरभिवाद्य सर्वा
रुदन्कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः॥

॥पञ्चाधिकशततमः सर्गः॥

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा ।
आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नेन समन्वितः ॥₁॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिश्च दृढव्रतः ।
अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः ॥₂॥

मन्दाकिनीं नदीं रम्यां प्राङ्मुखास्ते ययुस्तदा ।
प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम् ॥₃॥

पश्यन्धातुसहस्राणि रम्याणि विविधानि च ।
प्रययौ तस्य पार्श्वेन ससैन्यो भरतस्तदा ॥₄॥

अदूराच्चित्रकूटस्य ददर्श भरतस्तदा ।
आश्रमं यत्र स मुनिर्भरद्वाजः कृतालयः ॥₅॥

स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य बुद्धिमान् ।
अवतीर्य रथात्पादौ ववन्दे कुलनन्दनः ॥₆॥

ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत् ।
अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम् ॥₇॥

एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धीमता ।
प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः ॥₈॥

स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढविक्रमः ।
राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ॥₉॥

पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तच्चतः ।

चतुर्दश हि वर्षाणि य प्रतिज्ञा पितुर्मम ॥₁₀॥

एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत् ॥₁₁॥

एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते ।
अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरे तव ॥₁₂॥

एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः ।
पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ ॥₁₃॥

निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना ।
अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे ॥₁₄॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः ।
भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत् ॥₁₅॥

नैतच्चित्रं नरव्याघ्र शीलवृत्तवतां वर ।
यदार्यं त्वयि तिष्ठेत्तु निम्ने वृष्टिमिवोदकम् ॥₁₆॥

अमृतः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः ॥₁₇॥

तमृषिं तु महात्मानमुक्तवाक्यं कृताञ्जलिः ।
आमन्त्रयितुमारेभे चरणावुपगृह्य च ॥₁₈॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः ।
भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः ॥₁₉॥

यानैश्च शकटैश्चैव ह्यैश्चागैश्च सा चमूः ।
पुनर्निवृत्ता विस्तीर्णा भरतस्यानुयायिनी ॥₂₀॥

ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्त्वा मिमालिनीम् ।

ददृशुस्तां पुनः सर्वे गङ्गां शिवजलां नदीम् ॥₂₁॥

तां रम्यजलसम्पूर्णां सन्तीर्य सह बान्धवः ।
शृङ्गवेरपुरं रम्यं प्रविवेश ससैनिकः ॥₂₂॥

शृङ्गवेरपुराद्भूय अयोध्यां सन्ददर्श ह ।
भरतो दुःखसन्तप्तः सारथिं चेदमब्रवीत् ॥₂₃॥

सारथे पश्य विध्वस्ता अयोध्या न प्रकाशते ।
निराकारा निरानन्दा दीना प्रतिहतस्वना ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पञ्चाधिकशततमः सर्गः॥

॥षष्ठाधिकशततमः सर्गः॥

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्त्रभुः ।
अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः ॥₁॥

बिडालोलूकचरितामालीननरवारणाम् ।
तिमिराभ्याहतां कालीमप्रकाशां निशामिव ॥₂॥

राहुशत्रोः प्रियां पत्नीं श्रिया प्रज्वलितप्रभाम् ।
ग्रहेणाभ्युत्थितेनैकां रोहिणीमिव पीडिताम् ॥₃॥

अल्पोष्णक्षुब्धसलिलां घर्मोत्तप्तविहङ्गमाम् ।
लीनमीनझषग्राहां कृशां गिरिनदीमिव ॥₄॥

विधूमामिव हेमाभामध्वराग्निसमुत्थिताम् ।
हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखां विप्रलयं गताम् ॥₅॥

विध्वस्तकवचां रुग्णगजवाजिरथध्वजाम् ।
हतप्रवीरामापन्नां चमूमिव महाहवे ॥₆॥

सफेनां सस्वनां भूत्वा सागरस्य समुत्थिताम् ।
प्रशान्तमारुतोद्धूतां जलोर्मिमिव निःस्वनाम् ॥₇॥

त्यक्तां यज्ञायुधैः सर्वैरभिरूपैश्च याजकैः ।
सुत्याकाले विनिर्वृत्ते वेदिं गतरवामिव ॥₈॥

गोष्ठमध्ये स्थितामार्तामचरन्तीं नवं तृणम् ।
गोवृषेण परित्यक्तां गवां पत्नीमिवोत्सुकाम् ॥₉॥

प्रभाकरालैः सुस्निग्धैः प्रज्वलद्भिरिवोत्तमैः ।

वियुक्तां मणिभिर्जात्यैर्नवां मुक्तावलीमिव ॥₁₀॥

सहसा चलितां स्थानान्महीं पुण्यक्षयाद्गताम् ।
संहतद्युतिविस्तारां तारामिव दिवश्श्रुताम् ॥₁₁॥

पुष्पनद्धां वसन्तान्ते मत्तभ्रमरशालिनीम् ।
द्रुतदावाग्निविप्लुष्टां क्लान्तां वनलतामिव ॥₁₂॥

सम्मूढनिगमां सर्वां सङ्क्षिप्तविपणापणाम् ।
प्रच्छन्नशशिनक्षत्रां द्यामिवाम्बुधरैर्वृताम् ॥₁₃॥

क्षीणपानोत्तमैर्भिन्नैः शरावैरभिसंवृताम् ।
हतशौण्डामिवाकाशे पानभूमिमसंस्कृताम् ॥₁₄॥

वृक्णभूमितलां निम्नां वृक्णपात्रैः समावृताम् ।
उपयुक्तोदकां भग्नां प्रपां निपतितामिव ॥₁₅॥

विपुलां विततां चैव युक्तपाशां तरस्विनाम् ।
भूमौ बाणैर्विनिष्कृतां पतितां ज्यामिवायुधात् ॥₁₆॥

सहसा युद्धशौण्डेन हयारोहेण वाहिताम् ।
निक्षिप्तभाण्डामुत्सृष्टां किशोरीमिव दुर्बलाम् ॥₁₇॥

प्रावृषि प्रविगाढायां प्रविष्टस्याभ्र मण्डलम् ।
प्रच्छन्नां नीलजीमूतैर्भास्करस्य प्रभामिव ॥₁₈॥

भरतस्तु रथस्थः सञ्ज्रीमान्दशरथात्मजः ।
वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥₁₉॥

किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्छितो न निशम्यते ।
यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्रनिःस्वनः ॥₂₀॥

वारुणीमदगन्धाश्च माल्यगन्धश्च मूर्छितः ।

धूपितागरुगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः ॥₂₁॥

यानप्रवरघोषश्च स्निग्धश्च हयनिःस्वनः ।
प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथनिःस्वनः ।
नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते ॥₂₂॥

तरुणैश्चारु वेपैश्च नरैरुन्नतगामिभिः ।
सम्पतद्भिरयोध्यायां न विभान्ति महापथाः ॥₂₃॥

एवं बहुविधं जल्पन्विवेश वसतिं पितुः ।
तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे षष्ठाधिकशततमः सर्गः॥

॥सप्तमाधिकशततमः सर्गः॥

ततो निक्षिप्य मातृहृत्स अयोध्यायां दृढव्रतः ।
भरतः शोकसन्तप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत् ॥₁॥

नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽद्य वः ।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना ॥₂॥

गतश्च हि दिवं राजा वनस्थश्च गुरुर्मम ।
रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ॥₃॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः ।
अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः ॥₄॥

सदृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत ब्रूया ।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ॥₅॥

नित्यं ते बन्धुलुब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे ।
आर्यमार्गं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान् ॥₆॥

मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलषितं प्रियम् ।
अब्रवीत्सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति ॥₇॥

प्रहृष्टवदनः सर्वा मातृहृत्समभिवाद्य सः ।
आरुरोह रथं श्रीमाञ्शत्रुघ्नेन समन्वितः ॥₈॥

आरुह्य तु रथं शीघ्रं शत्रुघ्नभरताबुभौ ।
ययतुः परमप्रीतौ वृतौ मन्त्रिपुरोहितैः ॥₉॥

अग्रतो पुरवस्तत्र वसिष्ठ प्रमुखा द्विजाः ।

प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतोऽभवत् ॥₁₀॥

बलं च तदनाहूतं गजाश्वरथसङ्कुलम् ।
प्रययौ भरते याते सर्वे च पुरवासिनः ॥₁₁॥

रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं शिरस्याधाय पादुके ॥₁₂॥

ततस्तु भरतः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरुनिदमुवाच ह ॥₁₃॥

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासवत्स्वयम् ।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते ।
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥₁₄॥

क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् ।
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सहपादुकौ ॥₁₅॥

ततो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः ।
निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवृत्तिताम् ॥₁₆॥

राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके ।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवामि च ॥₁₇॥

अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे प्रहृष्टमुदिते जने ।
प्रीतिर्मम यशश्चैव भवेद्राज्याच्चतुर्गुणम् ॥₁₈॥

एवं तु विलपन्दीनो भरतः स महायशाः ।
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं दुःखितो मन्त्रिभिः सह ॥₁₉॥

स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरः प्रभुः ।
नन्दिग्रामेऽवसद्वीरः ससैन्यो भरतस्तदा ॥₂₀॥

रामागमनमाकाङ्क्षन्भरतो भ्रातृवत्सलः ।
भ्रातुर्वचनकारी च प्रतिज्ञापारगस्तदा ॥₂₁॥

पादुके त्वभिषिच्याथ नन्दिग्रामेऽवसत्तदा ।
भरतः शासनं सर्वं पादुकाभ्यां न्यवेदयत् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे सप्तमाधिकशततमः सर्गः॥

॥ अष्टमाधिकशततमः सर्गः ॥

प्रतिप्रयाते भरते वसन्नामस्तपोवने ।
लक्षयामास सोद्वेगमथौत्सुक्यं तपस्विनाम् ॥₁॥

ये तत्र चित्रकूटस्य पुरस्तात्तापसाश्रमे ।
राममाश्रित्य निरतास्तानलक्षयदुत्सुकान् ॥₂॥

नयनैर्भृकुटीभिश्च रामं निर्दिश्य शङ्किताः ।
अन्योन्यमुपजल्पन्तः शनैश्चक्रुर्मिथः कथाः ॥₃॥

तेषामौत्सुक्यमालक्ष्य रामस्वात्मनि शङ्कितः ।
कृताञ्जलिरुवाचेदमृषिं कुलपतिं ततः ॥₄॥

न कच्चिद्भगवन्किञ्चित्पूर्ववृत्तमिदं मयि ।
दृश्यते विकृतं येन विक्रियन्ते तपस्विनः ॥₅॥

प्रमादाच्चरितं कच्चित्किञ्चिन्नावरजस्य मे ।
लक्ष्मणस्यर्षिभिर्दृष्टं नानुरूपमिवात्मनः ॥₆॥

कच्चिच्छुश्रूषमाणा वः शुश्रूषणपरा मयि ।
प्रमदाभ्युचितां वृत्तिं सीता युक्तं न वर्तते ॥₇॥

अथर्षिर्जरया वृद्धस्तपसा च जरां गतः ।
वेपमान इवोवाच रामं भूतदयापरम् ॥₈॥

कुतः कल्याणसत्त्वायाः कल्याणाभिरतेस्तथा ।
चलनं तात वैदेह्यास्तपस्विषु विशेषतः ॥₉॥

बन्निमित्तमिदं तावत्तापसान्प्रति वर्तते ।

रक्षोभ्यस्तेन संविग्नाः कथयन्ति मिथः कथाः ॥₁₀॥

रावणावरजः कश्चित्खरो नामेह राक्षसः ।
उत्पाट्य तापसान्सर्वाञ्जनस्थाननिकेतनान् ॥₁₁॥

धृष्टश्च जितकाशी च नृशंसः पुरुषादकः ।
अवलितश्च पापश्च त्वां च तात न मृष्यते ॥₁₂॥

त्वं यदा प्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे ।
तदा प्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान् ॥₁₃॥

दर्शयन्ति हि बीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि ।
नाना रूपैर्विरूपैश्च रूपैरसुखदर्शनैः ॥₁₄॥

अप्रशस्तैरशुचिभिः सम्प्रयोज्य च तापसान् ।
प्रतिघ्नन्त्यपरान्क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितः ॥₁₅॥

तेषु तेष्व्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च ।
रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्पचेतसः ॥₁₆॥

अपक्षिपन्ति सुग्भाण्डानग्नीन्सिञ्चन्ति वारिणा ।
कलशांश्च प्रमृद्नन्ति हवने समुपस्थिते ॥₁₇॥

तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिहासवः ।
गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्य माम् ॥₁₈॥

तत्पुरा राम शारीरामुपहिंसां तपस्त्रिषु ।
दर्शयति हि दुष्टास्ते त्यक्ष्याम इममाश्रमम् ॥₁₉॥

बहुमूलफलं चित्रमविदूरादितो वनम् ।
पुराणाश्रममेवाहं श्रियिष्ये सगणः पुनः ॥₂₀॥

खरस्त्वय्यपि चायुक्तं पुरा तात प्रवर्तते ।

सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते ॥₂₁॥

सकलत्रस्य सन्देहो नित्यं यत्तस्य राघव ।
समर्थस्यापि हि सतो वासो दुःख इहाद्य ते ॥₂₂॥

इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम् ।
न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरवरोद्धं समुत्सुकम् ॥₂₃॥

अभिनन्द्य समापृच्छ समाधाय च राघवम् ।
स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सह ॥₂₄॥

रामः संसाध्य बृषिगणमनुगमनाद्-
देशात्तस्माच्चित्कुलपतिमभिवाद्यर्षिम् ।
सम्यक्प्रीतैस्तैरनुमत उपदिष्टार्थः
पुण्यं वासाय स्वनिलयमुपसम्पेदे ॥₂₅॥

आश्रमं बृषिविरहितं प्रभुः
क्षणमपि न जहौ स राघवः ।
राघवं हि सततमनुगताः
तापसाश्चर्षिचरितधृतगुणाः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टमाधिकशततमः सर्गः॥

॥नवमाधिकशततमः सर्गः॥

राघवस्त्वपयातेषु तपस्विषु विचिन्तयन् ।
न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा ॥₁॥

इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः ।
सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः ॥₂॥

स्कन्धावारनिवेशेन तेन तस्य महात्मनः ।
हयहस्तिकरीषैश्च उपमर्दः कृतो भृशम् ॥₃॥

तस्मादन्यत्र गच्छाम इति सञ्चिन्त्य राघवः ।
प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च सङ्गतः ॥₄॥

सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः ।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ॥₅॥

स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसत्कृतम् ।
सौमित्रिं च महाभागां सीतां च समसान्त्वयत् ॥₆॥

पत्नीं च तमनुप्राप्तां वृद्धामामन्त्र्य सत्कृताम् ।
सान्त्वयामास धर्मज्ञः सर्वभूतहिते रतः ॥₇॥

अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ।
प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीमब्रवीदृषिसत्तमः ॥₈॥

रामाय चाचक्षे तां तापसीं धर्मचारिणीम् ।
दश वर्षाण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम् ॥₉॥

यया मूलफले सृष्टे जाह्नवी च प्रवर्तिता ।

उग्रेण तपसा युक्ता नियमैश्चाप्यलङ्कृता ॥₁₀॥

दशवर्षसहस्राणि यया तप्तं महत्तपः ।
अनसूयाव्रतैस्तात प्रत्यूहाश्च निबर्हिताः ॥₁₁॥

देवकार्यनिमित्तं च यया सन्त्वरमाणया ।
दशरात्रं कृत्वा रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ ॥₁₂॥

तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्या यशस्विनीम् ।
अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा ॥₁₃॥

एवं ब्रुवाणं तमृषिं तथेत्युक्त्वा स राघवः ।
सीतामुवाच धर्मज्ञामिदं वचनमुत्तमम् ॥₁₄॥

राजपुत्रि श्रुतं त्वेतन्मुनेरस्य समीरितम् ।
श्रेयोऽर्थमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम् ॥₁₅॥

अनसूयेति या लोके कर्मभिः क्वातिमागता ।
तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम् ॥₁₆॥

सीता त्वेतद्वचः श्रुत्वा राघवस्य हितैषिणी ।
तामत्रिपत्नीं धर्मज्ञामभिचक्राम मैथिली ॥₁₇॥

शिथिलां वलितां वृद्धां जरापाण्डुरमूर्धजाम् ।
सततं वेपमानाङ्गीं प्रवाते कदली यथा ॥₁₈॥

तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम् ।
अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत् ॥₁₉॥

अभिवाद्य च वैदेही तापसीं तामनिन्दिताम् ।
बद्धाञ्जलिपुटा हृष्टा पर्यपृच्छदनामयम् ॥₂₀॥

ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम् ।

सान्त्वयन्त्यब्रवीद्धृष्टा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे ॥₂₁॥

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानमृद्धिं च मानिनि ।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥₂₂॥

नगरस्थो वनस्थो वा पापो वा यदि वा शुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥₂₃॥

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्य स्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥₂₄॥

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम् ।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम् ॥₂₅॥

न त्वेवमवगच्छन्ति गुण दोषमसस्त्रियः ।
कामवक्तव्यहृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः ॥₂₆॥

प्राप्नुवन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि ।
अकार्यं वशमापन्नाः स्त्रियो याः खलु तद्विधाः ॥₂₇॥

तद्विधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः ।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे नवमाधिकशततमः सर्गः॥

॥दशमाधिकशततमः सर्गः॥

सा त्वेवमुक्ता वैदेही अनसूयानसूयया ।
प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥₁॥

नैतदाश्चर्यमार्याया यन्मां त्वमनुभाषसे ।
विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥₂॥

यद्यप्येष भवेद्भर्ता ममार्ये वृत्तवर्जितः ।
अद्वैधमुपवर्तव्यस्तथाप्येष मया भवेत् ॥₃॥

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवर्ती पितृ प्रियः ॥₄॥

यां वृत्तिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः ।
तामेव नृपनारीणामन्यासामपि वर्तते ॥₅॥

सकृद्दृष्टास्वपि स्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः ।
मातृवद्वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित् ॥₆॥

आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् ।
समाहितं हि मे श्चश्वा हृदये यत्स्थितं मम ॥₇॥

प्राणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ ।
अनुशिष्टा जनन्यास्मि वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥₈॥

नवीकृतं तु तत्सर्वं वाक्यैस्ते धर्मचारिणि ।
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ॥₉॥

सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते ।

तथा वृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम् ॥₁₀॥

वरिष्ठा सर्वनारीणामेषा च दिवि देवता ।
रोहिणी च विना चन्द्रं मुहूर्तमपि दृश्यते ॥₁₁॥

एवंविधाश्च प्रवराः स्त्रियो भर्तृदृढव्रताः ।
देवलोके महीयन्ते पुण्येन स्वेन कर्मणा ॥₁₂॥

ततोऽनसूया संहृष्टा शुबोक्तं सीतया वचः ।
शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत ॥₁₃॥

नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे ।
तत्संश्रित्य बलं सीते छन्दये त्वां शुचिव्रते ॥₁₄॥

उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि ।
प्रीता चास्म्युचितं किं ते करवाणि ब्रवीहि मे ।
कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम् ॥₁₅॥

सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराभवत् ।
सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम् ॥₁₆॥

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च ।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥₁₇॥

मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् ।
अनुरूपमसङ्किष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥₁₈॥

अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे ।
शोभयिष्यामि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम् ॥₁₉॥

सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा ।
मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥₂₀॥

प्रतिगृह्य च तत्सीता प्रीतिदानं यशस्विनी ।
श्लिष्टाञ्जलिपुटा धीरा समुपास्त तपोधनाम् ॥²¹॥

तथा सीतामुपासीनामनसूया दृढव्रता ।
वचनं प्रष्टुमारेभे कथां काञ्चिदनुप्रियाम् ॥²²॥

स्वयंवरे किल प्राप्ता ब्रमनेन यशस्विना ।
राघवेणेति मे सीते कथा श्रुतिमुपागता ॥²³॥

तां कथां श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण च मैथिलि ।
यथानुभूतं कात्स्न्येन तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥²⁴॥

एवमुक्ता तु सा सीता तां ततो धर्मचारिणीम् ।
श्रूयतामिति चोक्त्वा वै कथयामास तां कथाम् ॥²⁵॥

मिथिलाधिपतिर्वीरो जनको नाम धर्मवित् ।
क्षत्रधर्मण्यभिरतो न्यायतः शास्ति मेदिनीम् ॥²⁶॥

तस्य लाङ्गलहस्तस्य कर्षतः क्षेत्रमण्डलम् ।
अहं किलोत्थिता भिक्षा जगतीं नृपतेः सुता ॥²⁷॥

स मां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः ।
पांशु गुण्ठित सर्वाङ्गिं विस्मितो जनकोऽभवत् ॥²⁸॥

अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम् ।
ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः ॥²⁹॥

अन्तरिक्षे च वागुक्ताप्रतिमा मानुषी किल ।
एवमेतन्नरपते धर्मेण तनया तव ॥³⁰॥

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा पिता मे मिथिलाधिपः ।
अवाप्तो विपुलामृद्धिं मामवाप्य नराधिपः ॥³¹॥

दत्त्वा चास्मीष्टवद्देव्यै ज्येष्ठायै पुण्यकर्मणा ।
तया सम्भाविता चास्मि स्निग्धया मातृसौहृदात् ॥ 32 ॥

पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता ।
चिन्तामभ्यगमदीनो वित्तनाशादिवाधनः ॥ 33 ॥

सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्यापिता जनात् ।
प्रधर्षणामवाप्नोति शत्रेणापि समो भुवि ॥ 34 ॥

तां धर्षणामदूरस्थां सन्दृश्यात्मनि पार्थिवः ।
चिन्तार्णवगतः पारं नाससादाप्लवो यथ ॥ 35 ॥

अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत्स चिन्तयन् ।
सदृशं चानुरूपं च महीपालः पतिं मम ॥ 36 ॥

तस्य बुद्धिरियं जाता चिन्तयानस्य सन्ततम् ।
स्वयं वरं तनूजायाः करिष्यामीति धीमतः ॥ 37 ॥

महायज्ञे तदा तस्य वरुणेन महात्मना ।
दत्तं धनुर्वरं प्रीत्या तूणी चाक्षय्य सायकौ ॥ 38 ॥

असञ्चाल्यं मनुष्यैश्च यत्नेनापि च गौरवात् ।
तन्न शक्ता नमयितुं स्वप्नेष्वपि नराधिपाः ॥ 39 ॥

तद्धनुः प्राप्य मे पित्रा व्याहृतं सत्यवादिना ।
समवाये नरेन्द्राणां पूर्वमामन्त्य पार्थिवान् ॥ 40 ॥

इदं च धनुरुद्यम्य सज्यं यः कुरुते नरः ।
तस्य मे दुहिता भार्या भविष्यति न संशयः ॥ 41 ॥

तच्च दृष्ट्वा धनुःश्रेष्ठं गौरवाद्गिरिसंनिभम् ।
अभिवाद्य नृपा जग्मुरशक्तास्तस्य तोलने ॥ 42 ॥

सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः ।
विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः ॥⁴³॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामः सत्यपराक्रमः ।
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा मम पित्रा सुपूजितः ॥⁴⁴॥

प्रोवाच पितरं तत्र राघवो रामलक्ष्मणौ ।
सुतौ दशरथस्येमौ धनुर्दर्शनकाङ्क्षिणौ ।
इत्युक्तस्तेन विप्रेण तद्धनुः समुपानयत् ॥⁴⁵॥

निमेषान्तरमात्रेण तदानम्य स वीर्यवान् ।
ज्यां समारोप्य झटिति पूरयामास वीर्यवान् ॥⁴⁶॥

तेन पूरयता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः ।
तस्य शब्दोऽभवद्भीमः पतितस्याशनेरिव ॥⁴⁷॥

ततोऽहं तत्र रामाय पित्रा सत्याभिसन्धिना ।
उद्यता दातुमुद्यम्य जलभाजनमुत्तमम् ॥⁴⁸॥

दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघवः ।
अविज्ञाय पितुश्छन्दमयोध्याधिपतेः प्रभोः ॥⁴⁹॥

ततः श्वशुरमामन्त्य वृद्धं दशरथं नृपम् ।
मम पित्रा अहं दत्ता रामाय विदितात्मने ॥⁵⁰॥

मम चैवानुजा साध्वी ऊर्मिला प्रियदर्शना ।
भार्यार्थे लक्ष्मणस्यापि दत्ता पित्रा मम स्वयम् ॥⁵¹॥

एवं दत्तास्मि रामाय तदा तस्मिन्स्वयं वरे ।
अनुरक्ता च धर्मेण पतिं वीर्यवतां वरम् ॥⁵²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे दशमाधिकशततमः सर्गः॥

॥एकादशाधिकशततमः सर्गः॥

अनसूया तु धर्मज्ञा श्रुत्वा तां महतीं कथाम् ।
पर्यष्वजत बाहुभ्यां शिरस्याघ्राय मैथिलीम् ॥₁॥

व्यक्ताक्षरपदं चित्रं भाषितं मधुरं त्वया ।
यथा स्वयंवरं वृत्तं तत्सर्वं हि श्रुतं मया ॥₂॥

रमेऽहं कथया ते तु दृष्टं मधुरभाषिणि ।
रविरस्तं गतः श्रीमानुपोह्य रजनीं शिवाम् ॥₃॥

दिवसं प्रति कीर्णानामाहारार्थं पतत्रिणाम् ।
सन्ध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः ॥₄॥

एते चाप्यभिषेकार्द्रा मुनयः फलशोधनाः ।
सहिता उपवर्तन्ते सलिलाप्लुतवल्कलाः ॥₅॥

ऋषीणामग्निहोत्रेषु हुतेषु विधिपूर्वकम् ।
कपोताङ्गारुणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः ॥₆॥

अल्पपर्णा हि तरवो घनीभूताः समन्ततः ।
विप्रकृष्टेऽपि ये देशे न प्रकाशन्ति वै दिशः ॥₇॥

रजनी रससत्त्वानि प्रचरन्ति समन्ततः ।
तपोवनमृगा ह्येते वेदितीर्थेषु शेरते ॥₈॥

सम्प्रवृत्ता निशा सीते नक्षत्रसमलङ्कृता ।
ज्योत्स्ना प्रावरणश्चन्द्रो दृश्यतेऽभ्युदितोऽम्बरे ॥₉॥

गम्यतामनुजानामि रामस्यानुचरी भव ।

कथयन्त्या हि मधुरं ब्रयाहं परितोषिता ॥₁₀॥

अलङ्कुरु च तावच्चं प्रत्यक्षं मम मैथिलि ।
प्रीतिं जनय मे वत्स दिव्यालङ्कारशोभिनी ॥₁₁॥

सा तदा समलङ्कृत्य सीता सुरसुतोपमा ।
प्रणम्य शिरसा तस्यै रामं ब्रभिमुखी ययौ ॥₁₂॥

तथा तु भूषितां सीतां ददर्श वदतां वरः ।
राघवः प्रीतिदानेन तपस्विन्या जहर्ष च ॥₁₃॥

न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली ।
प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजाम् ॥₁₄॥

प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः ।
मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम् ॥₁₅॥

ततस्तां सर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननः ।
अर्चितस्तापसैः सिद्धैरुवास रघुनन्दनः ॥₁₆॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् ।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान् ॥₁₇॥

तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः ।
वनस्य तस्य सञ्चारं राक्षसैः समभिप्लुतम् ॥₁₈॥

एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने ।
अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् ॥₁₉॥

इतीव तैः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्-
द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परन्तपः ।
वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः
सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे एकादशाधिकशततमः
सर्गः॥

Chapter 3

॥ अरण्यकाण्डः ॥

॥प्रथमः सर्गः॥

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
ददर्श रामो दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥₁॥

कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् ।
यथा प्रदीप्तं दुर्धर्षं गगने सूर्यमण्डलम् ॥₂॥

शरण्यं सर्वभूतानां सुसमृष्टाजिरं सदा ।
पूजितं चोपनृतं च नित्यमप्सरसां गणैः ॥₃॥

विशालैरग्निशरणैः सुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः ।
समिद्धिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् ॥₄॥

आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ।
बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥₅॥

पुष्पैर्वन्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ।
फलमूलाशनैर्दानैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः ॥₆॥

सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्वृतम् ।
पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ॥₇॥

तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ।
ब्रह्मविद्धिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥₈॥

तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ।
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्भुजः ॥₉॥

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ।

अभ्यगच्छंस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ॥₁₀॥

ते तं सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणः ।
मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्टव्रताः ॥₁₁॥

रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् ।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥₁₂॥

वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनचारिणः ॥₁₃॥

अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ।
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥₁₄॥

ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः ।
आजह्नुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ॥₁₅॥

मूलं पुष्पं फलं वन्यमाश्रमं च महात्मनः ।
निवेदयीत्वा धर्मज्ञास्ततः प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥₁₆॥

धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः ॥₁₇॥

इन्द्रस्यैव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ।
राजा तस्माद्वनान्भोगान्भुङ्क्ते लोकनमस्कृतः ॥₁₈॥

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥₁₉॥

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
रक्षितव्यास्त्वया शश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः ॥₂₀॥

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैर्वन्यैश्च राघवम् ।

अन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन् ॥₂₁॥

तथान्ये तापसाः सिद्धा रामं वैश्वानरोपमाः ।
न्यायवृत्ता यथान्यायं तर्पयामासुरीश्वरम् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
आमन्त्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥₁॥

नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलवृकसेवितम् ।
ध्वस्तवृक्षलतागुल्मं दुर्दर्शं सलिलाशयम् ॥₂॥

निष्कूजनानाशकुनि झिल्लिका गणनादितम् ।
लक्ष्मणानुगतो रामो वनमध्यं ददर्श ह ॥₃॥

वनमध्ये तु काकुत्स्थस्तस्मिन्धोरमृगायुते ।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥₄॥

गभीराक्षं महावक्त्रं विकटं विषमोदरम् ।
बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ॥₅॥

वसानं चर्मवैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥₆॥

त्रीन्सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान्द्वौ वृकौ पृषतान्दश ।
सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ॥₇॥

अवसज्यायसे शूले विनदन्तं महास्वनम् ।
स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम् ॥₈॥

अभ्यधावत्सुसङ्क्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः ।
स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ॥₉॥

अङ्गेनादाय वैदेहीमपक्रम्य ततोऽब्रवीत् ।

युवां जटाचीरधरो सभार्यौ क्षीणजीवितौ ॥₁₀॥

प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिधारिणौ ।
कथं तापसयोर्वा च वासः प्रमदया सह ॥₁₁॥

अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ।
अहं वनमिदं दुर्गं विराघो नाम राक्षसः ॥₁₂॥

चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ।
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥₁₃॥

तस्यैवं ब्रुवतो धृष्टं विराधस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा ।
सीता प्रावेपतोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा ॥₁₄॥

तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥₁₅॥

पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसम्भवाम् ।
मम भार्या शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम् ।
अत्यन्त सुखसंवृद्धां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ॥₁₆॥

यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वर वृतं च यत् ।
कैकेय्यास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण ॥₁₇॥

या न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी ।
ययाहं सर्वभूतानां हितः प्रस्थापितो वनम् ।
अदेदानीं सकामा सा या माता मम मध्यमा ॥₁₈॥

परस्पर्शान्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे ।
पितुर्विनाशात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा ॥₁₉॥

इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुते ।
अब्रवीलक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन् ॥₂₀॥

अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः ।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्स्यसे ॥₂₁॥

शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः ।
विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् ॥₂₂॥

राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह ।
तं विराधे विमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले ॥₂₃॥

मम भुजबलवेगवेगितः
पततु शरोऽस्य महान्महोरसि ।
व्यपनयतु तनोश्च जीवितम्
पततु ततश्च महीं विघूर्णितः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

अथोवाच पुनर्वाक्यं विराधः पूरयन्वनम् ।
आत्मानं पृच्छते ब्रूतं कौ युवां क्व गमिष्यथः ॥₁॥

तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम् ।
पृच्छन्तं सुमहातेजा इक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥₂॥

क्षत्रियो वृत्तसम्पन्नो विद्धि नौ वनगोचरौ ।
त्वां तु वेदितुमिच्छावः कस्त्वं चरसि दण्डकान् ॥₃॥

तमुवाच विराधस्तु रामं सत्यपराक्रमम् ।
हन्त वक्ष्यामि ते राजन्निबोध मम राघव ॥₄॥

पुत्रः किल जयस्याहं माता मम शतहृदा ।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ॥₅॥

तपसा चापि मे प्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा ।
शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ॥₆॥

उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम् ।
त्वरमाणौ पालयेथां न वां जीवितमाददे ॥₇॥

तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः ।
राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम् ॥₈॥

क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम् ।
रणे सम्प्राप्स्यसे तिष्ठ न मे जीवन्गमिष्यसि ॥₉॥

ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान् ।

सुशीघ्रमभिसन्धाय राक्षसं निजघान ह ॥₁₀॥

धनुषा ज्यागुणवता सप्तबाणान्मुमोच ह ।
रुक्मपुङ्खान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥₁₁॥

ते शरीरं विराधस्य भिक्षा बर्हिणवाससः ।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः ॥₁₂॥

स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् ।
प्रगृह्याशोभत तदा व्यात्तानन इवान्तकः ॥₁₃॥

तच्छूलं वज्रसङ्काशं गगने ज्वलनोपमम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः ॥₁₄॥

तस्य रौद्रस्य सौमित्रिर्बाहुं सव्यं बभञ्ज ह ।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥₁₅॥

स भग्नबाहुः संविग्रो निपपाताशु राक्षसः ।
धरण्यां मेघसङ्काशो वज्रभिन्न इवाचलः ।
इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥₁₆॥

कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया ।
वैदेही च महाभागा लक्ष्मणश्च महायशः ॥₁₇॥

अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम् ।
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्वरणेन हि ॥₁₈॥

प्रसाद्यमानश्च मया सोऽब्रवीन्मां महायशः ।
यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे ॥₁₉॥

तदा प्रकृतिमापन्नो भवान्स्वर्गं गमिष्यति ।
इति वैश्वरणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह ॥₂₀॥

अनुपस्थीयमानो मां सङ्क्रुद्धो व्यजहार ह ।
तव प्रसादान्मुक्तोऽहमभिशापात्सुदारुणात् ।
भवनं स्वं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु परन्तप ॥₂₁॥

इतो वसति धर्मात्मा शरभङ्गः प्रतापवान् ।
अध्यर्धयोजने तात महर्षिः सूर्यसंनिभः ॥₂₂॥

तं क्षिप्रमभिगच्छ त्वं स ते श्रेयो विधास्यति ।
अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज ॥₂₃॥

रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ।
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः ॥₂₄॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः ।
बभूव स्वर्गसम्प्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः ॥₂₅॥

तं मुक्तकण्ठमुत्क्षिप्य शङ्कुकर्णं महास्वनम् ।
विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम् ॥₂₆॥

ततस्तु तौ काञ्चनचित्रकार्मुकौ
निहत्य रक्षः परिगृह्य मैथिलीम् ।
विजहृतुस्तौ मुदितौ महावने
दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने ।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान् ।
अब्रवील्लक्ष्मणां रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥₁॥

कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः ।
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम् ॥₂॥
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥₃॥

तस्य देवप्रभावस्य तपसा भावितात्मनः ।
समीपे शरभङ्गस्य ददर्श महद्द्भुतम् ॥₄॥

विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरोपमम् ।
असंस्पृशन्तं वसुधां ददर्श विबुधेश्वरम् ॥₅॥

सुप्रभाभरणं देवं विरजोऽम्बरधारिणम् ।
तद्विधैरेव बहुभिः पूज्यमानं महात्मभिः ॥₆॥

हरिभिर्वाजिभिर्युक्तमन्तरिक्षगतं रथम् ।
ददर्शादूरतस्तस्य तरुणादित्यसंनिभम् ॥₇॥

पाण्डुराभ्रघनप्रख्यं चन्द्रमण्डलसंनिभम् ।
अपश्यद्विमलं छत्रं चित्रमाल्योपशोभितम् ॥₈॥

चामरव्यजने चाग्रे रुक्मदण्डे महाधने ।
गृहीते वननारीभ्यां धूयमाने च मूर्धनि ॥₉॥

गन्धर्वामरसिद्धाश्च बहवः परमर्षयः ।
अन्तरिक्षगतं देवं वाग्भिरग्न्याभिरीडिरे ॥₁₀॥

दृष्ट्वा शतक्रतुं तत्र रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
ये हयाः पुरुहूतस्य पुरा शक्रस्य नः श्रुताः ।
अन्तरिक्षगता दिव्यास्त इमे हरयो ध्रुवम् ॥¹¹॥

इमे च पुरुषव्याघ्र ये तिष्ठन्त्यभितो रथम् ।
शतं शतं कुण्डलिनो युवानः खड्गपाणयः ॥¹²॥

उरोदेशेषु सर्वेषां हारा ज्वलनसंनिभाः ।
रूपं बिभ्रति सौमित्रे पञ्चविंशतिवार्षिकम् ॥¹³॥

एतद्धि किल देवानां वयो भवति नित्यदा ।
यथेमे पुरुषव्याघ्रा दृश्यन्ते प्रियदर्शनाः ॥¹⁴॥

इहैव सह वैदेह्या मुहूर्तं तिष्ठ लक्ष्मण ।
यावज्जनाम्यहं व्यक्तं क एष द्युतिमान्नथे ॥¹⁵॥

तमेवमुक्त्वा सौमित्रिमिहैव स्थायतामिति ।
अभिचक्राम काकुत्स्थः शरभङ्गाश्रमं प्रति ॥¹⁶॥

ततः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः ।
शरभङ्गमनुज्ञाप्य विबुधानिदमब्रवीत् ॥¹⁷॥

इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते ।
निष्ठां नयत तावत्तु ततो मां द्रष्टुमर्हति ॥¹⁸॥

जितवन्तं कृतार्थं च द्रष्टाहमचिरादिमम् ।
कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् ॥¹⁹॥

इति वज्री तमामन्त्य मानयित्वा च तापसम् ।
रथेन हरियुक्तेन ययौ दिवमरिन्दमः ॥²⁰॥

प्रयाते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदः ।
अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् ॥²¹॥

तस्य पादौ च सङ्गृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः ।
निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥₂₂॥

ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत्स राघवः ।
शरभङ्गश्च तत्सर्वं राघवाय न्यवेदयत् ॥₂₃॥

मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति ।
जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥₂₄॥

अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः ।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥₂₅॥

समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं देवसेवितम् ।
अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः ।
ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठाश्च प्रतिगृहीष्व मामकान् ॥₂₆॥

एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः ।
ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥₂₇॥

अहमेवाहरिष्यामि सर्वाल्लोकान्महामुने ।
आवासं त्वमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥₂₈॥

राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै ।
शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥₂₉॥

सूतीक्ष्णमभिगच्छ त्वं शुचौ देशे तपस्विनम् ।
रमणीये वनोद्देशे स ते वासं विधास्यति ॥₃₀॥

एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम् ।
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णं त्वचमिवोरगः ॥₃₁॥

ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवित् ।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥₃₂॥

तस्य रोमाणि केशांश्च ददाहाग्निर्महात्मनः ।
जीर्णं त्वचं तथास्थीनि यच्च मांसं च शोणितम् ॥³³॥

स च पावकसङ्काशः कुमारः समपद्यत ।
उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभङ्गो व्यरोचत ॥³⁴॥

स लोकानाहिताग्नीनामृषीणां च महात्मनाम् ।
देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत ॥³⁵॥

स पुण्यकर्मा भुवने द्विजर्षभः
पितामहं सानुचरं ददर्श ह ।
पितामहश्चापि समीक्ष्य तं द्विजम्
ननन्द सुस्वागतमित्युवाच ह ॥³⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसङ्घाः समागताः ।
अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् ॥₁॥

वैखानसा वालखिल्याः सम्प्रक्षाला मरीचिपाः ।
अश्वकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः ॥₂॥

दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे ।
मुनयः सलिलाहारा वायुभक्षास्तथापरे ॥₃॥

आकाशनिलयाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः ।
तथोर्ध्ववासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः ॥₄॥

सज्जपाश्च तपोनित्यास्तथा पञ्चतपोऽन्विताः ।
सर्वे ब्राह्म्या श्रिया जुष्टा दृढयोगसमाहिताः ।
शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥₅॥

अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम् ।
ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसङ्घाः समाहिताः ॥₆॥

त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।
प्रधानश्चासि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥₇॥

विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च ।
पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ॥₈॥

त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् ।
अर्थिन्नान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि ॥₉॥

अधार्मस्तु महांस्तात भवेत्तस्य महीपतेः ।
यो हरेद्वलिषङ्गां न च रक्षति पुत्रवत् ॥₁₀॥

युञ्जानः स्वानिव प्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव ।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन्सर्वान्विषयवासिनः ॥₁₁॥

प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम् ।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते ॥₁₂॥

यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः ।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥₁₃॥

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् ।
ब्रह्मनाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्वध्यते भृशम् ॥₁₄॥

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥₁₅॥

पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि ।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥₁₆॥

एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनम् ।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥₁₇॥

ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः ।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥₁₈॥

एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम् ।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ।
नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनम् ॥₁₉॥

भवतामर्थसिद्धयर्थमागतोऽहं यदृच्छया ।
तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः ।

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान् ॥₂₀॥

दत्त्वा वरं चापि तपोधनानाम्
धर्मे धृतात्मा सहलक्ष्मणेन ।
तपोधनेश्चापि सहाय्यं वृत्तः
सुतीष्कणमेवाभिजगाम वीरः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परन्तपः ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥₁॥

स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्न बहूदकाः ।
ददर्श विपुलं शैलं महामेघमिवोन्नतम् ॥₂॥

ततस्तदिक्षाकुवरौ सततं विविधैर्द्रुमैः ।
काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ ॥₃॥

प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् ।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥₄॥

तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजटाधरम् ।
रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोवृद्धमभाषत ॥₅॥

रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः ।
तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥₆॥

स निरीक्ष्य ततो वीरं रामं धर्मभृतां वरम् ।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥₇॥

स्वागतं खलु ते वीर राम धर्मभृतां वर ।
आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम् ॥₈॥

प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः ।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ॥₉॥

चित्रकूटमुपादाय राज्यभ्रष्टोऽसि मे श्रुतः ।

इहोपयातः काकुत्स्थो देवराजः शतक्रतुः ।
सर्वाल्लोकाञ्जितानाह मम पुण्येन कर्मणा ॥₁₀॥

तेषु देवर्षिजुष्टेषु जितेषु तपसा मया ।
मत्प्रसादात्सभार्यस्त्वं विहरस्व सलक्ष्मणः ॥₁₁॥

तमुग्रतपसं दीप्तं महर्षिं सत्यवादिनम् ।
प्रत्युवाचात्मवान्नामो ब्रह्माणमिव वासवः ॥₁₂॥

अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान्महामुने ।
आवासं ब्रह्मिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥₁₃॥

भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः ।
आख्यातः शरभङ्गेन गौतमेन महात्मना ॥₁₄॥

एवमुक्तस्तु रामेण महर्षिलोकविश्रुतः ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महताप्लुतः ॥₁₅॥

अयमेवाश्रमो राम गुणवान्रम्यतामिह ।
ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः ॥₁₆॥

इममाश्रममागम्य मृगसङ्घा महायशाः ।
अटिक्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयिक्वाकुतोभयाः ॥₁₇॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ।
उवाच वचनं धीरो विकृष्य सशरं धनुः ॥₁₈॥

तानहं सुमहाभाग मृगसङ्घान्समागतान् ।
हन्यां निशितधारेण शरेणाशनिवर्चसा ॥₁₉॥

भवांस्तत्राभिषज्येत किं स्यात्कृच्छ्रतरं ततः ।
एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये ॥₂₀॥

तमेवमुक्त्वा वरदं रामः सन्ध्यामुपागमत् ।
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तत्र वासमकल्पयत् ॥₂₁॥

ततः शुभं तापसभोज्यमन्नम्
स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम् ।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा
सन्ध्यानिवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ।
परिणम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥₁॥

उत्थाय तु यथाकालं राघवः सह सीतया ।
उपास्पृशत्सुशीतेन जलेनोत्पलगन्धिना ॥₂॥

अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥₃॥

उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः ।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥₄॥

सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः ।
आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥₅॥

त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् ।
ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥₆॥

अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुङ्गवैः ।
धर्मनित्यैस्तपोदानैर्विशिखैरिव पावकैः ॥₇॥

अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजिते ।
अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ॥₈॥

तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः ।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥₉॥

तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः ।

गाढमालिङ्ग सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₀॥

अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह ।
सीतया चानया सार्धं छायेवानुवृत्तया ॥₁₁॥

पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् ।
एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥₁₂॥

सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च ।
प्रशान्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥₁₃॥

फुल्लपङ्कजपटानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥₁₄॥

द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च ।
रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥₁₅॥

गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु ।
आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं मम ॥₁₆॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
प्रदक्षिणं मुनिं कृता प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥₁₇॥

ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा ।
ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः ॥₁₈॥

आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्त्रने ।
निष्क्रान्तावाश्रमाद्रन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् ।
वैदेही स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥₁॥

अयं धर्मः सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान् ।
निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह ॥₂॥

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत ।
मिथ्या वाक्यं परमकं तस्माद्गुरुतरावुभौ ।
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता ॥₃॥

मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ।
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् ॥₄॥

तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं वोढुं जितेन्द्रियैः ।
तव वश्येन्द्रियत्वं च जानामि शुभदर्शन ॥₅॥

तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् ।
निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥₆॥

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् ।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥₇॥

एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम् ।
प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ॥₈॥

ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः ।
बद्धत्वं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम् ॥₉॥

न हि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति ।
कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम ॥₁₀॥

त्वं हि बाणधनुष्पाणिभ्रात्रा सह वनं गतः ।
दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कञ्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥₁₁॥

क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च ।
समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयते भृशम् ॥₁₂॥

पुरा किल महाबाहो तपस्वी सत्यवाक्शुचिः ।
कस्मिंश्चिदभवत्पुण्ये वने रतमृगद्विजे ॥₁₃॥

तस्यैव तपसो विघ्नं कर्तुमिन्द्रः शचीपतिः ।
खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमं भट रूपधृक् ॥₁₄॥

तस्मिंस्तदाश्रमपदे निहितः खड्ग उत्तमः ।
स न्यासविधिना दत्तः पुण्ये तपसि तिष्ठतः ॥₁₅॥

स तच्छस्त्रमनुप्राप्य न्यासरक्षणतत्परः ।
वने तु विचरत्येव रक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥₁₆॥

यत्र गच्छत्युपादातुं मूलानि च फलानि च ।
न विना याति तं खड्गं न्यासरक्षणतत्परः ॥₁₇॥

नित्यं शस्त्रं परिवहन्क्रमेण स तपोधनः ।
चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं त्यक्त्वा तपसि निश्चयम् ॥₁₈॥

ततः स रौद्राभिरतः प्रमत्तोऽधर्मकर्षितः ।
तस्य शस्त्रस्य संवासाञ्जगाम नरकं मुनिः ॥₁₉॥

स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये ।
न कथञ्चन सा कार्या हृहीतधनुषा त्वया ॥₂₀॥

बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् ।
अपराधं विना हन्तुं लोकान्वीर न कामये ॥₂₁॥

क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् ।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥₂₂॥

क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च ।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥₂₃॥

तदार्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात् ।
पुनर्गत्वा द्वयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि ॥₂₄॥

अक्षया तु भवेत्प्रीतिः श्वश्रू श्वशुरयोर्मम ।
यदि राज्यं हि संन्यस्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः ॥₂₅॥

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥₂₆॥

आत्मानं नियमैस्तेस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः ।
प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभ्यते सुखम् ॥₂₇॥

नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने ।
सर्वं हि विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तच्चतः ॥₂₈॥

स्त्रीचापलादेतदुदाहृतं मे
धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः ।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन
यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्त्या ।
श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ मैथिलीम् ॥₁॥

हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः ।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥₂॥

किं तु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥₃॥

ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः ।
मां सीते स्वयमागम्य शरण्याः शरणं गताः ॥₄॥

वसन्तो धर्मनिरता वने मूलफलाशनाः ।
न लभन्ते सुखं भीता राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥₅॥

काले काले च निरता नियमैर्विविधैर्वने ।
भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥₆॥

ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः ।
अस्मानभ्यवपदेति मामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥₇॥

मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम् ।
कृत्वा चरणशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥₈॥

प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा हि ममातुला ।
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ।
किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ ॥₉॥

सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता ।
राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः ।
अर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्त्रातुमर्हति ॥₁₀॥

होमकाले तु सम्प्राप्ते पर्वकालेषु चानघ ।
धर्षयन्ति स्म दुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः ॥₁₁॥

राक्षसैर्धर्षितानां च तापसानां तपस्विनाम् ।
गतिं मृगयमाणानां भवान्नः परमा गतिः ॥₁₂॥

कामं तपः प्रभावेन शक्ता हन्तुं निशाचरान् ।
चिरार्जितं तु नेच्छामस्तपः खण्डयितुं वयम् ॥₁₃॥

बहुविघ्नं तपोनित्यं दुश्चरं चैव राघव ।
तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः ॥₁₄॥

तदर्द्यमानान्नक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः ।
रक्षनस्त्वं सह भ्रात्रा बन्नाथा हि वयं वने ॥₁₅॥

मया चैतद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्येन परिपालनम् ।
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे ॥₁₆॥

संश्रुत्य च न शक्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा ॥₁₇॥

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥₁₈॥

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् ।
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय तु किं पुनः ॥₁₉॥

मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः ।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशिष्यते ।

सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने ॥₂₀॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
सीतां प्रियां मैथिल राजपुत्रीम् ।
रामो धनुष्मान्सहलक्ष्मणेन
जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुमध्यमा ।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥₁॥

तौ पश्यमानौ विविधाञ्छैलप्रस्थान्वनानि च ।
नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सह सीतया ॥₂॥

सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः ।
सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजैः खगैः ॥₃॥

यूथबद्धांश्च पृषतान्मदोन्मत्तान्विषाणिनः ।
महिषांश्च वराहांश्च गजांश्च द्रुमवैरिणः ॥₄॥

ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ।
ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम् ॥₅॥

पद्मपुष्करसम्बाधं गजयूथैरलङ्कृतम् ।
सारसैर्हंसकादम्बैः सङ्कुलं जलचारिभिः ॥₆॥

प्रसन्नसलिले रम्यतस्मिन्सरसि शुश्रुवे ।
गीतवादित्रनिर्घोषो न तु कश्चन दृश्यते ॥₇॥

ततः कौतूहलाद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः ।
मुनिं धर्मभृतं नाम प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥₈॥

इदमत्यद्भुतं श्रुत्वा सर्वेषां नो महामुने ।
कौतूहलं महज्जातं किमिदं साधु कथ्यताम् ॥₉॥

तेनैवमुक्तो धर्मात्मा राघवेण मुनिस्तदा ।

प्रभावं सरसः कृत्स्नमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₁₀॥

इदं पञ्चाप्सरो नाम तटाकं सार्वकालिकम् ।
निर्मितं तपसा राम मुनिना माण्डकर्णिना ॥₁₁॥

स हि तेपे तपस्तीव्रं माण्डकर्णिर्महामुनिः ।
दशवर्षसहस्राणि वायुभक्षो जलाश्रय ॥₁₂॥

ततः प्रव्यथिताः सर्वे देवाः साग्निपुरोगमाः ।
अब्रुवन्वचनं सर्वे परस्पर समागताः ।
अस्मकं कस्यचित्स्थानमेष प्रार्थयते मुनिः ॥₁₃॥

ततः कर्तुं तपोविघ्नं सर्वैर्देवैर्नियोजिताः ।
प्रधानाप्सरसः पञ्चविद्युच्चलितवर्चसः ॥₁₄॥

अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ।
नीतो मदनवश्यत्वं सुराणां कार्यसिद्धये ॥₁₅॥

ताश्चैवाप्सरसः पञ्चमुनेः पत्नीत्वागताः ।
तटाके निर्मितं तासामस्मिन्नन्तर्हितं गृहम् ॥₁₆॥

तत्रैवाप्सरसः पञ्चनिवसन्त्यो यथासुखम् ।
रमयन्ति तपोयोगान्मुनिं यौवनमास्थितम् ॥₁₇॥

तासां सङ्कीडमानानामेष वादित्रनिःस्वनः ।
श्रूयते भूषणोन्मिश्रो गीतशब्दो मनोहरः ॥₁₈॥

आश्चर्यमिति तस्यैतद्वचनं भावितात्मनः ।
राघवः प्रतिजग्राह सह भ्रात्रा महायशाः ॥₁₉॥

एवं कथयमानस्य ददर्शाश्रममण्डलम् ।
कुशचीरपरिक्षिप्तं नानावृक्षसमावृतम् ॥₂₀॥

प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः ।
तदा तस्मिन्स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले ॥₂₁॥

उषित्वा सुसुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ।
जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ॥₂₂॥

येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् ।
क्वचित्परिदशान्मासानेकं संवत्सरं क्वचित् ॥₂₃॥

क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्चषट्पापरान्क्वचित् ।
अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ॥₂₄॥

त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत्सुखम् ।
तथा संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ।
रमतश्चानुकुल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥₂₅॥

परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमं श्रीमान्पुनरेवाजगाम ह ॥₂₆॥

स तमाश्रममागम्य मुनिभिः प्रतिपूजितः ।
तत्रापि न्यवसद्रामः कश्चित्कालमरिन्दमः ॥₂₇॥

अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् ।
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥₂₈॥

अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ।
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ॥₂₉॥

न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया ।
कुत्राश्रमपदं पुण्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ॥₃₀॥

प्रसादात्तत्र भवतः सानुजः सह सीतया ।
अगस्त्यमभिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् ॥₃₁॥

मनोरथो महानेष हृदि सम्परिवर्तते ।
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम् ॥³²॥

इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः ।
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ॥³³॥

अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् ।
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ॥³⁴॥

दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम् ।
अहमाख्यामि ते वत्स यत्रागस्त्यो महामुनिः ॥³⁵॥

योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः ।
दक्षिणेन महाञ्जरीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥³⁶॥

स्थलप्राये वनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते ।
बहुपुष्पफले रम्ये नानाशकुनिनादिते ॥³⁷॥

पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाः शिवाः ।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥³⁸॥

तत्रैकां रजनीमुष्य प्रभाते राम गम्यताम् ।
दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ॥³⁹॥

तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् ।
रमणीये वनोद्देशे बहुपादप संवृते ।
रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह ॥⁴⁰॥

स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसङ्कुलः ।
यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महायशः ॥⁴¹॥

इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च ।

प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥₄₂॥

पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वपांश्चाभ्रसंनिभान् ।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगाः ॥₄₃॥

सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् ।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₄₄॥

एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः ।
अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥₄₅॥

यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः ।
संनताः फलभरेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥₄₆॥

पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः ।
गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥₄₇॥

तत्र तत्र च दृश्यन्ते सङ्क्षिप्ताः काष्ठसधयाः ।
लूनाश्च पथि दृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ॥₄₈॥

एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् ।
पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं सम्प्रदृश्यते ॥₄₉॥

विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः ।
पुष्पोपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमार्जितैः ॥₅₀॥

तत्सुतीक्ष्णस्य वचनं यथा सौम्य मया श्रुतम् ।
अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥₅₁॥

निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
यस्य भ्रात्रा कृतेयं दिक्शरण्या पुण्यकर्मणा ॥₅₂॥

इहैकदा किल क्रूरो वातापिरपि चेत्खलः ।

भ्रातरौ सहितावास्तां ब्राह्मणघ्नौ महासुरौ ॥⁵³॥

धारयन्ब्राह्मणं रूपमित्थलः संस्कृतं वदन् ।
आमन्त्रयति विप्रान्स आद्धमुद्दिश्य निर्घृणः ॥⁵⁴॥

भ्रातरं संस्कृतं भ्राता ततस्तं मेषरूपिणम् ।
तान्द्विजान्भोजयामास आद्धदृष्टेन कर्मणा ॥⁵⁵॥

ततो भुक्तवतां तेषां विप्राणामित्थलोऽब्रवीत् ।
वातापे निष्क्रमस्वेति स्वरेण महता वदन् ॥⁵⁶॥

ततो भ्रातुर्वचः श्रुत्वा वातापिर्मेषवन्नदन् ।
भिच्चा भिच्चा शरीराणि ब्राह्मणानां विनिष्पतत् ॥⁵⁷॥

ब्राह्मणानां सहस्राणि तैरेवं कामरूपिभिः ।
विनाशितानि संहत्य नित्यशः पिशिताशनैः ॥⁵⁸॥

अगस्त्येन तदा देवैः प्रार्थितेन महर्षिणा ।
अनुभूय किल आद्धे भक्षितः स महासुरः ॥⁵⁹॥

ततः सम्पन्नमित्युक्त्वा दत्त्वा हस्तावसेचनम् ।
भ्रातरं निष्क्रमस्वेति इत्थलः सोऽभ्यभाषत ॥⁶⁰॥

तं तथा भाषमाणं तु भ्रातरं विप्रघातिनम् ।
अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥⁶¹॥

कुतो निष्क्रमितुं शक्तिर्मया जीर्णस्य रक्षसः ।
भ्रातुस्ते मेष रूपस्य गतस्य यमसादनम् ॥⁶²॥

अथ तस्य वचः श्रुत्वा भ्रातुर्निधनसंश्रितम् ।
प्रधर्षयितुमारेभे मुनिं क्रोधान्निशाचरः ॥⁶³॥

सोऽभ्यद्रवद्विजेन्द्रं तं मुनिना दीप्ततेजसा ।

चक्षुषानलकल्पेन निर्दग्धो निधनं गतः ॥⁶⁴॥

तस्यायमाश्रमो भ्रातुस्तटाकवनशोभितः ।
विप्रानुकम्पया येन कर्मदं दुष्करं कृतम् ॥⁶⁵॥

एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह ।
रामस्यास्तं गतः सूर्यः सन्ध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥⁶⁶॥

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि ।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयन् ॥⁶⁷॥

सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः ।
न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ॥⁶⁸॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां विमले सूर्यमण्डले ।
भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ॥⁶⁹॥

अभिवादये त्वा भगवन्सुखमध्युषितो निशाम् ।
आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम् ॥⁷⁰॥

गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः ।
यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् ॥⁷¹॥

नीवारान्पनसांस्तालांस्तिमिशान्वञ्जुलान्धवान् ।
चिरिबिह्वान्मधूकांश्च बिह्वानपि च तिन्दुकान् ॥⁷²॥

पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरनुवेष्टितान् ।
ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥⁷³॥

हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ।
मत्तैः शकुनिसङ्घैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥⁷⁴॥

ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः ।

पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥⁷⁵॥

स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः ।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥⁷⁶॥

अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ।
आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्त श्रमापहः ॥⁷⁷॥

प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥⁷⁸॥

निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ॥⁷⁹॥

तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः ।
दिगियं दक्षिणा त्रासादृश्यते नोपभुज्यते ॥⁸⁰॥

यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा ।
तदा प्रभृति निर्वेराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥⁸¹॥

नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा ।
प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभिः ॥⁸²॥

मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तमः ।
सन्देशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशौलो न वर्धते ॥⁸³॥

अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः ।
अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥⁸⁴॥

एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम् ।
अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥⁸⁵॥

आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम् ।

शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो ॥₈₆॥

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अगस्त्यं नियताहारं सततं पर्युपासते ॥₈₇॥

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः ।
नृशंसः कामवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥₈₈॥

अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतंगैः सह ।
वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥₈₉॥

अत्र सिद्धा महात्मानो विमानैः सूर्यसंनिभैः ।
त्यक्त्वा देहान्नवैर्देहैः स्वर्याताः परमर्षयः ॥₉₀॥

यक्षत्नममरत्नं च राज्यानि विविधानि च ।
अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताः शुभैः ॥₉₁॥

आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः ।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥₉₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः ।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁॥

राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली ।
रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया ॥₂॥

लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः ।
अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः ॥₃॥

ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात् ।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ॥₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः ।
तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ॥₅॥

स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥₆॥

पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ।
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ॥₇॥

द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिन्दमौ ।
यदत्रानन्तरं तच्चमाज्ञापयितुमर्हसि ॥₈॥

ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् ॥₉॥

दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ।

मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति ॥₁₀॥

गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
प्रवेश्यतां समीपं मे किं चासौ न प्रवेशितः ॥₁₁॥

एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना ।
अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेति नियताञ्जलिः ॥₁₂॥

ततो निष्क्रम्य सम्भ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
क्वासौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् ॥₁₃॥

ततो गत्वाश्रमपदं शिष्येण सह लक्ष्मणः ।
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम् ॥₁₄॥

तं शिष्यः प्रश्रितं वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन् ।
प्रावेशयद्यथान्यायं सत्कारार्थं सुसत्कृतम् ॥₁₅॥

प्रविवेश ततो रामः सीतया सहलक्ष्मणः ।
प्रशान्तहरिणाकीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ॥₁₆॥

स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च ।
विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः ॥₁₇॥

सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेरमेव च ।
धातुर्विधातुः स्थानं च वायोः स्थानं तथैव च ॥₁₈॥

ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् ।
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् ।
अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥₁₉॥

एष लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ।
औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिमम् ॥₂₀॥

एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् ।
जग्राह परमप्रीतस्तस्य पादौ परन्तपः ॥₂₁॥

अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः ।
सीतया सह वैदेह्या तदा राम सलक्ष्मणः ॥₂₂॥

प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् ॥₂₃॥

अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथिं प्रतिपूज्य च ।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥₂₄॥

प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुङ्गवः ।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥₂₅॥

अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् ।
दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥₂₆॥

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥₂₇॥

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् ।
पूजयित्वा यथाकामं पुनरेव ततोऽब्रवीत् ॥₂₈॥

इदं दिव्यं महद्घापं हेमवज्रविभूषितम् ।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥₂₉॥

अमोघः सूर्यसङ्काशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ ॥₃₀॥

सम्पूर्णो निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ।
महाराजत कोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥₃₁॥

अनेन धनुषा राम हत्वा सङ्क्षो महासुरान् ।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥³²॥

तद्धनुस्तौ च तूणीरौ शरं खड्गं च मानद ।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥³³॥

एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् ।
दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥³⁴॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण ।
अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया ॥₁॥

अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः ।
व्यक्तमुत्कण्ठते चापि मैथिली जनकात्मजा ॥₂॥

एषा हि सुकुमारी च दुःखैश्च न विमानिता ।
प्राज्यदोषं वनं प्रप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥₃॥

यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु ।
दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामनुगच्छती ॥₄॥

एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन ।
समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ॥₅॥

शतहृदानां लोलबं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा ।
गरुडानिलयोः शैघ्रमनुगच्छन्ति योषितः ॥₆॥

इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिताः ।
श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवी ह्यरुन्धती ॥₇॥

अलङ्कृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह ।
वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिन्दम ॥₈॥

एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः ।
उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम् ॥₉॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गवः ।

गुणैः सभ्रातृभार्यस्य वरदः परितुष्यति ॥₁₀॥

किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् ।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥₁₁॥

ततोऽब्रवीन्मुनि श्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम् ।
ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा धीरो धीरतरं वचः ॥₁₂॥

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः ।
देशो बहुमृगः श्रीमान्पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥₁₃॥

तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह ।
रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥₁₄॥

विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ ।
तपसश्च प्रभावेन स्नेहाद्दशरथस्य च ॥₁₅॥

हृदयस्थश्च ते छन्दो विज्ञातस्तपसा मया ।
इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने ॥₁₆॥

अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति ।
स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली तत्र रंस्यते ॥₁₇॥

स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव ।
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥₁₈॥

प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विज गणैर्युतः ।
विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥₁₉॥

भवानपि सदारश्च शक्तश्च परिरक्षणे ।
अपि चात्र वसन्नामस्तापसान्पालयिष्यसि ॥₂₀॥

एतदालक्ष्यते वीर मधुकानां महद्वनम् ।

उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमभिगच्छता ॥₂₁॥

ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः ।
ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः ॥₂₂॥

अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह ।
सात्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥₂₃॥

तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
तदाश्रमात्पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥₂₄॥

गृहीतचापौ तु नराधिपात्मजौ
विषक्ततूणी समरेष्वकातरौ ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा
प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः ।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥₁॥

तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ ।
मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥₂॥

स तौ मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव ।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥₃॥

स तं पितृसखं बुद्ध्वा पूजयामास राघवः ।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥₄॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च ।
आचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥₅॥

पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् ।
तान्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥₆॥

कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम् ।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥₇॥

स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः ।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ॥₈॥

दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव ।
कश्यपश्च महातेजास्तेषामासीच्च पश्चिमः ॥₉॥

प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति नः श्रुतम् ।

षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥₁₀॥

कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः ।
अदितिं च दितिं चैव दनूमपि च कालकाम् ॥₁₁॥

ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि ।
तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥₁₂॥

पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तृन्वै जनयिष्यथ मत्समान् ।
अदितिस्तन्मना राम दितिश्च दनुरेव च ॥₁₃॥

कालका च महाबाहो शेषास्त्वमनसोऽभवन् ।
अदित्यां जज्ञिरे देवास्त्रयस्त्रिंशदरिन्दम ॥₁₄॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च परन्तप ।
दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तात यशस्विनः ॥₁₅॥

तेषामियं वसुमती पुरासीत्सवनार्णवा ।
दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिन्दम ॥₁₆॥

नरकं कालकं चैव कालकापि व्यजायत ।
क्रौञ्चीं भासीं तथा श्येनीं धृतराष्ट्रीं तथा शुकीम् ॥₁₇॥

ताम्रापि सुषुवे कन्याः पञ्चैता लोकविश्रुताः ।
उलूकाञ्जनयत्क्रौञ्ची भासी भासान्व्यजायत ॥₁₈॥

श्येनी श्येनांश्च गृध्रांश्च व्यजायत सुतेजसः ।
धृतराष्ट्री तु हंसांश्च कलहंसांश्च सर्वशः ॥₁₉॥

चक्रवाकांश्च भद्रं ते विजज्ञे सापि भामिनी ।
शुकी नतां विजज्ञे तु नताया विनता सुता ॥₂₀॥

दशक्रोधवशा राम विजज्ञेऽप्यात्मसम्भवाः ।

मृगीं च मृगमन्दां च हरीं भद्रमदामपि ॥₂₁॥

मातङ्गीमथ शार्दूलीं श्वेतां च सुरभीं तथा ।
सर्वलक्षणसम्पन्नां सुरसां कद्रुकामपि ॥₂₂॥

अपत्यं तु मृगाः सर्वे मृग्या नरवरोत्तम ।
ऋष्काश्च मृगमन्दायाः सृमराश्चमरास्तथा ॥₂₃॥

ततस्त्रिरावतीं नाम जज्ञे भद्रमदा सुताम् ।
तस्यास्त्रैरावतः पुत्रो लोकनाथो महागजः ॥₂₄॥

हर्याश्च हरयोऽपत्यं वानराश्च तपस्विनः ।
गोलाङ्गूलांश्च शार्दूली व्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥₂₅॥

मातङ्गास्त्वथ मातङ्गा अपत्यं मनुजर्षभ ।
दिशागजं तु श्वेताक्षं श्वेता व्यजनयत्सुतम् ॥₂₆॥

ततो दुहितरौ राम सुरभिर्देव्यजायत ।
रोहिणीं नाम भद्रं ते गन्धर्वी च यशस्विनीम् ॥₂₇॥

रोहिण्यजनयद्वा वै गन्धर्वी वाजिनः सुतान् ।
सुरसाजनयन्नागान्नाम कद्रूश्च पन्नगान् ॥₂₈॥

मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥₂₉॥

मुखतो ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा ।
ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ॥₃₀॥

सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापि व्यजायत ।
विनता च शुकी पौत्री कद्रूश्च सुरसा स्वसा ॥₃₁॥

कद्रूर्नागसहस्रं तु विजज्ञे धरणीधरम् ।

द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु गरुडोऽरुण एव च ॥₃₂॥

तस्माज्जातोऽहमरुणात्सम्पातिश्च ममाग्रजः ।
जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिन्दम ॥₃₃॥

सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ।
सीतां च तात रक्षिष्ये द्वयि याते सलक्ष्मणे ॥₃₄॥

जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो
मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखिब्रमात्मवान्
जटायुषा सङ्कथितं पुनः पुनः ॥₃₅॥

स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीम्
सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा ।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो
रिपून्दिधक्षञ्शलभानिवानलः ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् ।
उवाच भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥₁॥

आगताः स्म यथोद्दिष्टममुं देशं महर्षिणा ।
अयं पञ्चवटी देशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥₂॥

सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ।
आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति सम्मतः ॥₃॥

रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण ।
तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः ॥₄॥

वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा ।
संनिकृष्टं च यत्र स्यात्समित्पुष्पकुशोदकम् ॥₅॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः ।
सीता समक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥₆॥

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥₇॥

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः ।
विमृशन्त्रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥₈॥

स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥₉॥

अयं देशः समः श्रीमान्पुष्पितैर्तरुभिर्वृतः ।

इहाश्रमपदं सौम्य यथावत्कर्तुमर्हसि ॥₁₀॥

इयमादित्यसङ्काशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः ।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥₁₁॥

यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना ।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥₁₂॥

हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ।
नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥₁₃॥

मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः ।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्य फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥₁₄॥

सौवर्णे राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे च धातुभिः ।
गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः ॥₁₅॥

सालैस्तालैस्तमालैश्च खजूरैः पनसाम्रकैः ।
नीवारैस्तिमिशैश्चैव पुंनागैश्चोपशोभिताः ॥₁₆॥

चूतैरशोकैस्तिलकैश्चम्पकैः केतकैरपि ।
पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥₁₇॥

चन्दनैः स्यन्दनैर्नीपैः पनसैर्लकुचैरपि ।
धवाश्चकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः ॥₁₈॥

इदं पुण्यमिदं मेध्यमिदं बहुमृगद्विजम् ।
इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥₁₉॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा ।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥₂₀॥

पर्णशालां सुविपुलां तत्र सङ्घातमृत्तिकाम् ।

सुस्तम्भां मस्कुरैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥₂₁॥

स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान्नदीं गोदावरीं तदा ।
स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥₂₂॥

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि ।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् ॥₂₃॥

स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया ।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत्परम् ॥₂₄॥

सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा ।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत् ॥₂₅॥

प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो ।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः ॥₂₆॥

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥₂₇॥

एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः ।
तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्सु सुखं वशी ॥₂₈॥

कञ्चित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ।
अन्वास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथामरः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः ।
शरद्वपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते ॥₁॥

स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः ।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥₂॥

प्रह्वः कलशहस्तस्तं सीतया सह वीर्यवान् ।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥₃॥

अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद ।
अलङ्कृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥₄॥

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी ।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥₅॥

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः ।
कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ॥₆॥

प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः ।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ॥₇॥

सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् ।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥₈॥

प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम् ।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान्हिमवान्गिरिः ॥₉॥

अत्यन्तसुखसञ्चारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः ।

दिवसाः सुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥₁₀॥

मृदुसूर्याः सनीहाराः पटुशीताः समारुताः ।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम् ॥₁₁॥

निवृत्ताकाशशयनाः पुष्पनीता हिमारुणाः ।
शीता वृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम् ॥₁₂॥

रविसङ्क्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः ।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥₁₃॥

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न तु शोभते ॥₁₄॥

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम् ।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥₁₅॥

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च ।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः ॥₁₆॥

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः ।
शोभन्ते किं चिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः ॥₁₇॥

मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते ॥₁₈॥

अग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्ने मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः ।
संरक्तः किञ्चिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ ॥₁₉॥

अवश्यायनिपातेन किञ्चित्प्रक्लिन्नशाद्वला ।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥₂₀॥

अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः ।

प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥₂₁॥

बाष्पसञ्छन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः ।
हिमार्द्रवालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥₂₂॥

तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च ।
शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवञ्जलम् ॥₂₃॥

जराजर्जरितैः पर्णैः शीर्णकेसरकर्णिकैः ।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥₂₄॥

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः ।
तपश्चरति धर्मात्मा बद्धक्त्या भरतः पुरे ॥₂₅॥

त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून् ।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥₂₆॥

सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः ।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥₂₇॥

अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः ।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते ॥₂₈॥

पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान् ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥₂₉॥

प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिन्दमः ।
सन्त्यज्य विविधान्सौख्यानार्यं सर्वात्मनाश्रितः ॥₃₀॥

जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना ।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥₃₁॥

न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ।

ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथाकृतः ॥₃₂॥

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः ।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥₃₃॥

इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्ब्रूवति धार्मिके ।
परिवादं जनन्यास्तमसहन्नाघवोऽब्रवीत् ॥₃₄॥

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कथञ्चन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥₃₅॥

निश्चितापि हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता ।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशीक्रियते पुनः ॥₃₆॥

इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् ।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया ॥₃₇॥

तर्पयित्वाथ सलिलैस्ते पितृन्दैवतानि च ।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च समाहिताः ॥₃₈॥

कृताभिषेकः स रराज रामः
सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन ।
कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्या
रुद्रः सनन्दिर्भगवानिवेशः ॥₃₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च ।
तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥₁॥

आश्रमं तमुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः ।
कृत्वा पौर्वाहिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥₂॥

स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया ।
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः ॥₃॥

तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः ।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥₄॥

सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः ।
भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥₅॥

सिंहोरस्कं महाबाहुं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम् ॥₆॥

राममिन्दीवरश्यामं कन्दर्पसदृशप्रभम् ।
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ॥₇॥

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ।
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा ॥₈॥

प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ।
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी ॥₉॥

न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ।
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् ॥₁₀॥

जटी तापसरूपेण सभार्यः शरचापधृक् ।
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम् ॥₁₁॥

एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परन्तपः ।
ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₁₂॥

आसीदशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः ।
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥₁₃॥

भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः ।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥₁₄॥

नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः ।
धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥₁₅॥

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कथ्यतां कासि कस्य वा ।
इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तच्चतः ॥₁₆॥

साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ।
श्रूयतां राम वक्ष्यामि तच्चार्थं वचनं मम ॥₁₇॥

अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करा ॥₁₈॥

रावणो नाम मे भ्राता राक्षसो राक्षसेश्वरः ।
प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥₁₉॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः ।
प्रख्यातवीर्यो च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥₂₀॥

तानहं समतिक्रान्ता राम त्वापूर्वदर्शनात् ।
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥₂₁॥

विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव ।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् ॥₂₂॥

इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥₂₃॥

ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च ।
पश्यन्सह मया कान्त दण्डकान्विचरिष्यसि ॥₂₄॥

इत्येवमुक्तः काकुत्स्थः प्रहस्य मदिरेक्षणाम् ।
इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् ।
स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥₁॥

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम ।
बद्धिधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता ॥₂॥

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः ।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥₃॥

अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः ।
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ॥₄॥

एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम ।
असपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥₅॥

इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता ।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₆॥

अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी ।
मया सह सुखं सर्वान्दण्डकान्विचरिष्यसि ॥₇॥

एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः ।
ततः शूर्पणखीं स्मिन्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत् ॥₈॥

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि ।
सोऽहमार्येण परवान्भ्रात्रा कमलवर्णिनी ॥₉॥

समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी ।

आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥₁₀॥

एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
भार्या वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ॥₁₁॥

को हि रूपमिदं श्रेष्ठं सन्त्यज्य वरवर्णिनि ।
मानुषेषु वरारोहे कुर्याद्भावं विचक्षणः ॥₁₂॥

इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी ।
मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥₁₃॥

सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परन्तपम् ।
सीतया सह दुर्धर्ममब्रवीत्काममोहिता ॥₁₄॥

इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे ॥₁₅॥

अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम् ।
त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम् ॥₁₆॥

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ।
अभ्यधावत्सुसङ्क्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥₁₇॥

तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः ।
निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₁₈॥

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथञ्चन ।
न कार्यः पश्य वैदेहीं कथञ्चित्सौम्य जीवतीम् ॥₁₉॥

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् ।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥₂₀॥

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः ।

उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ॥₂₁॥

निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च ।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥₂₂॥

सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता ।
ननाद विविधान्नादान्यथा प्रावृषि तोयदः ॥₂₃॥

सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना ।
प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ॥₂₄॥

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतम्
खरं जनस्थानगतं विरूपिता ।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसम्
पपात भूमौ गगनाद्यथाशनिः ॥₂₅॥

ततः सभार्यं भयमोहमूर्छिता
सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम् ।
विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता
शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥ अष्टादशः सर्गः ॥

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् ।
भगिनीं क्रोधसन्तप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः ॥₁॥

बलविक्रमसम्पन्ना कामगा कामरूपिणी ।
इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमा गता ॥₂॥

देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् ।
कोऽयमेवं महावीर्यस्त्वां विरूपां चकार ह ॥₃॥

न हि पश्याम्यहं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम् ।
अन्तरेण सहस्राक्षं महेन्द्रं पाकशासनम् ॥₄॥

अद्याहं मार्गणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तकैः ।
सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः ॥₅॥

निहतस्य मया सङ्क्षो शरसङ्कुत्तमर्मणः ।
सफेनं रुधिरं रक्तं मेदिनी कस्य पास्यति ॥₆॥

कस्य पत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य सङ्गताः ।
प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मया रणे ॥₇॥

तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुं महाहवे ॥₈॥

उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि ।
येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता ॥₉॥

इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः ।

ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् ॥₁₀॥

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकूमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥₁₁॥

गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ ।
देवौ वा मानुषौ वा तौ न तर्कयितुमुत्सहे ॥₁₂॥

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥₁₃॥

ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम् ।
इमामवस्थां नीताहं यथानाथासती तथा ॥₁₄॥

तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् ।
सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥₁₅॥

एष मे प्रथमः कामः कृतस्तात त्वया भवेत् ।
तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥₁₆॥

इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् ।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् ॥₁₇॥

मानुषौ शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह ॥₁₈॥

तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ।
इयं च रुधिरं तेषां भगिनी मम पास्यति ॥₁₉॥

मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः ।
शीघ्रं सम्पद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा ॥₂₀॥

इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश ।

तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता यथा ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता ।
रक्षसामाचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥₁॥

ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम् ।
ददृशुः सीतया सार्धं वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥₂॥

तान्दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतां तां च राक्षसीम् ।
अब्रवीद्भातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥₃॥

मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः ।
इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह ॥₄॥

वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः ।
तथेति लक्ष्मणो वाक्यं रामस्य प्रत्यपूजयत् ॥₅॥

राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् ।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ॥₆॥

पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकावनम् ॥₇॥

फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ धर्मचारिणौ ।
वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥₈॥

युष्मान्पापात्मकान्हुन्तुं विप्रकारान्महावने ।
ऋषीणां तु नियोगेन प्राप्तोऽहं सशरासनः ॥₉॥

तिष्ठतैवात्र सन्तुष्टा नोपसर्पितुमर्हथ ।

यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ॥₁₀॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
ऊचुर्वाचं सुसङ्क्रुद्धा ब्रह्मघ्नः शूलपाणयः ॥₁₁॥

संरक्तनयना घोरा रामं रक्तान्तलोचनम् ।
परुषा मधुराभाषं हृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥₁₂॥

क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः ।
त्वमेव हास्यसे प्राणानद्यास्माभिर्हतो युधि ॥₁₃॥

का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि ।
अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥₁₄॥

एभिर्बाहुप्रयुक्तेर्नः परिघैः शूलपट्टिशैः ।
प्राणांस्त्यक्ष्यसि वीर्यं च धनुश्च करपीडितम् ॥₁₅॥

इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः ।
चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् ॥₁₆॥

तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश ।
तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषणैः ॥₁₇॥

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्सूर्यसंनिभान् ।
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान् ॥₁₈॥

गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् ।
मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः ॥₁₉॥

रुक्मपुङ्गवाश्च विशिखाः प्रदीप्ता हेमभूषणाः ।
अन्तरिक्षे महोल्कानां बभूवुस्तुल्यवर्चसः ॥₂₀॥

ते भिच्चा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिराप्लुताः ।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ न्यमञ्जन्ताशनिस्त्रिणाः ॥₂₁॥

ते भिन्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः ।
निपेतुः शोणितार्द्राङ्गा विकृता विगतासवः ॥₂₂॥

तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्छिता ।
परित्रस्ता पुनस्तत्र व्यसृजद्भैरवं रवम् ॥₂₃॥

सा नदन्ती महानादं जवाच्छूर्पणखा पुनः ।
उपगम्य खरं सा तु किञ्चित्संशुष्क शोणिता ।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी ॥₂₄॥

निपातितान्प्रेक्ष्य रणे तु राक्षसान्
प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ।
वधं च तेषां निखिलेन रक्षसाम्
शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां खरः ।
उवाच व्यक्तता वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥₁॥

मया बिदानीं शूरास्ते राक्षसा रुधिराशनाः ।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥₂॥

भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः ।
घ्नन्तोऽपि न निहन्तव्या न न कुर्युर्वचो मम ॥₃॥

किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः ।
हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवद्वेष्टसे क्षितौ ॥₄॥

अनाथवद्विलपसि किं नु नाथे मयि स्थिते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वैक्लव्यं त्यज्यतामिह ॥₅॥

इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्विता ।
विमृज्य नयने सास्त्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥₆॥

प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
निहन्तुं राघवं घोरा मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥₇॥

ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः ।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥₈॥

तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाबलान् ।
रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम ॥₉॥

सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर ।

शरणं त्वं पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी ॥₁₀॥

विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि ।
किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे ॥₁₁॥

एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः ।
ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥₁₂॥

मयि ते यदनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च ।
रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर ।
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् ॥₁₃॥

यदि रामं ममामित्रमद्य त्वं न वधिष्यसि ।
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा ॥₁₄॥

बुद्ध्याहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे ।
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सचापस्य महारणे ॥₁₅॥

शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः ।
मानुषौ यन्न शक्रोषि हन्तुं तौ रामलक्ष्मणौ ॥₁₆॥

अपयाहि जनस्थानात्त्वरितः सहबान्धवः ।
निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशस्त्विह ॥₁₇॥

रामतेजोऽभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि ।
स हि तेजःसमायुक्तो रामो दशरथात्मजः ।
भ्राता चास्य महावीर्यो येन चास्मि विरूपिता ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्तदा ।
उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥₁॥

तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम ।
न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोत्थितम् ॥₂॥

न रामं गणये वीर्यान्मानुषं क्षीणजीवितम् ।
आत्मा दुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यति ॥₃॥

बाष्पः संह्रियतामेष सम्भ्रमश्च विमुच्यताम् ।
अहं रामः सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥₄॥

परश्चधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले ।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥₅॥

सा प्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम् ।
प्रशशंस पुनर्मौख्याद्भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥₆॥

तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः ।
अब्रवीद्वृषणं नाम खरः सेनापतिं तदा ॥₇॥

चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम् ।
रक्षसीं भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥₈॥

नीलजीमूतवर्णानां घोराणां क्रूरकर्मणाम् ।
लोकसिंहाविहाराणां बलिनामुग्रतेजसाम् ॥₉॥

तेषां शार्दूलदर्पाणां महास्यानां महौजसाम् ।

सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय ॥₁₀॥

उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूषि च ।
शरांश्च चित्रान्वङ्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः ॥₁₁॥

अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् ।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविदः ॥₁₂॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् ।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥₁₃॥

तं मेरुशिखराकारं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
हेमचक्रमसम्बाधं वैदूर्यमय कूबरम् ॥₁₄॥

मत्स्यैः पुष्पैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रसूर्यैश्च काञ्चनैः ।
माङ्गल्यैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिश्च समावृतम् ॥₁₅॥

ध्वजनिस्तिंशसम्पन्नं किङ्किणीकविभूषितम् ।
सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह रथं खरः ॥₁₆॥

निशाम्य तं रथगतं राक्षसा भीमविक्रमाः ।
तस्थुः सम्परिवार्येनं दूषणं च महाबलम् ॥₁₇॥

खरस्तु तान्महेष्वासान्घोरचर्मायुधध्वजान् ।
निर्यातेत्यब्रवीद्दृष्ट्वा रथस्थः सर्वराक्षसान् ॥₁₈॥

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम् ।
निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥₁₉॥

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः ।
खड्गैश्चक्रैश्च हस्तस्थैर्भ्राजमानैश्च तोमरैः ॥₂₀॥

शक्तिभिः पतिघैर्घोरिरतिमात्रैश्च कार्मुकैः ।

गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥₂₁॥

राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥₂₂॥

तांस्वभिद्रवतो दृष्ट्वा राक्षसान्भीमविक्रमान् ।
खरस्यापि रथः किञ्चिज्जगाम तदनन्तरम् ॥₂₃॥

ततस्ताञ्शबलानश्चांस्तप्तकाश्चनभूषितान् ।
खरस्य मतमाज्ञाय सारथिः समचोदयत् ॥₂₄॥

स चोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः ।
शब्देनापूरयामास दिशश्च प्रतिशस्तथा ॥₂₅॥

प्रवृद्धमन्युस्तु खरः खरस्वनो
रिपोर्वधार्थं त्वरितो यथान्तकः ।
अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्-
महाबलो मेघ इवाश्मवर्षवान् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

तत्प्रयातं बलं घोरमशिवं शोणितोदकम् ।
अभ्यवर्षन्महामेघस्तुमुलो गर्दभारुणः ॥₁॥

निपेतुस्तुरगास्तस्य रथयुक्ता महाजवाः ।
समे पुष्पचिते देशे राजमार्गे यदृच्छया ॥₂॥

श्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम् ।
अलातचक्रप्रतिमं प्रतिगृह्य दिवाकरम् ॥₃॥

ततो ध्वजमुपागम्य हेमदण्डं समुच्छ्रितम् ।
समाक्रम्य महाकायस्तस्थौ गृध्रः सुदारुणः ॥₄॥

जनस्थानसमीपे च समाक्रम्य खरस्वनाः ।
विस्वरान्विविधांश्चक्रुर्मासादा मृगपक्षिणः ॥₅॥

व्याजह्वश्च पदीप्तायां दिशि वै भैरवस्वनम् ।
अशिवा यातु दाहानां शिवा घोरा महास्वनाः ॥₆॥

प्रभिन्नगिरिसङ्काशास्तोयशोषितधारिणः ।
आकाशं तदनाकाशं चक्रुर्भीमा बलाहकाः ॥₇॥

बभूव तिमिरं घोरमुद्धतं रोमहर्षणम् ।
दिशो वा विदिशो वापि सुव्यक्तं न चकाशिरे ॥₈॥

क्षतजार्द्रसवर्णाभा सन्ध्याकालं विना बभौ ।
खरस्याभिमुखं नेदुस्तदा घोरा मृगाः खगाः ॥₉॥

नित्याशिवकरा युद्धे शिवा घोरनिदर्शनाः ।

नेदुर्बलस्याभिमुखं ज्वालोद्गारिभिराननैः ॥₁₀॥

कबन्धः परिघाभासो दृश्यते भास्करान्तिके ।
जग्राह सूर्यं स्वर्भानुरपर्वणि महाग्रहः ॥₁₁॥

प्रवाति मारुतः शीघ्रं निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
उत्पेतुश्च विना रात्रिं ताराः खद्योतसप्रभाः ॥₁₂॥

संलीनमीनविहगा नलिन्यः पुष्पपङ्कजाः ।
तस्मिन्क्षणे बभूवुश्च विना पुष्पफलैर्द्रुमाः ॥₁₃॥

उद्धूतश्च विना वातं रेणुर्जलधरारुणः ।
वीचीकूचीति वाश्यन्तो बभूवुस्तत्र सारिकाः ॥₁₄॥

उल्काश्चापि सनिर्घोषा निपेतुर्घोरदर्शनाः ।
प्रचचाल मही चापि सशैलवनकानना ॥₁₅॥

खरस्य च रथस्थस्य नर्दमानस्य धीमतः ।
प्राकम्पत भुजः सव्यः खरश्चास्यावसञ्जत ॥₁₆॥

साम्रा सम्पद्यते दृष्टिः पश्यमानस्य सर्वतः ।
ललाटे च रुजा जाता न च मोहान्न्यवर्तत ॥₁₇॥

तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्नोमहर्षणान् ।
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्स खरस्तदा ॥₁₈॥

महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्योरदर्शनान् ।
न चिन्तयाम्यहं वीर्याद्वलवान्दुर्बलानिव ॥₁₉॥

तारा अपि शरैस्तीक्ष्णैः पातयेयं नभस्तलात् ।
मृत्युं मरणधर्मेण सङ्क्रुद्धो योजयाम्यहम् ॥₂₀॥

राघवं तं बलोत्सिक्तं भ्रातरं चापि लक्ष्मणम् ।

अहत्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे ॥₂₁॥

सकामा भगिनी मेऽस्तु पीत्वा तु रुधिरं तयोः ।
यन्निमित्तं तु रामस्य लक्ष्मणस्य विपर्ययः ॥₂₂॥

न क्वचित्प्राप्तपूर्वो मे संयुगेषु पराजयः ।
युष्माकमेतत्प्रत्यक्षं नानृतं कथयाम्यहम् ॥₂₃॥

देवराजमपि क्रुद्धो मत्तैरावतयायिनम् ।
वज्रहस्तं रणे हन्यां किं पुनस्तौ च मानुषौ ॥₂₄॥

सा तस्य गर्जितं श्रुत्वा राक्षसस्य महाचमूः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे मृत्युपाशावपाशिता ॥₂₅॥

समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षिणः ।
ऋषयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥₂₆॥

समेत्य चोरुः सहितास्तेऽन्यायं पुण्यकर्मणः ।
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्योऽस्तु लोकानां ये च सम्मताः ॥₂₇॥

जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यात्रजनीचरान् ।
चक्रा हस्तो यथा युद्धे सर्वानसुरपुङ्गवान् ॥₂₈॥

एतच्चान्यच्च बहुशो ब्रुवाणाः परमर्षयः ।
ददृशुर्वाहिनीं तेषां राक्षसानां गतायुषाम् ॥₂₉॥

रथेन तु खरो वेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ।
तं दृष्ट्वा राक्षसं भूयो राक्षसाश्च विनिःसृताः ॥₃₀॥

श्वेन गामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहङ्गमः ।
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः ॥₃₁॥

मेघमाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ।

द्वादशैते महावीर्याः प्रतस्थुरभितः खरम् ॥₃₂॥

महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमार्थी त्रिशिरास्तथा ।
चत्वार एते सेनाग्र्या दूषणं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥₃₃॥

सा भीमवेगा समराभिकामा
सुदारुणा राक्षसवीर सेना ।
तौ राजपुत्रौ सहसाभ्युपेता
मालाग्रहाणामिव चन्द्रसूर्यौ ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

आश्रमं प्रति याते तु खरे खरपराक्रमे ।
तानेवौत्पातिकान्नामः सह भ्रात्रा ददर्श ह ॥₁॥

तानुत्पातान्महाघोरानुत्थितान्नोमहर्षणान् ।
प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₂॥

इमान्यस्य महाबाहो सर्वभूतापहारिणः ।
समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुं सर्वराक्षसान् ॥₃॥

अमी रुधिरधारास्तु विसृजन्तः खरस्वनान् ।
व्योम्नि मेघा विवर्तन्ते परुषा गर्दभारुणाः ॥₄॥

सधूमाश्च शराः सर्वे मम युद्धाभिनन्दिनः ।
रुक्मपृष्ठानि चापानि विवेष्टन्ते च लक्ष्मण ॥₅॥

यादृशा इह कूजन्ति पक्षिणो वनचारिणः ।
अग्रतो नो भयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च ॥₆॥

सम्प्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः ।
अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः ॥₇॥

संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम् ।
सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्तुं हि लक्ष्यते ॥₈॥

उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मणः ।
निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुः परिक्षयः ॥₉॥

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता ।

आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥₁₀॥

तस्माद्गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः ।
गुहामाश्रयशैलस्य दुर्गां पादपसङ्कुलाम् ॥₁₁॥

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया ।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स माचिरम् ॥₁₂॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया ।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् ॥₁₃॥

तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया ।
हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् ॥₁₄॥

सा तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः ।
बभूव रामस्तिमिरे विधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥₁₅॥

स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् ।
बभूवावस्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः ॥₁₆॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।
ऊचुः परमसन्तस्ता गुह्यकाश्च परस्परम् ॥₁₇॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति ॥₁₈॥

ततो गम्भीरनिर्हादं घोरवर्मायुधध्वजम् ।
अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यदृश्यत ॥₁₉॥

सिंहनादं विसृजतामन्योन्यमभिगर्जताम् ।
चापानि विस्फुरयतां जृम्भतां चाप्यभीक्ष्णशः ॥₂₀॥

विप्रघुष्टस्वनानां च दुन्दुभींश्चापि निघ्नताम् ।

तेषां सुतुमुलः शब्दः पूरयामास तद्धनम् ॥₂₁॥

तेन शब्देन वित्रस्ताः श्वापदा वनचारिणः ।
दुद्रुवुर्यत्र निःशब्दं पृष्ठतो नावलोकयन् ॥₂₂॥

तच्चनीकं महावेगं रामं समुपसर्पत ।
घृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम् ॥₂₃॥

रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः ।
ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धाभिमुखमुद्यतम् ॥₂₄॥

वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥₂₅॥

दुष्प्रेक्ष्यः सोऽभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ।
तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राव्यथन्वनदेवताः ॥₂₆॥

तस्य क्रुद्धस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा ।
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं च रिपुघातिनम् ।
ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥₁॥

तं दृष्ट्वा सगुणं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम् ।
रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत् ॥₂॥

स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान्समचोदयत् ।
यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन्धनुः स्थितः ॥₃॥

तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वे ते रजनीचराः ।
नर्दमाना महानादं सचिवाः पर्यवारयन् ॥₄॥

स तेषां यातुधानानां मध्ये रतो गतः खरः ।
बभूव मध्ये ताराणां लोहिताङ्ग इवोदितः ॥₅॥

ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः ।
रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम् ॥₆॥

मुद्गरैरायसैः शूलैः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
राक्षसाः समरे रामं निजघ्नू रोषतत्पराः ॥₇॥

ते बलाहकसङ्काशा महानादा महाबलाः ।
अभ्यधावन्त काकुत्स्थं रामं युद्धे जिघांसवः ॥₈॥

ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन् रक्षसां गुणाः ।
शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाधनाः ॥₉॥

स तैः परिवृतो घोरै राघवो रक्षसां गणैः ।

तिथिष्विव महादेवो वृतः पारिषदां गणैः ॥₁₀॥

तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः ।
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः ॥₁₁॥

स तैः प्रहरणैर्घोरिर्भिन्नगात्रो न विव्यथे ।
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः ॥₁₂॥

स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः ।
बभूव रामः सन्ध्याभ्रेर्दिवाकर इवावृतः ॥₁₃॥

विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
एकं सहस्त्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् ॥₁₄॥

ततो रामः सुसङ्क्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः ।
ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥₁₅॥

दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ।
मुमोच लीलया रामः कङ्कपत्रानजिह्मगान् ॥₁₆॥

ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया ।
आददू रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव ॥₁₇॥

भित्त्वा राक्षसदेहांस्तांस्ते शरा रुधिराप्नुताः ।
अन्तरिक्षगता रेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥₁₈॥

असङ्ख्येयास्तु रामस्य सायकाश्चापमण्डलात् ।
विनिष्पेतुरतीवोग्रा रक्षः प्राणापहारिणः ॥₁₉॥

तैर्धनूषि ध्वजाग्राणि वर्माणि च शिरांसि च ।
बहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ॥₂₀॥

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः ।

भीममार्तस्वरं चक्रुर्भिद्यमाना निशाचराः ॥₂₁॥

तत्सैन्यं निशितैर्बाणैरदितं मर्मभेदिभिः ।
रामेण न सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना ॥₂₂॥

केचिद्भीमबलाः शूराः शूलान्खड्गान्परश्वधान् ।
चिक्षिपुः परमक्रुद्धा रामाय रजनीचराः ॥₂₃॥

तानि बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य राघवः ।
जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान् ॥₂₄॥

अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णाश्च निशाचराः ।
खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शरार्दिताः ॥₂₅॥

तान्सर्वान्पुनरादाय समाश्वास्य च दूषणः ।
अभ्यधावत काकुत्स्थं क्रुद्धो रुद्रमिवान्तकः ॥₂₆॥

निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः ।
राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥₂₇॥

तद्वभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
रामस्यास्य महाघोरं पुनस्तेषां च रक्षसाम् ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

तद्गुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ।
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥₁॥

प्रतिगृह्य च तद्वरं निमीलित इवर्षभः ।
रामः क्रोधं परं भेजे वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥₂॥

ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा ।
शरैरभ्यकिरत्सैन्यं सर्वतः सहदूषणम् ॥₃॥

ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः ।
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं रोमहर्षणम् ॥₄॥

वेष्टितं काञ्चनैः पट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ।
आयसैः शङ्कुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षिताम् ॥₅॥

वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम् ।
तं महोरगसङ्काशं प्रगृह्य परिघं रणे ।
दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥₆॥

तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य स राघवः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ ॥₇॥

भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि ।
परिघश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवाग्रतः ॥₈॥

स कराभ्यां विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः ।
विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः ॥₉॥

दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् ॥₁₀॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः ।
संहत्याभ्यद्रवन्नामं मृत्युपाशावपाशिताः ।
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः ॥₁₁॥

महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ।
स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् ॥₁₂॥

दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ।
तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह सम्प्राप्तानतिथीनिव ॥₁₃॥

महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनङ्गनः ।
असङ्ख्येयैस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् ॥₁₄॥

स्थूलाक्षस्याक्षिणी तीक्ष्णैः पूरयामास सायकैः ।
स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः ॥₁₅॥

ततः पावकसङ्काशैर्हमवज्रविभूषितैः ।
जघनशेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥₁₆॥

ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः ।
निजघ्नस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ॥₁₇॥

रक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिना ।
सहस्रं च सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ॥₁₈॥

तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ॥₁₉॥

तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः ।
आस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥₂₀॥

क्षणेन तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् ।
बभूव निरय प्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥₂₁॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥₂₂॥

तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः ।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥₂₃॥

ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे
समीक्ष्य रामेण हतं बलीयसा ।
रथेन रामं महता खरस्ततः
समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः ।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत् ॥₁॥

मां नियोजय विक्रान्त संनिवर्तस्व साहसात् ।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥₂॥

प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे ।
यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ॥₃॥

अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम ।
विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥₄॥

प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि ।
मयि वा निहते रामं संयुगायोपयास्यसि ॥₅॥

खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः ।
गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥₆॥

त्रिशिराश्च रथेनैव वाजियुक्तेन भास्वता ।
अभ्यद्रवद्रणे रामं त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥₇॥

शरधारा समूहान्स महामेघ इवोत्सृजन् ।
व्यसृजत्सदृशं नादं जलार्द्रस्येव दुन्दुभेः ॥₈॥

आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः ।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्चितान् ॥₉॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो राम त्रिशिरसोर्महान् ।

बभूवातीव बलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥₁₀॥

ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः ।
अमर्षी कुपितो रामः संरब्धमिदमब्रवीत् ॥₁₁॥

अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम् ।
पुष्पैरिव शरैर्यस्य ललाटेऽस्मि परिक्षतः ।
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणच्युतान् ॥₁₂॥

एवमुक्त्वा तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान् ।
त्रिशिरो वक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश ॥₁₃॥

चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः ।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः ॥₁₄॥

अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् ॥₁₅॥

ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ।
बिभेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवञ्जडः ॥₁₆॥

सायकैश्चाप्रमेयात्मा सामर्षस्तस्य रक्षसः ।
शिरांस्यपातयत्क्षीणि वेगवद्भिस्त्रिभिः शतैः ॥₁₇॥

स भूमौ शोणितोद्गारी रामबाणाभिपीडितः ।
न्यपतत्पतितैः पूर्वं स्वशिरोभिर्निशाचरः ॥₁₈॥

हतशेषास्ततो भग्ना राक्षसाः खरसंश्रयाः ।
द्रवन्ति स्म न तिष्ठन्ति व्याघ्रवस्ता मृगा इव ॥₁₉॥

तान्खरो द्रवतो दृष्ट्वा निवर्त्य रुषितः स्वयम् ।
राममेवाभिदुद्राव राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह ।
खरस्याप्यभवत्तासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥₁॥

स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलम् ।
हतमेकेन रामेण दूषणस्त्रिशिरा अपि ॥₂॥

तद्वलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः ।
आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा ॥₃॥

विकृष्य बलवद्घापं नाराचान्नक्तभोजनान् ।
खरश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥₄॥

ज्यां विधुन्वन्सुबहुशः शिक्षयास्त्राणि दर्शयन् ।
चचार समरे मार्गाञ्छरै रथगतः खरः ॥₅॥

स सर्वाश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः ।
पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्वनुः ॥₆॥

स सायकैर्दुर्विषहैः सस्फुलिङ्गैरिवाग्निभिः ।
नभश्चकाराविवरं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥₇॥

तद्वभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः ।
पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसङ्कुलम् ॥₈॥

शरजालावृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते ।
अन्योन्यवधसंरम्भादुभयोः सम्प्रयुध्यतोः ॥₉॥

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः ।

आजघान रणे रामं तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥₁₀॥

तं रथस्थं धनुष्पाणिं राक्षसं पर्यवस्थितम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवान्तकम् ॥₁₁॥

तं सिंहमिव विक्रान्तं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥₁₂॥

ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः ।
आससाद रणे रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥₁₃॥

ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः ।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥₁₄॥

स पुनस्त्वपरान्सप्त शरानादाय वर्मणि ।
निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् ॥₁₅॥

ततस्तत्प्रहतं बाणैः खरमुक्तैः सुपर्वभिः ।
पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसः ॥₁₆॥

स शरैरर्पितः क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवः ।
रराज समरे रामो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥₁₇॥

ततो गम्भीरनिर्हादं रामः शत्रुनिबर्हणः ।
चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्भुः ॥₁₈॥

सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा ।
वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत ॥₁₉॥

ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः संनतपर्वभिः ।
चिच्छेद रामः सङ्क्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् ॥₂₀॥

स दर्शनीयो बहुधा विच्छिन्नः काञ्चनो ध्वजः ।

जगाम धरणीं सूर्यो देवतानामिवाज्ञया ॥₂₁॥

तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः ।
विव्याध हृदि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोमरैः ॥₂₂॥

स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः ।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम् ॥₂₃॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य परमाहवे ।
मुमोच परमेष्वासः षड्भ्रानभिलक्षितान् ॥₂₄॥

शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्पयत् ।
त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्त्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह ॥₂₅॥

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्भास्करोपमान् ।
जिघांसू राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥₂₆॥

ततोऽस्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
षष्ठेन च शिरः सङ्क्षोचिच्छेद खरसारथेः ॥₂₇॥

त्रिभिस्त्रिवेणुं बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः
द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः ।
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव
त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम् ॥₂₈॥

प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥₂₉॥

तत्कर्म रामस्य महारथस्य
समेत्य देवाश्च महर्षयश्च ।
अपूजयन्प्राञ्जलयः प्रहृष्टाः
तदा विमानाग्रगताः समेताः ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् ।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

गजाश्वरथसम्बाधे बले महति तिष्ठता ।
कृतं सुदारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम् ॥₂॥

उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् ।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥₃॥

कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर ।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥₄॥

लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते ।
भ्रष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव ॥₅॥

वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः ।
किं नु हत्वा महाभागान्फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥₆॥

न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः ।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥₇॥

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥₈॥

नचिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् ।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥₉॥

पापमाच्चरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् ।

अहमासादितो राजा प्राणान्हुतुं निशाचर ॥₁₀॥

अद्य हि त्वां मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
विदार्य निपतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः ॥₁₁॥

ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः ।
तानद्य निहतः सङ्क्षो ससैन्योऽनुगमिष्यसि ॥₁₂॥

अद्य त्वां निहतं बाणैः पश्यन्तु परमर्षयः ।
निरयस्थं विमानस्था ये त्वया हिंसिताः पुरा ॥₁₃॥

प्रहर त्वं यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम ।
अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा ॥₁₄॥

एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्छितः ॥₁₅॥

प्राकृतान्नाक्षसान्हत्वा युद्धे दशरथात्मज ।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥₁₆॥

विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः ।
कथयन्ति न ते किञ्चित्तेजसा स्वेन गर्विताः ॥₁₇॥

प्राकृतास्त्वकृतात्मानो लोके क्षत्रियपांसनाः ।
निरर्थकं विकत्थन्ते यथा राम विकत्थसे ॥₁₈॥

कुलं व्यपदिशन्वीरः समरे कोऽभिधास्यति ।
मृत्युकाले हि सम्प्राप्ते स्वयमप्रस्तवे स्तवम् ॥₁₉॥

सर्वथा तु लघुत्वं ते कथनेन विदर्शितम् ।
सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥₂₀॥

न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम् ।

धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम् ॥₂₁॥

पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान्रणे तव ।
त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः ॥₂₂॥

कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम् ।
अस्तं गच्छेद्धि सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥₂₃॥

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते ।
त्वद्विनाशात्करोम्यद्य तेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥₂₄॥

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धस्तां गदां परमाङ्गदाम् ।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥₂₅॥

खरबाहुप्रमुक्ता सा प्रदीप्ता महती गदा ।
भस्मवृक्षांश्च गुल्मांश्च कृत्वागात्तत्समीपतः ॥₂₆॥

तामापतन्तीं ज्वलितां मृत्युपाशोपमां गदा ।
अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥₂₇॥

सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले ।
गदामन्त्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः ।
स्मयमानः खरं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥₁॥

एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम ।
शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमुपगर्जितम् ॥₂॥

एषा बाणविनिर्भिन्ना गदा भूमितलं गता ।
अभिधानप्रगल्भस्य तव प्रत्ययघातिनी ॥₃॥

यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम् ।
राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः ॥₄॥

नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः ।
प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा ॥₅॥

अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम् ।
विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम् ॥₆॥

पांसुरूपितसर्वाङ्गः स्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ।
स्वप्स्यसे गां समाश्लिष्य दुर्लभां प्रमदामिव ॥₇॥

प्रवृद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने ।
भविष्यन्त्यशरण्यानां शरण्या दण्डका इमे ॥₈॥

जनस्थाने हतस्थाने तव राक्षसमच्छरैः ।
निर्भया विचरिष्यन्ति सर्वतो मुनयो वने ॥₉॥

अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः ।

बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः ॥₁₀॥

अद्य शोकरसज्ञास्ता भविष्यन्ति निशाचर ।
अनुरूपकुलाः पत्न्यो यासां त्वं पतिरीदृशः ॥₁₁॥

नृशंसशील क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक ।
त्वत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः ॥₁₂॥

तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं रणे ।
खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतर स्वनः ॥₁₃॥

दृढं खल्वलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः ।
वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्युवश्यो न बुध्यसे ॥₁₄॥

कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये ।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः ॥₁₅॥

एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भृकुटिं ततः ।
स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः ॥₁₆॥

रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन् ।
स तमुत्पाटयामास सन्दृश्य दशनच्छदम् ॥₁₇॥

तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनर्दित्वा महाबलः ।
राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत् ॥₁₈॥

तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान् ।
रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम् ॥₁₉॥

जातस्त्रेदस्ततो रामो रोषाद्रक्तान्तलोचनः ।
निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥₂₀॥

तस्य बाणान्तराद्रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम् ।

गिरेः प्रस्रवणस्येव तोयधारापरिस्रवः ॥₂₁॥

विह्वलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे ।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्भुतम् ॥₂₂॥

तमापतन्तं संरब्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् ।
अपसर्पत्प्रतिपदं किञ्चित्त्वरितविक्रमः ॥₂₃॥

ततः पावकसङ्काशं बधाय समरे शरम् ।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥₂₄॥

स तद्वत्तं मघवता सुरराजेन धीमता ।
सन्दधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥₂₅॥

स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः ।
रामेण धनुरुद्यम्य खरस्योरसि चापतत् ॥₂₆॥

स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना ।
रुद्रेणैव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥₂₇॥

स वृत्र इव वज्रेण फेनेन नमुचिर्यथा ।
बलो वेन्द्राशनिहतो निपपात हतः खरः ॥₂₈॥

ततो राजर्षयः सर्वे सङ्गताः परमर्षयः ।
सभाज्य मुदिता राममिदं वचनमब्रुवन् ॥₂₉॥

एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ।
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरन्दरः ॥₃₀॥

आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।
एषां वधार्थं क्रूराणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥₃₁॥

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ।

सुखं धर्मं चरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ॥₃₂॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ।
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमं सुखी ॥₃₃॥

ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः ।
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिवादितः ॥₃₄॥

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश ।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥₁॥

दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे ।
दृष्ट्वा पुनर्महानादं ननाद जलदोपमा ॥₂॥

सा दृष्ट्वा कर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम् ।
जगाम परमौद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥₃॥

स ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् ।
उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम् ॥₄॥

आसीनं सूर्यसङ्काशे काञ्चने परमासने ।
रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥₅॥

देवगन्धर्वभूतानामृषीणां च महात्मनाम् ।
अजेयं समरे शूरं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥₆॥

देवासुरविमर्देषु वज्राशनिकृतव्रणम् ।
ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥₇॥

विंशद्भुजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम् ।
विशालवक्षसं वीरं राजलक्ष्मणलक्षितम् ॥₈॥

स्निग्धवैदूर्यसङ्काशं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ।
सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ॥₉॥

विष्णुचक्रनिपातैश्च शतशो देवसंयुगे ।

आहताङ्गं समस्तैश्च देवप्रहरणैस्तथा ॥₁₀॥

अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणं क्षिप्रकारिणम् ।
क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम् ॥₁₁॥

उच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिमर्शनम् ।
सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारं यज्ञविघ्नकरं सदा ॥₁₂॥

पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ।
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः ॥₁₃॥

कैलासं पर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् ।
विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः ॥₁₄॥

वनं चैत्ररथं दिव्यं नलिनीं नन्दनं वनम् ।
विनाशयति यः क्रोधाद्देवोद्यानानि वीर्यवान् ॥₁₅॥

चन्द्रसूर्यौ महाभागावुत्तिष्ठन्तौ परन्तपौ ।
निवारयति बाहुभ्यां यः शैलशिखरोपमः ॥₁₆॥

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
पुरा स्वयम्भुवे धीरः शिरांस्युपजहार यः ॥₁₇॥

देवदानवगन्धर्वपिशाचपतगोरगैः ।
अभयं यस्य सङ्ग्रामे मृत्युतो मानुषादृते ॥₁₈॥

मन्त्ररभितुष्टं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः ।
हविर्धानेषु यः सोममुपहन्ति महाबलः ॥₁₉॥

आप्तयज्ञहरं क्रूरं ब्रह्मघ्नं दुष्टचारिणम् ।
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् ।
रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥₂₀॥

राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् ।
तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् ।
राक्षसेन्द्रं महाभागं पौलस्त्य कुलनन्दनम् ॥₂₁॥

तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनम्
प्रदर्शयित्वा भयमोहमूर्छिता ।
सुदारुणं वाक्यमभीतचारिणी
महात्मना शूर्पणखा विरूपिता ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥ एकत्रिंशः सर्गः ॥

ततः शूर्पणखा दीना रावणं लोकरावणम् ।
अमात्यमध्ये सङ्क्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः ।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे ॥₂॥

सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् ।
लुब्धं न बहु मन्यन्ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥₃॥

स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः ।
स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥₄॥

अयुक्तचारं दुर्दर्शमस्त्राधीनं नराधिपम् ।
वर्जयन्ति नरा दूरान्नदीपङ्कमिव द्विपाः ॥₅॥

ये न रक्षन्ति विषयमस्त्राधीना नराधिपः ।
ते न वृद्धा प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥₆॥

आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः ।
अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि ॥₇॥

येषां चारश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर ।
अस्त्राधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥₈॥

यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥₉॥

अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्वृतम् ।

स्वजनं च जनस्थानं हतं यो नावबुध्यसे ॥₁₀॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥₁₁॥

ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः ।
धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥₁₂॥

त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च रावण ।
विषये स्वे समुत्पन्नं भयं यो नावबुध्यसे ॥₁₃॥

तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् ।
व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥₁₄॥

अतिमानिनमग्राह्यमात्मसम्भावितं नरम् ।
क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥₁₅॥

नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च ।
क्षिप्रं राज्याध्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भविष्यति ॥₁₆॥

शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्टैरपि च पांसुभिः ।
न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥₁₇॥

उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा ।
एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥₁₈॥

अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥₁₉॥

नयनाभ्यां प्रसुप्तोऽपि जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥₂₀॥

त्वं तु रावणदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ।

यस्य तेऽविदितश्चरै रक्षसां सुमहान्वधः ॥₂₁॥

परावमन्ता विषयेषु सङ्गतो
नदेश कालप्रविभाग तच्चवित् ।
अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चये
विपन्नराज्यो न चिराद्विपत्स्यते ॥₂₂॥

इति स्वदोषान्परिकीर्तितांस्तया
समीक्ष्य बुद्ध्या क्षणदाचरेश्वरः ।
धनेन दर्पेण बलेन चान्वितो
विचिन्तयामास चिरं स रावणः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

ततः शूर्पणखां क्रुद्धां ब्रुवतीं परुषं वचः ।
अमात्यमध्ये सङ्क्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥₁॥

कश्च रामः कथं वीर्यः किं रूपः किं पराक्रमः ।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुश्चरम् ॥₂॥

आयुधं किं च रामस्य निहता येन राक्षसाः ।
खरश्च निहतं सङ्क्रुद्धो दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥₃॥

इत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्छिता ।
ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₄॥

दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ।
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः ॥₅॥

शक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम् ।
दीप्तान्क्षिपति नाराचान्सर्पानिव महाविषान् ॥₆॥

नाददानं शरान्योरान्न मुञ्चन्तं महाबलम् ।
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे ॥₇॥

हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ।
इन्द्रेणैवोत्तमं सस्यमाहतं ब्रह्मवृष्टिभिः ॥₈॥

रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश ।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना ॥₉॥

अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सहदूषणः ।

ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः ॥₁₀॥

एका कथञ्चिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना ।
स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना ॥₁₁॥

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः ।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥₁₂॥

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्बली ।
रामस्य दक्षिणे बाहुर्नित्यं प्राणो बहिष्परः ॥₁₃॥

रामस्य तु विशालाक्षी धर्मपत्नी यशस्विनी ।
सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥₁₄॥

नैव देवी न गन्धर्वा न यक्षी न च किंनरी ।
तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥₁₅॥

यस्य सीता भवेद्भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत् ।
अतिजीवेत्स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरन्दरात् ॥₁₆॥

सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्यास्तथा पतिः ॥₁₇॥

तां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् ॥₁₈॥

तां तु दृष्ट्वाद्य वैदेहीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
मन्मथस्य शराणां च त्वं विधेयो भविष्यसि ॥₁₉॥

यदि तस्यामभिप्रायो भार्यार्थे तव जायते ।
शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः ॥₂₀॥

कुरु प्रियं तथा तेषां रक्षसां राक्षसेश्वर ।

वधात्तस्य नृशंसस्य रामस्याश्रमवासिनः ॥₂₁॥

तं शरैर्निशितैर्हत्वा लक्ष्मणं च महारथम् ।
हतनाथां सुखं सीतां यथावदुपभोक्ष्यसे ॥₂₂॥

रोचते यदि ते वाक्यं ममैतद्राक्षसेश्वर ।
क्रियतां निर्विशङ्केन वचनं मम राघव ॥₂₃॥

निशम्य रामेण शरैरजिह्मगैर्-
हताञ्जनस्थानगतान्निशाचरान् ।
खरं च बुद्ध्वा निहतं च दूषणम्
ब्रमद्य कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

ततः शूर्पणखा वाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम् ।
सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह ॥₁॥

तत्कार्यमनुगम्याथ यथावदुपलभ्य च ।
दोषाणां च गुणानां च सम्प्रधार्य बलाबलम् ॥₂॥

इति कर्तव्यमित्येव कृत्वा निश्चयमात्मनः ।
स्थिरबुद्धिस्ततो रम्यां यानशालां जगाम ह ॥₃॥

यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः ।
सूतं सञ्चोदयामास रथः संयुज्यतामिति ॥₄॥

एवमुक्तः क्षणेनैव सारथिर्लघुविक्रमः ।
रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥₅॥

काञ्चनं रथमास्थाय कामगं रत्नभूषितम् ।
पिशाचवदनैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ॥₆॥

मेघप्रतिमनादेन स तेन धनदानुजः ।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ॥₇॥

स श्वेतबालव्यसनः श्वेतच्छत्रो दशाननः ।
स्निग्धवैदूर्यसङ्काशस्तप्तकाञ्चनभूषणः ॥₈॥

दशास्यो विंशतिभुजो दर्शनीय परिच्छदः ।
त्रिदशारिर्मुनीन्द्रघ्नो दशशीर्ष इवादिराट् ॥₉॥

कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः ।

विद्युन्मण्डलवान्मेघः सबलाक इवाम्बरे ॥₁₀॥

सशैलं सागरानूपं वीर्यवानवलोकयन् ।
नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णं सहस्रशः ॥₁₁॥

शीतमङ्गलतोयाभिः पद्मिनीभिः समन्ततः ।
विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिः समावृतम् ॥₁₂॥

कदल्याढकिसम्बाधं नालिकेरोपशोभितम् ।
सालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्च सुपुष्पितैः ॥₁₃॥

अत्यन्तनियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ।
नागैः सुपर्णैर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च सहस्रशः ॥₁₄॥

जितकामैश्च सिद्धैश्च चामणैश्चोपशोभितम् ।
आजैर्वैखानसैर्मर्षिर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥₁₅॥

दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ।
क्रीडा रतिविधिज्ञाभिरप्सरोग्भिः सहस्रशः ॥₁₆॥

सेवितं देवपत्नीभिः श्रीमतीभिः श्रिया वृतम् ।
देवदानवसङ्घैश्च चरितं त्वमृताशिभिः ॥₁₇॥

हंसक्रौञ्चप्लवाकीर्णं सारसैः सम्प्रणादितम् ।
वैदूर्यप्रस्तरं रम्यं स्निग्धं सागरतेजसा ॥₁₈॥

पाण्डुराणि विशालानि दिव्यमाल्ययुतानि च ।
तूर्यगीताभिजुष्टानि विमानानि समन्ततः ॥₁₉॥

तपसा जितलोकानां कामगान्यभिसम्पतन् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव ददर्श धनदानुजः ॥₂₀॥

निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः ।

वनानि पश्यन्सौम्यानि घ्राणतृप्तिकराणि च ॥₂₁॥

अगरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च ।
तक्कूलानां च जात्यानां फलानां च सुगन्धिनाम् ॥₂₂॥

पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च ।
मुक्तानां च समूहानि शुष्यमाणानि तीरतः ॥₂₃॥

शङ्खानां प्रस्तरं चैव प्रवालनिचयं तथा ।
काञ्चनानि च शैलानि राजतानि च सर्वशः ॥₂₄॥

प्रस्रवाणि मनोज्ञानि प्रसन्नानि हृदानि च ।
धनधान्योपपन्नानि स्त्रीरत्नैरावृतानि च ॥₂₅॥

हस्त्यश्वरथगाढानि नगराण्यवलोकयन् ।
तं समं सर्वतः स्निग्धं मृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥₂₆॥

अनूपं सिन्धुराजस्य ददर्श त्रिदिवोपमम् ।
तत्रापश्यत्स मेघाभं न्यग्रोधमृषिभिर्वृतम् ॥₂₇॥

समन्तादस्य ताः शाखाः शतयोजनमायताः ।
यस्य हस्तिनमादाय महाकायं च कच्चपम् ।
भक्षार्थं गरुडः शाखामाजगाम महाबलः ॥₂₈॥

तस्य तां सहसा शाखां भारेण पतगोत्तमः ।
सुपर्णः पर्णबहुलां बभञ्जाथ महाबलः ॥₂₉॥

तत्र वैखानसा माषा वालखिल्या मरीचिपाः ।
अजा बभूवूर्धूमाश्च सङ्गताः परमर्षयः ॥₃₀॥

तेषां दयार्थं गरुडस्तां शाखां शतयोजनाम् ।
जगामादाय वेगेन तौ चोभौ गजकच्छपौ ॥₃₁॥

एकपादेन धर्मात्मा भक्षयित्वा तदामिषम् ।
निषादविषयं हत्वा शाखया पतगोत्तमः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे मोक्षयित्वा महामुनीन् ॥₃₂॥

स तेनैव प्रहर्षेण द्विगुणीकृतविक्रमः ।
अमृतानयनार्थं वै चकार मतिमान्मतिम् ॥₃₃॥

अयोजालानि निर्मथ्य भित्त्वा रत्नगृहं वरम् ।
महेन्द्रभवनाद्भुस्तमाजहारामृतं ततः ॥₃₄॥

तं महर्षिगणैर्जुष्टं सुपर्णकृतलक्षणम् ।
नाम्ना सुभद्रं न्यग्रोधं ददर्श धनदानुजः ॥₃₅॥

तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः ।
ददर्शश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ॥₃₆॥

तत्र कृष्णाजिनधरं जटावल्कलधारिणम् ।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥₃₇॥

स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा ।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥₃₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः ।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः ॥₁॥

जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम ।
दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे ॥₂॥

त्रिशिराश्च महातेजा राक्षसः पिशिताशनः ।
अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः ॥₃॥

वसन्ति मन्नियोगेन अधिवासं च राक्षसः ।
बाधमाना महारण्ये मुनीन्ये धर्मचारिणः ॥₄॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥₅॥

ते बिदानीं जनस्थाने वसमाना महाबलाः ।
सङ्गताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे ॥₆॥

तेन संजातरोषेण रामेण रणमूर्धनि ।
अनुक्त्वा परुषं किञ्चिच्छरैर्व्यापारितं धनुः ॥₇॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैर्मानुषेण पदातिना ॥₈॥

खरश्च निहतः सङ्क्षो दूषणश्च निपातितः ।
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः ॥₉॥

पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ।

स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ॥₁₀॥

अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः ।
त्यक्तधर्मस्त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ॥₁₁॥

येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमाश्रित्य केवलम् ।
कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता ॥₁₂॥

तस्य भार्या जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् ।
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥₁₃॥

बया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन महाबल ।
भ्रातृभिश्च सुरान्युद्धे समग्रान्नाभिचिन्तये ॥₁₄॥

तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस ।
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव ॥₁₅॥

एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर ।
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥₁₆॥

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतविन्दुभिः ।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥₁₇॥

त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् ।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥₁₈॥

ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् ।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥₁₉॥

ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्षिते ।
विस्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना ॥₂₀॥

तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः ।

शुष्कं समभवद्वक्तं परित्रस्तो बभूव च ॥₂₁॥

स रावणं त्रस्तविषण्णचेता
महावने रामपराक्रमज्ञः ।
कृताञ्जलिस्तत्त्वमुवाच वाक्यम्
हितं च तस्मै हितमात्मनश्च ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥₁॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥₂॥

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यं गुणोन्नतम् ।
अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम् ॥₃॥

अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषां भुवि रक्षसाम् ।
अपि रामो न सङ्क्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥₄॥

अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा ।
अपि सीता निमित्तं च न भवेद्वसनं महत् ॥₅॥

अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरङ्कुशम् ।
न विनश्येत्पुरी लङ्का त्वया सह सराक्षसा ॥₆॥

बद्धिधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः ।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥₇॥

न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथञ्चन ।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः ॥₈॥

न च धर्मगुणैर्हीनैः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वेषां च हिते रतः ॥₉॥

वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् ।

करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥₁₀॥

कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च ।
हिक्वा राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥₁₁॥

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः ।
अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥₁₂॥

रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥₁₃॥

कथं त्वं तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
इच्छसि प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥₁₄॥

शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे ।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि ॥₁₅॥

धनुर्व्यादितदीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणम् ।
चापबाणधरं वीरं शत्रुसेनापहारिणम् ॥₁₆॥

राज्यं सुखं च सन्त्यज्य जीवितं चेष्टमात्मनः ।
नात्यासादयितुं तात रामान्तकमिहार्हसि ॥₁₇॥

अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा ।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने ॥₁₈॥

प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ।
दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥₁₉॥

किमुद्यमं व्यर्थमिमं कृत्वा ते राक्षसाधिप ।
दृष्टश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तं तव जीवितम् ।
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम् ॥₂₀॥

स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरस्कृतैः ।
मन्त्रयित्वा तु धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥₂₁॥

दोषाणां च गुणानां च सम्प्रधार्य बलाबलम् ।
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः ।
हितं हि तव निश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि ॥₂₂॥

अहं तु मन्ये तव न क्षमं रणे
समागमं कोसलराजसूनुना ।
इदं हि भूयः शृणु वाक्यमुत्तमम्
क्षमं च युक्तं च निशाचराधिप ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

कदाचिदप्यहं वीर्यात्पर्यटन्मृथिवीमिमाम् ।
बलं नागसहस्रस्य धारयन्पर्वतोपमः ॥₁॥

नीलजीमूतसङ्काशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
भयं लोकस्य जनयन्किरीटी परिघायुधः ।
व्यचरं दण्डकारण्यमृषिमांसानि भक्षयन् ॥₂॥

विश्वामित्रोऽथ धर्मात्मा मद्वित्रस्तो महामुनिः ।
स्वयं गत्वा दशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥₃॥

अयं रक्षतु मां रामः पर्वकाले समाहितः ।
मारीचान्मे भयं घोरं समुत्पन्नं नरेश्वर ॥₄॥

इत्येवमुक्तो धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ।
प्रत्युवाच महाभागं विश्वामित्रं महामुनिम् ॥₅॥

ऊन षोडश वर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः ।
कामं तु मम यत्सैन्यं मया सह गमिष्यति ।
बधिष्यामि मुनिश्रेष्ठ शत्रुं तव यथेप्सितम् ॥₆॥

इत्येवमुक्तः स मुनी राजानं पुनरब्रवीत् ।
रामान्नान्यद्वलं लोके पर्याप्तं तस्य रक्षसः ॥₇॥

बालोऽप्येष महातेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे ।
गमिष्ये राममादाय स्वस्ति तेऽस्तु परन्तपः ॥₈॥

इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तमादाय नृपात्मजम् ।
जगाम परमप्रीतो विश्वामित्रः स्वमाश्रमम् ॥₉॥

तं तदा दण्डकारण्ये यज्ञमुद्दिश्य दीक्षितम् ।
बभूवावस्थितो रामश्चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥₁₀॥

अजातव्यञ्जनः श्रीमान्बालः श्यामः शुभेक्षणः ।
एकवस्त्रधरो धन्वी शिखी कनकमालया ॥₁₁॥

शोभयन्दण्डकारण्यं दीप्तेन स्वेन तेजसा ।
अदृश्यत तदा रामो बालचन्द्र इवोदितः ॥₁₂॥

ततोऽहं मेघसङ्काशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
बली दत्तवरो दर्पादाजगाम तदाश्रमम् ॥₁₃॥

तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं सहसैवोद्यतायुधः ।
मां तु दृष्ट्वा धनुः सज्यमसम्भ्रान्तश्चकार ह ॥₁₄॥

अवजानन्नहं मोहाद्बालोऽयमिति राघवम् ।
विश्वामित्रस्य तां वेदिमध्यधावं कृतत्वरः ॥₁₅॥

तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः ।
तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने ॥₁₆॥

रामस्य शरवेगेन निरस्तो भ्रान्तचेतनः ।
पातितोऽहं तदा तेन गम्भीरे सागराम्भसि ।
प्राप्य संज्ञां चिरात्तात लङ्कां प्रति गतः पुरीम् ॥₁₇॥

एवमस्मि तदा मुक्तः सहायास्ते निपातिताः ।
अकृतास्त्रेण रामेण बालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥₁₈॥

तन्मया वार्यमाणस्त्वं यदि रामेण विग्रहम् ।
करिष्यस्यापदं घोरां क्षिप्रं प्राप्य नशिष्यसि ॥₁₉॥

क्रीडा रतिविधिज्ञानां समाजोत्सवशालिनाम् ।
रक्षसां चैव सन्तापमनर्थं चाहरिष्यसि ॥₂₀॥

हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानारत्नविभूषिताम् ।
द्रक्ष्यसि त्वं पुरीं लङ्कां विनष्टां मैथिलीकृते ॥₂₁॥

अकुर्वन्तोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् ।
परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागहृदे यथा ॥₂₂॥

दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गान्दिव्याभरणभूषितान् ।
द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौ तव दोषात्तु राक्षसान् ॥₂₃॥

हतदारान्सदारांश्च दशविद्रवतो दिशः ।
हतशेषानशरणान्द्रक्ष्यसि त्वं निशाचरान् ॥₂₄॥

शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् ।
प्रदग्धभवनां लङ्कां द्रक्ष्यसि त्वमसंशयम् ॥₂₅॥

प्रमदानां सहस्राणि तव राजन्यरिग्रहः ।
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्षराक्षस ॥₂₆॥

मानं वृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः ।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा राम विप्रियम् ॥₂₇॥

निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशम्
प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि ।
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो
यमक्षयं रामशरात्तजीवितः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

एवमस्मि तदा मुक्तः कथञ्चित्तेन संयुगे ।
इदानीमपि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व यदुत्तरम् ॥₁॥

राक्षसाभ्यामहं द्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथा कृतः ।
सहितो मृगरूपाभ्यां प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥₂॥

दीप्तजिह्वो महाकायस्तीक्ष्णशृण्णो महाबलः ।
व्यचरन्दण्डकारण्यं मांसभक्षो महामृगः ॥₃॥

अग्निहोत्रेषु तीर्थेषु चैत्यवृक्षेषु रावण ।
अत्यन्तघोरो व्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ॥₄॥

निहत्य दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः ।
रुधिराणि पिबंस्तेषां तथा मांसानि भक्षयन् ॥₅॥

ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् ।
तदा रुधिरमत्तोऽहं व्यचरं दण्डकावनम् ॥₆॥

तदाहं दण्डकारण्ये विचरन्धर्मदूषकः ।
आसादयं तदा रामं तापसं धर्ममाश्रितम् ॥₇॥

वैदेहीं च महाभागां लक्ष्मणं च महारथम् ।
तापसं नियताहारं सर्वभूतहिते रतम् ॥₈॥

सोऽहं वनगतं रामं परिभूय महाबलम् ।
तापसोऽयमिति ज्ञात्वा पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥₉॥

अभ्यधावं सुसङ्क्रुद्धस्तीक्ष्णशृङ्गो मृगाकृतिः ।

जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तं प्रहारमनुस्मरन् ॥₁₀॥

तेन मुक्तास्त्रयो बाणाः शिताः शत्रुनिबर्हणाः ।
विकृष्य बलवच्चापं सुपर्णानिलतुल्यगाः ॥₁₁॥

ते बाणा वज्रसङ्काशाः सुघोरा रक्तभोजनाः ।
आजग्मुः सहिताः सर्वे त्रयः संनतपर्वणः ॥₁₂॥

पराक्रमज्ञो रामस्य शठो दृष्टभयः पुरा ।
समुत्क्रान्तस्ततो मुक्तस्तावुभौ राक्षसौ हतौ ॥₁₃॥

शरेण मुक्तो रामस्य कथञ्चित्प्राप्य जीवितम् ।
इह प्रव्राजितो युक्तस्तापसोऽहं समाहितः ॥₁₄॥

वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥₁₅॥

अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण ।
रामभूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे ॥₁₆॥

राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर ।
दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्धमामि विचेतनः ॥₁₇॥

रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण ।
रत्नानि च रथाश्चैव त्रासं संजनयन्ति मे ॥₁₈॥

अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् ।
रणे रामेण युध्यस्व क्षमां वा कुरु राक्षस ।
न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि ॥₁₉॥

इदं वचो बन्धुहितार्थिना मया
यथोच्यमानं यदि नाभिपत्स्यसे ।
सबान्धवस्त्यक्ष्यसि जीवितं रणे

हतोऽद्य रामेण शरैरजिह्वगैः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

मारीचेन तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः ।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥₁॥

तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः ।
अब्रवीत्पुरुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥₂॥

यत्किलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते ।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे ॥₃॥

तद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे ।
पापशीलस्य मूर्खस्य मानुषस्य विशेषतः ॥₄॥

यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा ।
स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ॥₅॥

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः ।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ ॥₆॥

एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच वर्तते ।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥₇॥

दोषं गुणं वा सम्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि ।
अपायं वाप्युपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥₈॥

सम्पृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता ।
उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥₉॥

वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम् ।

उपचारेण युक्तं च वक्तव्यो वसुधाधिपः ॥₁₀॥

सावमर्दं तु यद्वाक्यं मारीचं हितमुच्यते ।
नाभिनन्दति तद्राजा मानार्हो मानवर्जितम् ॥₁₁॥

पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः ।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ।
औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम् ॥₁₂॥

तस्मात्सर्वास्त्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च पार्थिवाः ।
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमास्थितः ॥₁₃॥

अभ्यागतं मां दौरात्म्यात्परुषं वदसीदृशम् ।
गुणदोषौ न पृच्छामि क्षमं चात्मनि राक्षस ।
अस्मिंस्तु स भवान्कृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हति ॥₁₄॥

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ।
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ॥₁₅॥

त्वां तु मायामृगं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया ।
आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली ॥₁₆॥

अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम् ।
आनयिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव ॥₁₇॥

एवं कृत्वा द्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस ।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीचं तव सुव्रत ॥₁₈॥

गच्छ सौम्य शिवं मार्गं कार्यस्यास्य विवृद्धये ।
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम् ।
लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया ॥₁₉॥

एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ।

राज्ञो हि प्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥₂₀॥

आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते
मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुध्य ।
एतद्यथावत्परिगृह्य बुद्ध्या
यदत्र पथ्यं कुरु तत्तथा ब्रम् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

आज्ञप्तो राजवद्वाक्यं प्रतिकूलं निशाचरः ।
अब्रवीत्पुरुषं वाक्यं मारीचो राक्षसाधिपम् ॥₁॥

केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा ।
सपुत्रस्य सराष्ट्रस्य सामात्यस्य निशाचर ॥₂॥

कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत् ।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥₃॥

शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचर ।
इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा ॥₄॥

केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितवादिना ।
यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ॥₅॥

वध्याः खलु न हन्यन्ते सचिवास्तव रावण ।
ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥₆॥

अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथमाश्रितः ।
निग्राह्यः सर्वथा सद्भिर्न निग्राह्यो निगृह्यसे ॥₇॥

धर्ममर्थं च कामं च यशश्च जयतां वर ।
स्वामिप्रसादात्सचिवाः प्राप्नुवन्ति निशाचर ॥₈॥

विपर्यये तु तत्सर्वं व्यर्थं भवति रावण ।
व्यसनं स्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ॥₉॥

राजमूलो हि धर्मश्च जयश्च जयतां वर ।

तस्मात्सर्वास्त्ववस्थासु रक्षितव्यो नराधिपः ॥₁₀॥

राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर ।
न चापि प्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥₁₁॥

ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भज्यन्ते सह तेन वै ।
विषमेषु रथाः शीघ्रं मन्दसारथयो यथा ॥₁₂॥

बहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥₁₃॥

स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण ।
रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मेषा गोमायुना यथा ॥₁₄॥

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः ।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥₁₅॥

तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं त्वया ।
अत्र किं शोभनं यत्त्वं ससैन्यो विनशिष्यसि ॥₁₆॥

मां निहत्य तु रामोऽसौ नचिरात्त्वां वधिष्यति ।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये यदरिणा हतः ॥₁₇॥

दर्शनादेव रामस्य हतं मामुपधारय ।
आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम् ॥₁₈॥

आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया ।
नैव त्वमसि नैवाहं नैव लङ्का न राक्षसाः ॥₁₉॥

निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा
न मृष्यसे वाक्यमिदं निशाचर ।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चत्वारिंशः सर्गः॥

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः ।
गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिश्चरप्रभोः ॥₁॥

दृष्टश्चाहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा ।
मद्वधोद्यतशस्त्रेण विनष्टं जीवितं च मे ॥₂॥

किं तु कर्तुं मया शक्यमेवं ब्रूयि दुरात्मनि ।
एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर ॥₃॥

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः ।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥₄॥

एतच्छौण्डीर्ययुक्तं ते मच्छन्दादिव भाषितम् ।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो निशाचरः ॥₅॥

आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः ।
मया सह रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ॥₆॥

ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ।
आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् ॥₇॥

तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च ।
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च ॥₈॥

समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ।
ददर्श सहमरीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥₉॥

अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् ।

हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥₁₀॥

एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः ॥₁₁॥

स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ।
मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥₁₂॥

मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः ।
रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ॥₁₃॥

किञ्चिदभ्युन्नत ग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः ।
मधूकनिभपार्श्वश्च कञ्जकिञ्जल्कसंनिभः ॥₁₄॥

वैदूर्यसङ्काशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः ।
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ॥₁₅॥

मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः ।
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥₁₆॥

वनं प्रज्वलयन्मयं रामाश्रमपदं च तत् ।
मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ॥₁₇॥

प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् ।
विचरन्गच्छते सम्यक्शाद्वलानि समन्ततः ॥₁₈॥

रूप्यबिन्दुशतैश्चित्रो भूत्वा च प्रियदर्शनः ।
विटपीनां किसलयान्भङ्ग्यादन्विचचार ह ॥₁₉॥

कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः ।
समाश्रयन्मन्दगतिः सीतासन्दर्शनं तदा ॥₂₀॥

राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः ।

रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ॥₂₁॥

पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ।
गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ॥₂₂॥

विक्रीडंश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति ।
आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥₂₃॥

मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते ।
सीतादर्शनमाकाङ्क्षन्नाक्षसो मृगतां गतः ॥₂₄॥

परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् ।
समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ॥₂₅॥

उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ।
राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ॥₂₆॥

प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ।
तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ॥₂₇॥

कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ।
कर्णिकारानशोकांश्च चूटांश्च मदिरेक्षणा ॥₂₈॥

कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना ।
अनर्हारण्यवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना ॥₂₉॥

तं वै रुचिरदण्टौष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥₃₀॥

स च तां रामदयितां पश्यन्मायामयो मृगः ।
विचचार ततस्तत्र दीपयन्निव तद्वनम् ॥₃₁॥

अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम् ।

विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

सा तं सम्प्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमानि विचिन्वती ।
हेमराजतवर्णाभ्यां पार्श्वभ्यामुपशोभितम् ॥₁॥

प्रहृष्टा चानवदाङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी ।
भर्तारमपि चाक्रन्दलक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥₂॥

तयाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशुर्मुगम् ॥₃॥

शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो राममब्रवीत् ।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥₄॥

चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने ।
अनेन निहता राम राजानः कामरूपिणा ॥₅॥

अस्य मायाविदो मायामृगरूपमिदं कृतम् ।
भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसंनिभम् ॥₆॥

मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव ।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ॥₇॥

एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता ।
उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥₈॥

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः ।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥₉॥

इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः ।

मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमराः सृमरास्तथा ॥₁₀॥

ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च वानराः किंनरास्तथा ।
विचरन्ति महाबाहो रूपश्रेष्ठा महाबलाः ॥₁₁॥

न चास्य सदृशो राजन्दष्टपूर्वो मृगः पुरा ।
तेजसा क्षमया दीप्त्या यथायं मृगसत्तमः ॥₁₂॥

नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नबिन्दुसमाचितः ।
द्योतयन्वनमव्यग्रं शोभते शशिसंनिभः ॥₁₃॥

अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्पच्च शोभना ।
मृगोऽद्भुतो विचित्रोऽसौ हृदयं हरतीव मे ॥₁₄॥

यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव ।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥₁₅॥

समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः ।
अन्तःपुरविभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥₁₆॥

भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥₁₇॥

जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः ।
अजिनं नरशार्दूल रुचिरं मे भविष्यति ॥₁₈॥

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्नचि ।
शष्पवृक्षां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥₁₉॥

कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥₂₀॥

तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा ।

तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ।
बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् ॥₂₁॥

एवं सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम् ।
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥₂₂॥

पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहां मृगगतामिमाम् ।
रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥₂₃॥

न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।
कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः ॥₂₄॥

प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः ।
शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः ॥₂₅॥

पश्यास्य जुम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम् ।
जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं मेघादिव शतहृदाम् ॥₂₆॥

मसारगत्त्वर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः ।
कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः ॥₂₇॥

कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥₂₈॥

मांसहेतोरपि मृगान्विहारार्थं च धन्विनः ।
घ्नन्ति लक्ष्मण राजानो मृगयायां महावने ॥₂₉॥

धनानि व्यवसायेन विचीयन्ते महावने ।
धातवो विविधाश्चापि मणिरत्नसुवर्णिनः ॥₃₀॥

तत्सारमखिलं नृणां धनं निचयवर्धनम् ।
मनसा चिन्तितं सर्वं यथा शुक्रस्य लक्ष्मण ॥₃₁॥

अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्यविचारयन् ।
तमर्थमर्थशास्त्रज्ञः प्राहुरर्थ्याश्च लक्ष्मण ॥₃₂॥

एतस्य मृगरत्नस्य परार्थ्ये काञ्चनत्नचि ।
उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥₃₃॥

न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी ।
भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शनेनेति मे मतिः ॥₃₄॥

एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो नभश्चरः ।
उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ॥₃₅॥

यदि वायं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण ।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥₃₆॥

एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना ।
वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुङ्गवाः ॥₃₇॥

उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः ।
निहताः परमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयं मृगः ॥₃₈॥

पुरस्तादिह वातापिः परिभूय तपस्विनः ।
उदरस्थो द्विजान्हन्ति स्वर्गर्भोऽश्वतरीमिव ॥₃₉॥

स कदाचिच्चिरालोके आससाद महामुनिम् ।
अगस्त्यं तेजसा युक्तं भक्ष्यस्तस्य बभूव ह ॥₄₀॥

समुत्थाने च तद्रूपं कर्तुकामं समीक्ष्य तम् ।
उत्स्मयित्वा तु भगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥₄₁॥

त्वयाविगण्य वातापे परिभूताश्च तेजसा ।
जीवलोके द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसि जरां गतः ॥₄₂॥

एवं तन्न भवेद्रक्षो वातापिरिव लक्ष्मण ।
मद्विधं योऽतिमन्येत धर्मनित्यं जितेन्द्रियम् ॥₄₃॥

भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनेव मा गतिः ।
इह त्वं भव संनद्धो यन्नितो रक्ष मैथिलीम् ॥₄₄॥

अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन ।
अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथ वा मृगम् ॥₄₅॥

यावद्गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् ।
पश्य लक्ष्मण वैदेहीं मृगत्वचि गतस्पृहाम् ॥₄₆॥

त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥₄₇॥

यावत्पृषतमेकेन सायकेन निहन्यहम् ।
हत्वैतच्चर्म आदाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण ॥₄₈॥

प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा
जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ।
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीम्
प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः ॥₄₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

तथा तु तं समादिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः ।
बबन्धासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम् ॥₁॥

ततस्त्रिविणतं चापमादायात्मविभूषणम् ।
आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥₂॥

तं वधयानो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै ।
बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः सन्दर्शनेऽभवत् ॥₃॥

बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः ।
तं स पश्यति रूपेण द्योतमानमिवाग्रतः ॥₄॥

अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिर्महावने ।
अतिवृत्तमिषोः पाताललोभयानं कदाचन ॥₅॥

शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरे ।
दृश्यमानमदृश्यं च नवोद्देशेषु केषुचित् ॥₆॥

छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् ।
मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥₇॥

दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् ।
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः ॥₈॥

अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले ।
मृगैः परिवृतो वन्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥₉॥

दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ।

सन्धाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्धली ॥₁₀॥

तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् ।
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रब्रह्मविनिर्मितम् ॥₁₁॥

स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ।
मारीचस्यैव हृदयं विभेदाशनिसंनिभः ॥₁₂॥

तालमात्रमथोत्पत्य न्यपतत्स शरातुरः ।
व्यनदद्भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः ।
प्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥₁₃॥

सम्प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वरम् ।
सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥₁₄॥

तेन मर्मणि निर्विद्धः शरेणानुपमेन हि ।
मृगरूपं तु तत्त्यक्त्वा राक्षसं रूपमात्मनः ।
चक्रे स सुमहाकायो मारीचो जीवितं त्यजन् ॥₁₅॥

ततो विचित्रकेयूरः सर्वाभरणभूषितः ।
हेममाली महादंष्ट्रो राक्षसोऽभूच्छराहतः ॥₁₆॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं घोरदर्शनम् ।
जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥₁₇॥

हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वरम् ।
ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥₁₈॥

लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति ।
इति सञ्चिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥₁₉॥

तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् ।
राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वरम् ॥₂₀॥

निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः ।

त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखस्तदा ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने ।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥₁॥

न हि मे जीवितं स्थाने हृदयं वावतिष्ठते ।
क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥₂॥

आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि ।
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥₃॥

रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम् ।
न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥₄॥

तमुवाच ततस्तत्र कुपिता जनकात्मजा ।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥₅॥

यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥₆॥

व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ।
तेन तिष्ठसि विस्रब्धस्तमपश्यन्महाद्युतिम् ॥₇॥

किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ।
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ॥₈॥

इति ब्रुवाणं वैदेहीं बाष्पशोकपरिप्लुताम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव ॥₉॥

देवि देवमनुष्येषु गन्धर्वेषु पतत्रिषु ।

राक्षसेषु पिशाचेषु किंनरेषु मृगेषु च ॥₁₀॥

दानवेषु च घोरेषु न स विद्येत शोभने ।
यो रामं प्रतियुध्येत समरे वासवोपमम् ॥₁₁॥

अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।
न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना ॥₁₂॥

अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ।
त्रिभिर्लोकैः समुद्युक्तैः सेश्वरैः सामरैरपि ॥₁₃॥

हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु सन्तापस्त्यज्यतामयम् ।
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम् ॥₁₄॥

न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः ।
गन्धर्वनगरप्रख्या माया सा तस्य रक्षसः ॥₁₅॥

न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥₁₆॥

कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ।
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति ॥₁₇॥

राक्षसा विधिना वाचो विसृजन्ति महावने ।
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि ॥₁₈॥

लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्तलोचना ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् ॥₁₉॥

अनार्यं करुणारम्भं नृशंसं कुलपांसन ।
अहं तव प्रियं मन्ये तेनैतानि प्रभाषसे ॥₂₀॥

नैतच्चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत् ।

बद्धिधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥²¹॥

सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि ।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥²²॥

कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ।
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्ननम् ॥²³॥

समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्ये न संशयः ।
रामं विना क्षणमपि न हि जीवामि भूतले ॥²⁴॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया सोमहर्षणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिर्विजितेन्द्रियः ॥²⁵॥

उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ।
वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि ॥²⁶॥

स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ।
विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः ॥²⁷॥

उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिभूता वनेचराः ।
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं ब्रूया ॥²⁸॥

धिक्कामद्य प्रणश्य त्वं यन्मामेवं विशङ्कसे ।
स्त्रीत्वादुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ॥²⁹॥

गमिष्ये यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ।
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः ॥³⁰॥

निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥³¹॥

लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा ।

प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रं बाष्पपरिप्लुता ॥₃₂॥

गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि विना रामेण लक्ष्मण ।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥₃₃॥

पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न ब्रह्मं राघवादन्यं पदापि पुरुषं स्पृशे ॥₃₄॥

इति लक्ष्मणमाक्रुश्य सीता दुःखसमन्विता ।
पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ॥₃₅॥

तामार्तरूपां विमना रुदन्तीम्
सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तुः
तं भ्रातरं किञ्चिदुवाच सीता ॥₃₆॥

ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः
कृताञ्जलिः किञ्चिदभिप्रणम्य ।
अवेक्षमाणो बहुशश्च मैथिलीम्
जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः ।
स विकाङ्क्षन्मृशं रामं प्रतस्थे नचिरादिव ॥₁॥

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥₂॥

श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ।
परिव्राजकरूपेण वैदेहीं समुपागमत् ॥₃॥

तामाससादातिबलो भ्रातृभ्यां रहितां वने ।
रहितां सूर्यचन्द्राभ्यां सन्ध्यामिव महत्तमः ॥₄॥

तामपश्यत्ततो बालां राजपुत्रीं यशस्विनीम् ।
रोहिणीं शशिना हीनां ग्रहवद्भृशदारुणः ॥₅॥

तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानरुहा द्रुमाः ।
समीक्ष्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः ॥₆॥

शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम् ।
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद्गोदावरी नदी ॥₇॥

रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ।
उपतस्थे च वैदेहीं भिक्षुरूपेण रावणः ॥₈॥

अभव्यो भव्यरूपेण भर्तारमनुशोचतीम् ।
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः ॥₉॥

स पापो भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ।
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥¹⁰॥

शुभां रुचिरदन्तौष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥¹¹॥

स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् ।
अभ्यगच्छत वैदेहीं दुष्टचेता निशाचरः ॥¹²॥

स मन्मथशराविष्टो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥¹³॥

तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्महीनामिव श्रियम् ।
विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंस ह ॥¹⁴॥

का त्वं काञ्चनवर्णाभे पीतकौशेयवासिनि ।
कमलानां शुभां मालां पद्मिनीव च विभ्रती ॥¹⁵॥

ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने ।
भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥¹⁶॥

समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव ।
विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥¹⁷॥

विशालं जघनं पीनमूरू करिकरोपमौ ।
एतावुपचितौ वृत्तौ सहितौ सम्प्रगल्भितौ ॥¹⁸॥

पीनोन्नतमुखो कान्तौ स्निग्धतालफलोपमौ ।
मणिप्रवेकाभरणौ रुचिरौ ते पयोधरौ ॥¹⁹॥

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ।
मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥²⁰॥

करान्तमितमध्यासि सुकेशी संहतस्तनी ।
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी ॥₂₁॥

नैवरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ।
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे ॥₂₂॥

सा प्रतिक्राम भद्रं ते न त्वं वस्तुमिहार्हसि ।
राक्षसानामयं वासो घोराणां कामरूपिणाम् ॥₂₃॥

प्रासादाग्राणि रम्याणि नगरोपवनानि च ।
सम्पन्नानि सुगन्धीनि युक्तान्याचरितुं त्वया ॥₂₄॥

वरं माल्यं वरं पानं वरं वस्त्रं च शोभने ।
भर्तारं च वरं मन्ये त्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥₂₅॥

का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा शुचिस्मिते ।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥₂₆॥

नेह गच्छन्ती गन्धर्वा न देवा न च किंनराः ।
राक्षसानामयं वासः कथं नु त्वमिहागता ॥₂₇॥

इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगास्तथा ।
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्काः कथं तेभ्यो न बिभ्यसे ॥₂₈॥

मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वनानने ॥₂₉॥

कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् ।
एका चरसि कल्याणि घोरान्नाक्षससेवितान् ॥₃₀॥

इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन दुरात्मना ।
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥₃₁॥

उपानीयासनं पूर्वं पादेनाभिनिमन्त्य च ।
अब्रवीत्सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ॥³²॥

द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली
तमागतं पात्रकुसुम्भधारिणम् ।
अशक्यमुद्वेष्टुमुपायदर्शनात्
न्यमन्त्रयद्ब्राह्मणवद्यथागतम् ॥³³॥

इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यताम्
इदं च पादं प्रतिगृह्यतामिति ।
इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमम्
त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥³⁴॥

निमन्त्यमाणः प्रतिपूर्णभाषिणीम्
नरेन्द्रपत्नीं प्रसमीक्ष्य मैथिलीम् ।
प्रहस्य तस्या हरणे धृतं मनः
समर्पयामास वधाय रावणः ॥³⁵॥

ततः सुवेषं मृगया गतं पतिम्
प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा ।
निरीक्षमाणा हरितं ददर्श तत्
महद्वनं नैव तु रामलक्ष्मणौ ॥³⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

रावणेन तु वैदेही तदा पृष्टा जिहीर्षुणा ।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥₁॥

ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम् ।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् ॥₂॥

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः ।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामभार्या द्विजोत्तम ॥₃॥

संवत्सरं चाध्युषिता राघवस्य निवेशने ।
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥₄॥

ततः संवत्सरादूर्ध्वं सममन्यत मे पतिम् ।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः ॥₅॥

तस्मिन्सम्प्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ।
कैकेयी नाम भर्तारं ममार्या याचते वरम् ॥₆॥

प्रतिगृह्य तु कैकेयी श्वशुरं सुकृतेन मे ।
मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ।
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसन्धं नृपोत्तमम् ॥₇॥

नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न पास्येऽहं कदाचन ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥₈॥

इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स मानदः ।
अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याञ्चां चकार सा ॥₉॥

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।
रामेति प्रथितो लोके गुणवान्सत्यवाक्शुचिः ।
विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः ॥₁₀॥

अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ।
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच द्रुतं वचः ॥₁₁॥

तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव ।
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम् ॥₁₂॥

त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ।
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात् ॥₁₃॥

तथेत्युवाच तां रामः कैकेयीमकुतोभयः ।
चकार तद्वचस्तस्या मम भर्ता दृढव्रतः ॥₁₄॥

दद्यान्न प्रतिगृहीयात्सत्यब्रूयान्न चानृतम् ।
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं ध्रुवमनुत्तमम् ॥₁₅॥

तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ।
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा ॥₁₆॥

स भ्राता लक्ष्मणो नाम धर्मचारी दृढव्रतः ।
अन्वगच्छद्गनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह ॥₁₇॥

ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैलेय्यास्तु कृते त्रयः ।
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा ॥₁₈॥

समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया ।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम् ॥₁₉॥

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः ।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥₂₀॥

एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः ।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥₂₁॥

येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरपन्नगाः ।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥₂₂॥

त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् ।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥₂₃॥

बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥₂₄॥

लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी ।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥₂₅॥

तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि ।
न चास्यारण्यवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥₂₆॥

पञ्चदास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः ।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ॥₂₇॥

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा ।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥₂₈॥

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥₂₉॥

महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
नृसिंहं सिंहसङ्काशमहं राममनुव्रता ॥₃₀॥

पूर्णचन्द्राननं वीरं राजवत्सं जितेन्द्रियम् ।
पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥₃₁॥

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥₃₂॥

पादपान्काञ्चनान्नूनं बहून्यश्वसि मन्दभाक् ।
राघवस्य प्रियां भार्या यस्त्वमिच्छसि रावण ॥₃₃॥

क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्त्रिनः ।
आशीविषस्य वदनादंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥₃₄॥

मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि ॥₃₅॥

अक्षिसूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् ।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥₃₆॥

अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि ।
सूर्या चन्द्रमसौ चोभौ प्राणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ।
यो रामस्य प्रियां भार्या प्रधर्षयितुमिच्छसि ॥₃₇॥

अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ।
कल्याण वृत्तां रामस्य यो भार्या हर्तुमिच्छसि ॥₃₈॥

अयोमुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छसि ।
रामस्य सदृशीं भार्या योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥₃₉॥

यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः ।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरम्
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥₄₀॥

यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयोर्-
यदन्तरं चन्दनवारिपङ्क्तयोः ।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने

तदन्तरं दशरथेस्तवैव च ॥₄₁॥

यदन्तरं वायसवैनतेययोर्-
यदन्तरं मद्भुमयूरयोरपि ।
यदन्तरं सारसगृध्रयोर्वने
तदन्तरं दशरथेस्तवैव च ॥₄₂॥

तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे
रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ ।
हतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये
वज्रं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥₄₃॥

इतीव तद्वाक्यमदृष्टभावा
सुदृष्टमुक्त्वा रजनीचरं तम् ।
गात्रप्रकम्पाद्बधिता बभूव
वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥₄₄॥

तां वेपमानामुपलक्ष्य सीताम्
स रावणो मृत्युसमप्रभावः ।
कुलं बलं नाम च कर्म चात्मनः
समाचक्षे भयकारणार्थम् ॥₄₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

एवं ब्रुवत्यां सीतायां संरब्धः परुषाक्षरम् ।
ललाटे भ्रुकुटीं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ॥₁॥

भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्न्यो वरवर्णिनि ।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् ॥₂॥

यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
विद्रवन्ति भयाद्भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ॥₃॥

येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्रः कारणान्तरे ।
द्वन्द्वमासादितः क्रोधाद्रणे विक्रम्य निर्जितः ॥₄॥

मद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ।
कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः ॥₅॥

यस्य तत्पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम् ।
वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम् ॥₆॥

मम संजातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि ।
विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः ॥₇॥

यत्र तिष्ठाम्यहं तत्र मारुतो वाति शङ्कितः ।
तीव्रांशुः शिशिरांशुश्च भयात्सम्पद्यते रविः ॥₈॥

निष्कम्पपत्रास्तरवो नद्यश्च स्तिमितोदकाः ।
भवन्ति यत्र यत्राहं तिष्ठामि च चरामि च ॥₉॥

मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा ।

सम्पूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥₁₀॥

प्राकारेण परिक्षिप्ता पाण्डुरेण विराजिता ।
हेमकक्ष्या पुरी रम्या वैदूर्यमय तोरणा ॥₁₁॥

हस्त्यश्वरथसम्भाधा तूर्यनादविनादिता ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः सङ्कुलोद्यानशोभिता ॥₁₂॥

तत्र त्वं वसती सीते राजपुत्रि मया सह ।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि ॥₁₃॥

भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि ।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥₁₄॥

स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ञा दशरथेन यः ।
मन्दवीर्यः सुतो ज्येष्ठस्ततः प्रस्थापितो वनम् ॥₁₅॥

तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा ।
करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना ॥₁₆॥

सर्वराक्षसभर्तारं कामात्स्वयमिहागतम् ।
न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि ॥₁₇॥

प्रत्याख्याय हि मां भीरु परितापं गमिष्यसि ।
चरणेनाभिहत्येव पुरुरवसमुर्वशी ॥₁₈॥

एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना ।
अब्रवीत्पुरुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥₁₉॥

कथं वैश्रवणं देवं सर्वभूतनमस्कृतम् ।
भ्रातरं व्यपदिष्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥₂₀॥

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः ।

येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥₂₁॥

अपहृत्य शचीं भार्या शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
न तु रामस्य भार्या मामपनीयास्ति जीवितम् ॥₂₂॥

जीवेच्चिरं वज्रधरस्य हस्तात्
शचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ।
न मादृशीं राक्षसधर्षयित्वा
पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षट्त्वारिंशः सर्गः॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
हस्ते हस्तं समाहत्य चकार सुमहद्वपुः ॥₁॥

स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे च ततो भृशम् ।
नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥₂॥

उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः ।
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥₃॥

अर्कं रुन्ध्यां शरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्दां हि महीतलम् ।
कामरूपिणमुन्मत्ते पश्य मां कामदं पतिम् ॥₄॥

एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे ।
क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥₅॥

सद्यः सौम्यं परित्यज्य भिक्षुरूपं स रावणः ।
स्व रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥₆॥

संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
दशास्यः कार्मुकी बाणी बभूव क्षणदाचरः ॥₇॥

स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ।
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः ॥₈॥

संरक्तनयनः क्रोधाञ्जीमूतनिचयप्रभः ।
रक्ताम्बरधरस्तस्थौ स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥₉॥

स तामसितकेशान्तां भास्करस्य प्रभामिव ।

वसनाभरणोपेतां मैथिलीं रावणोऽब्रवीत् ॥₁₀॥

त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि ।
मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः ॥₁₁॥

मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यस्तव प्रियः ।
नैव चाहं क्वचिद्भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् ।
त्यज्यतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् ॥₁₂॥

राज्याच्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषम् ।
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि ॥₁₃॥

यः स्त्रिया वचनाद्राज्यं विहाय ससुहृज्जनम् ।
अस्मिन्व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः ॥₁₄॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम् ।
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥₁₅॥

वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः ।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥₁₆॥

तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं तीक्ष्णदंष्ट्रं महाभुजम् ।
प्राद्रवन्मृत्युसङ्काशं भयार्ता वनदेवताः ॥₁₇॥

स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्त्रनः ।
प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥₁₈॥

ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्त्रनः ।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा ॥₁₉॥

सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी ।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरगतं वने ॥₂₀॥

तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
विवेष्टमानामादाय उत्पपाथाथ रावणः ॥₂₁॥

ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा ।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥₂₂॥

हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक ।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥₂₃॥

जीवितं सुखमर्थाश्च धर्महेतोः परित्यजन् ।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥₂₄॥

ननु नामाविनीतानां विनेतासि परन्तप ।
कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥₂₅॥

ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।
कालोऽप्यङ्गी भवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये ॥₂₆॥

स कर्म कृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ।
जीवितान्तकरं घोरं रामाद्वसनमाप्नुहि ॥₂₇॥

हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह ।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥₂₈॥

आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥₂₉॥

माल्यवन्तं शिखरिणं वन्दे प्रस्रवणं गिरिम् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥₃₀॥

हंससारससङ्घुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् ।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः ॥₃₁॥

दैवतानि च यान्त्यस्मिन्वने विविधपादपे ।
नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मां हृताम् ॥₃₂॥

यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि निवसन्त्युत ।
सर्वाणि शरणं यामि मृगपक्षिगणानपि ॥₃₃॥

ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
विवशापहृता सीता रावणेनेति शंसत ॥₃₄॥

विदित्वा मां महाबाहुरमुत्रापि महाबलः ।
आनेष्यति पराक्रम्य वैवस्वतहृतामपि ॥₃₅॥

रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम ।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

तं शब्दमवसुप्तस्य जटायुरथ शुश्रुवे ।
निरैक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥₁॥

ततः पर्वतकूटाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः ।
वनस्पतिगतः श्रीमान्व्याजहार शुभां गिरम् ॥₂॥

दशग्रीवस्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रयः ।
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः ॥₃॥

राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ।
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ॥₄॥

तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ।
सीता नाम वरारोहा यां ब्रुवन् हर्तुमिहेच्छसि ॥₅॥

कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् ।
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबलः ।
निवर्तय मतिं नीचां परदाराभिमर्शनम् ॥₆॥

न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥₇॥

अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् ।
व्यवस्यन्त्यनु राजानं धर्मं पौरस्त्यनन्दन ॥₈॥

राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः ।
धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥₉॥

पापस्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर ।
ऐश्वर्यमभिसम्प्राप्तो विमानमिव दुष्कृती ॥₁₀॥

कामस्वभावो यो यस्य न स शक्यः प्रमार्जितुम् ।
न हि दुष्टात्मनामार्य मा वसत्यालये चिरम् ॥₁₁॥

विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः ।
नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि ॥₁₂॥

यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः ।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥₁₃॥

अत्र ब्रूहि यथासत्यं को रामस्य व्यतिक्रमः ।
यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्या गमिष्यसि ॥₁₄॥

क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा ।
दहेद्दहन भूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥₁₅॥

सर्पमाशीविषं बद्धा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे ।
ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि ॥₁₆॥

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमुपभोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥₁₇॥

यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो भुवि ।
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥₁₈॥

षष्टिवर्षसहस्राणि मम जातस्य रावण ।
पितृपैतामहं राज्यं यथावदनुतिष्ठतः ॥₁₉॥

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी ।
तथाप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि ॥₂₀॥

न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः ।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तेर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥₂₁॥

युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण ।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथापूर्वं खरस्तथा ॥₂₂॥

असकृत्संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः ।
नचिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि वधिष्यति ॥₂₃॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ ।
क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः ॥₂₄॥

न हि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् ।
सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महर्षीं प्रियाम् ॥₂₅॥

अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः ।
जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥₂₆॥

तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण ।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ।
वृत्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

इत्युक्तस्य यथान्यायं रावणस्य जटायुषा ।
क्रुद्धस्याग्निनिभाः सर्वा रेजुर्विशतिदृष्टयः ॥₁॥

संरक्तनयनः कोपात्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः ॥₂॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महावने ।
बभूव वातोद्धतयोर्मैघयोर्गगने यथा ॥₃॥

तद्वभूवाद्भुतं युद्धं गृध्रराक्षसयोस्तदा ।
सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥₄॥

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजं महाबलः ॥₅॥

स तानि शरजालानि गृध्रः पत्ररथेश्वरः ।
जटायुः प्रतिजग्राह रावणास्त्राणि संयुगे ॥₆॥

तस्य तीक्ष्णनखाभ्यां तु चरणाभ्यां महाबलः ।
चकार बहुधा गात्रे व्रणान्पतगसत्तमः ॥₇॥

अथ क्रोधाद्दशग्रीवो जग्राह दशमार्गणान् ।
मृत्युदण्डनिभान्योराञ्शत्रुमर्दनकाङ्क्षया ॥₈॥

स तैर्बाणैर्महावीर्यः पूर्णमुक्तेरजिह्वगैः ।
बिभेद निशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रं घोरैः शिलीमुखैः ॥₉॥

स राक्षसरथे पश्यञ्जानकीं बाष्पलोचनाम् ।

अचिन्तयित्वा बाणांस्तान्नाक्षसं समभिद्रवत् ॥₁₀॥

ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम् ।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगेश्वरः ॥₁₁॥

तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम् ।
पक्षाभ्यां च महातेजा व्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥₁₂॥

काञ्चनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ।
तांश्चास्य जवसम्पन्नाञ्जघान समरे बली ॥₁₃॥

वरं त्रिवेणुसम्पन्नं कामगं पावकार्चिषम् ।
मणिहेमविचित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम् ।
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं छत्रं च व्यजनैः सह ॥₁₄॥

स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अङ्केनादाय वैदेहीं पपात भुवि रावणः ॥₁₅॥

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ रावणं भग्नवाहनम् ।
साधु साध्विति भूतानि गृध्रराजमपूजयन् ॥₁₆॥

परिश्रान्तं तु तं दृष्ट्वा जरया पक्षियूथपम् ।
उत्पपात पुनर्हृष्टो मैथिलीं गृह्य रावणः ॥₁₇॥

तं प्रहृष्टं निधायङ्के गच्छन्तं जनकात्मजाम् ।
गृध्रराजः समुत्पत्य जटायुरिदमब्रवीत् ॥₁₈॥

वज्रसंस्पर्शबाणस्य भार्या रामस्य रावण ।
अल्पबुद्धे हरस्येनां वधाय खलु रक्षसाम् ॥₁₉॥

समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः ।
विषपानं पिबस्येतत्पिपासित इवोदकम् ॥₂₀॥

अनुबन्धमजानन्तः कर्मणामविचक्षणाः ।
शीघ्रमेव विनश्यन्ति यथा त्वं विनशिष्यसि ॥₂₁॥

बद्धस्त्वं कालपाशेन क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ।
वधाय बडिशं गृह्य सामिषं जलजो यथा ॥₂₂॥

न हि जातु दुराधर्षो काकुत्स्थो तव रावण ।
धर्षणं चाश्रमस्यास्य क्षमिष्येते तु राघवौ ॥₂₃॥

यथा त्वया कृतं कर्म भीरुणा लोकगर्हितम् ।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥₂₄॥

युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण ।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथा भ्राता खरस्तथा ॥₂₅॥

परेतकाले पुरुषो यत्कर्म प्रतिपद्यते ।
विनाशायाम्नोऽधर्म्यं प्रतिपन्नोऽसि कर्म तत् ॥₂₆॥

पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः को नु तत्पुमान् ।
कुर्वीत लोकाधिपतिः स्वयम्भूर्भगवानपि ॥₂₇॥

एवमुक्त्वा शुभं वाक्यं जटायुस्तस्य रक्षसः ।
निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान् ॥₂₈॥

तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विरराद समन्ततः ।
अधिरूढो गजारोहि यथा स्याद्दुष्टवारणम् ॥₂₉॥

विरराद नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन् ।
केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः ॥₃₀॥

स तथा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः ।
अमर्षस्फुरितौष्ठः सन्प्राकम्पत स राक्षसः ॥₃₁॥

सम्परिष्वज्य वैदेहीं वामेनाङ्गेन रावणः ।
तलेनाभिजघानार्तो जटायुं क्रोधमूर्छितः ॥₃₂॥

जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खराधिपः ।
वामबाहून्दश तदा व्यपाहरदरिन्दमः ॥₃₃॥

ततः क्रुद्धो दशक्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्यवान् ।
मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत् ॥₃₄॥

ततो मुहूर्तं सङ्ग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः ।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च ॥₃₅॥

तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थेऽथ रावणः ।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत् ॥₃₆॥

स छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
निपपात हतो गृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ॥₃₇॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ।
अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता ॥₃₈॥

तं नीलजीमूतनिकाशकल्पम्
सुपाण्डुरोरस्कमुदारवीर्यम् ।
ददर्श लङ्काधिपतिः पृथिव्याम्
जटायुषं शान्तमिवाग्निदावम् ॥₃₉॥

ततस्तु तं पत्ररथं महीतले
निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनः परिष्वज्य शशिप्रभानना
रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ॥₄₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तमल्पजीवितं भूमौ स्फुरन्तं राक्षसाधिपः ।
ददर्श गृध्रं पतितं समीपे राघवाश्रमात् ॥₁॥

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन समीक्ष्य तम् ।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥₂॥

निमित्तं लक्षणज्ञानं शकुनिस्त्वरदर्शनम् ।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां प्रतिदृश्यते ॥₃॥

न नूनं राम जानासि महद्भयसनमात्मजः ।
धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ॥₄॥

त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना ।
सुसन्तस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥₅॥

तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् ।
अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥₆॥

तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् ।
मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्रवदन्नाक्षसाधिपः ॥₇॥

क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥₈॥

प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् ।
जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम् ॥₉॥

दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दीनां दिव्येन चक्षुषा ।

कृतं कार्यमिति श्रीमान्व्याजहार पितामहः ॥₁₀॥

प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन्सर्वे ते परमर्षयः ।
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः ॥₁₁॥

स तु तां राम रामेति रुदन्तीं लक्ष्मणेति च ।
जगामाकाशमादाय रावणो राक्षसाधिपः ॥₁₂॥

तप्ताभरणसर्वाङ्गी पीतकौशेयवासनी ।
रराज राजपुत्री तु विद्युत्सौदामनी यथा ॥₁₃॥

उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः ।
अधिकं परिबभ्राज गिरिर्दीप इवाग्निना ॥₁₄॥

तस्याः परमकल्याण्यास्ताम्राणि सुरभीणि च ।
पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त रावणम् ॥₁₅॥

तस्याः कौशेयमुद्धूतमाकाशे कनकप्रभम् ।
बभौ चादित्यरागेण ताम्रमभ्रमिवातपे ॥₁₆॥

तस्यास्तद्विमलं वक्तृमाकाशे रावणाङ्कगम् ।
न रराज विना रामं विनालमिव पङ्कजम् ॥₁₇॥

बभूव जलदं नीलं भिक्षा चन्द्र इवोदितः ।
सुललाटं सुकेशान्तं पद्मगर्भाभमव्रणम् ।
शुक्लैः सुविमलैर्दन्तैः प्रभावद्भिरलङ्कृतम् ॥₁₈॥

रुदितं व्यपमृष्टास्त्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् ।
सुनासं चारुताम्रौष्ठमाकाशे हाटकप्रभम् ॥₁₉॥

राक्षसेन्द्रसमाधूतं तस्यास्तद्वचनं शुभम् ।
शुशुभे न विना रामं दिवा चन्द्र इवोदितः ॥₂₀॥

सा हेमवर्णा नीलाङ्गं मैथिली राक्षसाधिपम् ।
शुशुभे काञ्चनी काञ्ची नीलं मणिमिवाश्रिता ॥₂₁॥

सा पद्मगौरी हेमाभा रावणं जनकात्मजा ।
विद्युद्धनमिवाविश्य शुशुभे तप्तभूषणा ॥₂₂॥

तस्या भूषणघोषेण वैदेह्या राक्षसाधिपः ।
बभूव विमलो नीलः सघोष इव तोयदः ॥₂₃॥

उत्तमाङ्गच्युता तस्याः पुष्पवृष्टिः समन्ततः ।
सीताया द्वियमाणायाः पपात धरणीतले ॥₂₄॥

सा तु रावणवेगेन पुष्पवृष्टिः समन्ततः ।
समाधूता दशग्रीवं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥₂₅॥

अभ्यवर्तत पुष्पाणां धारा वैश्रवणानुजम् ।
नक्षत्रमालाविमला मेरुं नगमिवोत्तमम् ॥₂₆॥

चरणान्नूपुरं भ्रष्टं वैदेह्या रत्नभूषितम् ।
विद्युन्मण्डलसङ्काशं पपात मधुरस्वनम् ॥₂₇॥

तरुप्रवालरक्ता सा नीलाङ्गं राक्षसेश्वरम् ।
प्राशोभयत वैदेही गजं कष्येव काञ्चनी ॥₂₈॥

तां महोल्कामिवाकाशे दीप्यमानां स्वतेजसा ।
जहाराकाशमाविश्य सीतां वैश्रवणानुजः ॥₂₉॥

तस्यास्तान्यग्निवर्णानि भूषणानि महीतले ।
सघोषाण्यवकीर्यन्त क्षीणास्तारा इवाम्बरात् ॥₃₀॥

तस्याः स्तनान्तराद्भ्रष्टो हारस्ताराधिपद्युतिः ।
वैदेह्या निपतन्भाति गङ्गेव गगनाच्च्युता ॥₃₁॥

उत्पात वाताभिहता नानाद्विज गणायुताः ।
मा भैरिति विधूताग्रा व्याजहुरिव पादपाः ॥³²॥

नलिन्यो ध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजले चराः ।
सखीमिव गतोत्साहां शोचन्तीव स्म मैथिलीम् ॥³³॥

समन्तादभिसम्पत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ।
अन्वधावंस्तदा रोषात्सीताच्छायानुगामिनः ॥³⁴॥

जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गेरुच्छ्रितबाहवः ।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ॥³⁵॥

ह्रियमाणां तु वैदेहीं दृष्ट्वा दीनो दिवाकरः ।
प्रविध्वस्तप्रभः श्रीमानासीत्पाण्डुरमण्डलः ॥³⁶॥

नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता ।
यत्र रामस्य वैदेहीं भार्या हरति रावणः ॥³⁷॥

इति सर्वाणि भूतानि गणशः पर्यदेवयन् ।
वित्रस्तका दीनमुखा रुरुदुर्मृगपोतकाः ॥³⁸॥

उद्दीक्ष्योद्दीक्ष्य नयनैरास्रपाताविलेक्षणाः ।
सुप्रवेपितगात्राश्च बभूवुर्वनदेवताः ॥³⁹॥

विक्रोशन्तीं दृढं सीतां दृष्ट्वा दुःखं तथा गताम् ।
तां तु लक्ष्मण रामेति क्रोशन्तीं मधुरस्वराम् ॥⁴⁰॥

अवेक्षमाणां बहुषो वैदेहीं धरणीतलम् ।
स तामाकुलकेशान्तां विप्रमृष्टविशेषकाम् ।
जहारात्मविनाशाय दशग्रीवो मनस्विनाम् ॥⁴¹॥

ततस्तु सा चारुदती शुचिस्मिता
विनाकृता बन्धुजनेन मैथिली ।

अपश्यती राघवलक्ष्मणावुभौ
विवर्णवक्त्रा भयभारपीडिता ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा ।
दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥₁॥

रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् ।
रुदती करुणं सीता ह्रियमाणेदमब्रवीत् ॥₂॥

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण ।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥₃॥

त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता ।
ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः ॥₄॥

परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम ।
विश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्ति जिता त्वया ॥₅॥

ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे ।
स्त्रियाश्च हरणं नीच रहिते च परस्य च ॥₆॥

कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् ।
सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौण्डीर्यमानिनः ॥₇॥

धित्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ।
कुलाक्रोशकरं लोके धित्ते चारित्रमीदृशम् ॥₈॥

किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि ।
मुहूर्तमपि तिष्ठस्व न जीवन्प्रतियास्यसि ॥₉॥

न हि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः ।
ससैन्योऽपि समर्तःस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥₁₀॥

न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथञ्चन ।
वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहङ्गमः ॥₁₁॥

साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण ।
मत्प्रधर्षणरुष्टो हि भ्रात्रा सह पतिर्मम ।
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि ॥₁₂॥

येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ।
व्यवसायः स ते नीच भविष्यति निरर्थकः ॥₁₃॥

न ह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ।
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् ॥₁₄॥

न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ।
मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते ॥₁₅॥

मुमूर्षूणां हि सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ।
पश्यामीव हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् ॥₁₆॥

यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषे दशानन ।
व्यक्तं हिरण्मयान्हि त्वं सम्पश्यसि महीरुहान् ॥₁₇॥

नदीं वैरतणीं घोरां रुधिरौघनिवाहिनीम् ।
खड्गपत्रवनं चैव भीमं पश्यसि रावण ॥₁₈॥

तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैदूर्यप्रवरच्छदाम् ।
द्रक्ष्यसे शात्मलीं तीक्ष्णामायसैः कण्टकैश्चिताम् ॥₁₉॥

न हि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः ।
धारितुं शक्यसि चिरं विषं पीबेव निर्घृणः ॥₂₀॥

बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण ।
क्व गतो लप्स्यसे शर्म भर्तुर्मम महात्मनः ॥₂₁॥

निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे ।
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश ॥₂₂॥

स कथं राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥₂₃॥

एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥₂₄॥

तथा भृशार्ता बहु चैव भाषिणीम्
विललाप पूर्वं करुणं च भामिनीम् ।
जहार पापस्तरुणीं विवेष्टीम्
नृपात्मजामागतगात्रवेपथुम् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ह्रियमाणा तु वैदेही कञ्चिन्नाथमपश्यती ।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान्पञ्चवानरपुङ्गवान् ॥₁॥

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ।
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति मैथिली ॥₂॥

वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये विनिक्षिप्तं सभूषणम् ।
सम्भ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म न च बुद्धिवान् ॥₃॥

पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरर्षभाः ॥₄॥

स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ।
जगाम रुदतीं गृह्य मैथिलीं राक्षसेश्वरः ॥₅॥

तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ।
उत्सङ्गेनैव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् ॥₆॥

वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा ।
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः ॥₇॥

तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ।
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम् ॥₈॥

सम्भ्रमात्परिवृत्तोर्मिं रुद्धमीनमहोरगः ।
वैदेह्यां ह्रियमाणायां बभूव वरुणालयः ॥₉॥

अन्तरिक्षगता वाचः ससृजुश्चारणास्तदा ।
एतदन्तो दशग्रीव इति सिद्धास्तदाब्रुवन् ॥₁₀॥

स तु सीतां विवेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ॥₁₁॥

सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ।
संरूढकक्ष्या बहुलं स्वमन्तःपुरमाविशत् ॥₁₂॥

तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहपरायणाम् ।
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् ॥₁₃॥

अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ।
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसम्मतः ॥₁₄॥

मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा ॥₁₅॥

या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किञ्चिदप्रियम् ।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् ॥₁₆॥

तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन् ।
ददर्शाष्टौ महावीर्यान्नाक्षसान्पिशिताशनान् ॥₁₇॥

स तान्दृष्ट्वा महावीर्यो वरदानेन मोहितः ।
उवाचैतानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥₁₈॥

नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्तराः ।
जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्वं खरालयम् ॥₁₉॥

तत्रोष्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे ।
पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः ॥₂₀॥

बलं हि सुमहदन्मे जनस्थाने निवेशितम् ।
सदूषणखरं युद्धे हतं तद्रामसायकैः ॥²¹॥

ततः क्रोधो ममापूर्वो धैर्यस्योपरि वर्धते ।
वैरं च सुमहज्जातं रामं प्रति सुदारुणम् ॥²²॥

निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरमहं रिपोः ।
न हि लप्स्याम्यहं निद्रामहत्वा संयुगे रिपुम् ॥²³॥

तं बिदानीमहं हत्वा खरदूषणघातिनम् ।
रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्धनः ॥²⁴॥

जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता ।
प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तच्चतः ॥²⁵॥

अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः ।
कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति ॥²⁶॥

युष्माकं हि बलज्ञोऽहं बहुशो रणमूर्धनि ।
अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं नियोजिताः ॥²⁷॥

ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसा
महार्थमष्टावभिवाद्य रावणम् ।
विहाय लङ्कां सहिताः प्रतस्थिरे
यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥²⁸॥

ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः
सुसम्प्रहृष्टः परिगृह्य मैथिलीम् ।
प्रसज्य रामेण च वैरमुत्तमम्
बभूव मोहान्मुदितः स राक्षसः ॥²⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

सन्दिश्य राक्षसान्घोरान्नावणोऽष्टौ महाबलान् ।
आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥₁॥

स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणसमर्पितः ।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥₂॥

स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः ।
अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां शोकपरायणम् ॥₃॥

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम् ।
वायुवेगैरिवाक्रान्तां मञ्जुन्तीं नावमर्णवे ॥₄॥

मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगीं श्वभिरिवावृताम् ।
अधोमुखमुखीं दीनामभ्येत्य च निशाचरः ॥₅॥

तां तु शोकवशां दीनामवशां राक्षसाधिपः ।
स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम् ॥₆॥

हर्म्यप्रासादसम्बधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम् ।
नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम् ॥₇॥

काञ्चनैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैस्तथा ।
वज्रवैदूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोहरैः ॥₈॥

दिव्यदुन्दुभिनिर्हादं तप्तकाञ्चनतोरणम् ।
सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह ॥₉॥

दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः ।

हेमजालावृताश्वासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः ॥₁₀॥

सुधामणिविचित्राणि भूमिभागानि सर्वशः ।
दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम् ॥₁₁॥

दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृताः ।
रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम् ॥₁₂॥

दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम् ।
उवाच वाक्यं पापात्मा रावणो जनकात्मजाम् ॥₁₃॥

दशराक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः ।
वर्जयित्वा जरा वृद्धान्बालांश्च रजनीचरान् ॥₁₄॥

तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम् ।
सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरःसरम् ॥₁₅॥

यदिदं राज्यतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥₁₆॥

बहूनां स्त्रीसहस्राणां मम योऽसौ परिग्रहः ।
तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥₁₇॥

साधु किं तेऽन्यया बुद्ध्या रोचयस्व वचो मम ।
भजस्व माभितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₁₈॥

परिक्षिप्ता समुद्रेण लङ्केयं शतयोजना ।
नेयं धर्षयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥₁₉॥

न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु ।
अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥₂₀॥

राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन गतायुषा ।

किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा ॥₂₁॥

भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव ।
यौवनं ह्यध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह ॥₂₂॥

दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने ।
कास्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः ॥₂₃॥

न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धं महाजवः ।
दीप्यमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलां शिखाम् ॥₂₄॥

त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने ।
विक्रमेण नयेद्यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम् ॥₂₅॥

लङ्कायां सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय ।
अभिषेकोदकक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व माम् ॥₂₆॥

दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् ।
यश्च ते सुकृतो धर्मस्तस्येह फलमाप्नुहि ॥₂₇॥

इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि ।
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह ॥₂₈॥

पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ।
विमानं रमणीयं च तद्विमानं मनोजवम् ॥₂₉॥

तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् ।
वदनं पद्मसङ्काशं विमलं चारुदर्शनम् ॥₃₀॥

शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने ।
अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोप कृतेन ते ॥₃₁॥

आर्षोऽयं दैवनिष्यन्दो यस्त्वामभिगमिष्यति ।

एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ ॥₃₂॥

प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते ।
नेमाः शून्या मया वाचः शुष्यमाणेन भाषिताः ॥₃₃॥

न चापि रावणः काञ्चिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह ।
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥₃₄॥

कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्षिता ।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥₁॥

राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः ।
सत्यसन्धः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥₂॥

रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥₃॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यस्ते प्राणां हरिष्यति ॥₄॥

प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया स्यां धर्षिता बलात् ।
शयिता त्वं हतः सङ्क्षो जनस्थाने यथा खरः ॥₅॥

य एते राक्षसाः प्रोक्ता घोररूपा महाबलाः ।
राघवे निर्विषाः सर्वे सुपर्णे पन्नगा यथा ॥₆॥

तस्य ज्याविप्रमुक्तास्ते शराः काञ्चनभूषणाः ।
शरीरं विधमिष्यन्ति गङ्गाकूलमिवोर्मयः ॥₇॥

असुरैर्वा सुरैर्वा त्वं यद्यवधोऽसि रावण ।
उत्पाद्य सुमहद्वैरं जीवन्तस्य न मोक्ष्यसे ॥₈॥

स ते जीवितशेषस्य राघवोऽन्तकरो बली ।
पशोर्यूपगतस्येव जीवितं तव दुर्लभम् ॥₉॥

यदि पश्येत्स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा ।

रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो गच्छेः सद्यः पराभवम् ॥₁₀॥

यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा ।
सागरं शोषयेद्वापि स सीतां मोचयेदिह ॥₁₁॥

गतायुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥₁₂॥

न ते पापमिदं कर्म सुखोदकं भविष्यति ।
याहं नीता विना भावं पतिपार्श्वाच्चया वनात् ॥₁₃॥

स हि दैवतसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः ।
निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके ॥₁₄॥

स ते दर्पं बलं वीर्यमुत्सेकं च तथाविधम् ।
अपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे ॥₁₅॥

यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः ।
तदा कार्ये प्रमादयन्ति नराः कालवशं गताः ॥₁₆॥

मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं रक्षसाधम ।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ॥₁₇॥

न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्ड मण्डिता ।
द्विजातिमन्त्रसम्पूता चण्डालेनावमर्दितुम् ॥₁₈॥

इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा ।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ।
न हि शक्ष्याम्युपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः ॥₁₉॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोद्धात्सुपरुषं वचः ।
रावणं मैथिली तत्र पुनर्नोवाच किञ्चन ॥₂₀॥

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् ।
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसन्दर्शनं वचः ॥₂₁॥

शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि ।
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ।
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥₂₂॥

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः ।
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥₂₃॥

शीघ्रमेवं हि राक्षस्यो विकृता घोरदर्शनाः ।
दर्पमस्या विनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः ॥₂₄॥

वचनादेव तास्तस्य विकृता घोरदर्शनाः ।
कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन् ॥₂₅॥

स ताः प्रोवाच राजा तु रावणो घोरदर्शनः ।
प्रचाल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥₂₆॥

अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति ।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढमुष्माभिः परिवारिता ॥₂₇॥

तत्रेनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् ।
आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥₂₈॥

इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः ।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य ताम् ॥₂₉॥

सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ।
सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम् ॥₃₀॥

सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा ।
राक्षसी वशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा ॥₃₁॥

न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली
विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता ।
पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरम्
विचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् ।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ॥₁॥

तस्य सन्त्वरमाणस्य द्रष्टुकामस्य मैथिलीम् ।
क्रूरस्वरोऽथ गोमायुर्विननादास्य पृष्ठतः ॥₂॥

स तस्य स्वरमाज्ञाय दारुणं रोमहर्षणम् ।
चिन्तयामास गोमायोः स्वरेण परिशङ्कितः ॥₃॥

अशुभं बत मन्येऽहं गोमायुर्वाश्यते यथा ।
स्वस्ति स्यादपि वैदेह्या राक्षसैर्भक्षणं विना ॥₄॥

मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालक्ष्य मामकम् ।
विक्रुष्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद्यदि ॥₅॥

स सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हिवाथ मैथिलीम् ।
तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति ॥₆॥

राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः ।
काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम् ॥₇॥

दूरं नीत्वा तु मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः ।
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्यजहार ह ॥₈॥

अपि स्वस्ति भवेद्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने ।
जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः ।
निमित्तानि च घोराणि दृश्यन्तेऽद्य बहूनि च ॥₉॥

इत्येवं चिन्तयन्नामः श्रुत्वा गोमायुनिःस्वनम् ।
आत्मनश्चापनयनं मृगरूपेण रक्षसा ।
आजगाम जनस्थानं राघवः परिशङ्कितः ॥₁₀॥

तं दीनमानसं दीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ।
सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् ॥₁₁॥

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि महाघोराणि राघवः ।
ततो लक्षणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् ॥₁₂॥

ततोऽविदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ।
विषण्णः स विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना ॥₁₃॥

संजगर्हेऽथ तं भ्राता जेष्ठो लक्ष्मणमागतम् ।
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते ॥₁₄॥

गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः ।
उवाच मधुरोदरकमिदं परुषमार्तवत् ॥₁₅॥

अहो लक्ष्मण गर्ह्य ते कृतं यत्त्वं विहाय ताम् ।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिति ॥₁₆॥

न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा ।
विनष्टा भक्षिता वाप राक्षसैर्वनचारिभिः ॥₁₇॥

अशुभान्येव भूयिष्ठं यथा प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि लक्ष्मण सीतायाः सामग्र्यं प्राप्नुयावहे ॥₁₈॥

इदं हि रक्षोमृगसंनिकाशम्
प्रलोभ्य मां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथञ्चिन्महता श्रमेण
स राक्षसोऽभून्म्रियमाण एव ॥₁₉॥

मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टम्
चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्ष्मण नास्ति सीता
हता मृता वा पथि वर्तते वा ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्ये दशरथात्मजः ।
पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥₁॥

प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह ।
क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हिंवा ब्रमिहागतः ॥₂॥

राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः ।
क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥₃॥

यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम् ।
क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा ॥₄॥

पतिब्रममराणां वा पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण ।
विना तां तपनीयाभां नेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥₅॥

कचिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम ।
कचित्प्रव्राजनं सौम्य न मे मिथ्या भविष्यति ॥₆॥

सीतानिमित्तं सौमित्रे मृते मयि गते ब्रयि ।
कचित्सकामा सुखिता कैकेयी सा भविष्यति ॥₇॥

सपुत्रराज्यां सिद्धार्था मृतपुत्रा तपस्विनी ।
उपस्थास्यति कौसल्या कचिन्सौम्य न कैकेयीम् ॥₈॥

यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः ।
सुवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण ॥₉॥

यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते ।

पुनः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण ॥₁₀॥

ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा ।
त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ॥₁₁॥

सुकुमारी च बाला च नित्यं चादुःखदर्शिनी ।
मद्वियोगेन वैदेही व्यक्तं शोचति दुर्मनाः ॥₁₂॥

सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना ।
वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥₁₃॥

श्रुतश्च शङ्के वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम ।
त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥₁₄॥

सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने ।
प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥₁₅॥

दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः ।
तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥₁₆॥

अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन ।
किं त्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् ॥₁₇॥

इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः ।
आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥₁₈॥

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपम्
क्षुधा श्रमाच्चैव पिपासया च ।
विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो विषण्णः
प्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥₁₉॥

स्वमाश्रमं सम्प्रविगाह्य वीरो
विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् ।

एतत्तदित्येव निवासभूमौ
प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

अथाश्रमादुपावृत्तमन्तरा रघुनन्दनः ।
परिपप्रच्छ सौमित्रिं रामो दुःखार्दितः पुनः ॥₁॥

तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् ।
यदा सा तव विश्वासाद्वने विहरिता मया ॥₂॥

दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण ।
शङ्कमानं महत्पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः ॥₃॥

स्फुरते नयनं सव्यं बाहुश्च हृदयं च मे ।
दृष्ट्वा लक्ष्मण दूरे त्वां सीताविरहितं पथि ॥₄॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत् ॥₅॥

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः ।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥₆॥

आर्येणेव परिक्रुष्टं हा सीते लक्ष्मणेति च ।
परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम् ॥₇॥

सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली ।
गच्छ गच्छेति मामाह रुदन्ती भयविह्वला ॥₈॥

प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया ।
प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं त्वत्प्रत्ययान्वितम् ॥₉॥

न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत् ।

निर्वृता भव नास्त्येतत्केनाप्येवमुदाहृतम् ॥₁₀॥

विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति ।
त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्तिदशानपि ॥₁₁॥

किंनिमित्तं तु केनापि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम् ।
विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति ।
न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता ॥₁₂॥

अलं वैक्लव्यमालम्ब्य स्वस्था भव निरुत्सुका ।
न चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान्यो राघवं रणे ।
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत् ॥₁₃॥

एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना ।
उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः ॥₁₄॥

भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः ।
विनष्टे भ्रातरि प्राप्ते न च त्वं मामवाप्स्यसि ॥₁₅॥

सङ्केताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि ।
क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे ॥₁₆॥

रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि ।
राघवस्यान्तरप्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे ॥₁₇॥

एवमुक्तो हि वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः ।
क्रोधात्प्रस्फुरमाणौष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः ॥₁₈॥

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः सन्तापमोहितः ।
अब्रवीदुष्कृतं सौम्य तां विना यत्त्वमागतः ॥₁₉॥

जानन्नपि समर्थं मां रक्षसां विनिवारणे ।
अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निःसृतो भवान् ॥₂₀॥

न हि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदासि मैथिलीम् ।
क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत्त्वमिहागतः ॥₂₁॥

सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः ।
क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम ॥₂₂॥

असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया ।
मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवादितः ॥₂₃॥

विकृष्य चापं परिधाय सायकम्
सलील बाणेन च ताडितो मया ।
मार्गीं तनुं त्यज्य च विक्लवस्त्रो
बभूव केयूरधरः स राक्षसः ॥₂₄॥

शराहतेनैव तदार्तया गिरा
स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसंश्रवम् ।
उदाहृतं तद्वचनं सुदारुणम्
त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

भृशमाव्रजमानस्य तस्याधोवामलोचनम् ।
प्रास्फुरच्चास्खलद्रामो वेपथुश्चास्य जायते ॥₁॥

उपालक्ष्य निमित्तानि सोऽशुभानि मुहुर्मुहुः ।
अपि क्षेमं तु सीताया इति वै व्याजहार ह ॥₂॥

त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः ।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः ॥₃॥

उद्धमन्निव वेगेन विक्षिपन्नघुनन्दनः ।
तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः ॥₄॥

ददर्श पर्णशालां च रहितां सीतया तदा ।
श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ॥₅॥

रुदन्तमिव वृक्षैश्च स्नानपुष्पमृगद्विजम् ।
श्रिया विहीनं विध्वस्तं सन्त्यक्तवनदैवतम् ॥₆॥

विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धवृसीकटम् ।
दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ॥₇॥

हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति ।
निलीनाप्यथ वा भीरुरथ वा वनमाश्रिता ॥₈॥

गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः ।
अथ वा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ॥₉॥

यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् ।

शोकरक्तेक्षणः शोकादुन्मत्त इव लक्ष्यते ॥₁₀॥

वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन्स गिरींश्चापि नदीन्नदीम् ।
बभूव विलपन्नामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः ॥₁₁॥

अस्ति कच्चिन्नया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया ।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम् ॥₁₂॥

स्निग्धपल्लवसङ्काशां पीतकौशेयवासिनीम् ।
शंसस्व यदि वा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ॥₁₃॥

अथ वार्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम् ।
जनकस्य सुता भीरुर्यदि जीवति वा न वा ॥₁₄॥

ककुभः ककुभोरुं तां व्यक्तं जानाति मैथिलीम् ।
लतापल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः ॥₁₅॥

भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्ययम् ।
एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ॥₁₆॥

अशोकशोकापनुद शोकोपहतचेतसम् ।
बन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासन्दर्शनेन माम् ॥₁₇॥

यदि ताल त्वया दृष्टा पङ्कतालफलस्तनी ।
कथयस्व वरारोहां कारुष्यं यदि ते मयि ॥₁₈॥

यदि दृष्टा त्वया सीता जम्बुजाम्बूनदप्रभा ।
प्रियां यदि विजानीषे निःशङ्कं कथयस्व मे ॥₁₉॥

अथ वा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम् ।
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत् ॥₂₀॥

गज सा गजनासोर्यदि दृष्टा त्वया भवेत् ।

तां मन्ये विदितां तुभ्यमाख्याहि वरवारण ॥₂₁॥

शार्दूल यदि सा दृष्टा प्रिया चन्द्रनिभानना ।
मैथिली मम विस्रब्धः कथयस्व न ते भयम् ॥₂₂॥

किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टासि कमलेक्षणे ।
वृक्षेणाच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥₂₃॥

तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि ।
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥₂₄॥

पीतकौशेयकेनासि सूचिता वरवर्णिनि ।
धावन्त्यपि मया दृष्टा तिष्ठ यद्यस्ति सौहृदम् ॥₂₅॥

नैव सा नूनमथ वा हिंसिता चारुहासिनी ।
कृच्छ्रं प्राप्तं हि मां नूनं यथोपेक्षितुमर्हति ॥₂₆॥

व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनैः ।
विभज्याङ्गानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया ॥₂₇॥

नूनं तच्छुभदन्तौष्ठं मुखं निष्प्रभतां गतम् ।
सा हि चम्पकवर्णाभा ग्रीवा ग्रैवेय शोभिता ॥₂₈॥

कोमला विलपन्त्यास्तु कान्ताया भक्षिता शुभा ।
नूनं विक्षिप्यमाणौ तौ बाहू पल्लवकोमलौ ॥₂₉॥

भक्षितौ वेपमानाग्रौ सहस्ताभरणाङ्गदौ ।
मया विरहिता बाला रक्षसां भक्षणाय वै ॥₃₀॥

सार्धेनेव परित्यक्ता भक्षिता बहुबान्धवा ।
हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसि त्वं प्रियां क्वचित् ॥₃₁॥

हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ।

इत्येवं विलपन्नामः परिधावन्वनाद्वनम् ॥₃₂॥

क्वचिदुद्धमते वेगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात् ।
क्वचिन्मत्त इवाभाति कान्तान्वेषणतत्परः ॥₃₃॥

स वनानि नदीः शैलान्गिरिप्रस्रवणानि च ।
काननानि च वेगेन भ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥₃₄॥

तथा स गत्वा विपुलं महद्वनम्
परीत्य सर्वं ब्रथ मैथिलीं प्रति ।
अनिष्टिताशः स चकार मार्गणे
पुनः प्रियायाः परमं परिश्रमम् ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

दृष्टाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः ।
रहितां पर्णशालां च विध्वस्तान्यासनानि च ॥₁॥

अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः ।
उवाच रामः प्राक्रुष्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥₂॥

क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता ।
केनाहता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया ॥₃॥

वृष्केणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि ।
अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम् ॥₄॥

यैः सह क्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः ।
एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्माविलेक्षणाः ॥₅॥

मृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ।
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता ॥₆॥

कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ।
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः ॥₇॥

कामवृत्तमनार्य मां मृषावादिनमेव च ।
धिक्कामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता ॥₈॥

विवशं शोकसन्तप्तं दीनं भग्नमनोरथम् ।
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥₉॥

क्व गच्छसि वरारोहे मामुत्सृज्य सुमध्यमे ।

त्वया विरहितश्चाहं मोक्ष्ये जीवितमात्मनः ॥₁₀॥

इतीव विलपन्नामः सीतादर्शनलालसः ।
न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम् ॥₁₁॥

अनासादयमानं तं सीतां दशरथात्मजम् ।
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम् ।
लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥₁₂॥

मा विषादं महाबाहो कुरु यत्नं मया सह ।
इदं च हि वनं शूर बहुकन्दरशोभितम् ॥₁₃॥

प्रियकाननसञ्चारा वनोन्मत्ता च मैथिली ।
सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम् ॥₁₄॥

सरितं वापि सम्प्राप्ता मीनवञ्जुरसेविताम् ।
वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात्कानने क्वचित् ।
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ ॥₁₅॥

तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षिप्रमेव यतावहे ।
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा ।
मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः ॥₁₆॥

एवमुक्तस्तु सौहार्दालक्ष्मणेन समाहितः ।
सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ।
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च ॥₁₇॥

निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ ।
तस्य शैलस्य सानूनि गुहाश्च शिखराणि च ॥₁₈॥

निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः ।
विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₁₉॥

नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभे ।
ततो दुःखाभिसन्तप्तो लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥₂₀॥

विचरन्दण्डकारण्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ।
प्राप्स्यसि त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥₂₁॥

यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं बद्धा महीमिमाम् ।
एवमुक्तस्तु वीरेण लक्ष्मणेन स राघवः ॥₂₂॥

उवाच दीनया वाचा दुःखाभिहतचेतनः ।
वनं सर्वं सुविचितं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ॥₂₃॥

गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः ।
न हि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥₂₄॥

एवं स विलपन्नामः सीताहरणकर्षितः ।
दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥₂₅॥

स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः ।
विषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम् ॥₂₆॥

बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः ।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥₂₇॥

तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवः ।
बहुप्रकारं धर्मज्ञः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥₂₈॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणौष्ठपुटच्युतम् ।
अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्ठितमः सर्गः॥

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।
 शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम् ।
 अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता ॥₁॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि ।
 नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः ॥₂॥

तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्रा राममब्रवीत् ।
 नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे ॥₃॥

कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी ।
 न हि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा ॥₄॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः सन्ताप मोहितः ।
 रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम् ॥₅॥

स तामुपस्थितो रामः क्व सीतेत्येवमब्रवीत् ॥₆॥

भूतानि राक्षसेन्द्रेण वधार्हेण हृतामपि ।
 न तां शशंसू रामाय तथा गोदावरी नदी ॥₇॥

ततः प्रचोदिता भूतैः शंसास्मै तां प्रियामिति ।
 न च साभ्यवदत्सीतां पृष्टा रामेण शोचिता ॥₈॥

रावणस्य च तद्रूपं कर्माणि च दुरात्मनः ।
 ध्यात्वा भयात्तु वैदेहीं सा नदी न शशंस ताम् ॥₉॥

निराशस्तु तया नद्या सीताया दर्शने कृतः ।
 उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्षितः ॥₁₀॥

किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः ।
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम् ॥₁₁॥

या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः ।
सर्वं व्यपनयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता ॥₁₂॥

ज्ञातिपक्षविहीनस्य राजपुत्रीमपश्यतः ।
मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः ॥₁₃॥

गोदावरीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम् ।
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि दृश्यते ॥₁₄॥

एवं सम्भाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातराबुभौ ।
वसुन्धरायां पतितं पुष्पमार्गमपश्यताम् ॥₁₅॥

तां पुष्पवृष्टिं पतितां दृष्ट्वा रामो महीतले ।
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः ॥₁₆॥

अभिजानामि पुष्पाणि तानीमामीह लक्ष्मण ।
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने ॥₁₇॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं पुरुषर्षभम् ।
क्रुद्धोऽब्रवीद्विरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥₁₈॥

तां हेमवर्णां हेमाभां सीतां दर्शय पर्वत ।
यावत्सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ॥₁₉॥

मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि ।
असेव्यः सततं चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः ॥₂₀॥

इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण ।
यदि नाख्याति मे सीतामद्य चन्द्रनिभाननाम् ॥₂₁॥

एवं स रुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ।
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् ॥²²॥

स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च ।
सम्भ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥²³॥

पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः शीर्णाः कनकबिन्दवः ।
भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च ॥²⁴॥

तप्तबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः ।
आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम् ॥²⁵॥

मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः ।
भिच्चा भिच्चा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति ॥²⁶॥

तस्य निमित्तं वैदेह्या द्वयोर्विवदमानयोः ।
बभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह ॥²⁷॥

मुक्तामणिचितं चेदं तपनीयविभूषितम् ।
धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्भुः ॥²⁸॥

तरुणादित्यसङ्काशं वैदूर्यगुलिकाचितम् ।
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम् ॥²⁹॥

छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम् ।
भग्नदण्डमिदं कस्य भूमौ सौम्य निपातितम् ॥³⁰॥

काञ्चनोरश्छदाश्चेमे पिशाचवदनाः खराः ।
भीमरूपा महाकायाः कस्य वा निहता रणे ॥³¹॥

दीप्तपावकसङ्काशो द्युतिमान्समरध्वजः ।
अपविद्धश्च भग्नश्च कस्य साङ्गामिको रथः ॥³²॥

रथाक्षमात्रा विशिखास्तपनीयविभूषणाः ।
कस्येमेऽभिहता बाणाः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥³³॥

वैरं शतगुणं पश्य ममेदं जीवितान्तकम् ।
सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः ॥³⁴॥

हता मृता वा सीता हि भक्षिता वा तपस्विनी ।
न धर्मस्त्रायते सीतां ह्रियमाणां महावने ॥³⁵॥

भक्षितायां हि वैदेह्यां हतायामपि लक्ष्मण ।
के हि लोके प्रियं कर्तुं शक्ताः सौम्य ममेश्वराः ॥³⁶॥

कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम् ।
अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानि लक्ष्मण ॥³⁷॥

मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् ।
निर्वीर्य इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः ॥³⁸॥

मां प्राप्य हि गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण ।
अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च ।
संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान्सूर्य इवोदितः ॥³⁹॥

नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
किंनरा वा मनुष्या वा सुखं प्राप्स्यन्ति लक्ष्मण ॥⁴⁰॥

ममास्त्रबाणसम्पूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण ।
निःसम्पातं करिष्यामि हृद्य त्रैलोक्यचारिणाम् ॥⁴¹॥

संनिरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ।
विप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥⁴²॥

विनिर्मथितशैलाग्रं शुष्यमाणजलाशयम् ।
ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम् ॥⁴³॥

न तां कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः ।
अस्मिन्मुहूर्ते सौमित्रे मम द्रक्ष्यन्ति विक्रमम् ॥⁴⁴॥

नाकाशमुत्पतिष्यन्ति सर्वभूतानि लक्ष्मण ।
मम चापगुणान्मुक्तेर्बाणजालैर्निरन्तरम् ॥⁴⁵॥

अर्दितं मम नाराचैर्ध्वस्तभ्रान्तमृगद्विजम् ।
समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण ॥⁴⁶॥

आकर्णपूर्णेऽरिषुभिर्जीवलोकं दुरावरैः ।
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥⁴⁷॥

मम रोषप्रयुक्तानां सायकानां बलं सुराः ।
द्रक्ष्यन्त्यद्य विमुक्तानाममर्षादूरगामिनाम् ॥⁴⁸॥

नैव देवा न दैतेया न पिशाचा न राक्षसाः ।
भविष्यन्ति मम क्रोधात्त्रैलोके विप्रणाशिते ॥⁴⁹॥

देवदानवयक्षाणां लोका ये रक्षसामपि ।
बहुधा निपतिष्यन्ति बाणौघैः शकुलीकृताः ।
निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्य सायकैः ॥⁵⁰॥

यथा जरा यथा मृत्युर्यथाकालो यथाविधिः ।
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥⁵¹॥

पुरेव मे चारुदतीमनिन्दिताम्
दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
सदेवगन्धर्वमनुष्य पन्नगम्
जगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥⁵²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

तप्यमानं तथा रामं सीताहरणकर्षितम् ।
लोकानामभवे युक्तं साम्बर्तकमिवानलम् ॥₁॥

वीक्षमाणं धनुः सज्यं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
हन्तुकामं पशुं रुद्रं क्रुद्धं दक्षक्रतौ यथा ॥₂॥

अदृष्टपूर्वं सङ्क्रुद्धं दृष्ट्वा रामं स लक्ष्मणः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥₃॥

पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ।
न क्रोधवशमापन्नः प्रकृतिं हातुमर्हसि ॥₄॥

चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा ।
एतच्च नियतं सर्वं ब्रूयि चानुत्तमं यशः ॥₅॥

न तु जानामि कस्यायं भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ।
केन वा कस्य वा हेतोः सायुधः सपरिच्छदः ॥₆॥

खुरनेमिक्षितश्चायं सिक्तो रुधिरबिन्दुभिः ।
देशो निवृत्तसङ्ग्रामः सुघोरः पार्थिवात्मज ॥₇॥

एकस्य तु विमर्दोऽयं न द्वयोर्वदतां वर ।
न हि वृत्तं हि पश्यामि बलस्य महतः पदम् ॥₈॥

नैकस्य तु कृते लोकान्विनाशयितुमर्हसि ।
युक्तदण्डा हि मृदवः प्रशान्ता वसुधाधिपाः ॥₉॥

सदा त्वं सर्वभूतानां शरण्यः परमा गतिः ।

को नु दारप्रणाशं ते साधु मन्येत राघव ॥₁₀॥

सरितः सागराः शैला देवगन्धर्वदानवाः ।
नालं ते विप्रियं कर्तुं दीक्षितस्येव साधवः ॥₁₁॥

येन राजन्हता सीता तमन्वेषितुमर्हसि ।
मद्वितीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः ॥₁₂॥

समुद्रं च विचेष्ट्यामः पर्वतांश्च वनानि च ।
गुहाश्च विविधा घोरा नलिनीः पार्वतीश्च ह ॥₁₃॥

देवगन्धर्वलोकांश्च विचेष्ट्यामः समाहिताः ।
यावन्नाधिगमिष्यामस्तव भार्यापहारिणम् ॥₁₄॥

न चेत्साम्ना प्रदास्यन्ति पत्नीं ते त्रिदशेश्वराः ।
कोसलेन्द्र ततः पश्चात्प्राप्तकालं करिष्यसि ॥₁₅॥

शीलेन साम्ना विनयेन सीताम्
नयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ततः समुत्सादय हेमपुङ्खैर्-
महेन्द्रवज्रप्रतिमैः शरौघैः ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

तं तथा शोकसन्तप्तं विलपन्तमनाथवत् ।
मोहेन महताविष्टं परिदूनमचेतनम् ॥₁॥

ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्तादिव लक्ष्मणः ।
रामं सम्बोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥₂॥

महता तपसा राम महता चापि कर्मणा ।
राज्ञा दशरथेनासीलब्धोऽमृतमिवामरैः ॥₃॥

तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ।
राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथा श्रुतम् ॥₄॥

यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे ।
प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति ॥₅॥

दुःखितो हि भवौल्लोकांस्तेजसा यदि धक्ष्यते ।
आर्ताः प्रजा नरव्याघ्र क्व नु यास्यन्ति निर्वृतिम् ॥₆॥

लोकस्त्वभाव एवैष ययातिर्नहुषात्मजः ।
गतः शक्रेण सालोक्यमनयस्तं समस्पृशत् ॥₇॥

महर्षयो वसिष्ठस्तु यः पितुर्नः पुरोहितः ।
अह्ना पुत्रशतं जज्ञे तथैवास्य पुनर्हतम् ॥₈॥

या चेयं जगतो माता देवी लोकनमस्कृता ।
अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते सत्यसंश्रव ॥₉॥

यौ चेमौ जगतां नेत्रे यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

आदित्यचन्द्रौ ग्रहणमभ्युपेतौ महाबलौ ॥₁₀॥

सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ ।
न देवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥₁₁॥

शक्रादिष्वपि देवेषु वर्तमानौ नयानयौ ।
श्रूयेते नरशार्दूल न त्वं व्यथितुमर्हसि ॥₁₂॥

नष्टायामपि वैदेह्यां हृतायामपि चानघ ।
शोचितुं नार्हसे वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥₁₃॥

त्वद्विधा हि न शोचन्ति सततं सत्यदर्शिनः ।
सुमहत्स्त्वपि कृच्छ्रेषु रामानिर्विण्णदर्शनाः ॥₁₄॥

तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय ।
बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥₁₅॥

अदृष्टगुणदोषाणामधृतानां च कर्मणाम् ।
नान्तरेण क्रियां तेषां फलमिष्टं प्रवर्तते ॥₁₆॥

मामेव हि पुरा वीर त्वमेव बहुषोऽन्वशाः ।
अनुशिष्याद्वि को नु त्वामपि साक्षाद्ब्रह्मस्पतिः ॥₁₇॥

बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया ।
शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं सम्बोधयाम्यहम् ॥₁₈॥

दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् ।
इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्त्व द्विषतां बधे ॥₁₉॥

किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ ।
तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

पूर्वजोऽप्युक्तमात्रस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम् ।
सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥₁॥

संनिगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं कोपमात्मनः ।
अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₂॥

किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण ।
केनोपायेन पश्येयं सीतामिति विचिन्तय ॥₃॥

तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो राममब्रवीत् ।
इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥₄॥

राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम् ।
सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च ॥₅॥

गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः ।
आवासाः किंनराणां च गन्धर्वभवनानि च ॥₆॥

तानि युक्तो मया सार्धं त्वमन्वेषितुमर्हसि ।
त्वद्विधो बुद्धिसम्पन्ना माहात्मानो नरर्षभ ॥₇॥

आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः ।
इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः ॥₈॥

क्रुद्धो रामः शरं घोरं सन्धाय धनुषि क्षुरम् ।
ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ॥₉॥

ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ।

तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ॥₁₀॥

गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ।
भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथासुखम् ।
एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैर्घोरैर्बाणैरजिह्मगैः ॥₁₁॥

इत्युक्त्वाभ्यपतद्गृध्रं सन्धाय धनुषि क्षुरम् ।
क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥₁₂॥

तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् ।
अभ्यभाषत पक्षी तु रामं दशरथात्मजम् ॥₁₃॥

यामोषधिमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने ।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥₁₄॥

त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥₁₅॥

सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे मया ।
विध्वंसितरथच्छत्रः पातितो धरणीतले ॥₁₆॥

एतदस्य धनुर्भग्नमेतदस्य शरावरम् ।
अयमस्य रणे राम भग्नः साङ्गामिको रथः ॥₁₇॥

परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ।
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ।
रक्षसा निहतं पूर्वम् न मां हन्तुं त्वमर्हसि ॥₁₈॥

रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् ।
गृध्रराजं परिष्वज्य रुरोद सहलक्ष्मणः ॥₁₉॥

एकमेकायने दुर्गे निःश्वसन्तं कथञ्चन ।

समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥₂₀॥

राज्याद्भ्रंशो वने वासः सीता नष्टा हतो द्विजः ।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्निर्दहेदपि पावकम् ॥₂₁॥

सम्पूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् ।
सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः ॥₂₂॥

नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन्सचराचरे ।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥₂₃॥

अयं पितृवयस्यो मे गृध्रराजो जरान्वितः ।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥₂₄॥

इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः ।
जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् ॥₂₅॥

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तम्
तं गृध्रराजं परिरभ्य रामः ।
क्व मैथिलि प्राणसमा ममेति
विमुच्य वाचं निपपात भूमौ ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

रामः प्रेक्ष्य तु तं गृध्रं भुवि रौद्रेण पातितम् ।
सौमित्रिं मित्रसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहङ्गमः ।
राक्षसेन हतः सङ्ख्ये प्राणांस्त्यजति दुस्त्यजान् ॥₂॥

अयमस्य शरीरेऽस्मिन्प्राणो लक्ष्मण विद्यते ।
तथा स्वर्गविहीनोऽयं विक्लवं समुदीक्षते ॥₃॥

जटायो यदि शक्रोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः ।
सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः ॥₄॥

किंनिमित्तोऽहरत्सीतां रावणस्तस्य किं मया ।
अपराद्धं तु यं दृष्ट्वा रावणेन हता प्रिया ॥₅॥

कथं तच्चन्द्रसङ्काशं मुखमासीन्मनोहरम् ।
सीतया कानि चोक्तानि तस्मिन्काले द्विजोत्तम ॥₆॥

कथंवीर्यः कथंरूपः किङ्कर्मा स च राक्षसः ।
क्व चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः ॥₇॥

तमुद्गीक्ष्याथ दीनात्मा विलपन्तमनन्तरम् ।
वाचातिसन्नया रामं जटायुरिदमब्रवीत् ॥₈॥

सा हता राक्षसेन्द्रेण रावणेन विहायसा ।
मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसङ्कुलाम् ॥₉॥

परिश्रान्तस्य मे तात पक्षौ छिच्चा निशाचरः ।

सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणा मुखः ॥₁₀॥

उपरुध्यन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव ।
पश्यामि वृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥₁₁॥

येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः ।
विप्रनष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामिप्रतिपद्यते ॥₁₂॥

विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ स च काकुत्स्थ नाबुधत् ।
झषवद्वडिशं गृह्य क्षिप्रमेव विनश्यति ॥₁₃॥

न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति ।
वैदेह्या रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं राक्षसं रणे ॥₁₄॥

असम्मूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः ।
आस्यात्सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम् ॥₁₅॥

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भाता वैश्रवणस्य च ।
इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥₁₆॥

ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः ।
त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य जग्मुः प्राणा विहायसम् ॥₁₇॥

स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तदा ।
विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥₁₈॥

तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् ।
रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥₁₉॥

बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् ।
अनेन दण्डकारण्ये विचीर्णमिह पक्षिणा ॥₂₀॥

अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालं समुत्थितः ।

सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥₂₁॥

पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे ।
सीतामभ्यवपन्नो वै रावणेन बलीयसा ॥₂₂॥

गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् ।
मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥₂₃॥

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥₂₄॥

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् ।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप ॥₂₅॥

राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम मया यशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥₂₆॥

सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं दिधक्षामि मत्कृते निधनं गतम् ॥₂₇॥

नाथं पतगलोकस्य चितामारोपयाम्यहम् ।
इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ॥₂₈॥

या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः ।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥₂₉॥

मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ॥₃₀॥

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥₃₁॥

रामोऽथ सहसौमित्रिर्वनं यात्वा स वीर्यवान् ।

स्थूलान्हत्वा महारोहीननु तस्तार तं द्विजम् ॥₃₂॥

रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशः ।
शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥₃₃॥

यत्तत्प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः ।
तत्स्वर्गगमनं तस्य क्षिप्रं रामो जजाप ह ॥₃₄॥

ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ ।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥₃₅॥

स गृध्रराजः कृतवान्यशस्करम्
सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा
जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा ।
अवेक्षन्तौ वने सीतां पश्चिमां जग्मतुर्दिशम् ॥₁॥

तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ ।
अविप्रहतमैक्षाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥₂॥

गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् ।
आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ॥₃॥

व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् ।
सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥₄॥

ततः परं जनस्थानात्तिक्रोशं गम्य राघवौ ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥₅॥

नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः ।
नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥₆॥

दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिक्वतुः ।
तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणकर्षितौ ॥₇॥

लक्ष्मणस्तु महातेजाः सत्त्ववाञ्शीलवाञ्शुचिः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥₈॥

स्पन्दते मे दृढं बाहुरुद्विग्नमिव मे मनः ।
प्रायशश्चाप्यनिष्ठानि निमित्तान्युपलक्षये ॥₉॥

तस्मात्सञ्जीभवार्यं त्वं कुरुष्व वचनं हितम् ।

ममैव हि निमित्तानि सद्यः शंसन्ति सम्भ्रमम् ॥₁₀॥

एष वधुलको नाम पक्षी परमदारुणः ।
आवयोर्विजयं युद्धे शंसन्निव विनर्दति ॥₁₁॥

तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा ।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जनिव तद्वनम् ॥₁₂॥

संवेष्टितमिवात्यर्थं गहनं मातरिश्वना ।
वनस्य तस्य शब्दोऽभूद्विवमापूरयन्निव ॥₁₃॥

तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः कक्षे सहानुजः ।
ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥₁₄॥

आसेदतुस्ततस्तत्र तावुभौ प्रमुखे स्थितम् ।
विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुदरे मुखम् ॥₁₅॥

रोमभिर्निचितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् ।
नीलमेघनिभं रौद्रं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥₁₆॥

महापक्ष्मेण पिङ्गेन विपुलेनायतेन च ।
एकेनोरसि घोरेण नयनेनाशुदर्शिना ॥₁₇॥

महादंष्ट्रोपपन्नं तं लेलिहानं महामुखम् ।
भक्षयन्तं महाघोरानृक्षसिंहमृगद्विपान् ॥₁₈॥

घोरौ भुजौ विकुर्वाणमुभौ योजनमायतौ ।
कराभ्यां विविधानृह्य ऋष्कान्पक्षिगणान्मृगान् ॥₁₉॥

आकर्षन्तं विकर्षन्तमनेकान्मृगयूथपान् ।
स्थितमावृत्य पन्थानं तयोर्भ्रात्रोः प्रपन्नयोः ॥₂₀॥

अथ तौ समतिक्रम्य क्रोशमात्रे ददर्शतुः ।

महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् ॥₂₁॥

स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ ।
जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन्बलात् ॥₂₂॥

खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मतेजौ महाभुजौ ।
भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ ॥₂₃॥

तावुवाच महाबाहुः कबन्धो दानवोत्तमः ।
को युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥₂₄॥

घोरं देशमिमं प्राप्तौ मम भक्षानुपस्थितौ ।
वदतं कार्यमिह वां किमर्थं चागतौ युवाम् ॥₂₅॥

इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुधार्तस्येह तिष्ठतः ।
सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृङ्गाविवर्षभौ ।
ममास्यमनुसम्प्राप्तौ दुर्लभं जीवितं पुनः ॥₂₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कबन्धस्य दुरात्मनः ।
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥₂₇॥

कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ।
व्यसनं जीवितान्ताय प्राप्तमप्राप्य तां प्रियाम् ॥₂₈॥

कालस्य सुमहद्वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
त्वां च मां च नरव्याघ्र व्यसनैः पश्य मोहितौ ।
नातिभारोऽस्ति दैवस्य सर्वभूतेषु लक्ष्मण ॥₂₉॥

शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥₃₀॥

इति ब्रुवाणो दृढसत्यविक्रमो
महायशा दाशरथिः प्रतापवान् ।

अवेक्ष्य सौमित्रिमुदग्रविक्रमम्
स्थिरां तदा स्त्वां मतिमात्मनाकरोत् ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

तौ तु तत्र स्थितौ दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बाहुपाशपरिक्षिप्तौ कबन्धो वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

तिष्ठतः किं नु मां दृष्ट्वा क्षुधार्तं क्षत्रियर्षभौ ।
आहारार्थं तु सन्दिष्टौ दैवेन गतचेतसौ ॥₂॥

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा ।
उवाचार्तिसमापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः ॥₃॥

त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः ।
तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहे गुरू ॥₄॥

ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ ।
अच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशयोः ॥₅॥

दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः ।
चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥₆॥

स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥₇॥

स निकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ।
दीनः पप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः ॥₈॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
शशंस तस्य काकुत्स्थं कबन्धस्य महाबलः ॥₉॥

अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः ।

अस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम् ॥₁₀॥

अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने ।
रक्षसापहृता भार्या यामिच्छन्ताविहागतौ ॥₁₁॥

त्वं तु को वा किमर्थं वा कबन्ध सदृशो वने ।
आस्येनोरसि दीप्तेन भग्नजङ्घो विचेष्टसे ॥₁₂॥

एवमुक्तः कबन्धस्तु लक्ष्मणेनोत्तरं वचः ।
उवाच परमप्रीतस्तदिन्द्रवचनं स्मरन् ॥₁₃॥

स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि चाप्यहम् ।
दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ ॥₁₄॥

विरूपं यच्च मे रूपं प्राप्तं ह्यविनयाद्यथा ।
तन्मे शृणु नरव्याघ्र तच्चतः शंसतस्तव ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

॥सप्तषष्टितमः सर्गः॥

पुरा राम महाबाहो महाबलपराक्रम ।
 रूपमासीन्ममाचिन्त्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
 यथा सोमस्य शक्रस्य सूर्यस्य च यथा वपुः ॥₁॥

सोऽहं रूपमिदं कृत्वा लोकवित्रासनं महत् ।
 ऋषीन्वनगतात्राम त्रासयामि ततस्ततः ॥₂॥

ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया ।
 सध्विन्वन्विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः ॥₃॥

तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना ।
 एतदेव नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम् ॥₄॥

स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति ।
 अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः ॥₅॥

यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने ।
 तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम् ॥₆॥

श्रिया विराजितं पुत्रं दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण ।
 इन्द्रकोपादिदं रूपं प्राप्तमेवं रणाजिरे ॥₇॥

अहं हि तपसोग्रेण पितामहमतोषयम् ।
 दीर्घमायुः स मे प्रादात्ततो मां विभ्रमोऽस्पृशत् ॥₈॥

दीर्घमायुर्मया प्राप्तं किं मे शक्रः करिष्यति ।
 इत्येवं बुद्धिमास्थाय रणे शक्रमधर्षयम् ॥₉॥

तस्य बाहुप्रमुक्तेन वज्रेण शतपर्वणा ।
सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे सम्प्रवेशितम् ॥₁₀॥

स मया याच्यमानः सन्नानयदमसादनम् ।
पितामहवचः सत्यं तदस्त्विति ममाब्रवीत् ॥₁₁॥

अनाहारः कथं शक्तो भग्नसक्थिशिरोमुखः ।
वज्रेणाभिहतः कालं सुदीर्घमपि जीवितुम् ॥₁₂॥

एवमुक्तस्तु मे शक्रो बाहू योजनमायतौ ।
प्रादादास्यं च मे कुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥₁₃॥

सोऽहं भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां समाकृष्य वनेचरान् ।
सिंहद्विपमृगव्याघ्रान्भक्षयामि समन्ततः ॥₁₄॥

स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः ।
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यसि ॥₁₅॥

स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव ।
शक्यो हन्तुं यथातत्त्वमेवमुक्तं महर्षिणा ॥₁₆॥

अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ ।
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना ॥₁₇॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दनुना तेन राघवः ।
इदं जगाद वचनं लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ॥₁₈॥

रावणेन हृता सीता मम भार्या यशस्विनी ।
निष्क्रान्तस्य जनस्थानात्सह भ्रात्रा यथासुखम् ॥₁₉॥

नाममात्रं तु जानामि न रूपं तस्य रक्षसः ।
निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे ॥₂₀॥

शोकार्तानामनाथानामेवं विपरिधावताम् ।
कारुण्यं सदृशं कर्तुमुपकारे च वर्तताम् ॥²¹॥

काष्ठान्यानीय शुष्काणि काले भग्नानि कुञ्जरैः ।
भक्ष्यामस्त्वां वयं वीर श्वभ्रे महति कल्पिते ॥²²॥

स त्वं सीतां समाचक्ष्व येन वा यत्र वा हता ।
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्त्वतः ॥²³॥

एवमुक्तस्तु रामेण वाक्यं दनुरनुत्तमम् ।
प्रोवाच कुशलो वक्तुं वक्तामपि राघवम् ॥²⁴॥

दिव्यमस्ति न मे ज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम् ।
यस्तां ज्ञास्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वं रूपमास्थितः ॥²⁵॥

अदग्धस्य हि विज्ञातुं शक्तिरस्ति न मे प्रभो ।
राक्षसं तं महावीर्यं सीता येन हता तव ॥²⁶॥

विज्ञानं हि महद्भ्रष्टं शापदोषेण राघव ।
स्वकृतेन मया प्राप्तं रूपं लोकविगर्हितम् ॥²⁷॥

किं तु यावन्न यात्यस्तं सविता श्रान्तवाहनः ।
तावन्मामवटे क्षिप्त्वा दह राम यथाविधि ॥²⁸॥

दग्धस्त्वयाहमवटे न्यायेन रघुनन्दन ।
वक्ष्यामि तमहं वीर यस्तं ज्ञास्यति राक्षसम् ॥²⁹॥

तेन सख्यं च कर्तव्यं न्याय्यवृत्तेन राघव ।
कल्पयिष्यति ते प्रीतः साहाय्यं लघुविक्रमः ॥³⁰॥

न हि तस्यास्त्यविज्ञातं त्रिषु लोकेषु राघव ।
सर्वान्परिसृतो लोकान्पुरा वै कारणान्तरे ॥³¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तषष्ठितमः सर्गः॥

॥अष्टषष्टितमः सर्गः॥

एवमुक्तौ तु तौ वीरौ कबन्धेन नरेश्वरौ ।
गिरिप्रदरमासाद्य पावकं विससर्जतुः ॥₁॥

लक्ष्मणस्तु महोल्काभिर्ज्वलिताभिः समन्ततः ।
चितामादीपयामास सा प्रज्ज्वाल सर्वतः ॥₂॥

तच्छरीरं कबन्धस्य घृतपिण्डोपमं महत् ।
मेदसा पच्यमानस्य मन्दं दहति पावक ॥₃॥

स विधूय चितामाशु विधूमोऽग्निरिवोत्थितः ।
अरजे वाससी विभ्रन्मालां दिव्यां महाबलः ॥₄॥

ततश्चिताया वेगेन भास्वरो विरजाम्बरः ।
उत्पपाताशु संहृष्टः सर्वप्रत्यङ्गभूषणः ॥₅॥

विमाने भास्वरे तिष्ठन्सयुक्ते यशस्करे ।
प्रभया च महातेजा दिशो दश विराजयन् ॥₆॥

सोऽन्तरिक्षगतो रामं कबन्धो वाक्यमब्रवीत् ।
शृणु राघव तच्चेन यथा सीमामवाप्स्यसि ॥₇॥

राम षड्युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते ।
परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते ॥₈॥

दशाभागगतो हीनस्त्वं राम सहलक्ष्मणः ।
यत्कृते व्यसनं प्राप्तं त्वया दारप्रधर्षणम् ॥₉॥

तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर ।

अकृत्वा न हि ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन् ॥₁₀॥

श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः ।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना ॥₁₁॥

ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते ।
निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥₁₂॥

वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ।
अद्रोहाय समागम्य दीप्यमाने विभावसौ ॥₁₃॥

न च ते सोऽवमन्तव्यः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्यवान् ॥₁₄॥

शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं तस्य चिकीर्षितम् ।
कृतार्थो वाकृतार्थो वा कृत्यं तव करिष्यति ॥₁₅॥

स ऋक्षरजसः पुत्रः पम्पामटति शङ्कितः ।
भास्करस्यौरसः पुत्रो वालिना कृतकिब्लिषः ॥₁₆॥

संनिधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम् ।
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम् ॥₁₇॥

स हि स्थानानि सर्वाणि कात्स्न्येन कपिकुञ्जरः ।
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति ॥₁₈॥

न तस्याविदितं लोके किञ्चिदस्ति हि राघव ।
यावत्सूर्यः प्रतपति सहस्रांशुररिन्दम ॥₁₉॥

स नदीर्विपुलाञ्जैलान्गिरिदुर्गाणि कन्दरान् ।
अन्विष्य वानरैः सार्धं पत्नीं तेऽधिगमिष्यति ॥₂₀॥

वानरांश्च महाकायान्प्रेषयिष्यति राघव ।

दिशो विचेतुं तां सीतां बद्धियोगेन शोचतीम् ॥₂₁॥

स मेरुशृङ्गाग्रगतामनिन्दिताम्
प्रविश्य पातालतलेऽपि वाश्रिताम् ।
प्लवङ्गमानां प्रवरस्तव प्रियाम्
निहत्य रक्षांसि पुनः प्रदास्यति ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे अष्टषष्ठितमः सर्गः॥

॥एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

निदर्शयित्वा रामाय सीतायाः प्रतिपादने ।
वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत् ॥₁॥

एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः ।
प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः ॥₂॥

जम्बूप्रियालपनसाः प्लक्षन्यग्रोधतिन्दुकाः ।
अश्वत्थाः कर्णिकाराश्च चूताश्चान्ये च पादपाः ॥₃॥

तानारुह्याथवा भूमौ पातयित्वा च तान्बलात् ।
फलान्यमृतकल्पानि भक्षयन्तौ गमिष्यथः ॥₄॥

चङ्क्रमन्तौ वरान्देशाञ्छैलाच्छैलं वनाद्वनम् ।
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथः ॥₅॥

अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थमशैवलाम् ।
राम संजातवालूकां कमलोत्पलशोभिताम् ॥₆॥

तत्र हंसाः प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव ।
वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः ॥₇॥

नोद्विजन्ते नरान्दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः शुभाः ।
घृतपिण्डोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथः ॥₈॥

रोहितान्वक्रतुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव ।
पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान्हतान् ॥₉॥

निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान् ।

तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः सम्प्रदास्यति ॥₁₀॥

भृशं ते खादतो मत्स्यान्पम्पायाः पुष्पसन्धये ।
पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम् ॥₁₁॥

उद्धृत्य स तदाक्लिष्टं रूप्यस्फटिकसंनिभम् ।
अथ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति ॥₁₂॥

स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वराहान्वनचारिणः ।
अपां लोभादुपावृत्तान्वृषभानिव नर्दतः ।
रूपान्वितांश्च पम्पायां द्रक्ष्यसि त्वं नरोत्तम ॥₁₃॥

सायाह्ने विचरन्नाम विटपी माल्यधारिणः ।
शीतोदकं च पम्पायां दृष्ट्वा शोकं विहास्यसि ॥₁₄॥

सुमनोभिश्चितांस्तत्र तिलकान्नक्तमालकान् ।
उत्पलानि च फुल्लानि पङ्कजानि च राघव ॥₁₅॥

न तानि कश्चिन्माल्यानि तत्रारोपयिता नरः ।
मतङ्गशिष्यास्तत्रासन्नृषयः सुसमाहितः ॥₁₆॥

तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः ।
ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात्स्वेदबिन्दवः ॥₁₇॥

तानि माल्यानि जातानि मुनीनां तपसा तदा ।
स्वेदबिन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव ॥₁₈॥

तेषामद्यापि तत्रैव दृश्यते परिचारिणी ।
श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी ॥₁₉॥

त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम् ।
दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥₂₀॥

ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम् ।
आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि ॥²¹॥

न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तमाश्रमम् ।
ऋषेस्तस्य मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम् ॥²²॥

तस्मिन्नन्दनसङ्काशे देवारण्योपमे वने ।
नानाविहगसङ्कीर्णे रंस्यसे राम निर्वृतः ॥²³॥

ऋष्यमूकस्तु पम्पायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ।
सुदुःखारोहणो नाम शिशुनागाभिरक्षितः ।
उदारो ब्रह्मणा चैव पूर्वकाले विनिर्मितः ॥²⁴॥

शयानः पुरुषो राम तस्य शैलस्य मूर्धनि ।
यत्स्वप्ने लभते वित्तं तत्प्रबुद्धोऽधिगच्छति ॥²⁵॥

न त्वेनं विषमाचारः पापकर्माधिरोहति ।
तत्रैव प्रहरन्त्येनं सुप्तमादाय राक्षसाः ॥²⁶॥

ततोऽपि शिशुनागानामाक्रन्दः श्रूयते महान् ।
क्रीडतां राम पम्पायां मतङ्गारण्यवासिनाम् ॥²⁷॥

सिक्ता रुधिरधाराभिः संहत्य परमद्विपाः ।
प्रचरन्ति पृथक्कीर्णा मेघवर्णास्तरस्त्रिनः ॥²⁸॥

ते तत्र पीत्वा पानीयं विमलं शीतमव्ययम् ।
निवृत्ताः संविगाहन्ते वनानि वनगोचराः ॥²⁹॥

राम तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा ।
शिलापिधाना काकुत्स्थ दुःखं चास्याः प्रवेशनम् ॥³⁰॥

तस्या गुहायाः प्राग्द्वारे महाञ्जीतोदको हृदः ।
बहुमूलफलो रम्यो नानानगसमावृतः ॥³¹॥

तस्यां वसति सुग्रीवश्चतुर्भिः सह वानरैः ।
कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्यावतिष्ठते ॥₃₂॥

कबन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
स्रग्वी भास्करवर्णाभिः खे व्यरोचत वीर्यवान् ॥₃₃॥

तं तु खस्थं महाभागं कबन्धं रामलक्ष्मणौ ।
प्रस्थितौ त्वं व्रजस्वेति वाक्यमूचतुरन्तिकात् ॥₃₄॥

गम्यतां कार्यसिद्ध्यर्थमिति तावब्रवीच्च सः ।
सुप्रीतौ तावनुज्ञाप्य कबन्धः प्रस्थितस्तदा ॥₃₅॥

स तत्कबन्धः प्रतिपद्य रूपम्
वृतः श्रिया भास्करतुल्यदेहः ।
निदर्शयन्नाममवेक्ष्य खस्थः
सख्यं कुरुष्वेति तदाभ्युवाच ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्ततितमः सर्गः॥

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने ।
आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥₁॥

तौ शैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रकल्पफलद्रुमान् ।
वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥₂॥

कृत्वा च शैलपृष्ठे तु तौ वासं रघुनन्दनौ ।
पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ॥₃॥

तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् ।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥₄॥

तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् ।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥₅॥

तौ तु दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥₆॥

तामुवाच ततो रामः श्रमणीं संशितव्रताम् ।
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः ॥₇॥

कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ।
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् ।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥₈॥

रामेण तापसी पृष्ठा सा सिद्धा सिद्धसम्मता ।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता ॥₉॥

चित्रकूटं बयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः ।
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥₁₀॥

तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ।
आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥₁₁॥

स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ।
तं च दृष्ट्वा वराल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥₁₂॥

मया तु विविधं वन्यं सञ्चितं पुरुषर्षभ ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम् ॥₁₃॥

एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम् ।
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम् ॥₁₄॥

दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनः ।
श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि सन्द्रष्टुं यदि मन्यसे ॥₁₅॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्राद्विनिःसृतम् ।
शबरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् ॥₁₆॥

पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ॥₁₇॥

इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ।
जुहवांश्चक्रिरे तीर्थं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥₁₈॥

इयं प्रत्यक्स्थली वेदी यत्र ते मे सुसत्कृताः ।
पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः ॥₁₉॥

तेषां तपः प्रभावेन पश्याद्यापि रघूत्तम ।
द्योतयन्ति दिशः सर्वाः श्रिया वेद्योऽतुलप्रभाः ॥₂₀॥

अशक्नुवद्विस्तैर्गन्तुमुपवासश्रमालसैः ।
चिन्तितेऽभ्यागतान्यथ्य समेतान्सप्त सागरान् ॥₂₁॥

कृताभिषेकैस्तैर्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह ।
अद्यापि न विशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन ॥₂₂॥

कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं द्वया ।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्तुमेतत्कलेवरम् ॥₂₃॥

तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् ।
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥₂₄॥

धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।
अनुजानामि गच्छेति प्रहृष्टवदनोऽब्रवीत् ॥₂₅॥

अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वात्मानं हुताशने ।
ज्वलत्पावकसङ्काशा स्वर्गमेव जगाम सा ॥₂₆॥

यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः ।
तत्पुण्यं शबरीस्थानं जगामात्मसमाधिना ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्ततितमः सर्गः॥

॥एकसप्ततितमः सर्गः॥

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन कर्मणा ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः ॥₁॥

चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम् ।
हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥₂॥

दृष्टोऽयमाश्रमः सौम्य बह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम् ।
विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ॥₃॥

सप्तानां च समुद्राणामेषु तीर्थेषु लक्ष्मण ।
उपस्पृष्टं च विधिवत्पितरश्चापि तर्पिताः ॥₄॥

प्रनष्टमशुभं यत्तत्कल्याणं समुपस्थितम् ।
तेन बेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति ॥₅॥

हृदये हि नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति ।
तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥₆॥

ऋश्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते ।
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोऽशुमतः सुतः ।
नित्यं वालिभयात्तस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥₇॥

अभिबरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
तदधीनं हि मे सौम्य सीतायाः परिमार्गणम् ॥₈॥

इति ब्रुवाणं तं रामं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि बरते मनः ॥₉॥

आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशां पतिः ।
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सहाभिभूः ॥₁₀॥

समीक्षमाणः पुष्पाढ्यं सर्वतो विपुलद्रुमम् ।
कोयष्टिभिश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीचकैः ।
एतैश्चान्यैश्च विविधैर्नादितं तद्वनं महत् ॥₁₁॥

स रामो विधिवान्वृक्षान्सरांसि विविधानि च ।
पश्यन्कामाभिसन्तप्तो जगाम परमं हृदम् ॥₁₂॥

स तामासाद्य वै रामो दूरादुदकवाहिनीम् ।
मतङ्गसरसं नाम हृदं समवगाहत ॥₁₃॥

स तु शोकसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ।
विवेश नलिनीं पम्पां पङ्कजैश्च समावृताम् ॥₁₄॥

तिलकाशोकपुंनागबकुलोद्दाल काशिनीम् ।
रम्योपवनसम्बाधां पद्मसम्पीडितोदकाम् ॥₁₅॥

स्फटिकोपमतोयाढ्यां श्लक्ष्णवालुकसन्तताम् ।
मत्स्यकच्छपसम्बाधां तीरस्थद्रुमशोभिताम् ॥₁₆॥

सखीभिरिव युक्ताभिर्लताभिरनुवेष्टिताम् ।
किंनरोरगगन्धर्वयक्षराक्षससेविताम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णां शीतवारिनिधिं शुभाम् ॥₁₇॥

पद्मेः सौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः ।
नीलां कुवलयोद्धातैर्बहुवर्णां कुथामिव ॥₁₈॥

अरविन्दोत्पलवतीं पद्मसौगन्धिकायुताम् ।
पुष्पिताम्रवणोपेतां बर्हिणोद्भुष्टनादिताम् ॥₁₉॥

स तां दृष्ट्वा ततः पम्पां रामः सौमित्रिणा सह ।

विललाप च तेजस्वी कामादशरथात्मजः ॥₂₀॥

तिलकैर्बीजपूरैश्च वटैः शुक्लद्रुमैस्तथा ।
पुष्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुष्पितैः ॥₂₁॥

मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा ।
अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदेवोपशोभिताम् ॥₂₂॥

अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः ।
ऋश्यमूक इति ख्यातश्चित्रपुष्पितकाननः ॥₂₃॥

हरिऋक्षरजो नाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः ।
अध्यास्ते तं महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः ॥₂₄॥

सुग्रीवमभिगच्छ त्वं वानरेन्द्रं नरर्षभ ।
इत्युवाच पुनर्वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमम् ॥₂₅॥

ततो महद्वर्त्म च दूरसङ्क्रमम्
क्रमेण गत्वा प्रविलोकयन्वनम् ।
ददर्श पम्पां शुभदर्श काननाम्
अनेकनानाविधपक्षिसङ्कुलाम् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः॥

Chapter 4

॥किष्किन्धाकाण्डः॥

॥प्रथमः सर्गः॥

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम् ।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः ॥₁॥

तस्य दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे ।
स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥₂॥

सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम् ।
यत्र राजन्ति शैलाभा द्रुमाः सशिखरा इव ॥₃॥

मां तु शोकाभिसन्तप्तमाधयः पीडयन्ति वै ।
भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च ॥₄॥

अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम् ।
द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥₅॥

सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः ।
गन्धवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः ॥₆॥

पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम् ।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥₇॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः ।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥₈॥

मारुतः सुखं संस्पर्शे वाति चन्दनशीतलः ।
षट्पदैरनुकूजद्विर्वनेषु मधुगन्धिषु ॥₉॥

गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिर्मनोरमैः ।

संसक्तशिखरा शैला विराजन्ति महाद्रुमेः ॥₁₀॥

पुष्पिताग्रांश्च पश्येमान्कर्णिकारान्समन्ततः ।
हाटकप्रतिसञ्छन्नान्नरान्पीताम्बरानिव ॥₁₁॥

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः ।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम ॥₁₂॥

मां हि शोकसमाक्रान्तं सन्तापयति मन्मथः ।
हृष्टः प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः ॥₁₃॥

एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिझरि ।
प्रणदन्मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण ॥₁₄॥

विमिश्रा विहगाः पुम्भिरात्मव्यूहाभिनन्दिताः ।
भृङ्गराजप्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः ॥₁₅॥

मां हि सा मृगशावाक्षी चिन्ताशोकबलात्कृतम् ।
सन्तापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः ॥₁₆॥

शिखिनीभिः परिवृता मयूरा गिरिसानुषु ।
मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः ॥₁₇॥

पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति ।
शिखिनी मन्मथार्तेषा भर्तारं गिरिसानुषु ॥₁₈॥

मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हता प्रिया ।
मम त्वयं विना वासः पुष्पमासे सुदुःसहः ॥₁₉॥

पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे ।
पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥₂₀॥

वदन्ति रावं मुदिताः शकुनाः सङ्घशः कलम् ।

आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥₂₁॥

नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ।
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया ॥₂₂॥

एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः ।
तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥₂₃॥

तां विनाथ विहङ्गोऽसौ पक्षी प्रणदितस्तदा ।
वायसः पादपगतः प्रहृष्टमभिनर्दति ॥₂₄॥

एष वै तत्र वैदेह्या विहगः प्रतिहारकः ।
पक्षी मां तु विशालाक्ष्याः समीपमुपनेष्यति ॥₂₅॥

पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् ।
पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामुपकूजताम् ॥₂₆॥

सौमित्रे पश्य पम्पायाश्चित्रासु वनराजिषु ।
नलिनानि प्रकाशन्ते जले तरुणसूर्यवत् ॥₂₇॥

एषा प्रसन्नसलिला पद्मनीलोत्पलायता ।
हंसकारण्डवाकीर्णा पम्पा सौगन्धिकायुता ॥₂₈॥

चक्रवाकयुता नित्यं चित्रप्रस्थवनान्तरा ।
मातङ्गमृगयूथैश्च शोभते सलिलार्थिभिः ॥₂₉॥

पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते ।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥₃₀॥

पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः ।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥₃₁॥

सौमित्रे पश्य पम्पाया दक्षिणे गिरिसानुनि ।

पुष्पितां कर्णिकारस्य यष्टिं परमशोभनाम् ॥₃₂॥

अधिकं शैलराजोऽयं धातुभिस्तु विभूषितः ।
विचित्रं सृजते रेणुं वायुवेगविघटितम् ॥₃₃॥

गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः सम्प्रपुष्पितैः ।
निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीपा इव कुंशुकैः ॥₃₄॥

पम्पातीररुहाश्चेमे संसक्ता मधुगन्धिनः ।
मालतीमल्लिकाषण्डाः करवीराश्च पुष्पिताः ॥₃₅॥

केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः ।
माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः ॥₃₆॥

चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा ।
चम्पकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥₃₇॥

नीपाश्च वरणाश्चैव खर्जूराश्च सुपुष्पिताः ।
अङ्गोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः ॥₃₈॥

चूताः पाटलयश्चैव कोविदाराश्च पुष्पिताः ।
मुचुकुन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु ॥₃₉॥

केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः ।
शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरबकास्तथा ।
तिनिशा नक्त मालाश्च चन्दनाः स्यन्दनास्तथा ॥₄₀॥

विविधा विविधैः पुष्पैस्तैरेव नगसानुषु ।
विकीर्णैः पीतरक्ताभाः सौमित्रे प्रस्तराः कृताः ॥₄₁॥

हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम् ।
पुष्पमासे हि तरवः सङ्घर्षादिव पुष्पिताः ॥₄₂॥

पश्य शीतजलां चेमां सौमित्रे पुष्करायुताम् ।
चक्रवाकानुचरितां कारण्डवनिषेविताम् ।
प्लवैः क्रौञ्चैश्च सम्पूर्णा वराहमृगसेविताम् ॥⁴³॥

अधिकं शोभते पम्पाविकूजद्भिर्विहङ्गमैः ॥⁴⁴॥

दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः ।
श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम् ॥⁴⁵॥

पय सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान् ।
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् ॥⁴⁶॥

एवं स विलपंस्तत्र शोकोपहतचेतनः ।
अवेक्षत शिवां पम्पां रम्यवारिवहां शुभाम् ॥⁴⁷॥

निरीक्षमाणः सहसा महात्मा
सर्वं वनं निर्झरकन्दरं च ।
उद्विग्नचेताः सह लक्ष्मणेन
विचार्य दुःखोपहतः प्रतस्थे ॥⁴⁸॥

तावृष्यमूकं सहितौ प्रयातौ
सुग्रीवशाखामृगसेवितं तम् ।
त्रस्तास्तु दृष्ट्वा हरयो बभूवुर्-
महौजसौ राघवलक्ष्मणौ तौ ॥⁴⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥₁॥

उद्विग्नहृदयः सर्वा दिशः समवलोकयन् ।
न व्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशे वानरपुङ्गवः ॥₂॥

नैव चक्रे मनः स्थाने वीक्षमाणो महाबलौ ।
कपेः परमभीतस्य चित्तं व्यवससाद ह ॥₃॥

चिन्तयित्वा स धर्मात्मा विमृश्य गुरुलाघवम् ।
सुग्रीवः परमोद्विग्नः सर्वैरनुचरैः सह ॥₄॥

ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ ॥₅॥

एतौ वनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम् ।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥₆॥

ततः सुग्रीवसचिवा दृष्ट्वा परमधन्विनौ ।
जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥₇॥

ते क्षिप्रमभिगम्याथ यूथपा यूथपर्षभम् ।
हरयो वानरश्रेष्ठं परिवार्योपतस्थिरे ॥₈॥

एकमेकायनगताः प्लवमाना गिरेर्गिरिम् ।
प्रकम्पयन्तो वेगेन गिरीणां शिखराणि च ॥₉॥

ततः शाखामृगाः सर्वे प्लवमाना महाबलाः ।

बभञ्जुश्च नगांस्तत्र पुष्पितान्दुर्गसंश्रितान् ॥₁₀॥

आप्लवन्तो हरिवराः सर्वतस्तं महागिरिम् ।
मृगमार्जारशार्दूलांस्त्रासयन्तो ययुस्तदा ॥₁₁॥

ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रं समाश्रिताः ।
सङ्गम्य कपिमुख्येन सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥₁₂॥

ततस्तं भयसन्तस्तं वालिकेत्विषशङ्कितम् ।
उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥₁₃॥

यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं प्रद्रुतो हरिपुङ्गव ।
तं क्रूरदर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि वालिनम् ॥₁₄॥

यस्मात्तव भयं सौम्य पूर्वजात्पापकर्मणः ।
स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम् ॥₁₅॥

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम ।
लघुचित्ततयात्मानं न स्थापयसि यो मतौ ॥₁₆॥

बुद्धिविज्ञानसम्पन्न इङ्गितैः सर्वमाचर ।
न ह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥₁₇॥

सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः ।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥₁₈॥

दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ ।
कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा एतौ सुरसुतोपमौ ॥₁₉॥

वालिप्रणिहितावेतौ शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥₂₀॥

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छन्नचारिणः ।

विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्ति हि ॥₂₁॥

कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शनाः ।
भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥₂₂॥

तौ त्वया प्राकृतेनैव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम ।
शङ्कितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च ॥₂₃॥

लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि ।
विश्वासयन्प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः ॥₂₄॥

ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुङ्गव ।
प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरो ॥₂₅॥

शुद्धात्मानो यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम ।
व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः ॥₂₆॥

इत्येवं कपिराजेन सन्दिष्टो मारुतात्मजः ।
चकार गमने बुद्धिं यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥₂₇॥

तथेति सम्पूज्य वचस्तु तस्य
कपेः सुभीतस्य दुरासदस्य ।
महानुभावो हनुमान्ययौ तदा
स यत्र रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पर्वतादृश्यमूकात्तु पुष्टुवे यत्र राघवौ ॥₁॥

स तत्र गत्वा हनुमान्बलवान्वानरोत्तमः ।
उपचक्राम तौ वाग्भिर्मृद्वीभिः सत्यविक्रमः ॥₂॥

स्वकं रूपं परित्यज्य भिक्षुरूपेण वानरः ।
आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च ॥₃॥

राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ।
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ ॥₄॥

त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः ।
पम्पातीररुहान्वृक्षान्वीक्षमाणौ समन्ततः ॥₅॥

द्विमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ ।
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ ॥₆॥

सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ सिंहातिबलविक्रमौ ।
शक्रचापनिभे चापे प्रगृह्य विपुलैर्भुजैः ॥₇॥

श्रीमन्तौ रूपसम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ ।
हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ॥₈॥

प्रभया पर्वतेन्द्रोऽयं युवयोरवभासितः ।
राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ॥₉॥

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ ।

अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिवागतौ ॥₁₀॥

यदृच्छयेव सम्प्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुन्धराम् ।
विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ ॥₁₁॥

सिंहस्कन्धौ महासत्त्वौ समदाविव गोवृषौ ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोत्तमाः ।
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषितः ॥₁₂॥

उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ।
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम् ॥₁₃॥

द्वमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने ।
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते ॥₁₄॥

सम्पूर्णा निशितैर्बाणैर्तूणाश्च शुभदर्शनाः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ॥₁₅॥

महाप्रमाणौ विपुलौ तप्तहाटकभूषितौ ।
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव ॥₁₆॥

एवं मां परिभाषन्तं कस्माद्वे नाभिभाषथः ॥₁₇॥

सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरयूथपः ।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः ॥₁₈॥

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥₁₉॥

युवाभ्यां सह धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति ।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥₂₀॥

भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकाम्यया ।
ऋश्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामरूपिणम् ॥₂₁॥

एवमुक्त्वा तु हनुमांस्तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ ।
वाक्यज्ञौ वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किञ्चन ॥₂₂॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान्भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥₂₃॥

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमुपागतः ॥₂₄॥

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

ततः प्रहृष्टो हनुमान्कृत्यवानिति तद्वचः ।
श्रुत्वा मधुरसम्भाषं सुग्रीवं मनसा गतः ॥₁॥

भव्यो राज्यागमस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
यदयं कृत्यवान्प्राप्तः कृत्यं चैतदुपागतम् ॥₂॥

ततः परमसंहृष्टो हनूमान्त्ववर्षभः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदः ॥₃॥

किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम् ।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः ।
आचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥₅॥

राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः ।
तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥₆॥

शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः ।
वीरो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः ॥₇॥

राज्याद्भृष्टो वने वस्तुं मया सार्धमिहागतः ।
भार्यया च महातेजाः सीतयानुगतो वशी ।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥₈॥

अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः ।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥₉॥

सुखार्हस्य महार्हस्य सर्वभूतहितात्मनः ।
ऐश्वर्येण विहीनस्य वनवासाश्रितस्य च ॥₁₀॥

रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा ।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य सा हृता ॥₁₁॥

दनुर्नाम श्रियः पुत्रः शापाद्राक्षसतां गतः ।
आख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानराधिपः ॥₁₂॥

स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम् ।
एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राजमानो गतः सुखम् ॥₁₃॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः ।
अहं चैव हि रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥₁₄॥

एष दत्त्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥₁₅॥

शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते ।
कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः ॥₁₆॥

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम् ।
हनूमान्प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₁₇॥

ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥₁₈॥

स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना ।
हतदारो वने त्रस्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम् ॥₁₉॥

करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः ।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे ॥₂₀॥

इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।
बभाषे सोऽभिगच्छामः सुग्रीवमिति राघवम् ॥₂₁॥

एवं ब्रुवाणं धर्मात्मा हनूमन्तं स लक्ष्मणः ।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं प्रोवाच राघवम् ॥₂₂॥

कपिः कथयते हृष्टो यथायं मारुतात्मजः ।
कृत्यवान्सोऽपि सम्प्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव ॥₂₃॥

प्रसन्नमुखवर्णश्च व्यक्तं हृष्टश्च भाषते ।
नानृतं वक्ष्यते वीरो हनूमान्मारुतात्मजः ॥₂₄॥

ततः स तु महाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः ।
जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥₂₅॥

स तु विपुल यशाः कपिप्रवीरः
पवनसुतः कृतकृत्यवत्प्रहृष्टः ।
गिरिवरमुरुविक्रमः प्रयातः
स शुभमतिः सह रामलक्ष्मणाभ्याम् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

ऋश्यमूकात्तु हनुमान्गत्वा तं मलयं गिरम् ।
आचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ ॥₁॥

अयं रामो महाप्राज्ञः सम्प्राप्तो दृढविक्रमः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥₂॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः ।
धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशपालकः ॥₃॥

तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः ।
रक्षसापहृता भार्या स त्वां शरणमागतः ॥₄॥

राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पितः ।
दक्षिणाश्च तथोत्सृष्टा गावः शतसहस्रशः ॥₅॥

तपसा सत्यवाक्येन वसुधा येन पालिता ।
स्त्रीहेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामस्त्वां शरणं गतः ॥₆॥

भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रतिगृह्यार्चयस्वमौ पूजनीयतमावुभौ ॥₇॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सुग्रीवो हृष्टमानसः ।
भयं स राघवाद्धोरं प्रजहौ विगतज्वरः ॥₈॥

स कृत्वा मानुषं रूपं सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्या प्रोवाच राघवम् ॥₉॥

भवान्धर्मविनीतश्च विक्रान्तः सर्ववत्सलः ।

आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः ॥₁₀॥

तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो ।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह ॥₁₁॥

रोचते यदि वा सख्यं बाहुरेष प्रसारितः ।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा वध्यतां ध्रुवा ॥₁₂॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् ।
सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ।
हृद्यं सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम् ॥₁₃॥

ततो हनूमान्सन्त्यज्य भिक्षुरूपमरिन्दमः ।
काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम् ॥₁₄॥

दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ।
तयोर्मध्ये तु सुप्रीतो निदधे सुसमाहितः ॥₁₅॥

ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्बमुपागतौ ॥₁₆॥

ततः सुप्रीत मनसौ तावुभौ हरिराघवौ ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमुपजग्मतुः ॥₁₇॥

ततः सर्वार्थविद्वांसं रामं दशरथात्मजम् ।
सुग्रीवः प्राह तेजस्वी वाक्यमेकमनास्तदा ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

अयमाख्याति मे राम सचिवो मन्त्रिसत्तमः ।
हनुमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः ॥₁॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ।
रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा ॥₂॥

त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ।
अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥₃॥

भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे ।
अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतिं यथा ॥₄॥

रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभस्तले ।
अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिन्दम ॥₅॥

इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव ।
त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ॥₆॥

अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा क्रूरकर्मणा ॥₇॥

क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥₈॥

आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतटे स्थितम् ।
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥₉॥

तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव ।

आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥₁₀॥

तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् ।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥₁₁॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् ।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥₁₂॥

उत्तरीयं गृहीत्वा तु शुभान्याभरणानि च ।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥₁₃॥

ततो गृहीत्वा तद्वासः शुभान्याभरणानि च ।
अभवद्वाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥₁₄॥

सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः ।
हा प्रियेति रुदन्धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥₁₅॥

हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलङ्कारमुत्तमम् ।
निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥₁₆॥

अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं वीक्ष्य पार्श्वतः ।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥₁₇॥

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या सन्त्यक्तं ह्रियमाणया ।
उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद्भूषणानि च ॥₁₈॥

शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीतया ह्रियमाणया ।
उत्सृष्टं भूषणमिदं तथारूपं हि दृश्यते ॥₁₉॥

ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया ।
रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणसमा प्रिया ॥₂₀॥

क्व वा वसति तद्रक्षो महद्वासनदं मम ।

यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥₂₁॥

हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता भृशम् ।
आत्मनो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम् ॥₂₂॥

मम दयिततमा हृता वनाद्-
रजनिचरेण विमथ्य येन सा ।
कथय मम रिपुं तमद्य वै
प्रवगपते यमसंनिधिं नयामि ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः ॥₁॥

न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः ।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥₂॥

सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिन्दम ।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥₃॥

रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् ।
तथास्मि कर्ता नचिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि ॥₄॥

अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर ।
बद्धिधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥₅॥

मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्या हरणजं महत् ।
न चाहमेवं शोचामि न च धैर्यं परित्यजे ॥₆॥

नाहं तामनुशोचामि प्राकृतो वानरोऽपि सन् ।
महात्मा च विनीतश्चा किं पुनर्धृतिमान्भवान् ॥₇॥

बाष्पमापतितं धैर्यान्निग्रहीतुं ब्रमर्हसि ।
मर्यादां सत्त्वयुक्तानां धृतिं नोत्स्रष्टुमर्हसि ॥₈॥

व्यसने वार्थं कृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तरे ।
विमृशन्वै स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥₉॥

बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते ।

स मञ्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले ॥₁₀॥

एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः प्रणयात्त्वां प्रसादये ।
पौरुषं श्रय शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि ॥₁₁॥

ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् ।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥₁₂॥

हितं वयस्य भावेन ब्रूहि नोपदिशामि ते ।
वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥₁₃॥

मधुरं सान्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः ।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत् ॥₁₄॥

प्रकृतिष्ठस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः ।
सम्परिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₅॥

कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च ।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥₁₆॥

एष च प्रकृतिष्ठोऽहमनुनीतस्त्वया सखे ।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ॥₁₇॥

किं तु यत्त्वस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे ।
राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥₁₈॥

मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् ।
वर्षास्त्रिव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते तव ॥₁₉॥

मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम् ।
तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥₂₀॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।

एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपामि ते ॥₂₁॥

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह ।
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः ॥₂₂॥

महानुभावस्य वचो निशम्य
हरिर्नराणामृषभस्य तस्य ।
कृतं स मेने हरिवीर मुख्यः
तदा स्वकार्यं हृदयेन विद्वान् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

परितुष्टस्तु सुग्रीवस्तेन वाक्येन वानरः ।
लक्ष्मणस्याग्रजं राममिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानामसंशयः ।
उपपन्नगुणोपेतः सखा यस्य भवान्मम ॥₂॥

शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयानघ ।
सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किं पुनः प्रभो ॥₃॥

सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव ।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम् ॥₄॥

अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः ।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं स्वयमात्मगतान्गुणान् ॥₅॥

महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् ।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतामिव ॥₆॥

रजतं वा सुवर्णं वा वस्त्राण्याभरणानि वा ।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥₇॥

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा ।
निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः ॥₈॥

धनत्यागः सुखत्यागो देहत्यागोऽपि वा पुनः ।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥₉॥

तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् ।

लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः ॥₁₀॥

ततो रामं स्थितं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् ।
सुग्रीवः सर्वतश्चक्षुर्वने लोलमपातयत् ॥₁₁॥

स ददर्श ततः सालमविदूरे हरीश्वरः ।
सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यं भ्रमरैरुपशोभितम् ॥₁₂॥

तस्यैकां पर्णबहुलां भङ्ग्या शाखां सुपुष्पिताम् ।
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः ॥₁₃॥

तावासीनौ ततो दृष्ट्वा हनूमानपि लक्ष्मणम् ।
सालशाखां समुत्पाट्य विनीतमुपवेशयत् ॥₁₄॥

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।
उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥₁₅॥

अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः ।
ऋश्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः ॥₁₆॥

सोऽहं त्रस्तो भये मग्नो वसाम्युद्भ्रान्तचेतनः ।
वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव ॥₁₇॥

वालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयङ्कर ।
ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₁₈॥

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ।
प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥₁₉॥

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ।
अद्यैव तं हनिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥₂₀॥

इमे हि मे महावेगाः पत्रिणस्तिग्मतेजसः ।

कार्तिकेयवनोद्भूताः शरा हेमविभूषिताः ॥₂₁॥

कङ्कपत्रप्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसंनिभाः ।
सुपर्वाणः सुतीक्ष्णाग्रा सरोषा भुजगा इव ॥₂₂॥

भ्रातृसंज्ञममित्रं ते वालिनं कृतकिङ्क्षिपम् ।
शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥₂₃॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥₂₄॥

रामशोकाभिभूतोऽहं शोकार्तानां भवान्गतिः ।
वयस्य इति कृत्वा हि ब्रूयहं परिदेवये ॥₂₅॥

त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो सोऽग्निसाक्षिकः ।
कृतः प्राणैर्बहुमतः सत्येनापि शपाम्यहम् ॥₂₆॥

वयस्य इति कृत्वा च विस्रब्धं प्रवदाम्यहम् ।
दुःखमन्तर्गतं यन्मे मनो दहति नित्यशः ॥₂₇॥

एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पदूषितलोचनः ।
बाष्पोपहतया वाचा नोच्चैः शक्नोति भाषितुम् ॥₂₈॥

बाष्पवेगं तु सहसा नदीवेगमिवागतम् ।
धारयामास धैर्येण सुग्रीवो रामसंनिधौ ॥₂₉॥

संनिगृह्य तु तं बाष्पं प्रमृज्य नयने शुभे ।
विनिश्चस्य च तेजस्वी राघवं पुनरब्रवीत् ॥₃₀॥

पुराहं वलिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः ।
परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥₃₁॥

हता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।

सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते ॥³²॥

यत्नवांश्च सुदुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव ।
बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥³³॥

शङ्कया त्वेतया चाहं दृष्ट्वा त्वामपि राघव ।
नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति ॥³⁴॥

केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्रिमे ।
अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान्कृच्छ्र गतोऽपि सन् ॥³⁵॥

एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः ।
सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति च स्थिते ॥³⁶॥

सङ्क्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते ।
स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥³⁷॥

तद्विनाशाद्धि मे दुःखं प्रनष्टं स्यादनन्तरम् ।
सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाशनिबन्धनम् ॥³⁸॥

एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः ।
दुःखितोऽदुःखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः ॥³⁹॥

श्रुत्वैतच्च वचो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
किंनिमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥⁴⁰॥

सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर ।
आनन्तर्यं विधास्यामि सम्प्रधार्य बलाबलम् ॥⁴¹॥

बलवान्हि ममामर्षः श्रुत्वा त्वामवमानितम् ।
वर्धते हृदयोत्कम्पी प्रावृद्धेन इवाम्भसः ॥⁴²॥

हृष्टः कथय विस्रब्धो यावदारोप्यते धनुः ।

सृष्टश्च हि मया बाणो निरस्तश्च रिपुस्तव ॥₄₃॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः काकुत्स्थेन महात्मना ।
प्रहर्षमतुलं लेभे चतुर्भिः सह वानरैः ॥₄₄॥

ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे ।
वैरस्य कारणं तच्चमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₄₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः ।
पितुर्बहुमतो नित्यं मम चापि तथा पुरा ॥₁॥

पितर्युपरतेऽस्माकं ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः ।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसम्मतः ॥₂॥

राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत् ।
अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत्स्थितः ॥₃॥

मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः ।
तेन तस्य महद्वैरं स्वीकृतं विश्रुतं पुरा ॥₄॥

स तु सुप्ते जने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः ।
नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे ॥₅॥

प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दितं भैरवस्वनम् ।
श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात्तदा ॥₆॥

स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम् ।
वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना ॥₇॥

स तु निर्धूय सर्वान्नो निर्जगाम महाबलः ।
ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह ॥₈॥

स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम् ।
असुरो जातसन्त्वासः प्रदुद्राव तदा भृशम् ॥₉॥

तस्मिन्द्रवति सन्तस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ ।

प्रकाशोऽपि कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा ॥₁₀॥

स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत् ।
प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ ॥₁₁॥

तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः ।
मामुवाच तदा वाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः ॥₁₂॥

इह बं तिष्ठ सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः ।
यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम् ॥₁₃॥

मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परन्तप ।
शापयित्वा च मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं तदा ॥₁₄॥

तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रः संवत्सरो गतः ।
स्थितस्य च मम द्वारि स कालो व्यत्यवर्तत ॥₁₅॥

अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसम्भ्रमः ।
भ्रातरं न हि पश्यामि पापशङ्कि च मे मनः ॥₁₆॥

अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिःसृतम् ।
सफेनं रुधिरं रक्तमहं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥₁₇॥

नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः ।
निरस्तस्य च सङ्ग्रामे क्रोशतो निःस्वनो गुरोः ॥₁₈॥

अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम् ।
पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया ।
शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे ॥₁₉॥

गूहमानस्य मे तच्च यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम् ।
ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः ॥₂₀॥

राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव ।
आजगाम रिपुं हत्वा वाली तमसुरोत्तमम् ॥₂₁॥

अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात्संरक्तलोचनः ।
मदीयान्मन्त्रिणो बद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥₂₂॥

निग्रहेऽपि समर्थस्य तं पापं प्रति राघव ।
न प्रावर्तत मे बुद्धिर्भ्रातृगौरवयन्त्रिता ॥₂₃॥

मानयंस्तं महात्मानं यथावच्चाभ्यवादयम् ।
उक्ताश्च नाशिषस्तेन सन्तुष्टेनान्तरात्मना ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम् ।
अहं प्रसादयां चक्रे भ्रातरं प्रियकाम्यया ॥₁॥

दिष्टासि कुशली प्राप्तो निहतश्च त्वया रिपुः ।
अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेकोऽनाथनन्दनः ॥₂॥

इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ।
छत्रं सवालव्यजनं प्रतीच्छस्व मयोद्यतम् ॥₃॥

त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथापुरा ।
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम् ॥₄॥

मा च रोषं कृथाः सौम्य मयि शत्रुनिबर्हण ।
याचे त्वां शिरसा राजन्मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥₅॥

बलादस्मि समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ।
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया ॥₆॥

स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स तु निर्भर्त्स्य वानरः ।
धिक्कामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह ॥₇॥

प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव सम्मतान् ।
मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम् ॥₈॥

विदितं वो यथा रात्रौ मायावी स महासुरः ।
मां समाह्वयत क्रूरो युद्धाकाङ्क्षी सुदुर्मतिः ॥₉॥

तस्य तद्गर्जितं श्रुत्वा निःसृतोऽहं नृपालयात् ।

अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः ॥₁₀॥

स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः ।
प्राद्रवद्भयसन्तस्तो वीक्ष्यावां तमनुद्रुतौ ।
अनुद्रुतस्तु वेगेन प्रविवेश महाबिलम् ॥₁₁॥

तं प्रविष्टं विदित्वा तु सुघोरं सुमहद्विलम् ।
अयमुक्तोऽथ मे भ्राता मया तु क्रूरदर्शनः ॥₁₂॥

अहत्वा नास्ति मे शक्तिः प्रतिगन्तुमितः पुरीम् ।
बिलद्वारि प्रतीक्ष त्वं यावदेनं निहन्म्यहम् ॥₁₃॥

स्थितोऽयमिति मत्वा तु प्रविष्टोऽहं दुरासदम् ।
तं च मे मार्गमाणस्य गतः संवत्सरस्तदा ॥₁₄॥

स तु दृष्टो मया शत्रुरनिर्वेदाद्भयावहः ।
निहतश्च मया तत्र सोऽसुरो बन्धुभिः सह ॥₁₅॥

तस्यास्यात्तु प्रवृत्तेन रुधिरौघेण तद्विलम् ।
पूर्णमासीदुराक्रामं स्तनतस्तस्य भूतले ॥₁₆॥

सूदयित्वा तु तं शत्रुं विक्रान्तं दुन्दुभेः सुतम् ।
निष्क्रामन्नेव पश्यामि बिलस्य पिहितं मुखम् ॥₁₇॥

विक्रोशमानस्य तु मे सुग्रीवेति पुनः पुनः ।
यदा प्रतिवचो नास्ति ततोऽहं भृशदुःखितः ॥₁₈॥

पादप्रहारैस्तु मया बहुशस्तद्विदारितम् ।
ततोऽहं तेन निष्क्रम्य यथा पुनरुपागतः ॥₁₉॥

तत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं मार्गयतात्मनः ।
सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम् ॥₂₀॥

एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः ।
तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः ॥₂₁॥

तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव ।
तद्भयाच्च महीकृत्स्ना क्रान्तेयं सवनार्णवा ॥₂₂॥

ऋश्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः ।
प्रविष्टोऽस्मि दुराधर्ष वालिनः कारणान्तरे ॥₂₃॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत् ।
अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव ॥₂₄॥

वालिनस्तु भयार्तस्य सर्वलोकाभयङ्कर ।
कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात् ॥₂₅॥

एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् ।
वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥₂₆॥

अमोघाः सूर्यसङ्काशा ममेमे निशिताः शराः ।
तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते पतिष्यन्ति रुषान्विताः ॥₂₇॥

यावत्तं न हि पश्येयं तव भार्यापहारिणम् ।
तावत्स जीवेत्पापात्मा वाली चारित्रदूषकः ॥₂₈॥

आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नं त्वां शोकसागरे ।
त्वामहं तारयिष्यामि कामं प्राप्स्यसि पुष्कलम् ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् ।
सुग्रीवः पूजयां चक्रे राघवं प्रशशंस च ॥₁॥

असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः ।
ब्रं दहेः कुपितो लोकान्युगान्त इव भास्करः ॥₂॥

वालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या ।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥₃॥

समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम् ।
क्रामत्यनुदिते सूर्ये वाली व्यपगतक्लमः ॥₄॥

अग्राण्यारुह्य शैलानां शिखराणि महान्त्यपि ।
ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य तरसा प्रतिगृह्णाति वीर्यवान् ॥₅॥

बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः ।
वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥₆॥

महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः ।
बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥₇॥

वीर्योत्सेकेन दुष्टात्मा वरदानाच्च मोहितः ।
जगाम स महाकायः समुद्रं सरितां पतिम् ॥₈॥

ऊर्मिमन्तमतिक्रम्य सागरं रत्नसञ्चयम् ।
मम युद्धं प्रयच्छेति तमुवाच महार्णवम् ॥₉॥

ततः समुद्रो धर्मात्मा समुत्थाय महाबलः ।

अब्रवीद्वचनं राजन्नसुरं कालचोदितम् ॥₁₀॥

समर्थो नास्मि ते दातुं युद्धं युद्धविशारद ।
श्रूयतामभिधास्यामि यस्ते युद्धं प्रदास्यति ॥₁₁॥

शैलराजो महारण्ये तपस्विशरणं परम् ।
शङ्करश्चशुरो नाम्ना हिमवानिति विश्रुतः ॥₁₂॥

गुहा प्रस्रवणोपेतो बहुकन्दरनिर्झरः ।
स समर्थस्तव प्रीतिमतुलां कर्तुमाहवे ॥₁₃॥

तं भीतमिति विज्ञाय समुद्रमसुरोत्तमः ।
हिमवद्वनमागच्छच्छरश्चापादिव च्युतः ॥₁₄॥

ततस्तस्य गिरेः श्वेता गजेन्द्रविपुलाः शिलाः ।
चिक्षेप बहुधा भूमौ दुन्दुभिर्विननाद च ॥₁₅॥

ततः श्वेताम्बुदाकारः सौम्यः प्रीतिकराकृतिः ।
हिमवानब्रवीद्वाक्यं स्व एव शिखरे स्थितः ॥₁₆॥

क्लृष्टमर्हसि मां न त्वं दुन्दुभे धर्मवत्सल ।
रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणं ह्यहम् ॥₁₇॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य धीमतः ।
उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥₁₈॥

यदि युद्धेऽसमर्थस्त्वं मद्भयाद्वा निरुद्यमः ।
तमाचक्ष्व प्रदद्यान्मे योऽद्य युद्धं युयुत्सतः ॥₁₉॥

हिमवानब्रवीद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
अनुक्तपूर्वं धर्मात्मा क्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥₂₀॥

वाली नाम महाप्राज्ञः शक्रतुल्यपराक्रमः ।

अध्यास्ते वानरः श्रीमान्किष्किन्धामतुलप्रभाम् ॥₂₁॥

स समर्थो महाप्राज्ञस्तव युद्धविशारदः ।
द्वन्द्वयुद्धं महद्वातुं नमुचेरिव वासवः ॥₂₂॥

तं शीघ्रमभिगच्छ त्वं यदि युद्धमिहेच्छसि ।
स हि दुर्धर्षणो नित्यं शूरः समरकर्मणि ॥₂₃॥

श्रुत्वा हिमवतो वाक्यं क्रोधाविष्टः स दुन्दुभिः ।
जगाम तां पुरीं तस्य किष्किन्धां वालिनस्तदा ॥₂₄॥

धारयन्माहिषं रूपं तीक्ष्णशृङ्गो भयावहः ।
प्रावृषीव महामेघस्तोयपूर्णो नभस्तले ॥₂₅॥

ततस्तु द्वारमागम्य किष्किन्धाया महाबलः ।
ननर्द कम्पयन्भूमिं दुन्दुभिर्दुन्दुभिर्यथा ॥₂₆॥

समीपजान्द्रुमान्भञ्जन्वसुधां दारयन्खुरैः ।
विषाणेनोल्लेखन्दर्पात्तद्वारं द्विरदो यथा ॥₂₇॥

अन्तःपुरगतो वाली श्रुत्वा शब्दममर्षणः ।
निष्पपात सह स्त्रीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥₂₈॥

मितं व्यक्ताक्षरपदं तमुवाच स दुन्दुभिम् ।
हरीणामीश्वरो वाली सर्वेषां वनचारिणाम् ॥₂₉॥

किमर्थं नगरद्वारमिदं रुद्धा विनर्दसि ।
दुन्दुभे विदितो मेऽसि रक्ष प्राणान्महाबल ॥₃₀॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रस्य धीमतः ।
उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥₃₁॥

न त्वं स्त्रीसंनिधौ वीर वचनं वक्तुमर्हसि ।

मम युद्धं प्रयच्छ त्वं ततो ज्ञास्यामि ते बलम् ॥³²॥

अथ वा धारयिष्यामि क्रोधमद्य निशामिमाम् ।
गृह्यतामुदयः स्वैरं कामभोगेषु वानर ॥³³॥

यो हि मत्तं प्रमत्तं वा सुप्तं वा रहितं भृशम् ।
हन्यात्स भ्रूणहा लोके त्वद्विधं मदमोहितम् ॥³⁴॥

स प्रहस्याब्रवीन्मन्दं क्रोधात्तमसुरोत्तमम् ।
विसृज्य ताः स्त्रियः सर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥³⁵॥

मत्तोऽयमिति मा मंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे ।
मदोऽयं सम्प्रहारेऽस्मिन्वीरपानं समर्थ्यताम् ॥³⁶॥

तमेवमुक्त्वा सङ्क्रुद्धो मालामुत्क्षिप्य काञ्चनीम् ।
पित्रा दत्तां महेन्द्रेण युद्धाय व्यवतिष्ठत ॥³⁷॥

विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसंनिभम् ।
वाली व्यापातयां चक्रे ननर्द च महास्वनम् ॥³⁸॥

युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ।
श्रोत्राभ्यामथ रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः ।
पपात च महाकायः क्षितौ पञ्चत्वंमागतः ॥³⁹॥

तं तोलयित्वा बाहुभ्यां गतसत्त्वमचेतनम् ।
चिक्षेप वेगवान्वाली वेगेनैकेन योजनम् ॥⁴⁰॥

तस्य वेगप्रविद्धस्य वक्त्रात्क्षतजबिन्दवः ।
प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्ता मतङ्गस्याश्रमं प्रति ॥⁴¹॥

तान्दृष्ट्वा पतितांस्तत्र मुनिः शोणितविप्रुषः ।
उत्ससर्ज महाशापं क्षेत्रारं वालिनं प्रति ।
इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य बधो भवेत् ॥⁴²॥

स महर्षिं समासाद्य याचते स्म कृताञ्जलिः ॥⁴³॥

ततः शापभयाद्भीत ऋष्यमूकं महागिरिम् ।
प्रवेष्टुं नेच्छति हरिर्द्रष्टुं वापि नरेश्वर ॥⁴⁴॥

तस्याप्रवेशं ज्ञात्वाहमिदं राम महावनम् ।
विचरामि सहामात्यो विषादेन विवर्जितः ॥⁴⁵॥

एषोऽस्थिनिचयस्तस्य दुन्दुभेः सम्प्रकाशते ।
वीर्योत्सेकान्निरस्तस्य गिरिकूटनिभो महान् ॥⁴⁶॥

इमे च विपुलाः सालाः सप्त शाखावलम्बिनः ।
यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥⁴⁷॥

एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् ।
कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्यसे नृप ॥⁴⁸॥

यदि भिन्द्याद्भवान्सालानिमांस्त्रेकेषुणा ततः ।
जानीयां त्वां महाबाहो समर्थं वालिनो वधे ॥⁴⁹॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य महात्मनः ।
राघवो दुन्दुभेः कायं पादाङ्गुष्ठेन लीलया ।
तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम् ॥⁵⁰॥

क्षिप्तं दृष्ट्वा ततः कायं सुग्रीवः पुनरब्रवीत् ।
लक्ष्मणस्याग्रतो राममिदं वचनमर्थवत् ॥⁵¹॥

आर्द्रः समांसप्रत्यग्रः क्षितः कायः पुरा सखे ।
लघुः सम्प्रति निर्मासस्तृणभूतश्च राघव ।
नात्र शक्यं बलं ज्ञातुं तव वा तस्य वाधिकम् ॥⁵²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेण सुभाषितम् ।
प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम् ॥₁॥

स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः ।
सालानुद्दिश्य चिक्षेप ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः ॥₂॥

स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः ।
भित्त्वा सालान्गिरिप्रस्थे सप्त भूमिं विवेश ह ॥₃॥

प्रविष्टस्तु मुहूर्तेन रसां भित्त्वा महाजवः ।
निष्पत्य च पुनस्तूर्णं स्वतूर्णीं प्रविवेश ह ॥₄॥

तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुङ्गवः ।
रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥₅॥

स मूर्ध्ना न्यपतद्भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः ।
सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः ॥₆॥

इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः ।
रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥₇॥

सेन्द्रानपि सुरान्सर्वास्त्रं बाणैः पुरुषर्षभ ।
समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥₈॥

येन सप्त महासाला गिरिभूमिश्च दारिताः ।
बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः ॥₉॥

अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम ।

सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥₁₀॥

तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् ।
वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥₁₁॥

ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुमतं वचः ॥₁₂॥

अस्माद्रच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः ।
गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥₁₃॥

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् ।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥₁₄॥

सुग्रीवो व्यनदद्धोरं वालिनो ह्वानकारणात् ।
गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥₁₅॥

तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः ।
निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव ॥₁₆॥

ततः सुतुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् ।
गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥₁₇॥

तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः ।
जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्छितौ ॥₁₈॥

ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदीक्ष्य तु ।
अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥₁₉॥

यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वापि राघवः ।
ततो न कृतवान्बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥₂₀॥

एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना ।

अपश्यन्नाघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥₂₁॥

क्लान्तो रुधिरसिक्ताङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
वालिनाभिद्रुतः क्रोधात्प्रविवेश महावनम् ॥₂₂॥

तं प्रविष्टं वनं दृष्ट्वा वाली शापभयात्ततः ।
मुक्तो ह्यसि बभित्युक्त्वा स निवृत्तो महाबलः ॥₂₃॥

राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता ।
तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥₂₄॥

तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् ।
ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥₂₅॥

आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् ।
वैरिणा घातयित्वा च किमिदानीं ब्रूया कृतम् ॥₂₆॥

तामेव वेलां वक्तव्यं ब्रूया राघव तत्त्वतः ।
वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो ब्रजे ॥₂₇॥

तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥₂₈॥

सुग्रीव श्रूयतां तातः क्रोधश्च व्यपनीयताम् ।
कारणं येन बाणोऽयं न मया स विसर्जितः ॥₂₉॥

अलङ्कारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च ।
त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम् ॥₃₀॥

स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर ।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥₃₁॥

ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम ।

नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥₃₂॥

एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य वालिनमाहवे ।
निरस्तमिषुणैकेन वेष्टमानं महीतले ॥₃₃॥

अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर ।
येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥₃₄॥

गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् ।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥₃₅॥

ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम् ।
लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥₃₆॥

स तथा शुशुभे श्रीमौल्लतया कण्ठसक्तया ।
मालयेव बलाकानां ससन्ध्य इव तोयदः ॥₃₇॥

विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः ।
जगाम सह रामेण किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥₃₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

ऋश्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः ।
जगाम सहसुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥₁॥

समुद्यम्य महच्चापं रामः काञ्चनभूषितम् ।
शरांश्चादित्य सङ्काशान्गृहीत्वा रणसाधकान् ॥₂॥

अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः ।
सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥₃॥

पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वानरः ।
तारश्चैव महातेजा हरियूथप यूथपाः ॥₄॥

ते वीक्षमाणा वृक्षांश्च पुष्पभारावलम्बिनः ।
प्रसन्नाम्बुवहाश्चैव सरितः सागरं गमाः ॥₅॥

कन्दराणि च शैलांश्च निर्झराणि गुहास्तथा ।
शिखराणि च मुख्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः ॥₆॥

वैदूर्यविमलैः पर्णैः पद्मैश्चाकाशकुङ्कुलैः ।
शोभितान्सजलान्मार्गे तटाकांश्च व्यलोकयन् ॥₇॥

कारण्डैः सारसैर्हंसैर्वज्रैर्जलकुङ्कुटैः ।
चक्रवाकैस्तथा चान्यैः शकुनैः प्रतिनादितान् ॥₈॥

मृदुशष्पाङ्कुराहारान्निर्भयान्वनगोचरान् ।
चरतः सर्वतोऽपश्यन्स्थलीषु हरिणान्स्थितान् ॥₉॥

तटाकवैरिणश्चापि शुक्लदन्तविभूषितान् ।

घोरानेकचरान्वन्यान्दिरदान्कूलघातिनः ॥₁₀॥

वने वनचरांश्चान्यान्यखेचरांश्च विहङ्गमान् ।
पश्यन्तस्त्वरिता जग्मुः सुग्रीववशवर्तिनः ॥₁₁॥

तेषां तु गच्छतां तत्र त्वरितं रघुनन्दनः ।
द्रुमषण्डं वनं दृष्ट्वा रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥₁₂॥

एष मेघ इवाकाशे वृक्षषण्डः प्रकाशते ।
मेघसङ्घातविपुलः पर्यन्तकदलीवृतः ॥₁₃॥

किमेतज्ज्ञातुमिच्छामि सखे कौतूहलं मम ।
कौतूहलापनयनं कर्तुमिच्छाम्यहं त्वया ॥₁₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
गच्छन्नेवाचचक्षेऽथ सुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥₁₅॥

एतद्राघव विस्तीर्णमाश्रमं श्रमनाशनम् ।
उद्यानवनसम्पन्नं स्वादुमूलफलोदकम् ॥₁₆॥

अत्र सप्तजना नाम मुनयः संशितव्रताः ।
सप्तैवासन्नधःशीर्षा नियतं जलशायिनः ॥₁₇॥

सप्तरात्रकृताहारा वायुना वनवासिनः ।
दिवं वर्षशतैर्याताः सप्तभिः सकलेवराः ॥₁₈॥

तेषामेवं प्रभावेन द्रुमप्राकारसंवृतम् ।
आश्रमं सुदुरार्धमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥₁₉॥

पक्षिणो वर्जयन्त्येतत्तथान्ये वनचारिणः ।
विशन्ति मोहाद्येऽप्यत्र निवर्तन्ते न ते पुनः ॥₂₀॥

विभूषणरवाश्चात्र श्रूयन्ते सकलाक्षराः ।

तूर्यगीतस्वनाश्चापि गन्धो दिव्यश्च राघव ॥₂₁॥

त्रेताग्नयोऽपि दीप्यन्ते धूमो ह्येष प्रदृश्यते ।
वेष्टयन्निव वृक्षाग्रान्कपोताङ्गारुणो घनः ॥₂₂॥

कुरु प्रणामं धर्मात्मंस्तान्समुद्दिश्य राघवः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रयतः संयताञ्जलिः ॥₂₃॥

प्रणमन्ति हि ये तेषामृषीणां भावितात्मनाम् ।
न तेषामशुभं किञ्चिच्छरीरे राम दृश्यते ॥₂₄॥

ततो रामः सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन कृताञ्जलिः ।
समुद्दिश्य महात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत् ॥₂₅॥

अभिवाद्य च धर्मात्मा रामो भ्राता च लक्ष्मणः ।
सुग्रीवो वानराश्चैव जग्मुः संहृष्टमानसाः ॥₂₆॥

ते गत्वा दूरमध्वानं तस्मात्सप्तजनाश्रमात् ।
ददृशुस्तां दुराधर्षां किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

सर्वे ते ब्रूयितं गत्वा किष्किन्धां वालिपालिताम् ।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥₁॥

विचार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयद्भृशम् ॥₂॥

ततः स निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत् ।
परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥₃॥

अथ बालार्कसदृशो दृप्तसिंहगतिस्तदा ।
दृष्ट्वा रामं क्रियादक्षं सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥₄॥

हरिवागुरया व्याप्तं तप्तकाञ्चनतोरणाम् ।
प्राप्ताः स्म ध्वजयन्त्राढ्यां किष्किन्धां वालिनः पुरीम् ॥₅॥

प्रतिज्ञा या ब्रूया वीर कृता वालिवधे पुरा ।
सफलां तां कुरु क्षिप्रं लतां काल इवागतः ॥₆॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सुग्रीवेण स राघवः ।
तमथोवाच सुग्रीवं वचनं शत्रुसूदनः ॥₇॥

कृताभिज्ञान चिह्नस्त्वमनया गजसाह्वया ।
विपरीत इवाकाशे सूर्यो नक्षत्र मालया ॥₈॥

अद्य वालिसमुत्थं ते भयं वैरं च वानर ।
एकेनाहं प्रमोक्ष्यामि बाणमोक्षेण संयुगे ॥₉॥

मम दर्शय सुग्रीववैरिणं भ्रातृरूपिणम् ।

वाली विनिहतो यावद्वने पांसुषु वेष्टते ॥₁₀॥

यदि दृष्टिपथं प्राप्तो जीवन्स विनिवर्तते ।
ततो दोषेण मा गच्छेत्सद्यो गर्हेच्च मा भवान् ॥₁₁॥

प्रत्यक्षं सप्त ते साला मया बाणेन दारिताः ।
ततो वेत्सि बलेनाद्य बालिनं निहतं मया ॥₁₂॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे वीर कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता ।
धर्मलोभपरीतेन न च वक्ष्ये कथञ्चन ॥₁₃॥

सफलां च करिष्यामि प्रतिज्ञां जहि सम्भ्रमम् ।
प्रसूतं कलमं क्षेत्रे वर्षेणेव शतक्रतुः ॥₁₄॥

तदाह्वाननिमित्तं त्वं वालिनो हेममालिनः ।
सुग्रीव कुरु तं शब्दं निष्पतेद्येन वानरः ॥₁₅॥

जितकाशी जयश्लाघी त्वया चाधर्षितः पुरात् ।
निष्पतिष्यत्यसङ्गेन वाली स प्रियसंयुगः ॥₁₆॥

रिपूणां धर्षणं शूरा मर्षयन्ति न संयुगे ।
जानन्तस्तु स्वकं वीर्यं स्त्रीसमक्षं विशेषतः ॥₁₇॥

स तु रामवचः श्रुत्वा सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ।
ननर्द क्रूरनादेन विनिर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥₁₈॥

तस्य शब्देन वित्रस्ता गावो यान्ति हतप्रभाः ।
राजदोषपरामृष्टाः कुलस्त्रिय इवाकुलाः ॥₁₉॥

द्रवन्ति च मृगाः शीघ्रं भग्ना इव रणे हयाः ।
पतन्ति च खगा भूमौ क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ॥₂₀॥

ततः स जीमूतगणप्रणादो

नादं व्यमुञ्चत्तरया प्रतीतः ।
सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः
सरित्पतिर्वानिलचञ्चलोर्मिः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
शुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः ॥₁॥

श्रुत्वा तु तस्य निनदं सर्वभूतप्रकम्पनम् ।
मदश्चैकपदे नष्टः क्रोधश्चापतितो महान् ॥₂॥

स तु रोषपरीताङ्गो वाली सन्ध्यातपप्रभः ।
उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ॥₃॥

वाली दंष्ट्रा करालस्तु क्रोधादीप्ताग्निसंनिभः ।
भात्युत्पतितपद्माभः समृणाल इव हृदः ॥₄॥

शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः ।
वेगेन चरणन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥₅॥

तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहादर्शितसौहृदा ।
उवाच त्रस्तसम्भ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥₆॥

साधु क्रोधमिमं वीर नदी वेगमिवागतम् ।
शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तमिव स्रजम् ॥₇॥

सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते ।
श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यसे ॥₈॥

पूर्वमापतितः क्रोधात्स बामाह्वयते युधि ।
निष्पत्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशो गतः ॥₉॥

बया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः ।

इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे ॥₁₀॥

दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः ।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥₁₁॥

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम् ।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥₁₂॥

प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः ।
अपरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सह नैष्यति ॥₁₃॥

पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः ।
अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्यामि त्वा हितं वचः ॥₁₄॥

तव भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्कशः ।
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥₁₅॥

निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः ।
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् ॥₁₆॥

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशो निरतः पितुः ।
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान् ॥₁₇॥

तत्क्षमं न विरोधस्ते सह तेन महात्मना ।
दुर्जयेनाप्रमेयेन रामेण रणकर्मसु ॥₁₈॥

शूर वक्ष्यामि ते किञ्चिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ।
श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् ॥₁₉॥

यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ।
विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्बलीयसा ॥₂₀॥

अहं हि ते क्षमं मन्ये तव रामेण सौहृदम् ।

सुग्रीवेण च सम्प्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः ॥₂₁॥

लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः ।
तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते ॥₂₂॥

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् ।
याच्यमानः प्रयत्नेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् ।
वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥₁॥

गर्जतोऽस्य च संरम्भं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः ।
मर्षयिष्याम्यहं केन कारणेन वरानने ॥₂॥

अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥₃॥

सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे ।
सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जतः ॥₄॥

न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥₅॥

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि ।
सौहृदं दर्शितं तारे मयि भक्तिः कृता ह्वया ॥₆॥

प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि सम्भ्रमम् ।
दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्विमोक्ष्यते ॥₇॥

शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जयेन च ।
अहं जिह्वा निवर्तिष्ये तमलं भ्रातरं रणे ॥₈॥

तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी ।
चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥₉॥

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रवद्विजयैषिणी ।

अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥₁₀॥

प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् ।
नगरान्निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥₁₁॥

स निःश्वस्य महावेगो वाली परमरोषणः ।
सर्वतश्चारयन्दृष्टिं शत्रुदर्शनकाङ्क्षया ॥₁₂॥

स ददर्श ततः श्रीमान्सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् ।
सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥₁₃॥

स तं दृष्ट्वा महावीर्यं सुग्रीवं पर्यवस्थितम् ।
गाढं परिदधे वासो वाली परमरोषणः ॥₁₄॥

स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् ।
सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥₁₅॥

श्लिष्टमुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः ।
सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम् ॥₁₆॥

तं वाली क्रोधताम्राक्षः सुग्रीवं रणपण्डितम् ।
आपतन्तं महावेगमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₇॥

एष मुष्टिर्मया बद्धो गाढः सुनिहिताङ्गुलिः ।
मया वेगविमुक्तस्ते प्राणानादाय यास्यति ॥₁₈॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः क्रुद्धो वालिनमब्रवीत् ।
तवैव च हरन्प्राणान्मुष्टिः पततु मूर्धनि ॥₁₉॥

ताडितस्तेन सङ्क्रुद्धः समभिक्रम्य वेगतः ।
अभवच्छोणितोद्गारी सोत्पीड इव पर्वतः ॥₂₀॥

सुग्रीवेण तु निःसङ्गं सालमुत्पाट्य तेजसा ।

गात्रेष्वभिहतो वाली वज्रेणेव महागिरिः ॥₂₁॥

स तु वाली प्रचरितः सालताडनविह्वलः ।
गुरुभारसमाक्रान्ता सागरे नौरिवाभवत् ॥₂₂॥

तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगिनौ ।
प्रवृद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥₂₃॥

वालिना भग्नदर्पस्तु सुग्रीवो मन्दविक्रमः ।
वालिनं प्रति सामर्षो दर्शयामास लाघवम् ॥₂₄॥

ततो धनुषि सन्धाय शरमाशीविषोपमम् ।
राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥₂₅॥

वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥₂₆॥

अथोक्षितः शोणिततोयविस्रवैः
सुपुष्पिताशोक इवानिलोद्धतः ।
विचेतनो वासवसूनुराहवे
प्रभ्रंशितेन्द्रध्वजवत्क्षितिं गतः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

ततः शरेणाभिहतो रामेण रणकर्कशः ।
पपात सहसा वाली निकृत्त इव पादपः ॥₁॥

स भूमौ न्यस्तसर्वाङ्गस्तप्तकाञ्चनभूषणः ।
अपतद्देवराजस्य मुक्तरश्मिरिव ध्वजः ॥₂॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ हर्यृषाणां गणेश्वरे ।
नष्टचन्द्रमिव व्योम न व्यराजत भूतलम् ॥₃॥

भूमौ निपतितस्यापि तस्य देहं महात्मनः ।
न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः ॥₄॥

शक्रदत्ता वरा माला काञ्चनी रत्नभूषिता ।
दधार हरिमुख्यस्य प्राणांस्तेजः श्रियं च सा ॥₅॥

स तया मालया वीरो हैमया हरियूथपः ।
सन्ध्यानुगतपर्यन्तः पयोधर इवाभवत् ॥₆॥

तस्य माला च देहश्च मर्मघाती च यः शरः ।
त्रिधेव रचिता लक्ष्मीः पतितस्यापि शोभते ॥₇॥

तदस्त्रं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गप्रभावनम् ।
रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमां गतिम् ॥₈॥

तं तथा पतितं सङ्क्षो गतार्चिषमिवानलम् ।
ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकात्परिच्युतम् ॥₉॥

आदित्यमिव कालेन युगान्ते भुवि पातितम् ।

महेन्द्रमिव दुर्धर्षं महेन्द्रमिव दुःसहम् ॥₁₀॥

महेन्द्रपुत्रं पतितं वालिनं हेममालिनम् ।
सिंहोरस्कं महाबाहुं दीप्तास्यं हरिलोचनम् ।
लक्ष्मणानुगतो रामो ददर्शोपसर्प च ॥₁₁॥

स दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं परुषं धर्मसंहितम् ॥₁₂॥

पराङ्मुखवधं कृत्वा को नु प्राप्तस्त्वया गुणः ।
यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः ॥₁₃॥

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।
रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः ॥₁₄॥

सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः ।
इति ते सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि ॥₁₅॥

तान्गुणान्सम्प्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव ।
तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः ॥₁₆॥

न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्नुमर्हसि ।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥₁₇॥

न त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम् ।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥₁₈॥

सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् ।
नाहं त्वामभिजानानि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥₁₉॥

विषये वा पुरे वा ते यदा नापकरोम्यहम् ।
न च त्वां प्रतिजानेऽहं कस्माच्च हंस्यकिञ्चिषम् ॥₂₀॥

फलमूलाशनं नित्यं वानरं वनगोचरम् ।
मामिहाप्रतियुध्यन्तमन्येन च समागतम् ॥²¹॥

त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः ।
लिङ्गमप्यस्ति ते राजन्दृश्यते धर्मसंहितम् ॥²²॥

कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान्नष्टसंशयः ।
धर्मलिङ्गं प्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत् ॥²³॥

राम राजकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः ।
अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसि ॥²⁴॥

साम दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृतिपराक्रमौ ।
पार्थिवानां गुणा राजन्दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥²⁵॥

वयं वनचरा राम मृगा मूलफलाशनाः ।
एषा प्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वं नरेश्वरः ॥²⁶॥

भूमिर्हिरण्यं रूप्यं च निग्रहे कारणानि च ।
तत्र कस्ते वने लोभो मदीयेषु फलेषु वा ॥²⁷॥

नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि ।
राजवृत्तिरसङ्कीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः ॥²⁸॥

त्वं तु कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः ।
राजवृत्तेश्च सङ्कीर्णः शरासनपरायणः ॥²⁹॥

न तेऽस्त्यपचितिर्धर्मे नार्थे बुद्धिरवस्थिता ।
इन्द्रियैः कामवृत्तः सन्कृष्यसे मनुजेश्वर ॥³⁰॥

हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् ।
किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥³¹॥

राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः ।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥₃₂॥

अधार्यं चर्म मे सद्ग्री रोमाण्यस्थि च वर्जितम् ।
अभक्ष्याणि च मांसानि त्वद्विधैर्धर्मचारिभिः ॥₃₃॥

पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव ।
शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः ॥₃₄॥

चर्म चास्थि च मे राजन्न स्पृशन्ति मनीषिणः ।
अभक्ष्याणि च मांसानि सोऽहं पञ्चनखो हतः ॥₃₅॥

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा ।
प्रमदा शीलसम्पन्ना धूर्तेन पतिता यथा ॥₃₆॥

शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्या प्रश्रितमानसः ।
कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना ॥₃₇॥

छिन्नचारित्र्यकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना ।
त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना ॥₃₈॥

दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज ।
अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥₃₉॥

त्वयादृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः ।
प्रसूतः पन्नगेनेव नरः पानवशं गतः ॥₄₀॥

सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया ।
कण्ठे बद्धा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे ॥₄₁॥

न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् ।
जानयेयं तवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥₄₂॥

युक्तं यत्प्रपुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि ।
अयुक्तं यदधर्मेण ब्रयाहं निहतो रणे ॥⁴³॥

काममेवंविधं लोकः कालेन विनियुज्यते ।
क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम् ॥⁴⁴॥

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः
शराभिघाताद्वधितो महात्मा ।
समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशम्
तूष्णीं बभूवामरराजसूनुः ॥⁴⁵॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥अष्टादशः सर्गः॥

इत्युक्तः प्रश्रितं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
परुषं वालिना रामो निहतेन विचेतसा ॥₁॥

तं निष्प्रभमिवादित्यं मुक्ततोयमिवाम्बुदम् ।
उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठमुपशान्तमिवानलम् ॥₂॥

धर्मार्थगुणसम्पन्नं हरीश्वरमनुत्तमम् ।
अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥₃॥

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् ।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥₄॥

अपृष्ट्वा बुद्धिसम्पन्नान्वृद्धानाचार्यसम्मतान् ।
सौम्य वानरचापल्याच्च मां वक्तुमिहेच्छसि ॥₅॥

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना ।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहावपि ॥₆॥

तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवागृजुः ।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥₇॥

नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् ।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥₈॥

तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवः ।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः ॥₉॥

तस्मिन्वृपतिशार्दूल भरते धर्मवत्सले ।

पालयत्यखिलां भूमिं कश्चरेद्धर्मनिग्रहम् ॥₁₀॥

ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः ।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृहीमो यथाविधि ॥₁₁॥

त्वं तु सङ्क्षिप्तधर्मा च कर्मणा च विगर्हितः ।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥₁₂॥

ज्येष्ठो भ्राता पिता चैव यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः ॥₁₃॥

यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः ।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चेदत्र कारणम् ॥₁₄॥

सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥₁₅॥

चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः ।
जात्यन्ध इव जात्यन्धैर्मन्त्रयन्द्रक्ष्यसे नु किम् ॥₁₆॥

अहं तु व्यक्ततामस्य वचनस्य ब्रवीमि ते ।
न हि मां केवलं रोषाच्च विगर्हितुमर्हसि ॥₁₇॥

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः ।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥₁₈॥

अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥₁₉॥

तद्वतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर ।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतिपादितः ॥₂₀॥

न हि धर्मविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः ।

दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥₂₁॥

औरसीं भगिनीं वापि भार्या वाप्यनुजस्य यः ।
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः ॥₂₂॥

भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः ।
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम् ॥₂₃॥

गुरुधर्मव्यतिक्रान्तं प्राज्ञो धर्मेण पालयन् ।
भरतः कामवृत्तानां निग्रहे पर्यवस्थितः ॥₂₄॥

वयं तु भरतादेशं विधिं कृत्वा हरीश्वर ।
त्वं द्विधान्भिन्नमर्यादान्नियन्तुं पर्यवस्थिताः ॥₂₅॥

सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा ।
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसि रतः स मे ॥₂₆॥

प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ ।
प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥₂₇॥

तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंहितैः ।
शासनं तव यद्युक्तं तद्भवाननुमन्यताम् ॥₂₈॥

सर्वथा धर्म इत्येव द्रष्टव्यस्तव निग्रहः ।
वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता ॥₂₉॥

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥₃₀॥

आर्येण मम माग्धात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् ।
श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥₃₁॥

अन्यैरपि कृतं पापं प्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ।

प्रायश्चित्तं च कुर्वन्ति तेन तच्छाम्यते रजः ॥³²॥

तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः ।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥³³॥

वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ।
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून्मृगान् ।
प्रधावितान्वा वित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्टितान् ॥³⁴॥

प्रमत्तानप्रमत्तान्वा नरा मांसार्थिनो भृशम् ।
विध्यन्ति विमुखांश्चापि न च दोषोऽत्र विद्यते ॥³⁵॥

यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः ।
तस्मात्त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानर ।
अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि ॥³⁶॥

दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च ।
राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥³⁷॥

तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत् ।
देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥³⁸॥

त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः ।
प्रदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम् ॥³⁹॥

एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् ।
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः ॥⁴⁰॥

यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तदेवं नात्र संशयः ।
प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयात् ॥⁴¹॥

यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ।
तत्रापि खलु मे दोषं कर्तुं नार्हसि राघव ॥⁴²॥

ब्रं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ।
कार्यकारणसिद्धौ ते प्रसन्ना बुद्धिरव्यया ॥₄₃॥

मामप्यवगतं धर्माद्वतिक्रान्तपुरस्कृतम् ।
धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालय ॥₄₄॥

बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः ।
उवाच रामं सम्प्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥₄₅॥

न ब्रह्मात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् ।
यथा पुत्रं गुणश्रेष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥₄₆॥

स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः ।
तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥₄₇॥

सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् ।
ब्रं हि शास्ता च गोप्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः ॥₄₈॥

या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या ।
सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि ॥₄₉॥

मदोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम् ।
सुग्रीवो नावमन्येत तथावस्थातुमर्हसि ॥₅₀॥

ब्रया ह्यनुगृहीतेन शक्यं राज्यमुपासितुम् ।
ब्रह्मशे वर्तमानेन तव चित्तानुवर्तिना ॥₅₁॥

स तमाश्वासयद्रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम् ॥₅₂॥

न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम ।
वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥₅₃॥

दण्ड्ये यः पातयेद्दण्डं दण्ड्यो यश्चापि दण्ड्यते ।
कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥₅₄॥

तद्भवान्दण्डसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः ।
गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्या धर्मदृष्टेन वर्त्मना ॥⁵⁵॥

स तस्य वाक्यं मधुरं महात्मनः
समाहितं धर्मपथानुवर्तिनः ।
निश्म्य रामस्य रणावमर्दिनो
वचः सुयुक्तं निजगाद वानरः ॥⁵⁶॥

शराभितप्तेन विचेतसा मया
प्रदूषितस्त्वं यदजानता प्रभो ।
इदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम
प्रसादितस्त्वं क्षम मे महीश्वर ॥⁵⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

स वानरमहाराजः शयानः शरविक्षतः ।
प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥₁॥

अश्रमभिः परिभिन्नाङ्गः पादपैराहतो भृशम् ।
रामबाणेन चाक्रान्तो जीवितान्ते मुमोह सः ॥₂॥

तं भार्याबाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे ।
हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम् ॥₃॥

सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम् ।
निष्पपात भृशं त्रस्ता विविधाद्भिरिगह्वरात् ॥₄॥

ये बङ्गदपरीवारा वानरा हि महाबलाः ।
ते सकार्मुकमालोक्य रामं त्रस्ताः प्रदुद्रुवुः ॥₅॥

सा ददर्श ततस्त्रस्तान्हरीनापततो द्रुतम् ।
यूथादिव परिभ्रष्टान्मृगान्निहतयूथपान् ॥₆॥

तानुवाच समासाद्य दुःखितान्दुःखिता सती ।
राम वित्रासितान्सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥₇॥

वानरा राजसिंहस्य यस्य यूयं पुरःसराः ।
तं विहाय सुवित्रस्ताः कस्माद्ववत दुर्गताः ॥₈॥

राज्यहेतोः स चेद्भ्राता भ्राता रौद्रेण पातितः ।
रामेण प्रसृतैर्दूरान्मार्गणैर्दूर पातिभिः ॥₉॥

कपिपत्न्या वचः श्रुत्वा कपयः कामरूपिणः ।

प्राप्तकालमविश्लिष्टमूर्चुर्वचनमङ्गनाम् ॥₁₀॥

जीव पुत्रे निवर्तस्य पुत्रं रक्षस्व चान्दगम् ।
अन्तको राम रूपेण हत्वा नयति वालिनम् ॥₁₁॥

क्षितान्वृक्षान्समाविध्य विपुलाश्च शिलास्तथा ।
वाली वज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेव निपातितः ॥₁₂॥

अभिद्रुतमिदं सर्वं विद्रुतं प्रसृतं बलम् ।
अस्मिन्लवगशार्दूले हते शक्रसमप्रभे ॥₁₃॥

रक्ष्यतां नगरं शूरैरङ्गदश्चाभिषिच्यताम् ।
पदस्थं वालिनः पुत्रं भजिष्यन्ति प्लवङ्गमाः ॥₁₄॥

अथ वा रुचिरं स्थानमिह ते रुचिरानने ।
आविशन्ति हि दुर्गाणि क्षिप्रमद्यैव वानराः ॥₁₅॥

अभार्याः सह भार्याश्च सन्त्यत्र वनचारिणः ।
लुब्धेभ्यो विप्रयुक्तेभ्यः स्वेभ्यो नस्तुमुलं भयम् ॥₁₆॥

अल्पान्तरगतानां तु श्रुत्वा वचनमङ्गना ।
आत्मनः प्रतिरूपं सा बभाषे चारुहासिनी ॥₁₇॥

पुत्रेण मम किं कार्यं किं राज्येन किमात्मना ।
कपिसिंहे महाभागे तस्मिन्भर्तारि नश्यति ॥₁₈॥

पादमूलं गमिष्यामि तस्यैवाहं महात्मनः ।
योऽसौ रामप्रयुक्तेन शरेण विनिपातितः ॥₁₉॥

एवमुक्त्वा प्रदुद्राव रुदती शोककर्षिता ।
शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती ॥₂₀॥

आव्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि ।

हन्तारं दानवेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥₂₁॥

क्षेत्रारं पर्वतेन्द्राणां वज्राणामिव वासवम् ।
महावातसमाविष्टं महामेघौघनिःस्वनम् ॥₂₂॥

शक्रतुल्यपराक्रान्तं वृष्ट्वोपरतं घनम् ।
नर्दन्तं नर्दतां भीमं शूरं शूरेण पातितम् ॥₂₃॥

शार्दूलेनामिषस्यार्थे मृगराजं यथा हतम् ।
अर्चितं सर्वलोकस्य सपताकं सवेदिकम् ॥₂₄॥

नागहेतोः सुपर्णेन चैत्यमुन्मथितं यथा ।
अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम् ॥₂₅॥

रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैवानुजं शुभा ।
तानतीत्य समासाद्य भर्तारं निहतं रणे ॥₂₆॥

समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह ।
सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति क्रोशती ॥₂₇॥

रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा सन्दितं मृत्युदामभिः ।
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव ॥₂₈॥

विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमागतम् ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

रामचापविसृष्टेन शरेणान्तकरेण तम् ।
दृष्ट्वा विनिहतं भूमौ तारा ताराधिपानना ॥₁॥

सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वज्जत भामिनी ।
इषुणाभिहतं दृष्ट्वा वालिनं कुञ्जरोपमम् ॥₂॥

वानरेन्द्रं महेन्द्राभं शोकसन्तप्तमानसा ।
तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयदातुरा ॥₃॥

रणे दारुणविक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर ।
किं दीनामपुरोभागामद्य त्वं नाभिभाषसे ॥₄॥

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम् ।
नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः ॥₅॥

अतीव खलु ते कान्ता वसुधा वसुधाधिप ।
गतासुरपि यां गात्रैर्मा विहाय निषेवसे ॥₆॥

व्यक्तमन्या त्वया वीर धर्मतः सम्प्रवर्तता ।
किष्किन्धेव पुरी रम्या स्वर्गमार्गे विनिर्मिता ॥₇॥

यान्यस्माभिस्त्वया सार्धं वनेषु मधुगन्धिषु ।
विहृतानि त्वया काले तेषामुपरमः कृतः ॥₈॥

निरानन्दा निराशाहं निमग्ना शोकसागरे ।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने महायूथपयूथपे ॥₉॥

हृदयं सुस्थिरं मह्यं दृष्ट्वा विनिहतं भुवि ।

यन्न शोकाभिसन्तप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा ॥₁₀॥

सुग्रीवस्य त्वया भार्या हता स च विवासितः ।
यत्तत्तस्य त्वया व्युष्टिः प्राप्तेयं प्लवगाधिप ॥₁₁॥

निःश्रेयसपरा मोहान्त्वया चाहं विगर्हिता ।
यैषाब्रुवं हितं वाक्यं वानरेन्द्रहितैषिणी ॥₁₂॥

कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव ।
बलादेनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्यावशो वशम् ॥₁₃॥

वैधव्यं शोकसन्तापं कृपणं कृपणा सती ।
अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥₁₄॥

लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः ।
वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्छिते ॥₁₅॥

कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् ।
दुर्लभं दर्शनं त्वस्य तव वत्स भविष्यति ॥₁₆॥

समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व च ।
मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥₁₇॥

रामेण हि महत्कर्म कृतं त्वामभिनिघ्नता ।
आनृण्यं तु गतं तस्य सुग्रीवस्य प्रतिश्रवे ॥₁₈॥

सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे ।
भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव ॥₁₉॥

किं मामेवं विलपतीं प्रेणा त्वं नाभिभाषसे ।
इमाः पश्य वरा बह्वीर्भार्यास्ते वानरेश्वर ॥₂₀॥

तस्या विलपितं श्रुत्वा वानर्यः सर्वतश्च ताः ।

परिगृह्याङ्गदं दीनं दुःखार्ताः परिचुक्रुशुः ॥₂₁॥

किमङ्गदं साङ्गद वीर बाहो
विहाय यास्यद्य चिरप्रवासम् ।
न युक्तमेवं गुणसंनिवृष्टम्
विहाय पुत्रं प्रियपुत्र गन्तुम् ॥₂₂॥

किमप्रियं ते प्रियचारुवेष
कृतं मया नाथ सुतेन वा ते ।
सहायिनीमद्य विहाय वीर
यमक्षयं गच्छसि दुर्विनीतम् ॥₂₃॥

यद्यप्रियं किञ्चिदसम्प्रधार्य
कृतं मया स्यात्तव दीर्घबाहो ।
क्षमस्व मे तद्धरिवंश नाथ
ब्रजामि मूर्ध्ना तव वीर पादौ ॥₂₄॥

तथा तु तारा करुणं रुदन्ती
भर्तुः समीपे सह वानरीभिः ।
व्यवस्यत प्रायमनिन्द्यवर्णा
उपोपवेष्टुं भुवि यत्र वाली ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात् ।
शनैराश्वासयामास हनूमान्हरियूथपः ॥₁॥

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मफलहेतुकम् ।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम् ॥₂॥

शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे ।
कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन्बुद्धदोषमे ॥₃॥

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया ।
आयत्या च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय ॥₄॥

जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम् ।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डिते नैहलौकिकम् ॥₅॥

यस्मिन्हरिसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
वर्तयन्ति कृतांशानि सोऽयं दिष्टान्तमागतः ॥₆॥

यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः ।
गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि ॥₇॥

सर्वे च हरिशार्दूल पुत्रश्चायं तवाङ्गदः ।
हर्यृष्कपतिराज्यं च त्वत्सनाथमनिन्दिते ॥₈॥

ताविमौ शोकसन्तप्तौ शनैः प्रेरय भामिनि ।
त्वया परिगृहीतोऽयमङ्गदः शास्तु मेदिनीम् ॥₉॥

सन्ततिश्च यथादृष्टा कृत्यं यच्चापि साम्प्रतम् ।

राज्ञस्तत्क्रियतां सर्वमेष कालस्य निश्चयः ॥₁₀॥

संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम् ।
सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि ॥₁₁॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता ।
अब्रवीदुत्तरं तारा हनूमन्तमवस्थितम् ॥₁₂॥

अङ्गद प्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम् ।
हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम् ॥₁₃॥

न चाहं हरिराजस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा ।
पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः ॥₁₄॥

न ह्येषा बुद्धिरास्थेया हनूमन्नङ्गदं प्रति ।
पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम ॥₁₅॥

न हि मम हरिराजसंश्रयात्
क्षमतरमस्ति परत्र चेह वा ।
अभिमुखहतवीरसेवितम्
शयनमिदं मम सेवितुं क्षमम् ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् ।
आदावेव तु सुग्रीवं ददर्श बाल्मजाग्रतः ॥₁॥

तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ।
आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥₂॥

सुग्रीवदोषेण न मां गन्तुमर्हसि किब्विषात् ।
कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात् ॥₃॥

युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः ।
सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥₄॥

प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् ।
मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥₅॥

जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलामिमाम् ।
प्रजहाम्येष वै तूर्णं महद्भागहितं यशः ॥₆॥

अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः ।
यद्यप्यसुकरं राजन्कर्तुमेव तदर्हसि ॥₇॥

सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् ।
बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥₈॥

मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् ।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥₉॥

त्वमप्यस्य हि दाता च परित्राता च सर्वतः ।

भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥₁₀॥

एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः ।
रक्षसां तु वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥₁₁॥

अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान्रणे ।
करिष्यत्येष तारेयस्तरस्त्री तरुणोऽङ्गदः ॥₁₂॥

सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥₁₃॥

यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम् ।
न हि तारामतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते ॥₁₄॥

राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया ।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्याद्विमानितः ॥₁₅॥

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीवकाञ्चनीम् ।
उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां सम्प्रजह्यान्मृते मयि ॥₁₆॥

इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात् ।
हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोदुराट् ॥₁₇॥

तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्मुक्तमतन्द्रितः ।
जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥₁₈॥

तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा वाली दृष्ट्वात्मजं स्थितम् ।
संसिद्धः प्रेत्य भावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत् ॥₁₉॥

देशकालौ भजस्त्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥₂₀॥

यथा हि त्वं महाबाहो लालितः सततं मया ।

न तथा वर्तमानं त्वां सुग्रीवो बहु मंस्यते ॥₂₁॥

मास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिरिन्दम ।
भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥₂₂॥

न चातिप्रणयः कार्यः कर्तव्योऽप्रणयश्च ते ।
उभयं हि महादोषं तस्मादन्तरदग्भव ॥₂₃॥

इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसम्पीडितो भृशम् ।
विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥₂₄॥

हते तु वीरे प्लवगाधिपे तदा
प्लवङ्गमास्तत्र न शर्म लेभिरे ।
वनेचराः सिंहयुते महावने
यथा हि गावो निहते गवां पतौ ॥₂₅॥

ततस्तु तारा व्यसनार्णव प्लुता
मृतस्या भर्तुर्वदनं समीक्ष्य सा ।
जगाम भूमिं परिरभ्य वालिनम्
महाद्रुमं छिन्नमिवाश्रिता लता ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम् ।
पतिं लोकाच्च्युतं तारा मृतं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

शेषे त्वं विषमे दुःखमकृत्वा वचनं मम ।
उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले ॥₂॥

मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव ।
शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रतिभाषसे ॥₃॥

सुग्रीव एव विक्रान्तो वीर साहसिक प्रिय ।
ऋक्षवानरमुख्यास्त्वां बलिनं पर्युपासते ॥₄॥

एषां विलपितं कृच्छ्रमङ्गदस्य च शोचतः ।
मम चेमां गिरं श्रुत्वा किं त्वं न प्रतिबुध्यसे ॥₅॥

इदं तच्छूरशयनं यत्र शेषे हतो युधि ।
शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा ॥₆॥

विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय ।
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद ॥₇॥

शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता ।
शूरभार्या हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम् ॥₈॥

अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः ।
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे ॥₉॥

अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् ।

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा गतम् ॥₁₀॥

सुहृच्चैव हि भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः ।
आहवे च पराक्रान्तः शूरः पञ्चत्वमागतः ॥₁₁॥

पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी ।
धनधान्यैः सुपूर्णापि विधवेत्युच्यते बुधैः ॥₁₂॥

स्वगात्रप्रभवे वीर शेषे रुधिरमण्डले ।
कृमिरागपरिस्तोमे त्वमेवं शयने यथा ॥₁₃॥

रेणुशोणितसंवीतं गात्रं तव समन्ततः ।
परिरब्धं न शक्नोमि भुजाभ्यां प्लवगर्षभ ॥₁₄॥

कृतकृत्योऽद्य सुग्रीवो वैरेऽस्मिन्नतिदारुणे ।
यस्य रामविमुक्तेन हतमेकेषुणा भयम् ॥₁₅॥

शरेण हृदि लग्नेन गात्रसंस्पर्शने तव ।
वार्यामि त्वां निरीक्षन्ती त्वयि पञ्चत्वमागते ॥₁₆॥

उद्धवर्ह शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा ।
गिरिगह्वरसंलीनं दीप्तमाशीविषं यथा ॥₁₇॥

तस्य निष्कृष्यमाणस्य बाणस्य च बभौ द्युतिः ।
अस्तमस्तकसंरुद्धो रश्मिर्दिनकरादिव ॥₁₈॥

पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ।
ताम्रगैरिकसम्पृक्ता धारा इव धराधरात् ॥₁₉॥

अवकीर्णं विमार्जन्ती भर्तारं रणरेणुना ।
अस्त्रैर्नयनजैः शूरं सिषेचास्त्रसमाहतम् ॥₂₀॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् ।

उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना ॥₂₁॥

अवस्थां पश्चिमां पश्य पितुः पुत्र सुदारुणाम् ।
सम्प्रसक्तस्य वैरस्य गतोऽन्तः पापकर्मणा ॥₂₂॥

बालसूर्योदयतनुं प्रयान्तं यमसादनम् ।
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम् ॥₂₃॥

एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः ।
भुजाभ्यां पीनवृताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन् ॥₂₄॥

अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथापुरा ।
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे ॥₂₅॥

अहं पुत्रसहाया त्वामुपासे गतचेतनम् ।
सिंहेन निहतं सद्यो गौः सवत्सेव गोवृषम् ॥₂₆॥

इष्ट्वा सङ्ग्रामयज्ञेन नानाप्रहरणाम्भसा ।
अस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना ॥₂₇॥

या दत्ता देवराजेन तव तुष्टेन संयुगे ।
शातकुम्भमयीं मालां तां ते पश्यामि नेह किम् ॥₂₈॥

राजश्रीर्न जहाति त्वां गतासुमपि मानद ।
सूर्यस्यावर्तमानस्य शैलराजमिव प्रभा ॥₂₉॥

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतम्
न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव ।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे
सह त्वया श्रीर्विजहाति मामिह ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

गतासुं वालिनं दृष्ट्वा राघवस्तदनन्तरम् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं शत्रुतापनः ॥₁॥

न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः ।
यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥₂॥

लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृतं वो बाष्पमोक्षणम् ।
न कालादुत्तरं किञ्चित्कर्म शक्यमुपासितुम् ॥₃॥

नियतः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ॥₄॥

न कर्ता कस्यचित्कश्चिन्नियोगे चापि नेश्वरः ।
स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम् ॥₅॥

न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते ।
स्वभावं वा समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते ॥₆॥

न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः ।
न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः ॥₇॥

किं तु काल परीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता ।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥₈॥

इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम् ।
धर्मार्थकामसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वर ॥₉॥

स्वधर्मस्य च संयोगाञ्जितस्तेन महात्मना ।

स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता ॥₁₀॥

एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः ।
तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥₁₁॥

वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥₁₂॥

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् ।
ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥₁₃॥

समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात् ॥₁₄॥

समाश्वासय चैनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम् ।
मा भूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम् ॥₁₅॥

अङ्गदस्त्वानयेन्मात्यं वस्त्राणि विविधानि च ।
घृतं तैलमथो गन्धान्यच्चात्र समनन्तरम् ॥₁₆॥

त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ सम्भ्रमात् ।
त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन्काले विशेषतः ॥₁₇॥

सञ्जीभवन्तु प्लवगाः शिबिकावाहनोचिताः ।
समर्था बलिनश्चैव निर्हरिष्यन्ति वालिनम् ॥₁₈॥

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सुमित्रानन्दवर्धनः ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थो लक्ष्मणः परवीरहा ॥₁₉॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः सम्भ्रान्तमानसः ।
प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः ॥₂₀॥

आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापयत्पुनः ।

वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्धहनोचितैः ॥₂₁॥

ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा ।
आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु ॥₂₂॥

आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम् ।
अलङ्कारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥₂₃॥

आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुरूपतः ॥₂₄॥

विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च ।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका तदनन्तरम् ॥₂₅॥

राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः ।
तादृशं वालिनः क्षिप्रं प्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम् ॥₂₆॥

अङ्गदमप्रिगृह्याशु तारप्रभृतयस्तथा ।
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः ॥₂₇॥

ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतयूथपाः ।
अनुजग्मुर्हि भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः ॥₂₈॥

तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे ।
वनानि गिरयः सर्वे विक्रोशन्तीव सर्वतः ॥₂₉॥

पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते ।
चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः ॥₃₀॥

अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वहनोचिताः ।
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकसमन्विताः ॥₃₁॥

ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् ।

आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता ॥₃₂॥

जनं च पश्यसीमं त्वं कस्माच्छोकाभिपीडितम् ।
प्रहृष्टमिव ते वक्तुं गतासोरपि मानद ।
अस्तार्कसमवर्णं च लक्ष्यते जीवतो यथा ॥₃₃॥

एष त्वां रामरूपेण कालः कर्षति वानर ।
येन स्म विधवाः सर्वाः कृता एकेषुणा रणे ॥₃₄॥

इमास्तास्तव राजेन्द्रवानर्यो वल्लभाः सदा ।
पादैर्विकृष्टमध्वानमागताः किं न बुध्यसे ॥₃₅॥

तवेष्टा ननु नामैता भार्याश्चन्द्रनिभाननाः ।
इदानीं नेक्षसे कस्मात्सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥₃₆॥

एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव ।
पुरवासिजनश्चायं परिवार्यासतेऽनघ ॥₃₇॥

विसर्जयैनान्प्रवलान्यथोचितमरिन्दम ।
ततः क्रीडामहे सर्वा वनेषु मदिरोत्कटाः ॥₃₈॥

एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरिप्लुताम् ।
उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्षिताः ॥₃₉॥

सुग्रीवेण ततः सार्धमङ्गदः पितरं रुदन् ।
चितामारोपयामास शोकेनाभिहतेन्द्रियः ॥₄₀॥

ततोऽग्निं विधिवदत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह ।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥₄₁॥

संस्कृत्य वालिनं ते तु विधिपूर्वं प्लवङ्गमाः ।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शीतजलां शुभाम् ॥₄₂॥

ततस्ते सहितास्तत्र अङ्गदं स्थाप्य चाग्रतः ।
सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वालिने जलम् ॥⁴³॥

सुग्रीवेणैव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः ।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥⁴⁴॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

ततः शोकाभिसन्तप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवासनम् ।
शाखामृगमहामात्राः परिवार्योपतस्थिरे ॥₁॥

अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः ॥₂॥

ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥₃॥

भवत्प्रसादात्सुग्रीवः पितृपैतामहं महत् ।
वानराणां सुदुष्प्रापं प्राप्तो राज्यमिदं प्रभो ॥₄॥

भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् ।
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृञ्जनः ॥₅॥

स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि ।
अर्चयिष्यति रत्नैश्च माल्यैश्च त्वां विशेषतः ॥₆॥

इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुमितोऽर्हसि ।
कुरुष्व स्वामि सम्बन्धं वानरान्सम्प्रहर्षयन् ॥₇॥

एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा ।
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥₈॥

चतुर्दशसमाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन्पितुर्निर्देशपालकः ॥₉॥

सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः ।

प्रविष्टो विधिवद्दीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम् ॥₁₀॥

एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ।
इममप्यङ्गदं वीर यौवराज्येऽभिषेचय ॥₁₁॥

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः ॥₁₂॥

नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् ।
अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ॥₁₃॥

इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ।
प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ॥₁₄॥

कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत ।
एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ।
अभिषिञ्चस्व राज्ये च सुहृदः सम्प्रहर्षय ॥₁₅॥

इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥₁₆॥

तं वानरसहस्राणि प्रविष्टं वानरेश्वरम् ।
अभिवाद्य प्रहृष्टानि सर्वतः पर्यवारयन् ॥₁₇॥

ततः प्रकृतयः सर्वा दृष्ट्वा हरिगणेश्वरम् ।
प्रणम्य मूर्ध्ना पतिता वसुधायां समाहिताः ॥₁₈॥

सुग्रीवः प्रकृतीः सर्वाः सम्भाष्योत्थाप्य वीर्यवान् ।
भ्रातुरन्तःपुरं सौम्यं प्रविवेश महाबलः ॥₁₉॥

प्रविश्य त्वभिनिष्क्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः ॥₂₀॥

तस्य पाण्डुरमाजहुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् ।
शुक्ले च बालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे ॥₂₁॥

तथा सर्वाणि रत्नानि सर्वबीजौषधानि च ।
सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च ॥₂₂॥

शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् ।
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ॥₂₃॥

चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून् ।
अक्षतं जातरूपं च प्रियङ्गुमधुसर्पिषी ॥₂₄॥

दधिचर्म च वैयाघ्रं वाराही चाप्युपानहौ ।
समालम्भनमादाय रोचनां समनःशिलाम् ।
आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्यास्तु षोडश ॥₂₅॥

ततस्ते वानरश्रेष्ठं यथाकालं यथाविधि ।
रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ॥₂₆॥

ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम् ।
मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥₂₇॥

ततो हेमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते ।
प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते ॥₂₈॥

प्राङ्मुखं विविधैर्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने ।
नदीनदेभ्यः संहृत्य तीर्थेभ्यश्च समन्ततः ॥₂₉॥

आहृत्य च समुद्रेभ्यः सर्वेभ्यो वानरर्षभाः ।
अपः कनककुम्भेषु निधाय विमलाः शुभाः ॥₃₀॥

शुभैर्वृषभशृङ्गैश्च कलशैश्चापि काञ्चनैः ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥₃₁॥

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवान्नलः ॥₃₂॥

अभ्यषिञ्चन्त सुग्रीवं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥₃₃॥

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टास्तत्र सहस्रशः ॥₃₄॥

रामस्य तु वचः कुर्वन्सुग्रीवो हरिपुङ्गवः ।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषेचयत् ॥₃₅॥

अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवङ्गमाः ।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानोऽभ्यपूजयन् ॥₃₆॥

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
बभूव नगरी रम्या क्षिकिन्धा गिरिगह्वरे ॥₃₇॥

निवेद्य रामाय तदा महात्मने
महाभिषेकं कपिवाहिनीपतिः ।
रुमां च भार्या प्रतिलभ्य वीर्यवान्
अवाप राज्यं त्रिदशाधिपो यथा ॥₃₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम् ।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥₁॥

शार्दूलमृगसङ्घुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम् ।
नानागुल्मलतागूढं बहुपादपसङ्कुलम् ॥₂॥

ऋक्षवानरगोपुच्छैर्माजरिश्च निषेवितम् ।
मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिजलाश्रयम् ॥₃॥

तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम् ।
प्रत्यगृह्यत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह ॥₄॥

अवसत्तत्र धर्मात्मा राघवः सहलक्ष्मणः ।
बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन्प्रस्रवणे गिरौ ॥₅॥

सुसुखेऽपि बहुद्रव्ये तस्मिन्नि धरणीधरे ।
वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पापि नाभवत् ।
हृतां हि भार्या स्मरतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥₆॥

उदयाभ्युदितं दृष्ट्वा शशाङ्कं च विशेषतः ।
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम् ॥₇॥

तत्समुत्थेन शोकेन बाष्पोपहतचेतसम् ।
तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम् ।
तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भाता लक्ष्मणोऽनुनयन्वचः ॥₈॥

अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि ।
शोचतो ह्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते ॥₉॥

भवान्क्रियापरो लोके भवान्देवपरायणः ।
आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघव ॥₁₀॥

न ह्यव्यवसितः शत्रुं राक्षसं तं विशेषतः ।
समर्थस्त्वं रणे हन्तुं विक्रमैर्जिह्मकारिणम् ॥₁₁॥

समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरं कुरु ।
ततः सपरिवारं तं निर्मूलं कुरु राक्षसम् ॥₁₂॥

पृथिवीमपि काकुत्स्थ ससागरवनाचलाम् ।
परिवर्तयितुं शक्तः किमङ्ग पुन रावणम् ॥₁₃॥

अहं तु खलु ते वीर्यं प्रसुप्तं प्रतिबोधये ।
दीप्तैराहुतिभिः काले भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥₁₄॥

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम् ।
राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₅॥

वाच्यं यदनुरक्तेन स्निग्धेन च हितेन च ।
सत्यविक्रम युक्तेन तदुक्तं लक्ष्मण त्वया ॥₁₆॥

एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः ।
विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम् ॥₁₇॥

शरत्कालं प्रतीक्षेऽहमियं प्रावृडुपस्थिता ।
ततः सराष्ट्रं सगणं राक्षसं तं निहन्यहम् ॥₁₈॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो रामस्य लक्ष्मणः ।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ॥₁₉॥

एतत्ते सदृशं वाक्यमुक्तं शत्रुनिबर्हण ।
इदानीमसि काकुत्स्थ प्रकृतिं स्वामुपागतः ॥₂₀॥

विज्ञाय ह्यात्मनो वीर्यं तथ्यं भवितुमर्हसि ।
एतत्सदृशमुक्तं ते श्रुतस्याभिजनस्य च ॥₂₁॥

तस्मात्पुरुषशार्दूल चिन्तयञ्शत्रुनिग्रहम् ।
वर्षारात्रमनुप्राप्तमतिक्रामय राघव ॥₂₂॥

नियम्य कोपं प्रतिपाल्यतां शरत्
क्षमस्व मासांश्चतुरो मया सह ।
वसाचलेऽस्मिन्मृगराजसेविते
संवर्धयञ्शत्रुवधे समुद्यतः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च ।
वसन्मात्यवतः पृष्टे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₁॥

अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः ।
सम्पश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः ॥₂॥

नव मास धृतं गर्भं भास्कारस्य गभस्तिभिः ।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥₃॥

शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपङ्क्तिभिः ।
कुटजार्जुनमालाभिरलङ्कितुं दिवाकरम् ॥₄॥

सन्ध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वधिकपाण्डुरैः ।
स्निग्धैरभ्रपटच्छदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥₅॥

मन्दमारुतनिःश्वासं सन्ध्याचन्दनरञ्जितम् ।
आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥₆॥

एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥₇॥

मेघोदरविनिर्मुक्ताः कल्लारसुखशीतलाः ।
शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकिगन्धिनः ॥₈॥

एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरधिवासितः ।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥₉॥

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।

मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥₁₀॥

कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरिव ताडितम् ।
अन्तःस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम् ॥₁₁॥

नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्गे वैदेहीव तपस्विनी ॥₁₂॥

इमास्ता मन्मथवतां हिताः प्रतिहता दिशः ।
अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥₁₃॥

क्वचिद्वाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ।
कुटजान्यथ्य सौमित्रे पुष्टितान्गिरिसानुषु ।
मम शोकाभिभूतस्य कामसन्दीपनान्स्थितान् ॥₁₄॥

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्-
निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानाम्
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥₁₅॥

सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः
प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकः ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु
यानानि मार्गेषु न सम्पतन्ति ॥₁₆॥

क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशम्
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धम्
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ॥₁₇॥

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्-
नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातम्

शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥₁₈॥

रसाकुलं षट्संनिकाशम्
प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतम्
भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥₁₉॥

विद्युत्पताकाः सबलाक मालाः
शैलेन्द्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा
मत्तगजेन्द्रा इव संयुगस्थः ॥₂₀॥

मेघाभिकामी परिसम्पतन्ती
सम्मोदिता भाति बलाकपङ्क्तिः ।
वातावधूता वरपौण्डरीकी
लम्बेव माला रचिताम्बरस्य ॥₂₁॥

निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति
द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति
कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥₂₂॥

जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता
जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥₂₃॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्रसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविनीहाः शिखिनः प्लवङ्गाः ॥₂₄॥

प्रहर्षिताः केतकपुष्पगन्धम्

आघ्राय हृष्टा वननिझरेषु ।
प्रपात शब्दाकुलिता गजेन्द्राः
सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति ॥ 25 ॥

धारानिपातैरभिहन्यमानाः
कदम्बशाखासु विलम्बमानाः ।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढम्
शनैर्मदं षट्परणास्त्यजन्ति ॥ 26 ॥

अङ्गारचूर्णोत्करसंनिकाशैः
फलैः सुपर्याप्त रसैः समृद्धैः ।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा
निलीयमाना इव षट्पदौघैः ॥ 27 ॥

तडित्पताकाभिरलङ्कृतानाम्
उदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानाम्
रणोद्यतानामिव वारणानाम् ॥ 28 ॥

मार्गानुगः शैलवनानुसारी
सम्प्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनागशङ्की
मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसंनिवृत्तः ॥ 29 ॥

मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै
सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गाः
सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥ 30 ॥

नीलेषु नीला नववारिपूर्णा
मेघेषु मेघाः प्रविभान्ति सक्ताः ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः
शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥ 31 ॥

मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा
वनेषु विश्रान्ततरा मृगेन्द्राः ।
रम्या नगेन्द्रा निभृता नगेन्द्राः
प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥₃₂॥

वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना प्रतिनिवर्तते ।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥₃₃॥

मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम् ।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥₃₄॥

निवृत्तकर्मायतनो नूनं सञ्चितसञ्चयः ।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोषकाधिपः ॥₃₅॥

नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वधते रयः ।
मां समीक्ष्य समायान्तमयोध्याया इव स्वनः ॥₃₆॥

इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते ।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः ॥₃₇॥

अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्श्रुतः ।
नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण ॥₃₈॥

शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः ।
रावणश्च महाञ्छत्रुरपारं प्रतिभाति मे ॥₃₉॥

अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गाश्च भृशदुर्गमान् ।
प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किञ्चिदीरितम् ॥₄₀॥

अपि चातिपरिक्लिष्टं चिराद्दरैः समागतम् ।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्धत्तुं नेच्छामि वानरम् ॥₄₁॥

स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् ।

उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः ॥₄₂॥

तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण ।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन् ॥₄₃॥

उपकारेण वीरो हि प्रतिकारेण युज्यते ।
अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्वतां मनः ॥₄₄॥

अथैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः
कृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम् ।
उवाच रामं स्वभिराम दर्शनम्
प्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥₄₅॥

यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितम्
नरेन्द्र कर्ता नचिराद्धरीश्वरः ।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवान्
जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥₄₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्वलाहकम् ।
सारसारवसङ्घुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥₁॥

समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसङ्ग्रहम् ।
अत्यर्थमसतां मार्गमेकान्तगतमानसम् ॥₂॥

निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा ।
प्राप्तवन्तमभिप्रेतान्सर्वानेव मनोरथान् ॥₃॥

स्त्वां च पात्नीमभिप्रेतां तारां चापि समीप्सिताम् ।
विहरन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वलम् ॥₄॥

क्रीडन्तमिव देवेशं नन्दनेऽप्सरसां गणैः ।
मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम् ॥₅॥

उत्सन्नराज्यसन्देशं कामवृत्तमवस्थितम् ।
निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित् ॥₆॥

प्रसाद्य वाक्यैर्मधुरैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः ।
वाक्यविद्धाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः ॥₇॥

हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत् ।
प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम् ।
हरीश्वरमुपागम्य हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥₈॥

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता ।
मित्राणां सङ्ग्रहः शेषस्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥₉॥

यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते ।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चाभिवर्धते ॥₁₀॥

यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ।
समवेतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ॥₁₁॥

तद्भवान्वृत्तसम्पन्नः स्थितः पथि निरत्यये ।
मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति ॥₁₂॥

यस्तु कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते ।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते ॥₁₃॥

क्रियतां राघवस्यैतद्वैदेह्याः परिमार्गणम् ।
तदिदं वीर कार्यं ते कालातीतमरिन्दम ॥₁₄॥

न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित् ।
त्वरमाणोऽपि सन्प्राज्ञस्तव राजन्वशानुगः ॥₁₅॥

कुलस्य केतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः ।
अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः ॥₁₆॥

तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव ।
हरीश्वर हरिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि ॥₁₇॥

न हि तावद्भवेत्कालो व्यतीतश्चोदनादृते ।
चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत्कालव्यतिक्रमः ॥₁₈॥

अकर्तुरपि कार्यस्य भवान्कर्ता हरीश्वर ।
किं पुनः प्रतिकर्तुस्ते राज्येन च धनेन च ॥₁₉॥

शक्तिमानसि विक्रान्तो वानरर्षकं गणेश्वर ।
कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं नु सञ्जसे ॥₂₀॥

कामं खलु शरैर्शक्तः सुरासुरमहोरगान् ।
वशे दाशरथिः कर्तुं ब्रह्मप्रतिज्ञां तु काङ्क्षते ॥²¹॥

प्राणत्यागाविशङ्केन कृतं तेन तव प्रियम् ।
तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे ॥²²॥

न देवा न च गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ।
न च यक्षा भयं तस्य कुर्युः किमुत राक्षसाः ॥²³॥

तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रियकृतस्तथा ।
रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम् ॥²⁴॥

नाधस्तादवनौ नाप्सु गतिर्नोपरि चाम्बरे ।
कस्यचित्सञ्जतेऽस्माकं कपीश्वर तवाज्ञया ॥²⁵॥

तदाज्ञापय कः किं ते कृते वसतु कुत्रचित् ।
हरयो ह्यप्रधृष्यास्ते सन्ति कोट्यग्रतोऽनघ ॥²⁶॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधुनिवेदितम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥²⁷॥

स सन्दिदेशाभिमतं नीलं नित्यकृतोद्यमम् ।
दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसङ्गहे ॥²⁸॥

यथा सेना समग्रा मे यूथपालाश्च सर्वशः ।
समागच्छन्त्यसङ्गेन सेनाग्राणि तथा कुरु ॥²⁹॥

ये ब्रह्मन्तपालाः प्लवगाः शीघ्रगा व्यवसायिनः ।
समानयन्तु ते सैन्यं बरिताः शासनान्मम ।
स्वयं चानन्तरं सैन्यं भवानेवानुपश्यतु ॥³⁰॥

त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयान्नेह वानरः ।
तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा ॥³¹॥

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो
भवान्ममाज्ञामधिकृत्य निश्चिताम् ।
इति व्यवस्थां हरिपुङ्गवेश्वरो
विधाय वेष्म प्रविवेश वीर्यवान् ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

गुहां प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः ।
वर्षरात्रोषितो रामः कामशोकाभिपीडितः ॥₁॥

पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् ।
शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥₂॥

कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् ।
बुद्ध्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥₃॥

स तु संज्ञामुपागम्य मुहूर्तान्मतिमान्पुनः ।
मनःस्थामपि वैदेहीं चिन्तयामास राघवः ॥₄॥

आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते ।
शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम् ॥₅॥

दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्वलाहकम् ।
सारसारवसङ्कुष्टं विललापार्तया गिरा ॥₆॥

सारसारवसंनादैः सारसारवनादिनी ।
याश्चरमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम् ॥₇॥

पुष्पितांश्चासनान्दृष्ट्वा काञ्चनानिव निर्मलान् ।
कथं स रमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती ॥₈॥

या पुरा कलहंसानां स्वरेण कलभाषिणी ।
बुध्यते चारुसर्वाङ्गी साद्य मे बुध्यते कथम् ॥₉॥

निःस्वनं चक्रवाकानां निशम्य सहचारिणाम् ।

पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥₁₀॥

सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च ।
तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥₁₁॥

अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् ।
न दूरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥₁₂॥

एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः ।
विहङ्ग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ॥₁₃॥

ततश्चक्षूर्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु ।
ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥₁₄॥

तं चिन्तया दुःसहया परीतम्
विसंज्ञमेकं विजने मनस्वी ।
भ्रातुर्विषादात्परितापदीनः
समीक्ष्य सौमित्रिरुवाच रामम् ॥₁₅॥

किमार्य कामस्य वशङ्गतेन
किमात्मपौरुष्यपराभवेन ।
अयं सदा संहृदयते समाधिः
किमत्र योगेन निवर्तितेन ॥₁₆॥

क्रियाभियोगं मनसः प्रसादम्
समाधियोगानुगतं च कालम् ।
सहायसामर्थ्यमदीनसत्त्व
स्वकर्महेतुं च कुरुष्व हेतुम् ॥₁₇॥

न जानकी मानववंशनाथ
त्वया सनाथा सुलभा परेण ।
न चाग्निचूडां ज्वलितामुपेत्य
न दह्यते वीरवरार्ह कश्चित् ॥₁₈॥

सलक्ष्मणं लक्ष्मणमप्रधृष्यम्
स्वभावजं वाक्यमुवाच रामः ।
हितं च पथ्यं च नयप्रसक्तम्
ससामधर्मार्थसमाहितं च ॥₁₉॥

निःसंशयं कार्यमवेक्षितव्यम्
क्रियाविशेषो ह्यनुवर्तितव्यः ।
ननु प्रवृत्तस्य दुरासदस्य
कुमारकार्यस्य फलं न चिन्त्यम् ॥₂₀॥

अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥₂₁॥

तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुन्धराम् ।
निर्वर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः ॥₂₂॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः ।
विसृज्य सलिलं मेघाः परिश्रान्ता नृपात्मज ॥₂₃॥

नीलोत्पलदलश्यामः श्यामीकृत्वा दिशो दश ।
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥₂₄॥

जलगर्भा महावेगाः कुटजार्जुनगन्धिनः ।
चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः ॥₂₅॥

घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण ।
नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ ॥₂₆॥

अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः ॥₂₇॥

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसङ्गमसव्रीडा जघनानीव योषितः ॥₂₈॥

प्रसन्नसलिलाः सौम्य कुररीभिर्विनादिताः ।
चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः ॥₂₉॥

अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज ।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥₃₀॥

इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज ।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं वा तथाविधम् ॥₃₁॥

चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः ।
मम शोकाभितप्तस्य सौम्य सीतामपश्यतः ॥₃₂॥

प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते ।
कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥₃₃॥

अनाथो हृतराज्योऽयं रावणेन च धर्षितः ।
दीनो दूरगृहः कामी मां चैव शरणं गतः ॥₃₄॥

इत्येतैः कारणैः सौम्य सुग्रीवस्य दुरात्मनः ।
अहं वानरराजस्य परिभूतः परन्तप ॥₃₅॥

स कालं परिसङ्ख्याय सीतायाः परिमार्गणे ।
कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुध्यते ॥₃₆॥

त्वं प्रविश्य च किष्किन्धां ब्रूहि वानरपुङ्गवम् ।
मूर्खं ग्राम्य सुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥₃₇॥

अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् ।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥₃₈॥

शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् ।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥₃₉॥

कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥⁴⁰॥

नूनं काञ्चनपृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे ।
द्रष्टुमिच्छन्ति चापस्य रूपं विदुर्द्रणोपमम् ॥⁴¹॥

घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे ।
निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छति ॥⁴²॥

काममेवं गतेऽप्यस्य परिज्ञाते पराक्रमे ।
त्वत्सहायस्य मे वीर न चिन्ता स्यान्नृपात्मज ॥⁴³॥

यदर्थमयमारम्भः कृतः परपुरंजय ।
समयं नाभिजानाति कृतार्थः प्लवगेश्वरः ॥⁴⁴॥

वर्षासमयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः ।
व्यतीतांश्चतुरो मासान्विहरन्नावबुध्यते ॥⁴⁵॥

सामात्यपरिषत्क्रीडन्यानमेवोपसेवते ।
शोकदीनेषु नास्मासु सुग्रीवः कुरुते दयाम् ॥⁴⁶॥

उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वत्स महाबल ।
मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाच्चैनमिदं वचः ॥⁴⁷॥

न च सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीवमा वालिपथमन्वगाः ॥⁴⁸॥

एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया ।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥⁴⁹॥

तदेवं विहिते कार्ये यद्धितं पुरुषर्षभ ।
तत्तद्ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः ॥⁵⁰॥

कुरुष्व सत्यं मयि वानरेश्वर
प्रतिश्रुतं धर्ममवेक्ष्य शाश्वतम् ।
मा वालिनं प्रेत्य गतो यमक्षयम्
ब्रमद पश्येर्मम चोदितैः शरैः ॥₅₁॥

स पूर्वजं तीव्रविवृद्धकोपम्
लालप्यमानं प्रसमीक्ष्य दीनम् ।
चकार तीव्रां मतिमुग्रतेजा
हरीश्वरमानववंशनाथः ॥₅₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

स कामिनं दीनमदीनसत्त्वः
 शोकाभिपन्नं समुदीर्णकोपम् ।
 नरेन्द्रसूनुर्नरदेवपुत्रम्
 रामानुजः पूर्वजमित्युवाच ॥₁॥

न वानरः स्थास्यति साधुवृत्ते
 न मंस्यते कार्यफलानुषङ्गान् ।
 न भक्ष्यते वानरराज्यलक्ष्मीम्
 तथा हि नाभिक्रमतेऽस्य बुद्धिः ॥₂॥

मतिक्षयाद्गाम्यसुखेषु सक्तः
 तव प्रसादाप्रतिकारबुद्धिः ।
 हतोऽग्रजं पश्यतु वालिनं स
 न राज्यमेवं विगुणस्य देयम् ॥₃॥

न धारये कोपमुदीर्णवेगम्
 निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य ।
 हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो
 नरेन्द्रपत्न्या विचयं करोतु ॥₄॥

तमात्तबाणासनमुत्पतन्तम्
 निवेदितार्थं रणचण्डकोपम् ।
 उवच रामः परवीरहन्ता
 स्ववेक्षितं सानुनयं च वाक्यम् ॥₅॥

न हि वै बद्धिधो लोके पापमेवं समाचरेत् ।
 पापमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥₆॥

नेदमद्य त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण ।

तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च सङ्गतम् ॥७॥

सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन् ।
वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये ॥८॥

सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थो यथावत्पुरुषर्षभः ।
प्रविवेश पुरीं वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥९॥

ततः शुभमतिः प्राज्ञो भ्रातुः प्रियहिते रतः ।
लक्ष्मणः प्रतिसंरब्धो जगाम भवनं कपेः ॥१०॥

शक्रबाणासनप्रख्यं धनुः कालान्तकोपमः ।
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभं मन्दरः सानुमानिव ॥११॥

यथोक्तकारी वचनमुत्तरं चैव सोत्तरम् ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या मत्वा रामानुजस्तदा ॥१२॥

कामक्रोधसमुत्थेन भ्रातुः कोपाग्निना वृतः ।
प्रभञ्जन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्तदा ॥१३॥

सालतालाश्वकर्णाश्च तरसा पातयन्बहून् ।
पर्यस्यन्निरिकूटानि द्रुमानन्यांश्च वेगतः ॥१४॥

शिलाश्च शकलीकुर्वन्पद्भ्यां गज इवाशुगः ।
दूरमेकपदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद्भुतम् ॥१५॥

तामपश्यद्वलाकीर्णा हरिराजमहापुरीम् ।
दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलः किष्किन्धां गिरिसङ्कटे ॥१६॥

रोषात्प्रस्फुरमाणौष्ठः सुग्रीवं प्रति कल्मषणः ।
ददर्श वानरान्भीमान्किष्किन्धाया बहिश्चरान् ॥१७॥

शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान् ।

जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः पर्वतान्तरे ॥₁₈॥

तान्मृहीतप्रहरणान्हरीन्दृष्ट्वा तु लक्ष्मणः ।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो बह्निन्धन इवानलः ॥₁₉॥

तं ते भयपरीताङ्गाः क्रुद्धं दृष्ट्वा प्लवङ्गमाः ।
कालमृत्युयुगान्ताभं शतशो विद्रुता दिशः ॥₂₀॥

ततः सुग्रीवभवनं प्रविश्य हरिपुङ्गवाः ।
क्रोधमागमनं चैव लक्ष्मणस्य न्यवेदयन् ॥₂₁॥

तारया सहितः कामी सक्तः कपिवृषो रहः ।
न तेषां कपिवीराणां शुश्राव वचनं तदा ॥₂₂॥

ततः सचिवसन्दिष्टा हरयो रोमहर्षणाः ।
गिरिकुञ्जरमेघाभा नगर्या निर्ययुस्तदा ॥₂₃॥

नखदंष्ट्रायुधा घोराः सर्वे विकृतदर्शनाः ।
सर्वे शार्दूलदर्पाश्च सर्वे च विकृताननाः ॥₂₄॥

दशनागबलाः केचित्केचिद्विशुणोत्तराः ।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥₂₅॥

कृत्स्नां हि कपिभिर्यक्तां द्रुमहस्तैर्महाबलैः ।
अपश्यल्लक्ष्मणः क्रुद्धः किष्किन्धां तां दुरासदम् ॥₂₆॥

ततस्ते हरयः सर्वे प्राकारपरिखान्तरात् ।
निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तु तस्थुराविष्कृतं तदा ॥₂₇॥

सुग्रीवस्य प्रमादं च पूर्वजं चार्तमात्मवान् ।
बुद्धा कोपवशं वीरः पुनरेव जगाम सः ॥₂₈॥

स दीर्घोष्णमहोच्छ्वासः कोपसंरक्तलोचनः ।

बभूव नरशार्दूलसधूम इव पावकः ॥₂₉॥

बाणशत्यस्फुरञ्जिह्वः सायकासनभोगवान् ।
स्वतेजोविषसङ्घातः पञ्चास्य इव पन्नगः ॥₃₀॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम् ।
समासाद्याङ्गदस्तासाद्विषादमगमद्भृशम् ॥₃₁॥

सोऽङ्गदं रोषताम्राक्षः सन्दिदेश महायशाः ।
सुग्रीवः कथ्यतां वत्स ममागमनमित्युत ॥₃₂॥

एष रामानुजः प्राप्तस्त्वत्सकाशमरिन्दमः ।
भ्रातुर्व्यसनसन्तप्तो द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः ॥₃₃॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा शोकाविष्टोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
पितुः समीपमागम्य सौमित्रिरयमागतः ॥₃₄॥

ते महौघनिभं दृष्ट्वा वज्राशनिसमस्वनम् ।
सिंहनादं समं चक्रुर्लक्ष्मणस्य समीपतः ॥₃₅॥

तेन शब्देन महता प्रत्यबुध्यत वानरः ।
मदविह्वलताम्राक्षो व्याकुलस्रग्विभूषणः ॥₃₆॥

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा तेनैव च समागतौ ।
मन्त्रिणो वानरेन्द्रस्य सम्मतोदारदर्शिनौ ॥₃₇॥

प्लक्षश्चैव प्रभावश्च मन्त्रिणावर्थधर्मयोः ।
वक्तुमुच्चावचं प्राप्तं लक्ष्मणं तौ शशंसतुः ॥₃₈॥

प्रसादयित्वा सुग्रीवं वचनैः सामनिश्चितैः ।
आसीनं पर्युपासीनौ यथा शक्रं मरुत्पतिम् ॥₃₉॥

सत्यसन्धौ महाभागौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।

वयस्य भावं सम्प्राप्तौ राज्याहौ राज्यदायिनौ ॥₄₀॥

तयोरेको धनुष्पाणिद्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः ।
यस्य भीताः प्रवेपन्ते नादान्मुञ्चन्ति वानराः ॥₄₁॥

स एष राघवभ्राता लक्ष्मणो वाक्यसारथिः ।
व्यवसाय रथः प्राप्तस्तस्य रामस्य शासनात् ॥₄₂॥

तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः सह बन्धुभिः ।
राजंस्तिष्ठ स्वसमये भव सत्यप्रतिश्रवः ॥₄₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥एकत्रिंशः सर्गः॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवः सचिवैः सह ।
लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान् ॥₁॥

सचिवानब्रवीद्वाक्यं निश्चित्य गुरुलाघवम् ।
मन्त्रज्ञान्मन्त्रकुशलो मन्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥₂॥

न मे दुर्व्याहतं किञ्चिन्नापि मे दुरनुष्ठितम् ।
लक्ष्मणो राघवभ्राता क्रुद्धः किमिति चिन्तये ॥₃॥

असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमन्तरदर्शिभिः ।
मम दोषानसम्भूताञ्श्रावितो राघवानुजः ॥₄॥

अत्र तावद्यथाबुद्धिं सर्वैरेव यथाविधि ।
भवद्भिर्निश्चयस्तस्य विज्ञेयो निपुणं शनैः ॥₅॥

न खल्वस्ति मम त्रासो लक्ष्मणान्नापि राघवात् ।
मित्रं त्वस्थानं कुपितं जनयत्येव सम्भ्रमम् ॥₆॥

सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं परिपालनम् ।
अनित्यत्वात्तु चित्तानां प्रीतिरत्येऽपि भिद्यते ॥₇॥

अतोनिमित्तं त्रस्तोऽहं रामेण तु महात्मना ।
यन्ममोपकृतं शक्यं प्रतिकर्तुं न तन्मया ॥₈॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हनुमान्हरिपुङ्गवः ।
उवाच स्त्वेन तर्केण मध्ये वानरमन्त्रिणाम् ॥₉॥

सर्वथा नैतदाश्चर्यं यत्त्वं हरिगणेश्वर ।

न विस्मरसि सुस्निग्धमुपकारकृतं शुभम् ॥₁₀॥

राघवेण तु शूरेण भयमुत्सृज्य दूरतः ।
बत्प्रियार्थं हतो वाली शक्रतुल्यपराक्रमः ॥₁₁॥

सर्वथा प्रणयात्क्रुद्धो राघवो नात्र संशयः ।
भ्रातरं स प्रहितवाँलक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥₁₂॥

बं प्रमत्तो न जानीषे कालं कलविदां वर ।
फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छिवा ॥₁₃॥

निर्मल ग्रहनक्षत्रा द्यौः प्रनष्टबलाहका ।
प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः सरितश्च सरांसि च ॥₁₄॥

प्राप्तमुद्योगकालं तु नावैषि हरिपुङ्गव ।
बं प्रमत्त इति व्यक्तं लक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥₁₅॥

आर्तस्य हृतदारस्य परुषं पुरुषान्तरात् ।
वचनं मर्षणीयं ते राघवस्य महात्मनः ॥₁₆॥

कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम् ।
अन्तरेणाञ्जलिं बद्धा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥₁₇॥

नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो अवश्यं पार्थिवो हितम् ।
अत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः ॥₁₈॥

अभिक्रुद्धः समर्थो हि चापमुद्यम्य राघवः ।
सदेवासुरगन्धर्वं वशे स्थापयितुं जगत् ॥₁₉॥

न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्य पुनर्भवेत् ।
पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः ॥₂₀॥

तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य बं सपुत्रः ससुहृञ्जनः ।

राजंस्तिष्ठ स्वसमये भर्तुर्भार्येव तद्वशे ॥₂₁॥

न रामरामानुजशासनं ह्वया
कपीन्द्रयुक्तं मनसाप्यपोहितुम् ।
मनो हि ते ज्ञास्यति मानुषं बलम्
सराधवस्यास्य सुरेन्द्रवर्चसः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा ।
प्रविवेश गुहां घोरां किष्किन्धां रामशासनात् ॥₁॥

द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः ।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥₂॥

निःश्वसन्तं तु तं दृष्ट्वा क्रुद्धं दशरथात्मजम् ।
बभूवुर्हरयस्तस्ता न चैनं पर्यवारयन् ॥₃॥

स तं रत्नमयीं श्रीमान्दिव्यां पुष्पितकाननाम् ।
रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥₄॥

हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानापण्योपशोभिताम् ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥₅॥

देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः ।
दिव्य माल्याम्बरधारैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥₆॥

चन्दनागरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिनाम् ।
मैरेयाणां मधूनां च सम्मोदितमहापथाम् ॥₇॥

विन्ध्यमेरुगिरिप्रस्थैः प्रासादैर्नैकभूमिभिः ।
ददर्श गिरिनद्यश्च विमलास्तत्र राघवः ॥₈॥

अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च ।
गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥₉॥

विद्युन्मालेश्च सम्पातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः ।

वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः ॥₁₀॥

कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा ।
दधिवक्तस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः ॥₁₁॥

एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् ।
ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥₁₂॥

पाण्डुराभ्रप्रकाशानि दिव्यमाल्ययुतानि च ।
प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च ॥₁₃॥

पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम् ।
वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥₁₄॥

शुल्कैः प्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्टितैरुपशोभितम् ॥₁₅॥

महेन्द्रदत्तैः श्रीमद्भिर्नीलजीमूतसंनिभैः ।
दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैः शीतच्छायैर्मनोरमैः ॥₁₆॥

हरिभिः संवृतद्वारं बलिभिः शस्त्रपाणिभिः ।
दिव्यमाल्यावृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥₁₇॥

सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः ।
अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥₁₈॥

स सप्त कक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः ।
प्रविश्य सुमहद्भुतं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥₁₉॥

हैमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्रोपशोभितम् ॥₂₀॥

प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वरम् ।

तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समगीतपदाक्षरम् ॥₂₁॥

बह्वीश्व विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः ।
स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥₂₂॥

दृष्ट्वाभिजनसम्पन्नाश्चित्रमाल्यकृतस्रजः ।
वरमाल्यकृतव्यग्रा भूषणोत्तमभूषिताः ॥₂₃॥

नातृप्तान्नाति च व्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् ।
सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः ॥₂₄॥

ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने ।
महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसंनिभम् ॥₂₅॥

दिव्याभरणचित्राङ्गं दिव्यरूपं यशस्विनम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं महेन्द्रमिव दुर्जयम् ।
दिव्याभरणमाल्याभिः प्रमदाभिः समावृतम् ॥₂₆॥

रुमां तु वीरः परिरभ्य गाढम्
वरासनस्थो वरहेमवर्णः ।
ददर्श सौमित्रिमदीनसत्त्वम्
विशालनेत्रः सुविशालनेत्रम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् ।
सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥₁॥

क्रुद्धं निःश्वसमानं तं प्रदीप्तमिव तेजसा ।
भ्रातुर्व्यसनसन्तप्तं दृष्ट्वा दशरथात्मजम् ॥₂॥

उत्पपात हरिश्रेष्ठो हिक्वा सौवर्णमासनम् ।
महान्महेन्द्रस्य यथा स्खलङ्कृत इव ध्वजः ॥₃॥

उत्पतन्तमनूत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः ।
सुग्रीवं गगने पूर्णं चन्द्रं तारागणा इव ॥₄॥

संरक्तनयनः श्रीमान्विचचाल कृताञ्जलिः ।
बभूवावस्थितस्तत्र कल्पवृक्षो महानिव ॥₅॥

रुमा द्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥₆॥

सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥₇॥

यस्तु राजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम् ।
मिथ्याप्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः ॥₈॥

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते ।
आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥₉॥

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः ।

कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥₁₀॥

गीतोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः ।
दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तं निबोध प्लवङ्गम ॥₁₁॥

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चोरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥₁₂॥

अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर ।
पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि यत् ॥₁₃॥

ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर ।
सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता ॥₁₄॥

स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्या प्रतिश्रवः ।
न त्वां रामो विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम् ॥₁₅॥

महाभागेन रामेण पापः करुणवेदिना ।
हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना ॥₁₆॥

कृतं चेन्नाभिजानीषे रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि वालिनम् ॥₁₇॥

न च सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥₁₈॥

न नूनमिक्ष्वाकुवरस्य कार्मुकात्
च्युताञ्शरान्यथ्यसि वज्रसंनिभान् ।
ततः सुखं नाम निषेवसे सुखी
न रामकार्यं मनसाप्यवेक्षसे ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा ।
अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना ॥₁॥

नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति ।
हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्ताद्विशेषतः ॥₂॥

नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः ।
नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः ॥₃॥

उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः ।
रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे ॥₄॥

रामप्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परन्तप ॥₅॥

सुदुःखं शायितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम् ।
प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः ॥₆॥

घृताच्यां किल संसक्तो दशवर्षाणि लक्ष्मण ।
अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः ॥₇॥

स हि प्राप्तं न जानीते कालं कालविदां वरः ।
विश्वामित्रो महातेजाः किं पुनर्यः पृथग्ननः ॥₈॥

देहधर्मं गतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण ।
अवितृप्तस्य कामेषु रामः क्षन्तुमिहार्हति ॥₉॥

न च रोषवशं तात गन्तुमर्हसि लक्ष्मण ।

निश्चयार्थमविज्ञाय सहसा प्राकृतो यथा ॥₁₀॥

सत्त्वयुक्ता हि पुरुषास्त्रिधाः पुरुषर्षभ ।
अविमृश्य न रोषस्य सहसा यान्ति वश्यताम् ॥₁₁॥

प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थे समाहिता ।
महान्नोषसमुत्पन्नः संरम्भस्त्यज्यतामयम् ॥₁₂॥

रुमां मां कपिराज्यं च धनधान्यवसूनि च ।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥₁₃॥

समानेष्व्यति सुग्रीवः सीतया सह राघवम् ।
शशाङ्कमिव रोहिष्या निहत्वा रावणं रणे ॥₁₄॥

शतकोटिसहस्राणि लङ्कायां किल रक्षसाम् ।
अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ॥₁₅॥

अहत्वा तांश्च दुर्धर्षान्नाक्षसान्कामरूपिणः ।
न शक्यो रावणो हन्तुं येन सा मैथिली हता ॥₁₆॥

ते न शक्या रणे हन्तुमसहायेन लक्ष्मण ।
रावणः क्रूरकर्मा च सुग्रीवेण विशेषतः ॥₁₇॥

एवमाख्यातवान्वाली स ह्यभिज्ञो हरीश्वरः ।
आगमस्तु न मे व्यक्तः श्रवात्तस्य ब्रवीम्यहम् ॥₁₈॥

त्वत्सहायनिमित्तं वै प्रेषिता हरिपुङ्गवाः ।
आनेतुं वानरान्युद्धे सुबहून्हरियूथपान् ॥₁₉॥

तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान्सुमहाबलान् ।
राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः ॥₂₀॥

कृता तु संस्था सौमित्रे सुग्रीवेण यथापुरा ।

अद्य तैर्वानरैर्षर्वैरागन्तव्यं महाबलैः ॥₂₁॥

ऋक्षकोटिसहस्राणि गोलाङ्गूलशतानि च ।
अद्य त्वामुपयास्यन्ति जहि कोपमरिन्दम ।
कोट्योऽनेकास्तु काकुत्स्थ कपीनां दीप्ततेजसाम् ॥₂₂॥

तव हि मुखमिदं निरीक्ष्य कोपात्
क्षतजनिभे नयने निरीक्षमाणाः ।
हरिवरवनिता न यान्ति शान्तिम्
प्रथमभयस्य हि शङ्किताः स्म सर्वाः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ।
मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रतिजग्राह तद्वचः ॥₁॥

तस्मिन्प्रतिगृहीते तु वाक्ये हरिगणेश्वरः ।
लक्ष्मणात्सुमहत्तासं वस्त्रं क्लिन्नमिवात्यजत् ॥₂॥

ततः कण्ठगतं माल्यं चित्रं बहुगुणं महत् ।
चिच्छेद विमदश्चासीत्सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥₃॥

स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः सम्प्रहर्षयन् ॥₄॥

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
रामप्रसादात्सौमित्रे पुनः प्राप्तमिदं मया ॥₅॥

कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा ।
तादृशं विक्रमं वीर प्रतिकर्तुमरिन्दम ॥₆॥

सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् ।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥₇॥

सहायकृत्यं हि तस्य येन सप्त महाद्रुमाः ।
शैलश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः ॥₈॥

धनुर्विस्फारमाणस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण ।
सशैला कम्पिता भूमिः सहायैस्तस्य किं नु वै ॥₉॥

अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ ।

गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम् ॥₁₀॥

यदि किञ्चिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा ।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥₁₁॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अभवलक्ष्मणः प्रीतः प्रेणा चेदमुवाच ह ॥₁₂॥

सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर ।
त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥₁₃॥

यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमुत्तमम् ।
अर्हस्तं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम् ॥₁₄॥

सहायेन च सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान् ।
वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः ॥₁₅॥

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥₁₆॥

दोषज्ञः सति सामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति ।
वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम ॥₁₇॥

सदृशश्चासि रामस्य विक्रमेण बलेन च ।
सहायो दैवतैर्दत्तश्चिराय हरिपुङ्गव ॥₁₈॥

किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्राम त्वं मया सह ।
सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम् ॥₁₉॥

यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम् ।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तच्च त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
हनुमन्तं स्थितं पार्श्वे सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

महेन्द्रहिमवद्विन्ध्यकैलासशिखरेषु च ।
मन्दरे पाण्डुशिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः ॥₂॥

तरुणादित्यवर्णेषु भ्राजमानेषु सर्वशः ।
पर्वतेषु समुद्रान्ते पश्चिमस्यां तु ये दिशि ॥₃॥

आदित्यभवने चैव गिरौ सन्ध्याभ्रसंनिभे ।
पद्मतालवनं भीमं संश्रिता हरिपुङ्गवाः ॥₄॥

अञ्जनाम्बुदसङ्काशाः कुञ्जरप्रतिमौजसः ।
अञ्जने परते चैव ये वसन्ति प्लवङ्गमाः ॥₅॥

मनःशिला गुहावासा वानराः कनकप्रभाः ।
मेरुपार्श्वगताश्चैव ये च धूम्रगिरिं श्रिताः ॥₆॥

तरुणादित्यवर्णाश्च पर्वते ये महारुणे ।
पिबन्तो मधुमैरेयं भीमवेगाः प्लवङ्गमाः ॥₇॥

वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च ।
तापसानां च रम्येषु वनान्तेषु समन्ततः ॥₈॥

तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् ।
सामदानादिभिः कल्पैराशु प्रेषय वानरान् ॥₉॥

प्रेषिताः प्रथमं ये च मया दूता महाजवाः ।

त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं हरीन्सम्प्रेषयापरान् ॥₁₀॥

ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः ।
इहानयस्व तान्सर्वाञ्शीघ्रं तु मम शासनात् ॥₁₁॥

अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया ।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः ॥₁₂॥

शतान्यथ सहस्राणि कोट्यश्च मम शासनात् ।
प्रयान्तु कपिसिंहानां दिशो मम मते स्थिताः ॥₁₃॥

मेघपर्वतसङ्काशाश्छादयन्त इवाम्बरम् ।
घोररूपाः कपिश्रेष्ठा यान्तु मच्छासनादितः ॥₁₄॥

ते गतिज्ञा गतिं गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः ।
आनयन्तु हरीन्सर्वास्त्वरिताः शासनान्मम ॥₁₅॥

तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः ।
दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान्प्रेषयामास वानरान् ॥₁₆॥

ते पदं विष्णुविक्रान्तं पतत्रिज्योतिरध्वगाः ।
प्रयाताः प्रहिता राज्ञा हरयस्तत्क्षणेन वै ॥₁₇॥

ते समुद्रेषु गिरिषु वनेषु च सरित्सु च ।
वानरा वानरान्सर्वान्नामहेतोरचोदयन् ॥₁₈॥

मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः ।
सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयदर्शिनः ॥₁₉॥

ततस्तेऽञ्जनसङ्काशा गिरेस्तस्मान्महाजवाः ।
तिस्रः कोट्यः प्लवङ्गानां निर्ययुर्यत्र राघवः ॥₂₀॥

अस्तं गच्छति यत्रार्कस्तस्मिन्निरिवरे रताः ।

ततहेमसमाभासास्तस्मात्कोट्यो दशच्युताः ॥₂₁॥

कैलास शिखरेभ्यश्च सिंहकेसरवर्चसाम् ।
ततः कोटिसहस्राणि वानराणामुपागमन् ॥₂₂॥

फलमूलेन जीवन्तो हिमवन्तमुपाश्रिताः ।
तेषां कोटिसहस्राणां सहस्रं समवर्तत ॥₂₃॥

अङ्गारक समानानां भीमानां भीमकर्मणाम् ।
विन्ध्याद्वानरकोटीनां सहस्राण्यपतन्द्रुतम् ॥₂₄॥

क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः ।
नारिकेलाशनाश्चैव तेषां सङ्ख्या न विद्यते ॥₂₅॥

वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्धश्च महाजवाः ।
आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम् ॥₂₆॥

ये तु त्वरयितुं याता वानराः सर्ववानरान् ।
ते वीरा हिमवच्छैलं ददृशुस्तं महाद्रुमम् ॥₂₇॥

तस्मिन्निरिवरे रम्ये यज्ञो महेश्वरः पुरा ।
सर्वदेवमनस्तोषो बभौ दिव्यो मनोहरः ॥₂₈॥

अन्नविष्यन्दजातानि मूलानि च फलानि च ।
अमृतस्वादुकल्पानि ददृशुस्तत्र वानराः ॥₂₉॥

तदन्नं सम्भवं दिव्यं फलं मूलं मनोहरम् ।
यः कश्चित्सकृदश्नाति मासं भवति तर्पितः ॥₃₀॥

तानि मूलानि दिव्यानि फलानि च फलाशनाः ।
औषधानि च दिव्यानि जगृहुर्हरियूथपाः ॥₃₁॥

तस्माच्च यज्ञायतनात्पुष्पाणि सुरभीणि च ।

आनिन्युर्वानरा गत्वा सुग्रीवप्रियकारणात् ॥₃₂॥

ते तु सर्वे हरिवराः पृथिव्यां सर्ववानरान् ।
सञ्चोदयित्वा त्वरितं यूथानां जग्मुर्ग्रतः ॥₃₃॥

ते तु तेन मुहूर्तेन यूथपाः शीघ्रकारिणः ।
किष्किन्धां त्वरया प्राप्ताः सुग्रीवो यत्र वानरः ॥₃₄॥

ते गृहीत्वौषधीः सर्वाः फलं मूलं च वानराः ।
तं प्रतिग्राहयामासुर्वचनं चेदमब्रुवन् ॥₃₅॥

सर्वे परिगताः शैलाः समुद्राश्च वनानि च ।
पृथिव्यां वानराः सर्वे शासनादुपयान्ति ते ॥₃₆॥

एवं श्रुत्वा ततो हृष्टः सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
प्रतिजग्राह च प्रीतस्तेषां सर्वमुपायनम् ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

प्रतिगृह्य च तत्सर्वमुपानयमुपाहृतम् ।
वानरान्सान्त्वयित्वा च सर्वानेव व्यसर्जयत् ॥₁॥

विसर्जयित्वा स हरीञ्शूरांस्तान्कृतकर्मणः ।
मेने कृतार्थमात्मानं राघवं च महाबलम् ॥₂॥

स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं सम्प्रहर्षयन् ।
किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते ॥₃॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम् ।
सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥₄॥

एवं भवतु गच्छामः स्थेयं त्वच्छासने मया ।
तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्ष्मणम् ॥₅॥

विसर्जयामास तदा तारामन्याश्च योषितः ।
एतेत्युच्चैर्हरिवरान्सुग्रीवः समुदाहरत् ॥₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरयः शीघ्रमाययुः ।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे ये स्युः स्त्रीदर्शनक्षमाः ॥₇॥

तानुवाच ततः प्राप्तान्राजार्कसदृशप्रभः ।
उपस्थापयत क्षिप्रं शिबिकां मम वानराः ॥₈॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः ।
समुपस्थापयामासुः शिबिकां प्रियदर्शनाम् ॥₉॥

तामुपस्थापितां दृष्ट्वा शिबिकां वानराधिपः ।
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमिति सौमित्रिमब्रवीत् ॥₁₀॥

इत्युक्त्वा काञ्चनं यानं सुग्रीवः सूर्यसंनिभम् ।
बृहद्भिर्हरिभिर्युक्तमारुरोह सलक्ष्मणः ॥₁₁॥

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
शुक्लैश्च बालव्यजनैर्धूयमानैः समन्ततः ॥₁₂॥

शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिवन्दितः ।
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम् ॥₁₃॥

स वानरशतैस्तीष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ।
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः ॥₁₄॥

स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम् ।
अवातरन्महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः ॥₁₅॥

आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ।
कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चभवंस्तथा ॥₁₆॥

तटाकमिव तद्दृष्ट्वा रामः कुञ्जलपङ्कजम् ।
वानराणां महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् ॥₁₇॥

पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम् ।
प्रेणा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे ॥₁₈॥

परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत् ।
तं निषण्णं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीद्वचः ॥₁₉॥

धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते ।
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम ॥₂₀॥

हिवा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते ।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥²¹॥

अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां सङ्गहे रतः ।
त्रिवर्गफलभोक्ता तु राजा धर्मेण युज्यते ॥²²॥

उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुविनाशन ।
सञ्चिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सह मन्त्रिभिः ॥²³॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत् ॥²⁴॥

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
ब्रह्मसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया ॥²⁵॥

तव देवप्रसदाच्च भ्रातुश्च जयतां वर ।
कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां स दूषकः ॥²⁶॥

एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन ।
प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान् ॥²⁷॥

ऋक्षाश्चावहिताः शूरा गोलाङ्गूलाश्च राघव ।
कान्तार वनदुर्गाणामभिज्ञा घोरदर्शनाः ॥²⁸॥

देवगन्धर्वपुत्राश्च वानराः कामरूपिणः ।
स्त्रैः स्त्रैः परिवृताः सैन्यैर्वर्तन्ते पथि राघव ॥²⁹॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्च प्लवङ्गमाः ।
अयुतैश्चावृता वीरा शङ्कुभिश्च परन्तप ॥³⁰॥

अर्बुदैर्बुदशतैर्मध्यैश्चान्तैश्च वानराः ।
समुद्रैश्च परार्धैश्च हरयो हरियूथपाः ॥³¹॥

आगमिष्यन्ति ते राजन्महेन्द्रसमविक्रमाः ।
मेरुमन्दरसङ्काशा विन्ध्यमेरुकृतालयाः ॥³²॥

ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं ये सबान्धवम् ।
निहत्य रावणं सङ्क्षो ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥₃₃॥

ततस्तमुद्योगमवेक्ष्य बुद्धिमान्
हरिप्रवीरस्य निदेशवर्तिनः ।
बभूव हर्षाद्वसुधाधिपात्मजः
प्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम् ॥₁॥

यदिन्द्रो वर्षते वर्षं न तच्चित्रं भवेद्भुवि ।
आदित्यो वा सहस्रांशुः कुर्याद्वितिमिरं नभः ॥₂॥

चन्द्रमा रश्मिभिः कुर्यात्पृथिवीं सौम्य निर्मलाम् ।
बद्धिधो वापि मित्राणां प्रतिकुर्यात्परन्तप ॥₃॥

एवं ह्ययि न तच्चित्रं भवेद्यत्सौम्य शोभनम् ।
जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सततं प्रियवादिनम् ॥₄॥

ब्रह्मनाथः सखे सङ्क्षो जेतास्मि सकलानरीन् ।
ब्रमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥₅॥

जहारात्मविनाशाय वैदेहीं राक्षसाधमः ।
वधयित्वा तु पौलोमीमनुह्लादो यथा शचीम् ॥₆॥

नचिरात्तं हनिष्यामि रावणं निशितैः शरैः ।
पौलोम्याः पितरं दृप्तं शतक्रतुरिवारिहा ॥₇॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव रजः समभिवर्तत ।
उष्णां तीव्रां सहस्रांशोश्छादयद्गने प्रभाम् ॥₈॥

दिशः पर्याकुलाश्चासन्नजसा तेन मूर्छिताः ।
चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥₉॥

ततो नगेन्द्रसङ्काशैस्तीक्ष्ण दंष्ट्रैर्महाबलैः ।

कृत्स्ना सञ्छादिता भूमिरसङ्ख्यैः प्लवङ्गमैः ॥₁₀॥

निमेषान्तरमात्रेण ततस्तैर्हरियूथपैः ।
कोटीशतपरीवारैः कामरूपिभिरावृता ॥₁₁॥

नादेयैः पार्वतीयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः ।
हरिभिर्मैघनिहृदिरन्यैश्च वनचारिभिः ॥₁₂॥

तरुणादित्यवर्णैश्च शशिशैवैश्च वानरैः ।
पद्मकेसरवर्णैश्च श्वेतैर्मैरुकृतालयैः ॥₁₃॥

कोटीसहस्रैर्दशभिः श्रीमान्परिवृतस्तदा ।
वीरः शतबलिर्नाम वानरः प्रत्यदृश्यत ॥₁₄॥

ततः काञ्चनशैलाभस्ताराया वीर्यवान्पिता ।
अनेकैर्दशसाहस्रैः कोटिभिः प्रत्यदृश्यत ॥₁₅॥

पद्मकेसरसङ्काशस्तरुणार्कनिभाननः ।
बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठः सर्ववानरसत्तमः ॥₁₆॥

अनीकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः ।
पिता हनुमतः श्रीमान्केसरी प्रत्यदृश्यत ॥₁₇॥

गोलाङ्गूलमहाराजो गवाक्षो भीमविक्रमः ।
वृतः कोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यत ॥₁₈॥

ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः ।
वृतः कोटिसहस्राभ्यां द्वाभ्यां समभिवर्तत ॥₁₉॥

महाचलनिभैर्घोरैः पनसो नाम यूथपः ।
आजगाम महावीर्यस्तिमृभिः कोटिभिर्वृतः ॥₂₀॥

नीलाञ्जनचयाकारो नीलो नामाथ यूथपः ।

अदृश्यत महाकायः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥₂₁॥

दरीमुखश्च बलवान्यूथपोऽभ्याययौ तदा ।
वृतः कोटिसहस्रेण सुग्रीवं समुपस्थितः ॥₂₂॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभावश्चिपुत्रौ महावलौ ।
कोटिकोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यताम् ॥₂₃॥

ततः कोटिसहस्राणां सहस्रेण शतेन च ।
पृष्ठतोऽनुगतः प्राप्तो हरिभिर्गन्धमादनः ॥₂₄॥

ततः पद्मसहस्रेण वृतः शङ्खुशतेन च ।
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पितृतुल्यपराक्रमः ॥₂₅॥

ततस्ताराद्युतिस्तारो हरिर्भीमपराक्रमः ।
पञ्चभिर्हरिकोटीभिर्दूरतः प्रत्यदृश्यत ॥₂₆॥

इन्द्रजानुः कपिर्वीरो यूथपः प्रत्यदृश्यत ।
एकादशानां कोटीनामीश्वरस्तैश्च संवृतः ॥₂₇॥

ततो रम्भस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसंनिभः ।
अयुतेन वृतश्चैव सहस्रेण शतेन च ॥₂₈॥

ततो यूथपतिर्वीरो दुर्मुखो नाम वानरः ।
प्रत्यदृश्यत कोटिभ्यां द्वाभ्यां परिवृतो बली ॥₂₉॥

कैलासशिखराकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः ।
वृतः कोटिसहस्रेण हनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥₃₀॥

नलश्चापि महावीर्यः संवृतो द्रुमवासिभिः ।
कोटीशतेन सम्प्राप्तः सहस्रेण शतेन च ॥₃₁॥

शरभः कुमुदो वह्निर्वानरो रम्भ एव च ।

एते चान्ये च बहवो वानराः कामरूपिणः ॥₃₂॥

आवृत्य पृथिवीं सर्वा पर्वतांश्च वनानि च ।
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव ॥₃₃॥

कुर्वाणा बहुशब्दांश्च प्रहृष्टा बलशालिनः ।
शिरोभिर्वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयन् ॥₃₄॥

अपरे वानरश्रेष्ठाः सङ्गम्य च यथोचितम् ।
सुग्रीवेण समागम्य स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥₃₅॥

सुग्रीवस्त्वरितो रामे सर्वास्तान्वानरर्षभान् ।
निवेदयित्वा धर्मज्ञः स्थितः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥₃₆॥

यथा सुखं पर्वतनिर्झरेषु
वनेषु सर्वेषु च वानरेन्द्राः ।
निवेशयित्वा विधिवद्वलानि
बलं बलज्ञः प्रतिपत्तुमीष्टे ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥₁॥

आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामरूपिणः ।
वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥₂॥

त इमे बहुसाहस्रैर्हरिभिर्भीमविक्रमैः ।
आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः ॥₃॥

ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः ।
पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः ॥₄॥

पृथिव्यम्बुचरा राम नानानगनिवासिनः ।
कोट्यग्रश इमे प्राप्ता वानरास्तव किङ्कराः ॥₅॥

निदेशवर्तिनः सर्वे सर्वे गुरुहिते रताः ।
अभिप्रेतमनुष्ठातुं तव शक्यन्त्यरिन्दम ॥₆॥

यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् ।
तत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥₇॥

काममेषामिदं कार्यं विदितं मम तत्त्वतः ।
तथापि तु यथा तत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥₈॥

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य हृदं वचनमब्रवीत् ॥₉॥

ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा ।

स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥₁₀॥

अधिगम्य च वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन्काले सह त्वया ॥₁₁॥

नाहमस्मिन्प्रभुः कार्ये वानरेश न लक्ष्मणः ।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥₁₂॥

त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम् ।
त्वं हि जानासि यत्कार्यं मम वीर न संशयः ॥₁₃॥

सुहृद्वितीयो विक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित् ।
भवानस्मद्धिते युक्तः सुकृतार्थोऽर्थवित्तमः ॥₁₄॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम् ।
अब्रवीद्राम साम्निध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
शैलाभं मेघनिर्घोषमूर्जितं प्लवगेश्वरम् ॥₁₅॥

सोमसूर्यात्मजैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम ।
देशकालनयैर्युक्तः कार्याकार्यविनिश्चये ॥₁₆॥

वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ।
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम् ॥₁₇॥

तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
मार्गध्वं गिरिदुर्गेषु वनेषु च नदीषु च ॥₁₈॥

नदीं भागीरथीं रम्यां सरयूं कौशिकीं तथा ।
कालिन्दीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिम् ॥₁₉॥

सरस्वतीं च सिन्धुं च शोणं मणिनिभोदकम् ।
महीं कालमहीं चैव शैलकाननशोभिताम् ॥₂₀॥

ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान् ।
मागधांश्च महाग्रामान्पुण्ड्रान्वङ्गांस्तथैव च ॥²¹॥

पत्तनं कोशकाराणां भूमिं च रजताकराम् ।
सर्वमेतद्विचेतव्यं मृगयद्भिर्ततस्ततः ॥²²॥

रामस्य दयितां भार्या सीतां दशरतः स्नुषाम् ।
समुद्रमवगाढांश्च पर्वतान्पत्तनानि च ॥²³॥

मन्दरस्य च ये कोटिं संश्रिताः केचिदायताम् ।
कर्णप्रावरणाश्चैव तथा चाप्योष्ठकर्णकाः ॥²⁴॥

घोरा लोहमुखाश्चैव जवनाश्चैकपादकाः ।
अक्षया बलवन्तश्च पुरुषाः पुरुषादकाः ॥²⁵॥

किराताः कर्णचूडाश्च हेमाङ्गाः प्रियदर्शनाः ।
आममीनाशनास्तत्र किराता द्वीपवासिनः ॥²⁶॥

अन्तर्जलचरा घोरा नरव्याघ्रा इति श्रुताः ।
एतेषामालयाः सर्वे विचेयाः काननौकसः ॥²⁷॥

गिरिभिर्ये च गम्यन्ते प्लवनेन प्लवेन च ।
रत्नवन्तं यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् ॥²⁸॥

सुवर्णरूप्यकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ।
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः ॥²⁹॥

दिवं स्पृशति शृङ्गेण देवदानवसेवितः ।
एतेषां गिरिदुर्गेषु प्रतापेषु वनेषु च ॥³⁰॥

रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ।
ततः समुद्रद्वीपांश्च सुभीमान्द्रष्टुमर्हथ ॥³¹॥

तत्रासुरा महाकायाश्छायां गृह्णन्ति नित्यशः ।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता दीर्घकालं बुभुक्षिताः ॥³²॥

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम् ।
अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥³³॥

ततो रक्तजलं भीमं लोहितं नाम सागरम् ।
गता द्रक्ष्यथ तां चैव बृहतीं कूटशात्मलीम् ॥³⁴॥

गृहं च वैनतेयस्य नानारत्नविभूषितम् ।
तत्र कैलाससङ्काशं विहितं विश्वकर्मणा ॥³⁵॥

तत्र शैलनिभा भीमा मन्देहा नाम राक्षसाः ।
शैलशृङ्गेषु लम्बन्ते नानारूपा भयावहाः ॥³⁶॥

ते पतन्ति जले नित्यं सूर्यस्योदयनं प्रति ।
अभितप्ताश्च सूर्येण लम्बन्ते स्म पुनः पुनः ॥³⁷॥

ततः पाण्डुरमेघाभं क्षीरौदं नाम सागरम् ।
गता द्रक्ष्यथ दुर्धर्षा मुखा हारमिवोर्मिभिः ॥³⁸॥

तस्य मध्ये महाश्वेत ऋषभो नाम पर्वतः ।
दिव्यगन्धैः कुसुमितै रजतैश्च नगैर्वृतः ॥³⁹॥

सरश्च राजतैः पद्मैर्ज्वलितैर्हेमकेसरैः ।
नाम्ना सुदर्शनं नाम राजहंसैः समाकुलम् ॥⁴⁰॥

विबुधाश्चारणा यक्षाः किंनराः साप्सरोगणाः ।
हृष्टाः समभिगच्छन्ति नलिनीं तां रिरंसवः ॥⁴¹॥

क्षीरोदं समतिक्रम्य ततो द्रक्ष्यथ वानराः ।
जलोदं सागरश्रेष्ठं सर्वभूतभयावहम् ॥⁴²॥

तत्र तत्कोपजं तेजः कृतं हयमुखं महत् ।
अस्याहुस्तन्महावेगमोदनं सचराचरम् ॥₄₃॥

तत्र विक्रोशतां नादो भूतानां सागरौकसाम् ।
श्रूयते चासमर्थानां दृष्ट्वा तद्वडवामुखम् ॥₄₄॥

स्वादूदस्योत्तरे देशे योजनानि त्रयोदश ।
जातरूपशिलो नाम महान्कनकपर्वतः ॥₄₅॥

आसीनं पर्वतस्याग्रे सर्वभूतनमस्कृतम् ।
सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥₄₆॥

त्रिशिराः काञ्चनः केतुस्तालस्तस्य महात्मनः ।
स्थापितः पर्वतस्याग्रे विराजति सवेदिकः ॥₄₇॥

पूर्वस्यां दिशि निर्माणं कृतं तत्त्रिदशेश्वरैः ।
ततः परं हेममयः श्रीमानुदयपर्वतः ॥₄₈॥

तस्य कोटिर्दिवं स्पृष्ट्वा शतयोजनमायता ।
जातरूपमयी दिव्या विराजति सवेदिका ॥₄₉॥

सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ।
जातरूपमयैर्दिव्यैः शोभते सूर्यसंनिभैः ॥₅₀॥

तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् ।
शृङ्गं सौमनसं नाम जातरूपमयं ध्रुवम् ॥₅₁॥

तत्र पूर्वं पदं कृत्वा पुरा विष्णुस्तिविक्रमे ।
द्वितीयं शिखरं मेरोश्चकार पुरुषोत्तमः ॥₅₂॥

उत्तरेण परिक्रम्य जम्बूद्वीपं दिवाकरः ।
दृश्यो भवति भूयिष्ठं शिखरं तन्महोच्छ्रयम् ॥₅₃॥

तत्र वैखानसा नाम वालखिल्या महर्षयः ।
प्रकाशमाना दृश्यन्ते सूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥⁵⁴॥

अयं सुदर्शनो द्वीपः पुरो यस्य प्रकाशते ।
यस्मिंस्तेजश्च चक्षुश्च सर्वप्राणभृतामपि ॥⁵⁵॥

शैलस्य तस्य कुञ्जेषु कन्दरेषु वनेषु च ।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥⁵⁶॥

काञ्चनस्य च शैलस्य सूर्यस्य च महात्मनः ।
आविष्टा तेजसा सन्ध्या पूर्वा रक्ता प्रकाशते ॥⁵⁷॥

ततः परमगम्या स्याद्विक्पूर्वा त्रिदशावृता ।
रहिता चन्द्रसूर्याभ्यामदृश्या तिमिरावृता ॥⁵⁸॥

शैलेषु तेषु सर्वेषु कन्दरेषु वनेषु च ।
य च नोक्ता मया देशा विचेया तेषु जानकी ॥⁵⁹॥

एतावद्धानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुङ्गवाः ।
अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥⁶⁰॥

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम् ॥⁶¹॥

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम ।
सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम् ॥⁶²॥

महेन्द्रकान्तां वनषण्ड मण्डिताम्
दिशं चरित्वा निपुणेन वानराः ।
अवाप्य सीतां रघुवंशजप्रियाम्
ततो निवृत्ताः सुखितो भविष्यथ ॥⁶³॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चत्वारिंशः सर्गः॥

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम् ।
दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान् ॥₁॥

नीलमग्निसुतं चैव हनुमन्तं च वानरम् ।
पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महाकपिम् ॥₂॥

सुहोत्रं च शरीरं च शरगुल्मं तथैव च ।
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणमृषभं तथा ॥₃॥

मैन्दं च द्विविदं चैव विजयं गन्धमादनम् ।
उल्कामुखमसङ्गं च हुताशन सुतावुभौ ॥₄॥

अङ्गदप्रमुखान्वीरान्वीरः कपिगणेश्वरः ।
वेगविक्रमसम्पन्नान्सन्दिदेश विशेषवित् ॥₅॥

तेषामग्रेषरं चैव महद्वलमसङ्गम् ।
विधाय हरिवीराणामादिशदक्षिणां दिशम् ॥₆॥

ये केचन समुद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः ।
कपीशः कपिमुख्यानां स तेषां तानुदाहरत् ॥₇॥

सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलतावृतम् ।
नर्मदां च नदीं दुर्गां महोरगनिषेविताम् ॥₈॥

ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णावेणीं महानदीम् ।
वरदां च महाभागां महोरगनिषेविताम् ॥₉॥

मेखलानुत्कलांश्चैव दशार्णनगराण्यपि ।

अवन्तीमभवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत ॥₁₀॥

विदर्भानृषिकांश्चैव रम्यान्माहिषकानपि ।
तथा बङ्गान्कलिङ्गांश्च कौशिकांश्च समन्ततः ॥₁₁॥

अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहम् ।
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत ॥₁₂॥

तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पाण्ड्यान्सकेरलान् ।
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः ॥₁₃॥

विचित्रशिखरः श्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ।
सचन्दनवनोद्देशो मार्गितव्यो महागिरिः ॥₁₄॥

ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलां शिवाम् ।
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विहृतामप्सरोगणैः ॥₁₅॥

तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसम् ।
द्रक्ष्यथादित्यसङ्काशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥₁₆॥

ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताः प्रसन्नेन महात्मना ।
ताम्रपर्णीं ग्राह्युष्टां तरिष्यथ महानदीम् ॥₁₇॥

सा चन्दनवनैर्दिव्यैः प्रच्छन्ना द्वीप शालिनी ।
कान्तेव युवतिः कान्तं समुद्रमवगाहते ॥₁₈॥

ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ।
युक्तं कवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः ॥₁₉॥

ततः समुद्रमासाद्य सम्प्रधार्यार्थनिश्चयम् ।
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः ॥₂₀॥

चित्रनानानगः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ।

जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवम् ॥₂₁॥

नानाविधैर्नगैः फुल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ।
देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोगेभिश्च सेवितम् ॥₂₂॥

सिद्धचारणसङ्घैश्च प्रकीर्णं सुमनोहरम् ।
तमुपैति सहस्राक्षः सदा पर्वसु पर्वसु ॥₂₃॥

द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनमायतः ।
अगम्यो मानुषैर्दीप्तस्तं मार्गध्वं समन्ततः ।
तत्र सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः ॥₂₄॥

स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षसमद्युतेः ॥₂₅॥

दक्षिणस्य समुद्रस्य मध्ये तस्य तु राक्षसी ।
अङ्गारकेति विख्याता छायामाक्षिप्य भोजिनी ॥₂₆॥

तमतिक्रम्य लक्ष्मीवान्समुद्रे शतयोजने ।
गिरिः पुष्पितको नाम सिद्धचारणसेवितः ॥₂₇॥

चन्द्रसूर्याशुसङ्काशः सागराम्बुसमावृतः ।
भ्राजते विपुलैः शृङ्गैरम्बरं विलिखन्निव ॥₂₈॥

तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते यं दिवाकरः ।
श्वेतं राजतमेकं च सेवते यं निशाकरः ॥₂₉॥

न तं कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः ।
प्रणम्य शिरसा शैलं तं विमार्गत वानराः ॥₃₀॥

तमतिक्रम्य दुर्धर्षाः सूर्यवान्नाम पर्वतः ।
अध्वना दुर्विगाहेन योजनानि चतुर्दश ॥₃₁॥

ततस्तमप्यतिक्रम्य वैद्युतो नाम पर्वतः ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः सर्वकालमनोहरैः ॥³²॥

तत्र भुक्त्वा वरार्हाणि मूलानि च फलानि च ।
मधूनि पीत्वा मुख्यानि परं गच्छत वानराः ॥³³॥

तत्र नेत्रमनःकान्तः कुञ्जरो नाम पर्वतः ।
अगस्त्यभवनं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥³⁴॥

तत्र योजनविस्तारमुच्छ्रितं दशयोजनम् ।
शरणं काञ्चनं दिव्यं नानारत्नविभूषितम् ॥³⁵॥

तत्र भोगवती नाम सर्पाणामालयः पुरी ।
विशालरथ्या दुर्धर्षा सर्वतः परिरक्षिता ।
रक्षिता पन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥³⁶॥

सर्पराजो महाघोरो यस्यां वसति वासुकिः ।
निर्याय मार्गितव्या च सा च भोगवती पुरी ॥³⁷॥

तं च देशमतिक्रम्य महानृषभसंस्थितः ।
सर्वरत्नमयः श्रीमानृषभो नाम पर्वतः ॥³⁸॥

गोशीर्षकं पद्मकं च हरिश्चामं च चन्दनम् ।
दिव्यमुत्पद्यते यत्र तच्चैवाग्निसमप्रभम् ॥³⁹॥

न तु तच्चन्दनं दृष्ट्वा स्मष्टव्यं च कदाचन ।
रोहिता नाम गन्धर्वा घोरा रक्षन्ति तद्वनम् ॥⁴⁰॥

तत्र गन्धर्वपतयः पञ्चसूर्यसमप्रभाः ।
शैलूषो ग्रामणीर्भिक्षुः शुभ्रो बभ्रुस्तथैव च ॥⁴¹॥

अन्ते पृथिव्या दुर्धर्षास्तत्र स्वर्गजितः स्थिताः ।
ततः परं न वः सेव्यः पितृलोकः सुदारुणः ।

राजधानी यमस्यैषा कष्टेन तमसावृता ॥₄₂॥

एतावदेव युष्माभिर्वीरा वानरपुङ्गवाः ।
शक्यं विचेतुं गन्तुं वा नातो गतिमतां गतिः ॥₄₃॥

सर्वमेतत्समालोक्य यच्चान्यदपि दृश्यते ।
गतिं विदिद्वा वैदेह्याः संनिवर्तितमर्हथ ॥₄₄॥

यस्तु मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति ।
मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥₄₅॥

ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः ।
कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति ॥₄₆॥

अमितबलपराक्रमा भवन्तो
विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः ।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वम्
तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वम् ॥₄₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तान्हरीन्दक्षिणां दिशम् ।
बुद्धिविक्रमसम्पन्नान्वायुवेगसमाञ्जवे ॥₁॥

अथाहूय महातेजाः सुषेणं नाम यूथपम् ।
तारायाः पितरं राजा श्वशुरभीमविक्रमम् ॥₂॥

अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च ।
साहाय्यं कुरु रामस्य कृत्येऽस्मिन्समुपस्थिते ॥₃॥

वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ।
अभिगच्छ दिशं सौम्य पश्चिमां वारुणीं प्रभो ॥₄॥

सुराष्ट्रान्सह बाह्लीकाञ्शूराभीरांस्तथैव च ।
स्फीताञ्जनपदान्नम्यान्विपुलानि पुराणि च ॥₅॥

पुंनागगहनं कुक्षिं बहुलोद्दालकाकुलम् ।
तथा केतकषण्डांश्च मार्गध्वं हरियूथपाः ॥₆॥

प्रत्यक्स्रोतोगमाश्चैव नद्यः शीतजलाः शिवाः ।
तापसानामरण्यानि कान्तारा गिरयश्च ये ॥₇॥

गिरिजालावृतां दुर्गां मार्गिबा पश्चिमां दिशम् ।
ततः पश्चिममासाद्य समुद्रं द्रष्टुमर्हथ ।
तिमि नक्रायुत जलमक्षोभ्यमथ वानरः ॥₈॥

ततः केतकषण्डेषु तमालगहनेषु च ।
कपयो विहरिष्यन्ति नारिकेलवनेषु च ॥₉॥

तत्र सीतां च मार्गध्वं निलयं रावणस्य च ।
मरीचिपत्तनं चैव रम्यं चैव जटीपुरम् ॥₁₀॥

अवन्तीमङ्गलोपां च तथा चालक्षितं वनम् ।
राष्ट्राणि च विशालानि पत्तनानि ततस्ततः ॥₁₁॥

सिन्धुसागरयोश्चैव सङ्गमे तत्र पर्वतः ।
महान्हेमगिरिर्नाम शतशृङ्गो महाद्रुमः ॥₁₂॥

तस्य प्रस्थेषु रम्येषु सिंहाः पक्षगमाः स्थिताः ।
तिमिमत्स्यगजांश्चैव नीडान्यारोपयन्ति ते ॥₁₃॥

तानि नीडानि सिंहानां गिरिशृङ्गगताश्च ये ।
दृप्तास्तृप्ताश्च मातङ्गास्तोयदस्वननिःस्वनाः ।
विचरन्ति विशालेऽस्मिंस्तोयपूर्णे समन्ततः ॥₁₄॥

तस्य शृङ्गं दिवस्पर्शं काञ्चनं चित्रपादपम् ।
सर्वमाशु विचेतव्यं कपिभिः कामरूपिभिः ॥₁₅॥

कोटिं तत्र समुद्रे तु काञ्चनीं शतयोजनम् ।
दुर्दर्शा परियात्रस्य गता द्रक्ष्यथ वानराः ॥₁₆॥

कोट्यस्तत्र चतुर्विंशद्गन्धर्वाणां तरस्विनाम् ।
वसन्त्यग्निनिकाशानां घोराणां कामरूपिणाम् ॥₁₇॥

नात्यासादयितव्यास्ते वानरैर्भीमविक्रमैः ।
नादेयं च फलं तस्माद्देशात्किञ्चित्सुखमैः ॥₁₈॥

दुरासदा हि ते वीराः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
फलमूलानि ते तत्र रक्षन्ते भीमविक्रमाः ॥₁₉॥

तत्र यत्नश्च कर्तव्यो मार्गितव्या च जानकी ।
न हि तेभ्यो भयं किञ्चित्कपिब्रमनुवर्तताम् ॥₂₀॥

चतुर्भागे समुद्रस्य चक्रवान्नाम पर्वतः ।
तत्र चक्रं सहस्रारं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥²¹॥

तत्र पञ्चजनं हत्वा हयग्रीवं च दानवम् ।
आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुरुषोत्तमः ॥²²॥

तस्य सानुषु चित्रेषु विशालासु गुहासु च ।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥²³॥

योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः ।
सुवर्णशृङ्गः सुश्रीमानगाधे वरुणालये ॥²⁴॥

तत्र प्रागुद्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम् ।
यस्मिन्वस्ति दुष्टात्मा नरको नाम गुहासु च ॥²⁵॥

तस्य सानुषु चित्रेषु विशालासु गुहासु च ।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥²⁶॥

तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं काञ्चनान्तरनिर्दरः ।
पर्वतः सर्वसौवर्णो धारा प्रस्रवणायुतः ॥²⁷॥

तं गजाश्च वराहाश्च सिंहा व्याघ्राश्च सर्वतः ।
अभिगर्जन्ति सततं तेन शब्देन दर्पिताः ॥²⁸॥

तस्मिन्हरिहयः श्रीमान्महेन्द्रः पाकशासनः ।
अभिषिक्तः सुरै राजा मेघवान्नाम पर्वतः ॥²⁹॥

तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं महेन्द्रपरिपालितम् ।
षष्टिं गिरिसहस्राणि काञ्चनानि गमिष्यथ ॥³⁰॥

तरुणादित्यवर्णानि भ्राजमानानि सर्वतः ।
जातरूपमयैर्वृक्षैः शोभितानि सुपुष्पितैः ॥³¹॥

तेषां मध्ये स्थितो राजा मेरुरुत्तमपर्वतः ।
आदित्येन प्रसन्नेन शैलो दत्तवरः पुरा ॥³²॥

तेनैवमुक्तः शैलेन्द्रः सर्व एव त्वदाश्रयाः ।
मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति दिवारात्रौ च काञ्चनाः ॥³³॥

त्वयि ये चापि वत्स्यन्ति देवगन्धर्वदानवाः ।
ते भविष्यन्ति रक्ताश्च प्रभया काञ्चनप्रभाः ॥³⁴॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च दिवौकसः ।
आगम्य पश्चिमां सन्ध्यां मेरुमुत्तमपर्वतम् ॥³⁵॥

आदित्यमुपतिष्ठन्ति तैश्च सूर्योऽभिपूजितः ।
अदृश्यः सर्वभूतानामस्तं गच्छति पर्वतम् ॥³⁶॥

योजनानां सहस्राणि दशतानि दिवाकरः ।
मुहूर्तार्धेन तं शीघ्रमभियाति शिलोच्चयम् ॥³⁷॥

शृङ्गे तस्य महद्दिव्यं भवनं सूर्यसंनिभम् ।
प्रासादगुणसम्बाधं विहितं विश्वकर्मणा ॥³⁸॥

शोभितं तरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः ।
निकेतं पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥³⁹॥

अन्तरा मेरुमस्तं च तालो दशशिरा महान् ।
जातरूपमयः श्रीमान्भ्राजते चित्रवेदिकः ॥⁴⁰॥

तेषु सर्वेषु दुर्गेषु सरःसु च सरित्सु च ।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥⁴¹॥

यत्र तिष्ठति धर्मात्मा तपसा स्वेन भावितः ।
मेरुसावर्णिरित्येव ख्यातो वै ब्रह्मणा समः ॥⁴²॥

प्रष्टव्यो मेरुसावर्णिर्महर्षिः सूर्यसंनिभः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रवृत्तिं मैथिलीं प्रति ॥⁴³॥

एतावज्जीवलोकस्य भास्करो रजनीक्षये ।
कृत्वा वितिमिरं सर्वमस्तं गच्छति पर्वतम् ॥⁴⁴॥

एतावद्धानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुङ्गवाः ।
अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥⁴⁵॥

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत ॥⁴⁶॥

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम ।
सहैव शूरो युष्माभिः श्वशुरो मे गमिष्यति ॥⁴⁷॥

श्रोतव्यं सर्वमेतस्य भवद्भिर्दिष्ट कारिभिः ।
गुरुरेष महाबाहुः श्वशुरो मे महाबलः ॥⁴⁸॥

भवन्तश्चापि विक्रान्ताः प्रमाणं सर्वकर्मसु ।
प्रमाणमेनं संस्थाप्य पश्यध्वं पश्चिमां दिशम् ॥⁴⁹॥

दृष्टायां तु नरेन्द्रस्या पत्न्याममिततेजसः ।
कृतकृत्या भविष्यामः कृतस्य प्रतिकर्मणा ॥⁵⁰॥

अतोऽन्यदपि यत्किञ्चित्कार्यस्यास्य हितं भवेत् ।
सम्प्रधार्य भवद्भिश्च देशकालार्थसंहितम् ॥⁵¹॥

ततः सुषेण प्रमुखाः प्लवङ्गमाः
सुग्रीववाक्यं निपुणं निशम्य ।
आमन्त्र्य सर्वे प्लवगाधिपं ते
जग्मुर्दिशं तां वरुणाभिगुप्ताम् ॥⁵²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

ततः सन्दिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम् ।
वीरं शतबलिं नाम वानरं वानरर्षभः ॥₁॥

उवाच राजा मन्त्रज्ञः सर्ववानरसम्मतम् ।
वाक्यमात्महितं चैव रामस्य च हितं तथा ॥₂॥

वृतः शतसहस्रेण बद्धिधानां वनौकसाम् ।
वैवस्वत सुतैः सार्धं प्रतिष्ठस्व स्वमन्त्रिभिः ॥₃॥

दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतंसकाम् ।
सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥₄॥

अस्मिन्कार्ये विनिवृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये ।
ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वराः ॥₅॥

कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना ।
तस्य चेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत् ॥₆॥

एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा ।
तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥₇॥

अयं हि सर्वभूतानां मान्यस्तु नरसत्तमः ।
अस्मासु चागतप्रीती रामः परपुरंजयः ॥₈॥

इमानि वनदुर्गाणि नद्यः शैलान्तराणि च ।
भवन्तः परिमार्गस्तु बुद्धिविक्रमसम्पदा ॥₉॥

तत्र म्लेच्छान्पुलिन्दांश्च शूरसेनांस्तथैव च ।

प्रस्थालान्भरतांश्चैव कुरूंश्च सह मद्रकैः ॥₁₀॥

काम्बोजान्यवनांश्चैव शकानारट्टकानपि ।
बाह्लीकानृषिकांश्चैव पौरवानथ टङ्कणान् ॥₁₁॥

चीनान्परमचीनांश्च नीहारांश्च पुनः पुनः ।
अन्विष्य दरदांश्चैव हिमवन्तं विचिन्वथ ॥₁₂॥

लोध्रपद्मकषण्डेषु देवदारुवनेषु च ।
रावणः सह वैदेह्य मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥₁₃॥

ततः सोमाश्रमं गत्वा देवगन्धर्वसेवितम् ।
कालं नाम महासानुं पर्वतं तं गमिष्यथ ॥₁₄॥

महत्सु तस्य शृङ्गेषु निदरिषु गुहासु च ।
विचिनुध्वं महाभागां रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥₁₅॥

तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं हेमवर्गं महागिरिम् ।
ततः सुदर्शनं नाम पर्वतं गन्तुमर्हथ ॥₁₆॥

तस्य काननषण्डेषु निदरिषु गुहासु च ।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥₁₇॥

तमतिक्रम्य चाकाशं सर्वतः शतयोजनम् ।
अपर्वतनदी वृक्षं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥₁₈॥

तं तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं रोमहर्षणम् ।
कैलासं पाण्डुरं शैलं प्राप्य हृष्टा भविष्यथ ॥₁₉॥

तत्र पाण्डुरमेघाभं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
कुबेरभवनं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥₂₀॥

विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला ।

हंसकारण्डवाकीर्णा अप्सरोगणसेविता ॥₂₁॥

तत्र वैश्रवणो राजा सर्वभूतनमस्कृतः ।
धनदो रमते श्रीमान्गुह्यकैः सह यक्षराट् ॥₂₂॥

तस्य चन्द्रनिकशेषु पर्वतेषु गुहासु च ।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः ॥₂₃॥

क्रौञ्चं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम् ।
अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत्स्मृतम् ॥₂₄॥

वसन्ति हि महात्मानस्तत्र सूर्यसमप्रभाः ।
देवैरप्यर्चिताः सम्यग्देवरूपा महर्षयः ॥₂₅॥

क्रौञ्चस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च ।
निर्दराश्च नितम्बाश्च विचेतव्यास्ततस्ततः ॥₂₆॥

क्रौञ्चस्य शिखरं चापि निरीक्ष्य च ततस्ततः ।
अवृक्षं कामशैलं च मानसं विहगालयम् ॥₂₇॥

न गतिस्तत्र भूतानां देवदानवरक्षसाम् ।
स च सर्वैर्विचेतव्यः ससानुप्रस्थभूधरः ॥₂₈॥

क्रौञ्चं गिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः ।
मयस्य भवनं तत्र दानवस्य स्वयं कृतम् ॥₂₉॥

मैनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकन्दरः ।
स्त्रीणामश्वमुखीनां च निकेतास्तत्र तत्र तु ॥₃₀॥

तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ।
सिद्धा वैखानसास्तत्र वालखिल्याश्च तापसाः ॥₃₁॥

वन्द्यास्ते तु तपःसिद्धास्तापसा वीतकल्मषाः ।

प्रष्टव्याश्चापि सीतायाः प्रवृत्तं विनयान्वितैः ॥₃₂॥

हेमपुष्करसञ्छन्नं तत्र वैखानसं सरः ।
तरुणादित्यसङ्काशैर्हसैर्विचरितं शुभैः ॥₃₃॥

औपवाहः कुबेरस्य सर्वभौम इति स्मृतः ।
गजः पर्येति तं देशं सदा सह करेणुभिः ॥₃₄॥

तत्सारः समतिक्रम्य नष्टचन्द्रदिवाकरम् ।
अनक्षत्रगणं व्योम निष्पयोदमनादिमत् ॥₃₅॥

गभस्तिभिरिवार्कस्य स तु देशः प्रकाशते ।
विश्राम्यद्भिस्तपः सिद्धैर्देवकल्पैः स्वयम्प्रभैः ॥₃₆॥

तं तु देशमतिक्रम्य शैलोदा नाम निम्नगा ।
उभयोस्तीरयोर्यस्याः कीचका नाम वेणवः ॥₃₇॥

ते नयन्ति परं तीरं सिद्धान्प्रत्यानयन्ति च ।
उत्तराः कुरवस्तत्र कृतपुण्यप्रतिश्रियाः ॥₃₈॥

ततः काञ्चनपद्माभिः पद्मिनीभिः कृतोदकाः ।
नीलवैदूर्यपत्राढ्या नद्यस्तत्र सहस्रशः ॥₃₉॥

रक्तोत्पलवनैश्चात्र मण्डिताश्च हिरण्मयैः ।
तरुणादित्यसदृशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः ॥₄₀॥

महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभ केसरैः ।
नीलोत्पलवनैश्चित्रैः स देशः सर्वतोवृतः ॥₄₁॥

निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ।
उद्धूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥₄₂॥

सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा नगोत्तमैः ।

जातरूपमयैश्चापि हुताशनसमप्रभैः ॥₄₃॥

नित्यपुष्पफलाश्चात्र नगाः पत्ररथाकुलाः ।
दिव्यगन्धरसस्पर्शाः सर्वकामान्स्रवन्ति च ॥₄₄॥

नानाकाराणि वासांसि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः ।
मुक्तावैदूर्यचित्राणि भूषणानि तथैव च ॥₄₅॥

स्त्रीणां यान्यनुरूपाणि पुरुषाणां तथैव च ।
सर्वर्तुसुखसेव्यानि फलन्त्यन्ये नगोत्तमाः ॥₄₆॥

महार्हाणि विचित्राणि हैमान्यन्ये नगोत्तमाः ।
शयनानि प्रसूयन्ते चित्रास्तारणवन्ति च ॥₄₇॥

मनःकान्तानि माल्यानि फलन्त्यत्रापरे द्रुमाः ।
पानानि च महार्हाणि भक्ष्याणि विविधानि च ॥₄₈॥

स्त्रियश्च गुणसम्पन्ना रूपयौवनलक्षिताः ।
गन्धर्वाः किंनरा सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा ।
रमन्ते सहितास्तत्र नारीभिर्भास्करप्रभाः ॥₄₉॥

सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे रतिपरायणाः ।
सर्वे कामार्थसहिता वसन्ति सह योषितः ॥₅₀॥

गीतवादित्रनिर्घोषः सोत्कृष्टहसितस्वनः ।
श्रूयते सततं तत्र सर्वभूतमनोहरः ॥₅₁॥

तत्र नामुदितः कश्चिन्नास्ति कश्चिदसत्प्रियः ।
अहन्यहनि वर्धन्ते गुणास्तत्र मनोरमाः ॥₅₂॥

समतिक्रम्य तं देशमुत्तरस्तोयसां निधिः ।
तत्र सोमगिरिर्नाम मध्ये हेममयो महान् ॥₅₃॥

इन्द्रलोकगता ये च ब्रह्मलोकगताश्च ये ।
देवास्तं समवेक्षन्ते गिरिराजं दिवं गतम् ॥⁵⁴॥

स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते ।
सूर्यलक्ष्म्याभिविज्ञेयस्तपसेव विवस्वता ॥⁵⁵॥

भगवानपि विश्वात्मा शम्भुरेकादशात्मकः ।
ब्रह्मा वसति देवेशो ब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥⁵⁶॥

न कथञ्चन गन्तव्यं कुरूणामुत्तरेण वः ।
अन्येषामपि भूतानां नातिक्रामति वै गतिः ॥⁵⁷॥

सा हि सोमगिरिर्नाम देवानामपि दुर्गमः ।
तमालोक्य ततः क्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥⁵⁸॥

एतावद्धानरैः शक्यं गन्तुं वानरपुङ्गवाः ।
अभास्करममर्यादं न जानीमस्ततः परम् ॥⁵⁹॥

सर्वमेतद्विचेतव्यं यन्मया परिकीर्तितम् ।
यदन्यदपि नोक्तं च तत्रापि क्रियतां मतिः ॥⁶⁰॥

ततः कृतं दाशरथेर्महत्प्रियम्
महत्तरं चापि ततो मम प्रियम् ।
कृतं भविष्यत्यनिलानलोपमा
विदेहजा दर्शनजेन कर्मणा ॥⁶¹॥

ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा
मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः ।
चरिष्यथोर्वी प्रतिशान्तशत्रवः
सहप्रिया भूतधराः प्लवङ्गमाः ॥⁶²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

विशेषेण तु सुग्रीवो हनुमत्यर्थमुक्तवान् ।
स हि तस्मिन्हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥₁॥

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये ।
नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव ॥₂॥

सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः ।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥₃॥

गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे ।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ॥₄॥

तेजसा वापि ते भूतं समं भुवि न विद्यते ।
तद्यथा लभ्यते सीता तच्चमेवोपपादय ॥₅॥

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।
देशकालानुवृत्तश्च नयश्च नयपण्डित ॥₆॥

ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति ।
विदिन्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥₇॥

सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः ।
निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्यसाधने ॥₈॥

तदेवं प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः ।
भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥₉॥

तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम् ।

कृतार्थ इव संवृत्तः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥₁₀॥

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः ॥₁₁॥

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥₁₂॥

व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः ।
सुग्रीवस्य च सन्देशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥₁₃॥

स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः स्थाप्य मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
वन्दिता चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगोत्तमः ॥₁₄॥

स तत्प्रकर्षन्हरिणां बलं महद्-
बभूव वीरः पवनात्मजः कपि ।
गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः
शशीव नक्षत्रगणोपशोभितः ॥₁₅॥

अतिबलबलमाश्रितस्तवाहम्
हरिवरविक्रमविक्रमैरनल्पैः ।
पवनसुत यथाभिगम्यते सा
जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञाय हरिपुङ्गवाः ।
शलभा इव सञ्छाद्य मेदिनीं सम्प्रतस्थिरे ॥₁॥

रामः प्रस्रवणे तस्मिन्त्यवसत्सहलक्ष्मणः ।
प्रतीक्षमाणस्तं मासं यः सीताधिगमे कृतः ॥₂॥

उत्तरां तु दिशं रम्यां गिरिराजसमावृताम् ।
प्रतस्थे सहसा वीरो हरिः शतबलिस्तदा ॥₃॥

पूर्वां दिशं प्रति ययौ विनतो हरियूथपः ॥₄॥

ताराङ्गदादि सहितः प्लवगः पवनात्मजः ।
अगस्त्यचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः ॥₅॥

पश्चिमां तु दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः ।
प्रतस्थे हरिशार्दूलो भृशं वरुणपालिताम् ॥₆॥

ततः सर्वा दिशो राजा चोदयित्वा यथा तथम् ।
कपिसेना पतीन्मुख्यान्मुमोद सुखितः सुखम् ॥₇॥

एवं सञ्चोदिताः सर्वे राजा वानरयूथपाः ।
स्त्वां स्त्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः सम्प्रतस्थिरे ॥₈॥

नदन्तश्चोन्नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
क्ष्वेलन्तो धावमानाश्च ययुः प्लवगसत्तमाः ।
आनयिष्यामहे सीतां हनिष्यामश्च रावणम् ॥₉॥

अहमेको हनिष्यामि प्राप्तं रावणमाहवे ।
ततश्चोन्मथ्य सहसा हरिष्ये जनकात्मजाम् ॥₁₀॥

वेपमानं श्रमेणाद्य भवद्भिः स्थीयतामिति ।
एक एवाहरिष्यामि पातालादपि जानकीम् ॥₁₁॥

विधमिष्याम्यहं वृक्षान्दारयिष्याम्यहं गिरीन् ।
धरणीं दारयिष्यामि क्षोभयिष्यामि सागरान् ॥₁₂॥

अहं योजनसङ्ख्यायाः प्लविता नात्र संशयः ।
शतं योजनसङ्ख्यायाः शतं समधिकं ह्यहम् ॥₁₃॥

भूतले सागरे वापि शैलेषु च वनेषु च ।
पातालस्यापि वा मध्ये न ममाच्छिद्यते गतिः ॥₁₄॥

इत्येकैकं तदा तत्र वानरा बलदर्पिताः ।
ऊचुश्च वचनं तस्मिन्हरिराजस्य संनिधौ ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

गतेषु वानरेन्द्रेषु रामः सुग्रीवमब्रवीत् ।
कथं भवान्विनाजीते सर्वं वै मण्डलं भुवः ॥₁॥

सुग्रीवस्तु ततो राममुवाच प्रणतात्मवान् ।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये विस्तरेण नरर्षभ ॥₂॥

यदा तु दुन्दुभिं नाम दानवं महिषाकृतिम् ।
परिकालयते वाली मलयं प्रति पर्वतम् ॥₃॥

तदा विवेश महिषो मलयस्य गुहां प्रति ।
विवेश वाली तत्रापि मलयं तज्जिघांसया ॥₄॥

ततोऽहं तत्र निक्षिप्तो गुहाद्वारिविनीतवत् ।
न च निष्क्रमते वाली तदा संवत्सरे गते ॥₅॥

ततः क्षतजवेगेन आपुपूरे तदा बिलम् ।
तदहं विस्मितो दृष्ट्वा भ्रातृशोकविषादितः ॥₆॥

अथाहं कृतबुद्धिस्तु सुव्यक्तं निहतो गुरुः ।
शिलापर्वतसङ्काशा बिलद्वारि मया कृता ।
अशक्नुवन्निष्क्रमितुं महिषो विनशेदिति ॥₇॥

ततोऽहमागां किष्किन्धां निराशस्तस्य जीविते ।
राज्यं च सुमहत्प्राप्तं तारा च रुमया सह ।
मित्रैश्च सहितस्तत्र वसामि विगतज्वरः ॥₈॥

आजगाम ततो वाली हत्वा तं दानवर्षभम् ।
ततोऽहमददां राज्यं गौरवाद्भययन्त्रितः ॥₉॥

स मां जिघांसुर्दुष्टात्मा वाली प्रव्यथितेन्द्रियः ।
परिलाकयते क्रोधाद्धावन्तं सचिवैः सह ॥₁₀॥

ततोऽहं वालिना तेन सानुबन्धः प्रधावितः ।
नदीश्च विविधाः पश्यन्वनानि नगराणि च ॥₁₁॥

आदर्शतलसङ्काशा ततो वै पृथिवी मया ।
अलातचक्रप्रतिमा दृष्टा गोष्पदवत्तदा ॥₁₂॥

ततः पूर्वमहं गत्वा दक्षिणामहमाश्रितः ।
दिशं च पश्चिमां भूयो गतोऽस्मि भयशङ्कितः ।
उत्तरां तु दिशं यान्तं हनुमान्मामथाब्रवीत् ॥₁₃॥

इदानीं मे स्मृतं राजन्यथा वाली हरीश्वरः ।
मतङ्गेन तदा शप्तो ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले ॥₁₄॥

प्रविशेद्यदि वा वाली मूर्धास्य शतधा भवेत् ।
तत्र वासः सुखोऽस्माकं निरुद्विग्नो भविष्यति ॥₁₅॥

ततः पर्वतमासाद्य ऋश्यमूकं नृपात्मज ।
न विवेश तदा वाली मतङ्गस्य भयात्तदा ॥₁₆॥

एवं मया तदा राजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ।
पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं गुहामस्म्यागतस्ततः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपियूथपाः ।
व्यादिष्टाः कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा ॥₁॥

सरांसि सरितः कक्षानाकाशं नगराणि च ।
नदीदुर्गास्तथा शैलान्विचिन्वन्ति समन्ततः ॥₂॥

सुग्रीवेण समाख्यातान्सर्वे वानरयूथपाः ।
प्रदेशान्प्रविचिन्वन्ति सशैलवनकाननान् ॥₃॥

विचिन्त्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः ।
समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेशु वानराः ॥₄॥

सर्वर्तुकांश्च देशेषु वानराः सफलान्द्रुमान् ।
आसाद्य रजनीं शय्यां चक्रुः सर्वेष्वहःसु ते ॥₅॥

तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः ।
कपिराजेन सङ्गम्य निराशाः कपियूथपाः ॥₆॥

विचित्य तु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह ।
अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः ॥₇॥

उत्तरां तु दिशं सर्वां विचित्य स महाकपिः ।
आगतः सह सैन्येन वीरः शतबलिस्तदा ॥₈॥

सुषेणः पश्चिमामाशां विचित्य सह वानरैः ।
समेत्य मासे सम्पूर्णे सुग्रीवमुपचक्रमे ॥₉॥

तं प्रस्रवणपृष्ठस्थं समासाद्याभिवाद्य च ।

आसीनं सह रामेण सुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥₁₀॥

विचिताः पर्वताः सर्वे वनानि नगराणि च ।
निम्नगाः सागरान्ताश्च सर्वे जनपदास्तथा ॥₁₁॥

गुहाश्च विचिताः सर्वा यास्त्वया परिकीर्तिताः ।
विचिताश्च महागुल्मा लताविततसन्तताः ॥₁₂॥

गहनेषु च देशेषु दुर्गेषु विषमेषु च ।
सत्त्वान्यतिप्रमाणानि विचितानि हतानि च ।
ये चैव गहना देशा विचितास्ते पुनः पुनः ॥₁₃॥

उदारसत्त्वाभिजनो महात्मा
स मैथिलीं द्रक्ष्यति वानरेन्द्रः ।
दिशं तु यामेव गता तु सीता
तामास्थितो वायुसुतो हनूमान् ॥₁₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्त्वारिंशः सर्गः॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

सहताराङ्गदाभ्यां तु गत्वा स हनुमान्कपिः ।
सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं तं देशमुपचक्रमे ॥₁॥

स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः ।
विचिनोति स्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥₂॥

पर्वताग्रान्नदीदुर्गान्सरांसि विपुलान्द्रुमान् ।
वृक्षषण्डांश्च विविधान्यर्वतान्यनपादपान् ॥₃॥

अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ।
न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥₄॥

ते भक्षयन्तो मूलानि फलानि विविधानि च ।
अन्वेषमाणा दुर्धर्षा न्यवसंस्तत्र तत्र ह ।
स तु देशो दुरन्वेषो गुहागहनवान्महान् ॥₅॥

त्यक्त्वा तु तं तदा देशं सर्वे वै हरियूथपाः ।
देशमन्यं दुराधर्षं विविशुश्चाकुतोभयाः ॥₆॥

यत्र वन्ध्यफला वृक्षा विपुष्पाः पर्णवर्जिताः ।
निस्तोयाः सरितो यत्र मूलं यत्र सुदुर्लभम् ॥₇॥

न सन्ति महिषा यत्र न मृगा न च हस्तिनः ।
शार्दूलाः पक्षिणो वापि ये चान्ये वनगोचराः ॥₈॥

स्निग्धपत्राः स्थले यत्र पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः ।
प्रेक्षणीयाः सुगन्धाश्च भ्रमरैश्चापि वर्जिताः ॥₉॥

कण्डुर्नाम महाभागः सत्यवादी तपोधनः ।
महर्षिः परमामर्षी नियमैर्दुष्प्रधर्षणः ॥₁₀॥

तस्य तस्मिन्वने पुत्रो बालको दशवार्षिकः ।
प्रनष्टो जीवितान्ताय क्रुद्धस्तत्र महामुनिः ॥₁₁॥

तेन धर्मात्मना शप्तं कृत्स्नं तत्र महद्वनम् ।
अशरण्यं दुरार्धर्षं मृगपक्षिविवर्जितम् ॥₁₂॥

तस्य ते काननान्तांस्तु गिरीणां कन्दराणि च ।
प्रभवानि नदीनाञ्च विचिन्वन्ति समाहिताः ॥₁₃॥

तत्र चापि महात्मानो नापश्यञ्जनकात्मजाम् ।
हर्तारं रावणं वापि सुग्रीवप्रियकारिणः ॥₁₄॥

ते प्रविश्य तु तं भीमं लतागुल्मसमावृतम् ।
ददृशुः क्रूरकर्माणमसुरं सुरनिर्भयम् ॥₁₅॥

तं दृष्ट्वा वनरा घोरं स्थितं शैलमिवापरम् ।
गाढं परिहिताः सर्वे दृष्ट्वा तं पर्वतोपमम् ॥₁₆॥

सोऽपि तान्वानरान्सर्वान्नष्टाः स्थेत्यब्रवीद्वली ।
अभ्यधावत सङ्क्रुद्धो मुष्टिमुद्यम्य संहितम् ॥₁₇॥

तमापतन्तं सहसा वालिपुत्रोऽङ्गदस्तदा ॥₁₈॥
स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्धमन् ॥₁₉॥

असुरो न्यपतद्भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः ।
ते तु तस्मिन्निरुच्छ्वासे वानरा जितकाशिनः ।
व्यचिन्वन्प्रायशस्तत्र सर्वं तद्गिरिगह्वरम् ॥₂₀॥

विचितं तु ततः कृत्वा सर्वे ते काननं पुनः ।
अन्यदेवापरं घोरं विविशुर्गिरिगह्वरम् ॥₂₁॥

ते विचिन्त्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः ।

एकान्ते वृक्षमूले तु निषेदुर्दीनमानसाः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

अथाङ्गदस्तदा सर्वान्वानरानिदमब्रवीत् ।
परिश्रान्तो महाप्राज्ञः समाश्वास्य शनैर्वचः ॥₁॥

वनानि गिरयो नद्यो दुर्गाणि गहनानि च ।
दर्यो गिरिगुहाश्चैव विचिता नः समन्ततः ॥₂॥

तत्र तत्र सहास्माभिर्जानकी न च दृश्यते ।
तद्वा रक्षो हता येन सीता सुरसुतोपमा ॥₃॥

कालश्च नो महान्यातः सुग्रीवश्चोग्रशासनः ।
तस्माद्भवन्तः सहिता विचिन्वन्तु समन्ततः ॥₄॥

विहाय तन्द्नीं शोकं च निद्रां चैव समुत्थिताम् ।
विचिनुध्वं यथा सीतां पश्यामो जनकात्मजाम् ॥₅॥

अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम् ।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्वीम्यहम् ॥₆॥

अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः ।
खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वं वनमेतद्विचीयताम् ॥₇॥

अवश्यं क्रियमाणस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।
अलं निर्वेदमागम्य न हि नो मलिनं क्षमम् ॥₈॥

सुग्रीवः क्रोधनो राजा तीक्ष्णदण्डश्च वानराः ।
भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः ॥₉॥

हितार्थमेतदुक्तं वः क्रियतां यदि रोचते ।

उच्यतां वा क्षमं यन्नः सर्वेषामेव वानराः ॥₁₀॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वचनं गन्धमादनः ।
उवाचाव्यक्तया वाचा पिपासा श्रमखिन्नया ॥₁₁॥

सदृशं खलु वो वाक्यमङ्गदो यदुवाच ह ।
हितं चैवानुकूलं च क्रियतामस्य भाषितम् ॥₁₂॥

पुनर्मार्गामहे शैलान्कन्दरांश्च दरीस्तथा ।
काननानि च शून्यानि गिरिप्रस्रवणानि च ॥₁₃॥

यथोद्दिष्टानि सर्वाणि सुग्रीवेण महात्मना ।
विचिन्वन्तु वनं सर्वे गिरिदुर्गाणि सर्वशः ॥₁₄॥

ततः समुत्थाय पुनर्वानरास्ते महाबलाः ।
विन्ध्यकाननसङ्कीर्णा विचेरुर्दक्षिणां दिशम् ॥₁₅॥

ते शारदाभ्रप्रतिमं श्रीमद्रजतपर्वतम् ।
शृङ्गवन्तं दरीवन्तमधिरुह्य च वानराः ॥₁₆॥

तत्र लोध्रवनं रम्यं सप्तपर्णवनानि च ।
विचिन्वन्तो हरिवराः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः ॥₁₇॥

तस्याग्रमधिरूढास्ते श्रान्ता विपुलविक्रमाः ।
न पश्यन्ति स्म वैदेहीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥₁₈॥

ते तु दृष्टिगतं कृत्वा तं शैलं बहुकन्दरम् ।
अवारोहन्त हरयो वीक्षमाणाः समन्ततः ॥₁₉॥

अवरुह्य ततो भूमिं श्रान्ता विगतचेतसः ।
स्थित्वा मुहूर्तं तत्राथ वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥₂₀॥

ते मुहूर्तं समाश्रुताः किञ्चिद्भग्नपरिश्रमाः ।

पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम् ॥₂₁॥

हनुमत्प्रमुखास्ते तु प्रस्थिताः प्लवगर्षभाः ।
विन्ध्यमेवादितस्तावद्विचेरुस्ते समन्ततः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

सह ताराङ्गदाभ्यां तु सङ्गम्य हनुमान्कपिः ।
विचिनोति स्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥₁॥

सिंहशार्दूलजुष्टाश्च गुहाश्च परितस्तथा ।
विषमेषु नगेन्द्रस्य महाप्रस्रवणेषु च ॥₂॥

तेषां तत्रैव वसतां स कालो व्यत्यवर्तत ॥₃॥

स हि देशो दुरन्वेषो गुहा गहनवान्महान् ।
तत्र वायुसुतः सर्वं विचिनोति स्म पर्वतम् ॥₄॥

परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥₅॥

मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनुमाञ्जाम्बवानपि ।
अङ्गदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः ॥₆॥

गिरिजालावृतान्देशान्मार्गिबा दक्षिणां दिशम् ।
क्षुत्पिपासा परीताश्च श्रान्ताश्च सलिलार्थिनः ।
अवकीर्णं लतावृक्षैर्ददृशुस्ते महाबिलम् ॥₇॥

ततः क्रौञ्चाश्च हंसाश्च सारसाश्चापि निष्क्रमन् ।
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्ताङ्गाः पद्मरेणुभिः ॥₈॥

ततस्तद्विलमासाद्य सुगन्धि दुरतिक्रमम् ।
विस्मयव्यग्रमनसो बभूवुर्वानरर्षभाः ॥₉॥

संजातपरिशङ्कास्ते तद्विलं प्लवगोत्तमाः ।
अभ्यपद्यन्त संहृष्टास्तेजोवन्तो महाबलाः ॥₁₀॥

ततः पर्वतकूटाभो हनुमान्मारुतात्मजः ।
अब्रवीद्वानरान्सर्वान्कान्तार वनकोविदः ॥₁₁॥

गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वा दक्षिणां दिशम् ।
वयं सर्वे परिश्रान्ता न च पश्यामि मैथिलीम् ॥₁₂॥

अस्माद्यापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः ।
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वशः ॥₁₃॥

नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः ।
तथा चेमे बिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥₁₄॥

इत्युक्तास्तद्विलं सर्वे विविशुस्तिमिरावृतम् ।
अचन्द्रसूर्यं हरयो ददृशू रोमहर्षणम् ॥₁₅॥

ततस्तस्मिन्बिले दुर्गे नानापादपसङ्कुले ।
अन्योन्यं सम्परिष्वज्य जग्मुर्योजनमन्तरम् ॥₁₆॥

ते नष्टसंज्ञास्तृषिताः सम्भ्रान्ताः सलिलार्थिनः ।
परिपेतुर्बिले तस्मिन्कश्चित्कालमतन्द्रिताः ॥₁₇॥

ते कृशा दीनवदनाः परिश्रान्ताः प्लवङ्गमाः ।
आलोकं ददृशुर्वीरा निराशा जीविते तदा ॥₁₈॥

ततस्तं देशमागम्य सौम्यं वितिमिरं वनम् ।
ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् ॥₁₉॥

सालांस्तालांश्च पुंनागान्ककुभान्वञ्जुलान्धवान् ।
चम्पकान्नागवृक्षांश्च कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ॥₂₀॥

तरुणादित्यसङ्काशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ।
नीलवैदूर्यवर्णाश्च पद्मिनीः पतगावृताः ॥₂₁॥

महद्भिः काञ्चनैर्वृक्षैर्वृतं बालार्क संनिभैः ।
जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्च सकच्छपैः ॥₂₂॥

नलिनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः ।
काञ्चनानि विमानानि राजतानि तथैव च ॥₂₃॥

तपनीयगवाक्षाणि मुक्ताजालावृतानि च ।
हैमराजतभौमानि वैदूर्यमणिमन्ति च ॥₂₄॥

ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः ।
पुष्पितान्फलिनो वृक्षान्प्रवालमणिसंनिभान् ॥₂₅॥

काञ्चनभ्रमरांश्चैव मधूनि च समन्ततः ।
मणिकाञ्चनचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥₂₆॥

महार्हाणि च यानानि ददृशुस्ते समन्ततः ।
हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च सञ्चयान् ॥₂₇॥

अगरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च सञ्चयान् ।
शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च ॥₂₈॥

महार्हाणि च पानानि मधूनि रसवन्ति च ।
दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च सञ्चयान् ।
कम्बलानां च चित्राणामजिनानां च सञ्चयान् ॥₂₉॥

तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तत्र महाप्रभाः ।
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं काञ्चिददूरतः ॥₃₀॥

तां दृष्ट्वा भृशसन्नस्ताश्चीरकृष्णाजिनाम्बराम् ।
तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥₃₁॥

ततो हनूमान्गिरिसंनिकाशः
कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम् ।

पप्रच्छ का त्वं भवनं बिलं च
रत्नानि चेमानि वदस्व कस्य ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

इत्युक्त्वा हनुमांस्तत्र पुनः कृष्णाजिनाम्बराम् ।
अब्रवीत्तां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ॥₁॥

इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् ।
क्षुत्पिपासा परिश्रान्ताः परिखिन्नाश्च सर्वशः ॥₂॥

महद्विरण्या विवरं प्रविष्टाः स्म पिपासिताः ।
इमांस्त्वेवं विधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान् ।
दृष्ट्वा वयं प्रव्यथिताः सम्भ्रान्ता नष्टचेतसः ॥₃॥

कस्येमे काञ्चना वृक्षास्तरुणादित्यसंनिभाः ।
शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च ॥₄॥

काञ्चनानि विमानानि राजतानि गृहाणि च ।
तपनीय गवाक्षाणि मणिजालावृतानि च ॥₅॥

पुष्पिताः फालवन्तश्च पुण्याः सुरभिगन्धिनः ।
इमे जाम्बूनदमयाः पादपाः कस्य तेजसा ॥₆॥

काञ्चनानि च पद्मानि जातानि विमले जले ।
कथं मत्स्याश्च सौवर्णा चरन्ति सह कच्छपैः ॥₇॥

आत्मानमनुभावं च कस्य चैतत्तपोबलम् ।
अजानतां नः सर्वेषां सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥₈॥

एवमुक्त्वा हनुमता तापसी धर्मचारिणी ।
प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता ॥₉॥

मयो नाम महातेजा मायावी दानवर्षभः ।
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् ॥₁₀॥

पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ।
येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम् ॥₁₁॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशसनं धनम् ॥₁₂॥

विधाय सर्वं बलवान्सर्वकामेश्वरस्तदा ।
उवास सुखितः कालं कञ्चिदस्मिन्महावने ॥₁₃॥

तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुङ्गवम् ।
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरन्दरः ॥₁₄॥

इदं च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम् ।
शाश्वतः कामभोगश्च गृहं चेदं हिरण्मयम् ॥₁₅॥

दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयं प्रभा ।
इदं रक्षामि भवनं हेमाया वानरोत्तम ॥₁₆॥

मम प्रियसखी हेमा नृत्तगीतविशारदा ।
तया दत्तवरा चास्मि रक्षामि भवनोत्तमम् ॥₁₇॥

किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्ताराणि प्रपद्यथ ।
कथं चेदं वनं दुर्गं युष्माभिरुपलक्षितम् ॥₁₈॥

इमान्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च ।
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हथ ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

अथ तानब्रवीत्सर्वान्विश्रान्तान्हरियूथपान् ।
इदं वचनमेकाग्रा तापसी धर्मचारिणी ॥₁॥

वानरा यदि वः खेदः प्रनष्टः फलभक्षणात् ।
यदि चैतन्मया श्राव्यं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥₂॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ।
आर्जवेन यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₃॥

राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ।
रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥₄॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ।
तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हता बलात् ॥₅॥

वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः ।
राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् ॥₆॥

अगस्त्यचरितामाशां दक्षिणां यमरक्षिताम् ।
सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरङ्गदप्रमुखैर्वयम् ॥₇॥

रावणं सहिताः सर्वे राक्षसं कामरूपिणम् ।
सीतया सह वैदेह्या मार्गध्वमिति चोदिताः ॥₈॥

विचित्य तु वयं सर्वे समग्रां दक्षिणां दिशम् ।
बुभुक्षिताः परिश्रान्ता वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥₉॥

विवर्णवदनाः सर्वे सर्वे ध्यानपरायणाः ।

नाधिगच्छामहे पारं मग्नाश्चिन्तामहार्णवे ॥₁₀॥

चारयन्तस्ततश्चक्षुर्दृष्टवन्तो महद्विलम् ।
लतापादपसञ्छन्नं तिमिरेण समावृतम् ॥₁₁॥

अस्माद्धंसा जलक्लिन्नाः पक्षैः सलिलरेणुभिः ।
कुरराः सारसाश्चैव निष्पतन्ति पतत्रिणः ।
साध्वत्र प्रविशामेति मया तूक्ताः प्लवङ्गमाः ॥₁₂॥

तेषामपि हि सर्वेषामनुमानमुपागतम् ।
गच्छामः प्रविशामेति भर्तृकार्यद्वरान्विताः ॥₁₃॥

ततो गाढं निपतिता गृह्य हस्तौ परस्परम् ।
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् ॥₁₄॥

एतन्नः कायमेतेन कृत्येन वयमागताः ।
त्वां चैवोपगताः सर्वे परिदूना बुभुक्षिताः ॥₁₅॥

आतिथ्यधर्मदत्तानि मूलानि च फलानि च ।
अस्माभिरुपभुक्तानि बुभुक्षापरिपीडितैः ॥₁₆॥

यत्त्वया रक्षिताः सर्वे म्रियमाणा बुभुक्षया ।
ब्रूहि प्रत्युपकारार्थं किं ते कुर्वन्तु वानराः ॥₁₇॥

एवमुक्ता तु सर्वज्ञा वानरैस्तैः स्वयम्प्रभा ।
प्रत्युवाच ततः सर्वानिदं वानरयूथपम् ॥₁₈॥

सर्वेषां परितुष्टास्मि वानराणां तरस्विनाम् ।
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित् ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

एवमुक्तः शुभं वाक्यं तापस्या धर्मसंहितम् ।
उवाच हनुमान्वाक्यं तामनिन्दितचेष्टिताम् ॥₁॥

शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणि ।
यः कृतः समयोऽस्माकं सुग्रीवेण महात्मना ।
स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम् ॥₂॥

सा त्वमस्माद्विलाद्धोरादुत्तारयितुमर्हसि ॥₃॥

तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रान्तान्गतायुषः ।
त्रातुमर्हसि नः सर्वान्सुग्रीवभयशङ्कितान् ॥₄॥

महच्च कार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि ।
तच्चापि न कृतं कार्यमस्माभिरिह वासिभिः ॥₅॥

एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत् ।
जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम् ॥₆॥

तपसस्तु प्रभावेन नियमोपार्जितेन च ।
सर्वानेव बिलादस्मादुद्धरिष्यामि वानरान् ॥₇॥

निमीलयत चक्षूषि सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
न हि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः ॥₈॥

ततः सम्मीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः ।
सहसा पिदधुर्दृष्टिं हृष्टा गमनकाङ्क्षिणः ॥₉॥

वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा ।
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया ॥₁₀॥

ततस्तान्वानरान्सर्वास्तापसी धर्मचारिणी ।
निःसृतान्विषमात्तस्मात्समाश्वास्येदमब्रवीत् ॥¹¹॥

एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः ।
एष प्रसवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः ॥¹²॥

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः ।
इत्युक्त्वा तद्विलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयम्प्रभा ॥¹³॥

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् ।
अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥¹⁴॥

मयस्य माया विहितं गिरिदुर्गं विचिन्वताम् ।
तेषां मासो व्यतिक्रान्तो यो राज्ञा समयः कृतः ॥¹⁵॥

विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे सम्प्रपुष्पितपादपे ।
उपविश्य महाभागाश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥¹⁶॥

ततः पुष्पातिभाराग्रौल्लताशतसमावृतान् ।
द्रुमान्वासन्तिकान्दृष्ट्वा बभूवुर्भयशङ्किताः ॥¹⁷॥

ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम् ।
नष्टसन्देशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ॥¹⁸॥

स तु सिंहर्षभ स्कन्धः पीनायतभुजः कपिः ।
युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥¹⁹॥

शासनात्कपिराजस्य वयं सर्वे विनिर्गताः ।
मासः पूर्णो बिलस्थानां हरयः किं न बुध्यते ॥²⁰॥

तस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम् ।
प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम् ॥²¹॥

तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामिभावे व्यवस्थितः ।
न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान् ॥₂₂॥

अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति ।
तस्मात्क्षममिहाद्यैव प्रायोपविशनं हि नः ॥₂₃॥

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च ।
यावन्न घातयेद्राजा सर्वान्प्रतिगतानितः ।
वधेनाप्रतिरूपेण श्रेयान्मृत्युरिहैव नः ॥₂₄॥

न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥₂₅॥

स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम् ।
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः ॥₂₆॥

किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे ।
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि ॥₂₇॥

एतच्छ्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम् ।
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन् ॥₂₈॥

तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियासक्तश्च राघवः ।
अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वास्मांश्च समागतान् ॥₂₉॥

राघवप्रियकामार्थं घातयिष्यत्यसंशयम् ।
न क्षमं चापराधानां गमनं स्वामिपार्श्वतः ॥₃₀॥

प्लवङ्गमानां तु भयार्दितानाम्
श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे ।
अलं विषादेन बिलं प्रविश्य
वसाम सर्वे यदि रोचते वः ॥₃₁॥

इदं हि माया विहितं सुदुर्गमम्
प्रभूतवृक्षोदकभोज्यपेयम् ।
इहास्ति नो नैव भयं पुरन्दरान्
न राघवाद्धानरराजतोऽपि वा ॥₃₂॥

श्रुत्वाङ्गदस्यापि वचोऽनुकूलम्
ऊचुश्च सर्वे हरयः प्रतीताः ।
यथा न हन्येम तथाविधानम्
असक्तमदैव विधीयतां नः ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि ।
अथ मेने हृतं राज्यं हनुमानङ्गदेन तत् ॥₁॥

बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम् ।
चतुर्दशगुणं मेने हनुमान्वालिनः सुतम् ॥₂॥

आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः ।
शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया ॥₃॥

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः ।
शुश्रूषमाणं तारस्य शुक्रस्येव पुरन्दरम् ॥₄॥

भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
अभिसन्धातुमारेभे हनुमानङ्गदं ततः ॥₅॥

स चतुर्णामुपायानां तृतीयमुपवर्णयन् ।
भेदयामास तान्सर्वान्वानरान्वाक्यसम्पदा ॥₆॥

तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम् ।
भीषणैर्बहुभिर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः ॥₇॥

त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै धुरम् ।
दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता ॥₈॥

नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुङ्गव ।
नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारान्विना त्वया ॥₉॥

त्वां नैते ह्यनुयुञ्ज्युः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते ।

यथायं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः ॥₁₀॥

न ह्यहं त इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः ।
दण्डेन न त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम् ॥₁₁॥

विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसः ।
आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥₁₂॥

यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद्विलमिति श्रुतम् ।
एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यं विदारणे ॥₁₃॥

स्वल्पं हि कृतमिन्द्रेण क्षिपता ह्यशनिं पुरा ।
लक्ष्मणो निशितैर्बाणैर्भिन्द्यात्पत्रपुटं यथा ।
लक्ष्मणस्य च नाराचा बहवः सन्ति तद्विधाः ॥₁₄॥

अवस्थाने यदैव त्वमासिष्यसि परन्तप ।
तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः ॥₁₅॥

स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः ।
खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वां करिष्यन्ति पृष्ठतः ॥₁₆॥

स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः ।
तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद्भविष्यसि ॥₁₇॥

न च जातु न हिंस्युस्त्वां घोरा लक्ष्मणसायकाः ।
अपवृत्तं जिघांसन्तो महावेगा दुरासदाः ॥₁₈॥

अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम् ।
आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्ये त्वां स्थापयिष्यति ॥₁₉॥

धर्मकामः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः ।
शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च ना त्वां जातु जिघांसति ॥₂₀॥

प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम् ।
तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ।
स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

स्थैर्यं सर्वात्मना शौचमानृशंस्यमथार्जवम् ।
विक्रमैश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते ॥₂॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्या जीवितो महिषीं प्रियाम् ।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः ॥₃॥

कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा दुरात्मना ।
युद्धायाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम् ॥₄॥

सत्यात्पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः ।
विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत् ॥₅॥

लक्ष्मणस्य भयादेन नाधर्मभयभीरुणा ।
आदिष्टा मार्गितुं सीतां धर्ममस्मिन्कथं भवेत् ॥₆॥

तस्मिन्यापे कृतघ्ने तु स्मृतिहीने चलात्मनि ।
आर्यः को विश्वसेज्जातु तत्कुलीनो जिजीविषुः ॥₇॥

राज्ये पुत्रं प्रतिष्ठाप्य सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
कथं शत्रुकुलीनं मां सुग्रीवो जीवयिष्यति ॥₈॥

भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च हीनशक्तिः कथं ह्यहम् ।
किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः ॥₉॥

उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत् ।

शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात् ॥₁₀॥

बन्धनाच्चावसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम् ।
अनुजानीत मां सर्वे गृहान्गच्छन्तु वानराः ॥₁₁॥

अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याम्यहं पुरीम् ।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे ॥₁₂॥

अभिवादनपूर्वं तु राजा कुशलमेव च ।
वाच्यस्ततो यवीयान्मे सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥₁₃॥

आरोग्यपूर्वं कुशलं वाच्या माता रुमा च मे ।
मातरं चैव मे तारामाश्वासयितुमर्हथ ॥₁₄॥

प्रकृत्या प्रियपुत्रा सा सानुक्रोशा तपस्विनी ।
विनष्टं मामिह श्रुत्वा व्यक्तं हास्यति जीवितम् ॥₁₅॥

एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धानप्यभिवाद्य च ।
संविवेशाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मनाः ॥₁₆॥

तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः ।
नयनेभ्यः प्रमुमुचुरुष्णं वै वारिदुःखिताः ॥₁₇॥

सुग्रीवं चैव निन्दन्तः प्रशंसन्तश्च वालिनम् ।
परिवार्याङ्गदो सर्वे व्यवस्यन्प्रायमासितुम् ॥₁₈॥

मतं तद्वाल्लिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः ।
उपस्पृश्योदकं सर्वे प्राङ्मुखाः समुपाविशन् ।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः ॥₁₉॥

स संविशद्भिर्बहुभिर्महीधरो; महाद्रिकूटप्रमितैः प्लवङ्गमैः ॥₂₀॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले ।
हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥₁॥

साम्पातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः ।
भ्राता जटायुषः श्रीमान्प्रख्यातबलपौरुषः ॥₂॥

कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः ।
उपविष्टान्हरीन्दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत् ॥₃॥

विधिः किल नरं लोके विधानेनानुवर्तते ।
यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान्मह्यमुपागतः ॥₄॥

परम्पराणां भक्षिष्ये वानराणां मृतं मृतम् ।
उवाचैवं वचः पक्षी तान्निरीक्ष्य प्लवङ्गमान् ॥₅॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भक्षलुब्धस्य पक्षिणः ।
अङ्गदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥₆॥

पश्य सीतापदेशेन साक्षाद्वैवस्वतो यमः ।
इमं देशमनुप्राप्तो वानराणां विपत्तये ॥₇॥

रामस्य न कृतं कार्यं राज्ञो न च वचः कृतम् ।
हरीणामियमज्ञाता विपत्तिः सहसागता ॥₈॥

वैदेह्याः प्रियकामेन कृतं कर्म जटायुषा ।
गृध्रराजेन यत्तत्र श्रुतं वस्तदशेषतः ॥₉॥

तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ।

प्रियं कुर्वन्ति रामस्य त्यक्त्वा प्राणान्यथा वयम् ॥₁₀॥

राघवार्थे परिश्रान्ता वयं सन्त्यक्तजीविताः ।
कान्ताराणि प्रपन्नाः स्म न च पश्याम मैथिलीम् ॥₁₁॥

स सुखी गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे ।
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद्गतश्च परमां गतिम् ॥₁₂॥

जटायुषो विनाशेन राज्ञो दशरथस्य च ।
हरणेन च वैदेह्याः संशयं हरयो गताः ॥₁₃॥

रामलक्ष्मणयोर्वासामरण्ये सह सीतया ।
राघवस्य च बाणेन वालिनश्च तथा वधः ॥₁₄॥

रामकोपादशेषाणां राक्षसानां तथा वधः ।
कैकेय्या वरदानेन ह्यदं हि विकृतं कृतम् ॥₁₅॥

तत्तु श्रुत्वा तदा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम् ।
अब्रवीद्वचनं गृध्रस्तीक्ष्णतुण्डो महास्वनः ॥₁₆॥

कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतरस्य मे ।
जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः ॥₁₇॥

कथमासीञ्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः ।
नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम् ॥₁₈॥

यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः ।
तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभाः ॥₁₉॥

भ्रातुर्जटायुषस्तस्य जनस्थाननिवासिनः ।
तस्यैव च मम भ्रातुः सखा दशरथः कथम् ।
यस्य रामः प्रियः पुत्रो ज्येष्ठो गुरुजनप्रियः ॥₂₀॥

सूर्याशुदग्धपक्षत्वात् शक्रोमि विसर्पितुम् ।
इच्छेयं पर्वतादस्मादवतर्तुमरिन्दमाः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

शोकान्द्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा ते हरियूथपाः ।
श्रद्धधुर्नैव तद्वाक्यं कर्मणा तस्य शङ्किताः ॥₁॥

ते प्रायमुपविष्टास्तु दृष्ट्वा गृध्रं प्लवङ्गमाः ।
चक्रुर्बुद्धिं तदा रौद्रां सर्वान्नो भक्षयिष्यति ॥₂॥

सर्वथा प्रायमासीनान्यदि नो भक्षयिष्यति ।
कृतकृत्या भविष्यामः क्षिप्रं सिद्धिमितो गताः ॥₃॥

एतां बुद्धिं ततश्चक्रुः सर्वे ते वानरर्षभाः ।
अवतार्य गिरेः शृङ्गाद्ध्रमाहाङ्गदस्तदा ॥₄॥

बभूवुर्क्षरजो नाम वानरेन्द्रः प्रतापवान् ।
ममार्यः पार्थिवः पक्षिन्धार्मिकौ तस्य चात्मजौ ॥₅॥

सुग्रीवश्चैव वली च पुत्रावोघबलावुभौ ।
लोके विश्रुतकर्माभूद्राजा वाली पिता मम ॥₆॥

राजा कृत्स्नस्य जगत इक्ष्वाकूणां महारथः ।
रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥₇॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ।
पितुर्निदेशनिरतो धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ।
तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हता बलात् ॥₈॥

रामस्य च पितुर्मित्रं जटायुर्नाम गृध्रराट् ।
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा ॥₉॥

रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम् ।
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे ॥₁₀॥

एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बहीयसा ।
संस्कृतश्चापि रामेण गतश्च गतिमुत्तमाम् ॥₁₁॥

ततो मम पितृव्येण सुग्रीवेण महात्मना ।
चकार राघवः सख्यं सोऽवधीत्पितरं मम ॥₁₂॥

माम पित्रा विरुद्धो हि सुग्रीवः सचिवैः सह ।
निहत्य वालिनं रामस्ततस्तमभिषेचयत् ॥₁₃॥

स राज्ये स्थापितस्तेन सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् ॥₁₄॥

एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः ।
वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव ॥₁₅॥

ते वयं दण्डकारण्यं विचित्य सुसमाहिताः ।
अज्ञानात्तु प्रविष्टाः स्म धरण्या विवृतं बिलम् ॥₁₆॥

मयस्य माया विहितं तद्विलं च विचिन्वताम् ।
व्यतीतस्तत्र नो मासो यो राज्ञा सामयः कृतः ॥₁₇॥

ते वयं कपिराजस्य सर्वे वचनकारिणः ।
कृतां संस्थामतिक्रान्ता भयात्प्रायमुपास्महे ॥₁₈॥

क्रुद्धे तस्मिंस्तु काकुत्स्थे सुग्रीवे च सलक्ष्मणे ।
गतानामपि सर्वेषां तत्र नो नास्ति जीवितम् ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्षाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः ।
सबाष्पो वानरान्गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥₁॥

यवीयान्मम स भ्राता जटायुर्नाम वानराः ।
यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥₂॥

वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपि मर्षये ।
न हि मे शक्तिरद्यास्ति भ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥₃॥

पुरा वृत्रवधे वृत्ते स चाहं च जयैषिणौ ।
आदित्यमुपयातौ स्त्रो ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् ॥₄॥

आवृत्याकाशमार्गेण जवेन स्म गतौ भृशम् ।
मध्यं प्राप्ते च सूर्ये च जटायुरवसीदति ॥₅॥

तमहं भ्रातरं दृष्ट्वा सूर्यरश्मिभिरर्दितम् ।
पक्षाभ्यं छादयामास स्नेहात्परमविह्वलम् ॥₆॥

निर्दग्धपक्षः पतितो विन्ध्येऽहं वानरोत्तमाः ।
अहमस्मिन्वसन्भ्रातुः प्रवृत्तिं नोपलक्षये ॥₇॥

जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्रात्रा सम्पातिना तदा ।
युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा ॥₈॥

जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया ।
आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः ॥₉॥

अदीर्घदर्शिनं तं वा रावणं राक्षसाधिपम् ।

अन्तिके यदि वा दूरे यदि जानासि शंस नः ॥₁₀॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा ज्येष्ठो भ्राता जटायुषः ।
आत्मानुरूपं वचनं वानरान्सम्प्रहर्षयन् ॥₁₁॥

निर्दग्धपक्षो गृध्रोऽहं गतवीर्यः प्लवङ्गमाः ।
वाङ्मात्रेण तु रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥₁₂॥

जानामि वारुणालोकान्विष्णोस्त्रैविक्रमानपि ।
देवासुरविमर्दाश्च अमृतस्य च मन्थनम् ॥₁₃॥

रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया ।
जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥₁₄॥

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥₁₅॥

क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च भामिनी ।
भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती ॥₁₆॥

सूर्यप्रभेव शैलाग्रे तस्याः कौशेयमुत्तमम् ।
असिते राक्षसे भाति यथा वा तडिदम्बुदे ॥₁₇॥

तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् ।
श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः ॥₁₈॥

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद्भाता वैश्रवणस्य च ।
अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः ॥₁₉॥

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने ।
तस्मिँल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥₂₀॥

तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ।

रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥₂₁॥

जनकस्यात्मजां राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ।
लङ्कायामथ गुप्तायां सागरेण समन्ततः ॥₂₂॥

सम्प्राप्य सागरस्यान्तं सम्पूर्णं शतयोजनम् ।
आसाद्य दक्षिणं कूलं ततो द्रक्ष्यथ रावणम् ॥₂₃॥

तत्रैव बरिताः क्षिप्रं विक्रमध्वं प्लवङ्गमाः ।
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ ॥₂₄॥

आद्यः पन्थाः कुलिङ्गानां ये चान्ये धान्यजीविनः ।
द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशिनः ॥₂₅॥

भासास्तृतीयं गच्छन्ति क्रौञ्चाश्च कुररैः सह ।
श्वेनाश्चतुर्थं गच्छन्ति गृध्रा गच्छन्ति पञ्चमम् ॥₂₆॥

बलवीर्योपपन्नानां रूपयौवनशालिनाम् ।
षष्ठस्तु पन्था हंसानां वैनतेयगतिः परा ।
वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः ॥₂₇॥

गर्हितं तु कृतं कर्म येन स्म पिशिताशनाः ।
द्वहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा ॥₂₈॥

अस्माकमपि सौवर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा ।
तस्मादाहारवीर्येण निसर्गेण च वानराः ।
आयोजनशतात्साग्राद्वयं पश्याम नित्यशः ॥₂₉॥

अस्माकं विहिता वृत्तिर्निसर्गेण च दूरतः ।
विहिता पादमूले तु वृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥₃₀॥

उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः ।
अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यथ ॥₃₁॥

समुद्रं नेतुमिच्छामि भवद्विर्वरुणालयम् ।
प्रदास्याम्युदकं भ्रातुः स्वर्गतस्य महात्मनः ॥₃₂॥

ततो नीत्वा तु तं देशं तीरे नदनदीपतेः ।
निर्दग्धपक्षं सम्पातिं वानराः सुमहौजसः ॥₃₃॥

पुनः प्रत्यानयित्वा वै तं देशं पतगेश्वरम् ।
बभूवुर्वानरा हृष्टाः प्रवृत्तिमुपलभ्य ते ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततस्तदमृतास्वादं गृध्रराजेन भाषितम् ।
निशम्य वदतो हृष्टास्ते वचः प्लवगर्षभाः ॥₁॥

जाम्बवान्वै हरिश्रेष्ठः सह सर्वैः प्लवङ्गमैः ।
भूतलात्सहस्रोत्थाय गृध्रराजानमब्रवीत् ॥₂॥

क्व सीता केन वा दृष्टा को वा हरति मैथिलीम् ।
तदाख्यातु भवान्सर्वं गतिर्भव वनौकसाम् ॥₃॥

को दाशरथिबाणानां वज्रवेगनिपातिनाम् ।
स्वयं लक्ष्मणमुक्तानां न चिन्तयति विक्रमम् ॥₄॥

स हरीन्प्रीतिसंयुक्तान्सीता श्रुतिसमाहितान् ।
पुनराश्वासयन्प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ॥₅॥

श्रूयतामिह वैदेह्या यथा मे हरणं श्रुतम् ।
येन चापि ममाख्यातं यत्र चायतलोचना ॥₆॥

अहमस्मिन्निरो दुर्गे बहुयोजनमायते ।
चिरान्निपतितो वृद्धः क्षीणप्राणपराक्रमः ॥₇॥

तं मामेवङ्गतं पुत्रः सुपाश्वर्षो नाम नामतः ।
आहारेण यथाकालं बिभर्ति पततां वरः ॥₈॥

तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजङ्गमाः ।
मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम् ॥₉॥

स कदाचित्क्षुधार्तस्य मम चाहारकाङ्क्षिणः ।

गतसूर्योऽहनि प्राप्तो मम पुत्रो ह्यनामिषः ॥₁₀॥

स मया वृद्धभावाच्च कोपाच्च परिभर्त्सितः ।
क्षुत्पिपासा परीतेन कुमारः पततां वरः ॥₁₁॥

स ममाहारसंरोधात्पीडितः प्रीतिवर्धनः ।
अनुमान्य यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₂॥

अहं तात यथाकालमामिषार्थी खमाप्नुतः ।
महेन्द्रस्य गिरेर्द्वारमावृत्य च समास्थितः ॥₁₃॥

तत्र सत्त्वसहस्राणां सागरान्तरचारिणाम् ।
पन्थानमेकोऽध्यवसं संनिरोद्धुमवाङ्मुखः ॥₁₄॥

तत्र कश्चिन्मया दृष्टः सूर्योदयसमप्रभाम् ।
स्त्रियमादाय गच्छन्वै भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥₁₅॥

सोऽहमभ्यवहारार्थी तौ दृष्ट्वा कृतनिश्चयः ।
तेन साम्ना विनीतेन पन्थानमभियाचितः ॥₁₆॥

न हि सामोपपन्नानां प्रहर्ता विद्यते क्वचित् ।
नीचेष्वपि जनः कश्चित्किमङ्ग बत मद्विधः ॥₁₇॥

स यातस्तेजसा व्योम सङ्क्षिपन्निव वेगतः ।
अथाहं खे चरैर्भूतैरभिगम्य सभाजितः ॥₁₈॥

दिष्ट्वा जीवसि तातेति अब्रुवन्मां महर्षयः ।
कथञ्चित्सकलत्रोऽसौ गतस्ते स्वस्त्यसंशयम् ॥₁₉॥

एवमुक्तस्ततोऽहं तैः सिद्धैः परमशोभनैः ।
स च मे रावणो राजा रक्षसां प्रतिवेदितः ॥₂₀॥

हरन्दाशरथेर्भार्या रामस्य जनकात्मजाम् ।

भ्रष्टाभरणकौशेयां शोकवेगपराजिताम् ॥₂₁॥

रामलक्ष्मणयोर्नाम क्रोशन्तीं मुक्तमूर्धजाम् ।
एष कालात्ययस्तावदिति वाक्यविदां वरः ॥₂₂॥

एतमर्थं समग्रं मे सुपार्श्वः प्रत्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वापि हि मे बुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे ॥₂₃॥

अपक्षो हि कथं पक्षी कर्म किञ्चिदुपक्रमेत् ।
यत्तु शक्यं मया कर्तुं वाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥₂₄॥

श्रूयतां तत्प्रवक्ष्यामि भवतां पौरुषाश्रयम् ।
वाङ्मतिभ्यां हि सार्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः ।
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः ॥₂₅॥

ते भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः ।
सहिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः ॥₂₆॥

रामलक्ष्मणबाणाश्च निशिताः कङ्कपत्रिणः ।
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ॥₂₇॥

कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ।
भवतां तु समर्थानां न किञ्चिदपि दुष्करम् ॥₂₈॥

तदलं कालसङ्गेन क्रियतां बुद्धिनिश्चयः ।
न हि कर्मसु सञ्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

ततः कृतोदकं स्नातं तं गृध्रं हरियूथपाः ।
उपविष्टा गिरौ दुर्गे परिवार्य समन्ततः ॥₁॥

तमङ्गदमुपासीनं तैः सर्वैर्हरिभिर्वृतम् ।
जनितप्रत्ययो हर्षात्सम्पातिः पुनरब्रवीत् ॥₂॥

कृत्वा निःशब्दमेकाग्राः शृण्वन्तु हरयो मम ।
तच्चं सङ्कीर्तयिष्यामि यथा जानामि मैथिलीम् ॥₃॥

अस्य विन्ध्यस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरा वने ।
सूर्यातपपरीताङ्गो निर्दग्धः सूर्यरश्मिभिः ॥₄॥

लब्धसंज्ञस्तु षड्रात्राद्विवशो विह्वलन्निव ।
वीक्षमाणो दिशः सर्वा नाभिजानामि किञ्चन ॥₅॥

ततस्तु सागराञ्छैलान्नदीः सर्वाः सरांसि च ।
वनान्यटविदेशांश्च समीक्ष्य मतिरागमत् ॥₆॥

हृष्टपक्षिगणाकीर्णः कन्दरान्तरकूटवान् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे विन्ध्योऽयमिति निश्चितः ॥₇॥

आसीच्चात्राश्रमं पुण्यं सुरैरपि सुपूजितम् ।
ऋषिर्निशाकरो नाम यस्मिन्नुग्रतपाभवत् ॥₈॥

अष्टौ वर्षसहस्राणि तेनास्मिन्नृषिणा विना ।
वसतो मम धर्मज्ञाः स्वर्गते तु निशाकरे ॥₉॥

अवतीर्य च विन्ध्याग्रात्कृच्छ्रेण विषमाच्छनैः ।

तीक्ष्णदर्भा वसुमतीं दुःखेन पुनरागतः ॥₁₀॥

तमृषिं द्रष्टुं कामोऽस्मि दुःखेनाभ्यागतो भृशम् ।
जटायुषा मया चैव बहुशोऽभिगतो हि सः ॥₁₁॥

तस्याश्रमपदाभ्याशे ववुर्वाताः सुगन्धिनः ।
वृक्षो नापुष्पितः कश्चिदफलो वा न दृश्यते ॥₁₂॥

उपेत्य चाश्रमं पुण्यं वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
द्रष्टुकामः प्रतीक्षे च भगवन्तं निशाकरम् ॥₁₃॥

अथापश्यमदूरस्थमृषिं ज्वलिततेजसम् ।
कृताभिषेकं दुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥₁₄॥

तमृक्षाः सृमरा व्याघ्राः सिंहा नागाः सरीसृपाः ।
परिवार्योपगच्छन्ति दातारं प्राणिनो यथा ॥₁₅॥

ततः प्राप्तमृषिं ज्ञात्वा तानि सत्त्वानि वै ययुः ।
प्रविष्टे राजनि यथा सर्वं सामात्यकं बलम् ॥₁₆॥

ऋषिस्तु दृष्ट्वा मां तुष्टः प्रविष्टश्चाश्रमं पुनः ।
मुहूर्तमात्रान्निष्क्रम्य ततः कार्यमपृच्छत ॥₁₇॥

सौम्य वैकल्यतां दृष्ट्वा रोंणां ते नावगम्यते ।
अग्निदग्धाविमौ पक्षौ बह्वैव व्रणिता तव ॥₁₈॥

द्वौ गृध्रौ दृष्टपूर्वौ मे मातरिश्चसमौ जवे ।
गृध्राणां चैव राजानौ भ्रातरौ कामरूपिणौ ॥₁₉॥

ज्येष्ठस्त्वं तु च सम्पातिर्जटायुरनुजस्तव ।
मानुषं रूपमास्थाय गृहीतां चरणौ मम ॥₂₀॥

किं ते व्याधिसमुत्थानं पक्षयोः पतनं कथम् ।

दण्डो वायं धृतः केन सर्वमाख्याहि पृच्छतः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्ठितमः सर्गः॥

ततस्तदारुणं कर्म दुष्करं साहसात्कृतम् ।
आचक्षे मुनेः सर्वं सूर्यानुगमनं तथा ॥₁॥

भगवन्नणयुक्तबालञ्जया चाकुलेन्द्रियः ।
परिश्रान्तो न शक्नोमि वचनं परिभाषितुम् ॥₂॥

अहं चैव जटायुश्च सङ्घर्षाद्वर्पमोहितौ ।
आकाशं पतितौ वीरौ जिघासन्तौ पराक्रमम् ॥₃॥

कैलासशिखरे बद्धा मुनीनामग्रतः पणम् ।
रविः स्यादनुयातव्यो यावदस्तं महागिरिम् ॥₄॥

अथावां युगपत्प्राप्तावपश्याव महीतले ।
रथचक्रप्रमाणानि नगराणि पृथक्पृथक् ॥₅॥

क्वचिद्वादित्रघोषांश्च ब्रह्मघोषांश्च शुश्रुव ।
गायन्तीश्चाङ्गना बह्वीः पश्यावो रक्तवाससः ॥₆॥

तूर्णमुत्पत्य चाकाशमादित्यपथमास्थितौ ।
आवामालोकयावस्तद्वनं शाद्वलसंस्थितम् ॥₇॥

उपलैरिव सञ्छन्ना दृश्यते भूः शिलोच्चयैः ।
आपगाभिश्च संवीता सूत्रैरिव वसुन्धरा ॥₈॥

हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्च सुमहान्नगः ।
भूतले सम्प्रकाशन्ते नागा इव जलाशये ॥₉॥

तीव्रस्त्रेदश्च खेदश्च भयं चासीत्तदावयोः ।

समाविशत मोहश्च मोहान्मूर्छा च दारुणा ॥₁₀॥

न दिग्विज्ञायते याम्या नागेन्या न च वारुणी ।
युगान्ते नियतो लोको हतो दग्ध इवाग्निना ॥₁₁॥

यत्नेन महता भूयो रविः समवलोकितः ।
तुल्यः पृथ्वीप्रमाणेन भास्करः प्रतिभाति नौ ॥₁₂॥

जटायुर्मामनापृच्छ निपपात महीं ततः ।
तं दृष्ट्वा तूर्णमाकाशादात्मानं मुक्तवानहम् ॥₁₃॥

पक्षिभ्यां च मया गुप्तो जटायुर्न प्रदह्यत ।
प्रमादात्तत्र निर्दग्धः पतन्वायुपथादहम् ॥₁₄॥

आशङ्के तं निपतितं जनस्थाने जटायुषम् ।
अहं तु पतितो विन्ध्ये दग्धपक्षो जडीकृतः ॥₁₅॥

राज्येन हीनो भ्रात्रा च पक्षाभ्यां विक्रमेण च ।
सर्वथा मर्तुमेवेच्छन्पतिष्ये शिखराद्गिरेः ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठमरुदं दुःखितो भृशम् ।
अथ ध्यात्वा मुहूर्तं तु भगवानिदमब्रवीत् ॥₁॥

पक्षौ च ते प्रपक्षौ च पुनरन्यौ भविष्यतः ।
चक्षुषी चैव प्राणाश्च विक्रमश्च बलं च ते ॥₂॥

पुराणे सुमहत्कार्यं भविष्यं हि मया श्रुतम् ।
दृष्टं मे तपसा चैव श्रुत्वा च विदितं मम ॥₃॥

राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुनन्दनः ।
तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति ॥₄॥

अरण्यं च सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन गमिष्यति ।
तस्मिन्नर्थे नियुक्तः सन्पित्रा सत्यपराक्रमः ॥₅॥

नैर्ऋतो रावणो नाम तस्या भार्या हरिष्यति ।
राक्षसेन्द्रो जनस्थानादवध्यः सुरदानवैः ॥₆॥

सा च कामैः प्रलोभ्यन्ती भक्ष्यैर्भोज्यैश्च मैथिली ।
न भोक्ष्यति महाभागा दुःखमग्ना यशस्विनी ॥₇॥

परमान्नं तु वैदेह्या ज्ञात्वा दास्यति वासवः ।
यदन्नममृतप्रख्यं सुराणामपि दुर्लभम् ॥₈॥

तदन्नं मैथिली प्राप्य विज्ञायेन्द्रादिदं ब्रूति ।
अग्रमुद्धृत्य रामाय भूतले निर्वपिष्यति ॥₉॥

यदि जीवति मे भर्ता लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।

देवत्वं गतयोर्वापि तयोरन्नमिदं ब्रिति ॥₁₀॥

एष्यन्त्यन्वेषकास्तस्या रामदूताः प्लवङ्गमाः ।
आख्येया राममहिषी ब्रया तेभ्यो विहङ्गम ॥₁₁॥

सर्वथा तु न गन्तव्यमीदृशः क्व गमिष्यसि ।
देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्वं प्रतिपत्स्यसे ॥₁₂॥

उत्सहेयमहं कर्तुमद्यैव त्वां सपक्षकम् ।
इहस्थस्त्वं तु लोकानां हितं कार्यं करिष्यसि ॥₁₃॥

ब्रयापि खलु तत्कार्यं तयोश्च नृपपुत्रयोः ।
ब्राह्मणानां सुराणां च मुनीनां वासवस्य च ॥₁₄॥

इच्छाम्यहमपि द्रष्टुं भ्रातरु रामलक्ष्मणौ ।
नेच्छे चिरं धारयितुं प्राणांस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

एतैरन्यैश्च बहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः ।
मां प्रशस्याभ्यनुज्ञाप्य प्रविष्टः स स्वमाश्रमम् ॥₁॥

कन्दरात्तु विसर्पित्वा पर्वतस्य शनैः शनैः ।
अहं विन्ध्यं समारुह्य भवतः प्रतिपालये ॥₂॥

अद्य त्वेतस्य कालस्य साग्रं वर्षशतं गतम् ।
देशकालप्रतीक्षोऽस्मि हृदि कृत्वा मुनेर्वचः ॥₃॥

महाप्रस्थानमासाद्य स्वर्गते तु निशाकरे ।
मां निर्दहति सन्तापो वितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥₄॥

उत्थितां मरणे बुद्धिं मुनि वाक्यैर्निवर्तये ।
बुद्धिर्या तेन मे दत्ता प्राणसंरक्षणाय तु ।
सा मेऽपनयते दुःखं दीप्तेवाग्निशिखा तमः ॥₅॥

बुध्यता च मया वीर्यं रावणस्य दुरात्मनः ।
पुत्रः सन्तर्जितो वाग्भिर्न त्राता मैथिली कथम् ॥₆॥

तस्या विलपितं श्रुत्वा तौ च सीता विनाकृतौ ।
न मे दशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितं प्रियम् ॥₇॥

तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य सम्पातेर्वानरैः सह ।
उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम् ॥₈॥

स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्रतैररुणच्छदैः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे वानरांश्चेदमब्रवीत् ॥₉॥

निशाकरस्य महर्षेः प्रभावादमितात्मनः ।
आदित्यरश्मिनिर्दग्धौ पक्षौ मे पुनरुत्थितौ ॥₁₀॥

यौवने वर्तमानस्य ममासीद्यः पराक्रमः ।
तमेवाद्यावगच्छामि बलं पौरुषमेव च ॥₁₁॥

सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ।
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्यय कारकः ॥₁₂॥

इत्युक्त्वा तान्हरीन्सर्वान्सम्पातिः पततां वरः ।
उत्पपात गिरेः शृङ्गाञ्जिज्ञासुः खगमो गतिम् ॥₁₃॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतिसंहृष्टमानसाः ।
बभूवुर्हरिशार्दूला विक्रमाभ्युदयोन्मुखाः ॥₁₄॥

अथ पवनसमानविक्रमाः
प्लवगवराः प्रतिलब्ध पौरुषाः ।
अभिजिदभिमुखां दिशं ययुर्-
जनकसुता परिमार्गणोन्मुखाः ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

आख्याता गृध्रराजेन समुत्पत्य प्लवङ्गमाः ।
सङ्गताः प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः ॥₁॥

सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् ।
हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः ॥₂॥

अभिक्रम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः ।
कृत्स्नं लोकस्य महतः प्रतिबिम्बमिव स्थितम् ॥₃॥

दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् ।
संनिवेशं ततश्चक्रुः सहिता वानरोत्तमाः ॥₄॥

सत्त्वैर्महद्भिर्विकृतैः क्रीडद्भिर्विविधैर्जले ।
व्यात्तास्यैः सुमहाकायैरूर्मिभिश्च समाकुलम् ॥₅॥

प्रसूतमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः ।
क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥₆॥

सङ्कुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः ।
रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः ॥₇॥

आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः ।
विषेदुः सहसा सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥₈॥

विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात् ।
आश्वासयामास हरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥₉॥

न निषादेन नः कार्यं विषादो दोषवत्तरः ।

विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥₁₀॥

विषादोऽयं प्रसहते विक्रमे पर्युपस्थिते ।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिध्यति ॥₁₁॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामङ्गदो वानरैः सह ।
हरिवृद्धैः समागम्य पुनर्मन्त्रममन्त्रयत् ॥₁₂॥

सा वानराणां ध्वजिनी परिवार्याङ्गदं बभौ ।
वासवं परिवार्येव मरुतां वाहिनी स्थिता ॥₁₃॥

कोऽन्यस्तां वानरीं सेनां शक्तः स्तम्भयितुं भवेत् ।
अन्यत्र वालितनयादन्यत्र च हनूमतः ॥₁₄॥

ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिन्दमः ।
अनुमान्याङ्गदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥₁₅॥

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम् ।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम् ॥₁₆॥

को वीरो योजनशतं लङ्घयेत प्लवङ्गमाः ।
इमांश्च यूथपान्सर्वान्मोचयेत्को महाभयात् ॥₁₇॥

कस्य प्रसादाद्वारांश्च पुत्रांश्चैव गृहाणि च ।
इतो निवृत्ताः पश्येम सिद्धार्थाः सुखिनो वयम् ॥₁₈॥

कस्य प्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ।
अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च महाबलम् ॥₁₉॥

यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः ।
स ददात्बिह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥₂₀॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत् ।

स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥₂₁॥

पुनरेवाङ्गदः प्राह तान्हरीन्हरिसत्तमः ।
सर्वे बलवतां श्रेष्ठा भवन्तो दृढविक्रमाः ॥₂₂॥

व्यपदेश्य कुले जाताः पूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः ।
न हि वो गमने सङ्गः कदाचिदपि कस्यचित् ॥₂₃॥

ब्रुवध्वं यस्य या शक्तिर्गमने प्लवगर्षभाः ॥₂₄॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

ततोऽङ्गदवचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः ।
स्वं स्वं गतौ समुत्साहमाहुस्तत्र यथाक्रमम् ॥₁॥

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो जाम्बवांस्तथा ॥₂॥

आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम् ।
गवाक्षो योजनान्याह गमिष्यामीति विंशतिम् ॥₃॥

गवयो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह ।
त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः ॥₄॥

शरभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह ।
चत्वारिंशद्गमिष्यामि योजनानां न संशयः ॥₅॥

वानरांस्तु महातेजा अब्रवीद्गन्धमादनः ।
योजनानां गमिष्यामि पञ्चाशत्तु न संशयः ॥₆॥

मैन्दस्तु वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह ।
योजनानां परं षष्टिमहं प्लवितुमुत्सहे ॥₇॥

ततस्तत्र महातेजा द्विविदः प्रत्यभाषत ।
गमिष्यामि न सन्देहः सप्ततिं योजनान्यहम् ॥₈॥

सुषेणस्तु हरिश्रेष्ठः प्रोक्तवान्कपिसत्तमान् ।
अशीतिं योजनानां तु प्लवेयं प्लवगर्षभाः ॥₉॥

तेषां कथयतां तत्र सर्वास्ताननुमान्य च ।

ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान्प्रत्यभाषत ॥₁₀॥

पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्वतिपराक्रमः ।
ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म साम्प्रतम् ॥₁₁॥

किं तु नैवं गते शक्यमिदं कार्यमुपेक्षितुम् ।
यदर्थं कपिराजश्च रामश्च कृतनिश्चयौ ॥₁₂॥

साम्प्रतं कालभेदेन या गतिस्तां निबोधत ।
नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः ॥₁₃॥

तांश्च सर्वान्हरिश्चेष्टाञ्जाम्बवान्पुनरब्रवीत् ।
न खल्वेतावदेवासीद्गमने मे पराक्रमः ॥₁₄॥

मया महाबलैश्चैव यज्ञे विष्णुः सनातनः ।
प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमः ॥₁₅॥

स इदानीमहं वृद्धः प्लवने मन्दविक्रमः ।
यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परैः ॥₁₆॥

सम्प्रत्येतावतीं शक्तिं गमने तर्कयाम्यहम् ।
नैतावता च संसिद्धिः कार्यस्यास्य भविष्यति ॥₁₇॥

अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदङ्गदस्तदा ।
अनुमान्य महाप्राज्ञो जाम्बवन्तं महाकपिम् ॥₁₈॥

अहमेतद्गमिष्यामि योजनानां शतं महत् ।
निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम् ॥₁₉॥

तमुवाच हरिश्चेष्टो जाम्बवान्वाक्यकोविदः ।
ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम ॥₂₀॥

कामं शतसहस्रं वा न ह्येष विधिरुच्यते ।

योजनानां भवाञ्शक्तो गन्तुं प्रतिनिवर्तितुम् ॥₂₁॥

न हि प्रेषयिता तत स्वामी प्रेष्यः कथञ्चन ।
भवतायं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम ॥₂₂॥

भवान्कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः ।
स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परन्तप ॥₂₃॥

तस्मात्कलत्रवत्तात प्रतिपाल्यः सदा भवान् ।
अपि चैतस्य कार्यस्य भवान्मूलमरिन्दम ॥₂₄॥

मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यविदां नयः ।
मूले हि सति सिध्यन्ति गुणाः पुष्पफलादयः ॥₂₅॥

तद्भवानस्या कार्यस्य साधने सत्यविक्रमः ।
बुद्धिविक्रमसम्पन्नो हेतुरत्र परन्तपः ॥₂₆॥

गुरुश्च गुरुपुत्रश्च त्वं हि नः कपिसत्तम ।
भवन्तमाश्रित्य वयं समर्था ह्यर्थसाधने ॥₂₇॥

उक्तवाक्यं महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः ।
प्रत्युवाचोत्तरं वाक्यं वालिसूनुरथाङ्गदः ॥₂₈॥

यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुङ्गवः ।
पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम् ॥₂₉॥

न ह्यकृत्वा हरिपतेः सन्देशं तस्य धीमतः ।
तत्रापि गत्वा प्राणानां पश्यामि परिरक्षणम् ॥₃₀॥

स हि प्रसादे चात्यर्थं कोपे च हरिरीश्वरः ।
अतीत्य तस्य सन्देशं विनाशो गमने भवेत् ॥₃₁॥

तद्यथा ह्यस्य कार्यस्य न भवत्यन्यथा गतिः ।

तद्भवानेव दृष्टार्थः सञ्चित्तयितुमर्हति ॥₃₂॥

सोऽङ्गदेन तदा वीरः प्रत्युक्तः प्लवगर्षभः ।
जाम्बवानुत्तरं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ॥₃₃॥

अस्य ते वीर कार्यस्य न किञ्चित्परिहीयते ।
एष सञ्चोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति ॥₃₄॥

ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठम्
एकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम् ।
सञ्चोदयामास हरिप्रवीरो
हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

अनेकशतसाहस्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम् ।
जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥₁॥

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर ।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन्किं न जल्पसि ॥₂॥

हनुमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥₃॥

अरिष्टनेमिनः पुत्रौ वैनतेयो महाबलः ।
गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम् ॥₄॥

बहुशो हि मया दृष्टः सागरे स महाबलः ।
भुजगानुद्धरन्यक्षी महावेगो महायशः ॥₅॥

पक्षयोर्यद्वलं तस्य तावद्भुजबलं तव ।
विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते ॥₆॥

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिसत्तम ।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे ॥₇॥

अप्सरराप्सरसां श्रेष्ठा विख्याता पुञ्जिकस्थला ।
अज्ञनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः ॥₈॥

अभिशापादभूतात वानरी कामरूपिणी ।
दुहिता वानरेन्द्रस्य कुञ्जरस्य महात्मनः ॥₉॥

कपिबे चारुसर्वाङ्गी कदाचित्कामरूपिणी ।

मानुषं विग्रहं कृत्वा यौवनोत्तमशालिनी ॥₁₀॥

अचरत्पर्वतस्याग्रे प्रावृडम्बुदसंनिभे ।
विचित्रमाल्याभरणा महार्हक्षौमवासिनी ॥₁₁॥

तस्या वस्त्रं विशालाक्ष्याः पीतं रक्तदशं शुभम् ।
स्थितायाः पर्वतस्याग्रे मारुतोऽपहरच्छनैः ॥₁₂॥

स ददर्श ततस्तस्या वृत्तावूरू सुसंहतौ ।
स्तनौ च पीनौ सहितौ सुजातं चारु चाननम् ॥₁₃॥

तां विशालायतश्रोणीं तनुमध्यां यशस्विनीम् ।
दृष्ट्वैव शुभसर्वाङ्गीं पवनः काममोहितः ॥₁₄॥

स तां भुजाभ्यां पीनाभ्यां पर्यष्वजत मारुतः ।
मन्मथाविष्टसर्वाङ्गो गतात्मा तामनिन्दिताम् ॥₁₅॥

सा तु तत्रैव सम्भ्रान्ता सुवृत्ता वाक्यमब्रवीत् ।
एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति ॥₁₆॥

अञ्जनाया वचः श्रुत्वा मारुतः प्रत्यभाषत ।
न त्वां हिंसामि सुश्रोणि मा भूते सुभगे भयम् ॥₁₇॥

मनसास्मि गतो यत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनि ।
वीर्यवान्बुद्धिसम्पन्नः पुत्रस्तव भविष्यति ॥₁₈॥

अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने ।
फलं चेति जिघृक्षुस्त्वमुत्स्रुत्याभ्यपतो दिवम् ॥₁₉॥

शतानि त्रीणि गत्वाथ योजनानां महाकपे ।
तेजसा तस्य निर्धूतो न विषादं ततो गतः ॥₂₀॥

तावदापततस्तूर्णमन्तरिक्षं महाकपे ।

क्षितमिन्द्रेण ते वज्रं क्रोधाविष्टेन धीमता ॥₂₁॥

ततः शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत ।
ततो हि नामधेयं ते हनुमानिति कीर्त्यते ॥₂₂॥

ततस्त्वां निहतं दृष्ट्वा वायुर्गन्धवहः स्वयम् ।
त्रैलोको भृशसङ्क्रुद्धो न ववौ वै प्रभञ्जनः ॥₂₃॥

सम्भ्रान्ताश्च सुराः सर्वे त्रैलोके क्षुभिते सति ।
प्रसादयन्ति सङ्क्रुद्धं मारुतं भुवनेश्वराः ॥₂₄॥

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ ।
अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम ॥₂₅॥

वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च ।
सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम् ॥₂₆॥

स्वच्छन्दतश्च मरणं ते भूयादिति वै प्रभो ।
स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रज्ञो भीमविक्रमः ॥₂₇॥

मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः ।
त्वं हि वायुसुतो वत्स प्लवने चापि तत्समः ॥₂₈॥

वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु साम्प्रतम् ।
दाक्ष्यविक्रमसम्पन्नः पक्षिराज इवापरः ॥₂₉॥

त्रिविक्रमे मया तात सशैलवनकानना ।
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम् ॥₃₀॥

तदा चौषधयोऽस्माभिः सञ्चिता देवशासनात् ।
निष्पन्नममृतं याभिस्तदासीन्नो महद्बलम् ॥₃₁॥

स इदानीमहं वृद्धः परिहीनपराक्रमः ।

साम्प्रतं कालमस्माकं भवान्सर्वगुणान्वितः ॥₃₂॥

तद्विजृम्भस्व विक्रान्तः प्लवतामुत्तमो ह्यसि ।
बद्धीर्यं द्रष्टुकामेयं सर्वा वानरवाहिनी ॥₃₃॥

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् ।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन्या गतिस्तव ॥₃₄॥

विषाण्णा हरयः सर्वे हनुमन्किमुपेक्षसे ।
विक्रमस्व महावेगो विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥₃₅॥

ततस्तु वै जाम्बवताभिचोदितः
प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः ।
प्रहर्षयंस्तां हरिवीर वाहिनीम्
चकार रूपं महदात्मनस्तदा ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

संस्तूयमानो हनुमान्व्यवर्धत महाबलः ।
समाविध्य च लाङ्गूलं हर्षाच्च बलमेयिवान् ॥₁॥

तस्य संस्तूयमानस्य सर्वैर्वानरपुङ्गवैः ।
तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥₂॥

यथा विजृम्भते सिंहो विवृद्धो गिरिगह्वरे ।
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तथा सम्प्रति जृम्भते ॥₃॥

अशोभत मुखं तस्य जृम्भमाणस्य धीमतः ।
अम्बरीषोपमं दीप्तं विधूम इव पावकः ॥₄॥

हरीणामुत्थितो मध्यात्सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
अभिवाद्य हरीन्वृद्धान्हनुमानिदमब्रवीत् ॥₅॥

अरुजन्पर्वताग्राणि हुताशनसखोऽनिलः ।
बलवानप्रमेयश्च वायुराकाशगोचरः ॥₆॥

तस्याहं शीघ्रवेगस्य शीघ्रगस्य महात्मनः ।
मारुतस्यौरसः पुत्रः प्लवने नास्ति मे समः ॥₇॥

उत्सहेयं हि विस्तीर्णमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
मेरुं गिरिमसङ्गेन परिगन्तुं सहस्रशः ॥₈॥

बाहुवेगप्रणुन्नेन सागरेणाहमुत्सहे ।
समाप्लावयितुं लोकं सपर्वतनदीहृदम् ॥₉॥

ममोरुजङ्घावेगेन भविष्यति समुत्थितः ।

सम्मूर्छितमहाग्राहः समुद्रो वरुणालयः ॥₁₀॥

पन्नगाशनमाकाशे पतन्तं पक्षिसेवितम् ।
वैनतेयमहं शक्तः परिगन्तुं सहस्रशः ॥₁₁॥

उदयात्प्रस्थितं वापि ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् ।
अनस्तमितमादित्यमभिगन्तुं समुत्सहे ॥₁₂॥

ततो भूमिमसंस्पृश्य पुनरागन्तुमुत्सहे ।
प्रवेगेनैव महता भीमेन प्लवगर्षभाः ॥₁₃॥

उत्सहेयमतिक्रान्तुं सर्वानाकाशगोचरान् ।
सागरं क्षोभयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ॥₁₄॥

पर्वतान्कम्पयिष्यामि प्लवमानः प्लवङ्गमाः ।
हरिष्ये चोरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम् ॥₁₅॥

लतानां वीरुधां पुष्पं पादपानां च सर्वशः ।
अनुयास्यति मामद्य प्लवमानं विहायसा ।
भविष्यति हि मे पन्थाः स्वातेः पन्था इवाम्बरे ॥₁₆॥

चरन्तं घोरमाकाशमुत्पतिष्यन्तमेव च ।
द्रक्ष्यन्ति निपतन्तं च सर्वभूतानि वानराः ॥₁₇॥

महामेरुप्रतीकाशं मां द्रक्ष्यध्वं प्लवङ्गमाः ।
दिवमावृत्य गच्छन्तं ग्रसमानमिवाम्बरम् ॥₁₈॥

विधमिष्यामि जीमूतान्कम्पयिष्यामि पर्वतान् ।
सागरं क्षोभयिष्यामि प्लवमानः समाहितः ॥₁₉॥

वैनतेयस्य वा शक्तिर्मम वा मारुतस्य वा ।
ऋते सुपर्णराजानं मारुतं वा महाबलम् ।
न हि भूतं प्रपश्यामि यो मां प्लुतमनुव्रजेत् ॥₂₀॥

निमेषान्तरमात्रेण निरालम्भनमम्बरम् ।
सहसा निपतिष्यामि घनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥₂₁॥

भविष्यति हि मे रूपं प्लवमानस्य सागरम् ।
विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा त्रीन्विक्रमानिव ॥₂₂॥

बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा ।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः ॥₂₃॥

मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे ।
अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः ॥₂₄॥

वासवस्य सवज्रस्य ब्रह्मणो वा स्वयम्भुवः ।
विक्रम्य सहसा हस्तादमृतं तदिहानये ।
लङ्कां वापि समुत्क्षिप्य गच्छेयमिति मे मतिः ॥₂₅॥

तमेवं वानरश्रेष्ठं गर्जन्तममितौजसम् ।
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्हरिसत्तमः ॥₂₆॥

वीर केसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज ।
ज्ञातीनां विपुलं शोकस्त्वया तात प्रणाशितः ॥₂₇॥

तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः ।
मङ्गलं कार्यसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः ॥₂₈॥

ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च ।
गुरूणां च प्रसादेन प्लवस्त्वं महार्णवम् ॥₂₉॥

स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव ।
बद्धतानि च सर्वेषां जीवितानि वनौकसाम् ॥₃₀॥

ततस्तु हरिशार्दूलस्तानुवाच वनौकसः ।
नेयं मम मही वेगं प्लवने धारयिष्यति ॥₃₁॥

एतानि हि नगस्यास्य शिलासङ्कटशालिनः ।
शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च ॥₃₂॥

एतानि मम निष्पेषं पादयोः पततां वराः ।
प्लवतो धारयिष्यन्ति योजनानामितः शतम् ॥₃₃॥

ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मरुतात्मजः ।
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः ॥₃₄॥

वृतं नानाविधैर्वृक्षैर्मृगसेवितशाद्वलम् ।
लताकुसुमसम्बाधं नित्यपुष्पफलद्रुमम् ॥₃₅॥

सिंहशार्दूलचरितं मत्तमातङ्गसेवितम् ।
मत्तद्विजगणोद्धुष्टं सलिलोत्पीडसङ्कुलम् ॥₃₆॥

महद्भिरुच्छ्रितं शृङ्गैर्महेन्द्रं स महाबलः ।
विचचार हरिश्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ॥₃₇॥

पादाभ्यां पीडितस्तेन महाशैलो महात्मना ।
ररास सिंहाभिहतो महान्मत्त इव द्विपः ॥₃₈॥

मुमोच सलिलोत्पीडान्विप्रकीर्णशिलोच्चयः ।
वित्रस्तमृगमातङ्गः प्रकम्पितमहाद्रुमः ॥₃₉॥

नानागन्धर्वमिथुनैः पानसंसर्गकर्कशैः ।
उत्पतद्भिर्विहङ्गैश्च विद्याधरगणैरपि ॥₄₀॥

त्यज्यमानमहासानुः संनिलीनमहोरगः ।
शैलशृङ्गशिलोद्धातस्तदाभूत्स महागिरिः ॥₄₁॥

निःश्वसद्भिस्तदा तैस्तु भुजगैरर्धनिःसृतैः ।
सपताक इवाभाति स तदा धरणीधरः ॥₄₂॥

ऋषिभिस्त्रास सम्भ्रान्तैस्त्यज्यमानः शिलोच्चयः ।
सीदन्महति कान्तारे सार्थहीन इवाध्वगः ॥₄₃॥

स वेगवान्वेगसमाहितात्मा
हरिप्रवीरः परवीरहन्ता ।
मनः समाधाय महानुभावो
जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी ॥₄₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

Chapter 5

॥सुन्दरकाण्डः॥

॥प्रथमः सर्गः॥

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः ।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥₁॥

अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः ।
धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ॥₂॥

द्विजान्वित्रासयन्धीमानुरसा पादपान्हरन् ।
मृगांश्च सुबहून्निघ्नन्प्रवृद्ध इव केसरी ॥₃॥

नीललोहितमाञ्जिष्ठपद्मवर्णैः सितासितैः ।
स्वभावविहितैश्चित्रैर्धातुभिः समलङ्कृतम् ॥₄॥

कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः ।
यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैश्च पन्नगैः ॥₅॥

स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते ।
तिष्ठन्कपिवरस्तत्र हृदे नाग इवाबभौ ॥₆॥

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे ।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥₇॥

अञ्जलिं प्राङ्मुखः कुर्वन्पवनायात्मयोनये ।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ॥₈॥

प्लवङ्गप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः ।
ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥₉॥

निष्प्रमाण शरीरः सलिलङ्घयिषुरर्णवम् ।

बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥₁₀॥

स चचालाचलाश्चारु मुहूर्तं कपिपीडितः ।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥₁₁॥

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना ।
सर्वतः संवृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा ॥₁₂॥

तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः ।
सलिलं सम्प्रसुप्नाव मदं मत्त इव द्विपः ॥₁₃॥

पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः ।
रीतिर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ।
मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः ॥₁₄॥

गिरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वशः ।
गुहाविष्टानि भूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥₁₅॥

स महासत्त्वसंनादः शैलपीडानिमित्तजः ।
पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च ॥₁₆॥

शिरोभिः पृथुभिः सर्पा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः ।
वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥₁₇॥

तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः ।
जज्वलुः पावकोद्दीप्ता विभिदुश्च सहस्रधा ॥₁₈॥

यानि चौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते ।
विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् ॥₁₉॥

भिद्यतेऽयं गिरिभूतैरिति मत्वा तपस्विनः ।
त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥₂₀॥

पानभूमिगतं हिवा हैममासनभाजनम् ।
पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥₂₁॥

लेह्यानुच्चावचान्भक्ष्यान्मांसानि विविधानि च ।
आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥₂₂॥

कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः ।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥₂₃॥

हारनूपुरकेयूर पारिहार्य धराः स्त्रियः ।
विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥₂₄॥

दर्शयन्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः ।
सहितास्तस्थुराकाशे वीक्षां चक्रुश्च पर्वतम् ॥₂₅॥

शुश्रुवुश्च तदा शब्दमृषीणां भावितात्मनाम् ।
चारणानां च सिद्धानां स्थितानां विमलेऽम्बरे ॥₂₆॥

एष पर्वतसङ्काशो हनूमान्मारुतात्मजः ।
तितीर्षति महावेगं समुद्रं मकरालयम् ॥₂₇॥

रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन्कर्म दुष्करम् ।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति ॥₂₈॥

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चाचलोपमः ।
ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः ॥₂₉॥

आनुपूर्व्याच्च वृत्तं च लाङ्गूलं रोमभिश्चितम् ।
उत्पतिष्यन्विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ॥₃₀॥

तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः ।
ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः ॥₃₁॥

बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ ।
ससाद च कपिः कट्यां चरणौ सञ्चुकोप च ॥₃₂॥

संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥₃₃॥

मार्गमालोकयन्दूरादूर्ध्वप्रणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥₃₄॥

पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन्महाबलः ।
वानरान्वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥₃₅॥

यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ।
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ॥₃₆॥

न हि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ।
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ॥₃₇॥

यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ।
बद्धा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ॥₃₈॥

सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ।
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम् ॥₃₉॥

एवमुक्त्वा तु हनुमान्वानरान्वानरोत्तमः ।
उत्पताताथ वेगेन वेगवानविचारयन् ॥₄₀॥

समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः ।
संहृत्य विटपान्सर्वान्समुत्पेतुः समन्ततः ॥₄₁॥

स मत्तकोयष्टिभकान्पादपान्पुष्पशालिनः ।
उद्वहन्नूरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥₄₂॥

ऊरुवेगोद्धता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः ।
प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ॥⁴³॥

तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः ।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥⁴⁴॥

सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः ।
हनुमान्पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥⁴⁵॥

सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमञ्जलवणाम्भसि ।
भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ॥⁴⁶॥

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः ।
शुशुभे मेघसङ्काशः खद्योतैरिव पर्वतः ॥⁴⁷॥

विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः ।
अवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥⁴⁸॥

लघुबेनोपपन्नं तद्विचित्रं सागरेऽपतत् ।
द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम् ॥⁴⁹॥

पुष्पोघेणानुबद्धेन नानावर्णेन वानरः ।
बभौ मेघ इवोद्यन्वै विद्युद्गणविभूषितः ॥⁵⁰॥

तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत ।
ताराभिरभिरामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ॥⁵¹॥

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ ।
पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्तौ पश्चास्याविव पन्नगौ ॥⁵²॥

पिबन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम् ।
पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ॥⁵³॥

तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः ।
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ॥⁵⁴॥

पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले ।
चक्षुषी सम्प्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ॥⁵⁵॥

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ ।
सन्ध्यया समभिस्पृष्टं यथा सूर्यस्य मण्डलम् ॥⁵⁶॥

लाङ्गलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते ।
अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥⁵⁷॥

लाङ्गूलचक्रेण महाञ्शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः ।
व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ॥⁵⁸॥

स्फिग्देशेनाभिताम्रेण रराज स महाकपिः ।
महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना ॥⁵⁹॥

तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् ।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ॥⁶⁰॥

खे यथा निपतत्युल्का उत्तरान्ताद्विनिःसृता ।
दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ॥⁶¹॥

पतत्पतङ्गसङ्काशो व्यायतः शुशुभे कपिः ।
प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया ॥⁶²॥

उपरिष्ठाच्छरीरेण छायाया चावगाढया ।
सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत्तदा कपिः ॥⁶³॥

यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ।
स स तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥⁶⁴॥

सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणाम् ।
अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥⁶⁵॥

कपिवातश्च बलवान्मेघवातश्च निःसृतः ।
सागरं भीमनिर्घोषं कम्पयामासतुर्भृशम् ॥⁶⁶॥

विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि ।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव ॥⁶⁷॥

प्लवमानं समीक्ष्याथ भुजङ्गाः सागरालयाः ।
व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिति मेनिरे ॥⁶⁸॥

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराभवत् ॥⁶⁹॥

श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी ।
तस्य सा शुशुभे छाया वितता लवणाम्भसि ॥⁷⁰॥

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा ।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि देवगन्धर्वदानवाः ॥⁷¹॥

तताप न हि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम् ।
सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ॥⁷²॥

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा ।
जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो महौजसम् ॥⁷³॥

नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विबुधाः खगाः ।
प्रेक्ष्याकाशे कपिवरं सहसा विगतक्लमम् ॥⁷⁴॥

तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति ।
इक्ष्वाकुकुलमानार्थं चिन्तयामास सागरः ॥⁷⁵॥

साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः ।
करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ॥₇₆॥

अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः ।
इक्ष्वाकुसचिवश्चायं नावसीदितुमर्हति ॥₇₇॥

तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः ।
शेषं च मयि विश्रान्तः सुखेनातिपतिष्यति ॥₇₈॥

इति कृत्वा मतिं सार्ध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि ।
हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥₇₉॥

ब्रमिहासुरसङ्घानां पातालतलवासिनाम् ।
देवराज्ञा गिरिश्रेष्ठ परिघः संनिवेशितः ॥₈₀॥

ब्रमेषां ज्ञातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् ।
पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ॥₈₁॥

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैलवर्धितुम् ।
तस्मात्सञ्चोदयामि त्वामुत्तिष्ठ नगसत्तम ॥₈₂॥

स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्येति वीर्यवान् ।
हनूमान्नामकार्यार्थं भीमकर्मा खमाप्लुतः ॥₈₃॥

तस्य साह्यं मया कार्यमिक्ष्वाकुकुलवर्तिनः ।
मम इक्ष्वाकवः पूज्याः परं पूज्यतमास्तव ॥₈₄॥

कुरु साचिव्यमस्माकं न नः कार्यमतिक्रमेत् ।
कर्तव्यमकृतं कार्यं सतां मन्युमुदीरयेत् ॥₈₅॥

सलिलादूर्ध्वमुत्तिष्ठ तिष्ठत्वेष कपिस्त्वयि ।
अस्माकमतिथिश्चैव पूज्यश्च प्लवतां वरः ॥₈₆॥

चामीकरमहानाभ देवगन्धर्वसेवित ।
हनूमांस्त्वयि विश्रान्तस्ततः शेषं गमिष्यति ॥⁸⁷॥

काकुत्स्थस्यानृशंस्यं च मैथिल्याश्च विवासनम् ।
श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ॥⁸⁸॥

हिरण्यनाभो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः ।
उत्पपात जलात्तूर्णं महाद्रुमलतायुतः ॥⁸⁹॥

स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युत्थितस्तदा ।
यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ॥⁹⁰॥

शातकुम्भमयैः शृङ्गैः सकिंनरमहोरगैः ।
आदित्योदयसङ्काशैरालिखद्भिरिवाम्बरम् ॥⁹¹॥

तस्य जाम्बूनदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः ।
आकाशं शस्त्रसङ्काशमभवत्काञ्चनप्रभम् ॥⁹²॥

जातरूपमयैः शृङ्गैर्भ्राजमानैः स्वयं प्रभैः ।
आदित्यशतसङ्काशः सोऽभवद्भिरिसत्तमः ॥⁹³॥

तमुत्थितमसङ्गेन हनूमानग्रतः स्थितम् ।
मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ॥⁹⁴॥

स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः ।
उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः ॥⁹⁵॥

स तदा पातितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ।
बुद्धा तस्य कपेर्वेगं जहर्ष च ननन्द च ॥⁹⁶॥

तमाकाशगतं वीरमाकाशे समवस्थितम् ।
प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत्पर्वतः कपिम् ।
मानुषं धरयन्नूपमात्मनः शिखरे स्थितः ॥⁹⁷॥

दुष्करं कृतवान्कर्म ब्रमिदं वानरोत्तम ।
निपत्य मम शृङ्गेषु विश्रमस्व यथासुखम् ॥₉₈॥

राधावस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः ।
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः ॥₉₉॥

कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ।
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थं ब्रह्मः सम्मानमर्हति ॥₁₀₀॥

ब्रह्मिन्मित्रमनेनाहं बहुमानात्प्रचोदितः ।
योजनानां शतं चापि कपिरेष समाप्नुतः ।
तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ॥₁₀₁॥

तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् ।
तदिदं गन्धवत्स्वादु कन्दमूलफलं बहु ।
तदास्वाद हरिश्रेष्ठ विश्रान्तोऽनुगमिष्यसि ॥₁₀₂॥

अस्माकमपि सम्बन्धः कपिमुख्यस्त्वयास्ति वै ।
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥₁₀₃॥

वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज ।
तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥₁₀₄॥

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता ।
धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवान् ॥₁₀₅॥

त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः ।
पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥₁₀₆॥

पूजिते ब्रह्मणि धर्मज्ञ पूजां प्राप्नोति मारुतः ।
तस्मात्त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥₁₀₇॥

पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् ।

तेऽपि जग्मुर्दिशः सर्वा गरुडानिलवेगिनः ॥₁₀₈॥

ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः ।
भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ॥₁₀₉॥

ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः ।
पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण तत्र तत्र सहस्रशः ॥₁₁₀॥

स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् ।
ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ॥₁₁₁॥

अस्मिँल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम ।
गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः ॥₁₁₂॥

ततोऽहं मानयामि त्वां मान्यो हि मम मारुतः ।
त्वया मे ह्येष सम्बन्धः कपिमुख्य महागुणः ॥₁₁₃॥

अस्मिन्नेवङ्गते कार्ये सागरस्य ममैव च ।
प्रीतिं प्रीतमना कर्तुं त्वमर्हसि महाकपे ॥₁₁₄॥

श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण कपिसत्तम ।
प्रीतिं च बहुमन्यस्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥₁₁₅॥

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥₁₁₆॥

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥₁₁₇॥

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुङ्गवः ।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान्प्रहसन्निव ॥₁₁₈॥

स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः ।

पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरनिलात्मजः ॥ 119 ॥

अथोर्ध्वं दूरमुत्पत्य हिक्वा शैलमहार्णवौ ।
पितुः पन्थानमास्थाय जगाम विमलेऽम्बरे ॥ 120 ॥

भूयश्चोर्ध्वगतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन् ।
वायुसूनुर्निरालम्बे जगाम विमलेऽम्बरे ॥ 121 ॥

तद्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ।
प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ 122 ॥

देवताश्चाभवन्द्दृष्ट्वास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा ।
काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः ॥ 123 ॥

उवाच वचनं धीमान्परितोषात्सगद्गदम् ।
सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः ॥ 124 ॥

हिरण्यनाभशैलेन्द्रपरितुष्टोऽस्मि ते भृशम् ।
अभयं ते प्रयच्छामि तिष्ठ सौम्य यथासुखम् ॥ 125 ॥

साह्यं कृतं ते सुमहद्विक्रान्तस्य हनूमतः ।
क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति ॥ 126 ॥

रामस्यैष हि दौत्येन याति दाशरथेर्हरिः ।
सत्क्रियां कुर्वता शक्या तोषितोऽस्मि दृढं ब्रूया ॥ 127 ॥

ततः प्रहर्षमलभद्विपुलं पर्वतोत्तमः ।
देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् ॥ 128 ॥

स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा ।
हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥ 129 ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।

अब्रुवन्सूर्यसङ्काशां सुरसां नागमातरम् ॥¹³⁰॥

अयं वातात्मजः श्रीमान्म्लवते सागरोपरि ।
हनूमान्नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर ॥¹³¹॥

राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम् ।
दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्तुं कृत्वा नभःस्पृशम् ॥¹³²॥

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषदं वा गमिष्यति ॥¹³³॥

एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता ।
समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः ॥¹³⁴॥

विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम् ।
प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह ॥¹³⁵॥

मम भक्षः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ ।
अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् ॥¹³⁶॥

एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिर्वानरर्षभः ।
प्रहृष्टवदनः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥¹³⁷॥

रामो दाशरथिर्नाम प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥¹³⁸॥

अस्य कार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः ।
तस्य सीता हता भार्या रावणेन यशस्विनी ॥¹³⁹॥

तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ।
कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि ॥¹⁴⁰॥

अथ वा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ।

आगमिष्यामि ते वक्तुं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥¹⁴¹॥

एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी ।
अब्रवीन्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम ॥¹⁴²॥

एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुङ्गवः ।
अब्रवीत्कुरु वै वक्तुं येन मां विषहिष्यसे ॥¹⁴³॥

इत्युक्ता सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायतः ।
दशयोजनविस्तारो बभूव हनुमांस्तदा ॥¹⁴⁴॥

तं दृष्ट्वा मेघसङ्काशं दशयोजनमायतम् ।
चकार सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम् ॥¹⁴⁵॥

हनुमांस्तु ततः क्रुद्धस्त्रिंशद्योजनमायतः ।
चकार सुरसा वक्तुं चत्वारिंशत्तथोच्छ्रितम् ॥¹⁴⁶॥

बभूव हनुमान्वीरः पञ्चाशद्योजनोच्छ्रितः ।
चकार सुरसा वक्तुं षष्टियोजनमायतम् ॥¹⁴⁷॥

तथैव हनुमान्वीरः सप्ततिं योजनोच्छ्रितः ।
चकार सुरसा वक्तुमशीतिं योजनायतम् ॥¹⁴⁸॥

हनूमानचल प्रख्यो नवतिं योजनोच्छ्रितः ।
चकार सुरसा वक्तुं शतयोजनमायतम् ॥¹⁴⁹॥

तद्दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान् ।
दीर्घजिह्वं सुरसया सुघोरं नरकोपमम् ॥¹⁵⁰॥

स सङ्क्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः ।
तस्मिन्मुहूर्ते हनुमान्बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ॥¹⁵¹॥

सोऽभिपत्याशु तद्वक्तुं निष्पत्य च महाजवः ।

अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥¹⁵²॥

प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्तुं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते ।
गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यं चास्तु वचस्तव ॥¹⁵³॥

तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव ।
अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् ॥¹⁵⁴॥

अर्थसिद्धौ हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥¹⁵⁵॥

तत्तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ।
साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम् ॥¹⁵⁶॥

स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम् ।
जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुणोपमः ॥¹⁵⁷॥

सेविते वारिधारिभिः पतगैश्च निषेविते ।
चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते ॥¹⁵⁸॥

सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः ।
विमानैः सम्पतद्भिश्च विमलैः समलङ्कृते ॥¹⁵⁹॥

वज्राशनिसमाघातैः पावकैरुपशोभिते ।
कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरलङ्कृते ॥¹⁶⁰॥

बहता हव्यमत्यन्तं सेविते चित्रभानुना ।
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते ॥¹⁶¹॥

महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले ।
विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते ॥¹⁶²॥

देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे ।

विताने जीवलोकस्य विततो ब्रह्मनिर्मिते ॥¹⁶³॥

बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वीरैः ।
कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥¹⁶⁴॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ।
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन्प्रविशंस्तदा ॥¹⁶⁵॥

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी ।
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी ॥¹⁶⁶॥

अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ।
इदं हि मे महत्सत्त्वं चिरस्य वशमागतम् ॥¹⁶⁷॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा छायामस्य समक्षिपत् ।
छायायां सङ्गृहीतायां चिन्तयामास वानरः ॥¹⁶⁸॥

समाक्षितोऽस्मि सहसा पङ्गुकृतपराक्रमः ।
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे ॥¹⁶⁹॥

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्ततः कपिः ।
ददर्श स महासत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि ॥¹⁷⁰॥

कपिराज्ञा यदाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् ।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ॥¹⁷¹॥

स तां बुद्धार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान्कपिः ।
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥¹⁷²॥

तस्य सा कायमुद्गीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः ।
वक्तुं प्रसारयामास पातालाम्बरसंनिभम् ॥¹⁷³॥

स ददर्श ततस्तस्या विकृतं सुमहन्मुखम् ।

कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः ॥₁₇₄॥

स तस्या विवृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः ।
सङ्क्षिप्य मुहुरात्मानं निष्पपात महाबलः ॥₁₇₅॥

आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणाः ।
ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा ॥₁₇₆॥

ततस्तस्य नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः ।
उत्पपाताथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः ॥₁₇₇॥

तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम् ।
भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगर्षभम् ॥₁₇₈॥

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम् ।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर ॥₁₇₉॥

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥₁₈₀॥

स तैः सम्भावितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनः ।
जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः ॥₁₈₁॥

प्राप्तभूयिष्ठ पारस्तु सर्वतः प्रतिलोकयन् ।
योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥₁₈₂॥

ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् ।
द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥₁₈₃॥

सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् ।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयन् ॥₁₈₄॥

स महामेघसङ्काशं समीक्ष्यात्मानमात्मना ।

निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान्मतिम् ॥¹⁸⁵॥

कायवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसाः ।
मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महाकपिः ॥¹⁸⁶॥

ततः शरीरं सङ्क्षिप्य तन्महीधरसंनिभम् ।
पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान् ॥¹⁸⁷॥

स चारुनानाविधरूपधारी
परं समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरशक्यप्रतिपन्नरूपः
समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः ॥¹⁸⁸॥

ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे
विचित्रकूटे निपपात कूटे ।
सकेतकोद्दालकनालिकेरे
महाद्रिकूटप्रतिमो महात्मा ॥¹⁸⁹॥

स सागरं दानवपन्नगायुतम्
बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम् ।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा
ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥¹⁹⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः ।
त्रिकूटशिखरे लङ्कां स्थितां स्वस्थो ददर्श ह ॥₁॥

ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान् ।
अभिवृष्टः स्थितस्तत्र बभौ पुष्पमयो यथा ॥₂॥

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः ।
अनिश्चसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥₃॥

शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि ।
किं पुनः सागरस्यान्तं सङ्ख्यातं शतयोजनम् ॥₄॥

स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः ।
जगाम वेगवाँलङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥₅॥

शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च ।
गण्डवन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥₆॥

शैलांश्च तरुसञ्छन्नान्वनराजीश्च पुष्पिताः ।
अभिचक्राम तेजस्वी हनुमान्लवगर्षभः ॥₇॥

स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च ।
स नगाग्रे च तां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥₈॥

सरलान्कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान् ।
प्रियालान्मुचुलिन्दांश्च कुटजान्केतकानपि ॥₉॥

प्रियङ्गून्गन्धपूर्णांश्च नीपान्सप्तच्छदांस्तथा ।

असनान्कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् ॥₁₀॥

पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि ।
पादपान्विहगाकीर्णान्पवनाधूतमस्तकान् ॥₁₁॥

हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलायुताः ।
आक्रीडान्विविधान्नम्यान्विविधांश्च जलाशयान् ॥₁₂॥

सन्ततान्विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः ।
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥₁₃॥

समासाद्य च लक्ष्मीवाँलङ्कां रावणपालिताम् ।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलङ्किताम् ॥₁₄॥

सीतापहरणार्थेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्विभिः ॥₁₅॥

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजमालिनीम् ॥₁₆॥

तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविचित्रितैः ।
ददर्श हनुमाँलङ्कां दिवि देवपुरीमिव ॥₁₇॥

गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनेः शुभैः ।
ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरमाकाशगं यथा ॥₁₈॥

पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान्पुरीम् ॥₁₉॥

सम्पूर्णां राक्षसैर्घोरैर्नागैर्भोगवतीमिव ।
अचिन्त्यां सुकृतां स्पष्टां कुबेराध्युषितां पुरा ॥₂₀॥

दंष्ट्रिभिर्बहुभिः शूरैः शूलपट्टिशपाणिभिः ।

रक्षितां राक्षसैर्घोरैर्गुहामाशीविषैरपि ॥₂₁॥

वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुनवाम्बराम् ।
शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकवतंसकाम् ॥₂₂॥

द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ।
कैलासशिखरप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
ध्रियमाणमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥₂₃॥

तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः ।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥₂₄॥

आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः ।
न हि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि ॥₂₅॥

इमां तु विषमां दुर्गां लङ्कां रावणपालिताम् ।
प्राप्यापि स महाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥₂₆॥

अवकाशो न सान्त्वस्य राक्षसेष्वभिगम्यते ।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥₂₇॥

चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां महात्मनाम् ।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥₂₈॥

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा ।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥₂₉॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
गिरिशृङ्गे स्थितस्तस्मिन्नामस्याभ्युदये रतः ॥₃₀॥

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी ।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥₃₁॥

उग्रौजसो महावीर्यो बलवन्तश्च राक्षसाः ।
वधनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गिता ॥₃₂॥

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्का पुरी मया ।
प्रवेष्टुं प्राप्तकालं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥₃₃॥

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षा सुरासुरैः ।
हनूमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥₃₄॥

केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥₃₅॥

न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः ।
एकामेकश्च पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥₃₆॥

भूताश्चार्थो विपद्यन्ते देशकालविरोधिताः ।
विक्रवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥₃₇॥

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥₃₈॥

न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥₃₉॥

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद्द्वयमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥₄₀॥

न हि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥₄₁॥

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
न ह्यस्त्यविदितं किञ्चिद्राक्षसानां बलीयसाम् ॥₄₂॥

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः ।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हीयते ॥⁴³॥

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः ।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥⁴⁴॥

रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम् ।
विचिन्वन्भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ॥⁴⁵॥

इति सञ्चिन्त्य हनुमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः ।
आचकाङ्क्षे तदा वीरा वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ।
पृषदंशकमात्रः सन्बभूवाद्भुतदर्शनः ॥⁴⁶॥

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान् ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां सुविभक्तमहापथम् ॥⁴⁷॥

प्रासादमालाविततां स्तम्भैः काञ्चनराजतैः ।
शातकुम्भमयैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ॥⁴⁸॥

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् ।
तलैः स्फाटिकसम्पूर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः ॥⁴⁹॥

वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविभूषितैः ।
तलैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ॥⁵⁰॥

काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम् ।
लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलङ्कृताम् ॥⁵¹॥

अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः ।
आसीद्विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥⁵²॥

स पाण्डुरोद्विद्धविमानमालिनीम्
महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।

यशस्विनां रावणबाहुपालिताम्
क्षपाचरैर्भीमबलैः समावृताम् ॥⁵³॥

चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वम्
तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकम्
उत्तिष्ठते नैकसहस्ररश्मिः ॥⁵⁴॥

शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णम्
उद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः
पोषूयमानं सरसीव हंसम् ॥⁵⁵॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

स लम्बशिखरे लम्बे लम्बतोयदसंनिभे ।
सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान्मारुतात्मजः ॥₁॥

निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ।
रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् ॥₂॥

शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् ।
सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ॥₃॥

सुपुष्टबलसङ्गुप्तां यथैव विटपावतीम् ।
चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डुरद्वारतोरणाम् ॥₄॥

भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव ।
तां सविद्युद्धनाकीर्णां ज्योतिर्मार्गनिषेविताम् ॥₅॥

चण्डमारुतनिर्हादां यथेन्द्रस्यामरावतीम् ।
शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥₆॥

किङ्किणीजालघोषाभिः पताकाभिरलङ्किताम् ।
आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान् ॥₇॥

विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः ।
जाम्बूनदमयैर्द्वारिवैदूर्यकृतवेदिकैः ॥₈॥

मणिस्फटिक मुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः ।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः ॥₉॥

वैदूर्यतलसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः ।

चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः ॥₁₀॥

क्रौञ्चबर्हिणसङ्घुष्टे राजहंसनिषेवितैः ।
तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः प्रतिनादिताम् ॥₁₁॥

वस्त्रोकसाराप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः ।
खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान्कपिः ॥₁₂॥

तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां राक्षसाधिपतेः शुभाम् ।
अनुत्तमामृद्धियुतां चिन्तयामास वीर्यवान् ॥₁₃॥

नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितुं बलात् ।
रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधधारिभिः ॥₁₄॥

कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः ।
प्रसिद्धेयं भवेद्भूमिर्मेन्दद्विविदयोरपि ॥₁₅॥

विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः ।
ऋक्षस्य केतुमालस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥₁₆॥

समीक्ष्य तु महाबाहो राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत्प्रीतिमान्कपिः ॥₁₇॥

तां रत्नवसनोपेतां कोष्ठागारावतंसकाम् ।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥₁₈॥

तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महागृहैः ।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य ददर्श स महाकपिः ॥₁₉॥

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः ।
स महापथमास्थाय मुक्तापुष्पविराजितम् ॥₂₀॥

हसितोद्धृष्टनिनदैस्तूर्यघोष पुरः सरैः ।

वज्राङ्कुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः ।
गृहमेधैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ॥²¹॥

प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः ।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ।
वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभाषितैः ॥²²॥

तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितङ्करः ।
राघवार्थं चरञ्छ्रीमान्ददर्श च ननन्द च ॥²³॥

शुश्राव मधुरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ।
स्त्रीणां मदसमृद्धानां दिवि चाप्सरसामिव ॥²⁴॥

शुश्राव काञ्चीनिनादं नूपुराणां च निःस्वनम् ।
सोपाननिनदांश्चैव भवनेषु महात्मनम् ।
आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः ॥²⁵॥

स्वाध्याय निरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ।
रावणस्तवसंयुक्तान्गर्जतो राक्षसानपि ॥²⁶॥

राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोबलं महत् ।
ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान्वहून् ॥²⁷॥

दीक्षिताञ्जटिलान्मुण्डान्गोऽजिनाम्बरवाससः ।
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा ॥²⁸॥

कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ।
एकाक्षानेककर्णांश्च चललम्बपयोधरान् ॥²⁹॥

करालान्भुग्नवक्त्रांश्च विकटान्वामनांस्तथा ।
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नी मुसलायुधान् ।
परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥³⁰॥

नातिष्ठूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिह्रस्वकान् ।
विरूपान्बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः ॥₃₁ ॥

शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः ।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥₃₂ ॥

स्रग्विणस्त्रनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् ।
तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ॥₃₃ ॥

शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ।
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः ॥₃₄ ॥

त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ।
वाजिहेषितसङ्घुष्टं नादितं भूषणैस्तथा ॥₃₅ ॥

रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा गजहयैः शुभैः ।
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः ॥₃₆ ॥

भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥₃₇ ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

ततः स मध्यं गतमंशुमन्तम्
ज्योत्स्नावितानं महदुद्धमन्तम् ।
ददर्श धीमान्दिवि भानुमन्तम्
गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥₁॥

लोकस्य पापानि विनाशयन्तम्
महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तम्
ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥₂॥

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
तथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥₃॥

हंसो यथा राजतपञ्चुरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थः
चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥₄॥

स्थितः ककुद्भानिव तीक्ष्णशृङ्गो
महाचलः श्वेत इवोच्चशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो
विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥₅॥

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः
प्रवृद्धरक्षः पिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः
स्वर्गप्रकाशो भगवान्प्रदोषः ॥₆॥

तन्त्री स्वनाः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः
स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तधराश्चापि तथा प्रवृत्ता
विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥७॥

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि
रथाश्चभद्रासनसङ्कुलानि ।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि
ददर्श धीमान्स कपिः कुलानि ॥८॥

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति
भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति
मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥९॥

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति
गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।
ददर्श कान्ताश्च समालपन्ति
तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्ति ॥१०॥

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः
सूपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः ।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भिर्-
हृदो भुजङ्गैरिव निःश्वसद्भिः ॥११॥

बुद्धिप्रधानान्नुचिराभिधानान्
संश्रद्धधानाञ्जगतः प्रधानान् ।
नानाविधानान्नुचिराभिधानान्
ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान् ॥१२॥

ननन्द दृष्ट्वा स च तान्सुरूपान्
नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान्स च तान्सुरूपान्

ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान् ॥₁₃॥

ततो वरार्हाः सुविशुद्धभावाः
तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः ।
प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा
ददर्श तारा इव सुप्रभावाः ॥₁₄॥

श्रिया ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा
निशीथकाले रमणोपगूढाः ।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढा
यथा विहङ्गाः कुसुमोपगूढाः ॥₁₅॥

अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टाः
तत्र प्रियाङ्गेषु सुखोपविष्टाः ।
भर्तुः प्रिया धर्मपरा निविष्टा
ददर्श धीमान्मनदाभिविष्टाः ॥₁₆॥

अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः
काश्चित्पराध्यास्तपनीयवर्णाः ।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः
कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः ॥₁₇॥

ततः प्रियान्प्राप्य मनोऽभिरामान्
सुप्रीतियुक्ताः प्रसमीक्ष्य रामाः ।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा
हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः ॥₁₈॥

चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्तमाला
वक्राक्षिपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः ।
विभूषणानां च ददर्श मालाः
शतहृदानामिव चारुमालाः ॥₁₉॥

न त्वेव सीतां परमाभिजाताम्

पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम् ।
लतां प्रफुल्लामिव साधुजाताम्
ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् ॥₂₀॥

सनातने वर्त्मनि संनिविष्टाम्
रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम् ।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टाम्
स्त्रीभ्यो वराभ्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥₂₁॥

उष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीम्
पुरा वरार्होत्तमनिष्ककण्ठीम् ।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीम्
वने प्रवृत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥₂₂॥

अव्यक्तलेखामिव चन्द्रलेखाम्
पांसुप्रदिग्धामिव हेमलेखाम् ।
क्षतप्ररूढामिव बाणलेखाम्
वायुप्रभिन्नामिव मेघलेखाम् ॥₂₃॥

सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य ।
बभूव दुःखाभिहतश्चिरस्य
प्लवङ्गमो मन्द इवाचिरस्य ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

स निकामं विनामेषु विचरन्कामरूपधृक् ।
विचचार कपिलङ्कां लाघवेन समन्वितः ॥₁॥

आससादाथ लक्ष्मीवान्नाक्षसेन्द्रनिवेशनम् ।
प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् ॥₂॥

रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद्वनम् ।
समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः ॥₃॥

रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हमभूषितैः ।
विचित्राभिश्च कक्ष्याभिर्द्वारिश्च रुचिरैर्वृतम् ॥₄॥

गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः ।
उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः ॥₅॥

सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाश्चनराजतैः ।
घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः ॥₆॥

बहुरत्नसमाकीर्णं परार्ध्यासनभाजनम् ।
महारथसमावासं महारथमहासनम् ॥₇॥

दृश्यैश्च परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः ।
विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः ॥₈॥

विनीतैरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम् ।
मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः ॥₉॥

मुदितप्रमदा रत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ।

वराभरणनिर्हादैः समुद्रस्वननिःस्वनम् ॥₁₀॥

तद्राजगुणसम्पन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः ।
भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम् ॥₁₁॥

नित्यार्चितं पर्वहुतं पूजितं राक्षसैः सदा ।
समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रमिव निःस्वनम् ॥₁₂॥

महात्मानो महद्वैश्म महारत्नपरिच्छदम् ।
महाजनसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः ॥₁₃॥

विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसङ्कुलम् ।
लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः ॥₁₄॥

गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः ।
वीक्षमाणो ह्यसन्तस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥₁₅॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।
ततोऽन्यत्पुप्लुवे वैश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ॥₁₆॥

अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम् ।
विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥₁₇॥

महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च ।
वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥₁₈॥

शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः ।
तथा चेन्द्रजितो वैश्म जगाम हरियूथपः ॥₁₉॥

जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरियूथपः ।
रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ॥₂₀॥

धूम्राक्षस्य च सम्पातेर्भवनं मारुतात्मजः ।
विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥₂₁॥

शुकनाभस्य वक्रस्य शठस्य विकटस्य च ।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥₂₂॥

युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य नादिनः ।
विद्युञ्जिह्वेन्द्रजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥₂₃॥

करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
क्रममाणः क्रमेणैव हनूमान्मारुतात्मजः ॥₂₄॥

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥₂₅॥

सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः ।
आससादाथ लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥₂₆॥

रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तमः ।
विचरन्हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ।
शूलमुद्गरहस्ताश्च शक्तो तोमरधारिणीः ॥₂₇॥
ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥₂₈॥

रक्ताञ्चेतान्स्मितांश्चैव हरींश्चैव महाजवान् ।
कुलीनान्नूपसम्पन्नान्गजान्परगजारुजान् ॥₂₉॥

निष्ठितान्गजशिखायामैरावतसमान्युधि ।
निहन्तृन्परसैन्यानां गृहे तस्मिन्ददर्श सः ॥₃₀॥

क्षरतश्च यथा मेघान्स्रवतश्च यथा गिरीन् ।
मेघस्तनितनिर्घोषान्दुर्धर्षान्समरे परैः ॥₃₁॥

सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिष्कृताः ।

हेमजालैरविच्छिन्नास्तरुणादित्यसंनिभाः ॥₃₂॥

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।
शिविका विविधाकाराः स कपिर्मरुतात्मजः ॥₃₃॥

लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ।
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानपि ॥₃₄॥

कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ॥₃₅॥

स मन्दरतलप्रख्यं मयूरस्थानसङ्कुलम् ।
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् ॥₃₆॥

अनन्तरत्ननिचयं निधिजालं समन्ततः ।
धीरनिष्ठितकर्मान्तं गृहं भूतपतेरिव ॥₃₇॥

अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च ।
विरराजाथ तद्वैष्म रश्मिमानिव रश्मिभिः ॥₃₈॥

जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च ।
भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः ॥₃₉॥

मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसङ्कुलम् ।
मनोरममसम्बाधं कुबेरभवनं यथा ॥₄₀॥

नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निनदेन च ।
मृदङ्गतलघोषैश्च घोषवद्भिर्विनादितम् ॥₄₁॥

प्रासादसङ्घातयुतं स्त्रीरत्नशतसङ्कुलम् ।
सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान्प्रविवेश महागृहम् ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

स वेष्मजालं बलवान्ददर्श
 व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ।
 यथा महत्प्रावृषि मेघजालम्
 विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम् ॥₁॥

निवेशनानां विविधाश्च शालाः
 प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
 मनोहराश्चापि पुनर्विशाला
 ददर्श वेष्माद्रिषु चन्द्रशालाः ॥₂॥

गृहाणि नानावसुराजितानि
 देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
 सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि
 कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ॥₃॥

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि
 मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
 महीतले सर्वगुणोत्तराणि
 ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ॥₄॥

ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपम्
 मनोहरं काञ्चनचारुरूपम् ।
 रक्षोऽधिपस्यात्मबलानुरूपम्
 गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥₅॥

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णम्
 श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम् ।
 नानातरूणां कुसुमावकीर्णम्
 गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम् ॥₆॥

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानम्
तडिद्भिरम्भोदवदर्च्यमानम् ।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानम्
श्रिया युतं खे सुकृतां विमानम् ॥७॥

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रम्
यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीकृतमेघचित्रम्
विमानरत्नं बहुरत्नचित्रम् ॥८॥

मही कृता पर्वतराजिपूर्णा
शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः ।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपूर्णाः
पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम् ॥९॥

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि
तथा सुपुष्पा अपि पुष्करिण्यः ।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि
धन्यानि चित्राणि तथा वनानि ॥१०॥

पुष्पाह्वयं नाम विराजमानम्
रत्नप्रभाभिश्च विवर्धमानम् ।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानम्
महाकपिस्तत्र महाविमानम् ॥११॥

कृताश्च वैदूर्यमया विहङ्गा
रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः ।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा
जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः ॥१२॥

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः
सलीलमावर्जितजिह्वपक्षाः ।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः

कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः ॥¹³॥

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः
सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृता सुहस्ता
लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥¹⁴॥

इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनम्
सविस्मयो नगमिव चारुशोभनम् ।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरम्
हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् ॥¹⁵॥

ततः स तां कपिरभिपत्य पूजिताम्
चरन्पुरीं दशमुखबाहुपालिताम् ।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजिताम्
सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम् ॥¹⁶॥

ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः
कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः ।
अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः
सुचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः ॥¹⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विपुलमायतम् ।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनूमान्मारुतात्मजः ॥₁॥

अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं हि तत् ।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसङ्कुलम् ॥₂॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।
सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः ॥₃॥

चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च ।
परिक्षिप्तमसम्बाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ॥₄॥

राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम् ।
आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ॥₅॥

तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिङ्गिलझषाकुलम् ।
वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ॥₆॥

या हि वैश्वरणे लक्ष्मीर्या चेन्द्रे हरिवाहने ।
सा रावणगृहे सर्वा नित्यमेवानपायिनी ॥₇॥

या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षो गृहेष्विह ॥₈॥

तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थं वेश्म चान्यत्सुनिर्मितम् ।
बहुनिर्यूह सङ्कीर्णं ददर्श पवनात्मजः ॥₉॥

ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद्विश्वकर्मणा ।

विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥₁₀॥

परेण तपसा लेभे यत्कुबेरः पितामहात् ।
कुबेरमोजसा जिह्वा लेभे तद्राक्षसेश्वरः ॥₁₁॥

ईहा मृगसमायुक्तैः कार्यस्वरहिरण्मयैः ।
सुकृतैराचितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ॥₁₂॥

मेरुमन्दरसङ्काशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् ।
कूटागारैः शुभाकारैः सर्वतः समलङ्कृतम् ॥₁₃॥

ज्वलनार्कप्रतीकाशं सुकृतं विश्वकर्मणा ।
हेमसोपानसंयुक्तं चारुप्रवरवेदिकम् ॥₁₄॥

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्थाटिकैरपि ।
इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः ॥₁₅॥

तत्रस्थः स तदा गन्धं पानभक्ष्यान्नसम्भवम् ।
दिव्यं सम्मूर्छितं जिघ्रन्नूपवन्तमिवानिलम् ॥₁₆॥

स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ।
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः ॥₁₇॥

ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शुभाम् ।
रावणस्य मनःकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ॥₁₈॥

मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ।
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ॥₁₉॥

मुक्ताभिश्च प्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ।
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् ॥₂₀॥

समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः ।
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं सम्प्रस्थितामिव ॥₂₁॥

महत्या कुथयास्त्रीणं पृथिवीलक्षणाङ्कया ।
पृथिवीमिव विस्तीर्णां सराष्ट्रगृहमालिनीम् ॥₂₂॥

नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ।
परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोऽधिपनिषेविताम् ॥₂₃॥

धूम्रामगरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम् ।
चित्रां पुष्पोपहारेण कल्माषीमिव सुप्रभाम् ॥₂₄॥

मनःसंह्लादजननीं वर्णस्यापि प्रसादिनीम् ।
तां शोकनाशिनीं दिव्यां श्रियः संजननीमिव ॥₂₅॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैस्तु पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ।
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता ॥₂₆॥

स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्येयं पुरी भवेत् ।
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ॥₂₇॥

प्रध्यायत इवापश्यत्प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान् ।
धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ॥₂₈॥

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥₂₉॥

ततोऽपश्यत्कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम् ।
सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ॥₃₀॥

परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशं गतम् ।
क्रीडितोपरतं रात्रौ सुष्वाप बलवत्तदा ॥₃₁॥

तत्प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषणम् ।
निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ॥³²॥

तासां संवृतदन्तानि मीलिताक्षाणि मारुतिः ।
अपश्यत्पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ॥³³॥

प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये ।
पुनःसंवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ॥³⁴॥

इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः ।
अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥³⁵॥

इति वामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः ।
मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ॥³⁶॥

सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता ।
शारदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ॥³⁷॥

स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः ।
यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरभिसंवृतः ॥³⁸॥

याश्च्यवन्तेऽम्बरात्ताराः पुण्यशेषसमावृताः ।
इमास्ताः सङ्गताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ॥³⁹॥

ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् ।
प्रभावर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ॥⁴⁰॥

व्यावृत्तगुरुपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः ।
पानव्यायामकालेषु निद्रापहतचेतसः ॥⁴¹॥

व्यावृत्ततिलकाः काश्चित्काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः ।
पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित्परमयोषितः ॥⁴²॥

मुखा हारवृताश्चान्याः काश्चित्प्रस्रस्तवाससः ।
व्याविद्धरशना दामाः किशोर्य इव वाहिताः ॥⁴³ ॥

सुकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः ।
गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ॥⁴⁴ ॥

चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासाधिदुत्कटाः ।
हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ॥⁴⁵ ॥

अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः ।
हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥⁴⁶ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ॥⁴⁷ ॥

किङ्किणीजालसङ्काशास्ता हेमविपुलाम्बुजाः ।
भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ॥⁴⁸ ॥

मृदुष्वङ्गेषु कासाधित्कुचाग्रेषु च संस्थिताः ।
बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः ॥⁴⁹ ॥

अंशुकान्ताश्च कासाधिन्मुखमारुतकम्पिताः ।
उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ॥⁵⁰ ॥

ताः पाताका इवोद्धृताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः ।
नानावर्णसुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे ॥⁵¹ ॥

ववल्गुश्चात्र कासाधित्कुण्डलानि शुभार्चिषाम् ।
मुखमारुतसंसर्गान्मन्दं मन्दं सुयोषिताम् ॥⁵² ॥

शर्करासवगन्धः स प्रकृत्या सुरभिः सुखः ।
तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ॥⁵³ ॥

रावणाननशङ्काश्च काश्चिद्रावणयोषितः ।
मुखानि स्म सपत्नीनामुपाजिघ्रन्पुनः पुनः ॥⁵⁴॥

अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः ।
अस्वतन्त्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ॥⁵⁵॥

बाहूनुपनिधायान्याः पारिहार्यं विभूषिताः ।
अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिथिले ॥⁵⁶॥

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काचित्पुनर्भुजम् ।
अपरा बद्धमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा भुजौ ॥⁵⁷॥

ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः ।
परस्परनिविष्टाङ्गो मदस्नेहवशानुगाः ॥⁵⁸॥

अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात्प्रीयमाणाः सुमध्यमाः ।
एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुप्तस्तत्र योषितः ॥⁵⁹॥

अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमालाग्रथिता हि सा ।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तपद्मदा ॥⁶⁰॥

लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात् ।
अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ॥⁶¹॥

व्यतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम् ।
आसीद्वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ॥⁶²॥

उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा ।
विवेकः शक्य आधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम् ॥⁶³॥

रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः ।
ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रेक्षन्तानिमिषा इव ॥⁶⁴॥

राजर्षिपितृदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः ।
रक्षसां चाभवन्कन्यास्तस्य कामवशं गताः ॥⁶⁵॥

न तत्र काचित्प्रमदा प्रसह्य
वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धा ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा
विना वरार्हा जनकात्मजां तु ॥⁶⁶॥

न चाकुलीना न च हीनरूपा
नादक्षिणा नानुपचार युक्ता ।
भार्याभवत्तस्य न हीनसत्त्वा
न चापि कान्तस्य न कामनीया ॥⁶⁷॥

बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य
यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा यथा राक्षसराजभार्याः
सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ॥⁶⁸॥

पुनश्च सोऽचिन्तयदार्तरूपो
ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान्महात्मा
लङ्केश्वरः कष्टमनार्यकर्म ॥⁶⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् ।
अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम् ॥₁॥

तस्य चैकतमे देशे सोऽग्र्यमाल्यविभूषितम् ।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसंनिभम् ॥₂॥

बालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः ।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥₃॥

परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम् ।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥₄॥

तस्मिञ्जीमूतसङ्काशं प्रदीप्तोत्तमकुण्डलम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥₅॥

लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना ।
सन्ध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ॥₆॥

वृतमाभरणैर्दिव्यैः सूरूपं कामरूपिणम् ।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥₇॥

क्रीडितोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् ।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥₈॥

पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्करे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥₉॥

निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरोत्तमः ।

आसाद्य परमोद्विग्नः सोऽपासर्पत्सुभीतवत् ॥₁₀॥

अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः ।
सुप्तं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥₁₁॥

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनोत्तमम् ।
गन्धहस्तिनि संविष्टे यथाप्रस्रवणं महत् ॥₁₂॥

काञ्चनाङ्गदनद्धौ च ददर्श स महात्मनः ।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ॥₁₃॥

ऐरावतविषाणाग्रैरापीडितकृतव्रणौ ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षितौ ॥₁₄॥

पीनौ समसुजातांसौ सङ्गतौ बलसंयुतौ ।
सुलक्षण नखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीतललक्षितौ ॥₁₅॥

संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ ।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥₁₆॥

शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना ।
चन्दनेन परार्धेन स्वनुलितौ स्वलङ्कृतौ ॥₁₇॥

उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ॥₁₈॥

ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महार्ही रुषिताविव ॥₁₉॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसाधिपः ।
शुशुभेऽचलसङ्काशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥₂₀॥

चूतपुंनागसुरभिर्बकुलोत्तमसंयुतः ।

मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरःसरः ॥₂₁॥

तस्य राक्षससिंहस्य निश्चक्राम मुखान्महान् ।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम् ॥₂₂॥

मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजता ।
मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोञ्जलिताननम् ॥₂₃॥

रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिता ।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजितम् ॥₂₄॥

पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम् ।
महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तमवाससा ॥₂₅॥

माषराशिप्रतीकाशं निःश्वसन्तं भुजङ्गवत् ।
गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसृतमिव कुञ्जरम् ॥₂₆॥

चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानैश्चतुर्दिशम् ।
प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव ॥₂₇॥

पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः ।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥₂₈॥

शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषिताः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥₂₉॥

नृत्तवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्गगाः ।
वराभरणधारिण्यो निषन्ना ददृशे कपिः ॥₃₀॥

वज्रवैदूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम् ।
ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ॥₃₁॥

तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः ।

विरराज विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ॥₃₂॥

मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥₃₃॥

काचिद्वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते ।
महानदीप्रकीर्णव नलिनी पोतमाश्रिता ॥₃₄॥

अन्या कक्षगतेनैव मङ्गुकेनासितेक्षणा ।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥₃₅॥

पटहं चारुसर्वाङ्गी पीड्य शेते शुभस्तनी ।
चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी ॥₃₆॥

काचिदंशं परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना ।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ॥₃₇॥

अन्या कनकसङ्काशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः ।
मृदङ्गं परिपीड्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥₃₈॥

भुजपार्श्वान्तरस्थेन कक्षगेण कृशोदरी ।
पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ॥₃₉॥

डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा ।
प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगूह्येव भामिनी ॥₄₀॥

काचिदाडम्बरं नारी भुजसम्भोगपीडितम् ।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥₄₁॥

कलशीमपविद्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी ।
वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ॥₄₂॥

पाणिभ्यां च कुचौ काचित्सुवर्णकलशोपमौ ।

उपगूह्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥₄₃॥

अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणी प्रसुप्ता मदविह्वला ॥₄₄॥

आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः ।
निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥₄₅॥

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्श रूपसम्पन्नामपरां स कपिः स्त्रियम् ॥₄₆॥

मुक्तामणिसमायुक्तेर्भूषणैः सुविभूषिताम् ।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् ॥₄₇॥

गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम् ।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥₄₈॥

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः ।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा ।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥₄₉॥

आशपोटयामास चुचुम्ब पुच्छम्
ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम ।
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ
निदर्शयन्स्त्रां प्रकृतिं कपीनाम् ॥₅₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा ।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥₁॥

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्नुमर्हति भामिनी ।
न भोक्तुं नाप्यलङ्घ्ये न पानमुपसेवितुम् ॥₂॥

नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् ।
न हि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि ।
अन्येयमिति निश्चित्य पानभूमौ चचार सः ॥₃॥

क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथा पराः ।
नृत्तेन चापराः क्लान्ताः पानविप्रहतास्तथा ॥₄॥

मुरजेषु मृदङ्गेषु पीठिकासु च संस्थिताः ।
तथास्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ॥₅॥

अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः ।
रूपसंलापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ॥₆॥

देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना ।
रताभिरतसंसुप्तं ददर्श हरियूथपः ॥₇॥

तासां मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः ।
गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ॥₈॥

स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् ।
करेणुभिर्यथारण्यं परिकीर्णो महाद्विपः ॥₉॥

सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः ।
ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥₁₀॥

मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः ।
तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः ॥₁₁॥

रौक्मेषु च विशलेषु भाजनेष्वर्धभक्षितान् ।
ददर्श कपिशार्दूल मयूरान्कुक्कुटांस्तथा ॥₁₂॥

वराहवार्धाणसकान्दधिसौवर्चलायुतान् ।
शल्यान्मृगमयूरांश्च हनूमानन्ववैक्षत ॥₁₃॥

कृकरान्विविधान्सिद्धांश्चकोरानर्धभक्षितान् ।
महिषानेकशल्यांश्च छागांश्च कृतनिष्ठितान् ।
लेख्यमुच्चावचं पेयं भोज्यानि विविधानि च ॥₁₄॥

तथामूलवणोत्तंसैर्विविधै रागषाडवैः ।
हार नूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः ॥₁₅॥

पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि ।
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकं पुष्यति श्रियम् ॥₁₆॥

तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टैः शयनासनैः ।
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते ॥₁₇॥

बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ।
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् ॥₁₈॥

दिव्याः प्रसन्ना विविधाः सुराः कृतसुरा अपि ।
शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः ।
वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक्पृथक् ॥₁₉॥

सन्तता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः ।

हिरण्मयैश्च करकैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि ।
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता ॥₂₀॥

राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ।
पानश्रेष्ठं तदा भूरि कपिस्तत्र ददर्श ह ॥₂₁॥

सोऽपश्यच्छातकुम्भानि शीधोर्मणिमयानि च ।
राजतानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः ॥₂₂॥

क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित्पीतानि सर्वशः ।
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह ॥₂₃॥

क्वचिद्भक्ष्यांश्च विविधान्क्वचित्पानानि भागशः ।
क्वचिदन्नावशेषाणि पश्यन्वै विचचार ह ॥₂₄॥

क्वचित्प्रभिन्नैः करकैः क्वचिदालोडितैर्घटैः ।
क्वचित्सम्पृक्तमाल्यानि जलानि च फलानि च ॥₂₅॥

शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः ।
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित्सुप्ता वराङ्गनाः ॥₂₆॥

काचिच्च वस्त्रमन्यस्या अपहृत्योपगुह्य च ।
उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥₂₇॥

तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम् ।
नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दमिवानिलम् ॥₂₈॥

चन्दनस्य च शीतस्य शीधोर्मधुरसस्य च ।
विविधस्य च माल्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च ॥₂₉॥

बहुधा मारुतस्तत्र गन्धं विविधमुद्बहन् ।
स्नानानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्छितः ।
प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा ॥₃₀॥

श्यामावदातास्तत्रान्याः काश्चित्कृष्णा वराङ्गनाः ।
काश्चित्काश्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये ॥³¹॥

तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन विमूर्छितम् ।
पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद्यथैव हि ॥³²॥

एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ।
ददर्श सुमहातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥³³॥

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः ।
जगाम महतीं चिन्तां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥³⁴॥

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥³⁵॥

न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥³⁶॥

तस्य प्रादुरभूच्चिन्तापुनरन्या मनस्विनः ।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥³⁷॥

कामं दृष्ट्वा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसः किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥³⁸॥

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तते ।
शुभाशुभास्त्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥³⁹॥

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे ॥⁴⁰॥

यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्ग्यते ।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ॥⁴¹॥

तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्तःपुरं सरं दृश्यते न च जानकी ॥₄₂॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् ।
अवेक्षमाणो हनुमान्नैवापश्यत जानकीम् ॥₄₃॥

तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
अपक्रम्य तदा वीरः प्रध्यातुमुपचक्रमे ॥₄₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

स तस्य मध्ये भवनस्य वानरो
 लतागृहांश्चित्रगृहान्निशागृहान् ।
 जगाम सीतां प्रति दर्शनोत्सुको
 न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥₁॥

स चिन्तयामास ततो महाकपिः
 प्रियामपश्यन्नघुनन्दनस्य ताम् ।
 ध्रुवं नु सीता म्रियते यथा न मे
 विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥₂॥

सा राक्षसानां प्रवरेण बाला
 स्वशीलसंरक्षणं तत्परा सती ।
 अनेन नूनं प्रतिदुष्टकर्मणा
 हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ॥₃॥

विरूपरूपा विकृता विवर्चसो
 महानना दीर्घविरूपदर्शनाः ।
 समीक्ष्य सा राक्षसराजयोषितो
 भयाद्विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ॥₄॥

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषम्
 विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम् ।
 न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः
 सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ॥₅॥

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्ट्वा रावणयोषितः ।
 न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥₆॥

किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति सङ्गताः ।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥७॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् ।
ध्रुवं प्रायमुपेक्ष्यन्ति कालस्य व्यतिवर्तने ॥८॥

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ।
गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥९॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
भूयस्तावद्विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥१०॥

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥११॥

तस्मादनिर्वेद कृतं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् ।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान्नावणपालितान् ॥१२॥

आपानशालाविचितास्तथा पुष्पगृहाणि च ।
चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च ॥१३॥

निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः ।
इति सञ्चिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ॥१४॥

भूमीगृहांश्चैत्यगृहान्गृहातिगृहकानपि ।
उत्पतन्निपतंश्चापि तिष्ठन्गच्छन्पुनः क्वचित् ॥१५॥

अपावृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघट्टयन् ।
प्रविशन्निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्नपि ।
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ॥१६॥

चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः ॥१७॥

प्राकरान्तररथ्याश्च वेदिकश्चैत्यसंश्रयाः ।
श्वभ्राश्च पुष्करिण्यश्च सर्व तेनावलोकितम् ॥₁₈॥

राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा ।
दृष्टा हनूमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥₁₉॥

रूपेणाप्रतिमा लोके वरा विद्याधर स्त्रियः ।
दृष्टा हनूमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥₂₀॥

नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
दृष्टा हनूमता तत्र न तु सीता सुमध्यमा ॥₂₁॥

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः ।
दृष्टा हनूमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥₂₂॥

सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
विषसाद महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥₂₃॥

उद्योगं वानरेन्द्राणं प्लवनं सागरस्य च ।
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागमत् ॥₂₄॥

अवतीर्य विमानाच्च हनूमान्मारुतात्मजः ।
चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

विमानात्तु सुसङ्क्रम्य प्राकारं हरियूथपः ।
हनूमान्वेगवानासीद्यथा विद्युद्धनान्तरे ॥₁॥

सम्परिक्रम्य हनुमान्नावणस्य निवेशनान् ।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥₂॥

भूयिष्ठं लोडिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् ।
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥₃॥

पल्लवानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा ।
नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः ।
लोडिता वसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम् ॥₄॥

इह सम्पातिना सीता रावणस्य निवेशने ।
आख्याता गृध्रराजेन न च पश्यामि तामहम् ॥₅॥

किं नु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा ।
उपतिष्ठेत् विवशा रावणं दुष्टचारिणम् ॥₆॥

क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः ।
बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ॥₇॥

अथ वा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते ।
मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ॥₈॥

रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च ।
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥₉॥

उपर्युपरि वा नूनं सागरं क्रमतस्तदा ।
विवेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा ॥₁₀॥

आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः ।
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ॥₁₁॥

अथ वा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा ।
अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति ॥₁₂॥

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
रामस्य ध्यायती वक्तुं पञ्चत्वं कृपणा गता ॥₁₃॥

हा राम लक्ष्मणेत्येव हायोध्येति च मैथिली ।
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति ॥₁₄॥

अथ वा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने ।
नूनं लालप्यते मन्दं पञ्जरस्थेव शारिका ॥₁₅॥

जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥₁₆॥

विनष्टा वा प्रनष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥₁₇॥

निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने ।
कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥₁₈॥

अस्मिन्नेवङ्गते कुर्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् ।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान्प्रविचारयन् ॥₁₉॥

यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः ।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ॥₂₀॥

ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ।
प्रवेशश्चिव लङ्काया राक्षसानां च दर्शनम् ॥₂₁॥

किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो व समागताः ।
किष्किन्धां समनुप्राप्तौ तौ वा दशरथात्मजौ ॥₂₂॥

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परमप्रियम् ।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यन्ति जीवितम् ॥₂₃॥

परुषं दारुणं क्रूरं तीक्ष्णमिन्द्रियतापनम् ।
सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ॥₂₄॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चद्वगतमानसम् ।
भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ॥₂₅॥

विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ।
भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ॥₂₆॥

पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः ।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ॥₂₇॥

कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
रामं तथा गतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यन्ति जीवितम् ॥₂₈॥

दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी ।
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ॥₂₉॥

वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्षिता ।
पञ्चद्वगमने राज्ञस्तारापि न भविष्यति ॥₃₀॥

मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीव व्यसनेन च ।
कुमारोऽप्यङ्गदः कस्माद्धारयिष्यति जीवितम् ॥₃₁॥

भर्तृजेन तु शोकेन अभिभूता वनौकसः ।
शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ॥₃₂॥

सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ।
लालिताः कपिराजेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ॥₃₃॥

न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः ।
क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ॥₃₄॥

सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः ।
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेत्य विषमेषु च ॥₃₅॥

विषमुद्धन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा ।
उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ॥₃₆॥

घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति ।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ॥₃₇॥

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः ।
न हि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥₃₈॥

मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ ।
आशया तौ धरिष्येते वनराश्च मनस्विनः ॥₃₉॥

हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः ।
वानप्रस्थो भविष्यामि अदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥₄₀॥

सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके ।
चितां कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ॥₄₁॥

उपविष्टस्य वा सम्यग्लिङ्गिनं साधयिष्यतः ।
शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ॥₄₂॥

इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः ।
सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ॥⁴³॥

सुजातमूला सुभगा कीर्तिमालायशस्विनी ।
प्रभग्ना चिररात्रीयं मम सीतामपश्यतः ॥⁴⁴॥

तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः ।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम् ॥⁴⁵॥

यदीतः प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् ।
अङ्गदः सहितैः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ॥⁴⁶॥

विनाशे बहवो दोषा जीवन्प्राप्नोति भद्रकम् ।
तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति सङ्गमः ॥⁴⁷॥

एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन्मुहुः ।
नाध्यगच्छत्तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ॥⁴⁸॥

रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ।
काममस्तु हता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ॥⁴⁹॥

अथवैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् ।
रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ॥⁵⁰॥

इति चिन्ता समापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् ।
ध्यानशोका परीतात्मा चिन्तयामास वानरः ॥⁵¹॥

यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥⁵²॥

सम्पाति वचनाच्चापि रामं यद्वानयाम्यहम् ।
अपश्यन्नाघवो भार्या निर्दहेत्सर्ववानरान् ॥⁵³॥

इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः ।
न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ॥⁵⁴॥

अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा ।
इमामभिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया ॥⁵⁵॥

वसूत्रुद्रांस्तथादित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च ।
नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः ॥⁵⁶॥

जिह्वा तु राक्षसान्देवीमिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम् ।
सम्प्रदास्यामि रामाया यथासिद्धिं तपस्विने ॥⁵⁷॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥⁵⁸॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥⁵⁹॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य अशोकवनिकां प्रति ॥⁶⁰॥

स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम् ।
उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ॥⁶¹॥

ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला ।
अशोकवनिका चिन्त्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ॥⁶²॥

रक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् ।
भगवानपि सर्वात्मा नातिक्षोभं प्रवायति ॥⁶³॥

सङ्क्षिप्तोऽयं मयात्मा च रामार्थे रावणस्य च ।

सिद्धिं मे संविधास्यन्ति देवाः सर्षिगणास्त्रिह ॥⁶⁴॥

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्देवाश्चैव दिशन्तु मे ।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रधृत् ॥⁶⁵॥

वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्ये तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः सर्व एव च ॥⁶⁶॥

सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः ।
दास्यन्ति मम ये चान्ये अदृष्टाः पथि गोचराः ॥⁶⁷॥

तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणम्
शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदा न्वहम्
प्रसन्नताराधिपतुल्यदर्शनम् ॥⁶⁸॥

क्षुद्रेण पापेन नृशंसकर्मणा
सुदारुणालाङ्कृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता अबला तपस्विनी
कथं नु मे दृष्टपथेऽद्य सा भवेत् ॥⁶⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

स मुहूर्तमिव ध्यत्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥₁॥

स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः ।
पुष्पिताग्रान्वसन्तादौ ददर्श विविधान्द्रुमान् ॥₂॥

सालानशोकान्भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान् ।
उद्दालकान्नागवृक्षांश्चूतान्कपिमुखानपि ॥₃॥

अथाम्रवणसञ्छन्नां लताशतसमावृताम् ।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥₄॥

स प्रविष्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् ।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतोवृताम् ॥₅॥

विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
उदितादित्यसङ्काशां ददर्श हनुमान्कपिः ॥₆॥

वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः ।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥₇॥

प्रहृष्टमनुजे कले मृगपक्षिसमाकुले ।
मत्तबर्हिणसङ्घुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥₈॥

मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
सुखप्रसुप्तान्विहगान्बोधयामास वानरः ॥₉॥

उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैः सालाः समाहताः ।

अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥₁₀॥

पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनुमान्मारुतात्मजः ।
अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥₁₁॥

दिशः सर्वाभिदावन्तं वृक्षपण्डगतं कपिम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥₁₂॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः ।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥₁₃॥

तरस्विना ते तरवस्तरसाभिप्रकम्पिताः ।
कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा ॥₁₄॥

निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफलद्रुमाः ।
निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः ॥₁₅॥

हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः ।
पुष्पपर्णफलान्याशु मुमुचुः पुष्पशालिनः ॥₁₆॥

विहङ्गसङ्घैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः ।
बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेनेव निर्धुताः ॥₁₇॥

विधूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णिका ।
निष्पीतशुभदन्तौष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता ॥₁₈॥

तथा लाङ्गूलहस्तैश्च चरणाभ्यां च मर्दिता ।
बभूवाशोकवनिका प्रभग्नवरपादपा ॥₁₉॥

महालतानां दामानि व्यधमत्तरसा कपिः ।
यथा प्रावृषि विन्ध्यस्य मेघजालानि मारुतः ॥₂₀॥

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।

तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन्दृशे कपिः ॥₂₁॥

वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हेर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥₂₂॥

मुक्ताप्रवालसिकता स्फटिकान्तरकुट्टिमाः ।
काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥₂₃॥

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपकूजिताः ।
नत्यूहरुतसङ्घुष्टा हंससारसनादिताः ॥₂₄॥

दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्धिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥₂₅॥

लताशतैरवतताः सन्तानकसमावृताः ।
नानागुल्मावृतवनाः करवीरकृतान्तराः ॥₂₆॥

ततोऽम्बुधरसङ्काशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥₂₇॥

शिलागृहैरवततं नानावृक्षैः समावृतम् ।
ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ॥₂₈॥

ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः ।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ॥₂₉॥

जले निपतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥₃₀॥

पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः ।
प्रसन्नमिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥₃₁॥

तस्यादूरात्स पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः ।

ददर्श कपिशार्दूलो हनुमान्मारुतात्मजः ॥₃₂॥

कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा ।
मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ॥₃₃॥

विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ।
काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलङ्कृताम् ॥₃₄॥

ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ।
सच्छत्राः सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः ॥₃₅॥

लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ।
काञ्चनीं शिंशुपामेकां ददर्श स महाकपिः ॥₃₆॥

सोऽपश्यद्भूमिभागांश्च गर्तप्रस्रवणानि च ।
सुवर्णवृक्षानपरान्ददर्श शिखिसंनिभान् ॥₃₇॥

तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः ।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति वानरः ॥₃₈॥

तां काञ्चनैस्तरुगणैर्मारुतेन च वीजिताम् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषां दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥₃₉॥

सुपुष्पिताग्रां रुचिरां तरुणाङ्कुरपल्लवाम् ।
तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ॥₄₀॥

इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं राम दर्शनलालसाम् ।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां सम्पतन्तीं यदृच्छया ॥₄₁॥

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः ।
चम्पकैश्चन्दनैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ॥₄₂॥

इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता ।
इमां सा राममहिषी नूनमेष्यति जानकी ॥⁴³॥

सा राम राममहिषी राघवस्य प्रिया सदा ।
वनसन्धारकुशला नूनमेष्यति जानकी ॥⁴⁴॥

अथ वा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा ।
वनमेष्यति सा चेह रामचिन्तानुकर्षिता ॥⁴⁵॥

रामशोकाभिसन्तप्ता सा देवी वामलोचना ।
वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥⁴⁶॥

वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा ।
रामस्य दयिता भार्या जनकस्य सुता सती ॥⁴⁷॥

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥⁴⁸॥

तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा ।
शुभा या पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य सम्मिता ॥⁴⁹॥

यदि जिवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शिवजलां नदीम् ॥⁵⁰॥

एवं तु मत्वा हनुमान्महात्मा
प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् ।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वम्
सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥⁵¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वा तामन्ववैक्षत ॥₁॥

सन्तान कलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलङ्कृताम् ॥₂॥

तां स नन्दनसङ्काशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसम्बाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥₃॥

काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥₄॥

सर्वर्तुकुसुमै रम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥₅॥

प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत ।
निष्पत्रशाखां विहगेः क्रियमाणामिवासकृत् ।
विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः ॥₆॥

आमूलपुष्पनिचितैरशोकैः शोकनाशनैः ।
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ॥₇॥

कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ।
स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः ॥₈॥

पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ।
विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः ॥₉॥

शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः ।
नीलाञ्जननिभाः केचित्तत्राशोकाः सहस्रशः ॥₁₀॥

नन्दनं विविधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा ।
अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यं श्रिया वृतम् ॥₁₁॥

द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम् ।
पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा ॥₁₂॥

सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः ।
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः ॥₁₃॥

अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोरमम् ।
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् ॥₁₄॥

अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः ।
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ॥₁₅॥

मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ।
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ॥₁₆॥

मुष्णन्तमिव चक्षूषि द्योतमानमिव श्रिया ।
विमलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ॥₁₇॥

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ।
उपवासकृशां दीनां निःश्वसान्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥₁₈॥

मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥₁₉॥

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलङ्कारां विपद्भामिव पद्मिनीम् ॥₂₀॥

व्रीडितां दुःखसन्तप्तां परिम्लानां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणैव पीडितामिव रोहिणीम् ॥²¹ ॥

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामननशेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥²² ॥

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणाभिवृतामिव ॥²³ ॥

नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
सुखार्हा दुःखसन्तप्तां व्यसनानामकोदिवाम् ॥²⁴ ॥

तां समीक्ष्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ॥²⁵ ॥

ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ।
यथारूपा हि दृष्टा वै तथारूपेयमङ्गना ॥²⁶ ॥

पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ।
कुर्वन्तीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ॥²⁷ ॥

तां नीलकेशीं बिम्बौष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् ।
सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा ॥²⁸ ॥

दृष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ।
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ॥²⁹ ॥

निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ।
शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् ॥³⁰ ॥

संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ।
तां स्मृतीमिव सन्दिध्दामृद्धिं निपतितामिव ॥³¹ ॥

विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ।
सोपसर्गा यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ॥³²॥

अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ।
रामोपरोधव्यथितां रक्षोहरणकर्षिताम् ॥³³॥

अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ।
बाष्पाम्बुप्रतिपूर्णेन कृष्णवक्त्राक्षिपक्ष्मणा ।
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥³⁴॥

मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥³⁵॥

तस्य सन्दिदिहे बुद्धिर्मुहुः सीतां निरीक्ष्य तु ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥³⁶॥

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलङ्घिताम् ।
संस्कारेण यथाहीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥³⁷॥

तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥³⁸॥

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥³⁹॥

सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥⁴⁰॥

श्यामानि चिरयुक्तत्वात्तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽब्रवीत्कीर्तयत् ॥⁴¹॥

तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥⁴²॥

पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ॥⁴³॥

भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥⁴⁴॥

इदं चिरगृहीतत्वाद्वसनं क्लिष्टवत्तरम् ।
तथा हि नूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥⁴⁵॥

इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रनष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥⁴⁶॥

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥⁴⁷॥

स्त्री प्रनष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥⁴⁸॥

अस्या देव्या यथा रूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथारूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥⁴⁹॥

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥⁵⁰॥

दुष्करं कुरुते रामो य इमां मत्तकाशिनीम् ।
सीतां विना महाबाहुर्मुहूर्तमपि जीवति ॥⁵¹॥

एवं सीतां तदा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥⁵²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुङ्गवः ।
गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥₁॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनुमान्विललाप ह ॥₂॥

मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया ।
यदि सीतापि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥₃॥

रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥₄॥

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् ।
राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥₅॥

तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् ।
जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥₆॥

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः ।
रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥₇॥

विराधश्च हतः सङ्ख्ये राक्षसो भीमविक्रमः ।
वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ॥₈॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥₉॥

खरश्च निहतः सङ्ख्ये त्रिशिराश्च निपातितः ।

दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥₁₀॥

ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकसत्कृतम् ॥₁₁॥

सागरश्च मया क्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥₁₂॥

यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥₁₃॥

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥₁₄॥

द्वयं सा धर्मशीलस्य मैथिलस्य महात्मनः ।
सुता जनकराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥₁₅॥

उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः ॥₁₆॥

विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः ।
स्रुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥₁₇॥

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः ।
द्वयं सा दयिता भार्या राक्षसी वशमागता ॥₁₈॥

सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता ।
अचिन्तयित्वा दुःखानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥₁₉॥

सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणे रता ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥₂₀॥

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी ।

सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥₂₁॥

इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः ।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥₂₂॥

अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥₂₃॥

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च ।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥₂₄॥

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्युष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥₂₅॥

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि ।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥₂₆॥

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥₂₇॥

इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् ।
सुखार्हा दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथितं मनः ॥₂₈॥

क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभाक्षी
या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः
संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥₂₉॥

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा
व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी
जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥₃₀॥

अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः
शोकं दृढं वै जनयत्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च मन्दरश्मिः
अभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥₃₁॥

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव निविष्टबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे
बली हरीणामृषभस्तरस्त्री ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

ततः कुमुदषण्डाभो निर्मलं निर्मलः स्वयम् ।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥₁॥

साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः ।
चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥₂॥

स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥₃॥

दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः ।
स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥₄॥

एकाक्षीमेककर्णा च कर्णप्रावरणां तथा ।
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥₅॥

अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् ।
ध्वस्तकेशीं तथाकेशीं केशकम्बलधारिणीम् ॥₆॥

लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।
लम्बौष्ठीं चिबुकौष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ॥₇॥

ह्रस्वां दीर्घां च कुब्जां च विकटां वामनां तथा ।
करालां भुग्नवस्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥₈॥

विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः ।
कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥₉॥

वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवा मुखाः ।

गजोष्ट्रहयपादाश्च निखातशिरसोऽपराः ॥₁₀॥

एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्चकर्णिकाः ।
गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ॥₁₁॥

अनासा अतिनासाश्च तिर्यन्नासा विनासिकाः ।
गजसंनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिकाः ॥₁₂॥

हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः ।
अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः ॥₁₃॥

अतिमात्रास्य नेत्राश्च दीर्घजिह्वानखास्तथा ।
अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः ॥₁₄॥

हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः ।
शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥₁₅॥

कराला धूम्रकेशीश्च रक्षसीर्विकृताननाः ।
पिबन्तीः सततं पानं सदा मांससुराप्रियाः ॥₁₆॥

मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः ।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥₁₇॥

स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् ।
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥₁₈॥

लक्षयामास लक्ष्मीवान्हनूमाञ्जनकात्मजाम् ।
निष्प्रभां शोकसन्तप्तां मलसङ्कुलमूर्धजाम् ॥₁₉॥

क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव ।
चारित्र्य व्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम् ॥₂₀॥

भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषिताम् ।

राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम् ॥²¹॥

वियूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव ।
चन्द्रलेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवारुताम् ॥²²॥

क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् ।
सीतां भर्तृहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वशे ॥²³॥

अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् ।
ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥²⁴॥

ददर्श हनुमान्देवीं लतामकुसुमामिव ।
सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलङ्कृता ॥²⁵॥

मृणाली पङ्कदिधेव विभाति च न भाति च ।
मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् ॥²⁶॥

संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान्कपिः ।
तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा ॥²⁷॥

रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् ।
तां दृष्ट्वा हनुमान्सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् ॥²⁸॥

मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः ।
दहन्तीमिव निःश्वासेर्वृक्षान्पल्लवधारिणः ॥²⁹॥

सङ्घातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ।
तां क्षामां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् ॥³⁰॥

प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् ॥³¹॥

मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ।

नमस्कृत्वा च रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ॥³²॥

सीतादर्शनसंहृष्टो हनूमान्संवृतोऽभवत् ॥³³॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् ।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छेषा निशाभवत् ॥₁॥

षडङ्गवेदविदुषां ऋतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥₂॥

अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः ।
प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥₃॥

विबुध्य तु यथाकालं राक्षसेन्द्रः प्रतावपान् ।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥₄॥

भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः ।
न स तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥₅॥

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् ।
तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥₆॥

वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् ।
सदामदैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुताम् ॥₇॥

ईहामृगैश्च विविधैश्चृतां दृष्टिमनोहरैः ।
वीथीः सम्प्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाः ॥₈॥

नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम् ॥₉॥

अङ्गनाशतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजत् ।

महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥₁₀॥

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहस्तत्र योषितः ।
बालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥₁₁॥

काञ्चनैरपि भृङ्गारैर्जहुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रानसींश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥₁₂॥

काचिद्रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भामिनी ।
दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥₁₃॥

राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥₁₄॥

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥₁₅॥

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् ।
शुश्राव परमस्त्रीणां स कपिर्मरुतात्मजः ॥₁₆॥

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम् ।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान्कपिः ॥₁₇॥

दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥₁₈॥

कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कन्दर्पमपविद्ध शरासनम् ॥₁₉॥

मथितामृतफेनाभमरजो वस्त्रमुत्तमम् ।
सलीलमनुकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥₂₀॥

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पघनावृतः ।

समीपमुपसङ्क्रान्तं निध्यातुमुपचक्रमे ॥₂₁॥

अवेक्षमाणश्च ततो ददर्श कपिकुञ्जरः ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥₂₂॥

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशः ।
तन्मृगद्विजसङ्घुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ॥₂₃॥

क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः ।
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥₂₄॥

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ।
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥₂₅॥

रावणोऽयं महाबाहुरिति सञ्चिन्त्य वानरः ।
अवप्लुतो महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ॥₂₆॥

स तथाप्युग्रतेजाः सन्निधूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रगुह्यान्तरे सक्तो हनूमान्संवृतोऽभवत् ॥₂₇॥

स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् ।
दिदक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री बनिन्दिता ।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥₁॥

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥₂॥

ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदन्ती वरवर्णिनी ॥₃॥

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः ।
ददर्श दीनां दुःखार्तं नावं सन्नामिवार्णवे ॥₄॥

असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् ।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ।
मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डिताम् ॥₅॥

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः ।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥₆॥

शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् ।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥₇॥

वेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥₈॥

वृत्तशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके ।
पुनः संस्कारमापन्नां जातमिव च दुष्कुले ॥₉॥

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम् ।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ॥₁₀॥

आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव ।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहतामिव ॥₁₁॥

पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ।
प्रभामिव तपोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् ॥₁₂॥

वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ।
पौर्णमासीमिव निशां राहुग्रस्तेन्दुमण्डलाम् ॥₁₃॥

उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलां पद्मिनीमिव ॥₁₄॥

पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥₁₅॥

सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥₁₆॥

गृहीतामालितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥₁₇॥

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥₁₈॥

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥₁₉॥

आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव ।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥₂₀॥

समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दिताम्
सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीम्
प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥ अष्टादशः सर्गः ॥

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥₁॥

मां दृष्ट्वा नागनासोरुगूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥₂॥

कामये त्वां विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥₃॥

नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः ।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥₄॥

स्वधर्मे रक्षसां भीरु सर्वथैष न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥₅॥

एवं चैतदकामां च न त्वां स्प्रक्ष्यामि मैथिलि ।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥₆॥

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥₇॥

एकवेणी धराशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् ।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥₈॥

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगरूणि च ।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥₉॥

महार्हाणि च पानानि यानानि शयनानि च ।

गीतं नृत्तं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥₁₀॥

स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य तु कथं हि स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥₁₁॥

इदं ते चारुसंजातं यौवनं व्यतिवर्तते ।
यदतीतं पुनर्नेति स्रोतः शीघ्रमपामिव ॥₁₂॥

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत् ।
न हि रूपोपमा त्वन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥₁₃॥

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम् ।
कः पुमानतिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥₁₄॥

यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने ।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥₁₅॥

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेनं विसर्जय ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥₁₆॥

लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि मे ।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैतदहं च ते ॥₁₇॥

विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् ।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥₁₈॥

नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत् ।
पश्य मे सुमहद्दीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥₁₉॥

असकृत्संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः ।
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ॥₂₀॥

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् ।

सप्रभाण्यवसञ्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि च ।
साधु पश्यामि ते रूपं संयुक्तं प्रतिकर्मणा ॥²¹॥

प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ।
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥²²॥

ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ।
मत्प्रभावाल्ललन्त्याश्च ललन्तां बान्धवास्तव ॥²³॥

ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशश्च मे ।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवाससा ॥²⁴॥

निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः ।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥²⁵॥

न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते ।
पुरो बलाकैरसितैर्मैघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥²⁶॥

न चापि मम हस्ताब्जां प्राप्तुमर्हति राघवः ।
हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ॥²⁷॥

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥²⁸॥

क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलङ्कृताम् ।
तां दृष्ट्वा स्त्रेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ॥²⁹॥

अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः ।
यावन्त्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥³⁰॥

मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवराः स्त्रियः ।
तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥³¹॥

यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च ।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मां च भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥³²॥

न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः ।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥³³॥

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वम्
त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥³⁴॥

कुसुमिततरुजालसन्ततानि
भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।
कनकविमलहारभूषिताङ्गी
विहर मया सह भीरु काननानि ॥³⁵॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच शनैर्वचः ॥₁॥

दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥₂॥

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने क्रियतां मनः ॥₃॥

न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ।
कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ॥₄॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ।
राक्षसं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् ॥₅॥

नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ।
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर ॥₆॥

यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्त्रेषु दारेषु रम्यताम् ॥₇॥

अतुष्टं स्त्रेषु दारेषु चपलं चलितेन्द्रियम् ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञां परदाराः पराभवम् ॥₈॥

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे ।
वचो मिथ्या प्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः ॥₉॥

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥₁₀॥

तथेयं त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघ सङ्कुला ।
अपराधान्तैकस्य नचिराद्विनशिष्यति ॥₁₁॥

स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः ।
अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥₁₂॥

एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः ।
दिष्टैतद्व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ॥₁₃॥

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ॥₁₄॥

उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥₁₅॥

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव वसुधापतेः ।
व्रतस्नातस्य विप्रस्य विद्येव विदितात्मनः ॥₁₆॥

साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् ।
वने वाशितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ॥₁₇॥

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता ।
वधं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः ॥₁₈॥

वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् ।
त्वद्विधं न तु सङ्कुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥₁₉॥

रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् ।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥₂₀॥

इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः ।
इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षणाः ॥₂₁॥

रक्षांसि परिनिघ्नन्तः पुर्यामस्यां समन्ततः ।
असम्पातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ॥₂₂॥

राक्षसेन्द्रमहासर्पान्स रामगरुडो महान् ।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ॥₂₃॥

अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः ।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ॥₂₄॥

जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले ।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ॥₂₅॥

आश्रमं तु तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ॥₂₆॥

न हि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ।
शक्यं सन्दर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥₂₇॥

तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम् ।
वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य निग्रहः ॥₂₈॥

क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥₂₉॥

गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवालयम्
सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः ।
असंशयं दाशरथेर्न मोक्ष्यसे
महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसाधिपः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥₁॥

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥₂॥

संनियच्छति मे क्रोधं ह्यि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥₃॥

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते ।
जने तस्मिन्स्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥₄॥

एतस्मात्कारणान्न तां घतयामि वरानने ।
वधार्हामवमानार्हा मिथ्याप्रव्रजिते रताम् ॥₅॥

परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥₆॥

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥₇॥

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥₈॥

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
मम त्वां प्रातराशार्थमारभन्ते महानसे ॥₉॥

तां तर्ज्यमानां सम्प्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम् ।

देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विपुलेक्षणाः ॥₁₀॥

ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रवक्त्रैस्तथापराः ।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥₁₁॥

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् ।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौण्डीर्यगर्वितम् ॥₁₂॥

नूनं न ते जनः कश्चिदसिन्निःश्रेयसे स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥₁₃॥

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः ।
बदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥₁₄॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥₁₅॥

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने ।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच शशवत्स्मृतः ॥₁₆॥

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे ।
चक्षुषो विषयं तस्य न तावदुपगच्छसि ॥₁₇॥

इमे ते नयने क्रूरे विरूपे कृष्णपिङ्गले ।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्यनिरीक्षितः ॥₁₈॥

तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च ।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यते ॥₁₉॥

असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥₂₀॥

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।

विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥₂₁॥

शूरेण धनदभ्राता बलैः समुदितेन च ।
अपोह्य रामं कस्माद्धि दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥₂₂॥

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥₂₃॥

नीलजीमूतसङ्काशो महाभुजशिरोधरः ।
सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान्दीप्तजिह्वोग्रलोचनः ॥₂₄॥

चलाग्रमकुटः प्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥₂₅॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेककेन सुसंवृतः ।
अमृतोत्पादनद्धेन भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥₂₆॥

तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः ।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ॥₂₇॥

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥₂₈॥

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥₂₉॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्दिदेश ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥₃₀॥

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ॥₃₁॥

हस्तिपदं श्वपदौ च गोपदीं पादचूलिकाम् ।

एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥³²॥

अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम् ।
अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वामजिह्विकाम् ।
अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सूकरीमुखीम् ॥³³॥

यथा मद्भशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य च ॥³⁴॥

प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ।
आवर्तयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ॥³⁵॥

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ।
काममन्युपरीतात्मा जानकीं पर्यतर्जयत् ॥³⁶॥

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ।
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥³⁷॥

मया क्रीड महाराजसीतया किं तवानया ।
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ।
इच्छन्तीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ॥³⁸॥

एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली ।
ज्वलद्भास्करवर्णाभं प्रविवेश निवेशनम् ॥³⁹॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिवार्य दशग्रीवं विविशुस्तद्गृहोत्तमम् ॥⁴⁰॥

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थिताम्
प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः ।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः
स्वमेव वेश्म प्रविवेश भास्वरम् ॥⁴¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्दिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥₁॥

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते ।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥₂॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥₃॥

पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः ।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥₄॥

ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
आमन्त्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥₅॥

प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थो यः प्रजापतिः ।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥₆॥

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः ।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥₇॥

तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ।
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे ॥₈॥

ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा ॥₉॥

येन देवास्त्रयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जितः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥₁₀॥

वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
बलिनो वीर्ययुक्तस्या भार्यात्वं किं न लप्स्यसे ॥₁₁॥

प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः ।
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ॥₁₂॥

समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ।
अन्तःपुरं समुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ॥₁₃॥

असकृद्देवता युद्धे नागगन्धर्वदानवाः ।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥₁₄॥

तस्य सर्वसमृद्धस्या रावणस्य महात्मनः ।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥₁₅॥

यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य च मारुतः ।
न वाति स्मायतापाङ्गे किं त्वं तस्य न तिष्ठसि ॥₁₆॥

पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ।
शैलाश्च सुभ्रु पानीयं जलदाश्च यदेच्छति ॥₁₇॥

तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ॥₁₈॥

साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो विकृताननाः ।
परुषं परुषा नार्य ऊचुस्ता वाक्यमप्रियम् ॥₁॥

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोहरे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥₂॥

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान्न त्वं जातु भविष्यसि ॥₃॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विकृवं तमनिन्दिते ॥₄॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥₅॥

यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरथ सङ्गताः ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किञ्चिपि प्रतितिष्ठति ॥₆॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ।
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ॥₇॥

सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥₈॥

अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्छिंशपाद्भुमे ।
सीतां सन्तर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ॥₉॥

तामभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः ।
भृशं संलिलिहुर्दीप्तान्प्रलम्बदशनच्छदान् ॥₁₀॥

ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ।
नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ॥₁₁॥

सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरानना ।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥₁₂॥

ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता ।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ॥₁₃॥

तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरधारिणीम् ।
भर्त्सयां चक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः ॥₁₄॥

ततस्तां विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना ।
अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ॥₁₅॥

सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तृस्नेहो निदर्शितः ।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥₁₆॥

परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः ।
ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ॥₁₇॥

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ।
विक्रान्तं रूपवन्तं च सुरेशमिव वासवम् ॥₁₈॥

दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् ।
मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ॥₁₉॥

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
अद्य प्रभृति सर्वेषां लोकानामीश्वरी भव ।
अग्नेः स्वाहा यथा देवी शचीवेन्द्रस्य शोभने ॥₂₀॥

किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥²¹॥

एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि ।
अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ॥²²॥

अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा ।
अब्रवीत्कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य गर्जती ॥²³॥

बहून्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते ।
अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ।
न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम् ॥²⁴॥

आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ।
रावणान्तःपुरं घोरं प्रविष्टा चासि मैथिलि ॥²⁵॥

रावणस्य गृहे रुधा अस्माभिस्तु सुरक्षिता ।
न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात्पुरन्दरः ॥²⁶॥

कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि ।
अलमश्रुप्रपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ॥²⁷॥

भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजेतां नित्यदैन्यताम् ।
सीते राक्षसराजेन सह क्रीड यथासुखम् ॥²⁸॥

जानासि हि यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ।
यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावत्सुखमवाप्नुहि ॥²⁹॥

उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ।
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ॥³⁰॥

स्त्रीसहस्राणि ते सप्त वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ॥³¹॥

उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ।

यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि ॥³²॥

ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ।
भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् ॥³³॥

इमां हरिणलोकाक्षीं त्रासोत्कम्पयोधराम् ।
रावणेन हतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानभूत् ॥³⁴॥

यकृत्स्लीहमथोत्पीडं हृदयं च सबन्धनम् ।
अन्त्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ॥³⁵॥

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयामः किमास्यते ॥³⁶॥

निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह ।
नात्र कश्चन सन्देहः खादतेति स वक्ष्यति ॥³⁷॥

ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
विशस्येमां ततः सर्वान्समान्कुरुत पीलुकान् ॥³⁸॥

विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ।
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु ॥³⁹॥

ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
अजामुखा यदुक्तं हि तदेव मम रोचते ॥⁴⁰॥

सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ।
मानुषं मांसमासाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ॥⁴¹॥

एवं सम्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥⁴²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

तथा तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु ।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा ॥₁॥

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी ।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा ॥₂॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥₃॥

सा राक्षसी मध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे दुःखार्ता रावणेन च तर्जिता ॥₄॥

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः ।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥₅॥

सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥₆॥

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥₇॥

सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत् ॥₈॥

तस्या सा दीर्घविपुला वेपन्त्याः सीतया तदा ।
ददृशे कम्पिनी वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥₉॥

सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता शोकोपहतचेतना ।

आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप ह ॥₁₀॥

हा रामेति च दुःखार्ता पुनर्हा लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रु मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भाविनि ॥₁₁॥

लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥₁₂॥

यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥₁₃॥

एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौ पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥₁₄॥

भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥₁₅॥

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥₁₆॥

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीष्कणं विषमिवास्त्राद्य दुर्लभं मम जीवितम् ॥₁₇॥

कीदृशं तु मया पापं पुरा देहान्तरे कृतम् ।
येनेदं प्राप्यते दुःखं मया घोरं सुदारुणम् ॥₁₈॥

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥₁₉॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

प्रसक्ताश्चुमुखीत्येवं ब्रुवन्ती जनकात्मजा ।
अधोमुखमुखी बाला विलसुमुपचक्रमे ॥₁॥

उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती ।
उपावृत्ता किशोरीव विवेष्टन्ती महीतले ॥₂॥

राघवस्याप्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा ।
रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात् ॥₃॥

राक्षसी वशमापन्ना भर्त्यमाना सुदारुणम् ।
चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥₄॥

न हि मे जीवितेनार्थो नैवार्थेन च भूषणैः ।
वसन्त्या राक्षसी मध्ये विना रामं महारथम् ॥₅॥

धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता ।
मुहूर्तमपि रक्षामि जीवितं पापजीविता ॥₆॥

का च मे जीविते श्रद्धा सुखे वा तं प्रियं विना ।
भर्तारं सागरान्ताया वसुधायाः प्रियं वदम् ॥₇॥

भिद्यतां भक्ष्यतां वापि शरीरं विसृजाम्यहम् ।
न चाप्यहं चिरं दुःखं सहेयं प्रियवर्जिता ॥₈॥

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥₉॥

प्रत्याख्यातं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम् ।

यो नृशंस स्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥₁₀॥

छिन्ना भिन्ना विभक्ता वा दीप्ते वाग्नौ प्रदीपिता ।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वञ्चिरम् ॥₁₁॥

ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः ।
सद्धृतो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसङ्ख्यात् ॥₁₂॥

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश ।
येनैकेन निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते ॥₁₃॥

निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा ।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे ॥₁₄॥

विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गवः ।
रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते ॥₁₅॥

कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा ।
न तु राघवबाणानां गतिरोधी ह विद्यते ॥₁₆॥

किं नु तत्कारणं येन रामो दृढपराक्रमः ।
रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां नाभ्यवपद्यते ॥₁₇॥

इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्नपि हि तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥₁₈॥

हृतेति योऽधिगत्वा मां राघवाय निवेदयेत् ।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥₁₉॥

कृतं कर्म महत्तेन मां तदाभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणद्वन्द्वे वृद्धेनापि जटायुषा ॥₂₀॥

यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां स राघवः ।

अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥₂₁॥

विधमेच्च पुरीं लङ्कां शोषयेच्च महोदधिम् ।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥₂₂॥

ततो निहतनथानां राक्षसीनां गृहे गृहे ।
यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः ।
अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद्रामः सलक्ष्मणः ॥₂₃॥

न हि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ।
चिता धूमाकुलपथा गृध्रमण्डलसङ्कुला ।
अचिरेण तु लङ्केयं श्मशानसदृशी भवेत् ॥₂₄॥

अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येव मनोरथम् ।
दुष्प्रस्थानोऽयमाख्याति सर्वेषां वो विपर्ययः ॥₂₅॥

यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु ।
अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥₂₆॥

नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधिपे ।
शोषं यास्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥₂₇॥

पुष्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्री सराक्षसा ।
भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाङ्गना ॥₂₈॥

नूनं राक्षसकन्यानां रुदन्तीनां गृहे गृहे ।
श्रोष्यामि नचिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥₂₉॥

सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुङ्गवा ।
भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥₃₀॥

यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः ।
जानीयाद्वर्तमानां हि रावणस्य निवेशने ॥₃₁॥

अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे ।
समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ॥₃₂॥

अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋताः पापकारिणः ।
अधर्मात्तु महोत्पातो भविष्यति हि साम्प्रतम् ॥₃₃॥

नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ।
ध्रुवं मां प्रातराशार्थे राक्षसः कल्पयिष्यति ॥₃₄॥

साहं कथं करिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ।
रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता ॥₃₅॥

यदि कश्चित्प्रदाता मे विषस्याद्य भवेदिह ।
क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥₃₆॥

नाजानाञ्जीवतीं रामः स मां लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्तौ तौ न कुर्यातां नोर्व्यां हि मम मार्गणम् ॥₃₇॥

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः ।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥₃₈॥

धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥₃₉॥

अथ वा न हि तस्यार्थे धर्मकामस्य धीमतः ।
मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः ॥₄₀॥

दृश्यमाने भवेत्प्रीतः सौहृदं नास्त्यपश्यतः ।
नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥₄₁॥

किं नु मे न गुणाः केचित्किं वा भाग्य क्षयो हि मे ।
याहं सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥₄₂॥

श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीना या महात्मना ।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ॥⁴³॥

अथ वा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशनौ ।
भ्रातरौ हि नर श्रेष्ठौ चरन्तौ वनगोचरौ ॥⁴⁴॥

अथ वा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
छद्मना घातितौ शूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥⁴⁵॥

साहमेवङ्गते काले मर्तुमिच्छामि सर्वथा ।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुःखेऽपि वर्तति ॥⁴⁶॥

धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मताः ।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥⁴⁷॥

प्रियान्न सम्भवेद्दुःखमप्रियादधिकं भयम् ।
ताभ्यां हि ये वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥⁴⁸॥

साहं त्यक्ता प्रियेणेह रामेण विदितात्मना ।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥⁴⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

इत्युक्ताः सीतया घोरं राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
काञ्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य तरस्विनः ॥₁॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो घोरदर्शनाः ।
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन् ॥₂॥

हन्तेदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये ।
राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद्यथासुखम् ॥₃॥

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सन्तर्जितां तदा ।
राक्षसी त्रिजटावृद्धा शयाना वाक्यमब्रवीत् ॥₄॥

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ॥₅॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च ॥₆॥

एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
सर्वा एवाब्रुवन्भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः ॥₇॥

कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नेऽयं कीदृशो निशि ॥₈॥

तासां श्रुत्वा तु वचनं राक्षसीनां मुखोद्गतम् ।
उवाच वचनं काले त्रिजटास्वप्नसंश्रितम् ॥₉॥

गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम् ।
युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः ॥₁₀॥

स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता ।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता ।
रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥₁₁॥

राघवश्च मया दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ।
आरूढः शैलसङ्काशं चचार सहलक्ष्मणः ॥₁₂॥

ततस्तौ नरशार्दूलौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ।
शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ ॥₁₃॥

ततस्तस्य नगस्याग्रे आकाशस्थस्य दन्तिनः ।
भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता ॥₁₄॥

भर्तुरङ्गात्समुत्पत्य ततः कमललोचना ।
चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टा पाणिभ्यां परिमार्जती ॥₁₅॥

ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः ।
सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः ॥₁₆॥

पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ॥₁₇॥

विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितो भुवि ।
कृष्यपाणः स्त्रिया दृष्टो मुण्डः कृष्णाम्बरः पुनः ॥₁₈॥

रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ।
प्रयातो दक्षिणामाशां प्रविष्टः कर्दमं हृदम् ॥₁₉॥

कण्ठे बद्धा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ।
काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षति ॥₂₀॥

वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ।

उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥₂₁॥

समाजश्च महान्वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः ।
पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ॥₂₂॥

लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथसङ्कुला ।
सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ॥₂₃॥

पीब तैलं प्रनृत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः ।
लङ्कायां भस्मरूक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ॥₂₄॥

कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ।
रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयहृदे ॥₂₅॥

अपगच्छत नश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः ।
घातयेत्परमामर्षी सर्वैः सार्धं हि राक्षसैः ॥₂₆॥

प्रियां बहुमतां भार्या वनवासमनुव्रताम् ।
भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ॥₂₇॥

तदलं क्रूरवाक्यैर्वः सान्त्वमेवाभिधीयताम् ।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ॥₂₈॥

यस्या ह्येवं विधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ।
सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥₂₉॥

भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया ।
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ॥₃₀॥

प्रणिपात प्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥₃₁॥

अपि चास्या विशालाक्ष्या न किञ्चिदुपलक्षये ।

विरुद्धमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्ष्मणम् ॥³²॥

छाया वैगुण्य मात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् ।
अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ॥³³॥

अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम् ।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥³⁴॥

निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम् ।
दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥³⁵॥

ईषच्च हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः ।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥³⁶॥

करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चौरुरनुत्तमः ।
वेपन्सूचयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ॥³⁷॥

पक्षी च शाखा निलयं प्रविष्टः
पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी ।
सुखागतां वाचमुदीरयाणः
पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ॥³⁸॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य
तद्रावणस्याप्रियमप्रियार्ता ।
सीता वितत्रास यथा वनान्ते
सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या ॥₁॥

सा राक्षसी मध्यगता च भीरुर्-
वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च ।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा
बालेव कन्या विललाप सीता ॥₂॥

सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके
नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः ।
यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना
जीवामि किञ्चित्क्षणमप्यपुण्या ॥₃॥

सुखाद्विहीनं बहुदुःखपूर्णम्
इदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे ।
विदीर्यते यन्न सहस्रधाद्य
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥₄॥

नैवास्ति नूनं मम दोषमत्र
वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।
भावं न चास्याहमनुप्रदातुम्
अलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ॥₅॥

नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः
शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ।
तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ॥₆॥

दुःखं बतेदं मम दुःखिताया
मासौ चिरायाभिगमिष्यतो द्वौ ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते
राजापराधादिव तस्करस्य ॥७॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे
हा राम मातः सह मे जनन्या ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या
महार्णवे नौरिव मूढ वाता ॥८॥

तरस्विनौ धारयता मृगस्य
सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात्तौ
सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ॥९॥

नूनं स कालो मृगरूपधारी
मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रं विससर्ज मूढा
रामानुजं लक्ष्मणपूर्वकं च ॥१०॥

हा राम सत्यव्रत दीर्घवाहो
हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च
वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥११॥

अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च
भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे ।
पतिव्रतात्वं विफलं ममेदम्
कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् ॥१२॥

मोघो हि धर्मश्चरितो ममायम्
तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा

हीना ब्या सङ्गमने निराशा ॥₁₃॥

पितुर्निर्देशं नियमेन कृत्वा
वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः
संरंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ॥₁₄॥

अहं तु राम बयि जातकामा
चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपोव्रतं च
त्यक्ष्यामि धिक्जीवितमल्पभाग्या ॥₁₅॥

सा जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयम्
विषेण शस्त्रेण शितेन वापि ।
विषस्य दाता न तु मेऽस्ति कश्चित्
शस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य ॥₁₆॥

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य
सीताथ वेण्युद्धथनं गृहीत्वा ।
उद्ध्व्य वेण्युद्धथनेन शीघ्रम्
अहं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥₁₇॥

इतीव सीता बहुधा विलप्य
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ।
प्रवेपमाना परिशुष्कवक्त्रा
नगोत्तमं पुष्पितमाससाद ॥₁₈॥

उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री
शाखां गृहीत्वाथ नगस्य तस्य ।
तस्यास्तु रामं प्रविचिन्तयन्त्या
रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्गाः ॥₁₉॥

शोकानिमित्तानि तदा बहूनि

धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके ।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः
पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

तथागतां तां व्यथितामनिन्दिताम्
व्यपेतहर्षां परिदीनमानसाम् ।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे
नरं श्रिया जुष्टमिवोपजीविनः ॥₁॥

तस्याः शुभं वाममरालपक्षम्
राजीवृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या
मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥₂॥

भुजश्च चार्वाक्षितपीनवृत्तः
परार्ध्यं कालागुरुचन्दनार्हः ।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण
चिरेण वामः समवेपताशु ॥₃॥

गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीनः
तयोर्द्वयोः संहतयोः सुजातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या
रामं पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ॥₄॥

शुभं पुनर्हेमसमानवर्णम्
ईषद्रजोध्वस्तमिवामलाक्ष्याः ।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदन्त्याः
किञ्चित्परिस्रंसत चारुगात्र्याः ॥₅॥

एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभूः
सम्बोधिता प्रागपि साधुसिद्धैः ।
वातातपक्लान्तमिव प्रनष्टम्
वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष ॥₆॥

तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमौष्ठम्
स्वक्षिभ्रुकेशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्तुं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रम्
राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ॥७॥

सा वीतशोका व्यपनीततन्द्री
शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसच्चा ।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले
शीतान्शुना रात्रिरिवोदितेन ॥८॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः ।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जनम् ॥₁॥

अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने ।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥₂॥

यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥₃॥

चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षिता ।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥₄॥

राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयमवेक्षिता ।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥₅॥

युक्तं तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः ।
समाश्वासयितुं भार्या पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥₆॥

अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ॥₇॥

यदि ह्यहमिमां देवीं शोकोपहतचेतनाम् ।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥₈॥

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणमविन्दन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥₉॥

मया च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।

समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥₁₀॥

निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषणम् ।
कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्र गतो ह्यहम् ॥₁₁॥

अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया ।
सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥₁₂॥

रामश्च यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः ।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥₁₃॥

सीतासन्देशरहितं मामितस्वरया गतम् ।
निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रुद्धस्तीव्रेण चक्षुषा ॥₁₄॥

यदि चेद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात् ।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥₁₅॥

अन्तरं ब्रह्मासाद्य राक्षसीनामिह स्थितः ।
शनैराश्वासयिष्यामि सन्तापबहुलामिमाम् ॥₁₆॥

अहं ह्यतितनुश्चैव वनरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥₁₇॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥₁₈॥

अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥₁₉॥

सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा ।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं गमिष्यति ॥₂₀॥

ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी ।

जानमाना विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ॥₂₁॥

सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः ।
नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ॥₂₂॥

ततो मां सम्परिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः ।
वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं यथाबलम् ॥₂₃॥

तं मां शाखाः प्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम् ।
दृष्ट्वा विपरिधावन्तं भवेयुर्भयशङ्किताः ॥₂₄॥

मम रूपं च सम्प्रेक्ष्य वनं विचरतो महत् ।
राक्षस्यो भयवित्रस्ता भवेयुर्विकृताननाः ॥₂₅॥

ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि ।
राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने ॥₂₆॥

ते शूलशरनिस्त्रिंश विविधायुधपाणयः ।
आपतेयुर्विमर्देऽस्मिन्वेगेनोद्विग्नकारिणः ॥₂₇॥

सङ्क्रुद्धस्तैस्तु परितो विधमन्नक्षसां बलम् ।
शक्नुयं न तु सम्प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥₂₈॥

मां वा गृहीयुराप्लुत्य बहवः शीघ्रकारिणः ।
स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत् ॥₂₉॥

हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम् ।
विपन्नं स्यात्ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम् ॥₃₀॥

उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन्नाक्षसैः परिवारिते ।
सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी ॥₃₁॥

विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे ।

नान्यं पश्यामि रामस्य सहायं कार्यसाधने ॥₃₂॥

विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः ।
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ॥₃₃॥

कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् ।
न तु शक्यामि सम्प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥₃₄॥

असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते ।
कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात्प्राज्ञः ससंशयम् ॥₃₅॥

एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे ।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ॥₃₆॥

भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥₃₇॥

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥₃₈॥

न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥₃₉॥

कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च ।
इति सञ्चिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम् ॥₄₀॥

राममक्लिष्टकर्माणं स्वबन्धुमनुकीर्तयन् ।
नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्वन्धुगतमानसाम् ॥₄₁॥

इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः ।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥₄₂॥

श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम् ।

श्रद्धास्यति यथा हीयं तथा सर्वं समादधे ॥₄₃॥

इति स बहुविधं महानुभावो
जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः ।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यम्
द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान् ॥₄₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महाकपिः ।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥₁॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिनाम् ।
पुण्यशीलो महाकीर्तिर्ऋजुरासीन्महायशः ।
चक्रवर्तिकुले जातः पुरन्दरसमो बले ॥₂॥

अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः ।
मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥₃॥

पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः ।
पृथिव्यां चतुरन्तयां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥₄॥

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः ।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥₅॥

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥₆॥

तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः ।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम् ॥₇॥

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता ।
जनस्थानवधं श्रुत्वा हतौ च खरदूषणौ ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥₈॥

यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मीं विनिश्चिताम् ।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया ॥₉॥

विररामैवमुक्त्वासौ वाचं वानरपुङ्गवः ।
जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥₁₀॥

ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपावृक्षमैक्षत ॥₁₁॥

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथाप्यधस्तान्
निरीक्षमाणा तमचिन्त्य बुद्धिम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यम्
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥₁₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा ।
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम् ॥₁॥

सा तु दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदुपस्थितम् ।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥₂॥

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विसंज्ञा
गतासुकल्पेव बभूव सीता ।
चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य चैव
विचिन्तयामास विशालनेत्रा ॥₃॥

स्वप्नो मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः
शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः ।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः ॥₄॥

स्वप्नोऽपि नायं न हि मेऽस्ति निद्रा
शोकेन दुःखेन च पीडितायाः ।
सुखं हि मे नास्ति यतोऽस्मि हीना
तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन ॥₅॥

अहं हि तस्याद्य मनो भवेन
सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा ।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव
तथैव पश्यामि तथा शृणोमि ॥₆॥

मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि
तथापि बुद्ध्या च वितर्कयामि ।

किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपम्
सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् ॥७॥

नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्जिणे
स्वयम्भुवे चैव हुताशनाय ।
अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो
वनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा ॥८॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥एकत्रिंशः सर्गः॥

तामब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥₁॥

का नु पद्मपलाशाक्षी क्लिष्टकौशेयवासिनी ।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिता ॥₂॥

किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम् ।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥₃॥

सुराणामसुराणां च नागगन्धर्वरक्षसाम् ।
यक्षाणां किंनराणां च का त्वं भवसि शोभने ॥₄॥

का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने ।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥₅॥

किं नु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात् ।
रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा श्रेष्ठा सर्वगुणान्विता ॥₆॥

कोपाद्वा यदि वा मोहाद्भर्तारमसितेक्षणा ।
वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं नासि कल्याण्यरुन्धती ॥₇॥

को नौ पुत्रः पिता भ्रातृ भर्ता वा ते सुमध्यमे ।
अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ॥₈॥

व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्षये ।
महिषी भूमिपालस्य राजकन्यासि मे मता ॥₉॥

रावणेन जनस्थानाद्वलादपहृता यदि ।

सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥₁₀॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता ।
उवाच वाक्यं वैदेही हनूमन्तं द्रुमाश्रितम् ॥₁₁॥

दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः ।
सीता च नाम नाम्नाहं भार्या रामस्य धीमतः ॥₁₂॥

समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने ।
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥₁₃॥

ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्येनेक्ष्वाकुनन्दनम् ।
अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे ॥₁₄॥

तस्मिन्सम्प्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ।
कैकेयी नाम भर्तारं देवी वचनमब्रवीत् ॥₁₅॥

न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥₁₆॥

यत्तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम ।
तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः ॥₁₇॥

स राजा सत्यवाग्देव्या वरदानमनुस्मरन् ।
मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् ॥₁₈॥

ततस्तु स्थविरो राजा सत्यधर्मे व्यवस्थितः ।
ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन् राज्यमयाचत ॥₁₉॥

स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात्परं प्रियम् ।
मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् ॥₂₀॥

दद्यान्न प्रतिगृहीयान्न ब्रूयत्किञ्चिदप्रियम् ।

अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः ॥₂₁॥

स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः ।
विसृज्य मनसा राज्यं जनन्ये मां समादिशत् ॥₂₂॥

साहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ।
न हि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ॥₂₃॥

प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
पूर्वजस्यानुयात्रार्थे द्रुमचीरैरलङ्कितः ॥₂₄॥

ते वयं भर्तुरादेशं बहु मान्यदृढव्रताः ।
प्रविष्टाः स्म पुरादृष्टं वनं गम्भीरदर्शनम् ॥₂₅॥

वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ।
रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥₂₆॥

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्हरियूथपः ।
दुःखाद्दुःखाभिभूतायाः सान्तमुत्तरमब्रवीत् ॥₁॥

अहं रामस्य सन्देशाद्देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामस्त्वां च कौशलमब्रवीत् ॥₂॥

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥₃॥

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥₄॥

सा तयोः कुशलं देवी निश्चम्य नरसिंहयोः ।
प्रीतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमान्तमथाब्रवीत् ॥₅॥

कल्याणी बत गथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ।
एहि जीवन्तमानदो नरं वर्षशतादपि ॥₆॥

तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥₇॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्हरियूथपः ।
सीतायाः शोकदीनायाः समीपमुपचक्रमे ॥₈॥

यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥₉॥

अहो धिग्धिक्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे ।

रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥₁₀॥

तामशोकस्य शाखां सा विमुक्त्वा शोककर्षिता ।
तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ॥₁₁॥

अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् ।
सा चैनं भयवित्रस्ता भूयो नैवाभ्युदैक्षत ॥₁₂॥

तं दृष्ट्वा वन्दमानं तु सीता शशिनिभानना ।
अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ॥₁₃॥

मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् ।
उत्पादयसि मे भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ॥₁₄॥

स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपधृत् ।
जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एवासि रावणः ॥₁₅॥

उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर ।
सन्तापयसि मां भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ॥₁₆॥

यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते ।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया राम कथा हि मे ॥₁₇॥

गुणान्नामस्य कथय प्रियस्य मम वानर ।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः ॥₁₈॥

अहो स्वप्नस्य सुखता याहमेवं चिराहता ।
प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् ॥₁₉॥

स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् ।
पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नेऽपि मम मत्सरी ॥₂₀॥

नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् ।

न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ॥₂₁॥

किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्रियम् ।
उन्मादजो विकारो वा स्यादियं मृगतृष्णिका ॥₂₂॥

अथ वा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्ष्मणः ।
सम्बुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम् ॥₂₃॥

इत्येवं बहुधा सीता सम्प्रधार्य बलाबलम् ।
रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् ॥₂₄॥

एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा ।
न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥₂₅॥

सीतायाश्चित्तितं बुद्ध्या हनूमान्मारुतात्मजः ।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयत् ॥₂₆॥

आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥₂₇॥

विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ।
सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ॥₂₈॥

रूपवान्सुभगः श्रीमान्कन्दर्प इव मूर्तिमान् ।
स्थानक्रोधप्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ।
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः ॥₂₉॥

अपकृष्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम् ।
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि यत्फलम् ॥₃₀॥

नचिराद्रावणं सङ्क्षो यो वधिष्यति वीर्यवान् ।
रोषप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥₃₁॥

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥³²॥

लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अभिवाद्य महाबाहुः सोऽपि कौशलमब्रवीत् ॥³³॥

रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ।
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥³⁴॥

नित्यं स्मरति रामस्त्वां ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
दिष्ट्वा जीवसि वैदेहि राक्षसी वशमागता ॥³⁵॥

नचिराद्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम् ।
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् ॥³⁶॥

अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नाम वानरः ।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥³⁷॥

कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ॥³⁸॥

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ॥³⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

तां तु राम कथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात् ।
उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा ॥₁॥

क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् ।
वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः ॥₂॥

यानि रामस्य लिङ्गानि लक्ष्मणस्य च वानर ।
तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ॥₃॥

कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं रामस्य कीदृशम् ।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥₄॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान्मारुतात्मजः ।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₅॥

जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि ।
भर्तुः कमलपत्राक्षि सङ्ख्यानं लक्ष्मणस्य च ॥₆॥

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै ।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥₇॥

रामः कमलपत्राक्षः सर्वभूतमनोहरः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥₈॥

तेजसादित्यसङ्काशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥₉॥

रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥₁₀॥

रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥₁₁॥

अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥₁₂॥

राजविद्याविनीतश्च ब्राह्मणानामुपासिता ।
श्रुतवाञ्छीलसम्पन्नो विनीतश्च परन्तपः ॥₁₃॥

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥₁₄॥

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो देवि जनैः श्रुतः ॥₁₅॥

दुन्दुभिस्त्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
समः समविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥₁₆॥

त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः ।
त्रिवलीवांस्त्यवणतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् ॥₁₇॥

चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुःसमः ।
चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दष्टश्चतुर्गतिः ॥₁₈॥

महौष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् ।
दशपद्मो दशबृहत्तिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् ।
षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥₁₉॥

सत्यधर्मपरः श्रीमान्सङ्ग्रहानुग्रहे रतः ।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः ॥₂₀॥

भ्राता च तस्य द्वैमात्रः सौमित्रिरपराजितः ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चैव तथाविधः ॥₂₁॥

त्वामेव मार्गमाणो तौ विचरन्तौ वसुन्धराम् ।
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् ॥₂₂॥

ऋश्यमूकस्य पृष्ठे तु बहुपादपसङ्कुले ।
भ्रातुर्भार्यार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ॥₂₃॥

वयं तु हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसङ्गरम् ।
परिचर्यामहे राज्यात्पूर्वजेनावरोपितम् ॥₂₄॥

ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ ।
ऋश्यमूकस्य शैलस्य रम्यं देशमुपागतौ ॥₂₅॥

स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः ।
अभिप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः ॥₂₆॥

ततः स शिखरे तस्मिन्वानरेन्द्रो व्यवस्थितः ।
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरः ॥₂₇॥

तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात्प्रभू ।
रूपलक्षणसम्पन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥₂₈॥

तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ ।
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ ॥₂₉॥

निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने ।
तयोरन्योन्यसम्भाषाद्भृशं प्रीतिरजायत ॥₃₀॥

तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ ।
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ॥₃₁॥

तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ।
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तमुरु तेजसा ॥₃₂॥

ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥₃₃॥

स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ।
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ॥₃₄॥

ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ।
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ॥₃₅॥

तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः ।
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ॥₃₆॥

तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ।
स्वनवन्त्यवकीर्णान्ति तस्मिन्विहतचेतसि ॥₃₇॥

तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं ततः ।
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ॥₃₈॥

पश्यतस्तस्या रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः ।
प्रादीपयन्दाशरथेस्तानि शोकहुताशनम् ॥₃₉॥

शयितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ।
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः ॥₄₀॥

तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे स न्यवेदयत् ॥₄₁॥

स तवाददर्शनादार्ये राघवः परितप्यते ।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥₄₂॥

बलकृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् ।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः ॥⁴³॥

तवादर्शनशोकेन राघवः प्रविचाल्यते ।
महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ॥⁴⁴॥

कानानानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च ।
चरन्न रतिमाप्नोति ब्रमपश्यन्नृपात्मजे ॥⁴⁵॥

स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥⁴⁶॥

सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा ।
समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं तथा ॥⁴⁷॥

ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।
सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत्पतिम् ॥⁴⁸॥

रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत ।
हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमिहागतम् ॥⁴⁹॥

स्वराज्यं प्राप्य सुग्रीवः समनीय महाहरीन् ।
ब्रदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥⁵⁰॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः ।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥⁵¹॥

अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान्वालिः सूनुर्महाबलः ।
प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ॥⁵²॥

तेषां नो विप्रनष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकपरीतनामहोरात्रगणा गताः ॥⁵³॥

ते वयं कार्यनैराश्यात्कालस्यातिक्रमेण च ।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः ॥ 54 ॥

विचित्य वनदुर्गाणि गिरिप्रस्रवणानि च ।
अनासाद्य पदं देव्याः प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः ॥ 55 ॥

भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः ।
तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ।
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः ॥ 56 ॥

तेषां नः स्वामिसन्देशान्निराशानां मुमूर्षताम् ।
कार्यहेतोरिवायातः शकुनिर्वीर्यवान्महान् ॥ 57 ॥

गृध्रराजस्य सोदर्यः सम्पातिर्नाम गृध्रराट् ।
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत् ॥ 58 ॥

यवीयान्केन मे भ्राता हतः क्व च विनाशितः ।
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः ॥ 59 ॥

अङ्गदोऽकथयत्तस्य जनस्थाने महद्वधम् ।
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथातथम् ॥ 60 ॥

जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः ।
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये ॥ 61 ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्पातेः प्रीतिवर्धनम् ।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः सम्प्रस्थिता वयम् ।
त्वदर्शनकृतोत्साहा हृष्टास्तुष्टाः प्लवङ्गमाः ॥ 62 ॥

अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः ।
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः ॥ 63 ॥

लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ।

रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता ॥⁶⁴॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ।
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् ॥⁶⁵॥

त्वं मां रामकृतोद्योगं तन्निमित्तमिहागतम् ।
सुग्रीव सचिवं देवि बुध्यस्व पवनात्मजम् ॥⁶⁶॥

कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणश्च सुलक्षणः ॥⁶⁷॥

तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ।
अहमेकस्तु सम्प्राप्तः सुग्रीववचनादिह ॥⁶⁸॥

मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ।
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता तन्मार्गविचयैषिणा ॥⁶⁹॥

दिष्टाहं हरिसैन्यानां तन्नाशमनुशोचताम् ।
अपनेष्यामि सन्तापं तवाभिगमशंसनात् ॥⁷⁰॥

दिष्टा हि न मम व्यर्थं देवि सागरलङ्घनम् ।
प्राप्स्याम्यहमिदं दिष्टा तद्दर्शनकृतं यशः ॥⁷¹॥

राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ॥⁷²॥

कौरजो नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः ॥⁷³॥

स च देवर्षिभिर्दृष्टः पिता मम महाकपिः ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरत् ॥⁷⁴॥

तस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि ।

हनूमनिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ।
विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः ॥⁷⁵॥

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्षिता ।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमवगच्छति ॥⁷⁶॥

अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण तु जानकी ।
नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम् ॥⁷⁷॥

चारु तच्चाननं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ।
हनूमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा ॥⁷⁸॥

अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ॥⁷⁹॥

हतेऽसुरे संयति शम्बसादने
कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात् ।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि
प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ॥⁸⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

भूय एव महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥₁॥

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥₂॥

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम् ।
भर्तारमिव सम्प्राप्ता जानकी मुदिताभवत् ॥₃॥

चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
बभूव प्रहर्षोदग्रं राहुमुक्त इवोदुराट् ॥₄॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः सन्देशहर्षिता ।
परितुष्टा प्रियं श्रुत्वा प्राशंसत महाकपिम् ॥₅॥

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम ।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥₆॥

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः ।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥₇॥

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वनरं वनरर्षभ ।
यस्य ते नास्ति सन्तासो रावणान्नापि सम्भ्रमः ॥₈॥

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥₉॥

प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥₁₀॥

दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा धर्मवत्सलः ।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥₁₁॥

कुशली यदि काकुत्स्थः किं नु सागरमेखलाम् ।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥₁₂॥

अथ वा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे ।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥₁₃॥

कच्चिच्च व्यथते रामः कच्चिन्न परिपत्यते ।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥₁₄॥

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति ।
कच्चिन्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥₁₅॥

द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते ।
विजिगीषुः सुहृत्कच्चिन्मित्रेषु च परन्तपः ॥₁₆॥

कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चाप्यभिगम्यते ।
कच्चित्कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥₁₇॥

कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः ।
कच्चित्पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥₁₈॥

कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः ।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति वानरः ॥₁₉॥

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः ।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो न सीदति ॥₂₀॥

कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च ।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥₂₁॥

मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः ।
कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति ॥₂₂॥

कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥₂₃॥

वानराधिपतिः श्रीमान्सुग्रीवः कच्चिदेष्यति ।
मत्कृते हरिभिर्वीरिर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥₂₄॥

कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्विधमिष्यति ॥₂₅॥

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे ।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृञ्जनम् ॥₂₆॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णम्
तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।
मया विना शुष्यति शोकदीनम्
जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥₂₇॥

धर्मापदेशात्पजतश्च राज्याम्
मां चाप्यरण्यं नयतः पदातिम् ।
नासीद्वथा यस्य न भीर्न शोकः
कच्चित्स धैर्यं हृदये करोति ॥₂₈॥

न चास्य माता न पिता न चान्यः
स्नेहाद्विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावद्धहं दूतजिजीविषेयम्
यावत्प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ॥₂₉॥

इतीव देवी वचनं महार्थम्
तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा ।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामम्
रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥₃₀॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥₃₁॥

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः ।
श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ॥₃₂॥

चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृष्कगणसङ्कुलाम् ।
विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम् ।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥₃₃॥

तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवाः सहासुराः ।
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥₃₄॥

तवादर्शनजेनार्ये शोकेन स परिप्लुतः ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥₃₅॥

ददरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च ।
मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा मन्दरेण च ॥₃₆॥

यथा सुनयनं वल्गु बिम्बौष्ठं चारुकुण्डलम् ।
मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥₃₇॥

क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ ।
शतक्रतुमिवासीनं नाकपृष्ठस्य मूर्धनि ॥₃₈॥

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चापि मधुसेवते ।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥₃₉॥

नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् ।
राघवोऽपनयेद्गत्राच्चद्रतेनान्तरात्मना ॥₄₀॥

नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।
नान्यच्चिन्तयते किञ्चित्स तु कामवशं गतः ॥₄₁॥

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते ॥₄₂॥

दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत्स्त्रीमनोहरम् ।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥₄₃॥

स देवि नित्यं परितप्यमानः
त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥₄₄॥

सा रामसङ्कीर्तनवीतशोका
रामस्य शोकेन समानशोका ।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा
निशेव वैदेहसुता बभूव ॥₄₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

सीता तद्वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥₁॥

अमृतं विषसंसृष्टं त्वया वानरभाषितम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥₂॥

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रञ्ज्येव पुरुषं बद्धा कृतान्तः परिकर्षति ॥₃॥

विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ।
सौमित्रि मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥₄॥

शोकस्यास्य कदा पारं राघवोऽधिगमिष्यति ।
प्लवमानः परिश्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥₅॥

राक्षसानां क्षयं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मूलितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥₆॥

स वाच्यः सन्त्वरस्त्रेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥₇॥

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥₈॥

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ॥₉॥

मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते ।

रावणं मार्गते सङ्क्षो मृत्युः कालवशं गतम् ॥₁₀॥

ज्येष्ठा कन्यानला नम विभीषणसुता कपे ।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥₁₁॥

अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान्राक्षसपुङ्गवः ।
धृतिमाञ्शीलवान्वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः ॥₁₂॥

रामात्क्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् ।
न च तस्यापि दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥₁₃॥

आशंसेति हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥₁₄॥

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानुशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानरराघवे ॥₁₅॥

चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥₁₆॥

न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः ।
अहं तस्यानुभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥₁₇॥

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः ।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति ॥₁₈॥

इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्षिताम् ।
अश्रुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान्कपिः ॥₁₉॥

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम् ॥₂₀॥

अथ वा मोचयिष्यामि तामद्यैव हि राक्षसात् ।

अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥₂₁॥

त्वं हि पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम् ।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥₂₂॥

अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि ।
प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः ॥₂₃॥

द्रक्ष्यस्यदैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ।
व्यवसाय समायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥₂₄॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम् ।
पुरन्दरमिवासीनं नागराजस्य मूर्धनि ॥₂₅॥

पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने ।
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥₂₆॥

कथयन्तीव चन्द्रेण सूर्येणेव सुवर्चला ।
मत्पृष्ठमधिरुह्य त्वं तराकाशमहार्णवम् ॥₂₇॥

न हि मे सम्प्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने ।
अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥₂₈॥

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् ।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥₂₉॥

मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् ।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥₃₀॥

हनूमन्दूरमध्वनं कथं मां वोढुमिच्छसि ।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ॥₃₁॥

कथं वाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि ।

सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ॥³²॥

सीताया वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
चिन्तयामास लक्ष्मीवान्नवं परिभवं कृतम् ॥³³॥

न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा ।
तस्मात्पश्यतु वैदेही यद्रूपं मम कामतः ॥³⁴॥

इति सञ्चिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः ।
दर्शयामास वैदेह्याः स्वरूपमरिमर्दनः ॥³⁵॥

स तस्मात्पादपाद्वीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः ।
ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ॥³⁶॥

मेरुमन्दारसङ्काशो बभौ दीप्तानलप्रभः ।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः ॥³⁷॥

हरिः पर्वतसङ्काशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः ।
वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥³⁸॥

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
लङ्कामिमां सनथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥³⁹॥

तदवस्थाप्य तां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया ।
विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥⁴⁰॥

तं दृष्ट्वाचलसङ्काशमुवाच जनकात्मजा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ॥⁴¹॥

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे ।
वायोरिव गतिं चापि तेजश्चाग्निरिवाद्भुतम् ॥⁴²॥

प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति ।

उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरपुङ्गव ॥₄₃॥

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम ।
अवश्यं साम्प्रधार्याशु कार्यसिद्धिरिहात्मनः ॥₄₄॥

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह ।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव ॥₄₅॥

अहमाकाशमासक्ता उपर्युपरि सागरम् ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयाद्वेगेन गच्छतः ॥₄₆॥

पतिता सागरे चाहं तिमिनऋद्धपाकुले ।
भयेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ॥₄₇॥

न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन ।
कलत्रवति सन्देहस्त्वय्यपि स्यादसंशयम् ॥₄₈॥

द्वियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ॥₄₉॥

तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गर पाणिभिः ।
भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ॥₅₀॥

सायुधा बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः ।
कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ॥₅₁॥

युध्यमानस्य रक्षोभिस्ततस्तैः क्रूरकर्मभिः ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठद्भयार्ता कपिसत्तम ॥₅₂॥

अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च ।
कथञ्चित्साम्पराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥₅₃॥

अथ वा युध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते ।

पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ॥⁵⁴॥

मां वा हरेयुस्त्वद्विंशसेयुरथापि वा ।
अव्यवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥⁵⁵॥

अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता ।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु ॥⁵⁶॥

कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान् ।
राघवस्य यशो हीयेच्चया शस्त्रैस्तु राक्षसैः ॥⁵⁷॥

अथ वादाय रक्षांसि न्यस्येयुः संवृते हि माम् ।
यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवः ॥⁵⁸॥

आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः ।
त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥⁵⁹॥

मयि जीवितमायत्तं राघवस्य महात्मनः ।
भ्रातृणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥⁶⁰॥

तौ निराशौ मदर्थे तु शोकसन्तापकर्षितौ ।
सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसङ्ग्रहम् ॥⁶¹॥

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं पदा गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥⁶²॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥⁶³॥

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत् तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥⁶⁴॥

श्रुता हि दृष्टाश्च मया पराक्रमा

महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजङ्गराक्षसा
भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ॥⁶⁵॥

समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकम्
महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवम्
हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ॥⁶⁶॥

सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनम्
दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे
युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ॥⁶⁷॥

स मे हरिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं पतिम्
सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय ।
चिराय रामं प्रति शोककर्षिताम्
कुरुष्व मां वानरमुख्य हर्षिताम् ॥⁶⁸॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन हर्षितः ।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₁॥

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने ।
सदृशं स्त्रीस्त्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥₂॥

स्त्रीत्वं न तु समर्थं हि सागरं व्यतिवर्तितुम् ।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥₃॥

द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते ।
रामादन्यस्य नार्हामि संस्पर्शमिति जानकि ॥₄॥

एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः ।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥₅॥

श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः ।
चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं मम चाग्रतः ॥₆॥

कारणैर्बहुभिर्देवि राम प्रियचिकीर्षया ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम् ॥₇॥

लङ्काया दुष्प्रवेशत्वादुस्तरत्वान्महोदधेः ।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदाहृतम् ॥₈॥

इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुबन्धुना ।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तदुदाहृतम् ॥₉॥

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते ।

अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥₁₀॥

एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा ।
उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ॥₁₁॥

इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम् ।
शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे तदा ॥₁₂॥

तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके ।
तस्मिन्सिद्धाश्रमे देशे मन्दाकिन्या अदूरतः ॥₁₃॥

तस्योपवनषण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु ।
विहृत्य सलिलक्लिन्ना तवाङ्गे समुपाविशम् ॥₁₄॥

पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्गे भरताग्रजः ॥₁₅॥

ततो मांससमायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत् ।
तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् ॥₁₆॥

दारयन्स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते ।
न चाप्युपरमन्मांसाद्भक्षार्थी बलिभोजनः ॥₁₇॥

उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणे ।
संसमाने च वसने ततो दृष्टा त्वया ह्यहम् ॥₁₈॥

त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा ।
भक्ष्य गृध्रेण कालेन दारिता त्वामुपागता ॥₁₉॥

आसीनस्य च ते श्रान्ता पुनरुत्सङ्गमाविशम् ।
क्रुध्यन्ती च प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्विता ॥₂₀॥

बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती ।
लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥₂₁॥

आशीविष इव क्रुद्धः श्वसान्वाक्यमभाषथाः ।
केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥²²॥

वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षथाः ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ॥²³॥

पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।
धरान्तरचरः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥²⁴॥

ततस्तस्मिन्महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे कृतवान्कूरां मतिं मतिमतां वर ॥²⁵॥

स दर्भसंस्तराद्बृहद् ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयः ।
स दीप्त इव कालाग्निर्ज्वालाभिमुखो द्विजम् ॥²⁶॥

चिक्षेपिथ प्रदीप्तां तामिषीकां वायसं प्रति ।
अनुसृष्टस्तदा कालो जगाम विविधां गतिम् ।
त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ॥²⁷॥

स पित्रा च परित्यक्तः सुरैः सर्वैर्महर्षिभिः ।
त्रैलोक्यान्सम्परिक्रम्य त्वामेव शरणं गतः ॥²⁸॥

तं त्वं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया पर्यपालयः ।
न शर्म लब्ध्वा लोकेषु त्वामेव शरणं गतः ॥²⁹॥

परिदूनं विषण्णं च स त्वमायान्तमुक्तवान् ।
मोघं कर्तुं न शक्यं तु ब्राह्ममस्त्रं तदुच्यताम् ॥³⁰॥

ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ॥³¹॥

स ते तदा नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च ।
त्वया वीर विसृष्टस्तु प्रतिपेदे स्वमालयम् ॥³²॥

मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम् ।
कस्मादो मां हरत्ततः क्षमसे तं महीपते ॥³³॥

स कुरुष्व महोत्साहं कृपां मयि नरर्षभ ।
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतः ॥³⁴॥

जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ।
अपारपारमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात्सागरोपमम् ।
भर्तारं ससमुद्राया धरण्या वासवोपमम् ॥³⁵॥

एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववान्बलवानपि ।
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ॥³⁶॥

न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ।
रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रति समाधितुम् ॥³⁷॥

तस्या वीर्यवतः कश्चिदद्यस्ति मयि सम्भ्रमः ।
किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ॥³⁸॥

भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परन्तपः ।
कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ॥³⁹॥

यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्विन्द्रसमतेजसौ ।
सुराणामपि दुर्धर्षो किमर्थं मामुपेक्षतः ॥⁴⁰॥

ममैव दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ।
समर्थोऽपि तौ यन्मां नावेक्षेते परन्तपौ ॥⁴¹॥

कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ।
तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ॥⁴²॥

स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः ।
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥⁴³॥

पितरं मातरं चैव सम्मान्याभिप्रसाद्य च ।
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥⁴⁴॥

अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन्वने ।
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ॥⁴⁵॥

पितृवद्वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन् ।
द्वियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥⁴⁶॥

वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्छक्तो न बहुभाषिता ।
राजपुत्रः प्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ॥⁴⁷॥

मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ।
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥⁴⁸॥

यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृद्धमार्यमनुस्मरत् ।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ।
मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ॥⁴⁹॥

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः ।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ॥⁵⁰॥

रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा ।
त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ॥⁵¹॥

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् ।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥⁵²॥

प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् ।
अङ्गुल्या योजयामास न ह्यस्या प्राभवद्भुजः ॥⁵³॥

मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च ।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ॥⁵⁴॥

हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः ।
हृदयेन गतो रामं शरीरेण तु विष्ठितः ॥⁵⁵॥

मणिवरमुपगृह्य तं महार्हम्
जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात् ।
गिरिवरपवनावधूतमुक्तः
सुखितमनाः प्रतिसङ्क्रमं प्रपेदे ॥⁵⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥₁॥

मणिं तु दृष्ट्वा रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥₂॥

स भूयस्त्वं समुत्साहे चोदितो हरिसत्तम ।
अस्मिन्कार्यसमारम्भे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥₃॥

त्वमस्मिन्कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम ।
तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ॥₄॥

स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरसावन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ॥₅॥

ज्ञात्वा सम्प्रस्थितं देवी वानरं मारुतात्मजम् ।
बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ॥₆॥

कुशलं हनुमन्ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं वृद्धान्सर्वाश्च वानरान् ॥₇॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधाच्च समाधातुमर्हसि ॥₈॥

जीवन्तीं मां यथा रामः सम्भावयति कीर्तिमान् ।
तत्त्वया हनुमन्वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥₉॥

नित्यमुत्साहयुक्ताश्च वाचः श्रुत्वा मयेरिताः ।

वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ॥₁₀॥

मत्सन्देशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः ।
पराक्रमविधिं वीरो विधिवत्संविधास्यति ॥₁₁॥

सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥₁₂॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥₁₃॥

न हि पश्यामि मर्त्येषु नामरेष्वसुरेषु वा ।
यस्तस्य वमतो बाणान्स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥₁₄॥

अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम् ।
स हि सोढुं रणे शक्तस्तवहेतोर्विशेषतः ॥₁₅॥

स हि सागरपर्यन्तां महीं शासितुमीहते ।
बन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि ॥₁₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्यक्सत्यं सुभाषितम् ।
जानकी बहु मेनेऽथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥₁₇॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तुः स्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥₁₈॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।
कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥₁₉॥

मम चेदल्पभाग्यायाः साम्निध्यात्तव वीर्यवान् ।
अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥₂₀॥

गते हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु ।

प्राणानामपि सन्देहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥₂₁॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखाद्दुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानर ॥₂₂॥

अयं च वीर सन्देहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्वत्सहायेषु हर्यक्षेषु हरीश्वर ॥₂₃॥

कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥₂₄॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने ।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥₂₅॥

तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥₂₆॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥₂₇॥

बलैः समग्रेर्यदि मां रावणं जित्य संयुगे ।
विजयी स्वपुरं यायात्तत्तु मे स्याद्यशस्करम् ॥₂₈॥

बलैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥₂₉॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवेदाहव शूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥₃₀॥

तदर्थोपहितं वाक्यं सहितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥₃₁॥

देवि हर्यक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।

सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥₃₂॥

स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ॥₃₃॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसङ्कल्पसम्पाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥₃₄॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सञ्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥₃₅॥

असकृत्तैर्महोत्सहैः ससागरधराधरा ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥₃₆॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥₃₇॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥₃₈॥

तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥₃₉॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
बत्सकाशं महासत्त्वौ नृसिंहावागमिष्यतः ॥₄₀॥

तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥₄₁॥

सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः ।
त्वामादाय वरारोहे स्वपुरं प्रतियास्यति ॥₄₂॥

तदाश्चसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी ।

नचिराद्रक्ष्यसे रामं प्रज्वजन्तमिवानिलम् ॥⁴³॥

निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे ।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥⁴⁴॥

क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं यास्यसि मैथिलि ।
रावणं चैव रामेण निहतं द्रक्ष्यसेऽचिरात् ॥⁴⁵॥

एवमाश्वस्य वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥⁴⁶॥

तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपस्थितम् ॥⁴⁷॥

नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि सङ्गतान् ॥⁴⁸॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानामार्ये यूथान्यनेकशः ॥⁴⁹॥

स तु मर्मणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥⁵⁰॥

मा रुदो देवि शोकेन मा भूते मनसोऽप्रियम् ।
शचीव पथ्या शक्रेण भर्त्रा नाथवती ह्यसि ॥⁵¹॥

रामाद्विशिष्टः कोऽन्योऽस्ति कश्चित्सौमित्रिणा समः ।
अग्निमारुतकल्पौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ ॥⁵²॥

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे
रक्षोगणैरध्युषितोऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य
क्षमस्व मत्सङ्गमकालमात्रम् ॥⁵³॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः ।
उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा ॥₁॥

त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं सम्प्रहृष्यामि वानर ।
अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुन्धरा ॥₂॥

यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्षितैः ।
संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि ॥₃॥

अभिज्ञानं च रामस्य दत्तं हरिगणोत्तम ।
क्षिप्तामीषिकां काकस्य कोपादेकाक्षिशतनीम् ॥₄॥

मनःशिलायास्तिकलो गण्डपार्श्वे निवेशितः ।
त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥₅॥

स वीर्यवान्कथं सीतां हतां समनुमन्यसे ।
वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपम ॥₆॥

एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः ।
एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ॥₇॥

एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसम्भवः ।
अतः परं न शक्यामि जीवितुं शोकलालसा ॥₈॥

असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः ।
राक्षसीनां सुघोराणां त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ॥₉॥

धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन ।

मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥₁₀॥

घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि ।
त्वां च श्रुत्वा विपद्यन्तं न जीवेयमहं क्षणम् ॥₁₁॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम् ।
अथाब्रवीन्महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ॥₁₂॥

त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे शोकाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥₁₃॥

दृष्ट्वा कथञ्चिद्भवती न कालः परिशोचितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥₁₄॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥₁₅॥

हत्वा तु समरे क्रूरं रावणं सह बान्धवम् ।
राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रापयिष्यतः ॥₁₆॥

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ।
प्रीतिसंजननं तस्य भूयस्त्वं दातुमर्हसि ॥₁₇॥

साब्रवीद्वत्तमेवेह मयाभिज्ञानमुत्तमम् ।
एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा मत्केशभूषणम् ।
श्रद्धेयं हनुमन्वाक्यं तव वीर भविष्यति ॥₁₈॥

स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान्म्लवगसत्तमः ।
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे ॥₁₉॥

तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरिपुङ्गवम् ।
वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥₂₀॥

हनूमन्सिंहसङ्काशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥₂₁॥

यथा च स महाबाहुर्मा तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्तत्समाधातुमर्हसि ॥₂₂॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगम्
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपम्
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥₂₃॥

स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः
कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यम्
दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्भूजितस्तया ।
तस्माद्देशादपक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥₁॥

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थं इह दृश्यते ॥₂॥

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते
न दनमर्थोपचितेषु वर्तते ।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः
पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते ॥₃॥

न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते
विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते ।
हतप्रवीरास्तु रणे हि राक्षसाः
कथञ्चिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम् ॥₄॥

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टो यो बहून्यपि साधयेत् ।
पूर्वकार्यविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥₅॥

न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः ।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥₆॥

इहैव तावत्कृतनिश्चयो ह्यहम्
यदि व्रजेयं प्लवगेश्वरालयम् ।
परात्मसम्मर्दं विशेषतश्चवित्
ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥₇॥

कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतम्
प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।

तथैव खल्लात्मबलं च सारवत्
समानयेन्मां च रणे दशाननः ॥८॥

इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् ।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥९॥

इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः ।
अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ॥१०॥

ततो महत्साश्वमहारथद्विपम्
बलं समानेष्वपि राक्षसाधिपः ।
त्रिशूलकालायसपट्टिशायुधम्
ततो महद्बुद्धमिदं भविष्यति ॥११॥

अहं तु तैः संयति चण्डविक्रमैः
समेत्य रक्षोभिरसङ्गविक्रमः ।
निहत्य तद्रावणचोदितं बलम्
सुखं गमिष्यामि कपीश्वरालयम् ॥१२॥

ततो मारुतवत्क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः ।
ऊरुवेगेन महता द्रुमान्क्षेप्तुमथारभत् ॥१३॥

ततस्तद्धनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् ।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥१४॥

तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः ।
चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बभूवाप्रियदर्शनम् ॥१५॥

लतागृहैश्चित्रगृहैश्च नाशितैर्-
महोरगैर्व्यालमृगैश्च निर्धुतैः ।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः
प्रनष्टरूपं तदभून्महद्वनम् ॥१६॥

स तस्य कृत्तार्थपतेर्महाकपिर्-
महद्वलीकं मनसो महात्मनः ।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः
श्रिया ज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चत्वारिंशः सर्गः॥

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च ।
बभूवुस्ताससम्भ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥₁॥

विद्रुताश्च भयत्रस्ता विनेदुर्मृगपक्षुणः ।
रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे ॥₂॥

ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः ।
तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम् ॥₃॥

स ता दृष्ट्वा महाबाहुर्महासत्त्वो महाबलः ।
चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम् ॥₄॥

ततस्तं गिरिसङ्काशमतिकायं महाबलम् ।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम् ॥₅॥

कोऽयं कस्य कुतो वायं किंनिमित्तमिहागतः ।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ॥₆॥

आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूते सुभगे भयम् ।
संवादमसितापाङ्गे त्वया किं कृतवानयम् ॥₇॥

अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गशोभना ।
रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने मम का गतिः ॥₈॥

यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद्वा करिष्यति ।
अहिरेव अहेः पादान्विजानाति न संशयः ॥₉॥

अहमप्यस्य भीतास्मि नैनं जानामि कोऽन्वयम् ।

वेद्मि राक्षसमेवेनं कामरूपिणमागतम् ॥₁₀॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता द्रुतम् ।
स्थिताः काश्चिद्रताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम् ॥₁₁॥

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः ।
विरूपं वानरं भीममाख्यातुमुपचक्रमुः ॥₁₂॥

अशोकवनिका मध्ये राजन्भीमवपुः कपिः ।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥₁₃॥

न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना ।
अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छति ॥₁₄॥

वासवस्य भवेद्दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा ।
प्रेषितो वापि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया ॥₁₅॥

तेन बद्धूतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम् ।
नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम् ॥₁₆॥

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः ।
यत्र सा जानकी सीता स तेन न विनाशितः ॥₁₇॥

जानकीरक्षणार्थं वा श्रमाद्वा नोपलभ्यते ।
अथ वा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता ॥₁₈॥

चारुपल्लवपत्राढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता ।
प्रवृद्धः शिंशपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः ॥₁₉॥

तस्योग्ररूपस्योग्रं ब्रू दण्डमाज्ञातुमर्हसि ।
सीता सम्भाषिता येन तद्वनं च विनाशितम् ॥₂₀॥

मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर ।

कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात्त्यक्तजीवितः ॥ 21 ॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
हुतागिरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः ॥ 22 ॥

आत्मनः सदृशाञ्छूरान्किङ्करान्नाम राक्षसान् ।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥ 23 ॥

तेषामशीतिसाहस्रं किङ्कराणां तरस्विनाम् ।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्कूटमुद्गरपाणयः ॥ 24 ॥

महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः ।
युद्धाभिमनसः सर्वे हनूमद्ग्रहणोन्मुखाः ॥ 25 ॥

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् ।
अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्गा इव पावकम् ॥ 26 ॥

ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ।
आजघूर्वानरश्रेष्ठं शरैरादित्यसंनिभैः ॥ 27 ॥

हनूमानपि तेजस्वी श्रीमान्पर्वतसंनिभः ।
क्षितावाविध्य लाङ्गूलं ननाद च महास्वनम् ॥ 28 ॥

तस्य संनादशब्देन तेऽभवन्भयशङ्किताः ।
ददृशुश्च हनूमन्तं सन्ध्यामेघमिवोन्नतम् ॥ 29 ॥

स्वामिसन्देशनिःशङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम् ।
चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ॥ 30 ॥

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः ।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥ 31 ॥

स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान् ॥ 32 ॥

स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ।
विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः ॥₃₃॥

स हत्वा राक्षसान्वीरः किङ्करान्मारुतात्मजः ।
युद्धाकाङ्क्षी पुनर्वीरस्तोरणं समुपस्थितः ॥₃₄॥

ततस्तस्माद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः ।
निहतान्किङ्करान्सर्वान्नावणाय न्यवेदयन् ॥₃₅॥

स राक्षसानां निहतं महाबलम्
निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः ।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे
प्रहस्तपुत्रं समरे सुदुर्जयम् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

ततः स किङ्करान्हत्वा हनूमान्ध्यानमास्थितः ।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ।
तस्मात्प्रासादमप्येवमिमं विध्वंसयाम्यहम् ॥₁॥

इति सञ्चिन्त्य हनुमान्मनसा दर्शयन्बलम् ।
चैत्यप्रासादमाप्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम् ।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनूमान्मारुतात्मजः ॥₂॥

सम्प्रधृष्य च दुर्धर्षश्चैत्यप्रासादमुन्नतम् ।
हनूमान्प्रज्वललक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ॥₃॥

स भूत्वा तु महाकायो हनूमान्मारुतात्मजः ।
धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥₄॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना ।
पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ॥₅॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥₆॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥₇॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥₈॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥₉॥

एवमुक्त्वा विमानस्थश्चैत्यस्थान्हरिपुङ्गवः ।
ननाद भीमनिर्हादो रक्षसां जनयन्भयम् ॥¹⁰॥

तेन शब्देन महता चैत्यपालाः शतं ययुः ।
गृहीत्वा विविधानस्तान्प्रासान्खङ्गान्परश्वधान् ।
विसृजन्तो महाक्षया मारुतिं पर्यवारयन् ॥¹¹॥

आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ।
परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः ॥¹²॥

ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः ॥¹³॥

प्रासादस्य महास्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम् ।
उत्पाटयित्वा वेगेन हनूमान्मारुतात्मजः ।
ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः ॥¹⁴॥

स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
अन्तरिक्षस्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥¹⁵॥

मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ।
बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम् ॥¹⁶॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिरयुतैरपि ।
आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः ॥¹⁷॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः ।
यस्मादिक्ष्वाकुनाथेन बद्धं वैरं महात्मना ॥¹⁸॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

सन्दिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली ।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥₁॥

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ।
महान्विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः ॥₂॥

धनुः शक्रधनुः प्रख्यं महद्रुचिरसायकम् ।
विस्फारयाणो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ॥₃॥

तस्य विस्फारघोषेण धनुषो महता दिशः ।
प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥₄॥

रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः ।
हनूमान्वेगसम्पन्नो जहर्ष च ननाद च ॥₅॥

तं तोरणविटङ्कस्थं हनूमन्तं महाकपिम् ।
जम्बुमाली महाबाहुर्विव्याध निशितैः शरैः ॥₆॥

अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना ।
बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तं कपीश्वरम् ॥₇॥

तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम् ।
शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ॥₈॥

चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः ।
ततः पार्श्वेऽतिविपुलां ददर्श महतीं शिलाम् ॥₉॥

तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप बलवद्बली ।

तां शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ॥₁₀॥

विपन्नं कर्म तदृष्ट्वा हनूमांश्चण्डविक्रमः ।
सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥₁₁॥

भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम् ।
चिक्षेप सुबहून्बाणाञ्जम्बुमाली महाबलः ॥₁₂॥

सालं चतुर्भिर्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे ।
उरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥₁₃॥

स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः ।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः ॥₁₄॥

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः ।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥₁₅॥

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू न च जानुनी ।
न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्रादृश्यन्त नेषवः ॥₁₆॥

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्गविभूषणः ॥₁₇॥

जम्बुमालिं च निहतं किङ्करांश्च महाबलान् ।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥₁₈॥

स रोषसंवर्तितताम्रलोचनः
प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले ।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान्
समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः ।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिवर्चसः ॥₁॥

महाबलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः ।
कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः ॥₂॥

हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः ।
तोयदस्त्रननिर्घोषैर्वाजियुक्तेर्महारथैः ॥₃॥

तप्तकाश्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः ।
विस्फारयन्तः संहृष्टास्तडिद्वन्त इवाम्बुदाः ॥₄॥

जनन्यस्तास्ततस्तेषां विदित्वा किङ्करान्हतान् ।
बभूवुः शोकसम्भ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ॥₅॥

ते परस्परसङ्घर्षास्तप्तकाश्चनभूषणाः ।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥₆॥

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः ।
वृष्टिमन्त इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋतर्षभाः ॥₇॥

अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनूमाञ्शरवृष्टिभिः ।
अभवत्संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ॥₈॥

स शरान्वधयामास तेषामाशुचरः कपिः ।
रथवेगांश्च वीराणां विचरन्विमलेऽम्बरे ॥₉॥

स तैः क्रीडन्धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते ।

धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मरुतः प्रभुरम्बरे ॥₁₀॥

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् ।
चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥₁₁॥

तलेनाभिहनत्कांश्चित्पादैः कांश्चित्परन्तपः ।
मुष्टिनाभ्यहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्वदारयत् ॥₁₂॥

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरान्कपिः ।
केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥₁₃॥

ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपतितेषु च ।
तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दशभयार्दितम् ॥₁₄॥

विनेदुर्विस्वरं नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः ।
भग्ननीडध्वजच्छत्रैर्भूश्च कीर्णाभवद्रथैः ॥₁₅॥

स तान्प्रवृद्धान्विनिहत्य राक्षसान्
महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः ।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैः
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्धा वानरेण महात्मना ।
रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥₁॥

स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम् ।
प्रघसं भासकर्णं च पञ्चसेनाग्रनायकान् ॥₂॥

सन्दिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान् ।
हनूमद्ग्रहणे व्यग्रान्वायुवेगसमान्युधि ॥₃॥

यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ।
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ॥₄॥

यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात्तमासाद्य वनालयम् ।
कर्म चापि समाधेयं देशकालविरोधितम् ॥₅॥

न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन् ।
सर्वथा तन्महद्भूतं महाबलपरिग्रहम् ।
भवेदिन्द्रेण वा सृष्टमस्मदर्थं तपोबलात् ॥₆॥

सनागयक्षगन्धर्वा देवासुरमहर्षयः ।
युष्माभिः सहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः ॥₇॥

तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किञ्चिदेव नः ।
तदेव नात्र सन्देहः प्रसह्य परिगृह्यताम् ॥₈॥

नावमन्यो भवद्भिश्च हरिः क्रूरपराक्रमः ।
दृष्टा हि हरयः शीघ्रा मया विपुलविक्रमाः ॥₉॥

वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ।
नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः ॥₁₀॥

नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ।
न मतिर्न बलोत्साहो न रूपपरिकल्पनम् ॥₁₁॥

महत्सच्चमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ।
प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः ॥₁₂॥

कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ।
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे ॥₁₃॥

तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ।
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला ॥₁₄॥

ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः ।
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः ॥₁₅॥

रथैश्च मत्तैर्नागैश्च वाजिभिश्च महाजवैः ।
शस्त्रैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपचिता बलैः ॥₁₆॥

ततस्तं ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम् ।
रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम् ॥₁₇॥

तोरणस्थं महावेगं महासच्चं महाबलम् ।
महामतिं महोत्साहं महाकायं महाबलम् ॥₁₈॥

तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्त्ववस्थिताः ।
तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ॥₁₉॥

तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णाः सिताः पीतमुखाः शराः ।
शिरस्त्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः ॥₂₀॥

स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः ।
उत्पपात नदन्व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ॥₂₁॥

ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सञ्जकार्मुकः ।
किरञ्जरशतैर्नैकैरभिपेदे महाबलः ॥₂₂॥

स कपिर्वारयामास तं व्योम्नि शरवर्षिणम् ।
वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः ॥₂₃॥

अर्धमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः ।
चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वेगवान् ॥₂₄॥

स दूरं सहस्रोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः ।
निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ॥₂₅॥

ततस्तं मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूवरम् ।
विहाय न्यपतद्भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः ॥₂₆॥

तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि ।
संजातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिन्दमौ ॥₂₇॥

स ताभ्यां सहस्रोत्पत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे ।
मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ॥₂₈॥

तयोर्वेगवतोर्वेगं विनिहत्य महाबलः ।
निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः ॥₂₉॥

स सालवृक्षमासाद्य समुत्पाट्य च वानरः ।
तावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः ॥₃₀॥

ततस्तांस्त्रीन्हताश्चात्वा वानरेण तरस्विना ।
अभिपेदे महावेगः प्रसह्य प्रघसो हरिम् ॥₃₁॥

भासकर्णश्च सङ्क्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान् ।
एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितौ ॥₃₂॥

पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्यपोथयत् ।
भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिसत्तमम् ॥₃₃॥

स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः ।
अभवद्वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः ॥₃₄॥

समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ।
जघान हनुमान्वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः ॥₃₅॥

ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु ।
बलं तदवशेषं तु नाशयामास वानरः ॥₃₆॥

अश्वैरश्वान्जैर्नागान्योधैर्योधान्रथै रथान् ।
स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान् ॥₃₇॥

हतैर्नागैश्च तुरगैर्भग्नाक्षैश्च महारथैः ।
हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ॥₃₈॥

ततः कपिस्तान्ध्वजिनीपतीत्रणे
निहत्य वीरान्सबलान्सवाहनान् ।
तदेव वीरः परिगृह्य तोरणम्
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥₃₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

सेनापतीन्यश्च स तु प्रमापितान्
हनूमता सानुचरान्सवाहनान् ।
समीक्ष्य राजा समरोद्धतोन्मुखम्
कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षतम् ॥₁॥

स तस्य दृष्ट्यर्पणसम्प्रचोदितः
प्रतापवान्काञ्चनचित्रकार्मुकः ।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो
द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः ॥₂॥

ततो महद्बालदिवाकरप्रभम्
प्रतप्तजाम्बूनदजालसन्ततम् ।
रथां समास्थाय ययौ स वीर्यवान्
महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ॥₃॥

ततस्तपःसङ्ग्रहसञ्चयार्जितम्
प्रतप्तजाम्बूनदजालशोभितम् ।
पताकिनं रत्नविभूषितध्वजम्
मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ॥₄॥

सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणम्
रविप्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरम्
यथाक्रमावेशितशक्तितोमरम् ॥₅॥

विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना
सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्वसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः
स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ॥₆॥

स पूरयन्खं च महीं च साचलाम्
तुरङ्गमतङ्गमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितम्
समर्थमासीनमुपागमत्कपिम् ॥७॥

स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो
युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मितजातसम्भ्रमः
समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ॥८॥

स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः
पराक्रमं चारिषु पार्थिवात्मजः ।
विचारयन्खं च बलं महाबलो
हिमक्षये सूर्यं द्वाभिवर्धते ॥९॥

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमम्
स्थिरः स्थितः संयति दुर्निवारणम् ।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे
प्रचोदयामास शरैस्त्रिभिः शितैः ॥१०॥

ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्वितम्
जितश्रमं शत्रुपराजयोजितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसः
सबाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ॥११॥

स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः
समाससादाशु पराक्रमः कपिम् ।
तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः
सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रदः ॥१२॥

ररास भूमिर्न तताप भानुमान्
ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीक्ष्य संयुगम्

ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥¹³॥

ततः स वीरः सुमुखान्यतत्रिणः
सुवर्णपुङ्खान्सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्ववित्
शरानथ त्रीन्कपिमूर्ध्नपातयत् ॥¹⁴॥

स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः
क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तलोचनः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान्
व्यराजतादित्य इवांशुमालिकः ॥¹⁵॥

ततः स पिङ्गाधिपमन्त्रिसत्तमः
समीक्ष्य तं राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्रायुधचित्रकार्मुकम्
जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः ॥¹⁶॥

स मन्दराग्रस्थ इवांशुमाली
विवृद्धकोपो बलवीर्यसंयुतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनम्
ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा ॥¹⁷॥

ततः स बाणासनशक्रकार्मुकः
शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः ।
शरान्मुमोचाशु हरीश्वराचले
बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥¹⁸॥

ततः कपिस्तं रणचण्डविक्रमम्
विवृद्धतेजोबलवीर्यसायकम् ।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे
ननाद हर्षाद्धनतुल्यविक्रमः ॥¹⁹॥

स बालभावाद्युधि वीर्यदर्पितः

प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः ।
समाससादाप्रतिमं रणे कपिम्
गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः ॥₂₀॥

स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैः
चकार नादं घननादनिःस्वनः ।
समुत्पपाताशु नभः स मारुतिर्-
भुजोरुविक्षेपण घोरदर्शनः ॥₂₁॥

समुत्पतन्तं समभिद्रवद्वली
स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान् ।
रथी रथश्रेष्ठतमः किरञ्शरैः
पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥₂₂॥

स ताञ्शरांस्तस्य विमोक्षयन्कपिः
चचार वीरः पथि वायुसेविते ।
शरान्तरे मारुतवद्विनिष्पतन्
मनोजवः संयति चण्डविक्रमः ॥₂₃॥

तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखम्
खमास्तृणन्तं विविधैः शरोत्तमैः ।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा
जगाम चिन्तां च स मारुतात्मजः ॥₂₄॥

ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः
कुमारवर्येण महात्मना नदन् ।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्वविद्-
विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् ॥₂₅॥

अबालवद्वालदिवाकरप्रभः
करोत्ययं कर्म महन्महाबलः ।
न चास्य सर्वाहवकर्मशोभिनिः
प्रमापणे मे मतिरत्र जायते ॥₂₆॥

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः
समाहितश्चातिसहश्च संयुगे ।
असंशयं कर्मगुणोदयादयम्
सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः ॥₂₇॥

पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः
समीक्षते मां प्रमुखागतः स्थितः ।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्
सुरासुराणामपि शीघ्रकारिणः ॥₂₈॥

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः
पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं त्वेव ममास्य रोचते
न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥₂₉॥

इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन्
स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा
मतिं च चक्रेऽस्य वधे महाकपिः ॥₃₀॥

स तस्य तानष्टहयान्महाजवान्
समाहितान्भारसहान्विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते
तलप्रहालैः पवनात्मजः कपिः ॥₃₁॥

ततस्तलेनाभिहतो महारथः
स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
स भग्ननीडः परिमुक्तकूबरः
पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥₃₂॥

स तं परित्यज्य महारथो रथम्
सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतत् ।
तपोऽभियोगादृषिरुग्रवीर्यवान्

विहाय देहं मरुतामिवालयम् ॥³³॥

ततः कपिस्तं विचरन्तमम्बरे
पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य तं मारुतवेगविक्रमः
क्रमेण जग्राह च पादयोर्दृढम् ॥³⁴॥

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्-
महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो
महीतले संयति वानरोत्तमः ॥³⁵॥

स भग्नबाहूरुकटीशिरो धरः
क्षरन्नसृन्निर्मथितास्थिलोचनः ।
स भिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥³⁶॥

महाकपिर्भूमितले निपीड्य तम्; चकार रक्षोऽधिपतेर्महद्भयम् ॥³⁷॥

महर्षिभिश्चक्रचरैर्महाव्रतैः
समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ।
सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयैर्-
हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः ॥³⁸॥

निहत्य तं वज्रसुतोपमप्रभम्
कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम्
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥³⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

ततस्तु रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
हनूमताक्षे निहते कुमारे ।
मनः समाधाय तदेन्द्रकल्पम्
समादिदेशेन्द्रजितं स रोषात् ॥₁॥

त्वमस्त्रविच्छस्त्रभृतां वरिष्ठः
सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा
पितामहाराधनसञ्चितास्त्रः ॥₂॥

तवास्त्रबलमासाद्य नासुरा न मरुद्गणाः ।
न कश्चित्पि लोकेषु संयुगे न गतश्चमः ॥₃॥

भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
देशकालविभागज्ञस्त्वमेव मतिसत्तमः ॥₄॥

न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणा
न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित्पि सङ्ग्रहेषु वै
न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ते ॥₅॥

ममानुरूपं तपसो बलं च ते
पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।
न त्वां समासाद्य रणावमर्दे
मनः श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ॥₆॥

निहता इङ्गराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः ।
अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रयायिनः ॥₇॥

सहोदरस्ते दयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः ।
न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन ॥८॥

इदं हि दृष्ट्वा मतिमन्महद्बलम्
कपेः प्रभावं च पराक्रमं च ।
त्वमात्मनश्चापि समीक्ष्य सारम्
कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥९॥

बलावमर्दस्त्वयि संनिवृष्टे
यथा गते शाम्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च
समारभस्वास्त्रविदां वरिष्ठ ॥१०॥

न खल्वियं मतिः श्रेष्ठा यत्त्वां सम्प्रेषयाम्यहम् ।
इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता ॥११॥

नानाशस्त्रैश्च सङ्ग्रामे वैशारद्यमरिन्दम ।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे ॥१२॥

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य
प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः ।
चकार भर्तारमदीनसत्त्वो
रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥१३॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः ।
युद्धोद्धतकृतोत्साहः सङ्ग्रामं प्रतिपद्यत ॥१४॥

श्रीमान्पद्मपलाशाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः ।
निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वसु ॥१५॥

स पक्षि राजोपमतुल्यवेगैर्-
व्यालैश्चतुर्भिः सिततीक्ष्णदंष्ट्रैः ।
रथं समायुक्तमसङ्गवेगम्

समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः ॥₁₆॥

स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः ।
रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनूमान्यत्र सोऽभवत् ॥₁₇॥

स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च ।
निशम्य हरिवीरोऽसौ सम्प्रहृष्टतरोऽभवत् ॥₁₈॥

सुमहद्वापमादाय शितशल्यांश्च सायकान् ।
हनूमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः ॥₁₉॥

तस्मिंस्ततः संयति जातहर्षे
रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ ।
दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवुर्-
मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥₂₀॥

समागतास्तत्र तु नागयक्षा
महर्षयश्चक्रचराश्च सिद्धाः ।
नभः समावृत्य च पक्षिसङ्घा
विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः ॥₂₁॥

आयन्तं सरथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रजितं कपिः ।
विननाद महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥₂₂॥

इन्द्रजित्तु रथं दिव्यमास्थितश्चित्रकार्मुकः ।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् ॥₂₃॥

ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ
महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।
कपिश्च रक्षोऽधिपतेश्च पुत्रः
सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥₂₄॥

स तस्य वीरस्य महारथस्या

धनुष्मतः संयति सम्मतस्य ।
शरप्रवेगं व्यहनत्प्रवृद्धः
चचार मार्गे पितुरप्रमेयः ॥ 25 ॥

ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान्
सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान् ।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता
सुसन्ततान्वज्रनिपातवेगान् ॥ 26 ॥

स तस्य तत्स्यन्दननिःस्वनं च
मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च ।
विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य
निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ॥ 27 ॥

शराणामन्तरेष्वाशु व्यवर्तत महाकपिः ।
हरिस्तस्याभिलक्षस्य मोक्षयँलक्ष्यसङ्ग्रहम् ॥ 28 ॥

शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत ।
प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ॥ 29 ॥

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविशारदौ ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ 30 ॥

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरम्
न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः
समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥ 31 ॥

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने
शरेषु मोघेषु च सम्पतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा
समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥ 32 ॥

ततो मतिं राक्षसराजसूनुः
चकार तस्मिन्हरिवीरमुख्ये ।
अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य
कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥₃₃॥

ततः पैतामहां वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
सन्दधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ॥₃₄॥

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतच्चवित् ।
निजग्राह महाबाहुर्मरुतात्मजमिन्द्रजित् ॥₃₅॥

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः ।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥₃₆॥

ततोऽथ बुद्धा स तदास्त्रबन्धम्
प्रभोः प्रभावाद्विगताल्पवेगः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च
विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥₃₇॥

ततः स्वायम्भुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रमभिमन्त्रितम् ।
हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥₃₈॥

न मेऽस्त्रबन्धस्य च शक्तिरस्ति
विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात् ।
इत्येवमेवंविहितोऽस्त्रबन्धो
मयात्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥₃₉॥

स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य
पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा
पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ॥₄₀॥

अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते ।

पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ॥₄₁॥

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम् ।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद्ब्रून्तु मां परे ॥₄₂॥

स निश्चितार्थः परवीरहन्ता
समीक्ष्य करी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य
ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ॥₄₃॥

ततस्तं राक्षसा दृष्ट्वा निर्विचेष्टमरिन्दमम् ।
बबन्धुः शणवल्लैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥₄₄॥

स रोचयामास परैश्च बन्धनम्
प्रसह्य वीरैरभिनिग्रहं च ।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो
द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः ॥₄₅॥

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान् ।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥₄₆॥

अथेन्द्रजित्तं द्रुमचीरबन्धम्
विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम् ।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्ताम्
अन्येन बद्धो ह्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ॥₄₇॥

अहो महत्कर्म कृतं निरर्थकम्
न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा ।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत्
प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ॥₄₈॥

अस्त्रेण हनुमान्मुक्तो नात्मानमवबुध्यते ।
कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ॥₄₉॥

हन्यमानस्ततः क्रूरे राक्षसैः काष्ठमुष्टिभिः ।
समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः ॥₅₀॥

अथेन्द्रजित्तं प्रसमीक्ष्य मुक्तम्
अस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः ।
व्यदर्शयत्तत्र महाबलं तम्
हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ॥₅₁॥

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥₅₂॥

कोऽयं कस्य कुतो वापि किं कार्यं को व्यपाश्रयः ।
इति राक्षसवीराणां तत्र संजज्ञिरे कथाः ॥₅₃॥

हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे ।
राक्षसास्तत्र सङ्क्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ॥₅₄॥

अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा
स तत्र रक्षोऽधिपपादमूले ।
ददर्श राज्ञः परिचारवृद्धान्
गृहं महारत्नविभूषितं च ॥₅₅॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥₅₆॥

राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः ।
तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥₅₇॥

स रोषसंवर्तितताम्रदृष्टिर्-
दशाननस्तं कपिमन्वेक्ष्य ।
अथोपविष्टान्कुलशीलवृद्धान्
समादिशत्तं प्रति मन्त्रमुख्यान् ॥₅₈॥

यथाक्रमं तैः स कपिश्च पृष्टः
कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य
दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥₅₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्षारिंशः सर्गः॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः ।
हनुमान्नोषताम्राक्षो रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥₁॥

भाजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता ।
मुक्ताजालावृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् ॥₂॥

वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः ।
हैमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ॥₃॥

महार्हक्षौमसंवीतं रक्तचन्दनरूपितम् ।
स्वनुलिनं विचित्राभिर्विविधभिश्च भक्तिभिः ॥₄॥

विपुलैर्दर्शनीयैश्च रक्षाक्षैर्भीमदर्शनैः ।
दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रैः प्रलम्बदशनच्छदैः ॥₅॥

शिरोभिर्दशभिर्वीरं भ्राजमानं महौजसम् ।
नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ॥₆॥

नीलाञ्जनचय प्रख्यं हारेणोरसि राजता ।
पूर्णचन्द्राभवक्तेण सबलाकमिवाम्बुदम् ॥₇॥

बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूपितैः ।
भ्राजमानाङ्गदैः पीनैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥₈॥

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगसंस्कृते ।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे उपविष्टं वरासने ॥₉॥

अलङ्कृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः ।

वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥₁₀॥

दुधरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥₁₁॥

उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितैः ।
कृत्स्नैः परिवृतं लोकं चतुर्भिरिव सागरैः ॥₁₂॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैरन्यैश्च शुभबुद्धिभिः ।
अन्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥₁₃॥

अपश्यद्राक्षसपतिं हनूमानतितेजसम् ।
विष्टितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् ॥₁₄॥

स तैः सम्पीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
विस्मयं परमं गत्वा रक्षोऽधिपमवैक्षत ॥₁₅॥

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान्राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥₁₆॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥₁₇॥

यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥₁₈॥

तेन बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ।
अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् ॥₁₉॥

इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

तमुद्रीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् ।
रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः ॥₁॥

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ।
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ॥₂॥

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम् ।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसीनां च तर्जने ॥₃॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या ब्रूया कपे ॥₄॥

यदि तावच्चमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् ।
तच्चमाख्याहि मा ते भूद्भयं वानर मोक्ष्यसे ॥₅॥

यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च ।
चारुरूपमिदं कृत्वा यमस्य वरुणस्य च ॥₆॥

विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा ।
न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् ॥₇॥

तच्चतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे ।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥₈॥

अथ वा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये ॥₉॥

एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ।
अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य वा ॥₁₀॥

धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ।
जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः ॥ 11 ॥

दर्शने राक्षसेन्द्रस्य दुर्लभे तदिदं मया ।
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थं विनाशितम् ॥ 12 ॥

ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ।
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे ॥ 13 ॥

अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ।
पितामहादेव वरो ममाप्येषोऽभ्युपागतः ॥ 14 ॥

राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ।
विमुक्तो अहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वतिपीडितः ॥ 15 ॥

दूतोऽहमिति विज्ञेयो राघवस्यामितौजसः ।
श्रूयतां चापि वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥ 16 ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान्हरिसत्तमः ।
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥₁॥

अहं सुग्रीवसन्देशादिह प्राप्तस्तवालयम् ।
राक्षसेन्द्र हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥₂॥

भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
धर्मार्थोपहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥₃॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ॥₄॥

ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियकरः प्रभुः ।
पितुर्निदेशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥₅॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया चापि भार्यया ।
रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥₆॥

तस्य भार्या वने नष्टा सीता पतिमनुव्रता ।
वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥₇॥

स मार्गमाणस्तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः ।
ऋश्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च सङ्गतः ॥₈॥

तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम् ।
सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितम् ॥₉॥

ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम् ।

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥₁₀॥

स सीतामार्गणे व्यग्रः सुग्रीवः सत्यसङ्गरः ।
हरीन्सम्प्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः ॥₁₁॥

तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते अधश्चोपरि चाम्बरे ॥₁₂॥

वैनतेय समाः केचित्केचित्तत्रानिलोपमाः ।
असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः ॥₁₃॥

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः ।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ।
समुद्रं लङ्घयिष्वैव तां दिदृक्षुरिहागतः ॥₁₄॥

तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः ।
परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं ब्रमर्हसि ॥₁₅॥

न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सञ्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥₁₆॥

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥₁₇॥

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥₁₈॥

तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुबन्धि च ।
मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम् ॥₁₉॥

दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम् ।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥₂₀॥

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा ।
गृह्य यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् ॥₂₁॥

नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि ।
विषसंसृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा ॥₂₂॥

तपःसन्तापलब्धस्ते योऽयं धर्मपरिग्रहः ।
न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥₂₃॥

अवध्यतां तपोभिर्या भवान्समनुपश्यति ।
आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् ॥₂₄॥

सुग्रीवो न हि देवोऽयं नासुरो न च मानुषः ।
न राक्षसो न गन्धर्वो न यक्षो न च पन्नगः ॥₂₅॥

मानुषो राघवो राजन्सुग्रीवश्च हरीश्वरः ।
तस्मात्प्राणपरित्राणं कथं राजन्करिष्यसि ॥₂₆॥

न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम् ।
तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः ॥₂₇॥

प्राप्तं धर्मफलं तावद्भवता नात्र संशयः ।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे ॥₂₈॥

जनस्थानवधं बुद्ध्वा बुद्ध्वा वालिवधं तथा ।
रामसुग्रीवसख्यं च बुध्यस्व हितमात्मनः ॥₂₉॥

कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम् ।
लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु विनिश्चयः ॥₃₀॥

रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसंनिधौ ।
उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ॥₃₁॥

अपकुर्वन्हि रामस्य साक्षादपि पुरन्दरः ।
न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः ॥³²॥

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते वशे ।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ॥³³॥

तदलं कालपाशेन सीता विग्रहरूपिणा ।
स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षममात्मनि चिन्त्यताम् ॥³⁴॥

सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रपीडिताम् ।
दह्यमनामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम् ॥³⁵॥

स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः
कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः ।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः
समादिशत्तस्य वधं महाकपेः ॥³⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः ।
आज्ञापयद्वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्छितः ॥₁॥

वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना ।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥₂॥

तं रक्षोऽधिपतिं क्रुद्धं तच्च कार्यमुपस्थितम् ।
विदित्वा चिन्तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥₃॥

निश्चितार्थस्ततः साम्नापूज्य शत्रुजिदग्रजम् ।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₄॥

राजन्धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥₅॥

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः
कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम् ।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो
दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः ॥₆॥

वैरूप्यामङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा लक्ष्मणसंनिपातः ।
एतान्हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽपि ॥₇॥

कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः
परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः ।
भवद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत्
कोपं नियच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः ॥₈॥

न धर्मवादे न च लोकवृत्ते
न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु वापि ।
विद्येत कश्चित्तव वीरतुल्यः
त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥₉॥

न चाप्यस्य कपेर्घाति कश्चित्पश्याम्यहं गुणम् ।
तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥₁₀॥

साधुर्वा यदि वासाधुर्परिरेष समर्पितः ।
ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति ॥₁₁॥

अपि चास्मिन्हते राजन्नान्यं पश्यामि खेचरम् ।
इह यः पुनरागच्छेत्परं पारं महोदधिः ॥₁₂॥

तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुंरञ्जय ।
भवान्सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥₁₃॥

अस्मिन्विनष्टे न हि दूतमन्यम्
पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ ।
युद्धाय युद्धप्रियदुर्विनीतौ
उद्योजयेद्दीर्घपथावरुद्धौ ॥₁₄॥

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च
सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानाम्
युद्धायतिर्नाशयितुं न युक्ता ॥₁₅॥

हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च
कुलेषु जाताश्च महागुणेषु ।
मनस्विनः शस्त्रभृतां वरिष्ठाः
कोट्यग्रशस्ते सुभृताश्च योधाः ॥₁₆॥

तदेकदेशेन बलस्य तावत्

केचित्तवादेशकृतोऽपयान्तु ।
तौ राजपुत्रौ विनिगृह्य मूढौ
परेषु ते भावयितुं प्रभावम् ॥¹⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महाबलः ।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तममब्रवीत् ॥₁॥

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।
अवश्यं तु वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥₂॥

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥₃॥

ततः पश्यन्निमं दीनमङ्गवैरूप्यकर्षितम् ।
समित्रा ज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥₄॥

आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥₅॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः ।
वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं जीर्णेः कार्पासिकैः पटैः ॥₆॥

संवेष्टमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः ।
शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनः ॥₇॥

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रावपातयन् ॥₈॥

लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानपातयत् ।
रोषामर्षपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः ॥₉॥

स भूयः सङ्गतैः क्रूरैः राकसैर्हरिसत्तमः ।
निबद्धः कृतवान्वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम् ॥₁₀॥

कामं खलु न मे शक्ता निबधस्यापि राक्षसाः ।
छित्त्वा पाशान्समुत्पत्य हन्यामहमिमान्पुनः ॥₁₁॥

सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि ।
किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ॥₁₂॥

लङ्का चरयितव्या मे पुनरेव भवेदिति ।
रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ।
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ॥₁₃॥

कामं बन्धैश्च मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ।
पीडां कुर्वन्तु रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः ॥₁₄॥

ततस्ते संवृताकारं सत्त्वन्तं महाकपिम् ।
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ॥₁₅॥

शङ्खभेरीनिनादैस्तैर्घोषयन्तः स्वकर्मभिः ।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ॥₁₆॥

हनुमांश्चारयामास राक्षसानां महापुरीम् ।
अथापश्यद्विमानानि विचित्राणि महाकपिः ॥₁₇॥

संवृतान्भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च चत्वरान् ।
रथ्याश्च गृहसम्बाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ॥₁₈॥

चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ।
घोषयन्ति कपिं सर्वे चारीक इति राक्षसाः ॥₁₉॥

दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः ।
राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् ॥₂₀॥

यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते ॥₂₁॥

श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ।
वैदेही शोकसन्तप्ता हुताशनमुपागमत् ॥₂₂॥

मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥₂₃॥

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि चास्त्येकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥₂₄॥

यदि कश्चिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ।
यदि वा भाग्यशेषं मे शीतो भव हनूमतः ॥₂₅॥

यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम् ।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ॥₂₆॥

यदि मां तारयत्यार्यः सुग्रीवः सत्यसङ्गरः ।
अस्माद्दुःखान्महाबाहुः शीतो भव हनूमतः ॥₂₇॥

ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शिवं कपेः ॥₂₈॥

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ॥₂₉॥

दृश्यते च महाज्वालः करोति च न मे रुजम् ।
शिशिरस्येव सम्पातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ॥₃₀॥

अथ वा तदिदं व्यक्तं यद्दृष्टं प्लवता मया ।
रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ॥₃₁॥

यदि तावत्समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमथ ।
रामार्थं सम्भ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ॥₃₂॥

सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च ।
पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ॥³³॥

भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ॥³⁴॥

पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
विभक्तरक्षःसम्बाधमाससादानिलात्मजः ॥³⁵॥

स भूत्वा शैलसङ्काशः क्षणेन पुनरात्मवान् ।
ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् ॥³⁶॥

विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान्पुनः पर्वतसंनिभः ।
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ॥³⁷॥

स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् ।
रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः ॥³⁸॥

स तान्निहत्वा रणचण्डविक्रमः
समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली
प्रकाशतादित्य इवांशुमाली ॥³⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः ।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥₁॥

किं नु खल्वविशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम् ।
यदेषां रक्षसां भूयः सन्तापजननं भवेत् ॥₂॥

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः ।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥₃॥

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत्सुखपरिश्रमम् ।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन्मम स्यात्सफलः श्रमः ॥₄॥

यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः ।
अस्य सन्तर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ॥₅॥

ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः ।
भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ॥₆॥

मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ॥₇॥

श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः ।
कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः ॥₈॥

प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेश्मसु चारयत् ॥₉॥

तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ।
भवनान्यवशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च ॥₁₀॥

तानि भग्नाविमानानि निपेतुर्वसुधातले ।
भवनानीव सिद्धानामम्बरात्पुण्यसङ्क्षये ॥₁₁॥

वज्रविद्रुमवैदूर्यमुक्तारजतसंहितान् ।
विचित्रान्भवनाद्घातून्स्यन्दमानानन्ददर्श सः ॥₁₂॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां च यथा तथा ।
हनूमान्नाक्षसेन्द्राणां वधे किञ्चिन्न तृप्यति ॥₁₃॥

हुताशनज्वालसमावृता सा
हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा ।
हनूमातः क्रोधबलाभिभूता
बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥₁₄॥

ससम्भ्रमं त्रस्तविषण्णराक्षसाम्
समुञ्जलञ्जालहुताशनाङ्किताम् ।
ददर्श लङ्कां हनुमान्महामनाः
स्वयम्भुकोपोपहतामिवावनिम् ॥₁₅॥

स राक्षसांस्तान्सुबहूँश्च हत्वा
वनं च भङ्ग्या बहुपादपं तत् ।
विसृज्य रक्षो भवनेषु चाग्निम्
जगाम रामं मनसा महात्मा ॥₁₆॥

लङ्कां समस्तां सन्दीप्य लाङ्गुलाग्निं महाकपिः ।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिसत्तमः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

सन्दीप्यमानां विध्वस्तां त्रस्तरक्षो गणां पुरीम् ।
अवेक्ष्य हानुमौलङ्कां चिन्तयामास वानरः ॥₁॥

तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत ।
लङ्कां प्रदहता कर्म किंस्वित्कृतमिदं मया ॥₂॥

धन्यास्ते पुरुषश्रेष्ठ ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥₃॥

यदि दग्धा त्वियं लङ्का नूनमार्यापि जानकी ।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता ॥₄॥

यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् ।
मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ॥₅॥

ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः ।
तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ॥₆॥

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥₇॥

यदि तद्विहतं कार्यं मया प्रज्ञाविपर्ययात् ।
इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यतिरोचते ॥₈॥

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्त्रिद्वडवामुखे ।
शरीरमाहो सत्त्वानां दद्वि सागरवासिनाम् ॥₉॥

कथं हि जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः ।

तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना ॥₁₀॥

मया खलु तदेवेदं रोषदोषात्प्रदर्शितम् ।
प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपितमनवस्थितम् ॥₁₁॥

धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम् ।
ईश्वरेणापि यद्रागान्मया सीता न रक्षिता ॥₁₂॥

विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः ।
तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति ॥₁₃॥

एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्यति जीवितुम् ॥₁₄॥

इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयम् ।
भविष्यन्ति प्रजाः सर्वाः शोकसन्तापपीडिताः ॥₁₅॥

तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसङ्ग्रहः ।
रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः ॥₁₆॥

इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे ।
पूरमप्युपलब्धानि साक्षात्पुनरचिन्तयत् ॥₁₇॥

अथ वा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा ।
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥₁₈॥

न हि धर्मान्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः ।
स्वचारित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥₁₉॥

नूनं रामप्रभावेन वैदेह्याः सुकृतेन च ।
यन्मां दहनकर्मायं नादहद्धव्यवाहनः ॥₂₀॥

त्रयाणां भरतादीनां भ्रातृणां देवता च या ।

रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥₂₁॥

यद्वा दहनकर्मायं सर्वत्र प्रभुरव्ययः ।
न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्या प्रधक्ष्यति ॥₂₂॥

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
अपि सा निर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥₂₃॥

स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम् ।
शुश्राव हनुमान्वाक्यं चारणानां महात्मनाम् ॥₂₄॥

अहो खलु कृतं कर्म दुर्विषह्यं हनूमता ।
अग्निं विसृजताभीक्ष्णं भीमं राक्षससङ्घनि ॥₂₅॥

दग्धेयं नगरी लङ्का साट्टप्राकारतोरणा ।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ॥₂₆॥

स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ।
ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत्प्रीतमानसः ॥₂₇॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थः
तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा
प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततस्तु शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम् ।
अभिवाद्याब्रवीद्विष्टा पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥₁॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं हनूमन्तमभाषत ॥₂॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥₃॥

बलैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तस्य तत्सादृशं भवेत् ॥₄॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तत्त्वमेवोपपादय ॥₅॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमांस्तस्या वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥₆॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥₇॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥₈॥

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसन्दर्शनोत्सुकः ।
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः ॥₉॥

तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः ।

सालतालाश्वकर्णेश्च वंशेश्च बहुभिर्वृतम् ॥₁₀॥

लताविता नैर्विततैः पुष्पवद्भिरलङ्कृतम् ।
नानामृगगणाकीर्णं धातुनिष्यन्दभूषितम् ॥₁₁॥

बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासञ्चयसङ्कटम् ।
महर्षियक्षगन्धर्वकिंनरोरगसेवितम् ॥₁₂॥

लतापादपसम्बाधं सिंहाकुलितकन्दरम् ।
व्याघ्रसङ्घसमाकीर्णं स्वादुमूलफलद्रुमम् ॥₁₃॥

तमारुरोहातिबलः पर्वतं प्लवगोत्तमः ।
रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः ॥₁₄॥

तेन पादतलाक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ।
सघोषाः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः ॥₁₅॥

स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः ।
दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयँल्लवणाम्भसः ॥₁₆॥

अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ।
ददर्श सागरं भीमं मीनोरगनिषेवितम् ॥₁₇॥

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः ।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ॥₁₈॥

स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ।
ररास सह तैर्भूतैः प्राविशद्वसुधातलम् ।
कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ॥₁₉॥

तस्योरुवेगान्मथिताः पादपाः पुष्पशालिनः ।
निपेतुर्भूतले रुग्णाः शक्रायुधहता इव ॥₂₀॥

कन्दरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् ।
सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन्स शुश्रुवे ॥²¹॥

स्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणा ।
विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ॥²²॥

अतिप्रमाणा बलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः ।
निपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त महाहयः ॥²³॥

किंनरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तथा ।
पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ॥²⁴॥

स च भूमिधरः श्रीमान्बलिना तेन पीडितः ।
सवृक्षशिखरोदग्राः प्रविवेश रसातलम् ॥²⁵॥

दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ।
धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ॥²⁶॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम् ।
तिष्यश्रवणकदम्बमभ्रशैवलशाद्वलम् ॥₁॥

पुनर्वसु महामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम् ।
ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलोडितम् ॥₂॥

वातसङ्घातजातोर्मि चन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् ।
भुजङ्गयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ॥₃॥

ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवालिखन् ।
हरन्निव सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ॥₄॥

मारुतस्यालयं श्रीमान्कपिव्योमचरो महान् ।
हनूमान्मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ॥₅॥

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च ।
हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥₆॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रमंश्च पुनः पुनः ।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव लक्ष्यते ॥₇॥

नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ।
आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् ॥₈॥

पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ।
ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागतः ॥₉॥

स किञ्चिदनुसम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ।

महेन्द्रमेघसङ्काशं ननाद हरिपुङ्गवः ॥₁₀॥

निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः ।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥₁₁॥

जाम्बवान्स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः ।
उपामन्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₂॥

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः ।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥₁₃॥

तस्या बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः ।
निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुस्ततस्ततः ॥₁₄॥

ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ॥₁₅॥

ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखाः सुपुष्पिताः ।
वासांसीव प्रकाशानि समाविध्यन्त वानराः ॥₁₆॥

तमभ्रघनसङ्काशमापतन्तं महाकपिम् ।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥₁₇॥

ततस्तु वेगवांस्तस्य गिरेर्गिरिनिभः कपिः ।
निपपात महेन्द्रस्य शिखरे पादपाकुले ॥₁₈॥

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥₁₉॥

परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः ।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमरोगमुपागतम् ॥₂₀॥

उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च ।

प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥₂₁॥

विनेदुर्मुदिताः केचिच्चक्रुः किल किलां तथा ।
हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः ॥₂₂॥

हनूमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा ।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥₂₃॥

स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः ।
दृष्टा देवीति विक्रान्तः सङ्क्षेपेण न्यवेदयत् ॥₂₄॥

निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम् ।
रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥₂₅॥

हनूमानब्रवीद्धृष्टस्तदा तान्वानरर्षभान् ।
अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ॥₂₆॥

रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता ।
एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ।
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा ॥₂₇॥

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ।
निश्म्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानरा भवन् ॥₂₈॥

क्ष्वेडन्त्यन्ये नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ।
चक्रुः किल किलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे ॥₂₉॥

केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ।
अञ्चितायतदीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः ॥₃₀॥

अपरे तु हनूमन्तं वानरा वारणोपमम् ।
आप्लुत्य गिरिशृङ्गेभ्यः संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः ॥₃₁॥

उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तदाब्रवीत् ।
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् ॥³²॥

सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित्समो वानरविद्यते ।
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ॥³³॥

दिष्ट्या दृष्टा ब्रूया देवी रामपत्नी यशस्विनी ।
दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीता वियोगजम् ॥³⁴॥

ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः ।
परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः ॥³⁵॥

श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ।
दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनूमद्वदनोन्मुखाः ॥³⁶॥

तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान्वानरैर्बहुभिर्वृतः ।
उपास्यमानो विबुधैर्दिवि देवपतिर्यथा ॥³⁷॥

हनूमता कीर्तिमता यशस्विना
तथाङ्गदेनाङ्गदबद्धबाहुना ।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं महत्
महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाभवत् ॥³⁸॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥षट्चाशत्तमः सर्गः॥

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गे महेन्द्रस्य महाबलाः ।
हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् ॥₁॥

तं ततः प्रतिसंहृष्टः प्रीतिमन्तं महाकपिम् ।
जाम्बवान्कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् ॥₂॥

कथं दृष्ट्वा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ।
तस्यां वा स कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः ॥₃॥

तच्चतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ।
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् ॥₄॥

यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् ।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद्भवान्व्याकरोतु नः ॥₅॥

स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
नमस्यञ्छिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ॥₆॥

प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात्खमाप्लुतः ।
उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः ॥₇॥

गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत् ।
काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ॥₈॥

स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम् ॥₉॥

उपसङ्गम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगसत्तमम् ।
कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च ॥₁₀॥

प्रहतं च मया तस्य लाङ्गूलेन महागिरेः ।
शिखरं सूर्यसङ्काशं व्यशीर्यत सहस्रधा ॥¹¹॥

व्यवसायं च मे बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः ।
पुत्रेति मधुरां बाणीं मनःप्रह्लादयन्निव ॥¹²॥

पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्चनः ।
मैनाकमिति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ ॥¹³॥

पक्षवन्तः पुरा पुत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः ।
छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः ॥¹⁴॥

श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः ।
चिच्छेद भगवान्पक्षान्वज्रेणैषां सहस्रशः ॥¹⁵॥

अहं तु मोक्षितस्तस्मात्तव पित्रा महात्मना ।
मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तोऽस्मि महार्णवे ॥¹⁶॥

रामस्य च मया साह्ये वर्तितव्यमरिन्दम ।
रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ॥¹⁷॥

एतच्छ्रुत्वा मया तस्य मैनाकस्य महात्मनः ।
कार्यमावेद्य तु गिरेरुद्धतं च मनो मम ॥¹⁸॥

तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना ।
उत्तमं जवमास्थाय शेषमध्वानमास्थितः ॥¹⁹॥

ततोऽहं सुचिरं कालं वेगेनाभ्यगमं पथि ।
ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नागमातरम् ॥²⁰॥

समुद्रमध्ये सा देवी वचनं मामभाषत ।
मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वममारैर्हरिसत्तमम् ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं चिरस्य मे ॥²¹॥

एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयम् ॥²²॥

रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परन्तपः ॥²³॥

तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ॥²⁴॥

कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि ॥²⁵॥

अथ वा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ।
आगमिष्यामि ते वक्तुं सत्यं प्रतिश्रुणोति मे ॥²⁶॥

एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ।
अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम ॥²⁷॥

एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः ।
ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु ॥²⁸॥

मत्प्रमाणानुरूपं च व्यादितं तन्मुखं तया ।
तदृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं वपुः ॥²⁹॥

तस्मिन्मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठसम्मितः ।
अभिपत्याशु तद्वक्तुं निर्गतोऽहं ततः क्षणात् ॥³⁰॥

अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः ।
अर्थसिद्धौ हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥³¹॥

समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ।
सुखी भव महाबाहो प्रीतास्मि तव वानर ॥³²॥

ततोऽहं साधु साध्वीति सर्वभूतैः प्रशंसितः ।
ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा ॥³³॥

छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किञ्चन ।
सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन् ।
न किञ्चित्तत्र पश्यामि येन मेऽपहृता गतिः ॥³⁴॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना किं नाम गमने मम ।
ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपं यत्र न दृश्यते ॥³⁵॥

अधो भागेन मे दृष्टिः शोचता पातिता मया ।
ततोऽद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिले शयाम् ॥³⁶॥

प्रहस्य च महानादमुक्तोऽहं भीमया तया ।
अवस्थितमसम्भ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम् ॥³⁷॥

क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः ।
भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम् ॥³⁸॥

बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः ।
आस्य प्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ॥³⁹॥

तस्याश्चास्यं महद्भीमं वर्धते मम भक्षणे ।
न च मां सा तु बुबुधे मम वा विकृतं कृतम् ॥⁴⁰॥

ततोऽहं विपुलं रूपं सङ्क्षिप्य निमिषान्तरात् ।
तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभस्तलम् ॥⁴¹॥

सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि ।
मया पर्वतसङ्काशा निकृत्तहृदया सती ॥⁴²॥

शृणोमि खगतानां च सिद्धानां चारणैः सह ।
राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता ॥⁴³॥

तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन् ।
गत्वा च महदध्वानं पश्यामि नगमण्डितम् ।

दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र च सा पुरी ॥⁴⁴॥

अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरीम् ।
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ॥⁴⁵॥

तत्राहं सर्वरात्रं तु विचिन्वञ्जनकात्मजाम् ।
रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ॥⁴⁶॥

ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने ।
शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ॥⁴⁷॥

शोचता च मया दृष्टं प्राकारेण समावृतम् ।
काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ॥⁴⁸॥

स प्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम् ॥⁴⁹॥

अशोकवनिकामध्ये शिंशपापादपो महान् ।
तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदली वनम् ॥⁵⁰॥

अदूराच्छिंशपावृक्षात्पश्यामि वनवर्णिनीम् ।
श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम् ॥⁵¹॥

राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ।
मांसशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा ॥⁵²॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीमनिन्दिताम् ।
तत्रैव शिंशपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ॥⁵³॥

ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम् ।
शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ॥⁵⁴॥

ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वरूपं प्रत्यसंहरम् ।
अहं च शिंशपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ॥⁵⁵॥

ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः ।
तं देशं समनुप्राप्ता यत्र सीताभवत्स्थिता ॥⁵⁶॥

तं दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् ।
सङ्कुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥⁵⁷॥

तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम् ।
अवाक्शिराः प्रपतितो बहु मन्यस्व मामिति ॥⁵⁸॥

यदि चेत्त्वं तु मां दर्पान्नाभिनन्दसि गर्विते ।
द्विमासानन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ॥⁵⁹॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ॥⁶⁰॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
इक्ष्वाकुकुलनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ।
अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव ॥⁶¹॥

किंस्त्रिद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसंनिधौ ।
अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना ॥⁶²॥

न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्या न युज्यसे ।
यज्ञीयः सत्यवाक्त्रैव रणश्लाघी च राघवः ॥⁶³॥

जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः ।
जज्वाल सहसा कोपाक्षितास्थ इव पावकः ॥⁶⁴॥

विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा ॥⁶⁵॥

स्त्रीणां मध्यात्समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः ।
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः ॥⁶⁶॥

उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः ।
सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम ।
मया सह रमस्वाद्य मद्विशिष्टा न जानकी ॥⁶⁷॥

देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च ।
सार्धं प्रभो रमस्वेह सीतया किं करिष्यसि ॥⁶⁸॥

ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः ।
उत्थाप्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ॥⁶⁹॥

याते तस्मिन्दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः ।
सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ॥⁷⁰॥

तृणवद्भाषितं तासां गणयामास जानकी ।
तर्जितं च तदा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ॥⁷¹॥

वृथागर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः ।
रावणाय शशंसुस्ताः सीताव्यवसितं महत् ॥⁷²॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः ।
परिक्षिप्य समन्तात्तां निद्रावशमुपागताः ॥⁷³॥

तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता ।
विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ॥⁷⁴॥

तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम् ।
चिन्तयामास विश्रान्तो न च मे निर्वृतं मनः ॥⁷⁵॥

सम्भाषणार्थं च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः ।
इक्ष्वाकुकुलवंशस्तु ततो मम पुरस्कृतः ॥⁷⁶॥

श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणपूजिताम् ।
प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना ॥⁷⁷॥

कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुङ्गव ।
का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि ॥⁷⁸॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा अहमप्यब्रुवं वचः ।
देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः ।
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्दो महाबलः ॥⁷⁹॥

तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनूमन्तमिहागतम् ।
भर्त्राहं प्रहितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥⁸⁰॥

इदं च पुरुषव्याघ्रः श्रीमान्दाशरथिः स्वयम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात्तुभ्यं यशस्विनि ॥⁸¹॥

तदिच्छामि त्वयाज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम् ।
रामलक्ष्मणयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥⁸²॥

एतच्छ्रुत्वा विदिता च सीता जनकनन्दिनी ।
आह रावणमुत्साद्य राघवो मां नयत्विति ॥⁸³॥

प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम् ।
राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् ॥⁸⁴॥

एवमुक्ता वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम् ।
प्रायच्छत्परमोद्विग्ना वाचा मां सन्दिदेश ह ॥⁸⁵॥

ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यै समाहितः ।
प्रदक्षिणं परिक्राममिहाभ्युद्गतमानसः ॥⁸⁶॥

उत्तरं पुनरेवाह निश्चित्य मनसा तदा ।
हनूमन्मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे ॥⁸⁷॥

यथा श्रुत्वैव नचिरात्तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु ॥⁸⁸॥

यद्यन्यथा भवेदेतद्वौ मासौ जीवितं मम ।
न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत् ॥⁸⁹॥

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत ।
उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥⁹⁰॥

ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसंनिभः ।
युद्धकाङ्क्षी वनं तच्च विनाशयितुमारभे ॥⁹¹॥

तद्भग्नं वनषण्डं तु भ्रान्तव्रस्तमृगद्विजम् ।
प्रतिबुद्धा निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः ॥⁹²॥

मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन्समागम्य ततस्ततः ।
ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे ॥⁹³॥

राजन्वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना ।
वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबल ॥⁹⁴॥

दुर्बुद्धेस्तस्य राजेन्द्र तव विप्रियकारिणः ।
वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ विलयं व्रजेत् ॥⁹⁵॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा भृशदुर्जयाः ।
राक्षसाः किङ्करा नाम रावणस्य मनोऽनुगाः ॥⁹⁶॥

तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् ।
मया तस्मिन्वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ॥⁹⁷॥

तेषां तु हतशेषा ये ते गता लघुविक्रमाः ।
निहतं च मया सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ॥⁹⁸॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमाक्रमम् ॥⁹⁹॥

तत्रस्थान्नाक्षसान्हत्वा शतं स्तम्भेन वै पुनः ।
ललाम भूतो लङ्काया मया विध्वंसितो रुषा ॥¹⁰⁰॥

ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ॥¹⁰¹ ॥

तमहं बलसम्पन्नं राक्षसं रणकोविदम् ।
परिधेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् ॥¹⁰² ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान्महाबलान् ।
पदातिबलसम्पन्नान्प्रेषयामास रावणः ।
परिधेणैव तान्सर्वान्नयामि यमसादनम् ॥¹⁰³ ॥

मन्त्रिपुत्रान्हताञ्श्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् ।
पञ्चसेनाग्रगाञ्शूरान्प्रेषयामास रावणः ।
तानहं सह सैन्यान्वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् ॥¹⁰⁴ ॥

ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् ।
बहुभी राकसैः सार्धं प्रेषयामास संयुगे ॥¹⁰⁵ ॥

तं तु मन्दोदरी पुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ।
सहसा खं समुत्क्रान्तं पादयोश्च गृहीतवान् ।
चर्मासिनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् ॥¹⁰⁶ ॥

तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः ।
तत इन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ।
व्यादिदेश सुसङ्क्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् ॥¹⁰⁷ ॥

तस्याप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुङ्गवम् ।
नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागमम् ॥¹⁰⁸ ॥

महता हि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः ।
प्रेषितो रावणेनैष सह वीरैर्मदोत्कटैः ॥¹⁰⁹ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण स तु मां प्रबध्नाच्चातिवेगतः ।
रञ्जुभिरभिवध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥¹¹⁰ ॥

रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपानयन् ।
दृष्ट्वा सम्भाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना ॥¹¹¹॥

पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तद्वधम् ।
तत्सर्वं च मया तत्र सीतार्थमिति जल्पितम् ॥¹¹²॥

अस्याहं दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो ।
मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् ॥¹¹³॥

रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
सोऽहं दौत्येन रामस्य त्वत्समीपमिहागतः ॥¹¹⁴॥

शृणु चापि समादेशं यदहं प्रब्रवीमि ते ।
राक्षसेश हरीशस्त्वां वाक्यमाह समाहितम् ।
धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमिवाशनम् ॥¹¹⁵॥

वसतो ऋष्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे ।
राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः ॥¹¹⁶॥

तेन मे कथितं राजन्भार्या मे रक्षसा हृता ।
तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि ॥¹¹⁷॥

वालिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः ।
चक्रेऽग्निसाक्षिकं सक्यं राघवः सहलक्ष्मणः ॥¹¹⁸॥

तेन वालिनमुत्साद्य शरेणैकेन संयुगे ।
वानराणां महाराजः कृतः सम्प्लवतां प्रभुः ॥¹¹⁹॥

तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना ब्रिह ।
तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥¹²⁰॥

क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवस्य च ।
यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥¹²¹॥

वानराणां प्रभवो हि न केन विदितः पुरा ।
देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥¹²²॥

इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया ।
मामैक्षत ततो रुष्टश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥¹²³॥

तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥¹²⁴॥

ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः ।
तेन राक्षसराजोऽसौ याचितो मम कारणात् ॥¹²⁵॥

दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
दूतेन वेदितव्यं च यथार्थं हितवादिना ॥¹²⁶॥

सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रमः ।
विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्तीह शास्त्रतः ॥¹²⁷॥

विभीषणेनैवमुक्तो रावणः सन्दिदेश तान् ।
राक्षसानेतदेवाद्य लाङ्गूलं दह्यतामिति ॥¹²⁸॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं शणवल्कैश्च पटैः कार्पासकैस्तथा ॥¹²⁹॥

राक्षसाः सिद्धसंनाहास्ततस्ते चण्डविक्रमाः ।
तदादीप्यन्त मे पुच्छं हनन्तः काष्ठमुष्टिभिः ॥¹³⁰॥

बद्धस्य बहुभिः पाशैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः ।
न मे पीडा भवेत्काचिद्दिदृक्षोर्नगरीं दिवा ॥¹³¹॥

ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम् ।
अघोषयन्नाजमार्गे नगरद्वारमागताः ॥¹³²॥

ततोऽहं सुमहद्रूपं सङ्क्षिप्य पुनरात्मनः ।
विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिष्ठः स्थितः पुनः ॥¹³³॥

आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम् ।
ततस्तन्नगरद्वारं वेगेनाप्लुतवानहम् ॥¹³⁴॥

पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम् ।
दहाम्यहमसम्भ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ॥¹³⁵॥

दग्ध्वा लङ्कां पुनश्चैव शङ्का मामभ्यवर्तत ।
दहता च मया लङ्कां दध्वा सीता न संशयः ॥¹³⁶॥

अथाहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् ।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम् ॥¹³⁷॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् ।
पुनर्दृष्टा च वैदेही विसृष्टश्च तया पुनः ॥¹³⁸॥

राघवस्य प्रभावेन भवतां चैव तेजसा ।
सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥¹³⁹॥

एतत्सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम् ।
अत्र यन्न कृतं शेषं तत्सर्वं क्रियतामिति ॥¹⁴⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

एतदाख्यानं तत्सर्वं हनूमान्मारुतात्मजः ।
भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् ॥₁॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः ।
शीलमासाद्य सीताया मम च प्लवनं महत् ॥₂॥

आर्यायाः सदृशं शीलं सीतायाः प्लवगर्षभाः ।
तपसा धारयेल्लोकान्क्रुद्धा वा निर्दहेदपि ॥₃॥

सर्वथातिप्रवृद्धोऽसौ रावणो राक्षसाधिपः ।
यस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥₄॥

न तदग्निशिखा कुर्यात्संस्पृष्टा पाणिना सती ।
जनकस्यात्मजा कुर्यादुत्क्रोधकलुषीकृता ॥₅॥

अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः ।
अधस्ताच्छिंशपावृक्षे साध्वी करुणमास्थिता ॥₆॥

राक्षसीभिः परिवृता शोकसन्तापकर्षिता ।
मेघलेखापरिवृता चन्द्रलेखेव निष्प्रभा ॥₇॥

अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम् ।
पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी ॥₈॥

अनुरक्ता हि वैदेही रामं सर्वात्मना शुभा ।
अनन्यचित्ता रामे च पौलोमीव पुरन्दरे ॥₉॥

तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च ।

शोकसन्तापदीनाङ्गी सीता भर्तृहिते रता ॥₁₀॥

सा मया राक्षसी मध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ।
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदा वने ॥₁₁॥

एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ।
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥₁₂॥

रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ।
कथञ्चिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता ॥₁₃॥

ततः सम्भाषिता चैव सर्वमर्थं च दर्शिता ।
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता ॥₁₄॥

नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तारि चोत्तमा ॥₁₅॥

यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा दशाननः ।
निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति ॥₁₆॥

एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा ।
यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत्सर्वमुपपाद्यताम् ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत ।
जाम्बवत्प्रमुखान्सर्वाननुज्ञाप्य महाकपीन् ॥₁॥

अस्मिन्नेवङ्गते कार्ये भवतां च निवेदिते ।
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तो पार्थिवात्मजौ ॥₂॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ।
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् ॥₃॥

किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ।
कृतास्तैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ॥₄॥

अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम् ।
सपुत्रं विधमिष्यामि सहोदरयुतं युधि ॥₅॥

ब्राह्ममैन्द्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा ।
यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्ष्याणि संयुगे ।
तान्यहं विधमिष्यामि निहनिष्यामि राक्षसान् ॥₆॥

भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि तम् ॥₇॥

मयातुला विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा ।
देवानपि रणे हन्यात्किं पुनस्तान्निशाचरान् ॥₈॥

सागरोऽप्यतियाद्वेलां मन्दरः प्रचलेदपि ।
न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी ॥₉॥

सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वकाः ।
अलमेको विनाशाय वीरो वायुसुतः कपिः ॥₁₀॥

पनसस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः ।
मन्दरोऽप्यवशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः ॥₁₁॥

सदेवासुरयुद्धेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु ।
मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा ॥₁₂॥

अश्विपुत्रौ महावेगावेतौ प्लवगसत्तमौ ।
पितामहवरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ ॥₁₃॥

अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः ।
सर्वावध्यत्नमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा ॥₁₄॥

वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ प्लवङ्गमौ ॥₁₅॥

एतावेव हि सङ्क्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् ।
लङ्कां नाशयितुं शक्तौ सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥₁₆॥

अयुक्तं तु विना देवीं दृष्टबद्धिः प्लवङ्गमाः ।
समीपं गन्तुमस्माभी राघवस्य महात्मनः ॥₁₇॥

दृष्टा देवी न चानीता इति तत्र निवेदनम् ।
अयुक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातविक्रमैः ॥₁₈॥

न हि वः प्लवते कश्चिन्नापि कश्चित्पराक्रमे ।
तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ॥₁₉॥

तेष्वेवं हतवीरेषु राक्षसेषु हनूमता ।
किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ॥₂₀॥

तमेवं कृतसङ्कल्पं जाम्बवान्हरिसत्तमः ।
उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थवित् ॥₂₁॥

न तावदेषा मतिरक्षमा नो
यथा भवान्पश्यति राजपुत्र ।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा
तथा भवान्पश्यतु कार्यसिद्धिम् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः ।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥₁॥

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः ।
महेन्द्राग्रं परित्यज्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥₂॥

मेरुमन्दरसङ्काशा मत्ता इव महागजाः ।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥₃॥

सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम् ।
हनूमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥₄॥

राघवे चार्थनिर्वृत्तिं भर्तुश्च परमं यशः ।
समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ॥₅॥

प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ॥₆॥

प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौक्षकः ।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमलतायुतम् ॥₇॥

यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ॥₈॥

यद्रक्षति महावीर्यः सदा दधिमुखः कपिः ।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥₉॥

ते तद्वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः ।

वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्ततमं महत् ॥₁₀॥

ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत् ।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥₁₁॥

ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् ।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥₁₂॥

ततश्चानुमताः सर्वे सम्प्रहृष्टा वनौकसः ।
मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यन्ति ततस्ततः ॥₁₃॥

गायन्ति केचित्प्रणमन्ति के चित्
नृत्यन्ति केचित्प्रहसन्ति केचित् ।
पतन्ति केचिद्विचरन्ति के चित्
प्लवन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् ॥₁₄॥

परस्परं केचिदुपाश्रयन्ते
परस्परं केचिदतिब्रुवन्ते ।
द्रुमाद्रुमं केचिदभिप्लवन्ते
क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् ॥₁₅॥

महीतलात्केचिदुदीर्णवेगा
महाद्रुमाग्राण्यभिसम्पतन्ते ।
गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति
हसन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति ॥₁₆॥

रुदन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति; नुदन्तमन्यः प्रणुदन्नुपैति ।
समाकुलं तत्कपिसैन्यमासीत्; मधुप्रपानोत्कट सत्त्वचेष्टम् ।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो; न चात्र कश्चिन्न बभूव तृप्तो ॥₁₇॥

ततो वनं तत्परिभक्ष्यमाणम्
द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान् ।
समीक्ष्य कोपाद्विवक्तनामा

निवारयामास कपिः कर्पींस्तान् ॥₁₈॥

स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो
वनस्य गोप्ता हरिवीरवृद्धः ।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा
वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः ॥₁₉॥

उवाच कांश्चित्पुरुषाणि धृष्टम्
असक्तमन्यांश्च तलैर्जघान ।
समेत्य कैश्चित्कलहं चकार
तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् ॥₂₀॥

स तैर्मदाच्चाप्रतिवार्य वेगैर्-
बलाच्च तेनाप्रतिवार्यमाणैः ।
प्रधर्षितस्त्यक्तभयैः समेत्य
प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् ॥₂₁॥

नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तः
तलैश्च पादैश्च समाप्नुवन्तः ।
मदात्कपिं तं कपयः समग्रा
महावनं निर्विषयं च चक्रुः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्ठितमः सर्गः॥

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनूमान्वानरर्षभः ।
अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः ॥₁॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु ॥₂॥

अवश्यं कृतकार्यस्य वाक्यं हनुमतो मया ।
अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम् ॥₃॥

अन्दगस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ।
साधु साध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन् ॥₄॥

पूजयित्वाङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ।
जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेग इव द्रुतम् ॥₅॥

ते प्रहृष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य वीर्यतः ।
अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥₆॥

उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान्समागताः ।
ताडयन्ति स्म शतशः सक्तान्मधुवने तदा ॥₇॥

मधूनि द्रोणमात्राणि बहुभिः परिगृह्य ते ।
घ्नन्ति स्म सहिताः सर्वे भक्षयन्ति तथापरे ॥₈॥

केचित्पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः ।
मधूच्चिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः ॥₉॥

अपरे वृक्षमूलेषु शाखां गृह्य व्यवस्थितः ।

अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते ॥₁₀॥

उन्मत्तभूताः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् ।
क्षिपन्त्यपि तथान्योन्यं स्खलन्त्यपि तथापरे ॥₁₁॥

केचित्क्ष्वेडान्प्रकुर्वन्ति केचित्कूजन्ति हृष्टवत् ।
हरयो मधुना मत्ताः केचित्सुप्ता महीतले ॥₁₂॥

येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु ।
तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः ॥₁₃॥

जानुभिश्च प्रकृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः ।
अब्रुवन्परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः ॥₁₄॥

हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात् ।
वयं च जानुभिः कृष्टा देवमार्गं च दर्शिताः ॥₁₅॥

ततो दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः ।
हतं मधुवनं श्रुत्वा सान्त्वयामास तान्हरीन् ॥₁₆॥

एतागच्छत गच्छामो वानरानतिदर्पितान् ।
बलेनावारयिष्यामो मधु भक्षयतो वयम् ॥₁₇॥

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः ।
पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहिता ययुः ॥₁₈॥

मध्ये चैषां दधिमुखः प्रगृह्य सुमहातरुम् ।
समभ्यधावद्वेगेना ते च सर्वे प्लवङ्गमाः ॥₁₉॥

ते शिलाः पादपांश्चापि पाषाणांश्चापि वानराः ।
गृहीत्वाभ्यागमन्क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः ॥₂₀॥

ते स्वामिवचनं वीरा हृदयेष्ववसज्य तत् ।

त्वरया ह्यभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥₂₁॥

वृक्षस्थांश्च तलस्थांश्च वानरान्बलदर्पितान् ।
अभ्यक्रामन्त ते वीराः पालास्तत्र सहस्रशः ॥₂₂॥

अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त वेगेन हनूमत्प्रमुखास्तदा ॥₂₃॥

तं सवृक्षं महाबाहुमापतन्तं महाबलम् ।
आर्यकं प्राहरत्तत्र बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः ॥₂₄॥

मदान्धश न वेदैर्नमार्यकोऽयं ममेति सः ।
अथैनं निष्पिपेषाशु वेगवद्वसुधातले ॥₂₅॥

स भग्नबाहुर्विमुखो विह्वलः शोणितोक्षितः ।
मुमोह सहसा वीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥₂₆॥

स कथञ्चिद्विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः ।
उवाचैकान्तमागम्य भृत्यांस्तान्समुपागतान् ॥₂₇॥

एते तिष्ठन्तु गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ॥₂₈॥

सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्यामि पार्थिव ।
अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ॥₂₉॥

द्वष्टं मधुवनं ह्येतत्सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ॥₃₀॥

स वानरानिमान्सर्वान्मधुलुब्धान्गतायुषः ।
घातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृञ्जनान् ॥₃₁॥

वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञा परिभाविनः ।

अमर्षप्रभवो रोषः सफलो नो भविष्यति ॥₃₂॥

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान्महाबलः ।
जगाम सहस्रोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ॥₃₃॥

निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः ।
सहस्रांशुसुतो धीमान्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥₃₄॥

रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ।
समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ॥₃₅॥

स निपत्य महावीर्यः सर्वैस्तैः परिवारितः ।
हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ॥₃₆॥

स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
सुग्रीवस्य शुभौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत् ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः ।
दृष्ट्वोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्माच्च पादयोः पतितो मम ।
अभयं ते भवेद्वीर सत्यमेवाभिधीयताम् ॥₂॥

स तु विश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
उत्थाय च महाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत् ॥₃॥

नैवर्क्षरजसा राजन्न त्वया नापि वालिना ।
वनं निसृष्टपूर्वं हि भक्षितं तत्तु वानरैः ॥₄॥

एभिः प्रधर्षिताश्चैव वारिता वनरक्षिभिः ।
मधून्यचिन्तयित्वेमान्भक्षयन्ति पिबन्ति च ॥₅॥

शिष्टमत्रापविध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे ।
निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुवौ वै दर्शयन्ति हि ॥₆॥

इमे हि संरब्धतरास्तथा तैः सम्प्रधर्षिताः ।
वारयन्तो वनात्तस्मात्क्रुद्धैर्वानरपुङ्गवैः ॥₇॥

ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभाः ।
संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः सम्प्रचालिताः ॥₈॥

पाणिभिर्निहताः केचित्केचिञ्जानुभिराहताः ।
प्रकृष्टाश्च यथाकामं देवमार्गं च दर्शिताः ॥₉॥

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तारि ।

कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैः प्रभक्ष्यते ॥₁₀॥

एवं विज्ञाप्यमानं तु सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥₁₁॥

किमयं वानरो राजन्वनपः प्रत्युपस्थितः ।
कं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥₁₂॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₁₃॥

आर्य लक्ष्मण सम्प्राह वीरो दधिमुखः कपिः ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरिर्भक्षितं मधुवानरैः ॥₁₄॥

नैषामकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ।
वनं यथाभिपन्नं तैः साधितं कर्म वानरैः ॥₁₅॥

दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता ।
न ह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः ॥₁₆॥

कार्यसिद्धिर्हनुमति मतिश्च हरिपुङ्गव ।
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् ॥₁₇॥

जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदस्य बलेश्वरः ।
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा ॥₁₈॥

अङ्गदप्रमुखैर्वीरिर्हतं मधुवनं किल ।
विचिन्त्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः ॥₁₉॥

आगतैश्च प्रविष्टं तद्यथा मधुवनं हि तैः ।
धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं च वानरैः ।
वारिताः सहिताः पालास्तथा जानुभिराहताः ॥₂₀॥

एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवाग्निह ।
नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः ॥₂₁॥

दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तच्चतः ।
अभिगम्य यथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः ॥₂₂॥

न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ ।
वनं दात्त वरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः ॥₂₃॥

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः ।
श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम् ॥₂₄॥

प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महायशः ।
श्रुत्वा दधिमुखस्येदं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥₂₅॥

प्रीतोऽस्मि सौम्य यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः ।
मर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ॥₂₆॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधानान्
शाखामृगांस्तान्मृगराजदर्पान् ।
द्रष्टुं कृतार्थान्सह राघवाभ्याम्
श्रोतुं च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् ॥₁॥

स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ ।
वानरैः सहितैः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह ॥₂॥

स यथैवागतः पूर्वं तथैव बरितो गतः ।
निपत्य गगनाद्भूमौ तद्वनं प्रविवेश ह ॥₃॥

स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान् ।
विमदानुद्धतान्सर्वान्मेहमानान्मधूदकम् ॥₄॥

स तानुपागमद्वीरो बद्धा करपुटाञ्जलिम् ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ॥₅॥

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिरभिवारितः ।
अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्भवन्तः प्रतिषेधिताः ॥₆॥

युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल ।
मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो दोषस्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥₇॥

यथैव हि पिता तेऽभूत्पूर्वं हरिगणेश्वरः ।
तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम ॥₈॥

आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ ।
द्वहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम् ॥₉॥

स त्वदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्हरियूथपैः ।

प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम् ॥₁₀॥

प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वास्तानिति होवाच पार्थिवः ॥₁₁॥

श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः ।
अब्रवीत्तान्हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₁₂॥

शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः ।
तत्क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परन्तपाः ॥₁₃॥

पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः ।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र मे गुरुः ॥₁₄॥

सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरियूथपाः ।
तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम् ॥₁₅॥

नाज्ञापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि ।
अयुक्तं कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं मया ॥₁₆॥

ब्रुवतश्चाङ्गदश्चैवं श्रुत्वा वचनमव्ययम् ।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः ॥₁₇॥

एवं वक्ष्यति को राजन्प्रभुः सन्वानरर्षभ ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥₁₈॥

तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित् ।
संनतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभभाग्यताम् ॥₁₉॥

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः ।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः ॥₂₀॥

त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात्पदम् ।

क्वचिद्भन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते ॥₂₁॥

एवं तु वदतां तेषामङ्गदः प्रत्यभाषत ।
बाढं गच्छाम इत्युक्त्वा उत्पपात महीतलात् ॥₂₂॥

उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः ।
कृत्वाकाशं निराकाशं यज्ञोत्क्षिप्ता इवानलाः ॥₂₃॥

तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवङ्गमाः ।
विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा ॥₂₄॥

अङ्गदे ह्यननुप्राप्ते सुग्रीवो वानराधिपः ।
उवाच शोकोपहतं रामं कमललोचनम् ॥₂₅॥

समाश्वसिहि भद्रं ते दृष्टा देवी न संशयः ।
नागन्तुमिह शक्यं तैरतीते समये हि नः ॥₂₆॥

न मत्सकाशमागच्छेत्कृत्ये हि विनिपातिते ।
युवराजो महाबाहुः प्लवतां प्रवरोऽङ्गदः ॥₂₇॥

यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ।
भवेत्तु दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ॥₂₈॥

पितृपैतामहं चैतत्पूर्वकैरभिरक्षितम् ।
न मे मधुवनं हन्यादहृष्टः प्लवगेश्वरः ॥₂₉॥

कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुव्रत ।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता ।
न ह्यन्यः कर्मणो हेतुः साधने तद्विधो भवेत् ॥₃₀॥

हनूमति हि सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ।
व्यवसायश्च वीर्यं च सूर्ये तेज इव ध्रुवम् ॥₃₁॥

जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च बलेश्वरः ।
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा ॥₃₂॥

मा भूश्चिन्ता समायुक्तः सम्प्रत्यमितविक्रमः ॥₃₃॥

ततः किल किला शब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे ।
हनूमत्कर्मदृप्तानां नर्दतां काननौकसाम् ।
किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव ॥₃₄॥

ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः ।
आयताश्वितलाङ्गुलः सोऽभवद्धृष्टमानसः ॥₃₅॥

आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः ।
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ॥₃₆॥

तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदान्विताः ।
निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ॥₃₇॥

हनूमांश्च महाबहुः प्रणम्य शिरसा ततः ।
नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ॥₃₈॥

निश्चितार्थं ततस्तस्मिन्सुग्रीवं पवनात्मजे ।
लक्ष्मणः प्रीतिमान्प्रीतं बहुमानादवैक्षत ॥₃₉॥

प्रीत्या च रममाणोऽथ राघवः परवीरहा ।
बहु मानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ॥₄₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥₁॥

युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च ।
प्रवृत्तमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥₂॥

रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम् ।
रामे समनुरागं च यश्चापि समयः कृतः ॥₃॥

एतदाख्यान्ति ते सर्वे हरयो राम संनिधौ ।
वैदेहीमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत् ॥₄॥

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते ।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ॥₅॥

रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ॥₆॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान्मारुतात्मजः ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा ॥₇॥

समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् ।
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ॥₈॥

तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ।
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ॥₉॥

तत्र दृष्टा मया सीता रावणान्तःपुरे सती ।

संन्यस्य त्वयि जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ॥₁₀॥

दृष्टा मे राक्षसी मध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ।
राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने ॥₁₁॥

दुःखमापद्यते देवी तवादुःखोचिता सती ।
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥₁₂॥

एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ।
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥₁₃॥

रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ।
देवी कथञ्चित्काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया ॥₁₄॥

इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ ।
स मया नरशार्दूल विश्वासमुपपादिता ॥₁₅॥

ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ।
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता ॥₁₆॥

नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्यास्तथा त्वयि ।
एवं मया महाभागा दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥₁₇॥

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके ।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव ॥₁₈॥

विज्ञाप्यश्च नर व्याघ्रो रामो वायुसुत त्वया ।
अखिलेनेह यदृष्टमिति मामाह जानकी ॥₁₉॥

इदं चास्मै प्रदातव्यं यत्नात्सुपरिरक्षितम् ।
ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥₂₀॥

एष चूडामणिः श्रीमान्मया ते यत्नरक्षितः ।
मनःशिलायास्तिकलस्तं स्मरस्वेति चाब्रवीत् ॥₂₁॥

एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसम्भवः ।
एतं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥₂₂॥

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥₂₃॥

इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी धर्म चारिणी ।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ॥₂₄॥

एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा ।
सर्वथा सागरजले सन्तारः प्रविधीयताम् ॥₂₅॥

तौ जाताश्चासौ राजपुत्रौ विदित्रा
तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद्-
वाचा सम्पूर्णं वायुपुत्रः शशंस ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।
तं मणिं हृदये कृत्वा प्ररुरोद सलक्ष्मणः ॥₁॥

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्षितः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥₂॥

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला ।
तथा ममापि हृदयं मणिरत्नस्य दर्शनात् ॥₃॥

मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे ।
वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥₄॥

अयं हि जलसम्भूतो मणिः प्रवरपूजितः ।
यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ॥₅॥

इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं तथा तातस्य दर्शनम् ।
अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ॥₆॥

अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः ।
अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ॥₇॥

किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः ।
परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा ॥₈॥

इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम् ।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥₉॥

चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।

क्षणं सौम्य न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥₁₀॥

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥₁₁॥

कथं सा मम सुश्रोणि भीरु भीरुः सती तदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥₁₂॥

शारदस्तिमिरोन्मुखो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः ।
आवृतं वदनं तस्या न विराजति राक्षसैः ॥₁₃॥

किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयस्व मे ।
एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा ॥₁₄॥

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन्कथयस्व मे ।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

एवमुक्तस्तु हनुमान्नाघवेण महात्मना ।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे ॥₁॥

इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ ।
पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथा तथम् ॥₂॥

सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता ।
वायसः सहस्रोत्पत्य विरराद स्तनान्तरे ॥₃॥

पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्गे भरताग्रज ।
पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथाम् ॥₄॥

ततः पुनरुपागम्य विरराद भृशं किल ।
ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः ॥₅॥

वायसेन च तेनैव सततं बाध्यमानया ।
बोधितः किल देव्यास्त्वं सुखसुप्तः परन्तप ॥₆॥

तां तु दृष्ट्वा महाबाहो रादितां च स्तनान्तरे ।
आशीविष इव क्रुद्धो निःश्वसन्नभ्यभाषथाः ॥₇॥

नखाग्रैः केन ते भीरु दारितं तु स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥₈॥

निरीक्षमाणः सहसा वायसं समवैक्षताः ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ॥₉॥

सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।

धरान्तरचरः शीघ्रं पवनस्य गतो समः ॥₁₀॥

ततस्तस्मिन्महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे त्वं कृत्वाः क्रूरां मतिं मतिमतां वर ॥₁₁॥

स दर्भं संस्तराद्ब्रह्म ब्रह्मास्त्रेण न्ययोजयः ।
स दीप्त इव कालाग्निर्ज्ज्वालाभिमुखः खगम् ॥₁₂॥

स त्वं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति ।
ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोऽनुजगाम ह ॥₁₃॥

स पित्रा च परित्यक्तः सुरैः सर्वैर्महर्षिभिः ।
त्रैल्लोकान्सम्परिक्रम्य त्रातारं नाधिगच्छति ॥₁₄॥

तं त्वं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ।
वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालयः ॥₁₅॥

मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव ।
ततस्तस्याक्षिकाकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ॥₁₆॥

राम त्वां स नमस्कृत्वा राज्ञो दशरथस्य च ।
विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे खमालयम् ॥₁₇॥

एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववाञ्शीलवानपि ।
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ॥₁₈॥

न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ।
तव राम मुखे स्थातुं शक्ताः प्रतिसमाधितुम् ॥₁₉॥

तव वीर्यवतः कच्चिन्मयि यद्यस्ति सम्भ्रमः ।
क्षिप्रं सुनिशितैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः ॥₂₀॥

भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परन्तपः ।

स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः ॥₂₁॥

शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ।
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ॥₂₂॥

ममैव दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ।
समर्थो सहितौ यन्मां नापेक्षते परन्तपौ ॥₂₃॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम् ।
पुनरप्यहमार्या तामिदं वचनमब्रुवम् ॥₂₄॥

बच्छ्लोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे दुःखाभिभूते च लक्ष्मणः परितप्यते ॥₂₅॥

कथञ्चिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥₂₆॥

तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रावरिन्दमौ ।
बद्धर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥₂₇॥

हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सह बान्धवम् ।
राघवस्त्वां महाबाहुः स्त्वां पुरीं नयते ध्रुवम् ॥₂₈॥

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ।
प्रीतिसंजननं तस्य प्रदातुं तत्त्वमर्हसि ॥₂₉॥

साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेणुद्वथनमुत्तमम् ।
मुक्त्वा वस्त्राददौ मह्यं मणिमेतं महाबल ॥₃₀॥

प्रतिगृह्य मणिं दिव्यं तव हेतो रघूत्तम ।
शिरसा सम्प्रणम्यैनामहमागमने त्वरे ॥₃₁॥

गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी ।

विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पसन्दिग्धभाषिणी ॥₃₂॥

हनुमन्सिंहसङ्काशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥₃₃॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंगोधात्तत्समाधातुमर्हसि ॥₃₄॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगम्
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपम्
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥₃₅॥

एतत्तवार्या नृपराजसिंह
सीता वचः प्राह विषादपूर्वम् ।
एतच्च बुद्धा गदितं मया त्वम्
श्रद्धत्स्व सीतां कुशलां समग्राम् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससम्भ्रमम् ।
तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्यादनुमान्य च ॥₁॥

एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया ।
यथा मामापृयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे ॥₂॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।
कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥₃॥

मम चाप्यल्पभाग्यायाः साम्निध्यात्तव वानर ।
अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद्विमोक्षणम् ॥₄॥

गते हि ब्रूयि विक्रान्ते पुनरागमनाय वै ।
प्राणानामपि सन्देहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥₅॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखाद्दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ॥₆॥

अयं तु वीरसन्देहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु असंशयः ॥₇॥

कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥₈॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य वायोर्वा तव वानघ ॥₉॥

तदस्मिन्कार्यनियोगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।

किं पश्यसि समाधानं ब्रूहि कार्यविदां वर ॥₁₀॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥₁₁॥

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे ।
विजयी स्वां पुरीं रामो नयेत्तत्स्याद्यशस्करम् ॥₁₂॥

यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हता ।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः ॥₁₃॥

बलैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥₁₄॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥₁₅॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रुवम् ॥₁₆॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥₁₇॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसङ्कल्पसम्पाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥₁₈॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सञ्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥₁₉॥

असकृत्तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥₂₀॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।

मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥₂₁॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥₂₂॥

तदलं परितापेन देवि मन्युर्व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥₂₃॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
बत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः ॥₂₄॥

अरिघ्नं सिंहसङ्काशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्का द्वारमुपस्थितम् ॥₂₅॥

नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान्वानरेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि सङ्गतान् ॥₂₆॥

शैलाम्बुदन्निकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानामचिराच्छोष्यसे स्वनम् ॥₂₇॥

निवृत्तवनवासं च ब्रूया सार्धमरिन्दमम् ।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥₂₈॥

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी
शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
जगाम शान्तिं मम मैथिलात्मजा
तवापि शोकेन तथाभिपीडिता ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

Chapter 6

॥युद्धकाण्डः॥

॥प्रथमः सर्गः॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् ।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥₁॥

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद्भुवि दुष्करम् ।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥₂॥

न हि तं परिपश्यामि यस्तरेत महार्णवम् ।
अन्यत्र गरुणाद्वायोरन्यत्र च हनूमतः ॥₃॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अप्रधृष्यां पुरीं लङ्कां रावणेन सुरक्षिताम् ॥₄॥

प्रविष्टः सत्त्वमाश्रित्य जीवन्को नाम निष्क्रमेत् ।
को विशेत्सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ।
यो वीर्यबलसम्पन्नो न समः स्याद्धनूमतः ॥₅॥

भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत् ।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च ॥₆॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन्भर्त्रा कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥₇॥

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद्यः समाहितः ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥₈॥

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता ।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥₉॥

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः ॥₁₀॥

इदं तु मम दीनस्या मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥₁₁॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ॥₁₂॥

सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम् ।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥₁₃॥

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समाहिताः ॥₁₄॥

यद्यप्येष तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम् ॥₁₅॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
हनूमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत् ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

तं तु शोकपरिदूनं रामं दशरथात्मजम् ।
उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥₁॥

किं त्वं सन्तप्यसे वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा ।
मैवं भूस्त्यज सन्तापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥₂॥

सन्तापस्य च ते स्थानं न हि पश्यामि राघव ।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥₃॥

धृतिमाञ्शास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव ।
त्यजेमां पापिकां बुद्धिं कृत्वात्मेवार्थदूषणीम् ॥₄॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम् ।
लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥₅॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥₆॥

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वे नो हरियूथपाः ।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥₇॥

एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चास्मिन्दृढो मम ।
विक्रमेण समानेष्ये सीतां हत्वा यथा रिपुम् ॥₈॥

सेतुरत्र यथा वध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् ।
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥₉॥

दृष्ट्वा तां हि पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।

हतं च रावणं युद्धे दर्शनादुपधारय ॥₁₀॥

सेतुबद्धः समुद्रे च यावल्लङ्का समीपतः ।
सर्वं तीर्णं च वै सैन्यं जितमित्युपधार्यताम् ॥₁₁॥

इमे हि समरे शूरा हरयः कामरूपिणः ।
तदलं विक्लवा बुद्धी राजन्सर्वार्थनाशनी ॥₁₂॥

पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिञ्शोकः शौर्यापकर्षणः ।
यत्तु कार्यं मनुष्येण शौण्डीर्यमवलम्बता ।
शूराणां हि मनुष्याणां बद्धिधानां महात्मनाम् ॥₁₃॥

विनष्टे वा प्रनष्टे वा शोकः सर्वार्थनाशनः ।
त्वं तु बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥₁₄॥

मद्विधैः सचिवैः सार्थमरिं जेतुमिहार्हसि ।
न हि पश्याम्यहं कश्चित्त्रिषु लोकेषु राघव ॥₁₅॥

गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ।
वानरेषु समासक्तं न ते कार्यं विपत्स्यते ॥₁₆॥

अचिराद्द्रक्ष्यसे सीतां तीर्त्वा सागरमक्षयम् ।
तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते ॥₁₇॥

निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ।
लङ्गनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपतेः ॥₁₈॥

सहास्माभिरिहोपेतः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ।
इमे हि समरे शूरा हरयः कामरूपिणः ॥₁₉॥

तानरीन्विधमिष्यन्ति शिलापादपवृष्टिभिः ।
कथञ्चित्परिपश्यामस्ते वयं वरुणालयम् ॥₂₀॥

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवित् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥₁॥

तरसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन वा ।
सर्वथा सुसमर्थोऽस्मि सागरस्यास्य लङ्घने ॥₂॥

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद्वीहि मे ।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर ॥₃॥

बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि ।
गुप्ति कर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च ॥₄॥

यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान् ।
सरमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि ॥₅॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्मारुतात्मजः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥₆॥

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्मविधानतः ।
गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥₇॥

परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ।
विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च ॥₈॥

प्रहृष्टा मुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला ।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणसमाकुला ॥₉॥

दृढबद्धकवाटानि महापरिघवन्ति च ।

द्वाराणि विपुलान्यस्याश्चत्वारि सुमहान्ति च ॥₁₀॥

वप्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च ।
आगतं परसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते ॥₁₁॥

द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः ।
शतशो रोचिता वीरैः शतघ्नो रक्षसां गणैः ॥₁₂॥

सौवर्णश्च महान्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः ।
मणिविद्रुमवैदूर्यमुक्ताविचरितान्तरः ॥₁₃॥

सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः ।
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः ॥₁₄॥

द्वारेषु तासां चत्वारः सङ्क्रमाः परमायताः ।
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्दृढसन्धिभिः ॥₁₅॥

त्रायन्ते सङ्क्रमास्तत्र परसैन्यागमे सति ।
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ॥₁₆॥

एकस्त्रकम्प्यो बलवान्सङ्क्रमः सुमहादृढः ।
काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभितः ॥₁₇॥

स्वयं प्रकृतिसम्पन्नो युयुत्सू राम रावणः ।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ॥₁₈॥

लङ्का पुरी निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा ।
नादेयं पार्वतं वन्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम् ॥₁₉॥

स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव ।
नौपथश्चापि नास्त्यत्र निरादेशश्च सर्वतः ॥₂₀॥

शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्वदेवपुरोपमा ।

वाजिवारणसम्पूर्णा लङ्का परमदुर्जया ॥₂₁॥

परिघाश्च शतघ्नश्च यन्त्राणि विविधानि च ।
शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः ॥₂₂॥

अयुतं रक्षसामत्र पश्चिमद्वारमाश्रितम् ।
शूलहस्ता दुराधर्षाः सर्वे खङ्गाग्रयोधिनः ॥₂₃॥

नियुतं रक्षसामत्र दक्षिणद्वारमाश्रितम् ।
चतुरङ्गेण सैन्येन योधास्तत्राप्यनुत्तमाः ॥₂₄॥

प्रयुतं रक्षसामत्र पूर्वद्वारं समाश्रितम् ।
चर्मखङ्गधराः सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ॥₂₅॥

अर्बुदं रक्षसामत्र उत्तरद्वारमाश्रितम् ।
रथिनश्चाश्ववाहाश्च कुलपुत्राः सुपूजिताः ॥₂₆॥

शतं शतसहस्राणां मध्यमं गुल्ममाश्रितम् ।
यातुधाना दुराधर्षाः साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ॥₂₇॥

ते मया सङ्क्रमा भग्नाः परिखाश्चावपूरिताः ।
दग्धा च नगरी लङ्का प्राकाराश्चावसादिताः ॥₂₈॥

येन केन तु मार्गेण तराम वरुणालयम् ।
हतेति नगरी लङ्कां वानरैरवधार्यताम् ॥₂₉॥

अङ्गदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान्पनसो नलः ।
नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव ॥₃₀॥

प्लवमाना हि गत्वा तां रावणस्य महापुरीम् ।
सप्रकारां सभवनामानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥₃₁॥

एवमाज्ञापय क्षिप्रं बलानां सर्वसङ्ग्रहम् ।

मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः ।
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥₁॥

यां निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः ।
क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद्वीमि ते ॥₂॥

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचये ।
युक्तो मुहूर्तो विजयः प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥₃॥

उत्तरा फल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते ।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ॥₄॥

निमित्तानि च धन्यानि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
निहत्य रावणं सीतामानयिष्यामि जानकीम् ॥₅॥

उपरिष्ठाद्धि नयनं स्फुरमाणमिदं मम ।
विजयं समनुप्राप्तं शंसतीव मनोरथम् ॥₆॥

अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम् ।
वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥₇॥

फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा ।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय ॥₈॥

दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम् ।
राक्षसाः परिरक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः ॥₉॥

निम्नेषु वनदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः ।

अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहतं बलम् ॥₁₀॥

सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः ।
कपिसिंहा प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥₁₁॥

गजश्च गिरिसङ्काशो गवयश्च महाबलः ।
गवाक्षश्चाग्रतो यान्तु गवां दृप्ता द्ववर्षभाः ॥₁₂॥

यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतां पतिः ।
पालयन्दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥₁₃॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्त्री गन्धमादनः ।
यातु वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥₁₄॥

यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन् ।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥₁₅॥

अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः ।
सार्वभौमेण भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥₁₆॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षराजो महासत्त्वः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥₁₇॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेश महावीर्यान्वानरान्वानरर्षभः ॥₁₈॥

ते वानरगणाः सर्वे समुत्पत्य युयुत्सवः ।
गुहाभ्यः शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ॥₁₉॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥₂₀॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिरयुतैरपि ।

वारणाभिश्च हरिभिर्ययो परिवृतस्तदा ॥²¹॥

तं यान्तमनुयाति स्म महती हरिवाहिनी ॥²²॥

हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभिपालिताः ।
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
क्ष्वेलन्तो निनदन्तश्च जग्मुर्वे दक्षिणां दिशम् ॥²³॥

भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च ।
उद्वहन्तो महावृक्षान्मञ्जरीपुञ्जधारिणः ॥²⁴॥

अन्योन्यं सहसा दृष्ट्वा निर्वहन्ति क्षिपन्ति च ।
पतन्तश्चोत्पतन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान् ॥²⁵॥

रावणो नो निहन्तव्यः सर्वे च रजनीचराः ।
इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपतः ॥²⁶॥

पुरस्तादृषभो वीरो नीलः कुमुद एव च ।
पथानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह ॥²⁷॥

मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च ।
बहुभिर्बलिभिर्भीमैर्वृताः शत्रुनिबर्हणः ॥²⁸॥

हरिः शतबलिर्वीरः कोटीभिर्दशभिर्वृतः ।
सर्वामेको ह्यवष्टभ्य ररक्ष हरिवाहिनीम् ॥²⁹॥

कोटीशतपरीवारः केसरी पनसो गजः ।
अर्कश्चातिबलः पार्श्वमेकं तस्याभिरक्षति ॥³⁰॥

सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैर्बहुभिरावृतः ।
सुग्रीवं पुरतः कृत्वा जघनं संररक्षतुः ॥³¹॥

तेषां सेनापतिर्वीरो नीलो वानरपुङ्गवः ।
सम्पतन्पततां श्रेष्ठस्तद्वलं पर्यपालयत् ॥³²॥

दरीमिखः प्रजङ्घश्च जम्भोऽथ रभसः कपिः ।
सर्वतश्च ययुर्वीरास्त्वरयन्तः प्लवङ्गमान् ॥³³॥

एवं ते हरिशार्दूला गच्छन्तो बलदर्पिताः ।
अपश्यंस्ते गिरिश्रेष्ठं सह्यं द्रुमलतायुतम् ॥³⁴॥

सागरौघनिभं भीमं तद्वानरबलं महत् ।
निःससर्प महाघोषं भीमवेग इवार्णवः ॥³⁵॥

तस्य दाशरथेः पार्श्वे शूरास्ते कपिकुञ्जराः ।
तूर्णमापुष्पुवुः सर्वे सदश्वा इव चोदिताः ॥³⁶॥

कपिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभते नरर्षभौ ।
महद्भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्राहाभ्यां चन्द्रभास्करो ॥³⁷॥

तमङ्गदगतो रामं लक्ष्मणः शुभया गिरा ।
उवाच प्रतिपूर्णार्थः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ॥³⁸॥

हतामवाप्य वैदेहीं क्षिप्रं हत्वा च रावणम् ।
समृद्धार्थः समृद्धार्थमयोध्यां प्रतियास्यसि ॥³⁹॥

महान्ति च निमित्तानि दिवि भूमौ च राघव ।
शुभान्ति तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये ॥⁴⁰॥

अनु वाति शुभो वायुः सेनां मृदुहितः सुखः ।
पूर्णवल्गुस्वराश्रेमे प्रवदन्ति मृगद्विजाः ॥⁴¹॥

प्रसन्नाश्च दिशः सर्वा विमलश्च दिवाकरः ।
उशना च प्रसन्नार्चिरनु त्वां भार्गवो गतः ॥⁴²॥

ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्चिष्मन्तः प्रकाशन्ते ध्रुवं सर्वे प्रदक्षिणम् ॥⁴³॥

त्रिशङ्कुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः ।
पितामहवरोऽस्माकमिष्वाकूणां महात्मनाम् ॥₄₄॥

विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे ।
नक्षत्रं परमस्माकमिष्वाकूणां महात्मनाम् ॥₄₅॥

नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमभिपीड्यते ।
मूलं मूलवता स्पृष्टं धूप्यते धूमकेतुना ॥₄₆॥

सरं चैतद्विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम् ।
काले कालगृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम् ॥₄₇॥

प्रसन्नाः सुरसाश्चापो वनानि फलवन्ति च ।
प्रवान्त्यभ्यधिकं गन्धा यथर्तुकुसुमा द्रुमाः ॥₄₈॥

व्यूढानि कपिसैन्यानि प्रकाशन्तेऽधिकं प्रभो ।
देवानामिव सैन्यानि सङ्ग्रामे तारकामये ॥₄₉॥

एवमार्य समीक्ष्यैतान्प्रीतो भवितुमर्हसि ।
इति भ्रातरमाश्वास्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥₅₀॥

अथावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ।
ऋक्षवानरशार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैर्वृता ॥₅₁॥

कराग्रैश्चरणाग्रैश्च वानरैरुद्धतं रजः ।
भौममन्तर्दधे लोकं निवार्य सवितुः प्रभाम् ॥₅₂॥

सा स्म याति दिवारात्रं महती हरिवाहिनी ।
हृष्टप्रमुदिता सेना सुग्रीवेणाभिरक्षिता ॥₅₃॥

वनरास्त्वरितं यान्ति सर्वे युद्धाभिनन्दनः ।
मुमोक्षयिषवः सीतां मुहूर्तं क्वापि नासत ॥₅₄॥

ततः पादपसम्बाधं नानामृगसमाकुलम् ।
सह्यपर्वतमासेदुर्मलयं च मही धरम् ॥⁵⁵॥

काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च ।
पश्यन्नपि ययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ॥⁵⁶॥

चम्पकांस्तिलकांश्चूतानशोकान्सिन्दुवारकान् ।
करवीरांश्च तिमिशान्भञ्जन्ति स्म प्लवङ्गमाः ॥⁵⁷॥

फलान्यमृतगन्धीनि मूलानि कुसुमानि च ।
बुभुजुर्वानरास्तत्र पादपानां बलोत्कटाः ॥⁵⁸॥

द्रोणमात्रप्रमाणानि लम्बमानानि वानराः ।
ययुः पिबन्तो हृष्टास्ते मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥⁵⁹॥

पादपानवभञ्जन्तो विकर्षन्तस्तथा लताः ।
विधमन्तो गिरिवरान्प्रययुः प्लवगर्षभाः ॥⁶⁰॥

वृक्षेभ्योऽन्ये तु कपयो नर्दन्तो मधुदर्पिताः ।
अन्ये वृक्षान्प्रपद्यन्ते प्रपतन्त्यपि चापरे ॥⁶¹॥

बभूव वसुधा तैस्तु सम्पूर्णा हरिपुङ्गवैः ।
यथा कमलकेदारैः पक्वैरिव वसुन्धरा ॥⁶²॥

महेन्द्रमथ सम्प्राप्य रामो राजीवलोचनः ।
अध्यारोहन्महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥⁶³॥

ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः ।
कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाशयम् ॥⁶⁴॥

ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥⁶⁵॥

अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥⁶⁶॥

अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः ।
वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥⁶⁷॥

एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् ।
इहेदानीं विचिन्ता सा या न पूर्वं समुत्थिता ॥⁶⁸॥

अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पति ।
न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ॥⁶⁹॥

तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह ।
यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥⁷⁰॥

इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्षितः ।
रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत्तदा ॥⁷¹॥

सम्प्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने ।
स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् ।
गच्छन्तु वानराः शूरा ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥⁷²॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
सेनां न्यवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥⁷³॥

विरराज समीपस्थं सागरस्य तु तद्वलम् ।
मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः ॥⁷⁴॥

वेलावनमुपागम्य ततस्ते हरिपुङ्गवाः ।
विनिविष्टाः परं पारं काङ्क्षमाणा महोदधेः ॥⁷⁵॥

सा महार्णवमासाद्य हृष्टा वानरवाहिनी ।
वायुवेगसमाधूतं पश्यमाना महार्णवम् ॥⁷⁶॥

दूरपारमसम्बाधं रक्षोगणनिषेवितम् ।
पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥⁷⁷॥

चण्डनक्रग्रहं घोरं क्षपादौ दिवसक्षये ।
चन्द्रोदये समाधूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ॥⁷⁸॥

चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिङ्गिलैः ।
दीप्तभोगैरिवाक्कीर्णं भुजङ्गैर्वरुणालयम् ॥⁷⁹॥

अवगाढं महासत्तैर्नानाशैलसमाकुलम् ।
दुर्गं द्रुगममार्गं तमगाधमसुरालयम् ॥⁸⁰॥

मकरैर्नागभोगैश्च विगाढा वातलोहिताः ।
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रवृद्धा जलराशयः ॥⁸¹॥

अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्कराम्बुमनोरगम् ।
सुरारिविषयं घोरं पातालविषमं सदा ॥⁸²॥

सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥⁸³॥

सम्पृक्तं नभसा ह्यम्भः सम्पृक्तं च नभोऽम्भसा ।
तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारा रत्नसमाकुले ॥⁸⁴॥

समुत्पतितमेघस्य वीच्चि मालाकुलस्य च ।
विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥⁸⁵॥

अन्योन्यैराहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिःस्वनाः ।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्यं इवाहवे ॥⁸⁶॥

रत्नौघजलसंनादं विषक्तमिव वायुना ।
उत्पतन्तमिव क्रुद्धं यादोगणसमाकुलम् ॥⁸⁷॥

ददृशुस्ते महात्मानो वाताहतजलाशयम् ।
अनिलोद्धूतमाकाशे प्रवल्गतमिवोर्मिभिः ।
भ्रान्तोर्मिजलसंनादं प्रलोलमिव सागरम् ॥८८॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

सा तु नीलेन विधिवत्स्वारक्षा सुसमाहिता ।
सागरस्योत्तरे तीरे साधु सेना निवेशिता ॥₁॥

मैन्दश्च द्विविधश्चोभौ तत्र वानरपुङ्गवौ ।
विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थं सर्वतो दिशम् ॥₂॥

निविष्टायां तु सेनायां तीरे नदनदीपतेः ।
पार्श्वस्थं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥₃॥

शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते ॥₄॥

न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ॥₅॥

वाहि वात यतः कन्या तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश ।
ह्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः ॥₆॥

तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये ।
हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत् ॥₇॥

तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविपुलार्चिषा ।
रात्रिं दिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना ॥₈॥

अवगाह्यार्णवं स्वप्स्ये सौमित्रे भवता विना ।
कथञ्चित्प्रज्वलन्कामः समासुप्तं जले दहेत् ॥₉॥

बह्वेतत्कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम् ।

यदहं सा च वामोरुरेकां धरणिमाश्रितौ ॥₁₀॥

केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः ।
उपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम् ॥₁₁॥

कदा तु खलु सुस्त्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम् ।
विजित्य शत्रून् द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम् ॥₁₂॥

कदा नु चारुबिम्बौष्ठं तस्याः पद्ममिवाननम् ।
ईषदुन्नम्य पास्यामि रसायनमिवातुरः ॥₁₃॥

तौ तस्याः संहतौ पीनौ स्तनौ तालफलोपमौ ।
कदा नु खलु सोत्कम्पौ हसन्त्या मां भजिष्यतः ॥₁₄॥

सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती ।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति ॥₁₅॥

कदा विक्षोभ्य रक्षांसि सा विधूयोत्पतिष्यति ।
विधूय जलदानीलाञ्छशिलेखा शरत्स्त्रिव ॥₁₆॥

स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च ।
भूयस्तनुतरा सीता देशकालविपर्ययात् ॥₁₇॥

कदा नु राक्षसेन्द्रस्य निधायोरसि सायकान् ।
सीतां प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम् ॥₁₈॥

कदा नु खलु मां साध्वी सीतामरसुतोपमा ।
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं जलम् ॥₁₉॥

कदा शोकमिमं घोरं मैथिली विप्रयोगजम् ।
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा ॥₂₀॥

एवं विलपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमतः ।

दिनक्षयान्मन्दवपुर्भास्करोऽस्तमुपागमत् ॥₂₁॥

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः सन्ध्यामुपासत ।
स्मरन्कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भवावहम् ।
 राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणैव महात्मना ।
 अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्हिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥₁॥

धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी ।
 तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी ॥₂॥

प्रसादो धर्षितश्चैत्यः प्रवरा राक्षसा हताः ।
 आविला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता ॥₃॥

किं करिष्यामि भद्रं वः किं वा युक्तमनन्तरम् ।
 उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत् ॥₄॥

मन्त्रमूलं हि विजयं प्राहुरार्या मनस्विनः ।
 तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः ॥₅॥

त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः ।
 तेषां तु समवेतानां गुणदोषं वदाम्यहम् ॥₆॥

मन्त्रिभिर्हितसंयुक्तेः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ।
 मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वा हितैः ॥₇॥

सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान्प्रवर्तयेत् ।
 दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥₈॥

एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ।
 एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥₉॥

गुणदोषावनिश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् ।
करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत्स नराधमः ॥₁₀॥

यथेमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमाः ।
एवं मन्त्रोऽपि विज्ञेय उत्तमाधममध्यमः ॥₁₁॥

ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरस्तास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ॥₁₂॥

बह्व्योऽपि मतयो गत्वा मन्त्रिणो ह्यर्थनिर्णये ।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ॥₁₃॥

अन्योन्यमतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ।
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ॥₁₄॥

तस्मात्सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मन्त्रिसत्तमाः ।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तामेतत्कृत्यतमं मम ॥₁₅॥

वानराणां हि वीराणां सहस्रैः परिवारितः ।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥₁₆॥

तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् ।
तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः ॥₁₇॥

अस्मिन्नेवङ्गते कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्यतां मम ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥₁॥

राजन्यरिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टससङ्कुलम् ।
सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते भवान् ॥₂॥

कैलासशिखरावासी यक्षैर्बहुभिरावृतः ।
सुमहत्कदनं कृत्वा वश्यस्ते धनदः कृतः ॥₃॥

स महेश्वरसख्येन श्लाघमानस्त्वया विभो ।
निर्जितः समरे रोषाल्लोकपालो महाबलः ॥₄॥

विनिहत्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य च विगृह्य च ।
त्वया कैलासशिखराद्विमानमिदमाहृतम् ॥₅॥

मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता ।
दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुङ्गव ॥₆॥

दानवेन्द्रो मधुर्नाम वीर्योत्सिक्तो दुरासदः ।
विगृह्य वशमानीतः कुम्भीनस्याः सुखावहः ॥₇॥

निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् ।
वासुकिस्तक्षकः शङ्खो जटी च वशमाहृताः ॥₈॥

अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुनः ।
त्वया संवत्सरं युद्धा समरे दानवा विभो ॥₉॥

स्वबलं समुपाश्रित्य नीता वशमरिन्दम ।

मायाश्चाधिगतास्तत्र बहवो राक्षसाधिप ॥₁₀॥

शूराश्च बलवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे ।
निर्जितास्ते महाबाहो चतुर्विधबलानुगाः ॥₁₁॥

मृत्युदण्डमहाग्राहं शात्मलिद्धीपमण्डितम् ।
अवगाह्य त्वया राजन्यमस्य बलसागरम् ॥₁₂॥

जयश्च विप्लुलः प्राप्तो मृत्युश्च प्रतिषेधितः ।
सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकास्तत्र सुतोषिताः ॥₁₃॥

क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
आसीद्वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥₁₄॥

तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन्हताः परमदुर्जयाः ॥₁₅॥

राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताञ्जनात् ।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

ततो नीलाम्बुदनिभः प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा ॥₁॥

देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः किं पुनर्वानरा रणे ॥₂॥

सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता ।
न हि मे जीवतो गच्छेज्जीवन्स वनगोचरः ॥₃॥

सर्वा सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान् ॥₄॥

रक्षां चैव विधास्यामि वानराद्रजनीचर ।
नागमिष्यति ते दुःखं किञ्चिदात्मापराधजम् ॥₅॥

अब्रवीच्च सुसङ्क्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः ।
इदं न क्षमणीयं हि सर्वेषां नः प्रधर्षणम् ॥₆॥

अयं परिभवो भूयः पुरस्यान्तःपुरस्य च ।
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेन्द्रप्रधर्षणम् ॥₇॥

अस्मिन्मुहूर्ते हबैको निवर्तिष्यामि वानरान् ।
प्रविष्टान्सागरं भीममम्बरं वा रसातलम् ॥₈॥

ततोऽब्रवीत्सुसङ्क्रुद्धो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
प्रगृह्य परिघं घोरं मांसशोणितरूपितम् ॥₉॥

किं वो हनुमता कार्यं कृपणेन तपस्विना ।

रामे तिष्ठति दुर्धर्षे सुग्रीवे सहलक्ष्मणे ॥₁₀॥

अद्य रामं ससुग्रीवं परिघेण सलक्ष्मणम् ।
आगमिष्यामि हृत्त्रैको विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥₁₁॥

कौम्भकर्णिस्ततो वीरो निकुम्भो नाम वीर्यवान् ।
अब्रवीत्परमकुर्द्धो रावणं लोकरावणम् ॥₁₂॥

सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन सङ्गताः ।
अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥₁₃॥

ततो वज्रहनुर्नाम राक्षसः पर्वतोपमः ।
क्रुद्धः परिलिहन्वक्तं जिह्वया वाक्यमब्रवीत् ॥₁₄॥

स्वैरं कुर्वन्तु कार्याणि भवन्तो विगतज्वराः ।
एकोऽहं भक्षयिष्यामि तान्सर्वान्हरियूथपान् ॥₁₅॥

स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तु मधुवारुणीम् ।
अहमेको हनिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् ।
साङ्गदं च हनूमन्तं रामं च रणकुञ्जरम् ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

ततो निकुम्भो रभसः सूर्यशत्रुर्महाबलः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च महापार्श्वो महोअरः ॥₁॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
इन्द्रजिघ्र महातेजा बलवान्रावणात्मजः ॥₂॥

प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धूम्राक्षश्चातिकायश्च दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥₃॥

परिधान्पट्टसान्प्रासाञ्शक्तिशूलपरश्वधान् ।
चापानि च सबाणानि खड्गांश्च विपुलाञ्शितान् ॥₄॥

प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः ।
अब्रुवन्नावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा ॥₅॥

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता ॥₆॥

तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥₇॥

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते ।
तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥₈॥

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च ।
विक्रमास्तात सिध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः ॥₉॥

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् ।

जितरोषं दुराधर्षं प्रधर्षयितुमिच्छथ ॥₁₀॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् ।
कृतं हनुमता कर्म दुष्करं तर्कयेत कः ॥₁₁॥

बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः ।
परेषां सहसावज्ञा न कर्तव्या कथञ्चन ॥₁₂॥

किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा ।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्या यशस्विनः ॥₁₃॥

खरो यद्यतिवृत्तस्तु रामेण निहतो रणे ।
अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथा बलम् ॥₁₄॥

एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद्भवेत् ।
आहता सा परित्याज्या कलहार्थं कृते न किम् ॥₁₅॥

न नः क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना ।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥₁₆॥

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम् ।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली ॥₁₇॥

यावत्सुघोरा महती दुर्धर्षा हरिवाहिनी ।
नावस्कन्दति नो लङ्कां तावत्सीता प्रदीयताम् ॥₁₈॥

विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः ।
रामस्य दयिता पत्नी न स्वयं यदि दीयते ॥₁₉॥

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम ।
हितं पथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥₂₀॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसंनिभान्

नवाग्रपुङ्खान्सुदृढानृपात्मजः ।
सृजत्यमोघान्विशिखान्वधाय ते
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥₂₁॥

त्यजस्व कोपं सुखधर्मनाशनम्
भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम् ।
प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम् ।
अब्रवीत्पुरुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥₁॥

वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण वा ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥₂॥

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस ।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥₃॥

प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस ।
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥₄॥

नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥₅॥

श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने क्वचित् ।
पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणु तान्गदतो मम ॥₆॥

नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥₇॥

उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः ।
कृत्स्नाद्भयाज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥₈॥

विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ब्राह्मणे दमः ।
विद्यते स्त्रीषु चापत्यं विद्यते ज्ञातितो भयम् ॥₉॥

ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः ।

ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥₁₀॥

अन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन्मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसनम् ॥₁₁॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः ।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥₁₂॥

अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः ।
अन्तरिक्षगतः श्रीमान्भ्रातरं राक्षसाधिपम् ॥₁₃॥

स त्वं भ्रातासि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ।
इदं तु परुषं वाक्यं न क्षमाम्यनृतं तव ॥₁₄॥

सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन ।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥₁₅॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥₁₆॥

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणा ।
न नश्यन्तमुपेक्षेयं प्रदीप्तं शरणं यथा ॥₁₇॥

दीप्तपावकसङ्काशैः शितैः काञ्चनभूषणैः ।
न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ॥₁₈॥

शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ।
कालाभिपन्ना सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥₁₉॥

आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥₂₀॥

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा

न रोचते ते वचनं निशाचर ।
परीतकाला हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥₁॥

तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतहृदाम् ।
गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः ॥₂॥

तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः ।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चित्तयामास बुद्धिमान् ॥₃॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु वानरांस्तानुवाच ह ।
हनूमत्प्रमुखान्सर्वानिदं वचनमुत्तमम् ॥₄॥

एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ।
राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान्हन्तुं न संशयः ॥₅॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः ।
सालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥₆॥

शीघ्रं व्यादिश नो राजन्वधायैषां दुरात्मनाम् ।
निपतन्तु हताश्चैते धरण्यामल्पजीविताः ॥₇॥

तेषां सम्भाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः ।
उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत ॥₈॥

उवाच च महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान् ।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य खस्थ एव विभीषणः ॥₉॥

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ।

तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥₁₀॥

तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम् ।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥₁₁॥

तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम् ।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥₁₂॥

स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः ।
उच्यमानो हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥₁₃॥

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥₁₄॥

सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने ।
निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थितम् ॥₁₅॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः ।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥₁₆॥

रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥₁₇॥

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि विभीषणम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥₁₈॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या सन्दिष्टोऽयमुपस्थितः ।
प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि राघव ॥₁₉॥

बध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥₂₀॥

एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः ।

वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥²¹॥

सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः ।
समीपस्थानुवाचेदं हनूमत्प्रमुखान्हरीन् ॥²²॥

यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति ।
वाक्यं हेतुमदत्यर्थं भवद्भिरपि तच्छ्रुतम् ॥²³॥

सुहृदा ह्यर्थकृच्छेषु युक्तं बुद्धिमता सता ।
समर्थेनापि सन्देष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥²⁴॥

इत्येवं परिपृष्टास्ते स्वं स्वं मतमतन्द्रिताः ।
सोपचारं तदा राममूचुर्हितचिकीर्षवः ॥²⁵॥

अज्ञातं नास्ति ते किञ्चित्पि लोकेषु राघव ।
आत्मानं पूजयन्नाम पृच्छस्यस्मान्सुहृत्तया ॥²⁶॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो धार्मिको दृढविक्रमः ।
परीक्ष्य कारा स्मृतिमान्निसृष्टात्मा सुहृत्सु च ॥²⁷॥

तस्मादेकैकशस्तावद्भवन्तु सचिवास्तव ।
हेतुतो मतिसम्पन्नाः समर्थाश्च पुनः पुनः ॥²⁸॥

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः ।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः ॥²⁹॥

शत्रोः सकाशात्सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्य एव हि ।
विश्वासयोग्यः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः ॥³⁰॥

छादयित्वात्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः ।
प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान्भवेत् ॥³¹॥

अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह ।

गुणतः सङ्ग्रहं कुर्यादोषतस्तु विसर्जयेत् ॥³²॥

यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।
गुणान्वापि बहूञ्जात्वा सङ्ग्रहः क्रियतां नृप ॥³³॥

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमस्मिन्नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम् ॥³⁴॥

प्रणिधाय हि चारेण यथावत्सूक्ष्मबुद्धिना ।
परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्यायं परिग्रहः ॥³⁵॥

जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः ।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद्दोषवर्जितम् ॥³⁶॥

बद्धवैराद्य पापाद्य राक्षसेन्द्राद्विभीषणः ।
अदेश काले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥³⁷॥

ततो मैन्दस्तु सम्प्रेक्ष्य नयापनयकोविदः ।
वाक्यं वचनसम्पन्नो बभाषे हेतुमत्तरम् ॥³⁸॥

वचनं नाम तस्यैष रावणस्य विभीषणः ।
पृच्छ्यतां मधुरेणायं शनैर्नरवरेश्वर ॥³⁹॥

भावमस्य तु विज्ञाय ततस्तत्त्वं करिष्यसि ।
यदि दृष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ ॥⁴⁰॥

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान्सचिवोत्तमः ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु ॥⁴¹॥

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥⁴²॥

न वादान्नापि सङ्घर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः ।

वक्ष्यामि वचनं राजन्यथार्थं रामगौरवात् ॥⁴³॥

अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव ।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया न ह्युपपद्यते ॥⁴⁴॥

ऋते नियोगात्सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते ।
सहसा विनियोगो हि दोषवान्प्रतिभाति मे ॥⁴⁵॥

चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव ।
अर्थस्यासम्भवात्तत्र कारणं नोपपद्यते ॥⁴⁶॥

अदेश काले सम्प्राप्त इत्ययं यद्विभीषणः ।
विवक्षा चात्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथा मति ॥⁴⁷॥

स एष देशः कालश्च भवतीह यथा तथा ।
पुरुषात्पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि ॥⁴⁸॥

दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा ब्रूयि ।
युक्तमागमनं तस्य सदृशं तस्य बुद्धितः ॥⁴⁹॥

अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन्मृच्छतामिति ।
यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥⁵⁰॥

पृच्छमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान्वचः ।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्यपृष्टं सुखागतम् ॥⁵¹॥

अशक्यः सहसा राजन्भावो वेत्तुं परस्य वै ।
अन्तः स्वभावैर्गीतैस्तेर्नैपुण्यं पश्यता भृशम् ॥⁵²॥

न ब्रूयन् ब्रूवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता ।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥⁵³॥

अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।

न चास्य दुष्टा वाक्कापि तस्मान्नास्तीह संशयः ॥⁵⁴॥

आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥⁵⁵॥

देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर ।
सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम् ॥⁵⁶॥

उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम् ।
वालिनश्च वधं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम् ॥⁵⁷॥

राज्यं प्रार्थयमानश्च बुद्धिपूर्वमिहागतः ।
एतावत्तु पुरस्कृत्य युज्यते त्वस्य सङ्ग्रहः ॥⁵⁸॥

यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्यार्जवं प्रति ।
त्वं प्रमाणं तु शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥⁵⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम् ॥₁॥

ममापि तु विवक्षास्ति काचित्प्रति विभीषणम् ।
श्रुतमिच्छामि तत्सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥₂॥

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥₃॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिचोदितः ॥₄॥

किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे ।
यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान्सपथे स्थितः ॥₅॥

मम चाप्यन्तरात्मायं शुद्धिं वेत्ति विभीषणम् ।
अनुमनाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥₆॥

तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥₇॥

स सुग्रीवस्य तद्वाक्यं रामः श्रुत्वा विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ॥₈॥

सुदुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं ममाशक्तः कथञ्चन ॥₉॥

पिशाचान्दानवान्यक्षान्पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।

अङ्गुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥₁₀॥

श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः ।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ॥₁₁॥

स हि तं प्रतिजग्राह भार्या हर्तारमागतम् ।
कपोतो वानरश्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः ॥₁₂॥

ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ।
शृणु गाथां पुरा गीतां धर्मिष्ठां सत्यवादिना ॥₁₃॥

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परं पत ॥₁₄॥

आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः ।
अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥₁₅॥

स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथातच्च तत्पापं लोकगर्हितम् ॥₁₆॥

विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणागतः ।
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥₁₇॥

एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥₁₈॥

करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम् ।
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात्तु फलोदये ॥₁₉॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्गतं मम ॥₂₀॥

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।

विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥₂₁॥

ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य तद्-
धरीश्वरेणाभिहितं नरेश्वरः ।
विभीषणेनाशु जगाम सङ्गमम्
पतत्रिराजेन यथा पुरन्दरः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

राघवेणाभये दत्ते संनतो रावणानुजः ।
खात्पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह ॥₁॥

स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ।
पादयोः शरणान्वेषी चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥₂॥

अब्रवीच्च तदा रामं वाक्यं तत्र विभीषणः ।
धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम् ॥₃॥

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ।
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ॥₄॥

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ।
भवद्गतं मे राज्यं च जीवितं च सुखानि च ॥₅॥

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे ।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥₆॥

इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवीलक्ष्मणं प्रीतः समुद्राञ्जलमानय ॥₇॥

तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥₈॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं रामशासनात् ॥₉॥

तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः ।

प्रचुक्रुशुर्महानादान्साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥₁₀॥

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् ।
कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम् ॥₁₁॥

उपायैरभिगच्छामो यथा नदनदीपतिम् ।
तराम तरसा सर्वे ससैन्या वरुणालयम् ॥₁₂॥

एवमुक्तस्तु धर्मज्ञः प्रत्युवाच विभीषणः ।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥₁₃॥

खानितः सगरेणायमप्रमेयो महोदधिः ।
कर्तुमर्हति रामस्य ज्ञातेः कार्यं महोदधिः ॥₁₄॥

एवं विभीषणेनोक्ते राक्षसेन विपश्चिता ।
प्रकृत्या धर्मशीलस्य राघवस्याप्यरोचत ॥₁₅॥

स लक्ष्मणं महातेजाः सुग्रीवं च हरीश्वरम् ।
सत्क्रियार्थं क्रियादक्षः स्मितपूर्वमुवाच ह ॥₁₆॥

विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ।
ब्रूहि त्वं सहसुग्रीवस्तवापि यदि रोचते ॥₁₇॥

सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान्मन्त्रविचक्षणः ।
उभाभ्यां सम्प्रधार्यार्यं रोचते यत्तदुच्यताम् ॥₁₈॥

एवमुक्तौ तु तौ वीरावुभौ सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
समुदाचार संयुक्तमिदं वचनमूचतुः ॥₁₉॥

किमर्थं नो नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव ।
विभीषणेन यत्तूक्तमस्मिन्काले सुखावहम् ॥₂₀॥

अबद्धा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन्वरुणालये ।

लङ्का नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥₂₁॥

विभीषणस्य शूरस्य यथार्थं क्रियतां वचः ।
अलं कालात्ययं कृत्वा समुद्रोऽयं नियुज्यताम् ॥₂₂॥

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः ।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले ।
नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोऽतिचक्रमुः ॥₁॥

न च दर्शयते मन्दस्तदा रामस्य सागरः ।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥₂॥

समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः ।
समीपस्थमुवाचेदं लक्ष्मणं शुभलक्ष्मणम् ॥₃॥

पश्य तावदनार्यस्य पूज्यमानस्य लक्ष्मण ।
अवलेपं समुद्रस्य न दर्शयति यत्स्वयम् ॥₄॥

प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ।
असामर्थ्यं फलन्त्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ॥₅॥

आत्मप्रशंसिनं दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ।
सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः सत्कुरुते नरम् ॥₆॥

न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ।
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूधनि ॥₇॥

अद्य मद्भाणनिर्भिन्नैर्मकरैर्मकरालयम् ।
निरुद्धतोयं सौमित्रे प्लवद्भिः पश्य सर्वतः ॥₈॥

महाभोगानि मत्स्यानां करिणां च करानिह ।
भोगांश्च पश्य नागानां मया भिन्नानि लक्ष्मण ॥₉॥

सशङ्खशुक्तिका जालं समीनमकरं शरैः ।

अद्य युद्धेन महता समुद्रं परिशोषये ॥₁₀॥

क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः ।
असमर्थं विजानाति धिक्क्षमामीदृशे जने ॥₁₁॥

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
अद्याक्षोभ्यमपि क्रुद्धः क्षोभयिष्यामि सागरम् ॥₁₂॥

वेलासु कृतमर्यादं सहसोर्मिसमाकुलम् ।
निर्मर्यादं करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ॥₁₃॥

एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥₁₄॥

सम्पीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिखानुग्रान्वज्राणीव शतक्रतुः ॥₁₅॥

ते ज्वलन्तो महावेगास्तेजसा सायकोत्तमाः ।
प्रविशन्ति समुद्रस्य सलिलं त्रस्तपन्नगम् ॥₁₆॥

ततो वेगः समुद्रस्य सनक्रमकरो महान् ।
सम्बभूव महाघोरः समारुतरवस्तदा ॥₁₇॥

महोर्मिमालाविततः शङ्खशुक्तिसमाकुलः ।
सधूमपरिवृत्तोर्मिः सहसाभून्महोदधिः ॥₁₈॥

व्यथिताः पन्नगाश्चासन्दीप्तास्या दीप्तलोचनाः ।
दानवाश्च महावीर्याः पातालतलवासिनः ॥₁₉॥

ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तदा ।
विन्ध्यमन्दरसङ्काशाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥₂₀॥

आघूर्णिततरङ्गौघः सम्भ्रान्तोरगराक्षसः ।

उद्धर्तित महाग्राहः संवृत्तः सलिलाशयः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

ततो मध्यात्समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः ।
उदयन्हि महाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः ।
पन्नगैः सह दीप्तास्यैः समुद्रः प्रत्यदृश्यत ॥₁॥

स्निग्धवैदूर्यसङ्काशो जाम्बूनदविभूषितः ।
रक्तमाल्याम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः ॥₂॥

सागरः समतिक्रम्य पूर्वमामन्त्य वीर्यवान् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं शरपाणिनम् ॥₃॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च राघवः ।
स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ॥₄॥

तत्स्वभावो ममाप्येष यदगाधोऽहमप्लवः ।
विकारस्तु भवेद्वाध एतत्ते प्रवदाम्यहम् ॥₅॥

न कामान्न च लोभाद्वा न भयात्पार्थिवात्मज ।
ग्राहनक्राकुलजलं स्तम्भयेयं कथञ्चन ॥₆॥

विधास्ये राम येनापि विषहिष्ये ह्यहं तथा ।
ग्राहा न प्रहरिष्यन्ति यावत्सेना तरिष्यति ॥₇॥

अयं सौम्य नलो नाम तनुजो विश्वकर्मणः ।
पित्रा दत्तवरः श्रीमान्प्रतिमो विश्वकर्मणः ॥₈॥

एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः ।
तमहं धारयिष्यामि तथा ह्येष यथा पिता ॥₉॥

एवमुक्तोदधिर्नष्टः समुत्थाय नलस्ततः ।
अब्रवीद्वानरश्रेष्ठो वाक्यं रामं महाबलः ॥₁₀॥

अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे वरुणालये ।
पितुः सामर्थ्यमास्थाय तच्चमाह महोदधिः ॥₁₁॥

मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा ।
औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा ॥₁₂॥

न चाप्यहमनुक्तो वै प्रब्रूयामात्मनो गुणान् ।
काममद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः ॥₁₃॥

ततो निसृष्टरामेण सर्वतो हरियूथपाः ।
अभिपेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥₁₄॥

ते नगान्नगसङ्काशाः शाखामृगगणर्षभाः ।
बभञ्जुर्वानरास्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥₁₅॥

ते सालैश्चाश्वकर्णेश्च धवैर्वशैश्च वानराः ।
कुटजैर्जुनैस्तालैस्तिकलैस्तिमिशैरपि ॥₁₆॥

बिल्वकैः सप्तपर्णेश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ।
चूतैश्चाशोकवृक्षैश्च सागरं समपूरयन् ॥₁₇॥

समूलांश्च विमूलांश्च पादपान्हरिसत्तमाः ।
इन्द्रकेतूनिवोद्यम्य प्रजहुर्हरयस्तरून् ॥₁₈॥

प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धतम् ।
समुत्पतितमाकाशमपासर्पत्ततस्ततः ॥₁₉॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः ॥₂₀॥

शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां तत्र पात्यताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ ॥₂₁॥

स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये ।
शुशुभे सुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥₂₂॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥₂₃॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
तमचिन्त्यमसह्यं च अद्भुतं लोमहर्षणम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ॥₂₄॥

तानि कोटिसहस्राणि वानराणां महौजसाम् ।
बध्नन्तः सागरे सेतुं जग्मुः पारं महोदधेः ॥₂₅॥

विशालः सुकृतः श्रीमान्सुभूमिः सुसमाहितः ।
अशोभत महासेतुः सीमन्त इव सागरे ॥₂₆॥

ततः परे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः ।
परेषामभिघतार्थमतिष्ठत्सचिवैः सह ॥₂₇॥

अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्नामः सलक्ष्मणः ।
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ॥₂₈॥

अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवङ्गमाः ।
सलिले प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये न लेभिरे ।
केचिद्वैहायस गताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः ॥₂₉॥

घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥₃₀॥

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नल सेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ॥₃₁॥

तदद्भुतं राघव कर्म दुष्करम्
समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः ।
उपेत्य रामं सहिता महर्षिभिः
समभ्यषिञ्चन्सुशुभैर्जलैः पृथक् ॥₃₂॥

जयस्व शत्रून्नरदेव मेदिनीम्
ससागरां पालय शाश्वतीः समाः ।
इतीव रामं नरदेवसत्कृतम्
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे ।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥₁॥

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् ।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥₂॥

सागरे सेतुबन्धं तु न श्रद्धयां कथञ्चन ।
अवश्यं चापि सङ्क्षोभं तन्मया वानरं बलम् ॥₃॥

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवङ्गमाः ॥₄॥

मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सम्मताः ।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः ॥₅॥

स च सेतुर्यथा बद्धः सागरे सलिलार्णवे ।
निवेशश्च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥₆॥

रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथ ॥₇॥

कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महौजसाम् ।
एतज्ज्ञात्वा यथातत्त्वं शीघ्रमगन्तुमर्हथः ॥₈॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥₉॥

ततस्तद्वानरं सैन्यमचिन्त्यं लोमहर्षणम् ।

सङ्ख्यातुं नाध्यगच्छेतां तदा तौ शुकसारणौ ॥₁₀॥

तत्स्थितं पर्वताग्रेषु निर्दरेषु गुहासु च ।
समुद्रस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च ॥₁₁॥

तरमाणं च तीर्णं च तर्तुकामं च सर्वशः ।
निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् ॥₁₂॥

तौ ददर्श महातेजाः प्रच्छन्नौ च विभीषणः ।
आचक्षेऽथ रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरंजयौ ॥₁₃॥

तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तदा ।
कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥₁₄॥

आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ ।
परिज्ञातुं बलं कृत्स्नं तवेदं रघुनन्दन ॥₁₅॥

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥₁₆॥

यदि दृष्टं बलं कृत्स्नं वयं वा सुसमीक्षिताः ।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥₁₇॥

प्रविश्य नगरीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः ।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥₁₈॥

यद्वलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः ॥₁₉॥

श्वःकाले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥₂₀॥

घोरं रोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण ।
श्वःकाले वज्रवान्वज्रं दानवेष्विव वासवः ॥₂₁॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् ॥₂₂॥

विभीषणगृहीतौ तु वधार्हौ राक्षसेश्वर ।
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ॥₂₃॥

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ।
लोकपालोपमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः ॥₂₄॥

रामो दाशरथिः श्रीमाँलक्ष्मणश्च विभीषणः ।
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः ॥₂₅॥

एते शक्ताः पुरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
उत्पाट्य सङ्क्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥₂₆॥

यादृशं तस्य रामस्य रूपं प्रहरणानि च ।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥₂₇॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥₂₈॥

प्रहृष्टरूपा ध्वजिनी वनौकसाम्
महात्मनां सम्प्रति योद्धुमिच्छताम् ।
अलं विरोधेन शमो विधीयताम्
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

तद्वचः पथ्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम् ।
निशम्य रावणो राजा प्रत्यभाषत सारणम् ॥₁॥

यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥₂॥

त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिर्निर्जितो भृशम् ।
प्रतिप्रदानमद्यैव सीतायाः साधु मन्यसे ।
को हि नाम सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति ॥₃॥

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
आरुरोह ततः श्रीमान्प्रासादं हिमपाण्डुरम् ।
बहुतालसमुत्सेधं रावणोऽथ दिदृक्षया ॥₄॥

ताभ्यां चराभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्छितः ।
पश्यमानः समुद्रं च पर्वतांश्च वनानि च ।
ददर्श पृथिवीदेशं सुसम्पूर्णं प्लवङ्गमैः ॥₅॥

तदपारमसङ्ख्येयं वानराणां महद्वलम् ।
आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम् ॥₆॥

एषां वानरमुख्यानां के शूराः के महाबलाः ।
के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः ॥₇॥

केषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः ।
सारणाचक्ष्व मे सर्वं के प्रधानाः प्लवङ्गमाः ॥₈॥

सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः ।
आचक्ष्वेऽथ मुख्यज्ञो मुख्यास्तांस्तु वनौकसः ॥₉॥

एष योऽभिमुखो लङ्कां नर्दस्तिष्ठति वानरः ।
यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः ॥₁₀॥

यस्य घोषेण महता सप्राकारा सतोरणा ।
लङ्का प्रवेपते सर्वा सशैलवनकानना ॥₁₁॥

सर्वशाखामृगेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
बलाग्रे तिष्ठते वीरो नीलो नामैष यूथपः ॥₁₂॥

बाहू प्रगृह्य यः पद्भ्यां महीं गच्छति वीर्यवान् ।
लङ्कामभिमुखः कोपादभीक्ष्णं च विजृम्भते ॥₁₃॥

गिरिशृङ्गप्रतीकाशः पद्मकिञ्जल्कसंनिभः ।
स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः ॥₁₄॥

यस्य लाङ्गूलशब्देन स्वनन्तीव दिशो दश ।
एष वानरराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
यौवराज्येऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे ॥₁₅॥

ये तु विष्टभ्य गात्राणि क्ष्वेडयन्ति नदन्ति च ।
उत्थाय च विजृम्भन्ते क्रोधेन हरिपुङ्गवाः ॥₁₆॥

एते दुष्प्रसहा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः ।
अष्टौ शतसहस्राणि दशकोटिशतानि च ॥₁₇॥

य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्दनवासिनः ।
एष आशंसते लङ्कां स्वनानीकेन मर्दितुम् ॥₁₈॥

श्वेतो रजतसङ्काशः सबलो भीमविक्रमः ।
बुद्धिमान्वानरः शूरस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥₁₉॥

तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः ।
विभजन्वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन् ॥₂₀॥

यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्येति पर्वतम् ।
नाम्ना सङ्कोचनो नाम नानानगयुतो गिरिः ॥₂₁॥

तत्र राज्यं प्रशास्त्येष कुमुदो नाम यूथपः ।
योऽसौ शतसहस्राणां सहस्रं परिकर्षति ॥₂₂॥

यस्य वाला बहुव्यामा दीर्घलाङ्गूलमाश्रिताः ।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥₂₃॥

अदीनो रोषणश्चण्डः सङ्ग्राममभिकाङ्क्षति ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥₂₄॥

यस्त्वेष सिंहसङ्काशः कपिलो दीर्घकेसरः ।
निभृतः प्रेक्षते लङ्कां दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥₂₅॥

विन्ध्यं कृष्णगिरिं सह्यं पर्वतं च सुदर्शनम् ।
राजन्सततमध्यास्ते रम्भो नामैष यूथपः ॥₂₆॥

शतं शतसहस्राणां त्रिंशच्च हरियूथपाः ।
परिवार्यानुगच्छन्ति लङ्कां मर्दितुमोजसा ॥₂₇॥

यस्तु कर्णो विवृणुते जृम्भते च पुनः पुनः ।
न च संविजते मृत्योर्न च यूथाद्विधावति ॥₂₈॥

महाबलो वीतभयो रम्यं सात्वेय पर्वतम् ।
राजन्सततमध्यास्ते शरभो नाम यूथपः ॥₂₉॥

एतस्य बलिनः सर्वे विहारा नाम यूथपाः ।
राजञ्शतसहस्राणि चत्वारिंशत्तथैव च ॥₃₀॥

यस्तु मेघ इवाकाशं महानावृत्य तिष्ठति ।
मध्ये वानरवीराणां सुराणामिव वासवः ॥₃₁॥

भेरीणामिव संनादो यस्यैष श्रूयते महान् ।
घोरः शाखामृगेन्द्राणां सङ्ग्राममभिकाङ्क्षताम् ॥³²॥

एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम् ।
युद्धे दुष्प्रसहो नित्यं पनसो नाम यूथपः ॥³³॥

एनं शतसहस्राणां शतार्धं पर्युपासते ।
यूथपा यूथपश्रेष्ठं येषां यूथानि भागशः ॥³⁴॥

यस्तु भीमां प्रवल्गन्तीं चमूं तिष्ठति शोभयन् ।
स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः ॥³⁵॥

एष दर्दरसङ्काशो विनतो नाम यूथपः ।
पिबंश्चरति पर्णाशां नदीनामुत्तमां नदीम् ॥³⁶॥

षष्टिः शतसहस्राणि बलमस्य प्लवङ्गमाः ।
त्वामाह्वयति युद्धाय क्रथनो नाम यूथपः ॥³⁷॥

यस्तु गैरिकवर्णाभं वपुः पुष्यति वानरः ।
गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधादभिवर्तते ॥³⁸॥

एनं शतसहस्राणि सप्ततिः पर्युपासते ।
एष आशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥³⁹॥

एते दुष्प्रसहा घोरा बलिनः कामरूपिणः ।
यूथपा यूथपश्रेष्ठा येषां सङ्ख्या न विद्यते ॥⁴⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥अष्टादशः सर्गः॥

तांस्तु तेऽहं प्रवक्ष्यामि प्रेक्षमाणस्य यूथपान् ।
राघवार्थे पराक्रान्ता ये न रक्षन्ति जीवितम् ॥₁॥

स्निग्धा यस्य बहुश्यामा बाला लाङ्गूलमाश्रिताः ।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥₂॥

प्रगृहीताः प्रकाशन्ते सूर्यस्येव मरीचयः ।
पृथिव्यां चानुकृष्यन्ते हरो नामैष यूथपः ॥₃॥

यं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।
द्रुमानुद्यम्य सहिता लङ्कारोहणतत्पराः ॥₄॥

एष कोटीसहस्रेण वानराणां महौजसाम् ।
आकाङ्क्षते त्वां सङ्ग्रामे जेतुं परपुरंजय ॥₅॥

नीलानिव महामेघांस्तिष्ठतो यांस्तु पश्यसि ।
असिताञ्जनसङ्काशान्युद्धे सत्यपराक्रमान् ॥₆॥

नखदंष्ट्रायुधान्वीरांस्तीक्ष्णकोपान्भयावहान् ।
असङ्ख्येयाननिर्देश्यान्परं पारमिवोदधेः ॥₇॥

पर्वतेषु च ये केचिद्विषमेषु नदीषु च ।
एते त्वामभिवर्तन्ते राजनृष्काः सुदारुणाः ॥₈॥

एषां मध्ये स्थितो राजन्भीमाक्षो भीमदर्शनः ।
पर्जन्य इव जीमूतैः समन्तात्परिवारितः ॥₉॥

ऋक्षवन्तं गिरिश्रेष्ठमध्यास्ते नर्मदां पिबन् ।

सर्वक्षाणामधिपतिर्धूम्रो नामैष यूथपः ॥₁₀॥

यवीयानस्य तु भ्राता पश्येनं पर्वतोपमम् ।
भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टस्तु पराक्रमे ॥₁₁॥

स एष जाम्बवान्नाम महायूथपयूथपः ।
प्रशान्तो गुरुवर्ती च सम्प्रहारेष्वमर्षणः ॥₁₂॥

एतेन साह्यं सुमहत्कृतं शक्रस्य धीमता ।
देवासुरे जाम्बवता लब्धाश्च बहवो वराः ॥₁₃॥

आरुह्य पर्वताग्रेभ्यो महाभ्रविपुलाः शिलाः ।
मुञ्चन्ति विपुलाकारा न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥₁₄॥

राक्षसानां च सदृशाः पिशाचानां च रोमशाः ।
एतस्य सैन्ये बहवो विचरन्त्यग्नितेजसः ॥₁₅॥

यं त्वेनमभिसंरब्धं प्लवमानमिव स्थितम् ।
प्रेक्षन्ते वानराः सर्वे स्थितं यूथपयूथपम् ॥₁₆॥

एष राजन्सहस्राक्षं पर्युपास्ते हरीश्वरः ।
बलेन बलसम्पन्नो रम्भो नामैष यूथपः ॥₁₇॥

यः स्थितं योजने शैलं गच्छन्पार्श्वेन सेवते ।
ऊर्ध्वं तथैव कायेन गतः प्राप्नोति योजनम् ॥₁₈॥

यस्मान्न परमं रूपं चतुष्पादेषु विद्यते ।
श्रुतः संनादनो नाम वानराणां पितामहः ॥₁₉॥

येन युद्धं तदा दत्तं रणे शक्रस्य धीमता ।
पराजयश्च न प्राप्तः सोऽयं यूथपयूथपः ।
यस्य विक्रममाणस्य शक्रस्येव पराक्रमः ॥₂₀॥

एष गन्धर्वकन्यायामुत्पन्नः कृष्णवर्त्मना ।
पुरा देवासुरे युद्धे साह्यार्थं त्रिदिवौकसाम् ॥ 21 ॥

यस्य वैश्रवणो राजा जम्बूमुपनिषेवते ।
यो राजा पर्वतेन्द्राणां बहुकिंनरसेविनाम् ॥ 22 ॥

विहारसुखदो नित्यं भ्रातुस्ते राक्षसाधिप ।
तत्रैष वसति श्रीमान्बलवान्वानरर्षभः ।
युद्धेष्वकथनो नित्यं क्रथनो नाम यूथपः ॥ 23 ॥

वृतः कोटिसहस्रेण हरीणां समुपस्थितः ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ 24 ॥

यो गङ्गामनु पर्येति त्रासयन्हस्तियूथपान् ।
हस्तिनां वानराणां च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ 25 ॥

एष यूथपतिर्नेता गच्छन्गिरिगुहाशयः ।
हरीणां वाहिनी मुख्यो नदीं हैमवतीमनु ॥ 26 ॥

उशीर बीजमाश्रित्य पर्वतं मन्दरोपमम् ।
रमते वानरश्रेष्ठो दिवि शक्र इव स्वयम् ॥ 27 ॥

एनं शतसहस्राणां सहस्रमभिवर्तते ।
एष दुर्मर्षणो राजन्प्रमाथी नाम यूथपः ॥ 28 ॥

वातेनेवोद्धतं मेघं यमेनमनुपश्यसि ।
विवर्तमानं बहुशो यत्रैतद्बहुलं रजः ॥ 29 ॥

एतेऽसितमुखा घोरा गोलाङ्गूला महाबलाः ।
शतं शतसहस्राणि दृष्ट्वा वै सेतुबन्धनम् ॥ 30 ॥

गोलाङ्गूलं महावेगं गवाक्षं नाम यूथपम् ।
परिवार्याभिवर्तन्ते लङ्कां मर्दितुमोजसा ॥ 31 ॥

भ्रमराचरिता यत्र सर्वकामफलद्रुमाः ।
यं सूर्यतुल्यवर्णाभमनुपर्येति पर्वतम् ॥³²॥

यस्य भासा सदा भान्ति तद्वर्णा मृगपक्षिणः ।
यस्य प्रस्थं महात्मानो न त्यजन्ति महर्षयः ॥³³॥

तत्रैष रमते राजन्नम्ये काञ्चनपर्वते ।
मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः ॥³⁴॥

षष्टिर्गिरिसहस्राणां रम्याः काञ्चनपर्वताः ।
तेषां मध्ये गिरिवरस्त्वमिवानघ रक्षसाम् ॥³⁵॥

तत्रैते कपिलाः श्वेतास्ताम्रास्या मधुपिङ्गलाः ।
निवसन्त्युत्तमगिरौ तीक्ष्णदंष्ट्रानखायुधाः ॥³⁶॥

सिंह इव चतुर्दंष्ट्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ।
सर्वे वैश्वनरसमा ज्वलिताशीविषोपमाः ॥³⁷॥

सुदीर्घाश्वितलाङ्गूला मत्तमातङ्गसंनिभाः ।
महापर्वतसङ्काशा महाजीमूतनिस्त्रनाः ॥³⁸॥

एष चैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति वीर्यवान् ।
नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजञ्छतबलीति यः ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥³⁹॥

गजो गवाक्षो गवयो नलो नीलश्च वानरः ।
एकैक एव यूथानां कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥⁴⁰॥

तथान्ये वानरश्रेष्ठा विन्ध्यपर्वतवासिनः ।
न शक्यन्ते बहुबाहु सङ्ख्यातुं लघुविक्रमाः ॥⁴¹॥

सर्वे महाराज महाप्रभावाः
सर्वे महाशैलनिकाशकायाः ।

सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन
कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

सारणस्य वचः श्रुत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ।
बलमालोकयन्सर्वं शुको वाक्यमथाब्रवीत् ॥₁॥

स्थितान्पश्यसि यानेतान्मत्तानिव महाद्विपान् ।
न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान्सालान्हैमवतीनिव ॥₂॥

एते दुष्प्रसहा राजन्बलिनः कामरूपिणः ।
दैत्यदानवसङ्काशा युद्धे देवपराक्रमाः ॥₃॥

एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्चच सप्त च ।
तथा शङ्खसहस्राणि तथा वृन्दशतानि च ॥₄॥

एते सुग्रीवसचिवाः किष्किन्धानिलयाः सदा ।
हरयो देवगन्धर्वैरुत्पन्नाः कामरूपिणः ॥₅॥

यौ तौ पश्यसि तिष्ठन्तौ कुमारौ देवरूपिणौ ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ ताभ्यां नास्ति समो युधि ॥₆॥

ब्रह्मणा समनुज्ञातावमृतप्राशिनावुभौ ।
आशंसेते युधा लङ्कामेतौ मर्दितुमोजसा ॥₇॥

यावेतावेतयोः पार्श्वे स्थितौ पर्वतसंनिभौ ।
सुमुखो विमुखश्चैव मृत्युपुत्रौ पितुः समौ ॥₈॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
यो बलात्क्षोभयेत्क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः ॥₉॥

एषोऽभिगन्ता लङ्काया वैदेह्यास्तव च प्रभो ।

एनं पश्य पुरा दृष्टं वानरं पुनरागतम् ॥₁₀॥

ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः ।
हनूमानिति विख्यातो लङ्घितो येन सागरः ॥₁₁॥

कामरूपी हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः ।
अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः ॥₁₂॥

उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा बालः किल पिपासितः ।
त्रियोजनसहस्रं तु अध्वानमवतीर्य हि ॥₁₃॥

आदित्यमाहरिष्यामि न मे क्षुत्प्रतियास्यति ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा पुरैष बलदर्पितः ॥₁₄॥

अनाधृष्यतमं देवमपि देवर्षिदानवैः ।
अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ ॥₁₅॥

पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले ।
किञ्चिद्भिन्ना दृढहनोर्हनूमानेष तेन वै ॥₁₆॥

सत्यमागमयोगेन ममैष विदितो हरिः ।
नास्य शक्यं बलं रूपं प्रभावो वानुभाषितुम् ॥₁₇॥

एष आशंसते लङ्कामेको मर्दितुमोजसा ।
यश्चैषोऽनन्तरः शूरः श्यामः पद्मनिभेक्षणः ॥₁₈॥

इक्ष्वाकूणामतिरथो लोके विख्यात पौरुषः ।
यस्मिन्न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते ॥₁₉॥

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।
यो भिन्द्याद्गगनं बाणैः पर्वतांश्चापि दारयेत् ॥₂₀॥

यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ।

स एष रामस्त्वां योद्धुं राजन्समभिवर्तते ॥₂₁॥

यश्चैष दक्षिणे पार्श्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
विशालवक्षास्ताम्राक्षो नीलकुक्षितमूर्धजः ॥₂₂॥

एषोऽस्य लक्ष्मणो नाम भ्राता प्राणसमः प्रियः ।
नये युद्धे च कुशलः सर्वशास्त्रविशारदः ॥₂₃॥

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः ॥₂₄॥

न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति ।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान् ॥₂₅॥

यस्तु सव्यमसौ पक्षं रामस्याश्रित्य तिष्ठति ।
रक्षोगणपरिक्षिप्तो राजा ह्येष विभीषणः ॥₂₆॥

श्रीमता राजराजेन लङ्कायामभिषेचितः ।
त्वामेव प्रतिसंरब्धो युद्धायैषोऽभिवर्तते ॥₂₇॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम् ।
सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारमपराजितम् ॥₂₈॥

तेजसा यशसा बुद्ध्या ज्ञानेनाभिजनेन च ।
यः कपीनति बभ्राज हिमवानिव पर्वतान् ॥₂₉॥

किष्किन्धां यः समध्यास्ते गुहां सगहनद्रुमाम् ।
दुर्गां पर्वतदुर्गस्थां प्रधानैः सह यूथपैः ॥₃₀॥

यस्यैषा काञ्चनी माला शोभते शतपुष्करा ।
कान्ता देवमनुष्याणां यस्यां लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ॥₃₁॥

एतां च मालां तारां च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।

सुग्रीवो वालिनं हत्वा रामेण प्रतिपादितः ॥₃₂॥

एवं कोटिसहस्रेण शङ्खनां च शतेन च ।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमभिवर्तते ॥₃₃॥

इमां महाराजसमीक्ष्य वाहिनीम्
उपस्थितां प्रज्वलितग्रहोपमाम् ।
ततः प्रयत्नः परमो विधीयताम्
यथा जयः स्यान्न परैः पराजयः ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

शुकेन तु समाख्यातांस्तान्दृष्ट्वा हरियूथपान् ।
समीपस्थं च रामस्य भ्रातरं स्वं विभीषणम् ॥₁॥

लक्ष्मणं च महावीर्यं भुजं रामस्य दक्षिणम् ।
सर्ववानरराजं च सुग्रीवं भीमविक्रमम् ॥₂॥

किञ्चिदाविग्रहदयो जातक्रोधश्च रावणः ।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ ॥₃॥

अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ ।
रोषगद्गदया वाचा संरब्धः परुषं वचः ॥₄॥

न तावत्सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः ।
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहप्रग्रहे विभोः ॥₅॥

रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम् ।
उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम् ॥₆॥

आचार्या गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः ।
सारं यद्राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते ॥₇॥

गृहीतो वा न विज्ञातो भारो ज्ञानस्य वोध्यते ।
ईदृशैः सचिवैर्युक्तो मूर्खैर्दिष्ट्या धराम्यहम् ॥₈॥

किं नु मृत्योर्भयं नास्ति मां वक्तुं परुषं वचः ।
यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम् ॥₉॥

अप्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः ।

राजदोषपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥₁₀॥

हन्यामहमिमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसकौ ।
यदि पूर्वोपकारैर्मे न क्रोधो मृदुतां व्रजेत् ॥₁₁॥

अपध्वंसत गच्छध्वं संनिकर्षादितो मम ।
न हि वां हन्तुमिच्छामि स्मरन्नुपकृतानि वाम् ।
हतावेव कृतघ्नौ तौ मयि स्नेहपराङ्मुखौ ॥₁₂॥

एवमुक्तौ तु सव्रीडौ तावुभौ शुकसारणौ ।
रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥₁₃॥

अब्रवीत्स दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् ।
उपस्थापय शीघ्रं मे चारान्नीतिविशारदान् ॥₁₄॥

ततश्चराः सन्त्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् ।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषा ॥₁₅॥

तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
चारान्प्रत्ययिकाञ्छूरान्भक्तान्विगतसाध्वसान् ॥₁₆॥

इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षथ ।
मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः ॥₁₇॥

कथं स्वपिति जागर्ति किमन्यच्च करिष्यति ।
विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः ॥₁₈॥

चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥₁₉॥

चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥₂₀॥

ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥₂₁॥

ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ।
विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया ॥₂₂॥

वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः ।
पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥₂₃॥

ततो दशग्रीवमुपस्थितास्ते
चारा बहिर्नित्यचरा निशाचराः ।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनम्
न्यवेदयन्भीमबलं महाबलाः ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

ततस्तमक्षोभ्य बलं लङ्काधिपतये चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥₁॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किञ्चिच्छार्दूलं वाक्यमब्रवीत् ॥₂॥

अथवावच्च ते वर्णो दीनश्चासि निशाचर ।
नासि कच्चिदमित्राणां क्रुद्धानां वशमागतः ॥₃॥

इति तेनानुशिष्टस्तु वाचं मन्दमुदीरयत् ।
तदा राक्षसशार्दूलं शार्दूलो भयविह्वलः ॥₄॥

न ते चारयितुं शक्या राजन्वानरपुङ्गवाः ।
विक्रान्ता बलवन्तश्च राघवेण च रक्षिताः ॥₅॥

नापि सम्भाषितुं शक्याः सम्प्रश्नोऽत्र न लभ्यते ।
सर्वतो रक्ष्यते पन्था वानरैः पर्वतोपमैः ॥₆॥

प्रविष्टमात्रे ज्ञातोऽहं बले तस्मिन्नचारिते ।
बलाद्गृहीतो बहुभिर्बहुधास्मि विदारितः ॥₇॥

जानुभिर्मुष्टिभिर्दन्तैस्तलैश्चाभिहतो भृशम् ।
परिणीतोऽस्मि हरिभिर्बलवद्भिरमर्षणैः ॥₈॥

परिणीय च सर्वत्र नीतोऽहं रामसंसदम् ।
रुधिरादिग्धसर्वाङ्गो विह्वलश्चलितेन्द्रियः ॥₉॥

हरिभिर्वध्यमानश्च याचमानः कृताञ्जलिः ।

राघवेण परित्रातो जीवामि ह यदृच्छया ॥₁₀॥

एष शैलैः शिलाभिश्च पूरयित्वा महार्णवम् ।
द्वारमाश्रित्य लङ्काया रामस्तिष्ठति सायुधः ॥₁₁॥

गरुडव्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः ।
मां विसृज्य महातेजा लङ्कामेवाभिवर्तते ॥₁₂॥

पुरा प्राकारमायाति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां चास्मै प्रयच्छाशु सुयुद्धं वा प्रदीयताम् ॥₁₃॥

मनसा सन्ततापाथ तच्छ्रुत्वा राक्षसाधिपः ।
शार्दूलस्य महद्वाक्यमथोवाच स रावणः ॥₁₄॥

यदि मां प्रतियुध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥₁₅॥

एवमुक्त्वा महातेजा रावणः पुनरब्रवीत् ।
चारिता भवता सेना केऽत्र शूराः प्लवङ्गमाः ॥₁₆॥

कीदृशाः किम्प्रभावाश्च वानरा ये दुरासदाः ।
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्याहि राक्षस ॥₁₇॥

तत्रत्र प्रतिपत्स्यामि ज्ञात्वा तेषां बलाबलम् ।
अवश्यं बलसङ्ख्यानं कर्तव्यं युद्धमिच्छता ॥₁₈॥

अथैवमुक्तः शार्दूलो रावणेनोत्तमश्चरः ।
इदं वचनमारेभे वक्तुं रावणसंनिधौ ॥₁₉॥

अथर्क्षरजसः पुत्रो युधि राजन्सुदुर्जयः ।
गद्गदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्बवानिति विश्रुतः ॥₂₀॥

गद्गदस्यैव पुत्रोऽन्यो गुरुपुत्रः शतक्रतोः ।

कदनं यस्य पुत्रेण कृतमेकेन रक्षसाम् ॥₂₁॥

सुषेणश्चापि धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीर्यवान् ।
सौम्यः सोमात्मजश्चात्र राजन्दधिमुखः कपिः ॥₂₂॥

सुमुखो दुर्मुखश्चात्र वेगदर्शी च वानरः ।
मृत्युर्वानररूपेण नूनं सृष्टः स्वयम्भुवा ॥₂₃॥

पुत्रो हुतवहस्याथ नीलः सेनापतिः स्वयम् ।
अनिलस्य च पुत्रोऽत्र हनूमानिति विश्रुतः ॥₂₄॥

नप्ता शक्रस्य दुर्धर्षो बलवानङ्गदो युवा ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ बलिनावश्विसम्भवौ ॥₂₅॥

पुत्रा वैवस्वतस्यात्र पञ्चकालान्तकोपमाः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥₂₆॥

श्वेतो ज्योतिर्मुखश्चात्र भास्करस्यात्मसम्भवौ ।
वरुणस्य च पुत्रोऽथ हेमकूटः प्लवङ्गमः ॥₂₇॥

विश्वकर्मसुतो वीरो नलः प्लवगसत्तमः ।
विक्रान्तो वेगवानत्र वसुपुत्रः सुदुर्धरः ॥₂₈॥

दशवानरकोट्यश्च शूराणां युद्धकाङ्क्षिणाम् ।
श्रीमतां देवपुत्राणां शेषान्नाख्यातुमुत्सहे ॥₂₉॥

पुत्रो दशरथस्यैष सिंहसंहननो युवा ।
दूषणो निहतो येन खरश्च त्रिशिरास्तथा ॥₃₀॥

नास्ति रामस्य सदृशो विक्रमे भुवि कश्चन ।
विराधो निहतो येन कबन्धश्चान्तकोपमः ॥₃₁॥

वक्तुं न शक्तो रामस्य नरः कश्चिद्गुणान्क्षितौ ।

जनस्थानगता येन तावन्तो राक्षसा हताः ॥₃₂॥

लक्ष्मणश्चात्र धर्मात्मा मातङ्गानामिवर्षभः ।
यस्य बाणपथं प्राप्य न जीवेदपि वासवः ॥₃₃॥

राक्षसानां वरिष्ठश्च तव भ्राता विभीषणः ।
परिगृह्य पुरीं लङ्कां राघवस्य हिते रतः ॥₃₄॥

इति सर्वं समाख्यातं तवेदं वानरं बलम् ।
सुवेलेऽधिष्ठितं शैले शेषकार्ये भवान्गतिः ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्वरः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥₁॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किञ्चित्सचिवांश्चेदमब्रवीत् ॥₂॥

मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः ।
अयं नो मन्त्रकालो हि सम्प्राप्त इव राक्षसाः ॥₃॥

तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमद्भुतम् ।
ततः सम्मन्त्रयामास सचिवै राक्षसैः सह ॥₄॥

मन्त्रयित्वा स दुर्धर्षः क्षमं यत्समनन्तरम् ।
विसर्जयित्वा सचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् ॥₅॥

ततो राक्षसमाहूय विद्युज्जिह्वं महाबलम् ।
मायाविदं महामायः प्राविशद्यत्र मैथिली ॥₆॥

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ।
मोहयिष्यामहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ॥₇॥

शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ।
मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ॥₈॥

एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ।
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ॥₉॥

अशोकवनिकायां तु प्रविवेश महाबलः ।

ततो दीनामदन्यार्हा ददर्श धनदानुजः ।
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले ॥₁₀॥

भर्तारमेव ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ।
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरदूरतः ॥₁₁॥

उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षन्नाम कीर्तयन् ।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥₁₂॥

सान्ध्यमाना मया भद्रे यमुपाश्रित्य वल्गसे ।
खर हन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः ॥₁₃॥

छिन्नं ते सर्वतो मूलं दर्पस्ते निहतो मया ।
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि ॥₁₄॥

अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि ।
शृणु भर्तृबधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ॥₁₅॥

समायातः समुद्रान्तं मां हन्तुं किल राघवः ।
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः ॥₁₆॥

संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे ॥₁₇॥

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् ।
सुखसुप्तं समासाद्य चारितं प्रथमं चरैः ॥₁₈॥

तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सुलक्ष्मणः ॥₁₉॥

पट्टसान्परिधान्खड्गांश्चक्रान्दण्डान्महायसान् ।
बाणजालानि शूलानि भास्वरान्कूटमुद्गरान् ॥₂₀॥

यष्टीश्च तोमरान्प्रासंश्चक्राणि मुसलानि च ।
उदम्योदम्य रक्षोभिर्वानरेषु निपातिताः ॥₂₁॥

अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना ।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥₂₂॥

विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया ।
दिशः प्रव्राजितः सर्वैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह ॥₂₃॥

सुग्रीवो ग्रीवया शेते भग्नया प्लवगाधिपः ।
निरस्तहनुकः शेते हनूमात्राक्षसैर्हतः ॥₂₄॥

जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन्निहतो युधि ।
पट्टसैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा ॥₂₅॥

मैन्द्रश्च द्विविदश्चोभौ निहतौ वानरर्षभौ ।
निःश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण समुक्षितौ ॥₂₆॥

असिनाभ्याहतश्छिन्नो मध्ये रिपुनिषूदनः ।
अभिष्टनति मेदिन्यां पनसः पनसो यथा ॥₂₇॥

नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्यां दरीमुखः ।
कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजन्सायकैर्हतः ॥₂₈॥

अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः ।
पातितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतितोऽङ्गदः ॥₂₉॥

हरयो मथिता नागे रथजालैस्तथापरे ।
शायिता मृदितास्तत्र वायुवेगेरिवाम्बुदाः ॥₃₀॥

प्रद्रुताश्च परे त्रस्ता हन्यमाना जघन्यतः ।
अभिद्रुतास्तु रक्षोभिः सिंहैरिव महाद्विपाः ॥₃₁॥

सागरे पतिताः केचित्केचिद्गनमाश्रिताः ।
ऋक्षा वृक्षानुपारूढा वानरैस्तु विमिश्रिताः ॥³²॥

सागरस्य च तीरेषु शैलेषु च वनेषु च ।
पिङ्गाक्षास्ते विरूपाक्षैर्बहुभिर्बहवो हताः ॥³³॥

एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहतं शिरः ॥³⁴॥

ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः ।
सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥³⁵॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं विदुञ्जिह्वं त्वमानय ।
येन तद्राघवशिरः सङ्ग्रामात्स्वयमाहतम् ॥³⁶॥

विदुञ्जिह्वस्ततो गृह्य शिरस्तत्सशरासनम् ।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥³⁷॥

तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम् ।
विदुञ्जिह्वं महाजिह्वं समीपपरिवर्तिनम् ॥³⁸॥

अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः ।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु ॥³⁹॥

एवमुक्तं तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम् ।
उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥⁴⁰॥

रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं सीतामिदमुवाच ह ॥⁴¹॥

इदं तत्तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमन्वितम् ।
इह प्रहस्तेनानीतं हत्वा तं निशि मानुषम् ॥⁴²॥

स विद्युञ्जिह्वेन सहैव तच्छिरो
धनुश्च भूमौ विनिकीर्य रावणः ।
विदेहराजस्य सुतां यशस्विनीम्
ततोऽब्रवीत्तां भव मे वशानुगा ॥₄₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातं च हनूमता ॥₁॥

नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ।
केशान्केशान्तदेशं च तं च चूडामणिं शुभम् ॥₂॥

एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ।
विजगर्हेऽथ कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा ॥₃॥

सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः ।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥₄॥

आर्येण किं नु कैकेय्याः कृतं रामेण विप्रियम् ।
यद्गृहाघीरवसनस्तया प्रस्थापितो वनम् ॥₅॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी ।
जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥₆॥

सा मुहूर्तात्समाश्वस्य प्रतिलभ्य च चेतनाम् ।
तच्छिरः समुपाघ्राय विललापायतेक्षणा ॥₇॥

हा हतास्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रता ।
इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥₈॥

प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ।
सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥₉॥

दुःखाद्दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे ।

यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ॥₁₀॥

सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव ।
वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता ॥₁₁॥

आदिष्टं दीर्घमायुस्ते यैरचिन्त्यपराक्रम ।
अनृतं वचनं तेषामल्पायुरसि राघव ॥₁₂॥

अथ वा नश्यति प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतस्तव ।
पचत्येनं तथा कालो भूतानां प्रभवो ह्ययम् ॥₁₃॥

अदृष्टं मृत्युमापन्नः कस्माच्च नयशास्त्रवित् ।
व्यसनानामुपायज्ञः कुशलो ह्यसि वर्जने ॥₁₄॥

तथा त्वं सम्परिष्वज्य रौद्रयातिनृशंसया ।
कालरात्र्या मयाच्छिद्य हृतः कमललोचनः ॥₁₅॥

उपशेषे महाबाहो मां विहाय तपस्विनीम् ।
प्रियामिव शुभां नारीं पृथिवीं पुरुषर्षभ ॥₁₆॥

अर्चितं सततं यत्नाद्बन्धमाल्यैर्मया तव ।
इदं ते मत्प्रियं वीर धनुः काञ्चनभूषितम् ॥₁₇॥

पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ ।
पूर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः ॥₁₈॥

दिवि नक्षत्रभूतस्त्वं महत्कर्म कृतं प्रियम् ।
पुण्यं राजर्षिवंशं त्वमात्मनः समुपेक्षसे ॥₁₉॥

किं मान्न प्रेक्षसे राजन्किं मां न प्रतिभाषसे ।
बालां बालेन सम्प्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम् ॥₂₀॥

संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया ।

स्मर तन्मम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ॥₂₁॥

कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर ।
अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामिह दुःखिताम् ॥₂₂॥

कल्याणैरुचितं यत्तत्परिष्वक्तं मयैव तु ।
ऋव्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपरिकृष्यते ॥₂₃॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ।
अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं तु न लप्स्यसे ॥₂₄॥

प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् ।
परिप्रक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥₂₅॥

स तस्याः परिपृच्छन्त्या वधं मित्रबलस्य ते ।
तव चाख्यास्यते नूनं निशायां राक्षसैर्वधम् ॥₂₆॥

सा त्वां सुप्तं हतं श्रुत्वा मां च रक्षोगृहं गताम् ।
हृदयेन विदीर्णेन न भविष्यति राघव ॥₂₇॥

साधु पातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावणः ।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥₂₈॥

शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय ।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ।
मुहूर्तमपि नेच्छामि जीवितुं पापजीविना ॥₂₉॥

श्रुतं मया वेदविदां ब्राह्मणानां पितुर्गृहे ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥₃₀॥

क्षमा यस्मिन्दमस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता ।
अहिंसा चैव भूतानां तमृते का गतिर्मम ॥₃₁॥

इति सा दुःखसन्तप्ता विललापायतेक्षणा ।
भर्तुः शिरो धनुस्तत्र समीक्ष्य जनकात्मजा ॥³²॥

एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः ।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥³³॥

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद प्रसाद च ।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥³⁴॥

अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तः समुपस्थितः ।
किञ्चिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥³⁵॥

एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥³⁶॥

स तु सर्वं समर्थैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मनः ।
सभां प्रविश्य विदधे विदिक्त्वा रामविक्रमम् ॥³⁷॥

अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥³⁸॥

राक्षसेन्द्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भीमविक्रमैः ।
समर्थयामास तदा रामकार्यविनिश्चयम् ॥³⁹॥

अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ।
अब्रवीत्कालसदृशो रावणो राक्षसाधिपः ॥⁴⁰॥

शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटकोणाहतेन मे ।
समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥⁴¹॥

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वचो
बलाधिपास्ते महदात्मनो बलम् ।
समानयंश्चैव समागतं च ते

न्यवेदयन्भर्तारि युद्धकाङ्क्षिणि ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी ।
आससादाशु वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखी ॥₁॥

सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया ।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥₂॥

सा ददर्श सखीं सीतां सरमा नष्टचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुषु ॥₃॥

तां समाश्वासयामास सखी स्नेहेन सुव्रता ।
उक्ता यद्रावणेन त्वं प्रत्युक्तं च स्वयं त्वया ॥₄॥

सखीस्नेहेन तद्भीरु मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ।
लीनया गनहे शूह्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि न हि मे जीवितं प्रियम् ॥₅॥

स सम्भ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसाधिपः ।
तच्च मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥₆॥

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नेवोपपद्यते ॥₇॥

न चैव वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥₈॥

दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान्महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी संहननोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥₉॥

विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुशली नयशास्त्रवित् ॥₁₀॥

हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रुनिबर्हणः ॥₁₁॥

अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविदा त्वयि ॥₁₂॥

शोकस्ते विगतः सर्वः कल्याणं त्वामुपस्थितम् ।
ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं प्रीतिकरं शृणु ॥₁₃॥

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया ।
संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥₁₄॥

दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
सहितैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥₁₅॥

अनेन प्रेषिता ये च राक्षसा लघुविक्रमः ।
राघवस्तीर्ण इत्येवं प्रवृत्तिस्तैरिहाहता ॥₁₆॥

स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।
एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥₁₇॥

इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह ।
सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम् ॥₁₈॥

दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम् ।
उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥₁₉॥

संनाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका ।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिस्वनम् ॥₂₀॥

कल्प्यन्ते मत्तमातङ्गा युज्यन्ते रथवाजिनः ।
तत्र तत्र च संनद्धाः सम्पतन्ति पदातयः ॥₂₁॥

आपूर्यन्ते राजमार्गाः सैन्यैरद्भुतदर्शनैः ।
वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिव सागरः ॥₂₂॥

शास्त्राणां च प्रसन्नानां चर्मणां वर्मणां तथा ।
रथवाजिगजानां च भूषितानां च रक्षसाम् ॥₂₃॥

प्रभां विसृजतां पश्य नानावर्णां समुत्थिताम् ।
वनं निर्दहतो धर्मे यथारूपं विभावसोः ॥₂₄॥

घण्टानां शृणु निर्घोषं रथानां शृणु निस्वनम् ।
हयानां हेषमाणानां शृणु तूर्यध्वनिं यथा ॥₂₅॥

उद्यतायुधहस्तानां राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ।
सम्भ्रमो रक्षसामेष तुमुलो लोमहर्षणः ॥₂₆॥

श्रीस्त्वां भजति शोकघ्नी रक्षसां भयमागतम् ।
रामात्कमलपत्राक्षि दैत्यानामिव वासवात् ॥₂₇॥

अवजित्य जितक्रोधस्तमचिन्त्यपराक्रमः ।
रावणं समरे हत्वा भर्ता ब्बाधिगमिष्यति ॥₂₈॥

विक्रमिष्यति रक्षःसु भर्ता ते सहलक्ष्मणः ।
यथा शत्रुषु शत्रुघ्नो विष्णुना सह वासवः ॥₂₉॥

आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कगतां सतीम् ।
अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते ॥₃₀॥

अश्रूण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि शोभने ।
समागम्य परिष्वक्त्वा तस्योरसि महोरसः ॥₃₁॥

अचिरान्मोक्ष्यते सीते देवि ते जघनं गताम् ।
धृतामेतां बहून्मासान्वेणीं रामो महाबलः ॥₃₂॥

तस्य दृष्ट्वा मुखं देवि पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ।
मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी ॥₃₃॥

रावणं समरे हत्वा नचिरादेव मैथिलि ।
त्वया समग्रं प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम् ॥₃₄॥

समागता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना ।
सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥₃₅॥

गिरिवरमभितोऽनुवर्तमानो
हय इव मण्डलमाशु यः करोति ।
तमिह शरणमभ्युपेहि देवि
दिवसकरं प्रभवो ह्ययं प्रजानाम् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

अथ तां जातसन्तापां तेन वाक्येन मोहिताम् ।
सरमा ह्लादयामास पृतिवीं द्यौरिवाम्भसा ॥₁॥

ततस्तस्या हितं सख्याश्चिकीर्षन्ती सखी वचः ।
उवाच काले कालज्ञा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥₂॥

उत्सहेयमहं गत्वा बद्धाक्यमसितेक्षणे ।
निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तितुम् ॥₃॥

न हि मे क्रममाणाया निरालम्बे विहायसि ।
समर्थो गतिमन्वेतुं पवनो गरुडोऽपि वा ॥₄॥

एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमां पुनरब्रवीत् ।
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वशोकाभिपन्नया ॥₅॥

समर्था गगनं गन्तुमपि वा त्वं रसातलम् ।
अवगच्छाम्यकर्तव्यं कर्तव्यं ते मदन्तरे ॥₆॥

मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव ।
ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः ॥₇॥

स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः ।
मां मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेव वारुणी ॥₈॥

तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत् ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्या मां रक्षन्ति नित्यशः ॥₉॥

उद्विग्ना शङ्किता चास्मि न च स्वस्थं मनो मम ।

तद्भयाच्चाहमुद्विग्ना अशोकवनिकां गताः ॥₁₀॥

यदि नाम कथा तस्य निश्चितं वापि यद्भवेत् ।
निवेदयेथाः सर्वं तत्परो मे स्यादनुग्रहः ॥₁₁॥

सा त्वेवं ब्रुवतीं सीतां सरमा वल्गुभाषिणी ।
उवाच वचनं तस्याः स्पृशन्ती बाष्पविक्लवम् ॥₁₂॥

एष ते यद्यभिप्रायस्तस्माद्द्रच्छामि जानकि ।
गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावृत्तां च पश्य माम् ॥₁₃॥

एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः ।
शुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः ॥₁₄॥

सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः ।
पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकां तदा ॥₁₅॥

सा प्रविष्टा पुनस्तत्र ददर्श जनकात्मजाम् ।
प्रतीक्षमाणां स्वामेव भ्रष्टपद्मामिव श्रियम् ॥₁₆॥

तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां वल्गुभाषिणीम् ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम् ॥₁₇॥

इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः ।
क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥₁₈॥

एवमुक्त्वा तु सरमा सीतया वेपमानया ।
कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः ॥₁₉॥

जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः ।
अविद्धेन च वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन बोधितः ॥₂₀॥

दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली ।

निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम् ॥₂₁॥

लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः ।
वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो भुवि ॥₂₂॥

एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहु भाषितः ।
न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्तह्यर्थपरो यथा ॥₂₃॥

नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि ।
सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते ॥₂₄॥

तदेषा सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ।
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तस्तु संयुगे ।
राक्षसानां च सर्वेषामात्मनश्च वधेन हि ॥₂₅॥

निहत्य रावणं सङ्क्षो सर्वथा निशितैः शरैः ।
प्रतिनेष्यति रामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥₂₆॥

एतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरिशङ्खसमाकुलः ।
श्रुतो वै सर्वसैन्यानां कम्पयन्धरणीतलम् ॥₂₇॥

श्रुत्वा तु तं वानरसैन्यशब्दम्
लङ्कागता राक्षसराजभृत्याः ।
नष्टौजसो दैन्यपरीतचेष्टाः
श्रेयो न पश्यन्ति नृपस्य दोषैः ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन राघवः ।
उपयतो महाबाहू रामः परपुरंजयः ॥₁॥

तं निनादं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत ॥₂॥

अथ तान्सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः ।
सभां संनादयन्सर्वामित्युवाच महाबलः ॥₃॥

तरणं सागरस्यापि विक्रमं बलसञ्चयम् ।
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम् ।
भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान् ॥₄॥

ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान्नाम राक्षसः ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा मातुः पैतामहोऽब्रवीत् ॥₅॥

विद्यास्त्रभिविनीतो यो राजा राजन्नयानुगः ।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥₆॥

सन्दधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह ।
स्वपक्षवर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्रुते ॥₇॥

हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा सन्धिः समेन च ।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीत विग्रहम् ॥₈॥

तन्मह्यं रोचते सन्धिः सह रामेण रावण ।
यदर्थमभियुक्ताः स्म सीता तस्मै प्रदीयताम् ॥₉॥

तस्य देवर्षयः सर्वे गन्धर्वाश्च जयैषिणः ।
विरोधं मा गमस्तेन सन्धिस्ते तेन रोचताम् ॥₁₀॥

असृजद्भगवान्पक्षौ द्वावेव हि पितामहः ।
सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ ॥₁₁॥

धर्मो हि श्रूयते पक्षः सुराणां च महात्मनाम् ।
अधर्मो रक्षसं पक्षो ह्यसुराणां च रावण ॥₁₂॥

धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं ततः कृतमभूद्युगम् ।
अधर्मो ग्रसते धर्मं ततस्तिष्ठः प्रवर्तते ॥₁₃॥

तच्चया चरता लोकान्धर्मो विनिहतो महान् ।
अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद्वलिनः परे ॥₁₄॥

स प्रमादाद्विवृद्धस्तेऽधर्मोऽहिर्ग्रसते हि नः ।
विवर्धयति पक्षं च सुराणां सुरभावनः ॥₁₅॥

विषयेषु प्रसक्तेन यत्किञ्चित्कारिणा त्वया ।
ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगो जनितो महान् ।
तेषां प्रभावो दुर्धर्षः प्रदीप्त इव पावकः ॥₁₆॥

तपसा भावितात्मानो धर्मस्यानुग्रहे रताः ।
मुख्यैर्यज्ञैर्यजन्त्येते नित्यं तैस्तैर्द्विजातयः ॥₁₇॥

जुह्वत्यग्नींश्च विधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ।
अभिभूय च रक्षांसि ब्रह्मघोषानुदैरयन् ।
दिशो विप्रद्रुताः सर्वे स्तनयित्वुरिवोष्णगे ॥₁₈॥

ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ।
आदत्ते रक्षसां तेजो धूमो व्याप्य दिशो दश ॥₁₉॥

तेषु तेषु च देशेषु पुण्येषु च दृढव्रतैः ।

चर्यमाणं तपस्तीव्रं सन्तापयति राक्षसान् ॥₂₀॥

उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वा घोरान्बहुविधांस्तथा ।
विनाशमनुपश्यामि सर्वेषां रक्षसामहम् ॥₂₁॥

खराभिस्तनिता घोरा मेघाः प्रतिभयङ्करः ।
शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वतः ॥₂₂॥

रुदतां वाहनानां च प्रपतन्त्यस्रबिन्दवः ।
ध्वजा ध्वस्ता विवर्णाश्च न प्रभान्ति यथापुरम् ॥₂₃॥

व्याला गोमायवो गृध्रा वाशन्ति च सुभैरवम् ।
प्रविश्य लङ्कामनिशं समवायांश्च कुर्वते ॥₂₄॥

कालिकाः पाण्डुरैर्दनैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिताः ।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभाष्य च ॥₂₅॥

गृहाणां बलिकर्माणि श्वानः पर्युपभुञ्जते ।
खरा गोषु प्रजायन्ते मूषिका नकुलैः सह ॥₂₆॥

मार्जारा द्वीपिभिः सार्धं सूकराः शुनकैः सह ।
किंनरा राक्षसैश्चापि समेयुर्मानुषैः सह ॥₂₇॥

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः ।
राक्षसानां विनाशाय कपोता विचरन्ति च ॥₂₈॥

चीकी कूचीति वाशन्त्यः शारिका वेश्मसु स्थिताः ।
पतन्ति ग्रथिताश्चापि निर्जिताः कलहैषिणः ॥₂₉॥

करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ।
कालो गृहाणि सर्वेषां काले कालेऽन्ववेक्षते ।
एतान्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युत्पतन्ति च ॥₃₀॥

विष्णुं मन्यामहे रामं मानुषं देहमास्थितम् ।
न हि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः ॥₃₁॥

येन बद्धः समुद्रस्य स सेतुः परमाद्भुतः ।
कुरुष्व नरराजेन सन्धिं रामेण रावण ॥₃₂॥

इदं वचस्तत्र निगद्य माल्यवन्
परीक्ष्य रक्षोऽधिपतेर्मनः पुनः ।
अनुत्तमेषूत्तमपौरुषो बली
बभूव तूष्णीं समवेक्ष्य रावणम् ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥₁॥

स बद्धा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः ।
अमर्षात्परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत् ॥₂॥

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते ।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रगतं मम ॥₃॥

मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनालयम् ॥₄॥

रक्षसामीश्वरं मां च देवतानां भयङ्करम् ।
हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः ॥₅॥

वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः ।
त्वयाहं परुषाण्युक्तः परप्रोत्साहनेन वा ॥₆॥

प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽह्निधास्यति ।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनाद्रिपोः ॥₇॥

आनीय च वनात्सीतां पद्महीनामिव श्रियम् ।
किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम् ॥₈॥

वृतं वानरकोटीभिः ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
पश्य कैश्चिदहोभिस्त्वं राघवं निहतं मया ॥₉॥

द्वन्द्वे यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि संयुगे ।

स कस्माद्रावणो युद्धे भयमाहारयिष्यति ॥₁₀॥

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित् ।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥₁₁॥

यदि तावत्समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया ।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम् ॥₁₂॥

स तु तीर्त्वाण्वं रामः सह वानरसेनया ।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन्नप्रतियास्यति ॥₁₃॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम् ।
व्रीडितो माल्यवान्वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥₁₄॥

जयाशिषा च राजानं वर्धयित्वा यथोचितम् ।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम् ॥₁₅॥

रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च ।
लङ्कायामतुलां गुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥₁₆॥

व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम् ।
दक्षिणस्यां महावीर्यो महापार्श्व महोदरो ॥₁₇॥

पश्चिमायामथो द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तथा ।
व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥₁₈॥

उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ ।
स्वयं चात्र भविष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ॥₁₉॥

राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम् ।
मध्यमेऽस्थापयद्गुह्ये बहुभिः सह राक्षसैः ॥₂₀॥

एवंविधानं लङ्कायां कृत्वा राक्षसपुङ्गवः ।

मेने कृतार्थमात्मानं कृतान्तवशमागतः ॥₂₁॥

विसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो
विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।
जयाशिषा मन्त्रगणेन पूजितो
विवेश सोऽन्तःपुरमृद्धिमन्महत् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

नरवानरराजौ तौ स च वायुसुतः कपिः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः ॥₁॥

अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः ।
सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥₂॥

गजो गवाक्षो कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा ।
अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन् ॥₃॥

इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता ।
सासुरोरगगन्धर्वैरमरैरपि दुर्जया ॥₄॥

कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य मन्त्रयध्वं विनिर्णये ।
नित्यं संनिहितो ह्यत्र रावणो राक्षसाधिपः ॥₅॥

तथा तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत् ।
वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थं विभीषणः ॥₆॥

अनलः शरभश्चैव सम्पातिः प्रघसस्तथा ।
गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः ॥₇॥

भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम् ।
विधानं विहितं यच्च तद्वृष्टा समुपस्थिताः ॥₈॥

संविधानं यथाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः ।
राम तद्ब्रुवतः सर्वं यथातथ्येन मे शृणु ॥₉॥

पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति ।

दक्षिणं च महावीर्यो महापार्श्वमहोदरो ॥₁₀॥

इन्द्रजित्पश्चिमद्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
पट्टसासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥₁₁॥

नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः ।
राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥₁₂॥

युक्तः परमसंविग्रो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः ॥₁₃॥

विरूपाक्षस्तु महता शूलखड्गधनुष्मता ।
बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममास्थितः ॥₁₄॥

एतानेवंविधान्गुल्माँलङ्कायां समुदीक्ष्य ते ।
मामकाः सचिवाः सर्वे शीघ्रं पुनरिहागताः ॥₁₅॥

गजानां च सहस्रं च रथानामयुतं पुरे ।
हयानामयुते द्वे च साग्रकोटी च रक्षसाम् ॥₁₆॥

विक्रान्ता बलवन्तश्च संयुगेष्वाततायिनः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य नित्यमेते निशाचराः ॥₁₇॥

एकैकस्यात्र युद्धार्थे राक्षसस्य विशां पते ।
परिवारः सहस्राणां सहस्रमुपतिष्ठते ॥₁₈॥

एतां प्रवृत्तिं लङ्कायां मन्त्रिप्रोक्तं विभीषणः ।
रामं कमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥₁₉॥

कुबेरं तु यदा राम रावणः प्रत्ययुध्यत ।
षष्टिः शतसहस्राणि तदा निर्यान्ति राक्षसाः ॥₂₀॥

पराक्रमेण वीर्येण तेजसा सच्चगौरवात् ।

सदृशा योऽत्र दर्पेण रावणस्य दुरात्मनः ॥₂₁॥

अत्र मन्युर्न कर्तव्यो रोषये त्वां न भीषये ।
समर्थो ह्यसि वीर्येण सुराणामपि निग्रहे ॥₂₂॥

तद्भवांश्चतुरङ्गेण बलेन महता वृतः ।
व्यूहोदं वानरानीकं निर्मथिष्यसि रावणम् ॥₂₃॥

रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः ।
शत्रूणां प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥₂₄॥

पूर्वद्वारे तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः ।
प्रहस्तं प्रतियोद्धा स्याद्धानरैर्बहुभिर्वृतः ॥₂₅॥

अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः ।
दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥₂₆॥

हनूमान्पश्चिमद्वारं निपीड्य पवनात्मजः ।
प्रविशत्प्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः ॥₂₇॥

दैत्यदानवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम् ।
विप्रकारप्रियः क्षुद्रो वरदानबलान्वितः ॥₂₈॥

परिक्रामति यः सर्वाल्लोकान्सन्तापयन्प्रजाः ।
तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ॥₂₉॥

उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह ।
निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः ॥₃₀॥

वानरेन्द्रश्च बलवानृक्षराजश्च जाम्बवान् ।
राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मध्यमे ॥₃₁॥

न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे ।

एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन्वानरे बले ॥₃₂॥

वानरा एव निश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन्भविष्यति ।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ॥₃₃॥

अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ॥₃₄॥

स रामः कार्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम् ।
सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान्मतिम् ॥₃₅॥

ततस्तु रामो महता बलेन
प्रच्छाद्य सर्वा पृथिवीं महात्मा ।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम लङ्काम्
कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥₁॥

विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् ।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा ॥₂॥

सुवेलं साधु शैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥₃॥

लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ।
येन मे मरणान्ताय हता भार्या दुरात्मना ॥₄॥

येन धर्मो न विज्ञातो न वृत्तं न कुलं तथा ।
राक्षस्या नीचया बुद्ध्या येन तद्गर्हितं कृतम् ॥₅॥

यस्मिन्मे वर्धते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे ।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥₆॥

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥₇॥

एवं सम्मन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति ।
रामः सुवेलं वासाय चित्रसानुमुपारुहत् ॥₈॥

पृष्ठतो लक्ष्मण चैनमन्वगच्छत्समाहितः ।
सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः ॥₉॥

तमन्वरोहत्सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः ।

हनूमानङ्गदो नीलो मैन्दो द्विविद एव च ॥₁₀॥

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
पनसः कुमुदश्चैव हरो रम्भश्च यूथपः ॥₁₁॥

एते चान्ये च बहवो वानराः शीघ्रगामिनः ।
ते वायुवेगप्रवणास्तं गिरिं गिरिचारिणः ।
अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः ॥₁₂॥

ते ब्रदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः ।
ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम् ॥₁₃॥

तां शुभां प्रवरद्वारां प्राकारवरशोभिताम् ।
लङ्कां राक्षससम्पूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः ॥₁₄॥

प्राकारचयसंस्थैश्च तथा नीलैर्निशाचरैः ।
ददृशुस्ते हरिश्रेष्ठाः प्राकारमपरं कृतम् ॥₁₅॥

ते दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान्युद्धकाङ्क्षिणः ।
मुमुचुर्विपुलान्नादांस्तत्र रामस्य पश्यतः ॥₁₆॥

ततोऽस्तमगमत्सूर्यः सन्ध्यया प्रतिरञ्जितः ।
पूर्णचन्द्रप्रदीपा च क्षपा समभिवर्तते ॥₁₇॥

ततः स रामो हरिवाहिनीपतिर्-
विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः ।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंवृतः
सुवेल पृष्ठे न्यवसद्यथासुखम् ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरिपुङ्गवाः ।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥₁॥

समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च ।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः ॥₂॥

चम्पकाशोकपुंनागसालतालसमाकुला ।
तमालवनसञ्छन्ना नागमालासमावृता ॥₃॥

हिन्तालैरर्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैश्च पुष्पितैः ।
तिलकैः कर्णिकारैश्च पटालैश्च समन्ततः ॥₄॥

शुशुभे पुष्पिताग्रैश्च लतापरिगतैर्द्रुमैः ।
लङ्का बहुविधैर्दिव्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥₅॥

विचित्रकुसुमोपेतै रक्तकोमलपल्लवैः ।
शाद्वलैश्च तथा नीलैश्चित्राभिर्वनराजिभिः ॥₆॥

गन्धाढ्यान्यभिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च ।
धारयन्त्यगमास्तत्र भूषणानीव मानवाः ॥₇॥

तच्चैत्ररथसङ्काशं मनोज्ञं नन्दनोपमम् ।
वनं सर्वर्तुकं रम्यं शुशुभे षड्दायुतम् ॥₈॥

नत्यूहकोयष्टिभकैर्नृत्यमानैश्च बर्हिभिः ।
रुतं परभृतानां च शुश्रुवे वननिद्धरि ॥₉॥

नित्यमत्तविहङ्गानि भ्रमराचरितानि च ।

कोकिलाकुलषण्डानि विहगाभिरुतानि च ॥₁₀॥

भृङ्गराजाभिगीतानि भ्रमरैः सेवितानि च ।
कोणालकविघुष्टानि सारसाभिरुतानि च ॥₁₁॥

विविशुस्ते ततस्तानि वनान्युपवनानि च ।
हृष्टाः प्रमुदिता वीरा हरयः कामरूपिणः ॥₁₂॥

तेषां प्रविशतां तत्र वानराणां महौजसाम् ।
पुष्पसंसर्गसुरभिर्ववौ घ्राणसुखोऽनिलः ॥₁₃॥

अन्ये तु हरिवीराणां यूथान्निष्क्रम्य यूथपाः ।
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता लङ्कां जग्मुः पताकिनीम् ॥₁₄॥

वित्रासयन्तो विहगांस्त्रासयन्तो मृगद्विपान् ।
कम्पयन्तश्च तां लङ्कां नादैः स्वैर्नदतां वराः ॥₁₅॥

कुर्वन्तस्ते महावेगा महीं चारणपीडिताम् ।
रजश्च सहसैवोर्ध्वं जगाम चरणोद्धतम् ॥₁₆॥

ऋक्षाः सिंहा वराहाश्च महिषा वारणा मृगाः ।
तेन शब्देन वित्रस्ता जग्मुर्भीता दिशो दश ॥₁₇॥

शिखरं तु त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं दिविस्पृशम् ।
समन्तात्पुष्पसञ्छन्नं महारजतसंनिभम् ॥₁₈॥

शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् ।
श्लक्ष्णं श्रीमन्महच्चैव दुष्प्रापं शकुनैरपि ॥₁₉॥

मनसापि दुरारोहं किं पुनः कर्मणा जनैः ।
निविष्टा तत्र शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥₂₀॥

सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसंनिभैः ।

काञ्चनेन च सालेन राजतेन च शोभिता ॥₂₁॥

प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ।
घनैरिवातपापाये मध्यमं वैष्णवं पदम् ॥₂₂॥

यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलङ्कितः ।
कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन् ॥₂₃॥

चैत्यः स राक्षसेन्द्रस्य बभूव पुरभूषणम् ।
शतेन रक्षसां नित्यं यः समग्रेण रक्ष्यते ॥₂₄॥

तां समृद्धां समृद्धार्थो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः ।
रावणस्य पुरीं रामो ददर्श सह वानरैः ॥₂₅॥

तां रत्नपूर्णां बहुसंविधानाम्
प्रासादमालाभिरलङ्कितां च ।
पुरीं महायन्त्रकवाटमुख्याम्
ददर्श रामो महता बलेन ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥एकत्रिंशः सर्गः॥

अथ तस्मिन्निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
लक्ष्मणं लक्ष्मिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण ॥₂॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥₃॥

वाताश्च परुषं वान्ति कम्पते च वसुन्धरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति धरणीधराः ॥₄॥

मेघाः क्रव्यादसङ्काशाः परुषाः परुषस्वनाः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥₅॥

रक्तचन्दनसङ्काशा सन्ध्यापरमदारुणा ।
ज्वलच्च निपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥₆॥

आदित्यमभिवाश्यन्ते जनयन्तो महद्भयम् ।
दीना दीनस्वरा घोरा अप्रशस्ता मृगद्विजाः ॥₇॥

रजन्यामप्रकाशश्च सन्तापयति चन्द्रमाः ।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो यथा लोकस्य सङ्क्षये ॥₈॥

ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः ।
आदित्यमण्डले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥₉॥

दृश्यन्ते न यथावच्च नक्षत्राण्यभिवर्तते ।

युगान्तमिव लोकस्य पश्य लक्ष्मण शंसति ॥₁₀॥

काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
शिवाश्चाप्यशिवा वाचः प्रवदन्ति महास्वनाः ॥₁₁॥

क्षिप्रमद्य दुराधर्षां पुरीं रावणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥₁₂॥

इत्येवं तु वदन्वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः ॥₁₃॥

अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः ।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥₁₄॥

संनह्य तु ससुग्रीवः कपिराजबलं महत् ।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत् ॥₁₅॥

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः ।
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥₁₆॥

तं विभीषण सुग्रीवौ हनूमाञ्जाम्बवान्नलः ।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्ययुस्तदा ॥₁₇॥

ततः पश्चात्सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम् ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम् ॥₁₈॥

शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहाम् ।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः परवारणाः ॥₁₉॥

तौ बदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिन्दमौ ॥₂₀॥

पताकामालिनीं रम्यामुद्यानवनशोभिताम् ।

चित्रवप्रां सुदुष्प्रापामुच्चप्राकारतोरणाम् ॥₂₁॥

तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः ।
यथानिदेशं सम्पीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥₂₂॥

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥₂₃॥

लङ्कामुपनिविष्टश्च रामो दशरथात्मजः ।
लक्ष्मणानुचरो वीरः पुरीं रावणपालिताम् ॥₂₄॥

उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति रावणः ।
नान्यो रामाद्धि तद्वारं समर्थः परिरक्षितुम् ॥₂₅॥

रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् ।
सायुधौ राक्षसैर्भीमैरभिगुप्तं समन्ततः ।
लघूनां त्रासजननं पातालमिव दानवैः ॥₂₆॥

विन्यस्तानि च योधानां बहूनि विविधानि च ।
ददर्शायुधजालानि तथैव कवचानि च ॥₂₇॥

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ।
अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ॥₂₈॥

अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ॥₂₉॥

हनूमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः ।
प्रमाथि प्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च सङ्गतः ॥₃₀॥

मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ।
सह सर्वैर्हरिश्चैः सुपर्णश्चसनोपमैः ॥₃₁॥

वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोटयः प्रख्यातयूथपाः ।
निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः ॥₃₂॥

शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ।
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटिं कोटिं न्यवेशयत् ॥₃₃॥

पश्चिमेन तु रामस्य सुग्रीवः सह जाम्बवान् ।
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ॥₃₄॥

ते तु वानरशार्दूलाः शार्दूला इव दंष्ट्रिणः ।
गृहीत्वा द्रुमशैलाग्रान्हृष्टा युद्धाय तस्थिरे ॥₃₅॥

सर्वे विकृतलाङ्गूलाः सर्वे दंष्ट्रानखायुधाः ।
सर्वे विकृतचित्राङ्गाः सर्वे च विकृताननाः ॥₃₆॥

दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥₃₇॥

सन्ति चौघा बलाः केचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ।
अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन्ह्रियूथपाः ॥₃₈॥

अद्भुतश्च विचित्रश्च तेषामासीत्समागमः ।
तत्र वानरसैन्यानां शलभानामिवोद्गमः ॥₃₉॥

परिपूर्णमिवाकाशं सञ्छन्नेव च मेदिनी ।
लङ्कामुपनिविष्टैश्च सम्पतद्भिश्च वानरैः ॥₄₀॥

शतं शतसहस्राणां पृथगृक्षवनौकसाम् ।
लङ्का द्वाराण्युपाजग्मुरन्ये योद्धुं समन्ततः ॥₄₁॥

आवृतः स गिरिः सर्वैस्तैः समन्तात्प्लवङ्गमैः ।
अयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यवर्तत ॥₄₂॥

वानरैर्बलवद्भिश्च बभूव द्रुमपाणिभिः ।
सर्वतः संवृता लङ्का दुष्प्रवेशापि वायुना ॥⁴³॥

राक्षसा विस्मयं जग्मुः सहसाभिनिपीडिताः ।
वानरैर्मेघसङ्काशैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥⁴⁴॥

महाञ्शब्दोऽभवत्तत्र बलौघस्याभिवर्ततः ।
सागरस्येव भिन्नस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः ॥⁴⁵॥

तेन शब्देन महता सप्राकारा सतोरणा ।
लङ्का प्रचलिता सर्वा सशैलवनकानना ॥⁴⁶॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥⁴⁷॥

राघवः संनिवेश्यैवं सैन्यं स्वं रक्षसां वधे ।
सम्मन्त्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनः पुनः ॥⁴⁸॥

आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः क्रमयोगार्थतत्त्ववित् ।
विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ।
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥⁴⁹॥

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्रचनात्कपे ।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः ॥⁵⁰॥

भ्रष्टश्रीकगतैश्चर्यमुमूर्षो नष्टचेतनः ।
ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥⁵¹॥

नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ।
यच्च पापं कृतं मोहादवलितेन राक्षस ॥⁵²॥

नूनमद्य गतो दर्पः स्वयम्भू वरदानजः ।
यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्षितः ।

दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वरे व्यवस्थितः ॥₅₃॥

पदवीं देवतानां च महर्षीणां च राक्षस ।
राजर्षीणां च सर्वेणां गमिष्यसि मया हतः ॥₅₄॥

बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ।
मामतिक्रामयित्वा त्वं हतवांस्तद्विदर्शय ॥₅₅॥

अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः ।
न चेच्छरणमभ्येषि मामुपादाय मैथिलीम् ॥₅₆॥

धर्मात्मा रक्षसां श्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्केश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥₅₇॥

न हि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया ।
शक्यं मूर्खसहायेन पापेनाविजितात्मना ॥₅₈॥

युध्यस्व वा धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस ।
मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः पूतो भविष्यसि ॥₅₉॥

यद्याविशसि लोकांस्त्रीन्यक्षिभूतो मनोजवः ।
मम चक्षुष्पथं प्राप्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥₆₀॥

ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेकिकम् ।
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम् ॥₆₁॥

इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट् ॥₆₂॥

सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान्रावणमन्दिरम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह ॥₆₃॥

ततस्तस्याविदूरेण निपत्य हरिपुङ्गवः ।

दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः ॥⁶⁴॥

तद्रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ।
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥⁶⁵॥

दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः ॥⁶⁶॥

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंसं पुरुषाधम ॥⁶⁷॥

हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम् ।
निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ॥⁶⁸॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम् ॥⁶⁹॥

विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि ।
न चेत्सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ॥⁷⁰॥

इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे ।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ॥⁷¹॥

ततः स रोषताम्राक्षः शशास सचिवांस्तदा ।
गृह्यतामेष दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥⁷²॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निसमतेजसः ।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः ॥⁷³॥

ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मना ।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ॥⁷⁴॥

स तान्बाहुद्वये सक्तानादाय पतगानिव ।

प्रासादं शैलसङ्काशमुत्पापाताङ्गदस्तदा ॥ 75 ॥

तेऽन्तरिक्षाद्विनिर्धूतास्तस्य वेगेन राक्षसाः ।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ 76 ॥

ततः प्रासादशिखरं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
तत्पफाल तदाक्रान्तं दशग्रीवस्य पश्यतः ॥ 77 ॥

भङ्ग्या प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः ।
विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसा ॥ 78 ॥

रावणस्तु परं चक्रे क्रोधं प्रासादधर्षणात् ।
विनाशं चात्मनः पश्यन्निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ 79 ॥

रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्निनदद्भिः प्लवङ्गमैः ।
वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥ 80 ॥

सुषेणस्तु महावीर्यो गिरिकूटोपमो हरिः ।
बहुभिः संवृतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः ॥ 81 ॥

चतुर्द्वाराणि सर्वाणि सुग्रीववचनात्कपिः ।
पर्याक्रमत दुर्धर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ 82 ॥

तेषामक्षौहिणिशतं समवेक्ष्य वनौकसाम् ।
लङ्कामुपनिविष्टानां सागरं चातिवर्तताम् ॥ 83 ॥

राक्षसा विस्मयं जग्मुस्तासं जग्मुस्तथापरे ।
अपरे समरोद्धर्षाद्धर्षमेवोपपेदिरे ॥ 84 ॥

कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् ।
ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम् ॥ 85 ॥

तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते

कोलाहले राक्षसराजधान्याम् ।
प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि
युगान्तवाता इव संविचेरुः ॥₈₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम् ।
न्यवेदयन्पूरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥₁॥

रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः ।
विधानं द्विगुणं श्रुत्वा प्रासादं सोऽध्यरोहत ॥₂॥

स ददर्शावृतां लङ्कां सशैलवनकाननाम् ।
असङ्ख्येयैर्हरिगणैः सर्वतो युद्धकाङ्क्षिभिः ॥₃॥

स दृष्ट्वा वानरैः सर्वा वसुधां कवलीकृताम् ।
कथं क्षपयितव्याः स्युरिति चिन्तापरोऽभवत् ॥₄॥

स चिन्तयित्वा सुचिरं धैर्यमालम्ब्य रावणः ।
राघवं हरियूथांश्च ददर्शायतलोचनः ॥₅॥

प्रेक्षतो राक्षसेन्द्रस्य तान्यनीकानि भागशः ।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥₆॥

ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थं त्यक्तजीविताः ।
लङ्कामेवाह्यवर्तन्त सालतालशिलायुधाः ॥₇॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः ।
प्रासादाग्राणि चोच्चानि ममन्तुस्तोरणानि च ॥₈॥

पारिखाः पूरयन्ति स्म प्रसन्नसलिलायुताः ।
पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥₉॥

ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ।

कोटीशतयुताश्चान्ये लङ्कामारुरुहस्तदा ॥₁₀॥

काञ्चनानि प्रमृदन्तस्तोरणानि प्लवङ्गमाः ।
कैलासशिखराभानि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥₁₁॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कां तामभ्यवर्तन्त महावारणसंनिभाः ॥₁₂॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥₁₃॥

इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥₁₄॥

वीरबाहुः सुबाहुश्च नलश्च वनगोचरः ।
निपीड्योपनिविष्टास्ते प्राकारं हरियूथपाः ॥₁₅॥

एतस्मिन्नन्तरे चक्रुः स्कन्धावारनिवेशनम् ॥₁₆॥

पूर्वद्वारं तु कुमुदः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ हरिभिर्जितकाशिभिः ॥₁₇॥

दक्षिणद्वारमागम्य वीरः शतबलिः कपिः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ विंशत्या कोटिभिर्वृतः ॥₁₈॥

सुषेणः पश्चिमद्वारं गतस्तारा पिता हरिः ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ षष्टि कोटिभिरावृतः ॥₁₉॥

उत्तरद्वारमासाद्य रामः सौमित्रिणा सह ।
आवृत्य बलवांस्तस्थौ सुग्रीवश्च हरीश्वरः ॥₂₀॥

गोलाङ्गूलो महाकायो गवाक्षो भीमदर्शनः ।
वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्वतः ॥₂₁॥

ऋष्काणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः ।
वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥₂₂॥

संनद्धस्तु महावीर्यो गदापाणिर्विभीषणः ।
वृतो यस्तैस्तु सचिवैस्तस्थौ तत्र महाबलः ॥₂₃॥

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
समन्तात्परिधावन्तो ररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥₂₄॥

ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः ।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥₂₅॥

निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः ।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ॥₂₆॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरः सङ्ग्रामः समपद्यत ।
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥₂₇॥

ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरान्घोराः कथयन्तः स्वविक्रमान् ॥₂₈॥

तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः ।
राक्षसास्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः ॥₂₉॥

राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्था महीगतान् ।
भिण्डिपालैश्च खड्गैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन् ॥₃₀॥

वानराश्चापि सङ्क्रुद्धाः प्राकारस्थान्महीगताः ।
राक्षसान्पातयामासुः समाप्लुत्य प्लवङ्गमाः ॥₃₁॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः ।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमाः ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

युध्यतां तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
रक्षसां सम्बभूवाथ बलकोपः सुदारुणः ॥₁॥

ते हयैः काञ्चनापीडैर्ध्वजैश्चाग्निशिखोपमैः ।
रथैश्चादित्यसङ्काशैः कवचैश्च मनोरमैः ॥₂॥

निर्ययू राक्षसव्याघ्रा नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसा भीमकर्माणो रावणस्य जयैषिणः ॥₃॥

वानराणामपि चमूर्महती जयमिच्छताम् ।
अभ्यधावत तां सेनां रक्षसां कामरूपिणाम् ॥₄॥

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् ।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥₅॥

अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः ।
अयुध्यत महातेजास्त्यम्बकेण यथान्धकः ॥₆॥

प्रजङ्घेन च सम्पातिर्नित्यं दुर्मर्षणो रणे ।
जम्बूमालिनमारब्धो हनूमानपि वानरः ॥₇॥

सङ्गतः सुमहाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन मित्रघ्नेन विभीषणः ॥₈॥

तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः ।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत ॥₉॥

वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन समागतः ।

सङ्गतः समरे श्रीमान्विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥₁₀॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह सङ्गताः ॥₁₁॥

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः ।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ ॥₁₂॥

वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत ॥₁₃॥

धर्मस्य पुत्रो बलवान्सुषेण इति विश्रुतः ।
स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः ॥₁₄॥

वानराश्चापरे भीमा राक्षसैरपरैः सह ।
द्वन्द्वं समीयुर्बहुधा युद्धाय बहुभिः सह ॥₁₅॥

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ॥₁₆॥

हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रसृताः केशशाङ्कलाः ।
शरीरसङ्घाटवहाः प्रसुप्तुः शोणितापगाः ॥₁₇॥

आजघानेन्द्रजित्क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः ।
अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम् ॥₁₈॥

तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ।
जघान समरे श्रीमानङ्गदो वेगवान्कपिः ॥₁₉॥

सम्पातिस्तु त्रिभिर्बाणैः प्रजङ्घेन समाहतः ।
निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि ॥₂₀॥

जम्बूमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः ।

बिभेद समरे क्रुद्धो हनूमन्तं स्तनान्तरे ॥₂₁॥

तस्य तं रथमास्थाय हनूमान्मारुतात्मजः ।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा ॥₂₂॥

भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ।
प्रजघानाद्रिशृङ्गेण तपनं मुष्टिना गजः ॥₂₃॥

ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः ।
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निर्विभेद जघान च ॥₂₄॥

प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम् ।
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः ॥₂₅॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तिघ्नो यज्ञकोपश्च रामं निर्विभिदुः शरैः ॥₂₆॥

तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि समरे शरैः ।
क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः ॥₂₇॥

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे ।
पपात सरथः साश्वः पुराट् इव भूतले ॥₂₈॥

वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदोऽप्यशनिप्रभम् ।
जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥₂₉॥

द्विविदं वानरेन्द्रं तु द्रुमयोधिनमाहवे ।
शरैरशनिसङ्काशैः स विव्याधाशनिप्रभः ॥₃₀॥

स शरैरतिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्छितः ।
सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम् ॥₃₁॥

निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।

निर्विभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मैघमिवांशुमान् ॥₃₂॥

पुनः शरशतेनाथ क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
बिभेद समरे नीलं निकुम्भः प्रजहास च ॥₃₃॥

तस्यैव रथचक्रेण नीलो विष्णुरिवाहवे ।
शिरश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः ॥₃₄॥

विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः ।
सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः ॥₃₅॥

तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः ।
गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत् ॥₃₆॥

लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः ।
अपक्रम्य रथात्तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः ॥₃₇॥

ततः क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुङ्गवः ।
शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ॥₃₈॥

तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः ।
वक्षस्यभिजग्नानाशु सुषेणं हरिसत्तमम् ॥₃₉॥

गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्यप्लवगोत्तमः ।
तां शिलां पातयामास तस्योरसि महामृधे ॥₄₀॥

शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः ।
निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह ॥₄₁॥

एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः ।
द्वन्द्वे विमृदितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ॥₄₂॥

भल्लैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमर पट्टसैः ।

अपविद्धश्च भिन्नश्च रथेः साङ्गामिकैर्हयैः ॥₄₃॥

निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ।
चक्राक्षयुगदण्डैश्च भग्नैर्धरणिसंश्रितैः ।
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसेवितम् ॥₄₄॥

कबन्धानि समुत्पेतुर्दिक्षु वानररक्षसाम् ।
विमर्दे तुमुले तस्मिन्देवासुररणोपमे ॥₄₅॥

विदार्यमाणा हरिपुङ्गवैस्तदा
निशाचराः शोणितदिग्धगात्राः ।
पुनः सुयुद्धं तरसा समाश्रिता
दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः ॥₄₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

युध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम् ।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥₁॥

अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम् ।
सम्प्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वारणरक्षसाम् ॥₂॥

राक्षसोऽसीति हरयो हरिश्चासीति राक्षसाः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥₃॥

जहि दारय चैतीति कथं विद्रवसीति च ।
एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिंस्तमसि शुश्रुवे ॥₄॥

कालाः काञ्चनसंनाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः ।
सम्प्रादृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥₅॥

तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्छिताः ।
परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवङ्गमान् ॥₆॥

ते हयान्काञ्चनापीडन्ध्वजांश्चाग्निशिखोपमान् ।
आप्लुत्य दशनैस्तीक्ष्णैर्भीमकोपा व्यदारयन् ॥₇॥

कुञ्जरान्कुञ्जारोहान्पताकाध्वजिनो रथान् ।
चकर्षुश्च ददंशुश्च दशनैः क्रोधमूर्छिताः ॥₈॥

लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोमपैः ।
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः ॥₉॥

तुरङ्गखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुद्धतम् ।

रुरोध कर्णनेत्राणिप्युध्यतां धरणीरजः ॥₁₀॥

वर्तमाने तथा घोरे सङ्ग्रामे लोमहर्षणे ।
रुधिरोदा महावेगा नद्यस्तत्र प्रसुप्सुवुः ॥₁₁॥

ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां च निस्त्रनः ।
शङ्खवेणुस्त्रनोन्मिश्रः सम्बभूवादुतोपमः ॥₁₂॥

हतानां स्तनमानानां राक्षसानां च निस्त्रनः ।
शस्त्राणां वानराणां च सम्बभूवातिदारुणः ॥₁₃॥

शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद्युद्धमेदिनी ।
दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च शोणितास्रवकर्दमा ॥₁₄॥

सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी ।
कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा ॥₁₅॥

ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
राममेवाभ्यधावन्त संहृष्टा शरवृष्टिभिः ॥₁₆॥

तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामभिगर्जताम् ।
उद्धर्त इव सप्तानां समुद्राणामभूत्स्वनः ॥₁₇॥

तेषां रामः शरैः षड्भिः षड्धुधान निशाचरान् ।
निमेषान्तरमात्रेण शितैरग्निशिखोपमैः ॥₁₈॥

यज्ञशत्रुश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ ।
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥₁₉॥

ते तु रामेण बाणौघः सर्वमर्मसु ताडिताः ।
युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन् ॥₂₀॥

ततः काश्चनचित्राङ्गैः शरैरग्निशिखोपमैः ।

दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महाबलः ॥₂₁॥

ये ब्रूयन्ते राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥₂₂॥

सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः सम्पतद्भिः सहस्रशः ।
बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥₂₃॥

राक्षसानां च निनदैर्हरीणां चापि गर्जितैः ।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतरा तदा ॥₂₄॥

तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः ।
त्रिकूटः कन्दराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः ॥₂₅॥

गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः ।
सम्परिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन्नजनीचरान् ॥₂₆॥

अङ्गदस्तु रणे शत्रुं निहन्तुं समुपस्थितः ।
रावणेर्निजघानाशु सारथिं च हयानपि ॥₂₇॥

इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ।
अङ्गदेन महामायस्तत्रैवान्तरधीयत ॥₂₈॥

सोऽन्तर्धानं गतः पापो रावणी रणकर्कशः ।
ब्रह्मदत्तवरो वीरो रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
अदृश्यो निशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ॥₂₉॥

स रामं लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ।
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

स तस्य गतिमन्विच्छन्नाजपुत्रः प्रतापवान् ।
दिदेशातिबलो रामो दशवानरयूथपान् ॥₁॥

द्वौ सुषेणस्य दायादौ नीलं च प्लवगर्षभम् ।
अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्त्रिनम् ॥₂॥

विनतं जाम्बवन्तं च सानुप्रस्थं महाबलम् ।
ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परन्तपः ॥₃॥

ते सम्प्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान् ।
आकाशं विविशुः सर्वे मार्गामाणा दिशो दश ॥₄॥

तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ।
अस्त्रवित्परमास्त्रेण वारयामास रावणिः ॥₅॥

तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविक्षताः ।
अन्धकारे न ददृशुर्मघैः सूर्यमिवावृतम् ॥₆॥

रामलक्ष्मणयोरेव सर्वमर्मभिदः शरान् ।
भृशमावेशयामास रावणिः समितिंजयः ॥₇॥

निरन्तरशरीरौ तु भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः ॥₈॥

तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु ।
तावुभौ च प्रकाशेते पुष्पिताविव किंशुकौ ॥₉॥

ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः ।

रावणिभ्रातरौ वाक्यमन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥₁₀॥

युध्यमानमनालक्ष्यं शक्रोऽपि त्रिदशेश्वरः ।
द्रष्टुमासादितुं वापि न शक्तः किं पुनर्युवाम् ॥₁₁॥

प्रावृताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा ।
एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम् ॥₁₂॥

एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च ॥₁₃॥

भिन्नाञ्जनचयश्यामो विस्फार्य विपुलं धनुः ।
भूयो भूयः शरान्घोरान्विससर्ज महामृधे ॥₁₄॥

ततो मर्मसु मर्मज्ञो मञ्जयन्निशिताञ्शरान् ।
रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥₁₅॥

बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि ।
निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरुदीक्षितुम् ॥₁₆॥

ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितावुभौ ।
ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥₁₇॥

तौ सम्प्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्षितौ ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती ॥₁₈॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ।
शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ ॥₁₉॥

न ह्यविद्धं तयोर्गात्रं बभूवाङ्गुलमन्तरम् ।
नानिर्भिन्नं न चास्तब्धमा कराग्रादजिह्वगैः ॥₂₀॥

तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा ।

असृक्सुसुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥₂₁॥

पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः ।
क्रोधादिन्द्रजिता येन पुरा शक्रो विनिर्जितः ॥₂₂॥

नारचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ।
विव्याध वत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा ॥₂₃॥

स वीरशयने शिष्ये विज्यमादाय कार्मुकम् ।
भिन्नमुष्टिपरीणाहं त्रिणतं रुक्मभूषितम् ॥₂₄॥

बाणपातान्तरे रामं पतितं पुरुषर्षभम् ।
स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीवितेऽभवत् ॥₂₅॥

बद्धौ तु वीरौ पतितौ शयानौ
तौ वानराः सम्परिवार्य तस्थुः ।
समागता वायुसुतप्रमुख्या
विषदमार्ताः परमं च जग्मुः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ।
ददृशुः सन्ततो बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥₁॥

वृष्ट्वोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे ।
आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो विभीषणः ॥₂॥

नीलद्विविदमैन्दाश्च सुषेणसुमुखाङ्गदाः ।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥₃॥

निश्चेष्टौ मन्दनिःश्वासौ शोणितौघपरिप्लुतौ ।
शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पयोः ॥₄॥

निःश्वासन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ मन्दविक्रमौ ।
रुधिरस्नावदिग्धाङ्गौ तापनीयाविव ध्वजौ ॥₅॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दचेष्टितौ ।
यूथपैस्तैः परिवृतौ बाष्पव्याकुललोचनैः ॥₆॥

राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमावृतौ ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥₇॥

अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः ।
न चैनं मायया छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥₈॥

तं तु मायाप्रतिच्छिन्नं माययैव विभीषणः ।
वीक्षमाणो ददर्शाथ भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ॥₉॥

तमप्रतिम कर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ।

ददर्शान्तर्हितं वीरं वरदानाद्विभीषणः ॥₁₀॥

इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ।
उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥₁₁॥

दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ।
सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥₁₂॥

नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् ।
सर्वैरपि समागम्य सर्पिसङ्घैः सुरासुरैः ॥₁₃॥

यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम ।
अस्पृष्टा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वती ॥₁₄॥

कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्त्रिवाकुला ।
सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां निहतो मया ॥₁₅॥

रामस्य लक्ष्मणस्यैव सर्वेषां च वनौकसाम् ।
विक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरदि तोयदाः ॥₁₆॥

एवमुक्त्वा तु तान्सर्वान्नाक्षसान्परिपार्श्वगान् ।
यूथपानपि तान्सर्वास्ताडयामास रावणिः ॥₁₇॥

तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान् ।
प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥₁₈॥

शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ चमूमुखे ।
सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः ॥₁₉॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः ।
परं विस्मयमाजग्मुः कर्मणा तेन तोषिताः ॥₂₀॥

विनेदुश्च महानादान्सर्वे ते जलदोषमाः ।

हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन् ॥²¹॥

निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत ॥²²॥

हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिंजयः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥²³॥

रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥²⁴॥

तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः ।
सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम् ॥²⁵॥

अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ।
एवं प्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ॥²⁶॥

सशेषभाग्यतास्माकं यदि वीर भविष्यति ।
मोहमेतौ प्रहास्येते भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥²⁷॥

पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ।
सत्यधर्मानुरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥²⁸॥

एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना ।
सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः ॥²⁹॥

प्रमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत्कालसम्प्रातमसम्भ्रान्तमिदं वचः ॥³⁰॥

न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमनुवर्तितुम् ।
अतिस्नेहोऽप्यकालेऽस्मिन्मरणायोपपद्यते ॥³¹॥

तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् ।

हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्त्यताम् ॥₃₂॥

अथ वा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञा विपर्ययः ।
लब्धसंज्ञौ तु काकुत्स्थौ भयं नो व्यपनेष्यतः ॥₃₃॥

नैतत्किञ्चन रामस्य न च रामो मुमूर्षति ।
न ह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥₃₄॥

तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ।
यावत्सर्वाणि सैन्यानि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥₃₅॥

एते ह्युत्फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ।
कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिपुङ्गव ॥₃₆॥

मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं सम्प्रहर्षितुम् ।
त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ॥₃₇॥

समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विद्रुतं वानरानीकं तत्समाश्वासयत्पुनः ॥₃₈॥

इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ॥₃₉॥

तत्र रावणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
आचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥₄₀॥

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥₄₁॥

उपाघ्राय स मूर्ध्नेन पप्रच्छ प्रीतमानसः ।
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥₄₂॥

स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा

श्रुत्वा वचस्तस्य महारथस्य ।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थितम्
प्रहृष्य वाचाभिननन्द पुत्रम् ॥₄₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

प्रतिप्रविष्टे लङ्कां तु कृतार्थे रावणात्मजे ।
राघवं परिवार्यार्ता ररक्षुर्वानरर्षभाः ॥₁॥

हनूमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥₂॥

जाम्बवानृषभः सुन्दो रम्भः शतबलिः पृथुः ।
व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः ॥₃॥

वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः ।
तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥₄॥

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ।
आजुहाव ततः सीता रक्षणी राक्षसीस्तदा ॥₅॥

राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात्तमुपस्थिताः ।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसेश्वरः ॥₆॥

हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
पुष्पकं च समारोप्य दर्शयध्वं हतौ रणे ॥₇॥

यदाश्रयादवष्टब्धो नेयं मामुपतिष्ठति ।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निरस्तो रणमूर्धनि ॥₈॥

निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली ।
मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥₉॥

अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम् ।

अवेक्ष्य विनिवृत्ताशा नान्यां गतिमपश्यती ॥₁₀॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः ।
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा प्रजग्मुर्यत्र पुष्पकम् ॥₁₁॥

ततः पुष्पकमादय राक्षस्यो रावणाज्ञया ।
अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ॥₁₂॥

तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपरायणाम् ।
सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥₁₃॥

ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ।
रावणोऽकारयलङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥₁₄॥

प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः ।
राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥₁₅॥

विमानेनापि सीता तु गत्वा त्रिजटया सह ।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सिन्यं निपातितम् ॥₁₆॥

प्रहृष्टमनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् ।
वानरांश्चापि दुःखार्तान्नामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥₁₇॥

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शततल्पयोः ।
लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥₁₈॥

विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्भमयौ क्षितौ ॥₁₉॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र वीरौ सा पुरुषर्षभौ ।
दुःखार्ता सुभृशं सीता करुणं विललाप ह ॥₂₀॥

सा बाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य

तौ भ्रातरौ देवसमप्रभावौ ।
वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा
दुःखान्विता वाक्यमिदं जगाद ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् ।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्षिता ॥₁॥

ऊचुर्लक्ष्मणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च ।
तेऽस्य सर्वे हते रामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥₂॥

यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः ।
तेऽद्य सर्वे हते रामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥₃॥

वीरपार्थिवपत्नी त्वं ये धन्येति च मां विदुः ।
तेऽद्य सर्वे हते रामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥₄॥

ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम् ।
तेऽद्य सर्वे हते रामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥₅॥

इमानि खलु पद्मानि पादयोर्यैः किल स्त्रियः ।
अधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥₆॥

वैधव्यं यान्ति यैर्नार्योऽलक्षणेर्भाग्यदुर्लभाः ।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥₇॥

सत्यानीमानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणे ।
तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे ॥₈॥

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासङ्गते मम ।
वृत्ते चालोमशे जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥₉॥

शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू च मे चितौ ।

अनुवृत्ता नखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम ॥₁₀॥

स्तनौ चाविरलौ पीनौ ममेमौ मग्नचूचुकौ ।
मग्ना चोत्सङ्गिनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम् ॥₁₁॥

मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च ।
प्रतिष्ठितां द्वदशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥₁₂॥

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत् ।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालक्षणिका विदुः ॥₁₃॥

अधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह ।
कृतान्तकुशलैरुक्तं तत्सर्वं वितथीकृतम् ॥₁₄॥

शोधयित्वा जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च ।
तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ ॥₁₅॥

ननु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यताम् ॥₁₆॥

अदृश्यमानेन रणे मायया वासवोपमौ ।
मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥₁₇॥

न हि दृष्टिपथं प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः ।
जीवन्प्रतिनिवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥₁₈॥

न कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः ।
यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपाथितः ॥₁₉॥

नाहं शोचामि भर्तारं निहतं न च लक्ष्मणम् ।
नात्मानं जननी चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम् ॥₂₀॥

सा हि चिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम् ।

कदा द्रक्ष्यामि सीतां च रामं च सहलक्ष्मणम् ॥₂₁॥

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत् ।
मा विषादं कृथा देवि भर्तायं तव जीवति ॥₂₂॥

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च ।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥₂₃॥

न हि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च ।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥₂₄॥

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः ।
दिव्यं त्वां धारयेन्नेदं यद्येतौ गजजीवितौ ॥₂₅॥

हतवीरप्रधाना हि हतोत्साहा निरुद्यमा ।
सेना भ्रमति सङ्क्षोषु हतकर्णेव नौर्जले ॥₂₆॥

इयं पुनरसम्भ्रान्ता निरुद्विग्ना तरस्विनी ।
सेना रक्षति काकुत्स्थो मायया निर्जितौ रणे ॥₂₇॥

सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः ।
अहतौ पश्य काकुत्स्थो स्नेहादेतद्वीमि ते ॥₂₈॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम ॥₂₉॥

नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
एतयोराननं दृष्ट्वा मया चावेदितं तव ॥₃₀॥

इदं च सुमहच्चिह्नं शनैः पश्यस्व मैथिलि ।
निःसंज्ञावप्युभावेतौ नैव लक्ष्मीर्वियुज्यते ॥₃₁॥

प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।

दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥₃₂॥

त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥₃₃॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेदमेवमस्त्विति मैथिली ॥₃₄॥

विमानं पुष्पकं तत्तु समिवर्त्य मनोजवम् ।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥₃₅॥

ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ।
अशोकवनिकामेव रक्षसीभिः प्रवेशिता ॥₃₆॥

प्रविश्य सीता बहुवृक्षषण्डाम्
तां राक्षसेन्द्रस्य विहारभूमिम् ।
सम्प्रेक्ष्य सञ्चिन्त्य च राजपुत्रौ
परं विषादं समुपाजगाम ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ ।
निश्चसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥₁॥

सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवा महाबलाः ।
परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥₂॥

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् ।
स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः सन्दानितोऽपि सन् ॥₃॥

ततो दृष्ट्वा सरुधिरं विषण्णं गाढमर्पितम् ।
भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः ॥₄॥

किं नु मे सीतया कार्यं किं कार्यं जीवितेन वा ।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥₅॥

शक्या सीता समा नारी प्राप्तुं लोके विचिन्वता ।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः ॥₆॥

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान्वानराणां तु पश्यताम् ।
यदि पञ्चद्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥₇॥

किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम् ।
कथमम्बां सुमित्राश्च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥₈॥

विवत्सां वेपमानां च क्रोशन्तीं कुररीमिव ।
कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना ॥₉॥

कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ।

मया सह वनं यातो विना तेनागतः पुनः ॥₁₀॥

उपालम्भं न शक्यामि सोढुं बत सुमित्रया ।
इहैव देहं त्यक्ष्यामि न हि जीवितुमुत्सहे ॥₁₁॥

धिङ्मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसौ ।
लक्ष्मणः पतितः शेते शरतल्पे गतासुवत् ॥₁₂॥

त्वं नित्यं सुविषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण ।
गतासुर्नाद्य शक्रोऽपि मामार्तमभिभाषितुम् ॥₁₃॥

येनाद्य बहवो युद्धे राक्षसा निहताः क्षितौ ।
तस्यामेव क्षितौ वीरः स शेते निहतः परैः ॥₁₄॥

शयानः शरतल्पेऽस्मिन्स्वशोणितपरिप्लुतः ।
शरजालैश्चितो भाति भास्करोऽस्तमिव व्रजन् ॥₁₅॥

बाणाभिहतमर्मत्वात् शक्रोऽप्यभिर्वीक्षितुम् ।
रुजा चाब्रुवतो ह्यस्य दृष्टिरागेण सूच्यते ॥₁₆॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥₁₇॥

इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः ।
इमामद्य गतोऽवस्थां ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥₁₈॥

सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेना न संस्मरे ।
परुषं विप्रियं वापि श्रावितं न कदाचन ॥₁₉॥

विससर्जैकवेगेन पञ्चबाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्च लक्ष्मणः ॥₂₀॥

अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मनः ।

सोऽयमुर्व्याहतः शेते महार्हशयनोचितः ॥₂₁॥

तच्च मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः ।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः ॥₂₂॥

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽर्हसि ।
मत्वा हीनं मया राजन्नावणोऽभिद्रवेद्वली ॥₂₃॥

अङ्गदं तु पुरस्कृत्य ससैन्यः ससुहृञ्जनः ।
सागरं तर सुग्रीव पुनस्तेनैव सेतुना ॥₂₄॥

कृतं हनुमता कार्यं यदन्यैर्दुष्करं रणे ।
ऋक्षराजेन तुष्यामि गोलाङ्गूलाधिपेन च ॥₂₅॥

अङ्गदेन कृतं कर्म मैन्देन द्विविदेन च ।
युद्धं केसरिणा सङ्ख्ये घोरं सम्पातिना कृतम् ॥₂₆॥

गवयेन गवाक्षेण शरभेण गजेन च ।
अन्यैश्च हरिभिर्युद्धं मदार्थे त्यक्तजीवितैः ॥₂₇॥

न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ।
यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा वा परन्तप ।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताधर्मभीरुणा ॥₂₈॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्विर्वानरर्षभाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ॥₂₉॥

शुश्रुवुस्तस्य ते सर्वे वानराः परिदेवितम् ।
वर्तयां चक्रुरश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः ॥₃₀॥

ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः ।
आजगाम गदापाणिस्त्वरितो यत्र राघवः ॥₃₁॥

तं दृष्ट्वा बरितं यान्तं नीलाञ्जनचयोपमम् ।

वानरा दुद्रुवुः सर्वे मन्यमानास्तु रावणिम् ॥₃₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चत्वारिंशः सर्गः॥

अथोवाच महातेजा हरिराजो महाबलः ।
किमियं व्यथिता सेना मूढवातेव नौर्जले ॥₁॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
न त्वं पश्यसि रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ॥₂॥

शरज्जालाचितौ वीरावुभौ दशरथात्मजौ ।
शरतल्पे महात्मानौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥₃॥

अथाब्रवीद्वानरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गदम् ।
नानिमित्तमिदं मन्ये भवितव्यं भयेन तु ॥₄॥

विषण्णवदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिशः ।
प्रपलायन्ति हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥₅॥

अन्योन्यस्य न लङ्घन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठतः ।
विप्रकर्षन्ति चान्योन्यं पतितं लङ्घयन्ति च ॥₆॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्विभीषणः ।
सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च निरैक्षत ॥₇॥

विभीषणं तं सुग्रीवो दृष्ट्वा वानरभीषणम् ।
ऋक्षराजं समीपस्थं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥₈॥

विभीषणोऽयं सम्प्राप्तो यं दृष्ट्वा वानरर्षभाः ।
विद्रवन्ति परित्रस्ता रावणात्मजशङ्कया ॥₉॥

शीघ्रमेतान्सुवित्रस्तान्बहुधा विप्रधावितान् ।

पर्यवस्थापयाख्याहि विभीषणमुपस्थितम् ॥₁₀॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानृक्षपार्थिवः ।
वानरान्सान्त्वयामास संनिवर्त्य प्रहावतः ॥₁₁॥

ते निवृत्ताः पुनः सर्वे वानरास्त्यक्तसम्भ्रमाः ।
ऋक्षराजवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा विभीषणम् ॥₁₂॥

विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् ।
लक्ष्मणस्य च धर्मात्मा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥₁₃॥

जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे प्रमृज्य च ।
शोकसम्पीडितमना रुरोद विललाप च ॥₁₄॥

इमौ तौ सत्त्वसम्पन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ ।
इमामवस्थां गमितौ राकसैः कूटयोधिभिः ॥₁₅॥

भ्रातुः पुत्रेण मे तेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना ।
राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या छलितावृजुविक्रमौ ॥₁₆॥

शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
वसुधायामिम सुप्तौ दृश्येते शल्यकाविव ॥₁₇॥

ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया ।
तावुभौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ ॥₁₈॥

जीवन्नद्य विपन्नोऽस्मि नष्टराज्यमनोरथः ।
प्राप्तप्रतिज्ञश्च रिपुः सकामो रावणः कृतः ॥₁₉॥

एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥₂₀॥

राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्कायां नात्र संशयः ।

रावणः सह पुत्रेण स राज्यं नेह लप्स्यते ॥²¹॥

शरसम्पीडितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥²²॥

तमेवं सान्त्वयित्वा तु समाश्वास्य च राक्षसम् ।
सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह ॥²³॥

सह शूरेर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिन्दमौ ।
गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ ॥²⁴॥

अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम् ।
मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम् ॥²⁵॥

श्रुत्वैतद्दानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ।
देवासुरं महायुद्धमनुभूतं सुदारुणम् ॥²⁶॥

तदा स्म दानवा देवाञ्छरसंस्पर्शकोविदाः ।
निजघ्नुः शस्त्रविदुषश्छादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥²⁷॥

तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च परासूंश्च बृहस्पतिः ।
विध्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥²⁸॥

तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् ।
जवेन वानराः शीघ्रं सम्पाति पनसादयः ॥²⁹॥

हरयस्तु विजानन्ति पार्वती ते महौषधी ।
संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥³⁰॥

चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च पर्वतौ सागरोत्तमे ।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥³¹॥

ते तत्र निहिते देवैः पर्वते परमौषधी ।

अयं वायुसुतो राजन्हनूमांस्तत्र गच्छतु ॥₃₂॥

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मैघांश्चापि सविद्युतः ।
पर्यस्यन्सागरे तोयं कम्पयन्निव पर्वतान् ॥₃₃॥

महता पक्षवातेन सर्वे द्वीपमहाद्रुमाः ।
निपेतुर्भग्नविटपाः समूला लवणाम्भसि ॥₃₄॥

अभवन्पन्नगास्त्रस्ता भोगिनस्तत्रवासिनः ।
शीघ्रं सर्वाणि यादांसि जग्मुश्च लवणार्णवम् ॥₃₅॥

ततो मुहूर्तद्वरुडं वैनतेयं महाबलम् ।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥₃₆॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः ।
यैस्तौ सत्पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलौ ॥₃₇॥

ततः सुपर्णः काकुत्स्थो दृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च ।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥₃₈॥

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहूर्वणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥₃₉॥

तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणं तयोः ॥₄₀॥

तावुत्थाप्य महावीर्यो गरुडो वासवोपमौ ।
उभौ तौ सस्त्रजे हृष्टौ रामश्चैनमुवाच ह ॥₄₁॥

भवत्प्रसादाद्वसनं रावणिप्रभवं महत् ।
आवामिह व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥₄₂॥

यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् ।

तथा भवन्तमासाद्य हृषयं मे प्रसीदति ॥⁴³॥

को भवान्नूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥⁴⁴॥

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः ।
पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणः ॥⁴⁵॥

अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥⁴⁶॥

असुरा वा महावीर्या दानवा वा महाबलाः ।
सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥⁴⁷॥

नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ।
माया बलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥⁴⁸॥

एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्राविषोत्तणाः ।
रक्षोमाया प्रभावेन शरा भूत्वा त्वदाश्रिताः ॥⁴⁹॥

सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥⁵⁰॥

इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोऽहमागतः ।
सहसा युवयोः स्नेहात्सखिबन्धमनुपालयन् ॥⁵¹॥

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात् ।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥⁵²॥

प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे सङ्ग्रामे कूटयोधिनः ।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥⁵³॥

तन्न विश्वसितव्यं वो राक्षसानां रणाजिरे ।

एतेनैवोपमानेन नित्यजिह्वा हि राक्षसाः ॥⁵⁴॥

एवमुक्त्वा ततो रामं सुपर्णः सुमहाबलः ।
परिष्वज्य सुहृत्स्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥⁵⁵॥

सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथागतम् ॥⁵⁶॥

बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ।
रावणं च रिपुं हत्वा सीतां समुपलप्स्यसे ॥⁵⁷॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ।
रामं च विरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥⁵⁸॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥⁵⁹॥

विरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
सिंहनादांस्तदा नेदुर्लाङ्गलं दुधुवुश्च ते ॥⁶⁰॥

ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्च व्यनादयन् ।
दध्मुः शङ्खान्सम्प्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम् ॥⁶¹॥

आस्फोट्यास्फोट्य विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः ।
द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः ॥⁶²॥

विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् ।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥⁶³॥

ततस्तु भीमस्तुमुलो निनादो
बभूव शाखामृगयूथपानाम् ।
क्षये निदाघस्य यथा घनानाम्
नादः सुभीमो नदतां निशीथे ॥⁶⁴॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

तेषां सुतुमुलं शब्दं वानराणां तरस्विनाम् ।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥₁॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा स निनदं भृशम् ।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥₂॥

यथासौ सम्प्रहृष्टानां वानराणां समुत्थितः ।
बहूनां सुमहान्नादो मेघानामिव गर्जताम् ॥₃॥

व्यक्तं सुमहती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः ।
तथा हि विपुलैर्नदिश्वक्षुभे वरुणालयः ॥₄॥

तौ तु बद्धौ शरैस्तीष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥₅॥

एतत्तु वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥₆॥

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां वनचारिणाम् ।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥₇॥

तथोक्तास्तेन सम्भ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य ते ।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥₈॥

तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥₉॥

सन्तस्तहृदया सर्वे प्राकारादवरुह्य ते ।

विषण्णवदनाः सर्वे राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥₁₀॥

तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य निशाचराः ।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥₁₁॥

यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥₁₂॥

विमुक्तौ शरबन्धेन तौ दृश्येते रणाजिरे ।
पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥₁₃॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विषण्णवदनोऽब्रवीत् ॥₁₄॥

घोरैर्दत्तवैर्बद्धौ शरैराशीविषोमपैः ।
अमोघैः सूर्यसङ्काशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥₁₅॥

तमस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम ।
संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥₁₆॥

निष्फलाः खलु संवृत्ताः शरा वासुकितेजसः ।
आदत्तं यैस्तु सङ्ग्रामे रिपूणां मम जीवितम् ॥₁₇॥

एवमुक्त्वा तु सङ्क्रुद्धो निश्चसन्नुरगो यथा ।
अब्रवीद्रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राकसम् ॥₁₈॥

बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
त्वं वधायाभिनिर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥₁₉॥

एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ।
कृत्वा प्रणामं संहृष्टो निर्जगाम नृपालयात् ॥₂₀॥

अभिनिष्क्रम्य तद्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह ।

ढरयस्व बलं तूर्णं किं चिरेण युयुत्सतः ॥₂₁॥

धूमाक्षस्य वचः श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया द्रुतम् ॥₂₂॥

ते बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः ।
विनर्दमानाः संहृष्टा धूमाक्षं पर्यवारयन् ॥₂₃॥

विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः ।
गदाभिः पट्टसैर्दण्डैरायसैर्मुसलैर्भृशम् ॥₂₄॥

परिघैर्भिण्डिपालैश्च भल्लैः प्रासैः परश्वधैः ।
निर्ययू राक्षसा घोरा नर्दन्तो जलदा यथा ॥₂₅॥

रथैः कवचिनस्त्रन्ये ध्वजैश्च समलङ्कृतैः ।
सुवर्णजालविहितैः खरैश्च विविधाननैः ॥₂₆॥

हयैः परमशीघ्रैश्च गजेन्द्रैश्च मदोत्कटैः ।
निर्ययू राक्षसव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥₂₇॥

वृकसिंहमुखैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ।
आरुरोह रथं दिव्यं धूमाक्षः खरनिस्त्रनः ॥₂₈॥

स निर्यातो महावीर्यो धूमाक्षो राक्षसैर्वृतः ।
प्रहसन्पश्चिमद्वारं हनूमान्यत्र यूथपः ॥₂₉॥

प्रयान्तं तु महाघोरं राक्षसं भीमदर्शनम् ।
अन्तरिक्षगताः क्रूराः शकुनाः प्रत्यवारयन् ॥₃₀॥

रथशीर्षे महाभीमो गृध्रश्च निपपात ह ।
ध्वजाग्रे ग्रथिताश्चैव निपेतुः कुणपाशनाः ॥₃₁॥

रुधिरार्द्रो महाञ्चेतः कबन्धः पतितो भुवि ।

विस्वरं चोत्सृजन्नादं धूम्राक्षस्य समीपतः ॥₃₂॥

ववर्ष रुधिरं देवः सञ्चचाल च मेदिनी ।
प्रतिलोमं ववौ वायुर्निर्घातसमनिस्वनः ।
तिमिरोघावृतास्तत्र दिशश्च न चकाशिरे ॥₃₃॥

स तूत्पातांस्ततो दृष्ट्वा राक्षसानां भयावहान् ।
प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ॥₃₄॥

ततः सुभीमो बहुभिर्निशाचरैर्-
वृतोऽभिनिष्क्रम्य रणोत्सुको बली ।
ददर्श तां राघवबाहुपालिताम्
समुद्रकल्पां बहुवानरीं चमूम् ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमनिस्वनम् ।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥₁॥

तेषां तु तुमुलं युद्धं संजज्ञे हरिरक्षसाम् ।
अन्योन्यं पादपैर्घोरैर्निघ्नतं शूलमुद्गरैः ॥₂॥

राक्षसैर्वानरा घोरा विनिकृताः समन्ततः ।
वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमौ समीकृताः ॥₃॥

राक्षसाश्चापि सङ्क्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः ।
विव्यधुर्घोरसङ्काशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥₄॥

ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टसैः कूटमुद्गरैः ।
घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संशितैः ॥₅॥

विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः ।
अमर्षाञ्जनितोद्धर्षाश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥₆॥

शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः ।
जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलाश्च हरियूथपाः ॥₇॥

ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः ।
ममन्थू राक्षसान्भीमान्नामानि च बभाषिरे ॥₈॥

तद्वभूवाद्भुतं घोरं युद्धं वानररक्षसाम् ।
शिलाभिर्विविधाभिश्च बहुशाखैश्च पादपैः ॥₉॥

राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ।

ववर्षू रुधिरं केचिन्मुखे रुधिरभोजनाः ॥₁₀॥

पार्श्वेषु दारिताः केचित्केचिद्राशीकृता द्रुमैः ।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचित्केचिद्वनैर्विदारिताः ॥₁₁॥

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खरैश्च विनिपातितैः ।
रथैर्विध्वंसितैश्चापि पतितै रजनीचरैः ॥₁₂॥

वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्याप्लुत्य वेगितैः ।
राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिकर्तिताः ॥₁₃॥

विवर्णवदना भूयो विप्रकीर्णशिरोरुहाः ।
मूढाः शोणितगन्धेन निपेतुर्धरणीतले ॥₁₄॥

नये तु परमक्रुद्धा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥₁₅॥

वनरैरापतन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः ।
मुष्टिभिश्चरणैर्दनैः पादपैश्चापपोथिताः ॥₁₆॥

सन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः ।
क्रोधेन कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम् ॥₁₇॥

प्रासैः प्रमथिताः केचिद्वानराः शोणितस्रवाः ।
मुद्गरैराहताः केचित्पतिता धरणीतले ॥₁₈॥

परिघैर्मथितः केचिद्विण्डिपालैर्विदारिताः ।
पट्टसैराहताः केचिद्विह्वलन्तो गतासवः ॥₁₉॥

केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः ।
केचिद्विद्राविता नष्टाः सङ्क्रुद्धै राक्षसैर्युधि ॥₂₀॥

विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन शायिताः ।

विदारितास्तशूलै च केचिदान्नैर्विनिस्सृताः ॥₂₁॥

तत्सुभीमं महद्युद्धं हरिराकस सङ्कुलम् ।
प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादपसङ्कुलम् ॥₂₂॥

धनुर्ज्यातन्निमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ।
मन्द्रस्तनितसङ्गीतं युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥₂₃॥

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरात्रणमूर्धनि ।
हसन्विद्रावयामास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥₂₄॥

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं दृश्य मारुतिः ।
अभ्यवर्तत सङ्क्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥₂₅॥

क्रोधाद्विगुणताम्राक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥₂₆॥

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात् ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥₂₇॥

सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिलाभुवि ।
सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम् ॥₂₈॥

स भङ्क्त्वा तु रथं तस्य हनूमान्मारुतात्मजः ।
रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥₂₉॥

विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसाः शोणितोक्षिताः ।
द्रुमैः प्रमथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणीतले ॥₃₀॥

विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनूमान्मारुतात्मजः ।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥₃₁॥

तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥₃₂॥

ततः क्रुद्धस्तु वेगेन गदां तां बहुकण्टकाम् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तके तु हनूमतः ॥₃₃॥

ताडितः स तया तत्र गदया भीमरूपया ।
स कपिर्मरुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ।
धूम्राक्षस्य शिरो मध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ॥₃₄॥

स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ।
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ॥₃₅॥

धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः ।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥₃₆॥

स तु पवनसुतो निहत्य शत्रुम्
क्षतजवहाः सरितश्च संविकीर्य ।
रिपुवधजनितश्रमो महात्मा
मुदमगमत्कपिभिश्च पूज्यमानः ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥₁॥

शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रप्रकोविदम् ॥₂॥

ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः ।
निष्पेतू राक्षसा मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥₃॥

रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
राकसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः ॥₄॥

न हि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ।
अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा ॥₅॥

तस्य निधावमानस्य संरब्धस्य युयुत्सया ।
अकस्माद्दैन्यमागच्छद्भयानां रथवाहिनाम् ॥₆॥

व्यस्फुरन्नयनं चास्य सव्यं युद्धाभिनन्दिनः ।
विवर्णो मुखवर्णश्च गद्गदश्चाभवत्स्वरः ॥₇॥

अभवत्सुदिने चापि दुर्दिने रूक्षमारुतम् ।
ऊचुः खगा मृगाः सर्वे वाचः क्रूरा भयावहाः ॥₈॥

स सिंहोपचितस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ।
तानुत्पातानचित्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् ॥₉॥

तदा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ।

बभूव सुमहान्नादः क्षोभयन्निव सागरम् ॥₁₀॥

तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ।
द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुं समवतिष्ठत ॥₁₁॥

तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तजीविनाम् ॥₁₂॥

सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसंनिभाः ।
हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघंसवः ॥₁₃॥

तेषां विनर्दातां शब्दः संयुगेऽतितरस्विनाम् ।
शुश्रुवे सुमहान्क्रोधादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥₁₄॥

रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् ।
उद्धूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ॥₁₅॥

अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयोद्धूतपाण्डुना ।
संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे ॥₁₆॥

न ध्वजो न पताकावा वर्म वा तुरगोऽपि वा ।
आयुधं स्यन्दनं वापि ददृशे तेन रेणुना ॥₁₇॥

शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ।
श्रूयते तुमुले युद्धे न रूपाणि चकाशिरे ॥₁₈॥

हरीनेव सुसङ्क्रुद्धा हरयो जघ्मुराहवे ।
राक्षसाश्चापि रक्षांसि निजघ्नुस्तिमिरे तदा ॥₁₉॥

परांश्चैव विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः ।
रुधिरार्द्रं तदा चक्रुर्महीं पङ्क्तानुलेपनाम् ॥₂₀॥

ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं व्यपगतं रजः ।

शरीरशवसङ्कीर्णा बभूव च वसुन्धरा ॥₂₁॥

द्रुमशक्तिशिलाप्रासैर्गदापरिघतोमरैः ।
हरयो राक्षसास्तूर्णं जघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥₂₂॥

बाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमाः ।
हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुराहवे ॥₂₃॥

राक्षसाश्चापि सङ्क्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः ।
कपीन्निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः ॥₂₄॥

हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः ।
विदारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्याच्छिद्य वीर्यतः ॥₂₅॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ।
मैन्दश्च परमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥₂₆॥

ते तु वृक्षैर्महावेगा राक्षसानां चमूमुखे ।
कदनं सुमह चक्रुर्लीलया हरियूथपाः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

तदृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः ।
क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥₁॥

क्रोधमूर्छितरूपस्तु ध्रुवन्परमकार्मुकम् ।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥₂॥

तत्रैव तावच्चरितं रथं प्रापय सारथे ।
एतेऽत्र बहवो घ्नन्ति सुबहून्नाक्षसान्नणे ॥₃॥

एतेऽत्र बलवन्तो हि भीमकायाश्च वानराः ।
द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखे मम ॥₄॥

एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ।
एतैः प्रमथितं सर्वं दृश्यते राक्षसं बलम् ॥₅॥

ततः प्रजविताश्वेन रथेन रथिनां वरः ।
हरीनभ्यहनत्क्रोधाच्छरजालैरकम्पनः ॥₆॥

न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एव प्रदुद्रुवुः ॥₇॥

तान्मृत्युवशमापन्नानकम्पनवशं गतान् ।
समीक्ष्य हनुमाञ्जातीनुपतस्थे महाबलः ॥₈॥

तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे प्लवगयूथपाः ।
समेत्य समरे वीराः सहिताः पर्यवारयन् ॥₉॥

व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा हरियूथपाः ।

बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥₁₀॥

अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥₁₁॥

अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्छरीरे पतिताञ्शितान् ।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥₁₂॥

स प्रहस्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥₁₃॥

तस्याभिनर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥₁₄॥

आत्मानं त्वप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः ।
शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गवः ॥₁₅॥

तं गृहीत्वा महाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः ।
विनद्य सुमहानादं भ्रामयामास वीर्यवान् ॥₁₆॥

ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
यथा हि नमुचिं सङ्क्षो वज्रेणेव पुरन्दरः ॥₁₇॥

अकम्पनस्तु तद्दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम् ।
दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत् ॥₁₈॥

तत्पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम् ।
विकीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनूमान्क्रोधमूर्छितः ॥₁₉॥

सोऽश्वकर्णं समासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः ।
तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥₂₀॥

तं गृहीत्वा महास्कन्धं सोऽश्वकर्णं महाद्युतिः ।

प्रहस्य परया प्रीत्या भ्रामयामास संयुगे ॥₂₁॥

प्रधावन्नरुवेगेन प्रभञ्जंस्तरसा द्रुमान् ।
हनूमान्परमक्रुद्धश्चरणैर्दारयत्क्षितिम् ॥₂₂॥

गजांश्च सगजारोहान्सरथात्रधिनस्तथा ।
जघान हनुमान्धीमान्नाक्षसांश्च पदातिकान् ॥₂₃॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ।
हनूमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥₂₄॥

तमापतन्तं सङ्क्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चक्रोध च ननाद च ॥₂₅॥

स चतुर्दशभिर्बाणैः शितैर्देहविदारणैः ।
निर्बिभेद हनूमन्तं महावीर्यमकम्पनः ॥₂₆॥

स तथा प्रतिविद्धस्तु बह्वीभिः शरवृष्टिभिः ।
हनूमान्ददृशे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥₂₇॥

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पात्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥₂₈॥

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात स ममार च ॥₂₉॥

तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥₃₀॥

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्कामभिययुस्त्वस्ता वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥₃₁॥

ते मुक्तकेशाः सम्भ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः ।

स्रवच्छ्रमजलैरङ्गैः श्वसन्तो विप्रदुद्रुवुः ॥³²॥

अन्योन्यं प्रममन्तुस्ते विविशुर्नगरं भयात् ।
पृष्ठतस्ते सुसम्मूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥³³॥

तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः ।
समेत्य हरयः सर्वे हनूमन्तमपूजयन् ॥³⁴॥

सोऽपि प्रहृष्टस्तान्सर्वान्हरीन्सम्प्रत्यपूजयत् ।
हनूमान्सत्त्वसम्पन्नो यथार्हमनुकूलतः ॥³⁵॥

विनेदुश्च यथा प्राणं हरयो जितकाशिनः ।
चकर्षुश्च पुनस्तत्र सप्राणानेव राक्षसान् ॥³⁶॥

स वीरशोभामभजन्महाकपिः
समेत्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः ।
महासुरं भीमममित्रनाशनम्
यथैव विष्णुर्बलिनं चमूमुखे ॥³⁷॥

अपूजयन्देवगणास्तदा कपिम्
स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवङ्गमा
विभीषणश्चैव महाबलस्तदा ॥³⁸॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ।
किञ्चिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥₁॥

स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च ।
पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ॥₂॥

तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ।
ददर्श नगरीं लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥₃॥

रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाचामर्षितः काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥₄॥

पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य च ।
नान्यं युद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥₅॥

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिह्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥₆॥

स त्वं बलमितः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥₇॥

निर्याणादेव ते नूनं चपला हरिवाहिनी ।
नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥₈॥

चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ।
न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव द्विपाः ॥₉॥

विद्रुते च बले तस्मिन्नामः सौमित्रिणा सह ।

अवशस्ते निरालम्बः प्रहस्तवशमेष्यति ॥₁₀॥

आपत्संशयिता श्रेयो नात्र निःसंशयीकृता ।
प्रतिलोमानुलोमं वा यद्वा नो मन्यसे हितम् ॥₁₁॥

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशना ॥₁₂॥

राजन्मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः ।
विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ॥₁₃॥

प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया ।
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेतत्तथैव नः ॥₁₄॥

सोऽहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया ।
सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां प्रियं तव ॥₁₅॥

न हि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि वा ।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥₁₆॥

एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ।
समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महद्वलम् ॥₁₇॥

मद्वाणाशनिवेगेन हतानां तु रणाजिरे ।
अद्य तृप्यन्तु मांसेन पक्षिणः काननौकसाम् ॥₁₈॥

इत्युक्तास्ते प्रहस्तेन बलाध्यक्षाः कृतवराः ।
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्नाक्षसमन्दिरे ॥₁₉॥

सा बभूव मुहूर्तेन तिग्मनानाविधायुधैः ।
लङ्का राक्षसवीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला ॥₂₀॥

हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् ।

आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मरुतो ववौ ॥₂₁॥

स्रजश्च विविधाकारा जगृहुस्त्वभिमन्त्रिताः ।
सङ्ग्रामसञ्ज्ञाः संहृष्टा धारयन्नाक्षसास्तदा ॥₂₂॥

सधनुष्काः कवचिनो वेगादाप्लुत्य राक्षसाः ।
रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन् ॥₂₃॥

अथामन्त्र्य च राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम् ।
आरुरोह रथं दिव्यं प्रहस्तः सञ्जकल्पितम् ॥₂₄॥

हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सूतसुसंयुतम् ।
महाजलदनिर्घोषं साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरम् ॥₂₅॥

उरगध्वजदुर्धर्षं सुवरूथं स्वपस्करम् ।
सुवर्णजालसंयुक्तं प्रहसन्तमिव श्रिया ॥₂₆॥

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥₂₇॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ॥₂₈॥

निनदन्तः स्वरान्घोरात्राक्षसा जग्मुरग्रतः ।
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः ॥₂₉॥

व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ॥₃₀॥

सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः ।
प्रहस्तो निर्ययौ तूर्णं क्रुद्धः कालान्तकोपमः ॥₃₁॥

तस्य निर्याण घोषेण राक्षसानां च नर्दताम् ।

लङ्कायां सर्वभूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वैरे ॥³²॥

व्यभ्रमाकाशमाविश्य मांसशोणितभोजनाः ।
मण्डलान्यपसव्यानि खगाश्चक्रु रथं प्रति ॥³³॥

वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरा ववाशिरे ॥³⁴॥

अन्तरिक्षात्पपातोल्का वायुश्च परुषो ववौ ।
अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिरे ॥³⁵॥

ववर्षू रुधिरं चास्य सिषिचुश्च पुरःसरान् ।
केतुमूर्धनि गृध्रोऽस्य विलीनो दक्षिणामुखः ॥³⁶॥

सारथेर्बहुशश्चास्य सङ्ग्राममवगाहतः ।
प्रतोदो न्यपतद्धस्तात्सूतस्य हयसादिनः ॥³⁷॥

निर्याण श्रीश्च यास्यासीद्भास्वरा च सुदुर्लभा ।
सा ननाश मुहूर्तेन समे च स्खलिता हयाः ॥³⁸॥

प्रहस्तं त्वभिनिर्यान्तं प्रख्यात बलपौरुषम् ।
युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाभ्यवर्तत ॥³⁹॥

अथ घोषः सुतुमुलो हरीणां समजायत ।
वृक्षानारुजतां चैव गुर्वीश्चागृह्णतां शिलाः ॥⁴⁰॥

उभे प्रमुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ।
वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ।
परस्परं चाह्वयतां निनादः श्रूयते महान् ॥⁴¹॥

ततः प्रहस्तः कपिराजवाहिनीम्
अभिप्रतस्थे विजयाय दुर्मतिः ।
विवृद्धवेगां च विवेश तां चमूम्
यथा मुमूर्षुः शलभो विभावसुम् ॥⁴²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥₁॥

ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ।
अतिसंजातरोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥₂॥

खड्गशक्त्यष्टिबाणाश्च शूलानि मुसलानि च ।
गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः ॥₃॥

धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम् ।
प्रगृहीतान्यशोभन्त वानरानभिधावताम् ॥₄॥

जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितान्वानरर्षभाः ।
शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥₅॥

तेषामन्योन्यमासाद्य सङ्ग्रामः सुमहानभूत् ।
बहूनामश्रमवृष्टिं च शरवृष्टिं च वर्षताम् ॥₆॥

बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरयूथपान् ।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥₇॥

शूलैः प्रमथिताः केचित्केचित्तु परमायुधैः ।
परिघैराहताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥₈॥

निरुच्छ्वासाः पुनः केचित्पतिता धरणीतले ।
विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसन्तानसन्दिताः ॥₉॥

केचिद्विधाकृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ।

वानरा राक्षसैः शूलैः पार्श्वतश्च विदारिताः ॥₁₀॥

वानरैश्चापि सङ्क्रुद्धै राक्षसौघाः समन्ततः ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च सम्पिष्टा वसुधातले ॥₁₁॥

वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम् ।
वेमुः शोणितमास्येभ्यो विशीर्णदशनेक्षणः ॥₁₂॥

आर्तस्वरं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो हरीणां रक्षसां युधि ॥₁₃॥

वानरा राक्षसाः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः ।
विवृत्तनयनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥₁₄॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥₁₅॥

तेषामापततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥₁₆॥

दुर्मुखः पुनरुत्पाट्य कपिः स विपुलद्रुमम् ।
राक्षसं क्षिप्रहस्तस्तु समुन्नतमपोथयत् ॥₁₇॥

जाम्बवांस्तु सुसङ्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥₁₈॥

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ।
वृक्षेणाभिहतो मूर्ध्नि प्राणांस्तत्याज राक्षसः ॥₁₉॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमास्थितः ।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥₂₀॥

आवर्त इव संजज्ञे उभयोः सेनयोस्तदा ।

क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निस्वनः ॥₂₁॥

महता हि शरौघेण प्रहस्तो युद्धकोविदः ।
अर्दयामास सङ्क्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥₂₂॥

वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी ।
बभूव निचिता घोरा पतितैरिव पर्वतैः ॥₂₃॥

सा महीरुधिरौघेण प्रच्छन्ना सम्प्रकाशते ।
सञ्छन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥₂₄॥

हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् ।
शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ॥₂₅॥

यकृत्स्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ।
भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाङ्गलाम् ॥₂₆॥

गृध्रहंसगणाकीर्णां कङ्कसारससेविताम् ।
मेधःफेनसमाकीर्णामार्तस्तनितनिस्वनाम् ॥₂₇॥

तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् ।
नदीमिव घनापाये हंससारससेविताम् ॥₂₈॥

राक्षसाः कपिमुख्याश्च तेरुस्तां दुस्तारां नदीम् ।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥₂₉॥

ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् ।
ददर्श तरसा नीलो विनिघ्नन्तं प्लवङ्गमान् ॥₃₀॥

स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः ।
प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥₃₁॥

स तेनाभिहतः क्रुद्धो नदन्नाक्षसपुङ्गवः ।

ववर्ष शरवर्षाणि प्लवगानां चमूपतौ ॥₃₂॥

अपारयन्वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः ।
यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ॥₃₃॥

एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षं दुरासदम् ।
निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे सुदारुणम् ॥₃₄॥

रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान् ।
प्रजघान हयान्नीलः प्रहस्तस्य मनोजवान् ॥₃₅॥

विधनुस्तु कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुल्लुवे ॥₃₆॥

तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातरोषौ तरस्विनौ ।
स्थितौ क्षतजदिग्धाङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरो ॥₃₇॥

उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥₃₈॥

विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ ।
काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोः समौ ॥₃₉॥

आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः ।
प्रहस्तः परमायस्तस्तस्य सुस्त्राव शोणितम् ॥₄₀॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य सुमहातरुम् ।
प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥₄₁॥

तमचिन्त्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत् ।
अभिदुद्राव बलिनं बली नीलं प्लवङ्गमम् ॥₄₂॥

तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ।

ततः सम्प्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् ॥₄₃॥

तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ।
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ॥₄₄॥

सा तेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥₄₅॥

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥₄₆॥

विभिन्नशिरसस्तस्य बहु सुस्नावशोणितम् ।
शरीरादपि सुस्नाव गिरेः प्रस्रवणं यथा ॥₄₇॥

हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महद्वलम् ।
रक्षसामप्रहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥₄₈॥

न शेकुः समवस्थातुं निहते वाहिनीपतौ ।
सेतुबन्धं समासाद्य विशीर्णं सलिलं यथा ॥₄₉॥

हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसस्ते निरुद्यमाः ।
रक्षःपतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वाभागताः ॥₅₀॥

ततस्तु नीलो विजयी महाबलः
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन
प्रहृष्टरूपस्तु बभूव यूथपः ॥₅₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्त्वारिंशः सर्गः॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

तस्मिन्हते राक्षससैन्यपाले
 प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
 भीमायुधं सागरतुल्यवेगम्
 प्रदुद्रुवे राक्षसराजसैन्यम् ॥₁॥

गत्वा तु रक्षोऽधिपतेः शशंसुः
 सेनापतिं पावकसूनुशस्तम् ।
 तच्चापि तेषां वचनं निशम्य
 रक्षोऽधिपः क्रोधवशं जगाम ॥₂॥

सङ्क्षो प्रहस्तं निहतं निशम्य
 शोकार्दितः क्रोधपरीतचेताः ।
 उवाच तान्नेर्ऋतयोधमुख्यान्
 इन्द्रो यथा चामरयोधमुख्यान् ॥₃॥

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसूदनः ।
 सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥₄॥

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् ।
 स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥₅॥

अद्य तद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् ।
 निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥₆॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशम्
 रथं तुरङ्गोत्तमराजियुक्तम् ।
 प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तम्
 समारुरोहामरराजशत्रुः ॥₇॥

स शङ्खभेरीपटह प्रणादैः
आस्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ।
पुण्यैः स्तवैश्चाप्यभिपूज्यमानः
तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥८॥

स शैलजीमूतनिकाश रूपैर्-
मांसाशनैः पावकदीप्तनेत्रैः ।
बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यैर्-
भूतैर्वृतो रुद्र इवामरेशः ॥९॥

ततो नगर्याः सहसा महौजा
निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श
समुद्यतं पादपशैलहस्तम् ॥१०॥

तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डम्
आलोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः ।
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठम्
उवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥११॥

नानापताकाध्वजशस्त्रजुष्टम्
प्रासासिशूलायुधचक्रजुष्टम् ।
सैन्यं नगेन्द्रोपमनागजुष्टम्
कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टम् ॥१२॥

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यम्
विभीषणः शक्रसमानवीर्यः ।
शशंस रामस्य बलप्रवेकम्
महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥१३॥

योऽसौ गजस्कन्धगतो महात्मा
नवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ।
प्रकम्पयन्नागशिरोऽभ्युपैति

ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन् ॥₁₄॥

योऽसौ रथस्थो मृगराजकेतुर्-
धून्वन्धनुः शक्रधनुःप्रकाशम् ।
करीव भात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रः
स इन्द्रजिन्नाम वरप्रधानः ॥₁₅॥

यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो
धन्वी रथस्थोऽतिरथोऽतिवीर्यः ।
विस्फारयंश्चापमतुल्यमानम्
नाम्नातिकायोऽतिविवृद्धकायः ॥₁₆॥

योऽसौ नवाकोदितताम्रचक्षुः
आरुह्य घण्टानिनदप्रणादम् ।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा
महोदरो नाम स एष वीरः ॥₁₇॥

योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्डम्
आरुह्य सन्ध्याभ्रगिरिप्रकाशम् ।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धम्
पिशाच एषाशनितुल्यवेगः ॥₁₈॥

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य
विद्युत्प्रभं किङ्करवज्रवेगम् ।
वृषेन्द्रमास्थाय गिरिप्रकाशम्
आयाति सोऽसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥₁₉॥

असौ च जीमूतनिकाश रूपः
कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः ।
समाहितः पन्नगराजकेतुर्-
विस्फारयन्भाति धनुर्विधून्वन् ॥₂₀॥

यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टम्

दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य ।
आयाति रक्षोबलकेतुभूतः
सोऽसौ निकुम्भोऽद्भुतघोरकर्मा ॥ 21 ॥

यश्चैष चापासिशरौघजुष्टम्
पताकिनं पावकदीप्तरूपम् ।
रथं समास्थाय विभात्युदग्रे
नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी ॥ 22 ॥

यश्चैष नानाविधघोररूपैर्-
व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगेन्द्रवक्त्रैः ।
भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रैः
सोऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥ 23 ॥

यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति
छत्तं सितं सूक्ष्मशलाकमग्रम् ।
अत्रैष रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
भूतैर्वृतो रुद्र इवावभाति ॥ 24 ॥

असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो
नागेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः ।
महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता
रक्षोऽधिपः सूर्य इवावभाति ॥ 25 ॥

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमम् ।
अहो दीप्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ 26 ॥

आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः ।
सुव्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजःसमावृतम् ॥ 27 ॥

देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत् ।
यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतत्प्रकाशते ॥ 28 ॥

सर्वे पर्वतसङ्काशाः सर्वे पर्वतयोधिनः ।
सर्वे दीप्तायुधधरा योधश्चास्य महौजसः ॥₂₉॥

भाति राक्षसराजोऽसौ प्रदीप्तैर्भीमविक्रमैः ।
भूतैः परिवृतस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवान्तकः ॥₃₀॥

एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् ।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥₃₁॥

ततः स रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
रक्षांसि तान्याह महाबलानि ।
द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु
सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः ॥₃₂॥

विसर्जयित्वा सहसा ततस्तान्
गतेषु रक्षःसु यथानियोगम् ।
व्यदारयद्वानरसागरौघम्
महाझषः पूर्वमिवार्णवौघम् ॥₃₃॥

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम् ।
महत्समुत्पाट्य महीधराग्रम्
दुद्राव रक्षोऽधिपतिं हरीशः ॥₃₄॥

तच्छैलशृङ्गं बहुवृक्षसानुम्
प्रगृह्य चिक्षेप निशाचराय ।
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
बिभेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥₃₅॥

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षे
शृङ्गे विकीर्णे पतिते पृथिव्याम् ।
महाहिकल्पं शरमन्तकाभम्
समाददे राक्षसलोकनाथः ॥₃₆॥

स तं गृहीत्वानिलतुल्यवेगम्
सविस्फुलिङ्गज्वलनप्रकाशम् ।
बाणं महेन्द्राशनितुल्यवेगम्
चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥³⁷॥

स सायको रावणबाहुमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यवपुः शिताग्रः ।
सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगाद्-
गुहेरिता क्रौचमिवोग्रशक्तिः ॥³⁸॥

स सायकार्तो विपरीतचेताः
कूजन्यृथिव्यां निपपात वीरः ।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसञ्जम्
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥³⁹॥

ततो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रः
तथर्षभो ज्योतिमुखो नलश्च ।
शैलान्समुद्यम्य विवृद्धकायाः
प्रदुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥⁴⁰॥

तेषां प्रहारान्स चकार मेघान्
रक्षोऽधिपो बाणगणैः शिताग्रैः ।
तान्वानरेन्द्रानपि बाणजालैर्-
बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥⁴¹॥

ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणैर्-
भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमरूपाः ।
ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रम्
प्रच्छादयामास स बाणजालैः ॥⁴²॥

ते वध्यमानाः पतिताग्रवीरा
नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ।
शाखामृगा रावणसायकार्ता

जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥₄₃॥

ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मा
नादाय रामः सहरा जगाम ।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य
उवाच वाक्यं परमार्थयुक्तम् ॥₄₄॥

काममार्यः सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः ।
विधमिष्याम्यहं नीचमनुजानीहि मां विभो ॥₄₅॥

तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ।
गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥₄₆॥

रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः ।
त्रैलोकेनापि सङ्क्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥₄₇॥

तस्य छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च गोपय ।
चक्षुषा धनुषा यत्नाद्रक्षात्मानं समाहितः ॥₄₈॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सम्परिष्वज्य पूज्य च ।
अभिवाद्य ततो रामं ययौ सौमित्रिराहवम् ॥₄₉॥

स रावणं वारणहस्तबाहुर्-
ददर्श दीप्तोद्यतभीमचापम् ।
प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालैः
तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥₅₀॥

तमालोक्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजा ।
निवार्य शरजालानि प्रदुद्राव स रावणम् ॥₅₁॥

रथं तस्य समासाद्य भुजमुद्यम्य दक्षिणम् ।
त्रासयन्नावणं धीमान्हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥₅₂॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षाश्च सह राक्षसैः ।
अवध्यत्वात्तया भग्ना वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥⁵³॥

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः ।
विधमिष्यति ते देहाद्भूतात्मानं चिरोषितम् ॥⁵⁴॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः ।
संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥⁵⁵॥

क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि ।
ततस्त्वां ज्ञातिविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर ॥⁵⁶॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोऽब्रवीत् ।
प्रहृतं हि मया पूर्वमक्षं स्मर सुतं तव ॥⁵⁷॥

एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ।
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥⁵⁸॥

स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः ।
आजघानाभिसङ्क्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥⁵⁹॥

ततस्तलेनाभिहतो वानरेण महात्मना ।
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥⁶⁰॥

सङ्ग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम् ।
ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहासुराः ॥⁶¹॥

अथाश्वस्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
साधु वानरवीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥⁶²॥

रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ।
धिगस्तु मम वीर्यं तु यत्त्वं जीवसि रावण ॥⁶³॥

सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे ।
ततस्त्वां मामको मुष्टिर्नयिष्यामि यथाक्षयम् ।
ततो मारुतिवाक्येन क्रोधस्तस्य तदाज्वलत् ॥ 64 ॥

संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान् ।
हनूमान्वक्षसि व्यूधे सञ्चाल हतः पुनः ॥ 65 ॥

विह्वलं तं तदा दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ।
रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात् ॥ 66 ॥

पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्मातिभेदिभिः ।
शरैरादीपयामास नीलं हरिचमूपतिम् ॥ 67 ॥

स शरौघसमायस्तो नीलः कपिचमूपतिः ।
करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोऽधिपतयेऽसृजत् ॥ 68 ॥

हनूमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः ।
विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत् ॥ 69 ॥

नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम् ॥ 70 ॥

रावणोऽपि महातेजास्तच्छृङ्गं सप्तभिः शरैः ।
आजघान सुतीक्ष्णाग्रेस्तद्विकीर्णं पपात ह ॥ 71 ॥

तद्विकीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः ।
कालाग्निरिव जज्वाल क्रोधेन परवीरहा ॥ 72 ॥

सोऽश्वकर्णान्धवान्सालांश्चूतांश्चापि सुपुष्पितान् ।
अन्यांश्च विविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेप संयुगे ॥ 73 ॥

स तान्वृक्षान्समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः ।

अभ्यवर्षत्सुघोरेण शरवर्षेण पावकिम् ॥₇₄॥

अभिवृष्टः शरौघेण मेघेनेव महाचलः ।
ह्रस्वं कृत्वा तदा रूपं ध्वजाग्रे निपपात ह ॥₇₅॥

पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समवस्थितम् ।
जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद ह ॥₇₆॥

ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम् ।
लक्ष्मणोऽथ हनूमांश्च दृष्ट्वा रामश्च विस्मिताः ॥₇₇॥

रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः ।
अस्त्रमाहारयामास दीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥₇₈॥

ततस्ते चुक्रुशुर्हृष्टा लब्धलक्ष्याः प्लवङ्गमाः ।
नीललाघवसम्भ्रान्तं दृष्ट्वा रावणमाहवे ॥₇₉॥

वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा ।
सम्भ्रमाविष्टहृदयो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥₈₀॥

आग्नेयेनाथ संयुक्तं गृहीत्वा रावणः शरम् ।
ध्वजशीर्षस्थितं नीलमुदैक्षत निशाचरः ॥₈₁॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ।
कपे लाघवयुक्तोऽसि मायया परयानया ॥₈₂॥

जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्रोपि वानर ।
तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसे त्वमनेकशः ॥₈₃॥

तथापि त्वां मया मुक्तः सायकोऽस्त्रप्रयोजितः ।
जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥₈₄॥

एवमुक्त्वा महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः ।

सन्धाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत् ॥⁸⁵॥

सोऽस्त्रयुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः ।
निर्दह्यमानः सहसा निपपात महीतले ॥⁸⁶॥

पितृमाहात्म्य संयोगादात्मनश्चापि तेजसा ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ न च प्राणैर्व्ययुज्यत ॥⁸⁷॥

विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः ।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥⁸⁸॥

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो
विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् ।
अन्वेहि मामेव निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रति योद्धुमर्हसि ॥⁸⁹॥

स तस्य वाक्यं परिपूर्णघोषम्
ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा ।
आसाद्य सौमित्रिमवस्थितं तम्
कोपान्वितं वाक्यमुवाच रक्षः ॥⁹⁰॥

दिष्ट्वासि मे राघव दृष्टिमार्गम्
प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः ।
अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युदेशम्
संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥⁹¹॥

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो
गर्जन्तमुद्धतसिताग्रदंष्ट्रम् ।
राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा
विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥⁹²॥

जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र
बलं प्रतापं च पराक्रमं च ।

अवस्थितोऽहं शरचापपाणिः
आगच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥ 93 ॥

स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज
रक्षोऽधिपः सप्तशरान्सुपुङ्खान् ।
ताँल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैः
चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥ 94 ॥

तान्प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्
निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान् ।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम
ससर्ज चान्यान्निशितान्मृषत्कान् ॥ 95 ॥

स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रम्
रामानुजः कार्मुकसम्प्रयुक्तम् ।
क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लैः
शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥ 96 ॥

स लक्ष्मणश्चाशु शराञ्शिताग्रान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगान् ।
सन्धाय चापे ज्वलनप्रकाशान्
ससर्ज रक्षोऽधिपतेर्वधाय ॥ 97 ॥

स तान्प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रः
छित्त्वा च ताँल्लक्ष्मणमाजघान ।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण
स्वयम्भुदत्तेन ललाटदेशे ॥ 98 ॥

स लक्ष्मणो रावणसायकार्तः
चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य ।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रात्
चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥ 99 ॥

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान
बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रेः ।
स सायकार्तो विचचाल राजा
कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥₁₀₀॥

स कृत्तचापः शरताडितश्च
स्वेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ।
जग्राह शक्तिं समुदग्रशक्तिः
स्वयम्भुदत्तां युधि देवशत्रुः ॥₁₀₁॥

स तां विधूमानलसंनिकाशाम्
वित्रासनीं वानरवाहिनीनाम् ।
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीम्
सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥₁₀₂॥

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्-
जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः ।
तथापि सा तस्य विवेश शक्तिर्-
भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥₁₀₃॥

शक्त्या ब्राम्या तु सौमित्रिस्ताडितस्तु स्तनान्तरे ।
विष्णोरचिन्त्यं स्वं भागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥₁₀₄॥

ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः ।
तं पीडयित्वा बाहुभ्यामप्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥₁₀₅॥

हिमवान्मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः ।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न सङ्ख्ये भरतानुजः ॥₁₀₆॥

अथैनं वैष्णवं भागं मानुषं देहमास्थितम् ।
विसंज्ञं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रावणो विस्मितोऽभवत् ॥₁₀₇॥

अथ वायुसुतः क्रुद्धो रावणं समभिद्रवत् ।

आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥₁₀₈॥

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ चचाल च पपात च ॥₁₀₉॥

विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम् ।
ऋषयो वानराश्चैव नेदुर्देवाः सवासवाः ॥₁₁₀॥

हनूमानपि तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ।
अनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥₁₁₁॥

वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः ।
शत्रूणामप्रकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत्कपेः ॥₁₁₂॥

तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि दुर्जयम् ।
रावणस्य रथे तस्मिन्स्थानं पुनरुपागमत् ॥₁₁₃॥

रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे ।
आददे निशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥₁₁₄॥

आश्वस्तश्च विशत्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥₁₁₅॥

निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् ।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥₁₁₆॥

अथैनमुपसङ्गम्य हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ।
मम पृष्ठं समारुह्य रक्षसं शास्तुमर्हसि ॥₁₁₇॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम् ।
आरोहत्सहसा शूरो हनूमन्तं महाकपिम् ।
रथस्थं रावणं सङ्क्षो ददर्श मनुजाधिपः ॥₁₁₈॥

तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स राघवः ।
वैरोचनमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ 119 ॥

ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिस्वनम् ।
गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥ 120 ॥

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
क्व नु राक्षसशार्दूल गतो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ 121 ॥

यदीन्द्रवैवस्वत भास्करान्वा
स्वयम्भुवैश्वानरशङ्करान्वा ।
गमिष्यसि त्वं दश वा दिशो वा
तथापि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे ॥ 122 ॥

यश्चैष शक्त्याभिहतस्त्वयाद्य
इच्छन्विषादं सहसाम्युपेतः ।
स एष रक्षोगणराज मृत्युः
सपुत्रदारस्य तवाद्य युद्धे ॥ 123 ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाकपिम् ।
आजघान शरैस्तीक्ष्णैः कालानलशिखोपमैः ॥ 124 ॥

राक्षसेनाहवे तस्य ताडितस्यापि सायकैः ।
स्वभावतेजोयुक्तस्य भूयस्तेजो व्यवर्धत ॥ 125 ॥

ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् ।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं क्रोधस्य वशमेयिवान् ॥ 126 ॥

तस्याभिसङ्क्रम्य रथं सचक्रम्
साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ।
ससारथिं साशनिशूलखड्गम्
रामः प्रचिच्छेद शरैः सुपुङ्खैः ॥ 127 ॥

अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान
बाणेन वज्राशनिसंनिभेन ।
भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे
वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥₁₂₈॥

यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्
न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तः
चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥₁₂₉॥

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः
समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटम्
चिच्छेद रक्षोऽधिपतेर्महात्माः ॥₁₃₀॥

तं निर्विषाशीविषसंनिकाशम्
शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटम्
उवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥₁₃₁॥

कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमम्
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वं शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥₁₃₂॥

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो
निकृत्तचापः स हताश्वसूतः ।
शरार्दितः कृत्तमहाकिरीटो
विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा ॥₁₃₃॥

तस्मिन्प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे
महाबले दानवदेवशत्रौ ।
हरीन्विशल्यान्सहलक्ष्मणेन

चकार रामः परमाहवाग्रे ॥₁₃₄॥

तस्मिन्प्रभग्रे त्रिदशेन्द्रशत्रौ
सुरासुरा भूतगणा दिशश्च ।
ससागराः सर्पिमहोरगाश्च
तथैव भूम्यम्बुचराश्च हृष्टाः ॥₁₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः ।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥₁॥

मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ।
अभिभूतोऽभवद्राजा राघवेण महात्मना ॥₂॥

ब्रह्मदण्डप्रकाशानां विद्युत्सदृशवर्चसाम् ।
स्मरन्नाघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥₃॥

स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् ।
विकप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥₄॥

सर्वं तत्खलु मे मोघं यत्तप्तं परमं तपः ।
यत्समानो महेन्द्रेण मानुषेणास्मि निर्जितः ॥₅॥

इदं तद्ब्रह्मणो घोरं वाक्यं मामभ्युपस्थितम् ।
मानुषेभ्यो विजानीहि भयं ब्रूमिति तत्तथा ॥₆॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ।
अवध्यत्नं मया प्राप्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥₇॥

एतदेवाभ्युपागम्य यत्नं कर्तुमिहार्हम् ।
राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु चर्यागोपुरमूर्धसु ॥₈॥

स चाप्रतिमगम्भीरो देवदानवदर्पहा ।
ब्रह्मशापाभिभूतस्तु कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥₉॥

स पराजितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ।

ज्ञात्वा रक्षोबलं भीममादिदेश महाबलः ॥₁₀॥

द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकाराश्चाधिरुह्यताम् ।
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥₁₁॥

नव षट्षत्त चाष्टौ च मासान्स्वपिति राक्षसः ।
तं तु बोधयत क्षिप्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥₁₂॥

स हि सङ्ख्ये महाबाहुः ककुदं सर्वरक्षसाम् ।
वानरान्राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव वधिष्यति ॥₁₃॥

कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ।
रामेणाभिनिरस्तस्य सङ्ग्रामोऽस्मिन्सुदारुणे ॥₁₄॥

भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ।
किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि ॥₁₅॥

ईदृशे व्यसने प्राप्ते यो न साहाय्य कल्पते ।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥₁₆॥

जग्मुः परमसम्भ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ।
ते रावणसमादिष्टा मांसशोणितभोजनाः ॥₁₇॥

गन्धमाल्यांस्तथा भक्ष्यानादाय सहसा ययुः ।
तां प्रविश्य महाद्वारां सर्वतो योजनायताम् ॥₁₈॥

कुम्भकर्णगुहां रम्यां सर्वगन्धप्रवाहिनीम् ।
प्रतिष्ठमानाः कृच्छ्रेण यत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥₁₉॥

तां प्रविश्य गुहां रम्यां शुभां काञ्चनकुट्टिमाम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं शयानं भीमदर्शनम् ॥₂₀॥

ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम् ।

कुम्भकर्णं महानिद्रं सहिताः प्रत्यबोधयन् ॥ 21 ॥

ऊर्ध्वरोमाश्रिततनुं श्वसन्तमिव पन्नगम् ।
त्रासयन्तं महाश्वासैः शयानं भीमदर्शनम् ॥ 22 ॥

भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम् ।
ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ 23 ॥

ततश्चक्रुर्महात्मानः कुम्भकर्णाग्रतस्तदा ।
मांसानां मेरुसङ्काशं राशिं परमतर्पणम् ॥ 24 ॥

मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च सञ्चयान् ।
चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ॥ 25 ॥

ततः शोणितकुम्भांश्च मद्यानि विविधानि च ।
पुरस्तात्कुम्भकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ 26 ॥

लिलिपुश्च परार्धेन चन्दनेन परन्तपम् ।
दिव्यैराच्छादयामासुर्मात्यैर्गन्धैः सुगन्धिभिः ॥ 27 ॥

धूपं सुगन्धं ससृजुस्तुष्टुवुश्च परन्तपम् ।
जलदा इव चोनेदुर्यातुधानाः सहस्रशः ॥ 28 ॥

शङ्खानापूरयामासुः शशाङ्कसदृशप्रभान् ।
तुमुलं युगपच्चापि विनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ 29 ॥

नेदुरास्फोटयामासुश्चिक्षिपुस्ते निशाचराः ।
कुम्भकर्णविबोधार्थं चक्रुस्ते विपुलं स्वनम् ॥ 30 ॥

सशङ्खभेरीपटहप्रणादम्
आस्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादम् ।
दिशो द्रवन्तस्त्रिदिवं किरन्तः
श्रुत्वा विहङ्गाः सहसा निपेतुः ॥ 31 ॥

यदा भृशं तैर्निनदैर्महात्मा
न कुम्भकर्णो बुबुधे प्रसुप्तः ।
ततो मुसुण्डीमुसलानि सर्वे
रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥₃₂॥

तं शैलशृङ्गैर्मुसलैर्गदाभिर्-
वृक्षैस्तलैर्मुद्गरमुष्टिभिश्च ।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णम्
रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥₃₃॥

तस्य निश्वासवातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसः ।
राक्षसा बलवन्तोऽपि स्थातुं नाशक्नुवन्पुरः ॥₃₄॥

ततोऽस्य पुरतो गाढं राक्षसा भीमविक्रमाः ।
मृदङ्गपणवान्भेरीः शङ्खकुम्भगणांस्तथा ।
दशराक्षससाहस्रं युगपत्पर्यवादयन् ॥₃₅॥

नीलाञ्जनचयाकारं ते तु तं प्रत्यबोधयन् ।
अभिघ्नन्तो नदन्तश्च नैव संविविदे तु सः ॥₃₆॥

यदा चैनं न शेकुस्ते प्रतिबोधयितुं तदा ।
ततो गुरुतरं यत्नं दारुणं समुपाक्रमन् ॥₃₇॥

अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघूर्दण्डकशाङ्कुशैः ।
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च सर्वप्राणैरवादयन् ॥₃₈॥

निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटं करैः ।
मुद्गरैर्मुसलैश्चैव सर्वप्राणसमुद्यतैः ॥₃₉॥

तेन शब्देन महता लङ्का समभिपूरिता ।
सपर्वतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥₄₀॥

ततः सहस्रं भेरीणां युगपत्समहन्यत ।

मृष्टकाधनकोणानामसक्तानां समन्ततः ॥₄₁॥

एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यत ।
शापस्य वशमापन्नस्ततः क्रुद्धा निशाचराः ॥₄₂॥

महाक्रोधसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमाः ।
तद्रक्षोबोधयिष्यन्तश्चक्रुरन्ये पराक्रमम् ॥₄₃॥

अन्ये भेरीः समाजघ्नरन्ये चक्रुर्महास्वनम् ।
केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णावन्ये दशन्ति च ।
न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशं गतः ॥₄₄॥

अन्ये च बलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणयः ।
मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन्कूटमुद्गरान् ॥₄₅॥

रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वतः ।
वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः ॥₄₆॥

वारणानां सहस्रं तु शरीरेऽस्य प्रधावितम् ।
कुम्भकर्णस्ततो बुद्धः स्पर्शं परमबुध्यत ॥₄₇॥

स पात्यमानैर्गिरिशृङ्गवृक्षैः
अचिन्तयंस्तान्विपुलान्प्रहारान् ।
निद्राक्षयात्क्षुद्रयपीडितश्च
विजृम्भमाणः सहस्रोत्पपात ॥₄₈॥

स नागभोगाचलशृङ्गकल्पौ
विक्षिप्य बाहू गिरिशृङ्गसारौ ।
विवृत्य वक्तं वडवामुखाभम्
निशाचरोऽसौ विकृतं जजृम्भे ॥₄₉॥

तस्य जाजृम्भमाणस्य वक्तं पातालसंनिभम् ।
ददृशे मेरुशृङ्गाग्रे दिवाकर इवोदितः ॥₅₀॥

विजृम्भमाणोऽतिबलः प्रतिबुद्धो निशाचरः ।
निश्वासश्चास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः ॥₅₁॥

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद्वभौ ।
तपान्ते सबलाकस्य मेघस्येव विवर्षतः ॥₅₂॥

तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी ।
ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ ॥₅₃॥

आदद्भुक्षितो मांसं शोणितं तृषितोऽपिबत् ।
मेदः कुम्भं च मद्यं च पपौ शक्ररिपुस्तदा ॥₅₄॥

ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः ।
शिरोभिश्च प्रणम्येनं सर्वतः पर्यवारयन् ॥₅₅॥

स सर्वान्सान्त्वयामास नैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ।
बोधनाद्विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत् ॥₅₆॥

किमर्थमहमाहत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः ।
कच्चित्सुकुशलं राज्ञो भयं वा नेह किञ्चन ॥₅₇॥

अथ वा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम् ।
यदर्थमेव बरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः ॥₅₈॥

अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ।
पातयिष्ये महेन्द्रं वा शातयिष्ये तथानलम् ॥₅₉॥

न ह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मां भृशम् ।
तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम् ॥₆₀॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णमरिन्दमम् ।
यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरुवाच ह ॥₆₁॥

न नो देवकृतं किञ्चिद्भयमस्ति कदाचन ।
न दैत्यदानवेभ्यो वा भयमस्ति हि तादृशम् ।
यादृशं मानुषं राजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥⁶²॥

वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता ।
सीताहरणसन्तप्ताद्रामान्नस्तुमुलं भयम् ॥⁶³॥

एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी ।
कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥⁶⁴॥

स्वयं रक्षोऽधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः ।
मृतेति संयुगे मुक्तारामेणादित्यतेजसा ॥⁶⁵॥

यन्न देवैः कृतो राजा नापि दैत्यैर्न दानवैः ।
कृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसंशयात् ॥⁶⁶॥

स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराजयम् ।
कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥⁶⁷॥

सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम् ।
राघवं च रणे हत्वा पश्चाद्द्रक्ष्यामि रावणम् ॥⁶⁸॥

राक्षसांस्तर्पयिष्यामि हरीणां मांसशोणितैः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पास्यामि शोणितम् ॥⁶⁹॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निश्चम्य
सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम् ।
महोदरो नैर्ऋतयोधमुख्यः
कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥⁷⁰॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषु विमृश्य च ।
पश्चादपि महाबाहो शत्रून्युधि विजेष्यसि ॥⁷¹॥

महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः ।
कुम्भकर्णो महातेजाः सम्प्रतस्थे महाबलः ॥ 72 ॥

तं समुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् ।
राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ 73 ॥

ततो गत्वा दशग्रीवमासीनं परमासने ।
ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्व एव निशाचराः ॥ 74 ॥

प्रबुद्धः कुम्भकर्णोऽसौ भ्राता ते राक्षसर्षभ ।
कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यसे तमिहागतम् ॥ 75 ॥

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो यथान्यायं च पूजितम् ।
द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूजितम् ॥ 76 ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः ।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ 77 ॥

द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः ।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं सम्प्रहर्षय ॥ 78 ॥

कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥ 79 ॥

प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमभूषितः ।
पिपासुस्त्वरयामास पानं बलसमीरणम् ॥ 80 ॥

ततस्ते त्वरितास्तस्य राज्ञस्य रावणाज्ञया ।
मद्यं भक्ष्यांश्च विविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ 81 ॥

पीत्वा घटसहस्रं स गमनायोपचक्रमे ॥ 82 ॥

ईषत्समुत्कटो मत्तस्तेजोबलसमन्वितः ।
कुम्भकर्णो बभौ हृष्टः कालान्तकयमोपमः ॥ 83 ॥

भ्रातुः स भवनं गच्छन्नक्षोबलसमन्वितः ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥₈₄॥

स राजमार्गं वपुषा प्रकाशयन्
सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ।
जगाम तत्राञ्जलिमालया वृतः
शतक्रतुर्गेहमिव स्वयम्भुवः ॥₈₅॥

केचिच्छरण्यं शरणं स्म रामम्
व्रजन्ति केचिद्व्यथिताः पतन्ति ।
केचिद्दिशः स्म व्यथिताः प्रयान्ति
केचिद्भयार्ता भुवि शेरते स्म ॥₈₆॥

तमद्रिशृङ्गप्रतिमं किरीटिनम्
स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ।
वनौकसः प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुतम्
भयार्दिता दुद्रुविरे ततस्ततः ॥₈₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
किरीटिनं महाकायं कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥₁॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ।
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं प्रभुम् ॥₂॥

सतोयाम्बुदसङ्काशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
दृष्ट्वा पुनः प्रदुद्राव वानराणां महाचमूः ॥₃॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम् ।
सविस्मयमिदं रामो विभीषणमुवाच ह ॥₄॥

कोऽसौ पर्वतसङ्काशः किरीटी हरिलोचनः ।
लङ्कायां दृश्यते वीरः सविद्युदिव तोयदः ॥₅॥

पृथिव्याः केतुभूतोऽसौ महानेकोऽत्र दृश्यते ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति ततस्ततः ॥₆॥

आचक्ष्व मे महान्कोऽसौ रक्षो वा यदि वासुरः ।
न मयैवंविधं भूतं दृष्टपूर्वं कदाचन ॥₇॥

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकारिणा ।
विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥₈॥

येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः ।
सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान् ॥₉॥

एतेन देवा युधि दानवाश्च

यक्षा भुजङ्गाः पिशिताशनाश्च ।
गन्धर्वविद्याधरकिंनराश्च
सहस्रशो राघव सम्प्रभग्नाः ॥₁₀॥

शूलपाणिं विरूपाक्षं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोऽयमिति मोहिताः ॥₁₁॥

प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः ।
अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥₁₂॥

एतेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना ।
भक्षितानि सहस्राणि सत्त्वानां सुबहून्यपि ॥₁₃॥

तेषु सम्भक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिताः ।
यान्ति स्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥₁₄॥

स कुम्भकर्णं कुपितो महेन्द्रो
जघान वज्रेण शितेन वज्री ।
स शक्रवज्राभिहतो महात्मा
चचाल कोपाच्च भृशं ननाद ॥₁₅॥

तस्य नानद्यमानस्य कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
श्रुत्वा निनादं वित्रस्ता भूयो भूमिर्वितत्रसे ॥₁₆॥

ततः कोपान्महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः ।
विकृष्यैरावतादन्तं जघानोरसि वासवम् ॥₁₇॥

कुम्भकर्णप्रहारार्तो विचचाल स वासवः ।
ततो विषेद्गुः सहसा देवब्रह्मर्षिदानवाः ॥₁₈॥

प्रजाभिः सह शक्रश्च ययौ स्थानं स्वयम्भुवः ।
कुम्भकर्णस्य दौरात्म्यं शशंसुस्ते प्रजापतेः ।
प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धर्षणम् ॥₁₉॥

एवं प्रजा यदि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः ।
अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥₂₀॥

वासवस्य वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ।
रक्षांस्यावाहयामास कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥₂₁॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितत्रास प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा निश्चस्य चैवेदं स्वयम्भूरिदमब्रवीत् ॥₂₂॥

ध्रुवं लोकविनाशाय पौरस्त्येनासि निर्मितः ।
तस्माच्चमद्य प्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसि ।
ब्रह्मशापाभिभूतोऽथ निपपाताग्रतः प्रभोः ॥₂₃॥

ततः परमसम्भ्रान्तो रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
विवृद्धः काञ्चनो वृक्षः फलकाले निकृत्यते ॥₂₄॥

न नष्टारं स्वकं न्याय्यं शत्रुमेवं प्रजापते ।
न मिथ्यावचनश्च त्वं स्वप्स्यत्येष न संशयः ।
कालस्तु क्रियतामस्य शयने जागरे तथा ॥₂₅॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा स्वयम्भूरिदमब्रवीत् ।
शयिता ह्येष षण्मासानेकाहं जागरिष्यति ॥₂₆॥

एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन्भूमिं बुभुक्षितः ।
व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान्सङ्क्रुद्ध इव पावकः ॥₂₇॥

सोऽसौ व्यसनमापन्नः कुम्भकर्णमबोधयत् ।
त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा सम्प्रति रावणः ॥₂₈॥

स एष निर्गतो वीरः शिविराद्भीमविक्रमः ।
वानरान्भृशसङ्क्रुद्धो भक्षयन्परिधावति ॥₂₉॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयो विप्रदुद्रुवुः ।

कथमेनं रणे क्रुद्धं वारयिष्यन्ति वानराः ॥₃₀॥

उच्यन्तां वानराः सर्वे यन्त्रमेतत्समुच्छ्रितम् ।
इति विज्ञाय हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥₃₁॥

विभीषणवचः श्रुत्वा हेतुमत्सुमुखोद्भूतम् ।
उवाच राघवो वाक्यं नीलं सेनापतिं तदा ॥₃₂॥

गच्छ सैन्यानि सर्वाणि व्यूह्य तिष्ठस्व पावके ।
द्वाराण्यादाय लङ्कायाश्चर्याश्चाप्यथ सङ्क्रमान् ॥₃₃॥

शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च शिलाश्चाप्युपसंहरन् ।
तिष्ठन्तु वानराः सर्वे सायुधाः शैलपाणयः ॥₃₄॥

राघवेण समादिष्टो नीलो हरिचमूपतिः ।
शशास वानरानीकं यथावत्कपिकुञ्जरः ॥₃₅॥

ततो गवाक्षः शरभो हनुमानङ्गदो नलः ।
शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययुः ॥₃₆॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रम्
रराज शैलोद्यतवृक्षहस्तम् ।
गिरेः समीपानुगतं यथैव
महन्महाम्भोधरजालमुग्रम् ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥₁॥

राक्षसानां सहस्रैश्च वृतः परमदुर्जयः ।
गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कार्यमाणस्तदा ययौ ॥₂॥

स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम् ।
ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥₃॥

स तत्तदा सूर्यं इवाभ्रजालम्
प्रविश्य रक्षोऽधिपतेर्निवेशनम् ।
ददर्श दूरेऽग्रजमासनस्थम्
स्वयम्भुवं शक्रं इवासनस्थम् ॥₄॥

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥₅॥

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः संनिकर्षमुपानयत् ॥₆॥

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः ।
भ्रातुर्ववन्दे चरणां किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ।
उत्पत्य चैनं मुदितो रावणः परिषस्वजे ॥₇॥

स भ्रात्रा सम्परिष्वक्तो यथावद्याभिनन्दितः ।
कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥₈॥

स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ।

संरक्तनयनः कोपाद्रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्प्रबोधितः ।
शंस कस्माद्भयं तेऽस्ति कोऽद्य प्रेतो भविष्यति ॥१०॥

भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ।
ईषत्तु परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥११॥

अद्य ते सुमहान्कालः शयानस्य महाबल ।
सुखितस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ॥१२॥

एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥१३॥

हन्त पश्यस्व लङ्काया वनान्युपवनानि च ।
सेतुना सुखमागम्य वानरैर्कार्णवं कृतम् ॥१४॥

ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ।
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥१५॥

सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्यवपद्य माम् ।
त्रायस्वमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥१६॥

भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् ।
मयैवं नोक्तपूर्वो हि कश्चिद्भातः परन्तप ।
त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे ॥१७॥

देवासुरविमर्देषु बहुशो राक्षसर्षभ ।
त्वया देवाः प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चासुरा युधि ।
न हि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली ॥१८॥

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमम्
यथाप्रियं प्रियरणबान्धवप्रिय ।

स्वतेजसा विधम सपत्नवाहिनीम्
शरद्धनं पवन इवोद्यतो महान् ॥¹⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो बभाषेऽथ वचनं प्रजहास च ॥₁॥

दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये ।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥₂॥

शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः ।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः ॥₃॥

प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् ।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥₄॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥₅॥

देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥₆॥

त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपश्यति ।
सचिवैः समयं कृत्वा स सभ्ये वर्तते पथि ॥₇॥

यथागमं च यो राजा समयं विचिकीर्षति ।
बुध्यते सचिवान्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति ॥₈॥

धर्ममर्थं च कामं च सर्वान्वा रक्षसां पते ।
भजते पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥₉॥

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।

राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥₁₀॥

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं काले च विक्रमम् ।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥₁₁॥

काले धर्मार्थकामान्यः सम्मन्त्य सचिवैः सह ।
निषेवेतात्मवाँल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥₁₂॥

हितानुबन्धमालोक्य कार्याकार्यमिहात्मनः ।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैः सह जीवति ॥₁₃॥

अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान्पुरुषाः पशुबुद्धयः ।
प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रेष्वभ्यन्तरीकृताः ॥₁₄॥

अशास्त्रविदुषां तेषां न कार्यमहितं वचः ।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥₁₅॥

अहितं च हिताकारं धार्ष्ट्याञ्जल्पन्ति ये नराः ।
अवेक्ष्य मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषणाः ॥₁₆॥

विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः ।
विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥₁₇॥

तान्भर्ता मित्रसङ्काशानमित्रान्मन्त्रनिर्णये ।
व्यवहारेण जानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥₁₈॥

चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः ।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥₁₉॥

यो हि शत्रुमवज्ञाय नात्मानमभिरक्षति ।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान्स्थानाच्च व्यवरोप्यते ॥₂₀॥

तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम् ।

भ्रुकुटिं चैव सध्वक्रे क्रुद्धश्चैनमुवाच ह ॥₂₁॥

मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशासति ।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा काले युक्तं विधीयताम् ॥₂₂॥

विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा ।
नाभिपन्नमिदानीं यद्वर्थास्तस्य पुनः कृथाः ॥₂₃॥

अस्मिन्काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विधीयताम् ।
ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु ॥₂₄॥

यदि खल्वस्ति मे स्नेहो भ्रातृत्वं वावगच्छसि ।
यदि वा कार्यमेतत्ते हृदि कार्यतमं मतम् ॥₂₅॥

स सुहृदो विपन्नार्थं दीनमभ्यवपद्यते ।
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥₂₆॥

तमथैवं ब्रुवाणं तु वचनं धीरदारुणम् ।
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ॥₂₇॥

अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् ।
कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ॥₂₈॥

अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्य ते ।
रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥₂₉॥

नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव ।
तमहं नाशयिष्यामि यत्कृते परितप्यसे ॥₃₀॥

अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव ।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥₃₁॥

सदृशं यत्तु कालेऽस्मिन्कर्तुं स्निग्धेन बन्धुना ।

शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥₃₂॥

अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि ।
हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम् ॥₃₃॥

अद्य रामस्य तद्दृष्ट्वा मयानीतं रणाच्छिरः ।
सुखीभव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ॥₃₄॥

अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत्प्रियम् ।
लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतबान्धवाः ॥₃₅॥

अद्य शोकपरीतानां स्वबन्धुवधकारणात् ।
शत्रोर्युधि विनाशेन करोम्यस्रप्रमार्जनम् ॥₃₆॥

अद्य पर्वतसङ्काशं ससूर्यमिव तोयदम् ।
विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥₃₇॥

न परः प्रेषणीयस्ते युद्धायातुल विक्रम ।
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबल ॥₃₈॥

यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ।
तानहं योधयिष्यामि कुबेर वरुणावपि ॥₃₉॥

गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाच्च पुरन्दरः ॥₄₀॥

अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्गतस्तरसा रिपून् ।
न मे प्रतिमुखे कश्चिच्छक्तः स्थातुं जिजीविषुः ॥₄₁॥

नैव शक्त्या न गदया नासिना न शितैः शरैः ।
हस्ताभ्यामेव संरब्धो हनिष्याम्यपि वज्रिणम् ॥₄₂॥

यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यति ।

ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य ते ॥₄₃॥

चिन्तया बाध्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ।
सोऽहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः ॥₄₄॥

मुञ्च रामाद्भयं राजन्हनिष्यामीह संयुगे ।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलम् ।
असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद्यशः ॥₄₅॥

वधेन ते दाशरथेः सुखावहम्
सुखं समाहर्तुमहं ब्रजामि ।
निहत्य रामं सहलक्ष्मणेन
खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥₄₆॥

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीम्
कुरुष्व कृत्यानि विनीयतां ज्वरः ।
मयाद्य रामे गमिते यमक्षयम्
चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥₄₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तदुक्तमतिकायस्य बलिनो बाहुशालिनः ।
कुम्भकर्णस्य वचनं श्रुत्वोवाच महोदरः ॥₁॥

कुम्भकर्णकुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः ।
अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥₂॥

न हि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ ।
त्वं तु कैशोरकाद्धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि ॥₃॥

स्थानं वृद्धिं च हानिं च देशकालविभागवित् ।
आत्मनश्च परेषां च बुध्यते राक्षसर्षभ ॥₄॥

यत्तु शक्यं बलवता कर्तुं प्राकृतबुद्धिना ।
अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात्तादृशं बुधः ॥₅॥

यांस्तु धर्मार्थकामांस्त्वं ब्रवीषि पृथगाश्रयान् ।
अनुबोद्धुं स्वभावेन न हि लक्षणमस्ति ते ॥₆॥

कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम् ।
श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥₇॥

निःश्रेयस फलावेव धर्मार्थावितरावपि ।
अधर्मानर्थयोः प्राप्तिः फलं च प्रत्यवायिकम् ॥₈॥

ऐहलौकिकपारत्र्यं कर्म पुम्भिर्निषेव्यते ।
कर्माण्यपि तु कल्प्यानि लभते काममास्थितः ॥₉॥

तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि कार्यं मतं च नः ।

शत्रो हि साहसं यत्स्यात्किमिवात्रापनीयते ॥₁₀॥

एकस्यैवाभियाने तु हेतुर्यः प्रकृतस्त्वया ।
तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यदसाधु च ॥₁₁॥

येन पूर्वं जनस्थाने बहवोऽतिबला हताः ।
राक्षसा राघवं तं त्वं कथमेको जयिष्यसि ॥₁₂॥

ये पुरा निर्जितास्तेन जनस्थाने महौजसः ।
राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यापि पश्यसि ॥₁₃॥

तं सिंहमिव सङ्क्रुद्धं रामं दशरथात्मजम् ।
सर्पं सुप्तमिवाबुद्ध्या प्रबोधयितुमिच्छसि ॥₁₄॥

ज्वलन्तं तेजसा नित्यं क्रोधेन च दुरासदम् ।
कस्तं मृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥₁₅॥

संशयस्थमिदं सर्वं शत्रोः प्रतिसमासने ।
एकस्य गमनं तत्र न हि मे रोचते तव ॥₁₆॥

हीनार्थस्तु समृद्धार्थं को रिपुं प्राकृतो यथा ।
निश्चितं जीवितत्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥₁₇॥

यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम ।
कथमाशंससे योद्धुं तुल्येनेन्द्रविवस्वतोः ॥₁₈॥

एवमुक्त्वा तु संरब्धं कुम्भकर्णं महोदरः ।
उवाच रक्षसां मध्ये रावणो लोकरावणम् ॥₁₉॥

लब्ध्वा पुनस्तां वैदेहीं किमर्थं त्वं प्रजल्पसि ।
यदेच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥₂₀॥

दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः ।

रुचितश्चेत्स्वया बुद्ध्या राक्षसेश्वर तं शृणु ॥₂₁॥

अहं द्विजिह्वः संह्रादी कुम्भकर्णो वितर्दनः ।
पञ्चरामवधायैते निर्यान्तीत्यवघोषय ॥₂₂॥

ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः ।
जेष्यामो यदि ते शत्रून्नोपायैः कृत्यमस्ति नः ॥₂₃॥

अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः ।
ततः समभिपत्स्यामो मनसा यत्समीक्षितुम् ॥₂₄॥

वयं युद्धादिहैष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः ।
विदार्य स्वतनुं बाणे रामनामाङ्कितैः शितैः ॥₂₅॥

भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः ।
तव पादौ ग्रहीष्यामस्त्वं नः काम प्रपूरय ॥₂₆॥

ततोऽवघोषय पुरे गजस्कन्धेन पार्थिव ।
हतो रामः सह भ्रात्रा ससैन्य इति सर्वतः ॥₂₇॥

प्रीतो नाम ततो भूत्वा भृत्यानां त्वमरिन्दम ।
भोगांश्च परिवारांश्च कामांश्च वसुदापय ॥₂₈॥

ततो माल्यानि वासांसि वीराणामनुलेपनम् ।
पेयं च बहु योधेभ्यः स्वयं च मुदितः पिब ॥₂₉॥

ततोऽस्मिन्बहुलीभूते कौलीने सर्वतो गते ।
प्रविश्याश्वास्य चापि त्वं सीतां रहसि सान्त्वय ।
धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैनां प्रलोभय ॥₃₀॥

अनयोपधया राजन्भयशोकानुबन्धया ।
अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ॥₃₁॥

रञ्जनीयं हि भर्तारं विनष्टमवगम्य सा ।
नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्च तद्वशं प्रतिपत्स्यते ॥³²॥

सा पुरा सुखसंवृद्धा सुखार्हा दुःखकर्षिता ।
त्वय्यधीनः सुखं ज्ञात्वा सर्वथोपगमिष्यति ॥³³॥

एतत्सुनीतं मम दर्शनेन
रामं हि दृष्ट्वैव भवेदनर्थः ।
इहैव ते सेत्स्यति मोत्सुको भूर्-
महानयुद्धेन सुखस्य लाभः ॥³⁴॥

अनष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो
रिपूनयुद्धेन जयञ्जनाधिप ।
यशश्च पुण्यं च महन्महीपते
श्रियं च कीर्तिं च चिरं समश्नुते ॥³⁵॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

स तथोक्तस्तु निर्भर्त्स्य कुम्भकर्णो महोदरम् ।
अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठं भ्रातरं रावणं ततः ॥₁॥

सोऽहं तव भयं घोरं वधात्तस्य दुरात्मनः ।
रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरस्त्वं सुखीभव ॥₂॥

गर्जन्ति न वृथा शूर निर्जला इव तोयदाः ।
पश्य सम्पाद्यमानं तु गर्जितं युधि कर्मणा ॥₃॥

न मर्षयति चात्मानं सम्भावयति नात्मना ।
अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥₄॥

विक्लवानामबुद्धीनां राज्ञां पण्डितमानिनाम् ।
शृण्वतामादित इदं त्वद्विधानां महोदर ॥₅॥

युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः ।
राजानमनुगच्छद्भिः कृत्यमेतद्विनाशितम् ॥₆॥

राजशेषा कृता लङ्का क्षीणः कोशो बलं हतम् ।
राजानमिममासाद्य सुहृद्भिर्मित्रकम् ॥₇॥

एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ।
दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुं महाहवे ॥₈॥

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन्नाक्षसाधिपः ॥₉॥

महोदरोऽयं रामात्तु परित्रस्तो न संशयः ।

न हि रोचयते तात युद्धं युद्धविशारद ॥₁₀॥

कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च ।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्णजयाय च ॥₁₁॥

आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणः ।
सर्वकालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥₁₂॥

इन्द्राशनिसमं भीमं वज्रप्रतिमगौरवम् ।
देवदानवगन्धर्वयक्षकिंनरसूदनम् ॥₁₃॥

रक्तमाल्य महादाम स्वतश्चोद्गतपावकम् ।
आदाय निशितं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम् ।
कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥₁₄॥

गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठबिह बलं महत् ।
अद्य तान्क्षुधितः क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान् ॥₁₅॥

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गलपाणिभिः ॥₁₆॥

वानरा हि महात्मानः शीघ्राश्च व्यवसायिनः ।
एकाकिनं प्रमत्तं वा नयेयुर्दशनैः क्षयम् ॥₁₇॥

तस्मात्परमदुर्धर्षैः सैन्यैः परिवृतो व्रज ।
रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निसूदय ॥₁₈॥

अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् ।
आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥₁₉॥

अङ्गदानङ्गुलीवेष्टान्वराण्याभरणानि च ।
हारं च शशिसङ्काशमाबबन्ध महात्मनः ॥₂₀॥

दिव्यानि च सुगन्धीनि माल्यदामानि रावणः ।
श्रोत्रे चासञ्जयामास श्रीमती चास्य कुण्डले ॥₂₁॥

काञ्चनाङ्गदकेयूरो निष्काभरणभूषितः ।
कुम्भकर्णो बृहत्कर्णः सुहुतोऽग्निरिवाबभौ ॥₂₂॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेघकेन विराजितः ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥₂₃॥

स काञ्चनं भारसहं निवातम्
विद्युत्प्रभं दीप्तमिवात्मभासा ।
आबध्यमानः कवचं रराज
सन्ध्याभ्रसंवीत इवाद्विराजः ॥₂₄॥

सर्वाभरणनद्धाङ्गः शूलपाणिः स राक्षसः ।
त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाबभौ ॥₂₅॥

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
प्रणम्य शिरसा तस्मै सम्प्रतस्थे महाबलिः ।
तमाशीर्भिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः ॥₂₆॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः ।
तं गजैश्च तुरङ्गैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं रथिनो रथिनां वरम् ॥₂₇॥

सर्पैरुष्ट्रैः खरैरश्वैः सिंहद्विपमृगद्विजैः ।
अनुजग्मुश्च तं घोरं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥₂₈॥

स पुष्पवर्णैरवकीर्यमाणो
धृतातपत्रः शितशूलपाणिः ।
मदोत्कटः शोणितगन्धमत्तो
विनिर्ययो दानवदेवशत्रुः ॥₂₉॥

पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः ।
अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥³⁰॥

रक्ताक्षाः सुमहाकाया नीलाञ्जनचयोपमाः ।
शूरानुदम्य खड्गांश्च निशितांश्च परश्वधान् ॥³¹॥

बहुव्यामांश्च विपुलान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ।
तालस्कन्धांश्च विपुलान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥³²॥

अथान्यद्वपुरादाय दारुणं लोमहर्षणम् ।
निष्पपात महातेजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥³³॥

धनुःशतपरीणाहः स षड्भुजसमुच्छ्रितः ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसंनिभः ॥³⁴॥

संनिपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान् ।
कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥³⁵॥

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ।
निर्दहिष्यामि सङ्क्रुद्धः शलभानिव पावकः ॥³⁶॥

नापराध्यन्ति मे कामं वानरा वनचारिणः ।
जातिरस्मद्विधानां सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥³⁷॥

पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः ।
हते तस्मिन्हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे ॥³⁸॥

एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः ।
नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम् ॥³⁹॥

तस्य निष्पततस्तूर्णं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
बभूवुर्घोररूपाणि निमित्तानि समन्ततः ॥⁴⁰॥

उल्काशनियुता मेघा विनेदुश्च सुदारुणाः ।
ससागरवना चैव वसुधा समकम्पत ॥₄₁॥

घोररूपाः शिवा नेदुः सज्वालकवलैर्मुखैः ।
मण्डलान्यपसव्यानि बबन्धुश्च विहङ्गमाः ॥₄₂॥

निष्पपात च गृध्रेऽस्य शूले वै पथि गच्छतः ।
प्रास्फुरन्नयनं चास्य सव्यो बाहुरकम्पत ॥₄₃॥

निष्पपात तदा चोक्ला ज्वलन्ती भीमनिस्त्रना ।
आदित्यो निष्प्रभश्चासीन्न प्रवाति सुखोऽनिलः ॥₄₄॥

अचिन्तयन्महोत्पातानुत्थिताँल्लोमहर्षणान् ।
निर्ययौ कुम्भकर्णस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥₄₅॥

स लङ्घयित्वा प्राकारं पद्भ्यां पर्वतसंनिभः ।
ददर्शाभ्रघनप्रख्यं वानरानीकमद्भुतम् ॥₄₆॥

ते दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं वानराः पर्वतोपमम् ।
वायुनुन्ना इव घना ययुः सर्वा दिशस्तदा ॥₄₇॥

तद्वानरानीकमतिप्रचण्डम्
दिशो द्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ।
स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षात्
ननाद भूयो घनवद्धनाभः ॥₄₈॥

ते तस्य घोरं निनदं निशम्य
यथा निनादं दिवि वारिदस्य ।
पेतुर्धरण्यां बहवः प्लवङ्गा
निकृत्तमूला इव सालवृक्षाः ॥₄₉॥

विपुलपरिघवान्स कुम्भकर्णो
रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ।

कपि गणभयमाददत्सुभीमम्
प्रभुरिव किङ्करदण्डवान्युगान्ते ॥ 50 ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ।
जनयन्निव निर्घातान्विधमन्निव पर्वतान् ॥₁॥

तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन च ।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥₂॥

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम् ॥₃॥

आत्मानमत्र विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च ।
क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥₄॥

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिकाः ॥₅॥

महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम् ।
विक्रमाद्विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥₆॥

कृच्छ्रेण तु समाश्वास्य सङ्गम्य च ततस्ततः ।
वृक्षाद्रिहस्ता हरयः सम्प्रतस्थू रणाजिरम् ॥₇॥

ते निवृत्य तु सङ्क्रुद्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः ।
निजघ्नः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः ।
प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ॥₈॥

पादपैः पुष्पिताग्रेश्च हन्यमानो न कम्पते ।
तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते शतशः शिलाः ।
पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥₉॥

सोऽपि सैन्यानि सङ्क्रुद्धो वानराणां महौजसाम् ।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥₁₀॥

लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः ।
निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥₁₁॥

लङ्घयन्तः प्रधावन्तो वानरा नावलोकयन् ।
केचित्समुद्रे पतिताः केचिद्गगनमाश्रिताः ॥₁₂॥

वध्यमानास्तु ते वीरा राक्षसेन बलीयसा ।
सागरं येन ते तीर्णाः पथा तेनैव दुद्रुवुः ॥₁₃॥

ते स्थलानि तथा निम्नं विषण्णवदना भयात् ।
ऋक्षा वृक्षान्समारूढाः केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥₁₄॥

ममञ्जुरर्णवे केचिद्गुहाः केचित्समाश्रिताः ।
निषेदुः प्लवगाः केचित्केचिन्नैवावतस्थिरे ॥₁₅॥

तान्समीक्ष्याङ्गदो भङ्गान्वानरानिदमब्रवीत् ।
अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥₁₆॥

भग्नानां वो न पश्यामि परिगम्य महीमिमाम् ।
स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ॥₁₇॥

निरायुधानां द्रवतामसङ्गतिपौरुषाः ।
दारा ह्यपहसिष्यन्ति स वै घातस्तु जीविताम् ॥₁₈॥

कुलेषु जाताः सर्वे स्म विस्तीर्णेषु महत्सु च ।
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत ॥₁₉॥

विकत्थनानि वो यानि यदा वै जनसंसदि ।
तानि वः क्व च यतानि सोदग्राणि महान्ति च ॥₂₀॥

भीरुप्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः ।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम् ॥²¹॥

श्यामहे वा निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः ।
दुष्प्रापं ब्रह्मलोकं वा प्राप्तुमो युधि सूदिताः ।
सम्प्राप्तुयामः कीर्तिं वा निहत्य शत्रुमाहवे ॥²²॥

न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन्मिष्यति ।
दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा ॥²³॥

पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान्नक्षामहे वयम् ।
एकेन बहवो भग्ना यशो नाशं गमिष्यति ॥²⁴॥

एवं ब्रुवाणं तं शूरमङ्गदं कनकाङ्गदम् ।
द्रवमाणास्ततो वाक्यमूचुः शूरविगर्हितम् ॥²⁵॥

कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा ।
न स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः ॥²⁶॥

एतावदुक्त्वा वचनं सर्वे ते भेजिरे दिशः ।
भीमं भीमाक्षमायान्तं दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥²⁷॥

द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन वलीमुखाः ।
सान्त्वैश्च बहुमानैश्च ततः सर्वे निवर्तिताः ॥²⁸॥

ऋषभशरभमैन्दधूम्रनीलाः
कुमुदसुषेणगवाक्षरम्भताराः ।
द्विविदपनसवायुपुत्रमुख्याः
त्वरिततराभिमुखं रणं प्रयाताः ॥²⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा ।
नैष्ठिकीं बुद्धिमास्थाय सर्वे सङ्ग्रामकाङ्क्षिणः ॥₁॥

समुदीरितवीर्यास्ते समारोपितविक्रमाः ।
पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन वलीमुखाः ॥₂॥

प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः ॥₃॥

अथ वृक्षान्महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च ।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन् ॥₄॥

स कुम्भकर्णः सङ्क्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
अर्दयन्सुमहाकायः समन्ताद्वाक्षिपद्रिपून् ॥₅॥

शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः ।
प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन पोथिताः ॥₆॥

षोडशाष्टौ च दश च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ।
परिक्षिप्य च बाहुभ्यां खादन्विपरिधावति ।
भक्षयन्भृशसङ्क्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥₇॥

हनूमाञ्शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च विविधान्वहून् ।
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥₈॥

तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन तु बिभेद ह ।
बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥₉॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रम्
दुद्राव शूलं निशितं प्रगृह्य ।
तस्थौ ततोऽस्यापततः पुरस्तात्
महीधराग्रं हनुमान्प्रगृह्य ॥₁₀॥

स कुम्भकर्णं कुपितो जघान
वेगेन शैलोत्तमभीमकायम् ।
स चुक्षुभे तेन तदाभिबूतो
मेदार्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ॥₁₁॥

स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशम्
गिरिं यथा प्रज्वलिताग्रशृङ्गम् ।
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान
गुहोऽचलं क्रौञ्चमिवोग्रशक्त्या ॥₁₂॥

स शूलनिर्भिन्न महाभुजान्तरः
प्रविह्वलः शोणितमुद्वमन्मुखात् ।
ननाद भीमं हनुमान्महाहवे
युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥₁₃॥

ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा
रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य ।
प्लवङ्गमास्तु व्यथिता भयार्ताः
प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात् ॥₁₄॥

नीलश्चिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह ॥₁₅॥

मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ॥₁₆॥

ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः ।
पञ्चवानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥₁₇॥

शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः ।
कुम्भकर्णं महाकायं सर्वतोऽभिनिजघ्निरे ॥ 18 ॥

स्पर्शानिव प्रहारांस्तान्वेदयानो न विव्यथे ।
ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ 19 ॥

कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः ।
निपपातर्षभो भीमः प्रमुखागतशोणितः ॥ 20 ॥

मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे ।
आजघान गवाक्षं च तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥ 21 ॥

दत्तप्रहरव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः ।
निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ 22 ॥

तेषु वानरमुख्येषु पतितेषु महात्मसु ।
वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुद्रुवुः ॥ 23 ॥

तं शैलमिव शैलाभाः सर्वे तु प्लवगर्षभाः ।
समारुह्य समुत्पत्य ददंशुश्च महाबलाः ॥ 24 ॥

तं नखैर्दशनैश्चापि मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णं महाकायं ते जघ्नुः प्लवगर्षभाः ॥ 25 ॥

स वानरसहस्रैस्तैराचितः पर्वतोपमः ।
रराज राक्षसव्याघ्रो गिरिरात्मरुहैरिव ॥ 26 ॥

बाहुभ्यां वानरान्सर्वान्प्रगृह्य स महाबलः ।
भक्षयामास सङ्क्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ 27 ॥

प्रक्षिप्ताः कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसंनिभे ।
नासा पुटाभ्यां निर्जग्मुः कर्णाभ्यां चैव वानराः ॥ 28 ॥

भक्षयन्भृशसङ्क्रुद्धो हरीन्पर्वतसंनिभः ।
बभञ्ज वानरान्सर्वान्सङ्क्रुद्धो राक्षसोत्तमः ॥₂₉॥

मांसशोणितसङ्केदां भूमिं कुर्वन्स राक्षसः ।
चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्छितः ॥₃₀॥

वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो बभौ तस्मिन्कुम्भकर्णो महाबलः ॥₃₁॥

यथा शुष्काण्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः ।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो विनिर्दहत् ॥₃₂॥

ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथा विनायकाः ।
वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विस्वरं भृशम् ॥₃₃॥

अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः ।
राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिताः खिन्नचेतसः ॥₃₄॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम् ।
उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः ॥₃₅॥

स पर्वताग्रमुत्क्षिप्य समाविध्य महाकपिः ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम् ॥₃₆॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवङ्गमम् ।
तस्थौ विवृतसर्वाङ्गो वानरेन्द्रस्य सम्मुखः ॥₃₇॥

कपिशोणितदिग्धाङ्गं भक्षयन्तं महाकपीन् ।
कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥₃₈॥

पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
भक्षितानि च सैन्यानि प्राप्तं ते परमं यशः ॥₃₉॥

त्यज तद्वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि ।
सहस्रैकं निपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस ॥₄₀॥

तद्वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् ।
श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥₄₁॥

प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः ।
श्रुतपौरुषसम्पन्नस्तस्माद्गर्जसि वानर ॥₄₂॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
व्याविध्य शैलं सहसा मुमोच ।
तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णम्
शैलेन वज्राशनिसंनिभेन ॥₄₃॥

तच्छैलशृङ्गं सहसा विकीर्णम्
भुजान्तरे तस्य तदा विशाले ।
ततो विषेदुः सहसा प्लवङ्गमा
रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः ॥₄₄॥

स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप
ननाद कोपाच्च विवृत्य वक्तुम् ।
व्याविध्य शूलं च तडित्प्रकाशम्
चिक्षेप हर्यृक्षपतेर्वधाय ॥₄₅॥

तत्कुम्भकर्णस्य भुजप्रविद्धम्
शूलं शितं काञ्चनदामजुष्टम् ।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्याम्
बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य ॥₄₆॥

कृतं भारसहस्रस्य शूलं कालायसं महत् ।
बभञ्ज जनौमारोप्य प्रहृष्टः प्लवगर्षभः ॥₄₇॥

स तत्तदा भग्नमवेक्ष्य शूलम्

चुकोप रक्षोऽधिपतिर्महात्मा ।
उत्पाट्य लङ्कामलयात्स शृङ्गम्
जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन ॥⁴⁸॥

स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः
पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः ।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञम्
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥⁴⁹॥

तमभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यम्
स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ।
जहार सुग्रीवमभिप्रगृह्य
यथानिलो मेघमतिप्रचण्डः ॥⁵⁰॥

स तं महामेघनिकाशरूपम्
उत्पाट्य गच्छन्युधि कुम्भकर्णः ।
रराज मेरुप्रतिमानरूपो
मेरुर्यथात्युच्छ्रितघोरशृङ्गः ॥⁵¹॥

ततः समुत्पाट्य जगाम वीरः
संस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रैः ।
शृण्वन्निनादं त्रिदशालयानाम्
प्लवङ्गराजग्रहविस्मितानाम् ॥⁵²॥

ततस्तमादाय तदा स मेने
हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः ।
अस्मिन्हते सर्वमिदं हतं स्यात्
सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः ॥⁵³॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वानराणां ततस्ततः ।
कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि वानरम् ॥⁵⁴॥

हनूमांश्चित्तयामास मतिमान्मारुतात्मजः ।

एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥⁵⁵॥

यद्वै न्याय्यं मया कर्तुं तत्करिष्यामि सर्वथा ।
भूत्वा पर्वतसङ्काशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥⁵⁶॥

मया हते संयति कुम्भकर्णे
महाबले मुष्टिविशीर्णदेहे ।
विमोचिते वानरपार्थिवे च
भवन्तु हृष्टाः प्रवगाः समग्राः ॥⁵⁷॥

अथ वा स्वयमप्येष मोक्षं प्राप्स्यति पार्थिवः ।
गृहीतोऽयं यदि भवेत्तिदशैः सासुरोरगैः ॥⁵⁸॥

मन्ये न तावदात्मानं बुध्यते वानराधिपः ।
शैलप्रहाराभिहतः कुम्भकर्णेन संयुगे ॥⁵⁹॥

अयं मुहूर्तात्सुग्रीवो लब्धसंज्ञो महाहवे ।
आत्मनो वानराणां च यत्पथ्यं तत्करिष्यति ॥⁶⁰॥

मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अप्रीतश्च भवेत्कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः ॥⁶¹॥

तस्मान्मुहूर्तं काङ्क्षिष्ये विक्रमं पार्थिवस्य नः ।
भिन्नं च वानरानीकं तावदाश्वासयाम्यहम् ॥⁶²॥

इत्येवं चिन्तयित्वा तु हनूमान्मारुतात्मजः ।
भूयः संस्तम्भयामास वानराणां महाचमूम् ॥⁶³॥

स कुम्भकर्णोऽथ विवेश लङ्काम्
स्फुरन्तमादाय महाहरिं तम् ।
विमानचर्यागृहगोपुरस्थैः
पुष्पाग्रवर्षैरवकीर्यमाणः ॥⁶⁴॥

ततः स संज्ञामुपलभ्य कृच्छ्राद्-
बलीयसस्तस्य भुजान्तरस्थः ।
अवेक्षमाणः पुरराजमार्गम्
विचिन्तयामास मुहुर्महात्मा ॥ 65 ॥

एवं गृहीतेन कथं नु नाम
शक्यं मया सम्प्रति कर्तुमद्य ।
तथा करिष्यामि यथा हरीणाम्
भविष्यतीष्टं च हितं च कार्यम् ॥ 66 ॥

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य
राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रोः ।
नखैश्च कर्णौ दशनैश्च नासाम्
ददंश्च पार्श्वेषु च कुम्भकर्णम् ॥ 67 ॥

स कुम्भकर्णो हृतकर्णनासो
विदारितस्तेन विमर्दितश्च ।
रोषाभिभूतः क्षतजार्द्रगात्रः
सुग्रीवमाविध्य पिपेष भूमौ ॥ 68 ॥

स भूतले भीमबलाभिपिष्टः
सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ।
जगाम खं वेगवदभ्युपेत्य
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ 69 ॥

कर्णनासा विहीनस्य कुम्भकर्णो महाबलः ।
रराज शोणितोत्सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ 70 ॥

ततः स पुर्याः सहसा महात्मा
निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः
प्रजा युगान्ताग्निरिव प्रदीप्तः ॥ 71 ॥

बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्रः
प्रविश्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
चखाद रक्षांसि हरीन्पिशाचान्
ऋक्षांश्च मोहाद्युधि कुम्भकर्णः ॥₇₂॥

एकं द्वौ त्रीन्बहून्क्रुद्धो वानरान्सह राक्षसैः ।
समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्वरन्मुखे ॥₇₃॥

सम्प्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः ।
वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ।
ते भक्ष्यमाणा हरयो रामं जग्मुस्तदा गतिम् ॥₇₄॥

तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरंजयः ॥₇₅॥

स कुम्भकर्णस्य शराञ्छरीरे सप्त वीर्यवान् ।
निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥₇₆॥

अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः ।
राममेवाभिदुद्राव दारयन्निव मेदिनीम् ॥₇₇॥

अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन् ।
कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताञ्छरान् ॥₇₈॥

तस्य रामेण विद्धस्य सहसाभिप्रधावतः ।
अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥₇₉॥

तस्योरसि निमग्नाश्च शरा बर्हिणवाससः ।
हस्ताद्यास्य परिभ्रष्टा पपातोर्व्या महागदा ॥₈₀॥

स निरायुधमात्मानं यदा मेने महाबलः ।
मुष्टिभ्यां चारणाभ्यां च चकार कदनं महत् ॥₈₁॥

स बाणैरतिविद्धाङ्गः क्षतजेन समुक्षितः ।
रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणानिव ॥ 82 ॥

स तीव्रेण च कोपेन रुधिरेण च मूर्छितः ।
वानरान्नाक्षसानृक्षान्खादन्विपरिधावति ॥ 83 ॥

तस्मिन्काले स धर्मात्मा लक्ष्मणो राममब्रवीत् ।
कुम्भकर्णवधे युक्तो योगान्परिमृशन्बहून् ॥ 84 ॥

नैवायं वानरान्नाजन्न विजानाति राक्षसान् ।
मत्तः शोणितगन्धेन स्वान्परांश्चैव खादति ॥ 85 ॥

साध्वेनमधिरोहन्तु सर्वतो वानरर्षभाः ।
यूथपाश्च यथामुख्यास्तिष्ठन्बस्य समन्ततः ॥ 86 ॥

अप्ययं दुर्मतिः काले गुरुभारप्रपीडितः ।
प्रपतन्नाक्षसो भूमौ नान्यान्हन्यात्प्लवङ्गमान् ॥ 87 ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
ते समारुरुहुर्हृष्टाः कुम्भकर्णं प्लवङ्गमाः ॥ 88 ॥

कुम्भकर्णस्तु सङ्क्रुद्धः समारूढः प्लवङ्गमैः ।
व्यधूनयत्तान्वेगेन दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ॥ 89 ॥

तान्दृष्ट्वा निर्धूतान्नामो रुष्टोऽयमिति राक्षसः ।
समुत्पपात वेगेन धनुरुत्तममाददे ॥ 90 ॥

स चापमादाय भुजङ्गकल्पम्
दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम् ।
हरीन्समाश्वास्य समुत्पपात
रामो निबद्धोत्तमतूणबाणः ॥ 91 ॥

स वानरगणैस्तेस्तु वृतः परमदुर्जयः ।

लक्ष्मणानुचरो रामः सम्प्रतस्थे महाबलः ॥₉₂॥

स ददर्श महात्मानं किरीटिनमरिन्दमम् ।
शोणिताप्लुतसर्वाङ्गं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥₉₃॥

सर्वान्समभिधावन्तं यथारुष्टं दिशा गजम् ।
मार्गमाणं हरीन्क्रुद्धं राक्षसैः परिवारितम् ॥₉₄॥

विन्ध्यमन्दरसङ्काशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
स्रवन्तं रुधिरं वक्त्राद्वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥₉₅॥

जिह्वया परिलिह्यन्तं शोणितं शोणितोक्षितम् ।
मृद्गन्तं वानरानीकं कालान्तकयमोपमम् ॥₉₆॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम् ।
विस्फारयामास तदा कार्मुकं पुरुषर्षभः ॥₉₇॥

स तस्य चापनिर्घोषात्कुपितो नैर्ऋतर्षभः ।
अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम् ॥₉₈॥

ततस्तु वातोद्धतमेघकल्पम्
भुजङ्गराजोत्तमभोगबाहुम् ।
तमापतन्तं धरणीधराभम्
उवाच रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥₉₉॥

आगच्छ रक्षोऽधिपमा विषादम्
अवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः ।
अवेहि मां शक्रसपत्न रामम्
अयं मुहूर्ताद्भविता विचेताः ॥₁₀₀॥

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम् ।
पातयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम् ॥₁₀₁॥

प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्वनितोपमम् ।
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥₁₀₂॥

नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च ।
न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णोऽहमागतः ॥₁₀₃॥

पश्य मे मुद्गरं घोरं सर्वकालायसं महत् ।
अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च मया पुरा ॥₁₀₄॥

विकर्णनास इति मां नावज्ञातुं त्वमर्हसि ।
स्वल्पापि हि न मे पीडा कर्णनासाविनाशनात् ॥₁₀₅॥

दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल वीर्यं गात्रेषु मे लघु ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृष्टपौरुषविक्रमम् ॥₁₀₆॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
रामः सुपुङ्खान्विससर्ज बाणान् ।
तैराहतो वज्रसमप्रवेगैर्-
न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः ॥₁₀₇॥

यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता
वाली हतो वानरपुङ्गवश्च ।
ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरम्
वज्रोपमा न व्यथयां प्रचक्रुः ॥₁₀₈॥

स वारिधारा इव सायकांस्तान्
पिबञ्छरीरेण महेन्द्रशत्रुः ।
जघान रामस्य शरप्रवेगम्
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥₁₀₉॥

ततस्तु रक्षः क्षतजानुलितम्
वित्रासनं देवमहाचमूनाम् ।
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम्

विद्रावयामास चमूं हरीणाम् ॥¹¹⁰॥

वायव्यमादाय ततो वरास्त्रम्
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ।
समुद्रं तेन जहार बाहुम्
स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥¹¹¹॥

स तस्य बाहुर्गिरिशृङ्गकल्पः
समुद्रो राघवबाणकृत्तः ।
पपात तस्मिन्हिराजसैन्ये
जघान तां वानरवाहिनीं च ॥¹¹²॥

ते वानरा भग्नहतावशेषाः
पर्यन्तमाश्रित्य तदा विषण्णाः ।
प्रवेपिताङ्गा ददृशुः सुघोरम्
नरेन्द्ररक्षोऽधिपसंनिपातम् ॥¹¹³॥

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिःकृत्तबाहुर्-
महान्निकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः ।
उत्पाटयामास करेण वृक्षम्
ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥¹¹⁴॥

तं तस्य बाहुं सह सालवृक्षम्
समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम् ।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जहार रामो
बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन ॥¹¹⁵॥

स कुम्भकर्णस्य भुजो निकृत्तः
पपात भूमौ गिरिसंनिकाशः ।
विवेष्टमानो निजघान वृक्षान्
शैलाञ्जिलावानरराक्षसांश्च ॥¹¹⁶॥

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः

समापतन्तं सहसा नदन्तम् ।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य
चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥¹¹⁷॥

निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो
विदार्य वक्तुं वडवामुखाभम् ।
दुद्राव रामं सहसाभिगर्जन्
राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ॥¹¹⁸॥

अपूरयत्तस्य मुखं शिताग्रे
रामः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः ।
स पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुम्
चुकूज कृच्छ्रेण मुमोह चापि ॥¹¹⁹॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पम्
स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम् ।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खम्
रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥¹²⁰॥

तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खम्
प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम् ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगम्
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ॥¹²¹॥

स सायको राघवबाहुचोदितो
दिशः स्वभासा दश सम्प्रकाशयन् ।
विधूमवैश्वानरदीप्तदर्शनो
जगाम शक्राशनितुल्यविक्रमः ॥¹²²॥

स तन्महापर्वतकूटसंनिभम्
विवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम् ।
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तदा
यथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः ॥¹²³॥

तद्रामबाणाभिहतं पपात
रक्षःशिरः पर्वतसंनिकाशम् ।
बभञ्ज चर्यागृहगोपुराणि
प्राकारमुच्चं तमपातयच्च ॥ 124 ॥

तच्चातिकायं हिमवत्प्रकाशम्
रक्षस्तदा तोयनिधौ पपात ।
ग्राहान्महामीनचयान्भुजङ्गमान्
ममर्द भूमिं च तथा विवेश ॥ 125 ॥

तस्मिर्हते ब्राह्मणदेवशत्रौ
महाबले संयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे
हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥ 126 ॥

ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः
सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ।
सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः
प्रहर्षिता राम पराक्रमेण ॥ 127 ॥

प्रहर्षमीयुर्बहवस्तु वानराः
प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ।
अपूजयन्नाघवमिष्टभागिनम्
हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥ 128 ॥

स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दनम्
महत्सु युद्धेष्वपराजितश्चमम् ।
ननन्द हृत्वा भरताग्रजो रणे
महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥ 129 ॥

॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥

॥षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥₁॥

श्रुत्वा विनिहतं सङ्क्षो कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसन्तप्तो मुमोह च पपात च ॥₂॥

पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥₃॥

भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥₄॥

ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः ।
कुम्भकर्णवधाद्दीनो विललाप स रावणः ॥₅॥

हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ।
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां सन्त्यज्य गच्छसि ॥₆॥

इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः ।
दक्षिणो यं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरान् ॥₇॥

कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा ।
कालाग्निप्रतिमो ह्यद्य राघवेण रणे हतः ॥₈॥

यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा ।
स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥₉॥

एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः ।

निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः ॥₁₀॥

ध्रुवमदैव संहृष्टा लब्धलक्ष्याः प्लवङ्गमाः ।
आरोक्ष्यन्तीह दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ॥₁₁॥

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे रतिः ॥₁₂॥

यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥₁₃॥

अदैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ।
न हि भ्रातृन्समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥₁₄॥

देवा हि मां हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् ।
कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्णहते त्वयि ॥₁₅॥

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम् ।
यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥₁₆॥

विभीषणवचो यावत्कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥₁₇॥

तस्यायं कर्मणः प्रातो विपाको मम शोकदः ।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान्स निरस्तो विभीषणः ॥₁₈॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा
कृपणमतीव विलप्य कुम्भकर्णम् ।
न्यपतदथ दशाननो भृशार्तः
तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वात्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा शोकाभितप्तस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

एवमेव महावीर्यो हतो नस्तात मध्यमः ।
न तु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथा भवान् ॥₂॥

नूनं त्रिभुवणस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो ।
स कस्मात्प्राकृत इव शोकस्यात्मानमीदृशम् ॥₃॥

ब्रह्मदत्तास्ति ते शक्तिः कवचः सायको धनुः ।
सहस्रखरसंयुक्तो रथो मेघसमस्वनः ॥₄॥

त्वयासकृद्विशस्त्रेण विशस्ता देवदानवाः ।
स सर्वायुधसम्पन्नो राघवं शास्तुमर्हसि ॥₅॥

कामं तिष्ठ महाराजनिर्गमिष्याम्यहं रणम् ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिह ॥₆॥

शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा ।
तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥₇॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥₈॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥₉॥

ततोऽहमहमित्येवं गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः ।

रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥₁₀॥

अन्तरिक्षचराः सर्वे सर्वे माया विशारदाः ।
सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे च रणदुर्मदाः ॥₁₁॥

सर्वेऽस्त्रबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्ण कीर्तयः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः ॥₁₂॥

सर्वेऽस्त्रविदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सर्वे प्रवरजिज्ञानाः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥₁₃॥

स तैस्तथा भास्करतुल्यवर्चसैः
सुतैर्वृतः शत्रुबलप्रमर्दनैः ।
रराज राजा मघवान्यथामरैर्-
वृतो महादानवदर्पनाशनैः ॥₁₄॥

स पुत्रान्सम्परिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास संयुगे ॥₁₅॥

महोदरमहापाश्र्वौ भ्रातरौ चापि रावणः ।
रक्षणार्थं कुमारानां प्रेषयामास संयुगे ॥₁₆॥

तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं रिपुरावणम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥₁₇॥

सर्वोषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ।
निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥₁₈॥

ततः सुदर्शनं नाम नीलजीमूतसंनिभम् ।
ऐरावतकुले जातमारुरोह महोदरः ॥₁₉॥

सर्वायुधसमायुक्तं तूणीभिश्च स्खलङ्कृतम् ।
रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥₂₀॥

हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं त्रिशिरा रावणात्मजः ॥₂₁॥

त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ।
सविद्युदुल्कः सज्वालः सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥₂₂॥

त्रिभिः किरीटैस्त्रिशिराः शुशुभे स रथोत्तमे ।
हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥₂₃॥

अतिकायोऽपि तेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥₂₄॥

सुचक्राक्षं सुसंयुक्तं सानुकर्षं सकूबरम् ।
तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासि परिघाकुलम् ॥₂₅॥

स काञ्चनविचित्रेण किरीटेन विराजता ।
भूषणैश्च बभौ मेरुः प्रभाभिरिव भास्वरः ॥₂₆॥

स रराज रथे तस्मिन्नाजसूनुर्महाबलः ।
वृतो नैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥₂₇॥

हयमुच्चैःश्रवः प्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम् ।
मनोजवं महाकायमारुरोह नरान्तकः ॥₂₈॥

गृहीत्वा प्रासमुक्लाभं विरराज नरान्तकः ।
शक्तिमादाय तेजस्वी गुहः शत्रुष्विवाहवे ॥₂₉॥

देवान्तकः समादाय परिघं वज्रभूषणम् ।
परिगृह्य गिरिं दोभ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन् ॥₃₀॥

महापार्श्वो महातेजा गदामादाय वीर्यवान् ।
विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे ॥₃₁॥

ते प्रतस्थुर्महात्मानो बलैरप्रतिमैर्वृताः ।
सुरा इवामरावत्यां बलैरप्रतिमैर्वृताः ॥³²॥

तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिस्त्रनेः ।
अनुजग्मुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥³³॥

ते विरेजुर्महात्मानो कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे ॥³⁴॥

प्रगृहीता बभौ तेषां छत्राणामावलिः सिता ।
शारदाभ्रप्रतीकाशां हंसावलिरिवाम्बरे ॥³⁵॥

मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ।
इति कृत्वा मतिं वीरा निर्जग्मुः संयुगार्थिनः ॥³⁶॥

जगर्जुश्च प्रणेदुश्च चिक्षिपुश्चापि सायकान् ।
जहृषुश्च महात्मानो निर्यान्तो युद्धदुर्मदाः ॥³⁷॥

क्ष्वेडितास्फोटनिनदैः सध्चालेव मेदिनी ।
रक्षसां सिंहनादैश्च पुस्फोटेव तदाम्बरम् ॥³⁸॥

तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ।
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम् ॥³⁹॥

हरयोऽपि महात्मानो ददृशुर्नैर्ऋतं बलम् ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं किङ्किणीशतनादितम् ॥⁴⁰॥

नीलजीमूतसङ्काशं समुद्यतमहायुधम् ।
दीप्तानलरविप्रख्यैर्नैर्ऋतैः सर्वतो वृतम् ॥⁴¹॥

तदृष्ट्वा बलमायान्तं लब्धलक्ष्याः प्लवङ्गमाः ।
समुद्यतमहाशैलाः सम्प्रणेदुर्मुहुर्मुहुः ॥⁴²॥

ततः समुद्धृष्टरवं निशम्य
रक्षोगणा वानरयूथपानाम् ।
अमृष्यमाणाः परहर्षमुग्रम्
महाबला भीमतरं विनेदुः ॥₄₃॥

ते राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरियूथपाः ।
विचेरुरुद्यतैः शैलैर्नगाः शिखरिणो यथा ॥₄₄॥

केचिदाकाशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्लवङ्गमाः ।
रक्षःसैन्येषु सङ्क्रुद्धाश्चेरुर्दुर्मशिलायुधाः ॥₄₅॥

ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनुत्तमाम् ।
बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः ॥₄₆॥

सिंहनादान्विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः ।
शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान्प्लवङ्गमाः ॥₄₇॥

निजघ्नः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान् ।
केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिगतानपि ॥₄₈॥

निजघ्नः सहस्राप्लुत्य यातुधानान्प्लवङ्गमाः ।
शैलशृङ्गनिपातैश्च मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः ।
चेलुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः ॥₄₉॥

ततः शैलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः ।
मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणिताप्लुता ॥₅₀॥

विकीर्णपर्वताकारै रक्षोभिररिमर्दनैः ।
आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशूलाश्च वानरैः ॥₅₁॥

वानरान्वानरैरेव जघ्नुस्ते रजनीचराः ।
राक्षसान्नाक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ॥₅₂॥

आक्षिप्य च शिलास्तेषां निजघ्नू राक्षसा हरीन् ।
तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः ॥⁵³॥

निजघ्नूः शैलशूलास्त्रैर्विभिदुश्च परस्परम् ।
सिंहनादान्विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ॥⁵⁴॥

छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः ।
रुधिरं प्रस्रुतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ॥⁵⁵॥

रथेन च रथं चापि वारणेन च वारणम् ।
हयेन च हयं केचिन्निजघ्नूर्वानरा रणे ॥⁵⁶॥

क्षुरप्रेरधचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः ।
राक्षसा वानरेन्द्राणां चिच्छिदुः पादपाञ्चिलाः ॥⁵⁷॥

विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च द्रुमैश्छिन्नैश्च संयुगे ।
हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाभवत् ॥⁵⁸॥

तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे
प्रहृष्यमाणेषु वली मुखेषु ।
निपात्यमानेषु च राक्षसेषु
महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥⁵⁹॥

ततो हयं मारुततुल्यवेगम्
आरुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।
नरान्तको वानरराजसैन्यम्
महार्णवं मीन इवाविवेश ॥⁶⁰॥

स वानरान्सप्तशतानि वीरः
प्राप्तेन दीप्तेन विनिर्बिभेद ।
एकः क्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा
जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥⁶¹॥

ददृशुश्च महात्मानं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ।
चरन्तं हरिसैन्येषु विद्याधरमहर्षयः ॥ 62 ॥

स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः ।
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ 63 ॥

यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः ।
तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥ 64 ॥

ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य सङ्ग्रामान्ते नरान्तकः ।
ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः ॥ 65 ॥

यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्छैलान्वनौकसः ।
तावत्प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः ॥ 66 ॥

दिक्षु सर्वासु बलवान्विचचार नरान्तकः ।
प्रमृद्मन्सर्वतो युद्धे प्रावृद्धाले यथानिलः ॥ 67 ॥

न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं कुतः ।
उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान्विव्याध वीर्यवान् ॥ 68 ॥

एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा ।
भिन्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले ॥ 69 ॥

वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् ।
न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥ 70 ॥

पततां हरिवीराणां रूपाणि प्रचकाशिरे ।
वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पततामिव ॥ 71 ॥

ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः ।
तेऽस्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥ 72 ॥

विप्रेक्षमाणः सुग्रीवो ददर्श हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीमितस्ततः ॥⁷³॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ॥⁷⁴॥

अथोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥⁷⁵॥

गच्छैनं राक्षसं वीर योऽसौ तुरगमास्थितः ।
क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥⁷⁶॥

स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्तदा ।
अनीकान्मेघसङ्काशान्मेघानीकादिवांशुमान् ॥⁷⁷॥

शैलसङ्घातसङ्काशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः ।
रराजाङ्गदसंनद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥⁷⁸॥

निरायुधो महातेजाः केवलं नखदंष्ट्रवान् ।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥⁷⁹॥

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ।
अस्मिन्वज्रसमस्पर्शे प्रासं क्षिप ममोरसि ॥⁸⁰॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ।
सन्दश्य दशनैरोष्ठं निश्चस्य च भुजङ्गवत् ॥⁸¹॥

स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय
समुञ्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे
बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥⁸²॥

तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नम्

सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रः
तुरङ्गमस्याभिजघान मूर्ध्नि ॥ 83 ॥

निमग्नपादः स्फुटिताक्षि तारो
निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसंनिकाशः ।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ
तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥ 84 ॥

नरान्तकः क्रोधवशं जगाम
हतं तुरगं पतितं निरीक्ष्य ।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो
जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥ 85 ॥

अथाङ्गदो मुष्टिविभिन्नमूर्धा
सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम् ।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि
संज्ञां समासाद्य विसिष्मिये च ॥ 86 ॥

अथाङ्गदो वज्रसमानवेगम्
संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ।
निपातयामास तदा महात्मा
नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥ 87 ॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नवक्षा
ज्वालां वमञ्छोणितदिग्धगात्रः ।
नरान्तको भूमितले पपात
यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥ 88 ॥

अथान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानाम्
वनौकसां चैव महाप्रणादः ।
बभूव तस्मिन्निहतेऽग्न्यवीरे
नरान्तके वालिसुतेन सङ्क्षो ॥ 89 ॥

अथाङ्गदो राममनः प्रहर्षणम्
सुदुष्करं तं कृतवान्हि विक्रमम् ।
विसिष्मिये सोऽप्यतिवीर्य विक्रमः
पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥₉₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥₁॥

आरूढो मेघसङ्काशं वारणेन्द्रं महोदरः ।
वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वीर्यवान् ॥₂॥

भ्रातृव्यसनसन्तप्तस्तदा देवान्तको बली ।
आदाय परिघं दीप्तमङ्गदं समभिद्रवत् ॥₃॥

रथमादित्यसङ्काशं युक्तं परमवाजिभिः ।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्ययात् ॥₄॥

स त्रिभिर्देवदर्पघ्नैर्नैर्ऋतेन्द्रैरभिद्रुतः ।
वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः ॥₅॥

देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहस्राङ्गदः ।
महावृक्षं महाशाखं शक्रो दीप्तमिवाशनिम् ॥₆॥

त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः ।
स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात ततोऽङ्गदः ॥₇॥

स ववर्ष ततो वृक्षाञ्जिलाश्च कपिकुञ्जरः ।
तान्प्रचिच्छेद सङ्क्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः ॥₈॥

परिघाग्रेण तान्वृक्षान्बभञ्ज च सुरान्तकः ।
त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः ॥₉॥

गजेन समभिद्रुत्य वालिपुत्रं महोदरः ।

जघानोरसि सङ्क्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसंनिभैः ॥₁₀॥

देवान्तकश्च सङ्क्रुद्धः परिघेण तदाङ्गदम् ।
उपगम्याभिहत्याशु व्यपचक्राम वेगवान् ॥₁₁॥

स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः ।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥₁₂॥

तलेन भृशमुत्पत्य जघानास्य महागजम् ।
पेततुर्लोचने तस्य विननाद स वारणः ॥₁₃॥

विषाणं चास्य निष्कृष्य वालिपुत्रो महाबलः ।
देवान्तकमभिद्रुत्य ताडयामास संयुगे ॥₁₄॥

स विह्वलितसर्वाङ्गो वातोद्धत इव द्रुमः ।
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥₁₅॥

अथाश्वास्य महातेजाः कृच्छ्रादेवान्तको बली ।
आविध्य परिघं घोरमाजघान तदाङ्गदम् ॥₁₆॥

परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा ।
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह ॥₁₇॥

समुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिराशीविषोपमैः ।
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह ॥₁₈॥

ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः ।
हनूमानपि विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥₁₉॥

ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा ।
तद्रावणसुतो धीमान्बिभेद निशितैः शरैः ॥₂₀॥

तद्वाणशतनिर्भिन्नं विदारितशिलातलम् ।

सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः ॥₂₁॥

ततो जृम्भितमालोक्य हृषद्विवान्तकस्तदा ।
परिधेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥₂₂॥

तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान्मारुतात्मजः ।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रवेगेन मुष्टिना ॥₂₃॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविकीर्णमूर्धा
निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ।
देवान्तको राक्षसराजसूनुर्-
गतासुरुर्व्या सहसा पपात ॥₂₄॥

तस्मिन्हते राक्षसयोधमुख्ये
महाबले संयति देवशत्रौ ।
क्रुद्धस्त्रिमूर्धा निशिताग्रमुग्रम्
ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥₂₅॥

स तैः शरौघैरभिवर्ष्यमाणो
विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः ।
नीलो बभूवाथ विसृष्टगात्रो
विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥₂₆॥

ततस्तु नीलः प्रतिलभ्य संज्ञाम्
शैलं समुत्पाट्य सवृक्षषण्डम् ।
ततः समुत्पत्य भृशोग्रवेगो
महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥₂₇॥

ततः स शैलाभिनिपातभग्नो
महोदरस्तेन सह द्विपेन ।
विपोथितो भूमितले गतासुः
पपात वर्जाभिहतो यथाद्रिः ॥₂₈॥

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे ।
हनूमन्तं च सङ्क्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥₂₉॥

हनूमांस्तु समुत्पत्य हयांस्त्रिशिरसस्तदा ।
विददार नखैः क्रुद्धो गजेन्द्रं मृगराडिव ॥₃₀॥

अथ शक्तिं समादाय कालरात्रिमिवान्तकः ।
चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥₃₁॥

दिवि क्षिप्तमिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तमसङ्गताम् ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥₃₂॥

तां दृष्ट्वा घोरसङ्काशां शक्तिं भग्नां हनूमता ।
प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा इव ॥₃₃॥

ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ।
निचखान तदा रोषाद्धानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥₃₄॥

खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान्मारुतात्मजः ।
आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥₃₅॥

स तलभिहतस्तेन स्रस्तहस्ताम्बरो भुवि ।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥₃₆॥

स तस्य पततः खड्गं समाच्छिद्य महाकपिः ।
ननाद गिरिसङ्काशस्त्रासयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥₃₇॥

अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः ।
उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयामास मुष्टिना ॥₃₈॥

तेन मुष्टिप्रहारेण सञ्चुकोप महाकपिः ।
कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्षभम् ॥₃₉॥

स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन
किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि ।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य
बध्नुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥ 40 ॥

तान्यायताक्षाण्यगसंनिभानि
प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ।
पेतुः शिरांसीन्द्ररिपोर्धरण्याम्
ज्योतींषि मुक्तानि यथार्कमार्गात् ॥ 41 ॥

तस्मिन्हते देवरिपौ त्रिशीर्षे
हनूमत शक्रपराक्रमेण ।
नेदुः प्लवङ्गाः प्रचचाल भूमी
रक्षांस्यथो दुद्रुविरे समन्तात् ॥ 42 ॥

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा तथैव च महोदरम् ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ 43 ॥

चुकोप परमामर्षी महापार्श्वो महाबलः ।
जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं शुभाम् ॥ 44 ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितलेपनाम् ।
विराजमानां वपुषा शत्रुशोणितरञ्जिताम् ॥ 45 ॥

तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् ।
ऐरावतमहापद्मसार्वभौम भयावहाम् ॥ 46 ॥

गदामादाय सङ्क्रुद्धो महापार्श्वो महाबलः ।
हरीन्समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ 47 ॥

अथर्षयः समुत्पत्य वानरो रवणानुजम् ।
महापार्श्वमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ 48 ॥

तं पुरस्तात्स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥₄₉॥

स तयाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ।
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥₅₀॥

स सम्प्राप्य चिरात्संज्ञामृषभो वानरर्षभः ।
क्रुद्धो विस्फुरमाणौष्ठो महापार्श्वमुदैक्षत ॥₅₁॥

तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ।
मत्तानीकं महापार्श्वं जघान रणमूर्धनि ॥₅₂॥

स स्वया गदया भिन्नो विकीर्णदशनेक्षणः ।
निपपात महापार्श्वो वज्राहत इवाचलः ॥₅₃॥

तस्मिन्हते भ्रातरि रावणस्य
तन्नैर्ऋतानां बलमर्णवाभम् ।
त्यक्तायुधं केवलजीवितार्थम्
दुद्राव भिन्नार्णवसंनिकाशम् ॥₅₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भ्रातृंश्च निहतान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥₁॥

पितृव्यौ चापि सन्दृश्य समरे संनिषूदितौ ।
महोदरमहापाश्र्वौ भ्रातरौ राक्षसर्षभौ ॥₂॥

चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ।
अतिकायोऽद्रिसङ्काशो देवदानवदर्पहा ॥₃॥

स भास्करसहस्रस्य सङ्घातमिव भास्वरम् ।
रथमास्थाय शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥₄॥

स विस्फार्य महद्घापं किरीटी मृष्टकुण्डलः ।
नाम विश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥₅॥

तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च ।
ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥₆॥

ते तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे ।
भयार्ता वानराः सर्वे विद्रवन्ति दिशो दश ॥₇॥

तेऽतिकायं समासाद्य वानरा मूढचेतसः ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥₈॥

ततोऽतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम् ।
ददर्श धन्विनं दूराद्गर्जन्तं कालमेघवत् ॥₉॥

स तं दृष्ट्वा महात्मानं राघवस्तु सुविस्मितः ।

वानरान्सान्त्वयित्वा तु विभीषणमुवाच ह ॥₁₀॥

कोऽसौ पर्वतसङ्काशो धनुष्मान्हरिलोचनः ।
युक्ते हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः ॥₁₁॥

य एष निश्चितैः शूलैः सुतीक्ष्णैः प्रासतोमरैः ।
अर्चिष्मद्भिर्वृतो भाति भूतैरिव महेश्वरः ॥₁₂॥

कालजिह्वाप्रकाशाभिर्य एषोऽभिविराजते ।
आवृतो रथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥₁₃॥

धनूंस्मि चास्य सज्यानि हेमपृष्ठानि सर्वशः ।
शोभयन्ति रथश्रेष्ठं शक्रपातमिवाम्बरम् ॥₁₄॥

क एष रक्षः शार्दूलो रणभूमिं विराजयन् ।
अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यतेजसा ॥₁₅॥

ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाभिविराजते ।
सूर्यरश्मिप्रभैर्बाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥₁₆॥

त्रिणतं मेघनिर्हादं हेमपृष्ठमलङ्कृतम् ।
शतक्रतुधनुःप्रख्यं धनुश्चास्य विराजते ॥₁₇॥

सध्वजः सपताकश्च सानुकर्षो महारथः ।
चतुःसादिसमायुक्तो मेघस्तनितनिस्वनः ॥₁₈॥

विंशतिर्दश चाष्टौ च तूणीररथमास्थिताः ।
कार्मुकाणि च भीमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गलाः ॥₁₉॥

द्वौ च खड्गौ रथगतौ पार्श्वस्थौ पार्श्वशोभिनौ ।
चतुर्हस्तत्सरुचितौ व्यक्तहस्तदशायतौ ॥₂₀॥

रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्वतसंनिभः ।

कालः कालमहावक्तो मेघस्थ इव भास्करः ॥₂₁॥

काञ्चनाङ्गदनद्धाभ्यां भुजाभ्यामेष शोभते ।
शृङ्गाभ्यामिव तुङ्गाभ्यां हिमवान्पर्वतोत्तमः ॥₂₂॥

कुण्डलाभ्यां तु यस्यैतद्भाति वक्तुं शुभेक्षणम् ।
पुनर्वस्वन्तरगतं पूर्णबिम्बमिवैन्दवम् ॥₂₃॥

आचक्ष्व मे महाबाहो त्वमेनं राक्षसोत्तमम् ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे भयार्ता विद्रुता दिशः ॥₂₄॥

स पृष्ठो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा ।
आचक्ष्व मे महातेजा राघवाय विभीषणः ॥₂₅॥

दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः ।
भीमकर्मा महोत्साहो रावणो राक्षसाधिपः ॥₂₆॥

तस्यासीद्वीर्यवान्पुत्रो रावणप्रतिमो रणे ।
वृद्धसेवी श्रुतधरः सर्वास्तविदुषां वरः ॥₂₇॥

अश्वपृष्ठे रथे नागे खड्गे धनुषि कर्षणे ।
भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च सम्मतः ॥₂₈॥

यस्य बाहुं समाश्रित्य लङ्का भवति निर्भया ।
तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः ॥₂₉॥

एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना ।
अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥₃₀॥

सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयम्भुवा ।
एतच्च कवचं दिव्यं रथश्चैषोऽर्कभास्करः ॥₃₁॥

एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिताः ।

रक्षितानि च रक्षामि यक्षाश्चापि निषूदिताः ॥₃₂॥

वज्रं विष्टम्भितं येन बाणैरिन्द्रस्य धीमतः ।
पाशः सलिलराजस्य युद्धे प्रतिहतस्तथा ॥₃₃॥

एषोऽतिकायो बलवान्राक्षसानामथर्षभः ।
रावणस्य सुतो धीमान्देवदनव दर्पहा ॥₃₄॥

तदस्मिन्क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुङ्गव ।
पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः ॥₃₅॥

ततोऽतिकायो बलवान्प्रविश्य हरिवाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥₃₆॥

तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् ।
अभिपेतुर्महात्मानो ये प्रधानाः प्लवङ्गमाः ॥₃₇॥

कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च ।
पादपेर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत्समभिद्रवन् ॥₃₈॥

तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः काञ्चनभूषणैः ।
अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥₃₉॥

तांश्चैव सरान्स हरीञ्शरैः सर्वायसैर्बली ।
विव्याधाभिमुखः सङ्क्षो भीमकायो निशाचरः ॥₄₀॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण भिन्नगात्राः प्लवङ्गमाः ।
न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महारणे ॥₄₁॥

तत्सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः ।
मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनमास्थितः ॥₄₂॥

स राषसेन्द्रो हरिसैन्यमध्ये

नायुध्यमानं निजघान कञ्चित् ।
उपेत्य रामं सधनुः कलापी
सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥⁴³॥

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्-
न प्राकृतं कञ्चन योधयामि ।
यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाय युक्ता
ददातुं मे क्षिप्रमिहाद्य युद्धम् ॥⁴⁴॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात
जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा ॥⁴⁵॥

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥⁴⁶॥

पूरयन्स महीं शैलानाकाशं सागरं दिशः ।
ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयत्रजनीचरान् ॥⁴⁷॥

सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा ।
विसिष्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥⁴⁸॥

अथातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम् ।
आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥⁴⁹॥

बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः ।
गच्छ किं कालसदृशं मां योधयितुमिच्छसि ॥⁵⁰॥

न हि मद्बाहुसृष्टानामस्त्राणां हिमवानपि ।
सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षमथो मही ॥⁵¹॥

सुखप्रसुप्तं कालाग्निं प्रबोधयितुमिच्छसि ।

न्यस्य चापं निवर्तस्व मा प्राणाञ्जहि मद्रतः ॥ 52 ॥

अथ वा त्वं प्रतिष्ठब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान्परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥ 53 ॥

पश्य मे निशितान्बाणानरिदर्पनिषूदनान् ।
ईश्वरायुधसङ्काशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥ 54 ॥

एष ते सर्पसङ्काशो बाणः पास्यति शोणितम् ।
मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ॥ 55 ॥

श्रुत्वातिकायस्य वचः सरोषम्
सगर्वितं संयति राजपुत्रः ।
स सञ्चुकोपातिबलो बृहच्छ्रीः
उवाच वाक्यं च ततो महार्थम् ॥ 56 ॥

न वाक्यमात्रेण भवान्प्रधानो
न कत्थनात्सत्पुरुषा भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ
विदर्शयस्वात्मबलं दुरात्मन् ॥ 57 ॥

कर्मणा सूचयात्मानं न विकथितुमर्हसि ।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ 58 ॥

सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ।
शरैर्वा यदि वाप्यस्त्वैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ 59 ॥

ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ।
मारुतः कालसम्पक्वं वृन्तात्तालफलं यथा ॥ 60 ॥

अद्य ते मामका बाणास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
पास्यन्ति रुधिरं गात्राद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥ 61 ॥

बालोऽयमिति विज्ञाय न मावज्ञातुमर्हसि ।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥ 62 ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ।
अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥ 63 ॥

ततो विद्याधरा भूता देवा दैत्या महर्षयः ।
गुह्यकाश्च महात्मानस्तद्युद्धं ददृशुस्तदा ॥ 64 ॥

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणस्य प्रचिक्षेप सङ्क्षिपन्निव चाम्बरम् ॥ 65 ॥

तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥ 66 ॥

तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम् ।
अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्चबाणान्समाददे ॥ 67 ॥

ताञ्शरान्सम्प्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
तानप्राप्ताञ्शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥ 68 ॥

स तांश्छिन्त्वा शरैस्तीक्ष्णैर्लक्ष्मणः परवीरहा ।
आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ 69 ॥

तमादाय धनुः श्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः ।
विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च सायकम् ॥ 70 ॥

पूर्णायतविसृष्टेन शरेणानत पर्वणा ।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान् ॥ 71 ॥

स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः ।
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाहवे ॥ 72 ॥

राक्षसः प्रचकम्पे च लक्ष्मणेषु प्रकम्पितः ।
रुद्रबाणहतं भीमं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥ 73 ॥

चिन्तयामास चाश्वस्य विमृश्य च महाबलः ।
साधु बाणनिपातेन श्वाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥ 74 ॥

विचार्यैवं विनम्यास्यं विनम्य च भुजावुभौ ।
स रथोपस्थमास्थाय रथेन प्रचचार ह ॥ 75 ॥

एकं त्रीन्यश्च सप्तेति सायकान्नाक्षसर्षभः ।
आददे सन्दधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥ 76 ॥

ते बाणाः कालसङ्काशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः ।
हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥ 77 ॥

ततस्तान्नाक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान्नावणानुजः ।
असम्भ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥ 78 ॥

ताञ्शरान्युधि सम्प्रेक्ष्य निकृत्तान्नावणात्मजः ।
चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह निशितं शरम् ॥ 79 ॥

स सन्धाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत् ।
ततः सौमित्रिमायान्तमाजघान स्तनान्तरे ॥ 80 ॥

अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि ।
सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः ॥ 81 ॥

स चकार तदात्मानं विशल्यं सहसा विभुः ।
जग्राह च शरं तीष्णमस्त्रेणापि समादधे ॥ 82 ॥

आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम् ।
स जज्वाल तदा बाणो धनुश्चास्य महात्मनः ॥ 83 ॥

अतिकायोऽतितेजस्वी सौरमस्त्रं समाददे ।
तेन बाणं भुजङ्गाभं हेमपुङ्खमयोजयत् ॥⁸⁴॥

ततस्तं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम् ।
अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥⁸⁵॥

आग्नेयेनाभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः ।
उत्ससर्ज तदा बाणं दीप्तं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥⁸⁶॥

तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजं गमौ ॥⁸⁷॥

तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुर्धरणीतले ।
निरर्चिषौ भस्मकृतौ न भ्राजेते शरोत्तमौ ॥⁸⁸॥

ततोऽतिकायः सङ्क्रुद्धस्त्रस्त्रमैषीकमुत्सृजत् ।
तत्प्रचिच्छेद सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान् ॥⁸⁹॥

ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा कुमारो रावणात्मजः ।
याम्येनास्त्रेण सङ्क्रुद्धो योजयामास सायकम् ॥⁹⁰॥

ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
वायव्येन तदस्त्रं तु निजघान स लक्ष्मणः ॥⁹¹॥

अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः ।
अभ्यवर्षत सङ्क्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥⁹²॥

तेऽतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते ।
भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणा महीतले ॥⁹³॥

तान्मोघानभिसम्प्रेक्ष्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अभ्यवर्षत बाणानां सहस्रेण महायशाः ॥⁹⁴॥

स वर्ष्माणो बाणौघैरतिकायो महाबलः ।
अवध्यकवचः सङ्क्षो राक्षसो नैव विव्यथे ॥₉₅॥

न शशाक रुजं कर्तुं युधि तस्य नरोत्तमः ।
अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह ॥₉₆॥

ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्य कवचावृतः ।
ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ॥₉₇॥

ततः स वायोर्वचनं निशम्य
सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः ।
समाददे बाणममोघवेगम्
तद्ब्राह्ममस्त्रं सहसा नियोज्य ॥₉₈॥

तस्मिन्वरास्त्रे तु नियुज्यमाने
सौमित्रिणा बाणवरे शिताग्रे ।
दिशः सचन्द्रार्कमहाग्रहाश्च
नभश्च तत्रास ररास चोर्वी ॥₉₉॥

तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे
शरं सुपुङ्खं यमदूतकल्पम् ।
सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य
ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥₁₀₀॥

तं लक्ष्मणोत्सृष्टममोघवेगम्
समापतन्तं ज्वलनप्रकाशम् ।
सुवर्णवज्रोत्तमचित्रपुङ्खम्
तदातिकायः समरे ददर्श ॥₁₀₁॥

तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो
जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपर्णवेगः
तदातिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥₁₀₂॥

तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो
बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् ।
जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः
शूलैर्हलैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥₁₀₃॥

तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि
मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः ।
प्रसह्य तस्यैव किरीटजुष्टम्
तदातिकायस्य शिरो जहार ॥₁₀₄॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रपीडितम् ।
पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥₁₀₅॥

प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानरा
प्रबुद्धपद्मप्रतिमाननास्तदा ।
अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनम्
हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥₁₀₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्ठितमः सर्गः॥

ततो हतान्नाक्षसपुङ्गवांस्तान्
देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान् ।
रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टाः
ते रावणाय त्वरितं शशंसुः ॥₁॥

ततो हतांस्तान्सहसा निशम्य
राजा मुमोहाश्रुपरिप्लुताक्षः ।
पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरम्
विचिन्त्य राजा विपुलं प्रदध्यौ ॥₂॥

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनम्
शोकार्णवे सम्परिप्लुवानम् ।
अथर्षभो राक्षसराजसूनुः
अथेन्द्रजिह्वाक्यमिदं बभाषे ॥₃॥

न तात मोहं प्रतिगन्तुमर्हसि
यत्रेन्द्रजिह्वावति राक्षसेन्द्र ।
नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित्
प्राणान्समर्थः समरेऽभिधर्तुम् ॥₄॥

पश्याद्य रामं सहलक्ष्मणेन
मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ।
गतायुषं भूमितले शयानम्
शरैः शितैराचितसर्वगात्रम् ॥₅॥

इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः
सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अदौव रामं सहलक्ष्मणेन

सन्तापयिष्यामि शरैरमोघैः ॥६॥

अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुमित्र
साध्याश्चिवैश्वानरचन्द्रसूर्याः ।
द्रक्ष्यन्ति मे विक्रममप्रमेयम्
विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे ॥७॥

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रुः
आपृच्छ राजानमदीनसत्त्वः ।
समारुरोहानिलतुल्यवेगम्
रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥८॥

समास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम् ।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिन्दम ॥९॥

तं प्रस्थितं महात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ।
संहर्षमाणा बहवो धनुःप्रवरपाणयः ॥१०॥

गजस्कन्धगताः केचित्केचित्परमवाजिभिः ।
प्रासमुद्गरनिस्त्रिंश परश्वधगदाधराः ॥११॥

स शङ्खनिनदैर्भीमैर्भेरीणां च महास्वनैः ।
जगाम त्रिदशेन्द्रारिः स्तूयमानो निशाचरैः ॥१२॥

स शङ्खशशिवर्णेन छत्रेण रिपुसादनः ।
रराज परिपूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ॥१३॥

अवीज्यत ततो वीरो हैमैर्हैमविभूषितैः ।
चारुचामरमुख्यैश्च मुख्यः सर्वधनुष्मताम् ॥१४॥

ततस्त्रिन्द्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा ।
रराजाप्रतिवीर्येण द्यौरिवार्केण भास्वता ॥१५॥

स तु दृष्ट्वा विनिर्यान्तं बलेन महता वृतम् ।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान्नावणः पुत्रमब्रवीत् ॥₁₆॥

ब्रमप्रतिरथः पुत्र जितस्ते युधि वासवः ।
किं पुनर्मानुषं धृष्यं न वधिष्यसि राघवम् ॥₁₇॥

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य महाशिषः ।
रथेनाश्वयुजा वीरः शीघ्रं गत्वा निकुम्भिलाम् ॥₁₈॥

स सम्प्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिन्दमः ।
स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ॥₁₉॥

ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः ।
जुहुवे राक्षसश्रेष्ठो मन्त्रवद्विधिवत्तदा ॥₂₀॥

स हविर्जालसंस्कारैर्माल्यगन्धपुरस्कृतैः ।
जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥₂₁॥

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकः ।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥₂₂॥

स तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ।
छागस्य सर्वकृष्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥₂₃॥

सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं यान्यदर्शयन् ॥₂₄॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाश्चनसंनिभः ।
हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥₂₅॥

सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्रविदां वरः ।
धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ॥₂₆॥

तस्मिन्नाहूयमानेऽस्ते हूयमाने च पावके ।
सार्कग्रहेन्दु नक्षत्रं वितत्रास नभस्तलम् ॥₂₇॥

स पावकं पावकदीप्ततेजा
हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ।
सचापबाणासिरथाश्वसूतः
खेऽन्तर्दध आत्मानमचिन्त्यरूपः ॥₂₈॥

स सैन्यमुत्सृज्य समेत्य तूर्णम्
महारणे वानरवाहिनीषु ।
अदृश्यमानः शरजालमुग्रम्
ववर्ष नीलाम्बुधरो यथाम्बु ॥₂₉॥

ते शक्रजिह्वाविशीर्णदेहा
मायाहता विस्वरमुन्नदन्तः ।
रणे निपेतुर्हरयोऽद्रिकल्पा
यथेन्द्रवज्राभिहता नगेन्द्राः ॥₃₀॥

ते केवलं सन्ददृशुः शिताग्रान्
बाणान्रणे वानरवाहिनीषु ।
माया निगूढं च सुरेन्द्रशत्रुम्
न चात्र तं राक्षसमभ्यपश्यन् ॥₃₁॥

ततः स रक्षोऽधिपतिर्महात्मा
सर्वा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ।
प्रच्छादयामास रविप्रकाशैर्-
विषादयामास च वानरेन्द्रान् ॥₃₂॥

स शूलनिस्त्रिंश परश्वधानि
व्याविध्य दीप्तानलसंनिभानि ।
सविस्फुलिङ्गोऽवलपावकानि
ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥₃₃॥

ततो ज्वलनसङ्काशैः शितैर्वानरयूथपाः ।
ताडिताः शक्रजिह्वाणैः प्रफुल्ला इव किंशुकाः ॥ 34 ॥

अन्योन्यमभिसर्पन्तो निनदन्तश्च विस्वरम् ।
राक्षसेन्द्रास्त्रनिर्भिन्ना निपेतुर्वानरर्षभाः ॥ 35 ॥

उदीक्षमाणा गगनं केचिन्नेत्रेषु ताडिताः ।
शरैर्विविशुरन्योन्यं पेतुश्च जगतीतले ॥ 36 ॥

हनूमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥ 37 ॥

मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गजगोमुखौ ।
केसरिं हरिलोमानं विद्युद्वट्ठं च वानरम् ॥ 38 ॥

सूर्याननं ज्योतिमुखं तथा दधिमुखं हरिम् ।
पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥ 39 ॥

प्रासेः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः ।
विव्याध हरिशार्दूलान्सर्वास्तान्नाक्षसोत्तमः ॥ 40 ॥

स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान्
निर्भिद्य बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः
सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥ 41 ॥

स बाणवर्षैरभिवर्ष्यमाणो
धारानिपातानिव तान्विचिन्त्य ।
समीक्षमाणः परमाद्भुतश्री
रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥ 42 ॥

असौ पुनर्लक्ष्मण राक्षसेन्द्रो
ब्रह्मास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः ।

निपातयित्वा हरिसैन्यमुग्रम्
अस्माञ्शरैरर्दयति प्रसक्तम् ॥₄₃॥

स्वयम्भुवा दत्तवरो महात्मा
खमास्थितोऽन्तर्हितभीमकायः ।
कथं नु शक्यो युधि नष्टदेहो
निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥₄₄॥

मन्ये स्वयम्भूर्भगवानचिन्त्यो
यस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योऽस्य ।
बाणावपातांस्त्रमिहाद्य धीमन्
मया सहाव्यग्रमनाः सहस्त्र ॥₄₅॥

प्रच्छादयत्येष हि राक्षसेन्द्रः
सर्वा दिशः सायकवृष्टिजालैः ।
एतच्च सर्वं पतिताग्रवीरम्
न भ्राजते वानरराजसैन्यम् ॥₄₆॥

आवां तु दृष्ट्वा पतितौ विसंज्ञौ
निवृत्तयुद्धौ हतरोषहर्षौ ।
ध्रुवं प्रवेक्ष्यत्यमरारिवासम्
असौ समादाय रणाग्रलक्ष्मीम् ॥₄₇॥

ततस्तु ताविन्द्रजिदस्त्रजालैर्-
बभूवतुस्तत्र तदा विशस्तौ ।
स चापि तौ तत्र विषादयित्वा
ननाद हर्षाद्युधि राक्षसेन्द्रः ॥₄₈॥

स तत्तदा वानरराजसैन्यम्
रामं च सङ्क्षो सहलक्ष्मणेन ।
विषादयित्वा सहसा विवेश
पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥₄₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

तयोस्तदा सादितयो रणाग्रे
मुमोह सैन्यं हरियूथपानाम् ।
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्बवन्तो
न चापि किञ्चित्प्रतिपेदिरे ते ॥₁॥

ततो विषण्णं समवेक्ष्य सैन्यम्
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
उवाच शाखामृगराजवीरान्
आश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥₂॥

मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो
यदार्यपुत्राववशौ विषण्णौ ।
स्वयम्भुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ
यत्सादिताविन्द्रजिदस्त्रजालैः ॥₃॥

तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत्
स्वयम्भुवा ब्राह्मममोघवेगम् ।
तन्मानयन्तौ यदि राजपुत्रौ
निपातितौ कोऽत्र विषादकालः ॥₄॥

ब्राह्ममस्त्रं तदा धीमान्मानयित्वा तु मारुतिः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा हनूमांस्तमथाब्रवीत् ॥₅॥

एतस्मिन्निहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम् ।
यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहे ॥₆॥

तावुभौ युगपद्वीरौ हनूमद्राक्षसोत्तमौ ।
उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षे विचेरतुः ॥₇॥

छिन्नलाङ्गूलहस्तोरुपादाङ्गुलि शिरो धरेः ।

स्रवद्भिः क्षतजं गात्रैः प्रस्रवद्भिः समन्ततः ॥८॥

पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसङ्कुलाम् ।

शस्त्रैश्च पतितैर्दीप्तैर्ददृशाते वसुन्धराम् ॥९॥

सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम् ।

जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शनमाहुकम् ॥१०॥

मैन्दं नलं ज्योतिमुखं द्विविदं पनसं तथा ।

विभीषणो हनूमांश्च ददृशाते हतान्रणे ॥११॥

सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम् ।

अहः पञ्चमशेषेण वल्लभेन स्वयम्भुवः ॥१२॥

सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम् ।

मार्गते जाम्बवन्तं स्म हनूमान्सविभीषणः ॥१३॥

स्वभावजरया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम् ।

प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम् ॥१४॥

दृष्ट्वा तमुपसङ्गम्य पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ।

कच्चिदार्यशरैस्तीर्णैर्न प्राणा ध्वंसितास्तव ॥१५॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुङ्गवः ।

कृच्छ्रादभ्युद्भिरन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥

नैर्ऋतेन्द्रमहावीर्यस्वरेण त्वाभिलक्षये ।

पीड्यमानः शितैर्बाणैर्न त्वां पश्यामि चक्षुषा ॥१७॥

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च नैर्ऋत ।

हनूमान्वानरश्रेष्ठः प्राणान्धारयते क्वचित् ॥१८॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः ।
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात्पृच्छसि मारुतिम् ॥ 19 ॥

नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे ।
आर्य सन्दर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः ॥ 20 ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान्वाक्यमब्रवीत् ।
शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम् ॥ 21 ॥

तस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् ।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि वयं हताः ॥ 22 ॥

ध्रियते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि ।
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥ 23 ॥

ततो वृद्धमुपागम्य नियमेनाभ्यवादयत् ।
गृह्य जाम्बवतः पादौ हनूमान्मारुतात्मजः ॥ 24 ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं तथापि व्यथितेन्द्रियः ।
पुनर्जातमिवात्मानं स मेने ऋक्षपुङ्गवः ॥ 25 ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा हनूमन्तं स जाम्बवान् ।
आगच्छ हरिशार्दूलवानरांस्त्वातुमर्हसि ॥ 26 ॥

नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा ।
बत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कश्चन ॥ 27 ॥

ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय ।
विशल्यो कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥ 28 ॥

गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनूमन्गन्तुमर्हसि ॥ 29 ॥

ततः काञ्चनमत्युग्रमृषभं पर्वतोत्तमम् ।
कैलासशिखरं चापि द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥³⁰॥

तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् ।
सर्वोषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्यौषधिपर्वतम् ॥³¹॥

तस्य वानरशार्दूलचतस्रो मूर्ध्नि सम्भवाः ।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्त्यो दिशो दश ॥³²॥

मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि ।
सौवर्णकरणीं चैव सन्धानीं च महौषधीम् ॥³³॥

ताः सर्वा हनुमन्मृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
आश्वासय हरीन्प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मजः ॥³⁴॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमान्हरिपुङ्गवः ।
आपूर्यत बलोद्धर्षैस्तोयवेगैरिवार्षवः ॥³⁵॥

स पर्वततटाग्रस्थः पीडयन्पर्वतोत्तरम् ।
हनूमान्दृश्यते वीरो द्वितीय इव पर्वतः ॥³⁶॥

हरिपादविनिर्भिन्नो निषसाद स पर्वतः ।
न शशाक तदात्मानं सोढुं भृशनिपीडितः ॥³⁷॥

तस्य पेतुर्नगा भूमौ हरिवेगाच्च जज्वलुः ।
शृङ्गाणि च व्यकीर्यन्त पीडितस्य हनूमता ॥³⁸॥

तस्मिन्सम्पीड्यमाने तु भग्नद्रुमशिलातले ।
न शेकुर्वानराः स्थातुं घूर्णमाने नगोत्तमे ॥³⁹॥

स घूर्णितमहाद्वारा प्रभग्नगृहगोपुरा ।
लङ्का त्रासाकुला रात्रौ प्रनृत्तेवाभवत्तदा ॥⁴⁰॥

पृथिवीधरसङ्काशो निपीड्य धरणीधरम् ।
पृथिवीं क्षोभयामास सार्णवां मारुतात्मजः ॥₄₁॥

पद्भ्यां तु शैलमापीड्य वडवामुखवन्मुखम् ।
विवृत्योग्रं ननादोच्चैस्त्रासयन्निव राक्षसान् ॥₄₂॥

तस्य नानद्यमानस्य श्रुत्वा निनदमद्भुतम् ।
लङ्कास्था राक्षसाः सर्वे न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥₄₃॥

नमस्कृत्वाथ रामाय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
राघवार्थे परं कर्म समैहत परन्तपः ॥₄₄॥

स पुच्छमुद्यम्य भुजङ्गकल्पम्
विनम्य पृष्ठं श्रवणे निकुञ्च ।
विवृत्य वक्तुं वडवामुखाभम्
आपुप्लुवे व्योम्नि स चण्डवेगः ॥₄₅॥

स वृक्षषण्डांस्तरसा जहार
शैलाञ्जलिः प्राकृतवानरांश्च ।
बाहूरुवेगोद्धतसम्प्रणुन्नाः
ते क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः ॥₄₆॥

स तौ प्रसार्योरगभोगकल्पौ
भुजौ भुजङ्गारिनिकाशवीर्यः ।
जगाम मेरुं नगराजमग्र्यम्
दिशः प्रकर्षन्निव वायुसूनुः ॥₄₇॥

स सागरं घूर्णितवीचिमालम्
तदा भृशं भ्रामितसर्वसत्त्वम् ।
समीक्षमाणः सहसा जगाम
चक्रं यथा विष्णुकराग्रमुक्तम् ॥₄₈॥

स पर्वतान्वृक्षगणान्सरांसि

नदीस्तटाकानि पुरोत्तमानि ।
स्फीताञ्जनांस्तानपि सम्प्रपश्यन्
जगाम वेगात्पितृतुल्यवेगः ॥⁴⁹॥

आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतश्रमः ।
स ददर्श हरिश्रेष्ठो हिमवन्तं नगोत्तमम् ॥⁵⁰॥

नानाप्रस्रवणोपेतं बहुकन्दरनिर्झरम् ।
श्वेताभ्रचयसङ्काशैः शिखरैश्चारुदर्शनैः ॥⁵¹॥

स तं समासाद्य महानगेन्द्रम्
अतिप्रवृद्धोत्तमघोरशृङ्गम् ।
ददर्श पुण्यानि महाश्रमाणि
सुरर्षिसङ्घोत्तमसेवितानि ॥⁵²॥

स ब्रह्मकोशं रजतालयं च
शक्रालयं रुद्रशरप्रमोक्षम् ।
हयाननं ब्रह्मशिरश्च दीप्तम्
ददर्श वैवस्वत किङ्करांश्च ॥⁵³॥

वज्रालयं वैश्वरणालयं च
सूर्यप्रभं सूर्यनिबन्धनं च ।
ब्रह्मासनं शङ्करकार्मुकं च
ददर्श नाभिं च वसुन्धरायाः ॥⁵⁴॥

कैलासमग्र्यं हिमवच्छिलां च
तथर्षभं काञ्चनशैलमग्र्यम् ।
स दीप्तसर्वोषधिसम्प्रदीप्तम्
ददर्श सर्वोषधिपर्वतेन्द्रम् ॥⁵⁵॥

स तं समीक्ष्यानलरश्मिदीप्तम्
विसिष्मिये वासवदूतसूनुः ।
आप्लुत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रम्

तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥₅₆॥

स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ।
दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन्मारुतात्मजः ॥₅₇॥

महौषध्यस्तु ताः सर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे ।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥₅₈॥

स ता महात्मा हनुमानपश्यम्:
चुकोप कोपाच्च भृशं ननाद ।
अमृष्यमाणोऽग्निनिकाशचक्षुर्-
महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥₅₉॥

किमेतदेवं सुविनिश्चितं ते
यद्राघवे नासि कृतानुकम्पः ।
पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो
विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥₆₀॥

स तस्य शृङ्गं सनगं सनागम्
सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम् ।
विकीर्णकूटं चलिताग्रसानुम्
प्रगृह्य वेगात्सहसोन्ममाथ ॥₆₁॥

स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात
वित्रास्य लोकान्ससुरान्सुरेन्द्रान् ।
संस्तूयमानः खचरैरनेकैर्-
जगाम वेगाद्गरुडोग्रवीर्यः ॥₆₂॥

स भास्कराध्वानमनुप्रपन्नः
तद्भास्कराभं शिखरं प्रगृह्य ।
बभौ तदा भास्करसंनिकाशो
रवेः समीपे प्रतिभास्कराभः ॥₆₃॥

स तेन शैलेन भृशं रराज
शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ।
सहस्रधारेण सपावकेन
चक्रेण खे विष्णुरिवोद्धृतेन ॥ 64 ॥

तं वानराः प्रेक्ष्य तदा विनेदुः
स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ।
तेषां समुद्घुष्टरवं निशम्य
लङ्कालया भीमतरं विनेदुः ॥ 65 ॥

ततो महात्मा निपपात तस्मिन्
शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद
विभीषणं तत्र च सस्त्रजे सः ॥ 66 ॥

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ
तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यौ
उत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥ 67 ॥

ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु
तमोषधीशैलमुदग्रवीर्यः ।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ 68 ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
अर्थं विजापयंश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥₁॥

यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः ।
नेदानीमुपनिर्हारं रावणो दातुमर्हति ॥₂॥

ये ये महाबलाः सन्ति लघवश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कामभ्युत्पतन्बाणु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः ॥₃॥

ततोऽस्तं गत आदित्ये रौद्रे तस्मिन्निशामुखे ।
लङ्कामभिमुखाः सोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः ॥₄॥

उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुताः ।
आरक्षस्था विरूपाक्षाः सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥₅॥

गोपुराट्ट प्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च ।
प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम् ॥₆॥

तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक्तदा ।
आवासान्नाक्षसानां च सर्वेषां गृहमेधिनाम् ॥₇॥

हेमचित्रतनुत्राणां स्रग्दामाम्बरधारिणाम् ।
सीधुपानचलाक्षाणां मदविह्वलगामिनाम् ॥₈॥

कान्तालम्बितवस्त्राणां शत्रुसंजातमन्युनाम् ।
गदाशूलासि हस्तानां खादतां पिबतामपि ॥₉॥

शयनेषु महार्हेषु प्रसुप्तानां प्रियैः सह ।

त्रस्तानां गच्छतां तूर्णं पुत्रानादाय सर्वतः ॥₁₀॥

तेषां गृहसहस्राणि तदा लङ्कानिवासिनाम् ।
अदहत्पावकस्तत्र जज्वाल च पुनः पुनः ॥₁₁॥

सारवन्ति महार्हाणि गम्भीरगुणवन्ति च ।
हेमचन्द्रार्धचन्द्राणि चन्द्रशालोन्नतानि च ॥₁₂॥

रत्नचित्रगवाक्षाणि साधिष्ठानानि सर्वशः ।
मणिविद्रुमचित्राणि स्पृशन्तीव च भास्करम् ॥₁₃॥

क्रौञ्चबर्हिणवीणानां भूषणानां च निस्त्रनैः ।
नादितान्यचलाभानि वेश्मान्यग्निर्ददाह सः ॥₁₄॥

ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ।
विद्युद्भिरिव नद्धानि मेघजालानि घर्मगे ॥₁₅॥

विमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना वराङ्गनाः ।
त्यक्ताभरणसंयोगा हाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशः ॥₁₆॥

तत्र चाग्निपरीतानि निपेतुर्भवनान्यपि ।
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि महागिरेः ॥₁₇॥

तानि निर्दह्यमानानि दूरतः प्रचकाशिरे ।
हिमवच्छिखराणीव दीप्तौषधिवनानि च ॥₁₈॥

हर्म्याग्रेर्दह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ।
रात्रौ सा दृश्यते लङ्का पुष्पितैरिव किंशुकैः ॥₁₉॥

हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ।
बभूव लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णवः ॥₂₀॥

अश्वं मुक्तं गजो दृष्ट्वा कच्चिद्भीतोऽपसर्पति ।

भीतो भीतं गजं दृष्ट्वा क्वचिदश्वो निवर्तते ॥₂₁॥

सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्दीपिता पुरी ।
लोकस्यास्य क्षये घोरे प्रदीप्तेव वसुन्धरा ॥₂₂॥

नारी जनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ।
स्वनो ज्वलनतप्तस्य शुश्रुवे दशयोजनम् ॥₂₃॥

प्रदग्धकायानपरान्नाक्षसान्निर्गतान्वहिः ।
सहसाम्युत्पतन्ति स्म हरयोऽथ युयुत्सवः ॥₂₄॥

उद्धुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनः ।
दिशो दश समुद्रं च पृथिवीं चान्वनादयत् ॥₂₅॥

विशल्यौ तु महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
असम्भ्रान्तौ जगृहतुस्तावुभौ धनुषी वरे ॥₂₆॥

ततो विस्फारयाणस्य रामस्य धनुरुत्तमम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः ॥₂₇॥

अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन्महत् ।
भगवानिव सङ्क्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः ॥₂₈॥

वानरोद्धुष्टघोषश्च राक्षसानां च निस्वनः ।
ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप दिशो दश ॥₂₉॥

तस्य कार्मुकमुक्तैश्च शरैस्तत्पुरगोपुरम् ।
कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमपतद्भुवि ॥₃₀॥

ततो रामशरान्दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च ।
संनाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥₃₁॥

तेषां संनह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् ।

शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ॥₃₂॥

आदिष्टा वानरेन्द्रास्ते सुग्रीवेण महात्मना ।
आसन्ना द्वारमासाद्य युध्यध्वं प्लवगर्षभाः ॥₃₃॥

यश्च वो वितथं कुर्यात्तत्र तत्र व्यवस्थितः ।
स हन्तव्योऽभिसम्प्लुत्य राजशासनदूषकः ॥₃₄॥

तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोञ्चलपाणिषु ।
स्थितेषु द्वारमासाद्य रावणं मन्युराविशत् ॥₃₅॥

तस्य जृम्भितविक्षेपाद्द्वामिश्रा वै दिशो दश ।
रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥₃₆॥

स निकुम्भं च कुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ ।
प्रेषयामास सङ्क्रुद्धो राक्षसैर्वहुभिः सह ॥₃₇॥

शशास चैव तान्सर्वान्नाक्षसान्नाक्षसेश्वरः ।
राक्षसा गच्छतात्रैव सिंहनादं च नादयन् ॥₃₈॥

ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः ।
लङ्काया निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः ॥₃₉॥

भीमाश्वरथमातङ्गं नानापत्ति समाकुलम् ।
दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥₄₀॥

तद्राक्षसबलं घोरं भीमविक्रमपौरुषम् ।
ददृशे ज्वलितप्रासं किङ्किणीशतनादितम् ॥₄₁॥

हेमजालाचितभुजं व्यावेष्टितपरश्वधम् ।
व्याघूर्णितमहाशस्त्रं बाणसंसक्तकार्मुकम् ॥₄₂॥

गन्धमाल्यमधूत्सेकसम्मोदित महानिलम् ।

घोरं शूरजनाकीर्णं महाम्बुधरनिस्त्रनम् ॥₄₃॥

तं दृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां सुदारुणम् ।
सञ्चचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥₄₄॥

जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद्राक्षसबलं महत् ।
अभ्ययात्प्रत्यरिबलं पतङ्ग इव पावकम् ॥₄₅॥

तेषां भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ।
राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयस्तरमशोभत ॥₄₆॥

तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामसिभिः शितैः ।
प्रवीरानभितो जघ्मूर्घोररूपा निशाचराः ॥₄₇॥

घ्नन्तमन्यं जघानान्यः पातयन्तमपातयत् ।
गर्हमाणं जगर्हान्ये दशन्तमपरेऽदशत् ॥₄₈॥

देहीत्यन्ये ददात्यन्यो ददामीत्यपरः पुनः ।
किं क्लेशयसि तिष्ठेति तत्रान्योन्यं बभाषिरे ॥₄₉॥

समुद्यतमहाप्रासं मुष्टिशूलासिसङ्कुलम् ।
प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥₅₀॥

वानरान्दश सप्तेति राक्षसा अभ्यपातयन् ।
राक्षसान्दशसप्तेति वानरा जघ्मुराहवे ॥₅₁॥

विस्रस्तकेशरसनं विमुक्तकवचध्वजम् ।
बलं राक्षसमालम्ब्य वानराः पर्यवारयन् ॥₅₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वात्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

प्रवृत्ते सङ्कुले तस्मिन्धोरे वीरजनक्षये ।
अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥₁॥

आहूय सोऽङ्गदं कोपात्ताडयामास वेगितः ।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥₂॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥₃॥

हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तदा ।
जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णसुतो यतः ।
आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम् ॥₄॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्शरान्देहविदारणान् ॥₅॥

तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् ।
विद्युदैरावतार्चिष्मद्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥₆॥

आकर्णकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ।
तेन हाटकपुङ्खेन पत्रिणा पत्रवाससा ॥₇॥

सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् ।
निपपाताद्रिकूटाभो विह्वलः प्लवगोत्तमः ॥₈॥

मैन्द्रस्तु भ्रातरं दृष्ट्वा भग्नं तत्र महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥₉॥

तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः ।
बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः ॥₁₀॥

सन्धाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥₁₁॥

स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्छितः ॥₁₂॥

अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा पतितौ तौ महाबलौ ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥₁₃॥

तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः ।
त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातङ्गमिव तोमरैः ॥₁₄॥

सोऽङ्गदं विविधैर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान् ।
अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः ॥₁₅॥

अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते ।
शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह ॥₁₆॥

स प्रचिच्छेद तान्सर्वान्बिभेद च पुनः शिलाः ।
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान्वालिपुत्रसमीरितान् ॥₁₇॥

आपतन्तं च सम्प्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ।
भ्रुवोर्विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् ॥₁₈॥

अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते ।
सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥₁₉॥

तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसंनिभम् ।
समुत्सृजन्तं वेगेन पश्यतां सर्वरक्षसाम् ॥₂₀॥

स चिच्छेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः ।
अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं ससाद च मुमोह च ॥²¹॥

अङ्गदं व्यथितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे ।
दुरासदं हरिश्रेष्ठा राघवाय न्यवेदयन् ॥²²॥

रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं महाहवे ।
व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्ततः ॥²³॥

ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम् ।
अभिपेतुः सुसङ्क्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥²⁴॥

ततो द्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ।
रिरक्षिषन्तोऽभ्यपतन्नङ्गदं वानरर्षभाः ॥²⁵॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ॥²⁶॥

समीक्ष्यातततस्तांस्तु वानरेन्द्रान्महाबलान् ।
आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ॥²⁷॥

तस्य बाणचयं प्राप्य न शोकेरतिवर्तितुम् ।
वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ॥²⁸॥

तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान् ।
अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ॥²⁹॥

अभिदुद्राव वेगेन सुग्रीवः कुम्भमाहवे ।
शैलसानु चरं नागं वेगवानिव केसरी ॥³⁰॥

उत्पात्य च महाशैलानश्चकर्णान्धवान्बहून् ।
अन्यांश्च विविधान्वृक्षांश्चिक्षेप च महाबलः ॥³¹॥

तां छादयन्तीमाकाशं वृक्षवृष्टिं दुरासदाम् ।
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमांश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

अभिलक्ष्येण तीव्रेण कुम्भेन निशितैः शरैः ।
आचितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः ॥ ३३ ॥

द्रुमवर्षं तु तच्छिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान् ।
वानराधिपतिः श्रीमान्महासत्त्वो न विव्यथे ॥ ३४ ॥

निर्भिद्यमानः सहसा सहमानश्च ताञ्शरान् ।
कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुःप्रभम् ॥ ३५ ॥

अवप्लुत्य ततः शीघ्रं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
अब्रवीत्कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम् ॥ ३६ ॥

निकुम्भाग्रज वीर्यं ते बाणवेगं तदद्भुतम् ।
संनतिश्च प्रभावश्च तव वा रावणस्य वा ॥ ३७ ॥

प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपम ।
एकस्त्वमनुजातोऽसि पितरं बलवत्तरः ॥ ३८ ॥

त्वामेवैकं महाबाहुं शूलहस्तमरिन्दमम् ।
त्रिदशा नातिवर्तन्ते जितेन्द्रियमिवाधयः ॥ ३९ ॥

वरदानात्पितृव्यस्ते सहते देवदानवान् ।
कुम्भकर्णस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥ ४० ॥

धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च ।
त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोऽसि बलवीर्यतः ॥ ४१ ॥

महाविमर्दं समरे मया सह तवाद्भुतम् ।
अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्बरयोरिव ॥ ४२ ॥

कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम् ।
पातिता हरिवीराश्च त्वयैते भीमविक्रमाः ॥⁴³॥

उपालम्भभयाच्चापि नासि वीर मया हतः ।
कृतकर्मा परिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे बलम् ॥⁴⁴॥

तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः ।
अग्नेराज्यहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥⁴⁵॥

ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपद्य च ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगेन मुष्टिना ॥⁴⁶॥

तस्य चर्म च पुस्फोट संजज्ञे चास्य शोणितम् ।
स च मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥⁴⁷॥

तदा वेगेन तत्रासीत्तेजः प्रज्वालितं मुहुः ।
वज्रनिष्पेषसंजातज्वाला मेरौ यथा गिरौ ॥⁴⁸॥

स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥⁴⁹॥

अर्चिःसहस्रविकचं रविमण्डलसप्रभम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥⁵⁰॥

मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः ।
लोहिताङ्ग इवाकाशादीतरश्मिर्यदृच्छया ॥⁵¹॥

कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना ।
बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथारूपं गवां पतेः ॥⁵²॥

तस्मिन्हते भीमपराक्रमेण
प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
मही सशैला सवना चचाल

भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥₅₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमवैक्षत ॥₁॥

ततः स्रग्दामसंनद्धं दत्तपश्चाङ्गुलं शुभम् ।
आददे परिघं वीरो नगेन्द्रशिखरोपमम् ॥₂॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तं वज्रविद्रुमभूषितम् ।
यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥₃॥

तमाविध्य महातेजाः शक्रध्वजसमं रणे ।
विननाद विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥₄॥

उरोगतेन निष्केण भुजस्थैरङ्गदैरपि ।
कुण्डलाभ्यां च मृष्टाभ्यां मालया च विचित्रया ॥₅॥

निकुम्भो भूषणैर्भाति तेन स्म परिघेण च ।
यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयितुमान् ॥₆॥

परिघाग्रेण पुस्फोट वातग्रन्थिर्महात्मनः ।
प्रजज्वाल सघोषश्च विधूम इव पावकः ॥₇॥

नगर्या विटपावत्या गन्धर्वभवनोत्तमैः ।
सह चैवामरावत्या सर्वैश्च भवनैः सह ॥₈॥

सतारागणनक्षत्रं सचन्द्रं समहाग्रहम् ।
निकुम्भपरिघाघूर्णं भ्रमतीव नभस्तलम् ॥₉॥

दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः ।

क्रोधेन्धनो निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥₁₀॥

राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
हनूमन्स्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥₁₁॥

परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥₁₂॥

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः ।
विशीर्यमाणः सहसा उल्का शतमिवाम्बरे ॥₁₃॥

स तु तेन प्रहारेण चचाल च महाकपिः ।
परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥₁₄॥

स तथाभिहतस्तेन हनूमान्म्लवगोत्तमः ।
मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥₁₅॥

तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान् ।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान्वायुविक्रमः ॥₁₆॥

ततः पुस्फोट चर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् ।
मुष्टिना तेन संजज्ञे ज्वाला विद्युदिवोत्थिता ॥₁₇॥

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल ह ।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्तं महाबलम् ॥₁₈॥

विचुक्रुशुस्तदा सङ्क्षो भीमं लङ्कानिवासिनः ।
निकुम्भेनोद्धृतं दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ॥₁₉॥

स तथा ह्रियमाणोऽपि कुम्भकर्णात्मजेन हि ।
आजघानानिलसुतो वज्रवेगेन मुष्टिना ॥₂₀॥

आत्मानं मोचयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत ।

हनूमानुन्ममथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥₂₁॥

निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च ।
उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वीर्यवान् ॥₂₂॥

परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् ।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥₂₃॥

अथ विनदति सादिते निकुम्भे
पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम् ।
दशरथसुतराक्षसेन्द्रचम्बोर्-
भृशतरमागतरोषयोः सुभीमम् ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

निकुम्भं च हतं श्रुत्वा कुम्भं च विनिपातितम् ।
रावणः परमामर्षी प्रज्ज्वालानलो यथा ॥₁॥

नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्छितः ।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥₂॥

गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ ॥₃॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरो मानी खरात्मजः ।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरः ॥₄॥

सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥₅॥

समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोऽब्रवीदिदम् ।
रथमानीयतां शीघ्रं सैन्यं चानीयतां बरात् ॥₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो निशाचरः ।
स्यन्दनं च बलं चैव समीपं प्रत्यपादयत् ॥₇॥

प्रदक्षिणं रथं कृत्वा आरुरोह निशाचरः ।
सूतं सञ्चोदयामास शीघ्रं मे रथमावह ॥₈॥

अथ तान्नाक्षसान्सर्वान्मकराक्षोऽब्रवीदिदम् ।
यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तान्मम राक्षसाः ॥₉॥

अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना ।

आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥₁₀॥

अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः ।
शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः ॥₁₁॥

अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम् ।
प्रदहिष्यामि सम्प्राप्तां शुष्केन्धनमिवानलः ॥₁₂॥

मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः ।
सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः समाहिताः ॥₁₃॥

ते कामरूपिणः शूरा दंष्ट्रिणः पिङ्गलेक्षणाः ।
मातङ्गा इव नर्दन्तो ध्वस्तकेशा भयानकाः ॥₁₄॥

परिवार्य महाकाया महाकायं खरात्मजम् ।
अभिजग्मुस्तदा हृष्टाश्चालयन्तो वसुन्धराम् ॥₁₅॥

शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः ।
क्ष्वेडितास्फोटितानां च ततः शब्दो महानभूत् ॥₁₆॥

प्रभ्रष्टोऽथ करात्तस्य प्रतोदः सारथेस्तदा ।
पपात सहसा चैव ध्वजस्तस्य च रक्षसः ॥₁₇॥

तस्य ते रथसंयुक्ता हया विक्रमवर्जिताः ।
चरणैराकुलैर्गत्वा दीनाः सास्रमुखा ययुः ॥₁₈॥

प्रवाति पवनस्तस्य सपांसुः खरदारुणः ।
निर्याणे तस्य रौद्रस्य मकराक्षस्य दुर्मतेः ॥₁₉॥

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा वीर्यवत्तमाः ।
अचिन्त्यनिर्गताः सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥₂₀॥

घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः

समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ।
अहमहमिति युद्धकौशलास्ते
रजनिचराः परिवभ्रमुर्नदन्तः ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः ।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥₁॥

ततः प्रवृत्तं सुमहत्तद्युद्धं लोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्लवङ्गानां देवानां दानवैरिव ॥₂॥

वृक्षशूलनिपातैश्च शिलापरिघपातनैः ।
अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥₃॥

शक्तिशूलगदाखड्गैस्तोमरैश्च निशाचराः ।
पट्टसैर्भिन्दिपालैश्च बाणपातैः समन्ततः ॥₄॥

पाशमुद्गरदण्डैश्च निर्घातैश्चापरैस्तथा ।
कदनं कपिसिंहानां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥₅॥

बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥₆॥

तान्दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान्वनौकसः ।
नेदुस्ते सिंहवद्धृष्टा राक्षसा जितकाशिनः ॥₇॥

विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः ।
रामस्तान्वारयामास शरवर्षेण राक्षसान् ॥₈॥

वारितान्नाक्षसान्दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
क्रोधानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत् ॥₉॥

तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं ददामि ते ।

त्याजयिष्यामि ते प्राणान्धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥₁₀॥

यत्तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान्मम ।
मदग्रतः स्वकर्मस्थं स्मृत्वा रोषोऽभिवर्धते ॥₁₁॥

दहन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन्मम राघव ।
यन्मयासि न दृष्टस्त्वं तस्मिन्काले महावने ॥₁₂॥

दिष्टासि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह ।
काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः ॥₁₃॥

अद्य मद्भाणवेगेन प्रेतराद्विषयं गतः ।
ये त्वया निहताः शूराः सह तैस्त्वं समेष्यसि ॥₁₄॥

बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम ।
पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे ॥₁₅॥

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा महाहवे ।
अभ्यस्तं येन वा राम तेन वा वर्ततां युधि ॥₁₆॥

मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥₁₇॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः ।
त्रिशिरा दूषणश्चापि दण्डके निहता मया ॥₁₈॥

स्वाशितास्तव मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः ।
भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुशाः ॥₁₉॥

एवमुक्तस्तु रामेण खरपुत्रो निशाचरः ।
बाणौघानसृजत्तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥₂₀॥

ताञ्शराञ्शरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा ।

निपेतुर्भुवि ते छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सहस्रशः ॥₂₁॥

तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा ।
खर राक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥₂₂॥

जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोस्तदा ।
धनुर्मुक्तः स्वनोत्कृष्टः श्रूयते च रणाजिरे ॥₂₃॥

देवदानवगन्धर्वाः किंनराश्च महोरगाः ।
अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥₂₄॥

विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते बलम् ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं कुर्वते तौ रणाजिरे ॥₂₅॥

राममुक्तास्तु बाणौघान्नाक्षसस्त्वच्छिनद्वणे ।
रक्षोमुक्तास्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥₂₆॥

बाणौघवितताः सर्वा दिशश्च विदिशस्तथा ।
सञ्छन्ना वसुधा चैव समन्तान्न प्रकाशते ॥₂₇॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद रक्षसः ।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ।
भित्त्वा शरै रथं रामो रथाश्चान्समपातयत् ॥₂₈॥

विरथो वसुधां तिष्ठन्मकराक्षो निशाचरः ।
अतिष्ठद्वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।
त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥₂₉॥

विभ्राम्य च महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः ।
स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महाहवे ॥₃₀॥

तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्युतम् ।
बाणैस्तु त्रिभिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥₃₁॥

सच्छिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः ।
व्यशीर्यत महोक्लेव रामबाणार्दितो भुवि ॥³²॥

तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा रामेणाद्भुतकर्मणा ।
साधु साध्विति भूतानि व्याहरन्ति नभोगताः ॥³³॥

तदृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः ।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥³⁴॥

स तं दृष्ट्वा पतन्तं वै प्रहस्य रघुनन्दनः ।
पावकास्त्रं ततो रामः सन्दधे स्वशरासने ॥³⁵॥

तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ।
सञ्छिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥³⁶॥

दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।
लङ्कामेव प्रधावन्त रामबालार्दितास्तदा ॥³⁷॥

दशरथनृपपुत्रबाणवेगे
रजनिचरं निहतं खरात्मजं तम् ।
ददृशुरथ च देवताः प्रहृष्टा
गिरिमिव वज्रहतं यथा विशीर्णम् ॥³⁸॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

॥सप्तषष्टितमः सर्गः॥

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः ।
आदिदेशाथ सङ्क्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥₁॥

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥₂॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे ।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥₃॥

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः ।
यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहुवे न्द्रजित् ॥₄॥

जुह्वतश्चापि तत्राग्निं रक्तोष्णीषधराः स्त्रियः ।
आजग्मुस्तत्र सम्भ्रान्ता राक्षस्यो यत्र रावणिः ॥₅॥

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः ।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्णायिसं तथा ॥₆॥

सर्वतोऽग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः समन्ततः ।
छागस्य सर्वकृष्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥₇॥

चरुहोमसमिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं दर्शयन्ति च ॥₈॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसंनिभः ।
हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥₉॥

हुत्वाग्निं तर्पयित्वाथ देवदानवराक्षसान् ।

आरुरोह रथश्रेष्ठमन्तर्धानगतं शुभम् ॥₁₀॥

स वाजिभिश्चतुर्भिस्तु बाणैश्च निशितैर्युतः ।
आरोपितमहाचापः शुशुभे स्यन्दनोत्तमे ॥₁₁॥

जाज्वल्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छदः ।
शरैश्चन्द्रार्धचन्द्रैश्च स रथः समलङ्कृतः ॥₁₂॥

जाम्बूनदमहाकम्बुर्दीप्तपावकसंनिभः ।
बभूवेन्द्रजितः केतुर्वैदूर्यसमलङ्कृतः ॥₁₃॥

तेन चादित्यकल्पेन ब्रह्मास्त्रेण च पालितः ।
स बभूव दुराधर्षो रावणिः सुमहाबलः ॥₁₄॥

सोऽभिनिर्याय नगरादिन्द्रजित्समितिंजयः ।
हुत्वाग्निं राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानगतोऽब्रवीत् ॥₁₅॥

अद्य हत्वाहवे यो तौ मिथ्या प्रव्रजितौ वने ।
जयं पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणाधिकम् ॥₁₆॥

कृत्वा निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ।
करिष्ये परमां प्रीतिमित्युक्तान्तरधीयत ॥₁₇॥

आपपाताथ सङ्क्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः ।
तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्रिन्द्ररिपू रणे ॥₁₈॥

स ददर्श महावीर्यो नागौ त्रिशिरसाविव ।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥₁₉॥

इमौ ताविति सञ्चिन्त्य सज्जं कृत्वा च कार्मुकम् ।
सन्ततानेषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥₂₀॥

स तु वैहायसं प्राप्य सरथो रामलक्ष्मणौ ।

अचक्षुर्विषये तिष्ठन्विव्याध निशितैः शरैः ॥ 21 ॥

तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः ॥ 22 ॥

प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ ।
तमस्त्रैः सुरसङ्काशौ नैव पस्पर्शतुः शरैः ॥ 23 ॥

स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमानीहारतमसावृतः ॥ 24 ॥

नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्त्रनः ।
शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥ 25 ॥

घनान्धकारे तिमिरे शरवर्षमिवाद्भुतम् ।
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥ 26 ॥

स रामं सूर्यसङ्काशैः शरैर्दत्तवरो भृशम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥ 27 ॥

तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ ।
हेमपुङ्खान्नरव्याघ्रौ तिग्मान्मुमुचतुः शरान् ॥ 28 ॥

अन्तरिक्षं समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः ।
निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणितोक्षिताः ॥ 29 ॥

अतिमात्रं शरौघेण पीड्यमानौ नरोत्तमौ ।
तानिषून्यततो भलैरनेकैर्निचकर्ततुः ॥ 30 ॥

यतो हि ददृशाते तौ शरान्निपतिताञ्छितान् ।
ततस्ततो दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥ 31 ॥

रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथः पतन् ।

विव्याध तो दाशरथी लघ्वस्त्रो निशितैः शरैः ॥₃₂॥

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहतैः ।
बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥₃₃॥

नास्य वेद गतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान् ।
न चान्यद्विदितं किञ्चित्सूर्यस्येवाभ्रसम्प्लवे ॥₃₄॥

तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः ।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥₃₅॥

लक्ष्मणस्तु सुसङ्क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥₃₆॥

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥₃₇॥

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ।
पलायन्तं प्रमत्तं वा न त्वं हन्तुमिहार्हसि ॥₃₈॥

अस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यावो महाबल ।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥₃₉॥

तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात् ।
राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥₄₀॥

यद्येष भूमिं विशते दिवं वा
रसातलं वापि नभस्तलं वा ।
एवं निगूढोऽपि ममास्त्रदग्धः
पतिष्यते भूमितले गतासुः ॥₄₁॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः ।

वधाय रौद्रस्य नृशंसकर्मणः
तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तषष्ठितमः सर्गः॥

॥अष्टषष्टितमः सर्गः॥

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
संनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेश पुरं ततः ॥₁॥

सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम् ।
क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगाम महाद्युतिः ॥₂॥

स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ।
इन्द्रजित्तु महावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥₃॥

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥₄॥

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा ।
बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥₅॥

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः ।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥₆॥

तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं नगर्याः काननौकसः ।
उत्पेतुरभिसङ्क्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥₇॥

हनूमान्पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः ।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥₈॥

स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे ।
एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥₉॥

परिक्लिष्टैकवसनाममृजां राघवप्रियाम् ।

रजोमलाभ्यामालितैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥₁₀॥

तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीमध्यवस्य च ।
बाष्पपर्याकुलमुखो हनूमान्व्यथितोऽभवत् ॥₁₁॥

अब्रवीत्तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनाम् ।
दृष्ट्वा रथे स्तितां सीतां राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥₁₂॥

किं समर्थितमस्येति चिन्तयन्स महाकपिः ।
सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥₁₃॥

तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
कृत्वा विशोकं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतां परामृशत् ॥₁₄॥

तं स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास रावणिः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥₁₅॥

गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान्देन्यमागतः ।
दुःखजं वारिनेत्राभ्यामुत्सृजन्मारुतात्मजः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोऽधिपात्मजम् ॥₁₆॥

दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः ।
ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ।
धिक्त्वा पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ॥₁₇॥

नृशंसानार्यं दुर्वृत्तं क्षुद्रं पापपराक्रम ।
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥₁₈॥

च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ।
किं तवेषापराद्धा हि यदेनां हन्तुमिच्छसि ॥₁₉॥

सीतां च हत्वा न चिरं जीविष्यसि कथञ्चन ।
वधार्हकर्मणानेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥₂₀॥

ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः ।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान्प्रतिलप्स्यसे ॥²¹॥

इति ब्रुवाणो हनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ।
अभ्यधावत सङ्क्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥²²॥

आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ।
रक्षसां भीमवेगानामनीकेन न्यवारयत् ॥²³॥

स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ।
हरिश्रेष्ठं हनूमन्तमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥²⁴॥

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ।
तां हनिष्यामि वैदेहीमदैव तव पश्यतः ॥²⁵॥

इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥²⁶॥

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्वीषि प्लवङ्गम् ।
पीडा करममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेत तत् ॥²⁷॥

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं ततः ।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥²⁸॥

यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी ।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥²⁹॥

तामिन्द्रजित्स्त्रियं हत्वा हनूमन्तमुवाच ह ।
मया रामस्य पश्येमां कोपेन च निषूदिताम् ॥³⁰॥

ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् ।
हृष्टः स रथमास्थाय विननाद महास्वनम् ॥³¹॥

वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः ।
व्यादितास्यस्य नदतस्तद्गुर्गं संश्रितस्य तु ॥³²॥

तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः
प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः ।
तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा
विषण्णरूपाः समभिप्रदुद्रुवुः ॥³³॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः॥

॥एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

श्रुत्वा तं भीमनिर्ह्रादं शक्राशनिसमस्वनम् ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरर्षभाः ॥₁॥

तानुवाच ततः सर्वान्हनूमान्मारुतात्मजः ।
विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतः पृथक् ॥₂॥

कस्माद्विषण्णवदना विद्रवध्वं प्लवङ्गमाः ।
त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम् ॥₃॥

पृष्ठतोऽनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे ।
शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम् ॥₄॥

एवमुक्ताः सुसङ्क्रुद्धा वायुपुत्रेण धीमता ।
शैलशृङ्गान्द्रुमांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः ॥₅॥

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान्वानरर्षभाः ।
परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥₆॥

स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान्सर्वतो वृतः ।
हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥₇॥

स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः ।
वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः ॥₈॥

स तु शोकेन चाविष्टः क्रोधेन च महाकपिः ।
हनूमान्नावणि रथे महतीं पातयच्छिलाम् ॥₉॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथः सारथिना तदा ।

विधेयाश्च समायुक्तः सुदूरमपवाहितः ॥₁₀॥

तमिन्द्रजितमप्राप्य रथं सहसारथिम् ।
विवेश धरणीं भित्त्वा सा शिलाव्यर्थमुद्यता ॥₁₁॥

पतितायां शिलायां तु रक्षसां व्यथिता चमूः ।
तमभ्यधावञ्शतशो नदन्तः काननौकसः ॥₁₂॥

ते द्रुमांश्च महाकाया गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः ।
चिक्षिपुर्द्विषतां मध्ये वानरा भीमविक्रमाः ॥₁₃॥

वानरैर्तेर्महावीर्यैर्घोररूपा निशाचराः ।
वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यवेष्टन्त रणक्षितौ ॥₁₄॥

स्वसैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ।
प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ॥₁₅॥

स शरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ।
जघान कपिशार्दूलान्सुबहून्दृष्टविक्रमः ॥₁₆॥

शूलैरशनिभिः खड्गैः पट्टसैः कूटमुद्गरैः ।
ते चाप्यनुचरांस्तस्य वानरा जघ्मुराहवे ॥₁₇॥

सस्कन्धविटपैः सालैः शिलाभिश्च महाबलैः ।
हनूमान्कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥₁₈॥

स निवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ।
हनूमान्संनिवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम् ॥₁₉॥

त्यक्त्वा प्राणान्विचेष्टन्तो राम प्रियचिकीर्षवः ।
यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ॥₂₀॥

इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च ।

तौ यत्प्रतिविधास्येते तत्करिष्यामहे वयम् ॥₂₁॥

इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन्सर्ववानरान् ।
शनैः शनैरसन्नस्तः सबलः स न्यवर्तत ॥₂₂॥

स तु प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः ।
निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहुवे न्द्रजित् ॥₂₃॥

यज्ञभूम्यां तु विधिवत्पावकस्तेन रक्षसा ।
हूयमानः प्रजज्वाल होमशोणितभुक्तदा ॥₂₄॥

सोऽर्चिः पिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः ।
सन्ध्यागत इवादित्यः स तीव्राग्निः समुत्थितः ॥₂₅॥

अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु
जुहाव हव्यं विधिना विधानवत् ।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते
महासमूहेषु नयानयज्ञाः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्ततितमः सर्गः॥

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् ।
श्रुत्वा सङ्ग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥₁॥

सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
श्रूयते हि यथा भीमः सुमहानायुधस्त्वनः ॥₂॥

तद्वच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ।
क्षिप्रमृष्कपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥₃॥

ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः ।
आगच्छत्पश्चिमद्वारं हनूमान्यत्र वानरः ॥₄॥

अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिः पथि ।
वानरैः कृतसङ्ग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥₅॥

दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृष्कबलमुद्यतम् ।
नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत ॥₆॥

स तेन हरिसैन्येन संनिकर्षं महायशाः ।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥₇॥

समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः ।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥₈॥

उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम ।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥₉॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्छितः ।

निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥₁₀॥

तं भूमौ देवसङ्काशं पतितं दृश्य राघवम् ।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥₁₁॥

असिधन्सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
प्रदहन्तमसह्यं च सहसाग्निमिवोत्थितम् ॥₁₂॥

तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः ।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥₁₃॥

शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्यविजितेन्द्रियम् ।
अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥₁₄॥

भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम् ।
यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥₁₅॥

यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम् ।
नायमर्थस्तथा युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥₁₆॥

यद्यधर्मो भवेद्भूतो रावणो नरकं व्रजेत् ।
भवांश्च धर्मसंयुक्तो नैवं व्यसनमाप्नुयात् ॥₁₇॥

तस्य च व्यसनाभावाद्यसनं च गते त्वयि ।
धर्मेणोपलभेद्धर्ममधर्मं चाप्यधर्मतः ॥₁₈॥

यदि धर्मेण युज्येरन्नाधर्मरुचयो जनाः ।
धर्मेण चरतां धर्मस्तथा चैषां फलं भवेत् ॥₁₉॥

यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ।
क्लिश्यन्ते धर्मशीलाश्च तस्मादेतौ निरर्थकौ ॥₂₀॥

वध्यन्ते पापकर्माणो यद्यधर्मेण राघव ।

वधकर्महतो धर्मः स हतः कं वधिष्यति ॥₂₁॥

अथ वा विहितेनायं हन्यते हन्ति वा परम् ।
विधिरालिप्यते तेन न स पापेन कर्मणा ॥₂₂॥

अदृष्टप्रतिकारेण अव्यक्तेनासता सता ।
कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्शन ॥₂₃॥

यदि सत्स्यात्सतां मुख्य नासत्स्यात्तव किञ्चन ।
त्वया यदीदृशं प्राप्तं तस्मात्सन्नोपपद्यते ॥₂₄॥

अथ वा दुर्बलः क्लीबो बलं धर्मोऽनुवर्तते ।
दुर्बलो हृतमर्यादो न सेव्य इति मे मतिः ॥₂₅॥

बलस्य यदि चेद्धर्मो गुणभूतः पराक्रमे ।
धर्ममुत्सृज्य वर्तस्व यथा धर्मे तथा बले ॥₂₆॥

अथ चेत्सत्यवचनं धर्मः किल परन्तप ।
अनृतस्त्वय्यकरुणः किं न बद्धस्त्वया पिता ॥₂₇॥

यदि धर्मो भवेद्भूत अधर्मो वा परन्तप ।
न स्म हत्वा मुनिं वज्री कुर्यादिज्यां शतक्रतुः ॥₂₈॥

अधर्मसंश्रितो धर्मो विनाशयति राघव ।
सर्वमेतद्यथाकामं काकुत्स्थ कुरुते नरः ॥₂₉॥

मम चेदं मतं तात धर्मोऽयमिति राघव ।
धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥₃₀॥

अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संवृद्धेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥₃₁॥

अर्थेन हि वियुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः ।

व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥₃₂॥

सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः ।
पापमारभते कर्तुं तथा दोषः प्रवर्तते ॥₃₃॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥₃₄॥

यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स महागुणः ॥₃₅॥

अर्थस्यैते परित्यागे दोषाः प्रव्याहता मया ।
राज्यमुत्सृजता वीर येन बुद्धिस्त्वया कृता ॥₃₆॥

यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम् ।
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता ॥₃₇॥

हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः ।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥₃₈॥

येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् ।
तेऽर्थास्त्वयि न दृश्यन्ते दुर्दिनेषु यथा ग्रहाः ॥₃₉॥

द्वयि प्रव्रजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते ।
रक्षसापहता भार्या प्राणैः प्रियतरा तव ॥₄₀॥

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥₄₁॥

अयमनघ तवोदितः प्रियार्थम्
जनकसुता निधनं निरीक्ष्य रुष्टः ।
सहयगजरथां सराक्षसेन्द्राम्
भृशमिषुभिर्विनिपातयामि लङ्काम् ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ततितमः सर्गः॥

॥एकसप्ततितमः सर्गः॥

राममाश्वासयाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले ।
निक्षिप्य गुल्मान्स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥₁॥

नानाप्रहरणैर्वीरिश्चतुर्भिः सचिवैर्वृतः ।
नीलाञ्जनचयाकारैर्मातङ्गैरिव यूथपः ॥₂॥

सोऽभिगम्य महात्मानं राघवं शोकलालसम् ।
वानरांश्चैव ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥₃॥

राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ।
ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्गमाश्रितम् ॥₄॥

व्रीडितं शोकसन्तप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः ।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत् ॥₅॥

विभीषण मुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् ।
उवाच लक्ष्मणो वाक्यमिदं बाष्पपरिप्लुतः ॥₆॥

हतामिन्द्रजिता सीतामिह श्रुत्वा राघवः ।
हनूमद्वचनात्सौम्य ततो मोहमुपागतः ॥₇॥

कथयन्तं तु सौमित्रिं संनिवार्य विभीषणः ।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥₈॥

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तस्त्वं हनूमता ।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥₉॥

अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः ।

सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥₁₀॥

याच्यमानः सुबहुशो मया हितचिकीर्षुणा ।
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत्कृतवान्वचः ॥₁₁॥

नैव साम्ना न भेदेन न दानेन कुतो युधा ।
सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥₁₂॥

वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ।
चैत्यं निकुम्भिलां नाम यत्र होमं करिष्यति ॥₁₃॥

हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ।
दुराधर्षो भवत्येष सङ्ग्रामे रावणात्मजः ॥₁₄॥

तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ।
विघ्नमन्विच्छता तात वानराणां पराक्रमे ।
ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ॥₁₅॥

त्यजेमं नरशार्दूलमिथ्या सन्तापमागतम् ।
सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्षितम् ॥₁₆॥

इह त्वं स्वस्थ हृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः ।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥₁₇॥

एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः ।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥₁₈॥

तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ।
पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम् ॥₁₉॥

तत्सन्दिश महाबाहो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा ॥₂₀॥

मनुजवर न कालविप्रकर्षो
रिपुनिधनं प्रति यत्क्षमोऽद्य कर्तुम् ।
त्वमतिसृज रिपोर्वधाय बाणीम्
असुरपुरोन्मथने यथा महेन्द्रः ॥₂₁॥

समाप्तकर्मा हि स राक्षसेन्द्रो
भवत्यदृश्यः समरे सुरासुरैः ।
युयुत्सता तेन समाप्तकर्मणा
भवेत्सुराणामपि संशयो महान् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः॥

॥द्विसप्ततितमः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्षितः ।
नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा ॥₁॥

ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरंजयः ।
विभीषणमुपासीनमुवाच कपिसंनिधौ ॥₂॥

नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण ।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥₃॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ।
यत्तत्पुनरिदं वाक्यं बभाषे स विभीषणः ॥₄॥

यथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम् ।
तत्तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥₅॥

तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ।
विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ॥₆॥

भूयस्तु मम विजाप्यं तच्छृणुष्व महायशः ।
त्वय्यकारणसन्तप्ते सन्तप्तहृदया वयम् ॥₇॥

त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्या सन्तापमागतम् ।
तदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धनी ॥₈॥

उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् ।
प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्यश्च निशाचराः ॥₉॥

रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः ।

साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः ।
निकुम्भिलायां सम्प्राप्य हन्तुं रावणिमाहवे ॥₁₀॥

धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ।
शरैर्हन्तुं महेष्वासो रावणिं समितिंजयः ॥₁₁॥

तेन वीरेण तपसा वरदानात्स्वयम्भुतः ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरः प्राप्तं कामगाश्च तुरङ्गमाः ॥₁₂॥

निकुम्भिलामसम्प्राप्तमहुताग्निं च यो रिपुः ।
त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वधः ।
इत्येवं विहितो राजन्वधस्तस्यैव धीमतः ॥₁₃॥

वधायेन्द्रजितो राम तं दिशस्व महाबलम् ।
हते तस्मिन्हतं विद्धि रावणं ससुहृञ्जनम् ॥₁₄॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ।
जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ॥₁₅॥

स हि ब्रह्मास्त्रवित्प्राज्ञो महामायो महाबलः ।
करोत्यसंज्ञान्सङ्ग्रामे देवान्सवरुणानपि ॥₁₆॥

तस्यान्तरिक्षे चरतो रथस्थस्य महायशः ।
न गतिर्ज्ञायते वीरसूर्यस्येवाभ्रसम्प्लवे ॥₁₇॥

राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ।
लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₈॥

यद्वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः ।
हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सहलक्ष्मण ॥₁₉॥

जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ।
जहि तं राक्षससुतं मायाबलविशारदम् ॥₂₀॥

अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः ।
अभिज्ञस्तस्य देशस्य पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥₂₁॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ।
जग्राह कार्मुकं श्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः ॥₂₂॥

संनद्धः कवची खड्गी स शरी हेमचापधृक् ।
रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥₂₃॥

अद्य मत्कार्मुकोन्मुखाः शरा निर्भिद्य रावणिम् ।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ॥₂₄॥

अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ।
विधमिष्यन्ति हत्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥₂₅॥

स एवमुक्त्वा द्युतिमान्वचनं भ्रातुरग्रतः ।
स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥₂₆॥

सोऽभिवाद गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ॥₂₇॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥₂₈॥

वानराणां सहस्रैस्तु हनूमान्बहुभिर्वृतः ।
विभीषणः सहामात्यस्तदा लक्ष्मणमन्वगात् ॥₂₉॥

महता हरिसैन्येन सवेगमभिसंवृतः ।
ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम् ॥₃₀॥

स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद्ब्रूहमास्थितम् ॥₃₁॥

स सम्प्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिन्दम ।
तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥₃₂॥

विविधममलशस्त्रभास्वरं तद्-
ध्वजगहनं विपुलं महारथैश्च ।
प्रतिभयतममप्रमेयवेगम्
तिमिरमिव द्विषतां बलं विवेश ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः॥

॥त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः ।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥₁॥

अस्यानीकस्य महतो भेदने यतलक्ष्मण ।
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति ॥₂॥

स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन्परां ।
अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥₃॥

जहि वीरदुरात्मानं मायापरमधार्मिकम् ।
रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम् ॥₄॥

विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥₅॥

ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमाद्रिवरयोधिनः ।
अभ्यधावन्त संहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥₆॥

राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
उद्यतैः समवर्तन्त कपिसैन्यजिघांसवः ॥₇॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
शब्देन महता लङ्कां नादयन्वै समन्ततः ॥₈॥

शस्त्रैर्बहुविधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः ।
उद्यतैर्गिरिशृङ्गैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥₉॥

ते राक्षसा वानरेषु विकृताननबाहवः ।

निवेशयन्तः शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥₁₀॥

तथैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिशृङ्गैश्च वानराः ।
अभिजघ्नुर्निजघ्नुश्च समरे राक्षसर्षभान् ॥₁₁॥

ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ।
रक्षसां वध्यमानानां महद्भयमजायत ॥₁₂॥

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ।
उदतिष्ठत दुर्धर्षस्तत्कर्मण्यननुष्ठिते ॥₁₃॥

वृक्षान्धकारान्निष्क्रम्य जातक्रोधः स रावणिः ।
आरुरोह रथं सञ्जं पूर्वयुक्तं स राक्षसः ॥₁₄॥

स भीमकार्मुकशरः कृष्णाञ्जनचयोपमः ।
रक्तास्यनयनः क्रूरो बभौ मृत्युरिवान्तकः ॥₁₅॥

दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं पर्यवर्तत तद्वलम् ।
रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥₁₆॥

तस्मिन्काले तु हनुमानुद्यम्य सुदुरासदम् ।
धरणीधरसङ्काशी महावृक्षमरिन्दमः ॥₁₇॥

स राक्षसानां तत्सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन् ।
चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानरः ॥₁₈॥

विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम् ।
राक्षसानां सहस्राणि हनूमन्तमवाकिरन् ॥₁₉॥

शितशूलधराः शूलैरसिभिश्चासिपाणयः ।
शक्तिभिः शक्तिहस्ताश्च पट्टसैः पट्टसायुधाः ॥₂₀॥

परिघैश्च गदाभिश्च कुन्तैश्च शुभदर्शनैः ।

शतशश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥²¹॥

घोरैः परशुभिश्चैव भिण्डिपालैश्च राक्षसाः ।
मुष्टिभिर्वज्रवेगैश्च तलैरशनिसंनिभैः ॥²²॥

अभिजघ्नुः समासाद्य समन्तात्पर्वतोपमम् ।
तेषामपि च सङ्क्रुद्धश्चकार कदनं महत् ॥²³॥

स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् ।
सूदयानममित्रघ्नममित्रान्यवनात्मजम् ॥²⁴॥

स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः ।
क्षयमेव हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः ॥²⁵॥

इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः ।
वहन्परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे ॥²⁶॥

सोऽभ्युपेत्य शरान्खङ्गान्यट्टसासिपरश्वधान् ।
अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्ध्नि स राक्षसः ॥²⁷॥

तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः ।
रोषेण महताविषो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥²⁸॥

युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते ।
वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥²⁹॥

बाहुभ्यां सम्प्रयुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे ।
वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥³⁰॥

हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् ।
रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥³¹॥

यस्तु वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः ।

स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति ॥₃₂॥

तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुविदारणैः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥₃₃॥

इत्येवमुक्तस्तु तदा महात्मा
विभीषणेनारिविभीषणेन ।
ददर्श तं पर्वतसंनिकाशम्
रथस्थितं भीमबलं दुरासदम् ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

॥चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः ।
धनुष्पाणिनमादाय त्वरमाणो जगाम सः ॥₁॥

अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य च महद्वनम् ।
दर्शयामास तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥₂॥

नीलजीमूतसङ्काशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् ।
तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥₃॥

इहोपहारं भूतानां बलवान्रावणातजः ।
उपहृत्य ततः पश्चात्सङ्ग्राममभिवर्तते ॥₄॥

अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ।
निहन्ति समरे शत्रून्बध्नाति च शरोत्तमैः ॥₅॥

तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् ।
विध्वंसय शरैस्तीक्ष्णैः सरथं साश्वसारथिम् ॥₆॥

तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥₇॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान्रावणात्मजः ।
इन्द्रजित्कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥₈॥

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥₉॥

एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः ।

अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥₁₀॥

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भाता पितुर्मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥₁₁॥

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सोदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥₁₂॥

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वंमागतः ॥₁₃॥

नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥₁₄॥

गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्यः परः पर एव सः ॥₁₅॥

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं परुषं रावणानुज ॥₁₆॥

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकथसे ॥₁₇॥

राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात् ।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ।
गुणोऽयं प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ॥₁₈॥

न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।
भ्रात्रा विषमशीलेन कथं भ्राता निरस्यते ॥₁₉॥

परस्त्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्कां च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥₂₀॥

महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च कोपश्च वैरिद्वन्द्वं प्रतिकूलता ॥²¹॥

एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्चर्यनाशनाः ।
गुणान्प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥²²॥

दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥²³॥

अतिमानी च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥²⁴॥

अद्य ते व्यसनं प्राप्तं किमिह त्वं तु वक्ष्यसि ।
प्रवेष्टुं न त्वया शक्यो न्यग्रोधो राक्षसाधम ॥²⁵॥

धर्षयित्वा तु काकुत्स्थौ न शक्यं जीवितुं त्वया ।
युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ।
हतस्त्वं देवता कार्यं करिष्यसि यमक्षये ॥²⁶॥

निदर्शयस्वात्मबलं समुद्यतम्
कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम् ।
न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरम्
त्वमद्य जीवन्सबलो गमिष्यसि ॥²⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

॥पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

विभीषण वचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं वेगेनाभ्युत्पपात ह ॥₁॥

उद्यतायुधनिस्त्रिंशो रथे तु समलङ्कृते ।
कालाश्वयुक्ते महति स्थितः कालान्तकोपमः ॥₂॥

महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद्दृढम् ।
धनुर्भीमं परामृश्य शरांश्चामित्रनाशनान् ॥₃॥

उवाचैनं समारब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ।
तांश्च वानरशार्दूलान्यश्वध्वं मे पराक्रमम् ॥₄॥

अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ।
मुक्तं वर्षमिवाकाशे वारयिष्यथ संयुगे ॥₅॥

अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ।
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ॥₆॥

तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नाञ्छूलशक्त्यृष्टितोमरैः ।
अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानिव यमक्षयम् ॥₇॥

क्षिपतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य मे युधि ।
जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ॥₈॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं लक्ष्मणस्तदा ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ॥₉॥

उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया ।

कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥₁₀॥

स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित् ।
वचो व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते ॥₁₁॥

अन्तर्धानगतेनाजौ यस्त्वयाचरितस्तदा ।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥₁₂॥

यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽहं तव राक्षस ।
दर्शयस्त्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे ॥₁₃॥

एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः ।
ससर्जे निशितान्बाणानिन्द्रजित्समिजिंजय ॥₁₄॥

ते निसृष्टा महावेगाः शराः सर्पविषोपमाः ।
सम्प्राप्य लक्ष्मणं पेतुः श्वसन्त इव पन्नगाः ॥₁₅॥

शरैरतिमहावेगैर्वेगवान्नावणात्मजः ।
सौमित्रिमिन्द्रजिद्युद्धे विव्याध शुभलक्षणम् ॥₁₆॥

स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः ।
शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान्विधूम इव पावकः ॥₁₇॥

इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याधिगम्य च ।
विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₈॥

पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः ।
आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तगाः ॥₁₉॥

अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण ।
गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया ॥₂₀॥

क्षत्रबन्धुः सदानार्यो रामः परमदुर्मतिः ।

भक्तं भ्रातरमदैव त्वां द्रक्ष्यति मया हतम् ॥²¹॥

विशस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम् ।
हतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया ॥²²॥

इति ब्रुवाणं संरब्धं परुषं रावणात्मजम् ।
हेतुमद्वाक्यमत्यर्थं लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह ॥²³॥

अकृत्वा कथसे कर्म किमर्थमिह राक्षस ।
कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्धयां तव कथनम् ॥²⁴॥

अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किञ्चिदप्यनवक्षिपन् ।
अविकथन्वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषादन ॥²⁵॥

इत्युक्त्वा पञ्चनाराचानाकर्णापूरिताञ्जरान् ।
निचखान महावेगाँल्लक्ष्मणो राक्षसोरसि ॥²⁶॥

स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः ।
सुप्रयुक्तेस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम् ॥²⁷॥

स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः ।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परवधैषिणोः ॥²⁸॥

उभौ हि बलसम्पन्नावुभौ विक्रमशालिनौ ।
उभावपि सुविक्रान्तौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥²⁹॥

उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ ।
युयुधाते महावीरौ ग्रहाविव नभो गतौ ॥³⁰॥

बलवृत्राविव हि तौ युधि वै दुष्प्रधर्षणौ ।
युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ॥³¹॥

बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ।

नरराक्षससिंहौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥₃₂॥

सुसम्प्रहृष्टौ नरराक्षसोत्तमौ
जयैषिणौ मार्गणचापधारिणौ ।
परस्परं तौ प्रववर्षतुर्भृशम्
शरौघवर्षेण बलाहकाविव ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

॥षट्सतितमः सर्गः॥

ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्शनः ।
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥₁॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं स श्रुत्वा रावणात्मजः ।
विवर्णवदनो भूत्वा लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥₂॥

तं विषण्णमुखं दृष्ट्वा राक्षसं रावणात्मजम् ।
सौमित्रिं युद्धसंसक्तं प्रत्युवाच विभीषणः ॥₃॥

निमित्तान्यनुपश्यामि यान्यस्मिन्नावणात्मजे ।
त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥₄॥

ततः सन्धाय सौमित्रिः शरानग्निशिखोपमान् ।
मुमोच निशितांस्तस्मै सर्वानिव विषोत्खणान् ॥₅॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ।
मुहूर्तमभवन्मूढः सर्वसङ्क्षुभितेन्द्रियः ॥₆॥

उपलभ्य मुहूर्तेन संज्ञां प्रत्यागतेन्द्रियः ।
ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ॥₇॥

सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात्संरक्तलोचनः ।
अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः ॥₈॥

किं न स्मरसि तद्युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ।
निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा युधि विचेष्टसे ॥₉॥

युवा खलु महायुद्धे शक्राशनिसमैः शरैः ।

शायिनौ प्रथमं भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥₁₀॥

स्मृतिर्वा नास्ति ते मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ।
गन्तुमिच्छसि यस्माच्च मां धर्षयितुमिच्छसि ॥₁₁॥

यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः ।
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥₁₂॥

इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ।
दशभिश्च हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥₁₃॥

ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान् ।
क्रोधाद्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ॥₁₄॥

तद्वद्वेन्द्रजितः कर्म कृतं रामानुजस्तदा ।
अचिन्तयित्वा प्रहसन्नैतत्किञ्चिदिति ब्रुवन् ॥₁₅॥

मुमोच स शरान्धोरान्सङ्गृह्य नरपुङ्गवः ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ॥₁₆॥

नैवं रणगतः शूराः प्रहरन्ति निशाचर ।
लघवश्चात्पवीर्याश्च सुखा हीमे शरास्तव ॥₁₇॥

नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे जयकाङ्क्षिणः ।
इत्येवं तं ब्रुवाणस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥₁₈॥

तस्य बाणैस्तु विध्वस्तं कवचं हेमभूषितम् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात् ॥₁₉॥

विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः ।
इन्द्रजित्समरे शूरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥₂₀॥

अभीक्ष्णं निश्चसन्तौ हि युध्येतां तुमुलं युधि ।

शरसङ्कृतसर्वाङ्गो सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥₂₁॥

अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः ।
शरानुच्चावचाकारानन्तरिक्षे बबन्धतुः ॥₂₂॥

व्यपेतदोषमस्यन्तौ लघुचित्रं च सुष्ठु च ।
उभौ तु तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ ॥₂₃॥

तयोः पृथक्पृथग्भीमः शुश्रुवे तलनिस्वनः ।
सुघोरयोर्निष्टनतोर्गगने मेघयोरिव ॥₂₄॥

ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खाः शरा युधि ।
असृग्दिग्धा विनिष्पेतुर्विविशुर्धरणीतलम् ॥₂₅॥

अन्यैः सुनिशितैः शस्त्रैराकाशे संजघट्टिरे ।
बभञ्जुश्चिच्छिदुश्चापि तयोर्बाणाः सहस्रशः ॥₂₆॥

स बभूव रणे घोरस्तयोर्बाणमयश्चयः ।
अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्चयः ॥₂₇॥

तयोः कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः ।
सपुष्पाविव निष्पत्रौ वने शात्मलिकुंशुकौ ॥₂₈॥

चक्रतुस्तुमुलं घोरं संनिपातं मुहुर्मुहुः ।
इन्द्रजिल्लक्ष्मणश्चैव परस्परजयैषिणौ ॥₂₉॥

लक्ष्मणो रावणिं युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ।
अन्योन्यं तावभिघ्नन्तौ न श्रमं प्रत्यपद्यताम् ॥₃₀॥

बाणजालैः शरीरस्थैरवगाढैस्तरस्त्रिनौ ।
शुशुभाते महावीरौ विरूढाविव पर्वतौ ॥₃₁॥

तयो रुधिरसिक्तानि संवृतानि शरैर्भृशम् ।

बभ्राजुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ॥₃₂॥

तयोरथ महान्कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥₃₃॥

अथ समरपरिश्रमं निहन्तुम्
समरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य ।
प्रियहितमुपपादयन्महौजाः
समरमुपेत्य विभीषणोऽवतस्थे ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षट्षत्तितमः सर्गः॥

॥सप्तसप्ततितमः सर्गः॥

युध्यमानौ तु तौ दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ ।
शूरः स रावणभ्राता तस्थौ सङ्ग्राममूर्धनि ॥₁॥

ततो विस्फारयामास महद्भनुरवस्थितः ।
उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान्नाक्षसेषु महाशरान् ॥₂॥

ते शराः शिखिसङ्काशा निपतन्तः समाहिताः ।
राक्षसान्दारयामासुर्वज्रा इव महागिरीन् ॥₃॥

विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टसैः ।
चिच्छेदुः समरे वीरान्नाक्षसान्नाक्षसोत्तमाः ॥₄॥

राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु विभीषणः ।
बभौ मध्ये प्रहृष्टानां कलभानामिव द्विपः ॥₅॥

ततः सञ्चोदयानो वै हरीत्रक्षोरणप्रियान् ।
उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः ॥₆॥

एकोऽयं राक्षसेन्द्रस्य परायणमिव स्थितः ।
एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः ॥₇॥

अस्मिन्निहिता पापे राक्षसे रणमूर्धनि ।
रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य बलं हतम् ॥₈॥

प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः ।
कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः ॥₉॥

अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः ।

कम्पनः सत्त्ववन्तश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥₁₀॥

एतान्निहत्यातिबलान्बहून्नाक्षससत्तमान् ।
बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु ॥₁₁॥

एतावदिह शेषं वो जेतव्यमिह वानराः ।
हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥₁₂॥

अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य जनितुर्मम ।
घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम् ॥₁₃॥

हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुध्यते ।
तदेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ।
वानरा घ्नन्तुं सम्भूय भृत्यानस्य समीपगान् ॥₁₄॥

इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः ।
वानरेन्द्रा जहृषिरे लाङ्गलानि च विव्यधुः ॥₁₅॥

ततस्ते कपिशार्दूलाः क्ष्वेडन्तश्च मुहुर्मुहुः ।
मुमुचुर्विविधान्नादान्मेघान्दृष्ट्वैव बर्हिणः ॥₁₆॥

जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथैरभिसंवृतः ।
अश्रमभिस्ताडयामास नखैर्दन्तैश्च राक्षसान् ॥₁₇॥

निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः ।
परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः ॥₁₈॥

शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टसैर्यष्टितोमरैः ।
जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम् ॥₁₉॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिराक्षसाम् ।
देवासुराणां क्रुद्धानां यथा भीमो महास्वनः ॥₂₀॥

हनूमानपि सङ्क्रुद्धः सालमुत्पाट्य पर्वतात् ।
रक्षसां कदनं चक्रे समासाद्य सहस्रशः ॥ 21 ॥

स दत्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्यस्येन्द्रजिदुधि ।
लक्ष्मणं परवीरघ्नं पुनरेवाभ्यधावत ॥ 22 ॥

तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ।
शरौघानभिर्वर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ॥ 23 ॥

अभीक्ष्णमन्तर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ ।
चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ ॥ 24 ॥

न ह्यादानं न सन्धानं धनुषो वा परिग्रहः ।
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ॥ 25 ॥

न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ।
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ॥ 26 ॥

चापवेगप्रमुक्तैश्च बाणजालैः समन्ततः ।
अन्तरिक्षेऽभिसञ्छन्ने न रूपाणि चकाशिरे ।
तमसा पिहितं सर्वमासीद्भीमतरं महत् ॥ 27 ॥

न तदानीं ववौ वायुर्न जज्वाल च पावकः ।
स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जजल्पश्च महर्षयः ।
सम्पेतुश्चात्र सम्प्राप्ता गन्धर्वाः सह चारणैः ॥ 28 ॥

अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान्कनकभूषणान् ।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥ 29 ॥

ततोऽपरेण भल्लेन सूतस्य विचरिष्यतः ।
लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्छिरः कायादपाहरत् ॥ 30 ॥

निहतं सारथिं दृष्ट्वा समरे रावणात्मजः ।

प्रजहौ समरोद्धर्षं विषण्णः स बभूव ह ॥₃₁॥

विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं हरियूथपाः ।
ततः परमसंहृष्टो लक्ष्मणं चाभ्यपूजयन् ॥₃₂॥

ततः प्रमाथी शरभो रभसो गन्धमादनः ।
अमृष्यमाणाश्चत्वारश्चक्रुर्वेगं हरीश्वराः ॥₃₃॥

ते चास्य हयमुख्येषु तूर्णमुत्पत्य वानराः ।
चतुर्षु सुमहावीर्या निपेतुर्भूमविक्रमाः ॥₃₄॥

तेषामधिष्ठितानां तैर्वानरैः पर्वतोपमैः ।
मुखेभ्यो रुधिरं व्यक्तं हयानां समवर्तत ॥₃₅॥

ते निहत्य हयांस्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ।
पुनरुत्पत्य वेगेन तस्थुर्लक्ष्मणपार्श्वतः ॥₃₆॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथेः ।
शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः ॥₃₇॥

ततो महेन्द्रप्रतिमंहस लक्ष्मणः
पदातिनं तं निशितैः शरोत्तमैः ।
सृजन्तमादौ निशिताञ्शरोत्तमान्
भृशं तदा बाणगणैर्यवारयत् ॥₃₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः॥

॥ अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः ।
इन्द्रजित्परमक्रुद्धः सम्प्रजज्वाल तेजसा ॥₁॥

तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम् ।
विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने गजवृषाविव ॥₂॥

निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षसवनौकसः ।
भर्तारं न जहुर्युद्धे सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥₃॥

स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥₄॥

मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिन्दमः ।
अवारयदसम्भ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम् ॥₅॥

अभेद्यकचनं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः ।
ललाटे लक्ष्मणं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ।
अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रमस्त्रं प्रदर्शयन् ॥₆॥

तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ।
रणाग्रे समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥₇॥

स तथाप्यर्दितो बाणै राक्षसेन महामृधे ।
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पनभिः शरैः ॥₈॥

लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्बाणैर्विशिखैर्भीमविक्रमौ ॥₉॥

तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ ।
घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावामुभौ जये ॥₁₀॥

तस्मै दृढतरं क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः ।
वज्रस्पर्शसमान्यश्च ससर्जोरसि मार्गणान् ॥₁₁॥

ते तस्य कायं निर्भिद्य रुक्मपुङ्खा निमित्तगाः ।
बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगाः ॥₁₂॥

स पितृव्यस्य सङ्क्रुद्ध इन्द्रजिच्छरमाददे ।
उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलः ॥₁₃॥

तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन संहितम् ।
लक्ष्मणोऽप्याददे बाणमन्यं भीमपराक्रमः ॥₁₄॥

कुबेरेण स्वयं स्वप्ने यद्वत्तममितात्मना ।
दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥₁₅॥

ताभ्यां तौ धनुषि श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ ।
विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ॥₁₆॥

तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ।
मुखेन मुखमाहत्य संनिपेततुरोजसा ॥₁₇॥

तौ महाग्रहसङ्काशावन्योन्यं संनिपत्य च ।
सङ्ग्रामे शतधा यातौ मेदिन्यां विनिपेततुः ॥₁₈॥

शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि ।
व्रीडितो जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ ॥₁₉॥

सुसंरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे ।
रौद्रं महेन्द्रजिद्युद्धे व्यसृजद्युधि विष्ठितः ॥₂₀॥

तयोः सुतुमुलं युद्धं सम्बभूवाद्भुतोपमम् ।
गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन् ॥₂₁॥

भैरवाभिरुते भीमे युद्धे वानरराक्षसाम् ।
भूतैर्बहुभिराकाशं विस्मितैरावृतं बभौ ॥₂₂॥

ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वा गरुणोरगाः ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥₂₃॥

अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं सन्दधे रावणानुजः ।
हुताशनसमस्पर्शं रावणात्मजदारुणम् ॥₂₄॥

सुपत्रमनुवृत्ताङ्गं सुपर्वाणं सुसंस्थितम् ।
सुवर्णविकृतं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥₂₅॥

दुरावारं दुर्विषहं राक्षसानां भयावहम् ।
आशीविषविषप्रख्यं देवसङ्घैः समर्चितम् ॥₂₆॥

येन शक्रो महातेजा दानवानजयत्प्रभुः ।
पुरा देवासुरे युद्धे वीर्यवान्हरिवाहनः ॥₂₇॥

तदैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुः श्रेष्ठे नरश्रेष्ठोऽभिसन्दधे ॥₂₈॥

सन्धायामित्रदलनं विचकर्ष शरासनम् ।
सज्यमायम्य दुर्धर्शः कालो लोकक्षये यथा ॥₂₉॥

सन्धाय धनुषि श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ।
लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः ॥₃₀॥

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥₃₁॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ।
ऐन्द्रास्त्रेण समायुज्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥³²॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमञ्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पपात धरणीतले ॥³³॥

तद्राक्षसतनूजस्य छिन्नस्कन्धं शिरो महत् ।
तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ॥³⁴॥

हतस्तु निपपाताशु धरण्यां रावणात्मजः ।
कवची सशिरस्त्राणो विध्वस्तः सशरासनः ॥³⁵॥

चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।
हृष्यन्तो निहते तस्मिन्देवा वृत्रवधे यथा ॥³⁶॥

अथान्तरिक्षे भूतानामृषीणां च महात्मनाम् ।
अभिजज्ञे च संनादो गन्धर्वाप्सरसामपि ॥³⁷॥

पतितं समभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः ।
वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः ॥³⁸॥

वनरैर्वध्यमानास्ते शस्त्राण्युत्सृज्य राक्षसाः ।
लङ्कामभिमुखाः सर्वे नष्टसंज्ञाः प्रधाविताः ॥³⁹॥

दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः ।
त्यक्त्वा प्रहरणान्सर्वे पट्टसासिपरश्वधान् ॥⁴⁰॥

केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः ।
समुद्रे पतिताः केचित्केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥⁴¹॥

हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं समरक्षितौ ।
राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित्प्रत्यदृश्यत ॥⁴²॥

यथास्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥⁴³॥

शान्तरक्श्मिर्वादित्यो निर्वाण इव पावकः ।
स बभूव महातेजा व्यपास्त गतजीवितः ॥⁴⁴॥

प्रशान्तपीडा बहुलो विनष्टारिः प्रहर्षवान् ।
बभूव लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते तदा ॥⁴⁵॥

हर्षं च शक्रो भगवान्सह सर्वैः सुरर्षभैः ।
जगाम निहते तस्मिन्नाक्षसे पापकर्मणि ॥⁴⁶॥

शुद्धा आपो नभश्चैव जहृषुर्देत्यदानवाः ।
आजग्मुः पतिते तस्मिन्सर्वलोकभयावहे ॥⁴⁷॥

ऊचुश्च सहिताः सर्वे देवगन्धर्वदानवाः ।
विज्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति ॥⁴⁸॥

ततोऽभ्यनन्दन्संहृष्टाः समरे हरियूथपाः ।
तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥⁴⁹॥

विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः ।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥⁵⁰॥

क्ष्वेडन्तश्च नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे ॥⁵¹॥

लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः ।
लक्ष्मणो जयतीत्येवं वाक्यं व्यश्रावयंस्तदा ॥⁵²॥

अन्योन्यं च समाश्लिष्य कपयो हृष्टमानसाः ।
चक्रुरुच्चावचगुणा राघवाश्रयजाः कथाः ॥⁵³॥

तदसुकरमथाभिवीक्ष्य हृष्टाः
प्रियसुहृदो युधि लक्ष्मणस्य कर्म ।
परममुपलभन्मनःप्रहर्षम्
विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः ॥ 54 ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः॥

॥एकोनाशीतितमः सर्गः॥

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शक्रजेतारमाहवे ॥₁॥

ततः स जाम्बवन्तं च हनूमन्तं च वीर्यवान् ।
संनिवर्त्य महातेजास्तांश्च सर्वान्वनौकसः ॥₂॥

आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥₃॥

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थः शक्रस्येन्द्रानुजो यथा ।
आचक्षे तदा वीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥₄॥

रावणस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥₅॥

उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् ।
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥₆॥

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकारिणा ।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ।
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥₇॥

तं पुत्रवधसन्तप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥₈॥

त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे ।
न दुष्प्रापा हते त्वद्य शक्रजेतरि चाहवे ॥₉॥

स तं भ्रातरमाश्वास्य पारिष्वज्य च राघवः ।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥₁₀॥

सशल्योऽयं महाप्राज्ञः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुपाचर ।
विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः ॥₁₁॥

कृष वानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ।
ये चान्येऽत्र च युध्यन्तः सशल्या व्रणिनस्तथा ।
तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियन्तां सुखिनस्त्वया ॥₁₂॥

एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥₁₃॥

स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ।
तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ॥₁₄॥

विभीषण मुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सां स तदाकरोत् ॥₁₅॥

ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतव्यथः ।
सौमित्रिर्मुदितस्तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥₁₆॥

तथैव रामः प्लवगाधिपस्तदा
विभीषणश्चर्क्षपतिश्च जाम्बवान् ।
अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितम्
मुदा ससैन्यः सुचिरं जहर्षिरे ॥₁₇॥

अपूजयत्कर्म स लक्ष्मणस्य
सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा ।
हृष्टा बभूवुर्युधि यूथपेन्द्रा
निशम्य तं शक्रजितं निपातितम् ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः॥

॥अशीतितमः सर्गः॥

ततः पौलस्त्य सचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितं हतम् ।
आचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सव्यथाः ॥₁॥

युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युते ॥₂॥

शूरः शूरेण सङ्गम्य संयुगेष्वपराजितः ।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित् ॥₃॥

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ।
घोरमिन्द्रजितः सङ्क्षो कश्मलं प्राविशन्महत् ॥₄॥

उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः ।
पुत्रशोकार्दितो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥₅॥

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महारथ ।
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः ॥₆॥

ननु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि ।
मन्दरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्लक्ष्मणं रणे ॥₇॥

अद्य वैवस्वतो राजा भूयो बहुमतो मम ।
येनाद्य त्वं महाबाहो संयुक्तः कालधर्मणा ॥₈॥

एष पन्थाः सुयोधानां सर्वामरगणेष्वपि ।
यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान्स्वर्गमृच्छति ॥₉॥

अद्य देवगणाः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः ।

हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ॥₁₀॥

अद्य लोकास्तयः कृत्स्नाः पृथिवी च सकानना ।
एकेनेन्द्रजिता हीना शूण्येव प्रतिभाति मे ॥₁₁॥

अद्य नैर्ऋतकन्यायां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम् ।
करेणुसङ्घस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे ॥₁₂॥

यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परन्तप ।
मातरं मां च भार्या च क्व गतोऽसि विहाय नः ॥₁₃॥

मम नाम ब्रूया वीर गतस्य यमसादनम् ।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥₁₄॥

स त्वं जीवति सुग्रीवे राघवे च सलक्ष्मणे ।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः ॥₁₅॥

एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ।
आविवेश महान्कोपः पुत्रव्यसनसम्भवः ॥₁₆॥

घोरं प्रकृत्या रूपं तत्तस्य क्रोधाग्निमूर्छितम् ।
बभूव रूपं रुद्रस्य क्रुद्धस्येव दुरासदम् ॥₁₇॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नस्रबिन्दवः ।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥₁₈॥

दन्तान्विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्त्वनः ।
यन्त्रस्यावेष्टमानस्य महतो दानवैरिव ॥₁₉॥

कालाग्निरिव सङ्क्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत ।
तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संनिलिल्यिरे ॥₂₀॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम् ।

वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपचक्रमुः ॥₂₁॥

ततः परमसङ्क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अब्रवीद्रक्षसां मध्ये संस्तम्भयिषुराहवे ॥₂₂॥

मया वर्षसहस्राणि चरित्वा दुश्चरं तपः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु स्वयम्भूः परितोषितः ॥₂₃॥

तस्यैव तपसो व्युष्टा प्रसादाच्च स्वयम्भुवः ।
नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन ॥₂₄॥

कवचं ब्रह्मदत्तं मे यदादित्यसमप्रभम् ।
देवासुरविमर्देषु न भिन्नं वज्रशक्तिभिः ॥₂₅॥

तेन मामद्य संयुक्तं रथस्थमिह संयुगे ।
प्रतीयात्कोऽद्य मामाजौ साक्षादपि पुरन्दरः ॥₂₆॥

यत्तदाभिप्रसन्नेन सशरं कार्मुकं महत् ।
देवासुरविमर्देषु मम दत्तं स्वयम्भुवा ॥₂₇॥

अद्य तूर्यशतैर्भीमं धनुरुत्थाप्यतां महत् ।
रामलक्ष्मणयोरेव वधाय परमाहवे ॥₂₈॥

स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥₂₉॥

प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनान् ।
दीनो दीनस्वरान्सर्वास्तानुवाच निशाचरान् ॥₃₀॥

मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् ।
किञ्चिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥₃₁॥

तदिदं सत्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ।

वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ।
इत्येवमुक्त्वा सचिवान्खड्गमाशु परामृशत् ॥ 32 ॥

उद्धृत्य गुणसम्पन्नं विमलाम्बरवर्चसम् ।
निष्पपात स वेगेन सभायाः सचिवैर्वृतः ॥ 33 ॥

रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः ।
सङ्क्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ॥ 34 ॥

व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं प्रचुक्रुशुः ।
ऊचुश्चान्योन्यमाश्लिष्य सङ्क्रुद्धं प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥ 35 ॥

अद्यैनं तावुभौ दृष्ट्वा भ्रातरौ प्रव्यथिष्यतः ।
लोकपाला हि चत्वारः क्रुद्धेनानेन निर्जिताः ।
बहवः शत्रवश्चान्ये संयुगेष्वभिपातिताः ॥ 36 ॥

तेषां संजल्पमानानामशोकवनिकां गताम् ।
अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ 37 ॥

वार्यमाणः सुसङ्क्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः ।
अभ्यधावत सङ्क्रुद्धः खे ग्रहो रोहिणीमिव ॥ 38 ॥

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता ।
ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ 39 ॥

तं निशाम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा ।
निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनिवर्तिनम् ॥ 40 ॥

यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ।
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ॥ 41 ॥

बहुशश्चोदयामास भर्तारं मामनुव्रताम् ।

भार्या भव रमस्येति प्रत्याख्यातोऽभवन्मया ॥₄₂॥

सोऽयं मामनुपस्थानाद्वक्तं नैराश्यमागतः ।
क्रोधमोहसमाविष्टो निहन्तुं मां समुद्यतः ॥₄₃॥

अथ वा तौ नरव्याघ्रौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
मन्निमित्तमनार्येण समरेऽद्य निपातितौ ।
अहो धिन्मन्निमित्तोऽयं विनाशो राजपुत्रयोः ॥₄₄॥

हनूमतो हि तद्वाक्यं न कृतं क्षुद्रया मया ।
यद्यहं तस्य पृष्ठेन तदायासमनिन्दिता ।
नादैवमनुशोचेयं भर्तुरङ्कगता सती ॥₄₅॥

मन्ये तु हृदयं तस्याः कौसल्यायाः फलिष्यति ।
एकपुत्रा यदा पुत्रं विनष्टं श्रोष्यते युधि ॥₄₆॥

सा हि जन्म च बाल्यं च यौवनं च महात्मनः ।
धर्मकार्याणि रूपं च रुदती संस्रमिष्यति ॥₄₇॥

निराशा निहते पुत्रे दत्त्वा श्राद्धमचेतना ।
अग्निमारोक्ष्यते नूनमपो वापि प्रवेक्ष्यति ॥₄₈॥

धिगस्तु कुब्जामसतीं मन्थरां पापनिश्चयाम् ।
यन्निमित्तमिदं दुःखं कौसल्या प्रतिपत्स्यते ॥₄₉॥

इत्येवं मैथिलीं दृष्ट्वा विलपन्तीं तपस्विनीम् ।
रोहिणीमिव चन्द्रेण विना ग्रहवशं गताम् ॥₅₀॥

सुपाश्वर्षो नाम मेधावी रावणं राक्षसेश्वरम् ।
निवार्यमाणं सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥₅₁॥

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य हि ॥₅₂॥

वेद विद्याव्रत स्नातः स्वधर्मनिरतः सदा ।
स्त्रियाः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥⁵³॥

मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ।
त्वमेव तु सहास्माभी राघवे क्रोधमुत्सृज ॥⁵⁴॥

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥⁵⁵॥

शूरो धीमान्नथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः ।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥⁵⁶॥

स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितम्
वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्
पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥⁵⁷॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अशीतितमः सर्गः॥

॥एकाशीतितमः सर्गः॥

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ।
निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥₁॥

अब्रवीच्च तदा सर्वान्बलमुख्यान्महाबलः ।
रावणः प्राञ्जलीन्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्षितः ॥₂॥

सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ।
निर्यान्तु रथसङ्घैश्च पादातैश्चोपशोभिताः ॥₃॥

एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ।
प्रहृष्टा शरवर्षेण प्रावृट्काल इवाम्बुदाः ॥₄॥

अथ वाहं शरैर्तीक्ष्णैर्भिन्नगात्रं महारणे ।
भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥₅॥

इत्येवं राक्षसेन्द्रस्य वाक्यमादाय राक्षसाः ।
निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रं नागानीकैश्च संवृताः ॥₆॥

स सङ्ग्रामो महाभीमः सूर्यस्योदयनं प्रति ।
रक्षसां वानराणां च तुमुलः समपद्यत ॥₇॥

ते गदाभिर्विचित्राभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तदा वानरराक्षसाः ॥₈॥

मातङ्गरथकूलस्य वाजिमत्स्या ध्वजद्रुमाः ।
शरीरसङ्घाटवहाः प्रसस्रुः शोणितापगाः ॥₉॥

ध्वजवर्मरथानश्चान्नानाप्रहरणानि च ।

आप्लुत्याप्लुत्य समरे वानरेन्द्रा बभञ्जिरे ॥₁₀॥

केशान्कर्णललाटांश्च नासिकाश्च प्लवङ्गमाः ।
रक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि व्यकर्तयन् ॥₁₁॥

एकैकं राक्षसं सङ्क्ष्यो शतं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त फलिनं वृक्षं शकुनयो यथा ॥₁₂॥

तथा गदाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
निर्जघ्नुर्वानरान्योरान्नाक्षसाः पर्वतोपमाः ॥₁₃॥

राक्षसैर्वध्यमानानां वानराणां महाचमूः ।
शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥₁₄॥

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष ह ॥₁₅॥

प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे ।
नाभिजग्मुर्महाघोरं निर्दहन्तं शराग्निना ॥₁₆॥

कृतान्येव सुघोराणि रामेण रजनीचराः ।
रणे रामस्य ददृशुः कर्माण्यसुकराणि च ॥₁₇॥

चालयन्तं महानीकं विधमन्तं महारथान् ।
ददृशुस्ते न वै रामं वातं वनगतं यथा ॥₁₈॥

छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम् ।
बलं रामेण ददृशुर्न रमं शीघ्रकारिणम् ॥₁₉॥

प्रहरन्तं शरीरेषु न ते पश्यन्ति राघवम् ।
इन्द्रियार्थेषु तिष्ठन्तं भूतात्मानमिव प्रजाः ॥₂₀॥

एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान् ।

एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन्वाजिभिः सह ॥²¹॥

इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान्रणे ।
अन्योन्यकुपिता जघ्नुः सादृश्याद्राघवस्य ते ॥²²॥

न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम् ।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥²³॥

ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ।
पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥²⁴॥

भ्रमन्तीं काञ्चनीं कोटिं कार्मुकस्य महात्मनः ।
अलातचक्रप्रतिमां ददृशुस्ते न राघवम् ॥²⁵॥

शरीरनाभि सत्त्वार्चिः शरीरं नेमिकार्मुकम् ।
ज्याघोषतलनिर्घोषं तेजोबुद्धिगुणप्रभम् ॥²⁶॥

दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तं निघ्नन्तं युधि राक्षसान् ।
ददृशू रामचक्रं तत्कालचक्रमिव प्रजाः ॥²⁷॥

अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम् ।
अष्टादशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥²⁸॥

चतुर्दशसहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम् ॥²⁹॥

दिवसस्याष्टमे भागे शरैरग्निशिखोपमैः ।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम् ॥³⁰॥

ते हताश्चा हतरथाः श्रान्ता विमथितध्वजाः ।
अभिपेतुः पुरीं लङ्कां हतशेषा निशाचराः ॥³¹॥

हतैर्गजपदात्यश्चैस्तद्वभूव रणाजिरम् ।

आक्रीडभूमी रुद्रस्य क्रुद्धस्येव पिनाकिनः ॥₃₂॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु साध्विति रामस्य तत्कर्म समपूजयन् ॥₃₃॥

अब्रवीच्च तदा रामः सुग्रीवं प्रत्यनन्तरम् ।
एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा ॥₃₄॥

निहत्य तां राक्षसवाहिनीं तु
रामस्तदा शक्रसमो महात्मा ।
अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितक्लमश्च
संस्तूयते देवगणैः प्रहृष्टैः ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः॥

॥द्व्यशीतितमः सर्गः॥

तानि नागसहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।
रथानां चाग्निवर्णानां सध्वजानां सहस्रशः ॥₁॥

राक्षसानां सहस्राणि गदापरिघयोधिनाम् ।
काञ्चनध्वजचित्राणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥₂॥

निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
रावणेन प्रयुक्तानि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥₃॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा च सम्भ्रान्ता हतशेषा निशाचराः ।
राक्षस्यश्च समागम्य दीनाश्चिन्तापरिप्लुताः ॥₄॥

विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः ।
राक्षस्यः सह सङ्गम्य दुःखार्ताः पर्यदेवयन् ॥₅॥

कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी ।
आससाद वने रामं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥₆॥

सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम् ।
तं दृष्ट्वा लोकवध्या सा हीनरूपा प्रकामिता ॥₇॥

कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम् ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी ॥₈॥

जनस्यास्यात्यभाग्यत्वात्पलिनी श्वेतमूर्धजा ।
अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम् ॥₉॥

राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च ।

चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥₁₀॥

तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत् ।
वधाय नीता सा सीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥₁₁॥

न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम् ।
बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण ह ॥₁₂॥

वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम् ।
हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥₁₃॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥₁₄॥

खरश्च निहतः सङ्ख्यो दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
शरैरादित्यसङ्काशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥₁₅॥

हतो योजनबाहुश्च कबन्धो रुधिराशनः ।
क्रोधार्तो विनदन्सोऽथ पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥₁₆॥

जघान बलिनं रामः सहस्रनयनात्मजम् ।
बालिनं मेघसङ्काशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥₁₇॥

ऋश्यमूके वसञ्छौले दीनो भग्नमनोरथः ।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥₁₈॥

धर्मार्थसहितं वाक्यं सर्वेषां रक्षसां हितम् ।
युक्तं विभीषणेनोक्तं मोहात्तस्य न रोचते ॥₁₉॥

विभीषणवचः कुर्याद्यदि स्म धनदानुजः ।
श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लङ्का पुरी भवेत् ॥₂₀॥

कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महाबलम् ।

प्रियं चेन्द्रजितं पुत्रं रावणो नावबुध्यते ॥₂₁॥

मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः ।
इत्येवं श्रूयते शब्दो राक्षसानां कुले कुले ॥₂₂॥

रथाश्चाश्वाश्च नागाश्च हताः शतसहस्रशः ।
रणे रामेण शूरेण राक्षसाश्च पदातयः ॥₂₃॥

रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः ।
हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः ॥₂₄॥

हतप्रवीरा रामेण निराशा जीविते वयम् ।
अपश्यन्त्यो भयस्यान्तमनाथा विलपामहे ॥₂₅॥

रामहस्ताद्वशग्रीवः शूरो दत्तवरो युधि ।
इदं भयं महाघोरमुत्पन्नं नावबुध्यते ॥₂₆॥

न देवा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
उपसृष्टं परित्रातुं शक्ता रामेण संयुगे ॥₂₇॥

उत्पाताश्चापि दृश्यन्ते रावणस्य रणे रणे ।
कथयिष्यन्ति रामेण रावणस्य निबर्हणम् ॥₂₈॥

पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः ।
रावणस्याभयं दत्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥₂₉॥

तदिदं मानुषान्मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् ।
जीवितान्तकरं घोरं रक्षसां रावणस्य च ॥₃₀॥

पीड्यमानास्तु बलिना वरदानेन रक्षसा ।
दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहमपूजयन् ॥₃₁॥

देवतानां हितार्थाय महात्मा वै पितामहः ।

उवाच देवताः सर्वा इदं तुष्टो महद्वचः ॥₃₂॥

अद्य प्रभृति लोकांस्त्रीन्सर्वे दानवराक्षसाः ।
भयेन प्रावृता नित्यं विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥₃₃॥

दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः ।
वृषध्वजस्त्रिपुरहा महादेवः प्रसादितः ॥₃₄॥

प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद्वचोऽब्रवीत् ।
उत्पत्स्यति हितार्थं वो नारी रक्षःक्षयावहा ॥₃₅॥

एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुद्यथा दानवान्पुरा ।
भक्षयिष्यति नः सीता राक्षसघ्नी सरावणान् ॥₃₆॥

रावणस्यापनीतेन दुर्विनीतस्य दुर्मतेः ।
अयं निष्ठानको घोरः शोकेन समभिप्लुतः ॥₃₇॥

तं न पश्यामहे लोके यो नः शरणदो भवेत् ।
राघवेणोपसृष्टानां कालेनेव युगक्षये ॥₃₈॥

इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः
परस्परं सम्परिरभ्य बाहुभिः ।
विषेदुरार्तातिभयाभिपीडिता
विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम् ॥₃₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाशीतितमः सर्गः॥

॥ त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

आर्तानां राक्षसीनां तु लङ्कायां वै कुले कुले ।
रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिवेदितम् ॥₁॥

स तु दीर्घं विनिश्चस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
बभूव परमक्रुद्धो रावणो भीमदर्शनः ॥₂॥

सन्दश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
राक्षसैरपि दुर्दर्शः कालाग्निरिव मूर्छितः ॥₃॥

उवाच च समीपस्थान्नाक्षसान्नाक्षसेश्वरः ।
भयाव्यक्तकथांस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ॥₄॥

महोदरं महापार्श्वं विरूपाक्षं च राक्षसम् ।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ॥₅॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते भयार्दिताः ।
चोदयामासुरव्यग्रान्नाक्षसांस्तानृपाज्ञया ॥₆॥

ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे रावणाभिमुखा ययुः ॥₇॥

प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते महारथाः ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥₈॥

अथोवाच प्रहस्यैतान्नावणः क्रोधमूर्छितः ।
महोदरमहापार्श्वो विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥₉॥

अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसंनिभैः ।

राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसाधनम् ॥₁₀॥

खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा ।
करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम् ॥₁₁॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो न नद्यो नापि सागरः ।
प्रकाशत्वं गमिष्यन्ति मद्वाणजलदावृताः ॥₁₂॥

अद्य वानरयूथानां तानि यूथानि भागशः ।
धनुःसमुद्रादुद्धूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः ॥₁₃॥

व्याकोशपद्मचक्राणि पद्मकेसरवर्चसाम् ।
अद्य यूथतटाकानि गजवत्प्रमथाम्यहम् ॥₁₄॥

सशरैरद्य वदनैः सङ्क्षो वानरयूथपाः ।
मण्डयिष्यन्ति वसुधां सनालैरिव पङ्कलैः ॥₁₅॥

अद्य युद्धप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम् ।
मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतंशतम् ॥₁₆॥

हतो भर्ता हतो भ्राता यासां च तनया हताः ।
वधेनाद्य रिपोस्तासां कर्मोम्यस्रप्रमार्जनम् ॥₁₇॥

अद्य मद्वाणनिभिन्नैः प्रकीर्णैर्गतचेतनैः ।
करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम् ॥₁₈॥

अद्य गोमायवो गृध्रा ये च मांसाशिनोऽपरे ।
सर्वास्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शरार्दितैः ॥₁₉॥

कल्प्यतां मे रथशीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः ।
अनुप्रयान्तु मां युद्धे येऽवशिष्टा निशाचराः ॥₂₀॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापाश्वर्चोऽब्रवीद्वचः ।

बलाध्यक्षान्स्थितांस्तत्र बलं सन्धर्यतामिति ॥₂₁॥

बलाध्यक्षास्तु संरब्धा राक्षसांस्तान्गृहाद्गृहात् ।
चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः ॥₂₂॥

ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमविक्रमाः ।
नर्दन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः ॥₂₃॥

असिभिः पट्टसैः शूलैर्गलाभिर्मुसलैर्हलैः ।
शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः ॥₂₄॥

यष्टिभिर्विमलैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः ।
भिण्डिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः ॥₂₅॥

अथानयन्बलाध्यक्षाश्चत्वारो रावणाज्ञया ।
द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ॥₂₆॥

आरुरोह रथं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
रावणः सत्त्वगाम्भीर्यादारयन्निव मेदिनीम् ॥₂₇॥

रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥₂₈॥

ते तु हृष्टा विनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥₂₉॥

ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः ।
निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोमपः ॥₃₀॥

ततः प्रजवनाश्चेन रथेन स महारथः ।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥₃₁॥

ततो नष्टप्रभः सूर्यो दिशश्च तिमिरावृताः ।

द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च सध्र्चाल च मेदिनी ॥₃₂॥

ववर्ष रुधिरं देवश्चस्वलुश्च तुरङ्गमाः ।
ध्वजाग्रे न्यपतद्गुध्रो विनेदुश्चाशिवं शिवाः ॥₃₃॥

नयनं चास्फुरद्वामं सव्यो बाहुरकम्पत ।
विवर्णवदनश्चासीत्किञ्चिदभ्रश्र्यत स्वरः ॥₃₄॥

ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः ।
रणे निधनशंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे ॥₃₅॥

अन्तरिक्षात्पपातोल्का निर्घातसमनिस्वना ।
विनेदुरशिवं गृध्रा वायसैरनुनादिताः ॥₃₆॥

एतानचिन्तयन्धोरानुत्पातान्समुपस्थितान् ।
निर्ययौ रावणो मोहाद्वधार्थी कालचोदितः ॥₃₇॥

तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम् ।
वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥₃₈॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥₃₉॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥₄₀॥

निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः ।
निरुच्छ्वासा हताः केचित्केचित्पार्श्वेषु दारिताः ।
केचिद्विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विवर्जिताः ॥₄₁॥

दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो
यतो यतोऽभ्येति रथेन सङ्ग्रो ।
ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगम्

सोढुं न शेकुर्हरियूथपास्ते ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः॥

॥चतुरशीतितमः सर्गः॥

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः ।
बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिर्वृता ॥₁॥

रावणस्याप्रसह्यं तं शरसम्पातमेकतः ।
न शेकुः सहितुं दीप्तं पतङ्गा इव पावकम् ॥₂॥

तेऽर्दिता निशितैर्बाणैः क्रोशन्तो विप्रदुद्रुवुः ।
पावकार्चिःसमाविष्टा दह्यमाना यथा गज्जाः ॥₃॥

प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः ।
स ययौ समरे तस्मिन्विधमन्नावणः शरैः ॥₄॥

कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम् ।
आससाद ततो युद्धे राघवं बरितस्तदा ॥₅॥

सुग्रीवस्तान्कपीन्दृष्ट्वा भग्नान्विद्रवतो रणे ।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः ॥₆॥

आत्मनः सदृशं वीरं स तं निक्षिप्य वानरम् ।
सुग्रीवोऽभिमुखः शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥₇॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे यूथाधिपाः स्वयम् ।
अनुजह्नुर्महाशैलान्विविधांश्च महाद्रुमान् ॥₈॥

स नदन्युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ।
पातयन्विविधांश्चान्याञ्जघानोत्तमराक्षसान् ॥₉॥

ममर्द च महाकायो राक्षसान्वानरेश्वरः ।

युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव ॥₁₀॥

राक्षसानामनीकेषु शैलवर्षं ववर्ष ह ।
अश्रमवर्षं यथा मेघः पक्षिसङ्घेषु कानने ॥₁₁॥

कपिराजविमुक्तैस्तैः शैलवर्षेस्तु राक्षसाः ।
विकीर्णशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पर्वताः ॥₁₂॥

अथ सङ्क्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः ।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु पतत्सु विनदत्सु च ॥₁₃॥

विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः ।
रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥₁₄॥

स तं द्विरदमारुह्य विरूपाक्षो महारथः ।
विनदन्भीमनिर्हातं वानरानभ्यधावत ॥₁₅॥

सुग्रीवे स शरान्योरान्विससर्ज चमूमुखे ।
स्थापयामासा चोद्विग्नान्नाक्षसान्सम्प्रहर्षयन् ॥₁₆॥

सोऽतिविद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा ।
चुक्रोध च महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे ॥₁₇॥

ततः पादपमुद्धृत्य शूरः सम्प्रधने हरिः ।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तं महागजम् ॥₁₈॥

स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः ।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च ॥₁₉॥

गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् ।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥₂₀॥

आर्षभं चर्मखड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः ।

भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥₂₁॥

स हि तस्याभिसङ्क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
विरूपाक्षाय चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥₂₂॥

स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत्तदा ॥₂₃॥

तेन खड्गेन सङ्क्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ।
कवचं पातयामास स खड्गाभिहतोऽपतत् ॥₂₄॥

स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ।
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिस्वनम् ॥₂₅॥

तलप्रहारं तद्रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ।
नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरस्यताडयत् ॥₂₆॥

ततस्तु सङ्क्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा ॥₂₇॥

स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ।
ततो न्यपातयत्क्रोधाच्छङ्खदेशे महातलम् ॥₂₈॥

महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ ।
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं स समुद्रमन् ॥₂₉॥

विवृत्तनयनं क्रोधात्सफेनरुधिराप्लुतम् ।
ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥₃₀॥

स्फुरन्तं परिवर्जन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम् ।
करुणं च विनर्दान्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥₃₁॥

तथा तु तौ संयति सम्प्रयुक्तौ
तरस्विनौ वानरराक्षसानाम् ।
बलार्णवौ सस्वनतुः सभीमम्
महार्णवौ द्वाविव भिन्नवेलौ ॥₃₂॥

विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रम्
महाबलं तं हरिपार्थिवेन ।
बलं समस्तं कपिराक्षसानाम्
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः॥

॥पञ्चाशीतितमः सर्गः॥

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे ।
सरसीव महाघर्मे सूपक्षीणे बभूवतुः ॥₁॥

स्वबलस्य विघातेन विरूपाक्षवधेन च ।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥₂॥

प्रक्षीणं तु बलं दृष्ट्वा वध्यमानं वलीमुखैः ।
बभूवास्य व्यथा युद्धे प्रेक्ष्य दैवविपर्ययम् ॥₃॥

उवाच च समीपस्थं महोदरमरिन्दमम् ।
अस्मिन्काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥₄॥

जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम् ।
भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्वेष्टुं साधु युध्यताम् ॥₅॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रं महोदरः ।
प्रविवेशारिसेनां स पतङ्ग इव पावकम् ॥₆॥

ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः ।
भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥₇॥

प्रभग्नां समरे दृष्ट्वा वानराणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम् ॥₈॥

प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् ।
चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥₉॥

तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः ।

असम्भ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद दुरासदाम् ॥₁₀॥

रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृता सा सहस्रधा ।
निपपात शिला भूमौ गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥₁₁॥

तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्छितः ।
सालमुत्पाट्य चिक्षेप रक्षसे रणमूर्धनि ।
शरैश्च विददारैनं शूरः परपुरंजयः ॥₁₂॥

स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ।
आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् ।
परिघाग्रेण वेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥₁₃॥

तस्माद्धतहयाद्वीरः सोऽवप्लुत्य महारथात् ।
गदां जग्राह सङ्क्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः ॥₁₄॥

गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः ।
नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ ॥₁₅॥

आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः ।
पपात स गदोद्भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥₁₆॥

ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीवो वसुधातलात् ।
आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥₁₇॥

तं समुद्यम्य चिक्षेप सोऽप्यन्यां व्याक्षिपद्गदाम् ।
भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुर्धरणीतले ॥₁₈॥

ततो भग्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः ।
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥₁₉॥

जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं नेदतुश्च पुनः पुनः ।
तलैश्चान्योन्यमाहत्य पेततुर्धरणीतले ॥₂₀॥

उत्पेततुस्ततस्तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम् ।
भुजैश्चिक्षपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ ॥₂₁॥

आजहार तदा खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ।
राक्षसश्चर्मणा सार्धं महावेगो महोदरः ॥₂₂॥

तथैव च महाखड्गं चर्मणा पतितं सह ।
जग्राह वानरश्रेष्ठः सुग्रीवो वेगवत्तरः ॥₂₃॥

तौ तु रोषपरीताङ्गौ नर्दन्तावभ्यधावताम् ।
उद्यतासी रणे हृष्टौ युधि शस्त्रविशारदौ ॥₂₄॥

दक्षिणं मण्डलं चोभौ तौ तूर्णं सम्परीयतुः ।
अन्योन्यमभिसङ्क्रुद्धौ जये प्रणिहितावुभौ ॥₂₅॥

स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः ।
महाचर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ॥₂₆॥

लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः ।
जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपहितं शिरः ॥₂₇॥

निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले ।
तद्वलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न तिष्ठति ॥₂₈॥

हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः ।
चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः॥

॥षडशीतितमः सर्गः॥

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः ।
अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास सायकैः ॥₁॥

स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि सर्वशः ।
पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः ॥₂॥

केषाञ्चिदिषुभिर्बाहून्स्कन्धांश्चिच्छेद राक्षसः ।
वानराणां सुसङ्क्रुद्धः पार्श्वं केषां व्यदारयत् ॥₃॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ।
विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः ॥₄॥

निरीक्ष्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ।
वेगं चक्रे महाबाहुः समुद्र इव पर्वणि ॥₅॥

आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ।
समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् ॥₆॥

स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ।
ससूतः स्यन्दनात्तस्माद्विसंज्ञः प्रापतद्भुवि ॥₇॥

सर्क्षराजस्तु तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः ।
निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वादूथान्मेघसंनिभात् ॥₈॥

प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः स विपुलां शिलाम् ।
अश्वाञ्जघान तरसा स्यन्दनं च बभञ्ज तम् ॥₉॥

मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः ।

अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत ॥₁₀॥

जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ॥₁₁॥

गवाक्षं जाम्बवन्तं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ ।
जग्राह परिघं घोरमङ्गदः क्रोधमूर्छितः ॥₁₂॥

तस्याङ्गदः प्रकुपितो राक्षसस्य तमायसम् ।
दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम् ॥₁₃॥

द्वाभ्यां भुजाभ्यां सङ्गृह्य भ्रामयित्वा च वेगवान् ।
महापार्श्वाय चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः ॥₁₄॥

स तु क्षितो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः ।
धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्तं चाप्यपातयत् ॥₁₅॥

तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
तलेनाभ्यहनत्क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ॥₁₆॥

स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः ।
करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ॥₁₇॥

तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम् ।
राक्षसः परमक्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ॥₁₈॥

तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपातितम् ।
अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम् ॥₁₉॥

स वीरो वज्रसङ्काशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः ।
संवर्तयन्सुसङ्क्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥₂₀॥

राक्षसस्य स्तनाभ्यां मर्मज्ञो हृदयं प्रति ।

इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ॥₂₁॥

तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे ।
पफाल हृदयं चाशु स पपात हतो भुवि ॥₂₂॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ तत्सैन्यं सम्प्रचुक्षुभे ।
अभवच्च महान्क्रोधः समरे रावणस्य तु ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षडशीतितमः सर्गः॥

॥सप्ताशीतितमः सर्गः॥

महोदरमहापार्श्वो हतौ दृष्ट्वा तु राक्षसौ ।
तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ॥₁॥

आविवेश महान्क्रोधो रावणं तु महामृधे ।
सूतं सञ्चोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥₂॥

निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ।
दुःखमेषोऽपनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥₃॥

रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान्कुमुदो नलः ॥₄॥

स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् ।
नादयन्प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यवर्तत ॥₅॥

पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना ।
सञ्चचाल मही सर्वा सवराहमृगद्विपा ॥₆॥

तामसं सुमहाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् ।
निर्ददाह कपीन्सर्वास्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥₇॥

तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः ।
दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥₈॥

स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा ॥₉॥

आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद्भुः ।

पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिन्दमम् ॥₁₀॥

वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम् ।
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥₁₁॥

विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् ।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥₁₂॥

तयोः शरपथं प्राप्य रावणो राजपुत्रयोः ।
स बभूव यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥₁₃॥

रावणस्य च बाणौघै रामविस्फरितेन च ।
शब्देन राक्षसास्तेन पेतुश्च शतशस्तदा ॥₁₄॥

तमिच्छन्प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः ।
मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥₁₅॥

तान्मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ।
बाणान्बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥₁₆॥

एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन्दशभिर्दश ।
लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥₁₇॥

अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिंजयः ।
आससाद ततो रामं स्थितं शैलमिवाचलम् ॥₁₈॥

स सङ्क्षो राममासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ।
व्यसृजच्छरवर्षानि रावणो राघवोपरि ॥₁₉॥

शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्श्रुताः ।
दृष्ट्वापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥₂₀॥

ताञ्शरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः ।

दीप्यमानान्महावेगान्क्रुद्धानाशीविषानिव ॥₂₁॥

राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा ।
अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरैरभिववर्षतुः ॥₂₂॥

चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ।
बाणवेगान्समुदीक्ष्य समरेष्वपराजितौ ॥₂₃॥

तयोर्भूतानि वित्रेषुर्युगपत्सम्प्रयुध्यतोः ।
रौद्रयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥₂₄॥

सन्ततं विविधैर्बाणैर्बभूव गगनं तदा ।
घनैरिवातपापाये विद्युन्मालासमाकुलैः ॥₂₅॥

गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शूरवृष्टिभिः ।
महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः ॥₂₆॥

शरान्धकारं तौ भीमं चक्रतुः परमं तदा ।
गतेऽस्तं तपने चापि महामेघाविवोत्थितौ ॥₂₇॥

बभूव तुमुलं युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
अनासाद्यमचिन्त्यं च वृत्रवासवयोरिव ॥₂₈॥

उभौ हि परमेष्वासावुभौ शस्त्रविशारदौ ।
उभौ चास्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः ॥₂₉॥

उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः ।
ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव ॥₃₀॥

ततः संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः ।
नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुधत ॥₃₁॥

रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम् ।

शिरसा धारयन्नामो न व्यथां प्रत्यपद्यत ॥₃₂॥

अथ मन्त्रानपि जपन्नौद्रमस्त्रमुदीरयन् ।
शरान्भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ॥₃₃॥

मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् ।
ताञ्शरान्नाक्षसेन्द्राय चिक्षेपाच्छिन्नसायकः ॥₃₄॥

ते महामेघसङ्काशे कवचे पतिताः शराः ।
अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यथां जनयंस्तदा ॥₃₅॥

पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् ।
ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलोऽभिनत् ॥₃₆॥

ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः ।
श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलताः ॥₃₇॥

निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्छितः ।
आसुरं सुमहाघोरमन्यदस्त्रं समाददे ॥₃₈॥

सिंहव्याघ्रमुखांश्चान्यान्कङ्ककाकमुखानपि ।
गृध्रस्थेनमुखांश्चापि सृगालवदनांस्तथा ॥₃₉॥

ईहामृगमुखांश्चान्यान्यादितास्यान्भयावहान् ।
पक्षास्यैल्लेलिहानांश्च ससर्ज निशिताञ्शरान् ॥₄₀॥

शरान्खरमुखांश्चान्यान्वराहमुखसंस्थितान् ।
श्वानकुक्कुटवक्त्रांश्च मकराशीविषाननान् ॥₄₁॥

एतांश्चान्यांश्च मायाभिः ससर्ज निशिताञ्शरान् ।
रामं प्रति महातेजाः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥₄₂॥

आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुनन्दनः ।

ससर्जास्त्रं महोत्साहः पावकं पावकोपमः ॥₄₃॥

अग्निदीप्तमुखान्बाणांस्तथा सूर्यमुखानपि ।
चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रांश्च धूमकेतुमुखानपि ॥₄₄॥

ग्रहनक्षत्रवर्णांश्च महोल्कामुखसंस्थितान् ।
विद्युज्जिह्वोपमांश्चान्यान्ससर्ज निशिताञ्जरान् ॥₄₅॥

ते रावणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहताः ।
विलयं जग्मुराकाशे जग्मुश्चैव सहस्रशः ॥₄₆॥

तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः ॥₄₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः॥

॥अष्टाशीतितमः सर्गः॥

तस्मिन्प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥₁॥

मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः ।
उत्सृष्टुं रावणो घोरं राघवाय प्रचक्रमे ॥₂॥

ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च ।
कार्मुकाद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥₃॥

कूटमुद्गरपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा ।
निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये ॥₄॥

तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः ।
जघान परमास्त्रेण गन्धर्वेण महाद्युतिः ॥₅॥

तस्मिन्प्रतिहतेऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना ।
रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदीरयत् ॥₆॥

ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ।
कार्मुकाद्भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥₇॥

तैरासीद्गगनं दीप्तं सम्पतद्भिरितस्ततः ।
पतद्भिश्च दिशो दीप्तैश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥₈॥

तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि तु स राघवः ।
आयुधानि विचित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥₉॥

तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः ।

विव्याध दशभिर्बाणे रामं सर्वेषु मर्मसु ॥₁₀॥

स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः ।
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥₁₁॥

ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः ।
राघवस्तु सुसङ्क्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥₁₂॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ।
लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा ॥₁₃॥

तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः ।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥₁₄॥

सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैर्ऋतस्य महाबलः ॥₁₅॥

तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम् ।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥₁₆॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदृशान्पर्वतोपमान् ।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥₁₇॥

हताश्चाद्वेगवान्वेगादवप्लुत्य महारथात् ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥₁₈॥

ततः शक्तिं महाशक्तिर्दीप्तां दीप्ताशनीमिव ।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥₁₉॥

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ।
अथोदतिष्ठत्संनादो वानराणां तदा रणे ॥₂₀॥

सा पपात त्रिधा छिन्ना शक्तिः काञ्चनमालिनी ।

सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्श्रुता ॥₂₁॥

ततः सम्भाविततरां कालेनापि दुरासदाम् ।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥₂₂॥

सा वेगिना बलवता रावणेन दुरात्मना ।
जज्वाल सुमहाघोरा शक्राशनिसमप्रभा ॥₂₃॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् ।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमेवाभ्यपद्यत ॥₂₄॥

तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ।
रावणं शक्तिहस्तं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥₂₅॥

कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ।
न प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥₂₆॥

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥₂₇॥

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन्यस्मादेवं विभीषणः ।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥₂₈॥

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा ।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥₂₉॥

इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् ।
मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥₃₀॥

लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥₃₁॥

सा क्षिप्ता भीमवेगेन शक्राशनिसमस्वना ।

शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥₃₂॥

तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः ।
स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥₃₃॥

न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।
जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥₃₄॥

ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया ।
शक्त्या निर्भिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥₃₅॥

तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः ।
भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥₃₆॥

स मुहूर्तमनुध्याय बाष्पव्याकुललोचनः ।
बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः ॥₃₇॥

न विषादस्य कालोऽयमिति सञ्चिन्त्य राघवः ।
चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः ॥₃₈॥

स ददर्श ततो रामः शक्त्या भिन्नं महाहवे ।
लक्ष्मणं रुधिरादिग्धं सपन्नगमिवाचलम् ॥₃₉॥

तामपि प्रहितां शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
यत्नतस्ते हरिश्रेष्ठा न शेकुरवमर्दितुम् ।
अर्दिताश्चैव बाणौघैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ॥₄₀॥

सौमित्रिं सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ।
तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ।
बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवद्विचकर्ष च ॥₄₁॥

तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥₄₂॥

अचिन्तयित्वा तान्बाणान्समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् ।
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं चैव राघवः ।
लक्ष्मणं परिवार्येह तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः ॥⁴³॥

पराक्रमस्य कालोऽयं सम्प्राप्तो मे चिरेप्सितः ।
पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ।
काङ्क्षितः स्तोककस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥⁴⁴॥

अस्मिन्मुहूर्ते नचिरात्सत्यं प्रतिशृणोमि वः ।
अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ॥⁴⁵॥

राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम् ।
वैदेह्याश्च परामर्शं रक्षोभिश्च समागमम् ॥⁴⁶॥

प्राप्तं दुःखं महद्दोरं क्लेशं च निरयोपमम् ।
अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये हत्वा तं रावणं रणे ॥⁴⁷॥

यदर्थं वानरं सैन्यं समानीतमिदं मया ।
सुग्रीवश्च कृतो राज्ये निहत्वा वालिनं रणे ॥⁴⁸॥

यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे ।
सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः ॥⁴⁹॥

चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति ।
दृष्टिं दृष्टिविषयेव सर्पस्य मम रावणः ॥⁵⁰॥

स्वस्थाः पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः ।
आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ॥⁵¹॥

अद्य रामस्य रामत्वं पश्यन्तु मम संयुगे ।
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः ॥⁵²॥

अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ।

सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥⁵³॥

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
आजघान दशग्रीवं रणे रामः समाहितः ॥⁵⁴॥

अथ प्रदीप्तैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥⁵⁵॥

रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
शराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥⁵⁶॥

ते भिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः ।
अन्तरिक्षात्प्रदीप्ताग्रा निपेतुर्धरणीतले ॥⁵⁷॥

तयोज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान् ।
त्रासनः सर्वभूतानां स बभूवाद्भुतोपमः ॥⁵⁸॥

स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभिर्-
महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः ।
भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो
यथानिलेनाभिहतो बलाहकः ॥⁵⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः॥

॥एकोननवतितमः सर्गः॥

स दत्त्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दुरात्मनः ।
विसृजन्नेव बाणौघान्सुषेणं वाक्यमब्रवीत् ॥₁॥

एष रावणवेगेन लक्ष्मणः पतितः क्षितौ ।
सर्पवद्वेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन् ॥₂॥

शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैरिष्टतरं मम ।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥₃॥

अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः ।
यदि पञ्चद्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा ॥₄॥

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः ।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ।
चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षा चोपजायते ॥₅॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना ।
परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः ॥₆॥

न हि युद्धेन मे कार्यं नैव प्राणैर्न सीतया ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु ॥₇॥

किं मे राज्येन किं प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते ।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ॥₈॥

राममाश्वासयन्वीरः सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ।
न मृतोऽयं महाबाहुर्लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥₉॥

न चास्य विकृतं वक्तुं नापि श्यामं न निष्प्रभम् ।
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्याभिलक्ष्यते ॥₁₀॥

पद्मरक्ततलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने ।
एवं न विद्यते रूपं गतासूनां विशां पते ।
मां विषादं कृथा वीर सप्राणोऽयमरिन्दम ॥₁₁॥

आख्यास्यते प्रसुप्तस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले ।
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥₁₂॥

एवमुक्त्वा तु वाक्यज्ञः सुषेणो राघवं वचः ।
समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तमभिब्रुवन् ॥₁₃॥

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमोषधिपर्वतम् ।
पूर्वं हि कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता शुभः ॥₁₄॥

दक्षिणे शिखरे तस्य जातामोषधिमानय ।
विशल्यकरणी नाम विशल्यकरणीं शुभाम् ॥₁₅॥

सौवर्णकरणीं चापि तथा संजीवनीमपि ।
सन्धानकरणीं चापि गत्वा शीघ्रमिहानय ।
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥₁₆॥

इत्येवमुक्तो हनुमान्गत्वा चौषधिपर्वतम् ।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्ता महौषधीः ॥₁₇॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः ।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः ॥₁₈॥

अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् ।
कालात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥₁₉॥

इति सञ्चिन्त्य हनुमान्गत्वा क्षिप्रं महाबलः ।

उत्पपात गृहीत्वा तु हनूमाञ्शिखरं गिरेः ॥ 20 ॥

ओषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव ।
तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥ 21 ॥

एवं कथयमानं तं प्रशस्य पवनात्मजम् ।
सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीः ॥ 22 ॥

ततः सङ्क्षोदयित्वा तामोषधिं वानरोत्तमः ।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः ॥ 23 ॥

सशल्यः स समाधाय लक्ष्मणः परवीरहा ।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ 24 ॥

समुत्थितं ते हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ।
साधु साध्विति सुप्रीताः सुषेणं प्रत्यपूजयन् ॥ 25 ॥

एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा ।
सस्वजे स्नेहगाढं च बाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ 26 ॥

अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा ।
दिष्ट्वा त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ॥ 27 ॥

न हि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा ।
को हि मे जीवितेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥ 28 ॥

इत्येवं वदतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ 29 ॥

तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं वक्तुमिहार्हसि ॥ 30 ॥

न प्रतिज्ञां हि कुर्वन्ति वितथां साधवोऽनघ ।

लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥₃₁॥

नैराश्वमुपगन्तुं ते तदलं मत्कृतेऽनघ ।
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥₃₂॥

न जीवन्त्यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः ॥₃₃॥

अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः ।
यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥₃₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः॥

॥नवतितमः सर्गः॥

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः ।
रावणाय शरान्घोरान्विससर्ज चमूमुखे ॥₁॥

दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ।
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ॥₂॥

दीप्तपावकसङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
निर्बिभेद रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥₃॥

भूमिस्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः ।
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥₄॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गः किङ्किणीशतभूषितः ।
तरुणादित्यसङ्काशो वैदूर्यमयकूबरः ॥₅॥

सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः ।
हरिभिः सूर्यसङ्काशैर्हेमजालविभूषितैः ॥₆॥

रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान्देवराजरथो वरः ।
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात् ॥₇॥

अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः ।
प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः ॥₈॥

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते ।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमाञ्शत्रुनिबर्हणः ॥₉॥

इदमैन्द्रं महद्घापं कवचं चाग्निसंनिभम् ।

शराश्चादित्यसङ्काशाः शक्तिश्च विमला शिताः ॥₁₀॥

आरुह्येभ्यं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम् ।
मया सारथिना राम महेन्द्र इव दानवान् ॥₁₁॥

इत्युक्तः स परिक्रम्य रथं तमभिवाद्य च ।
आरुरोह तदा रामो लोकौलक्ष्म्या विराजयन् ॥₁₂॥

तद्वभूवाद्भुतं युद्धं द्वैरथं लोमहर्षणम् ।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः ॥₁₃॥

स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः ।
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥₁₄॥

अस्त्रं तु परमं घोरं राक्षसं राकसाधिपः ।
ससर्ज परमक्रुद्धः पुनरेव निशाचरः ॥₁₅॥

ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥₁₆॥

ते दीप्तवदना दीप्तं वमन्तो ज्वलनं मुखैः ।
राममेवाभ्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानकाः ॥₁₇॥

तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ।
दिशश्च सन्तताः सर्वाः प्रदिशश्च समावृताः ॥₁₈॥

तान्दृष्ट्वा पन्नगान्नामः समापतत आहवे ।
अस्त्रं गारुत्मतं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम् ॥₁₉॥

ते राघवधनुर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिखिप्रभाः ।
सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ॥₂₀॥

ते तान्सर्वाञ्शराञ्छुः सर्परूपान्महाजवान् ।

सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ॥₂₁॥

अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥₂₂॥

ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥₂₃॥

पातयित्वा रथोपस्थे रथात्केतुं च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानभिजघानाश्चाञ्शरजालेन रावणः ॥₂₄॥

विषेदुर्देवगन्धर्वा दानवाश्चारणैः सह ।
राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ॥₂₅॥

व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः ।
रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा ॥₂₆॥

प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ।
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामशुभावहः ॥₂₇॥

सधूमपरिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ।
उत्पपात तदा क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ॥₂₈॥

शस्त्रवर्णः सुपर्णो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ।
अदृश्यत कबन्धाङ्गः संसक्तो धूमकेतुना ॥₂₉॥

कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्राग्निदेवतम् ।
आक्रम्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखामपि चाम्बरे ॥₃₀॥

दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ।
अदृश्यत दशग्रीवो मैनाक इव पर्वतः ॥₃₁॥

निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा ।

नाशकदभिसन्धातुं सायकान्नणमूर्धनि ॥₃₂॥

स कृत्वा भ्रुकुटीं क्रुद्धः किञ्चित्संरक्तलोचनः ।
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवतितमः सर्गः॥

॥एकनवतितमः सर्गः॥

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
सर्वभूतानि वित्रेषुः प्राकम्पत च मेदिनी ॥₁॥

सिंहशार्दूलवाञ्छोलः सञ्चचालाचलद्रुमः ।
बभूव चापि क्षुभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥₂॥

खगाश्च खरनिर्घोषा गगने परुषस्वनाः ।
औत्पातिका विनर्दन्तः समन्तात्परिचक्रमुः ॥₃॥

रामं दृष्ट्वा सुसङ्क्रुद्धमुत्पातांश्च सुदारुणान् ।
वित्रेषुः सर्वभूतानि रावणस्याविशद्भयम् ॥₄॥

विमानस्थास्तदा देवा गन्धर्वाश्च महोरगाः ।
ऋषिदानवदैत्याश्च गरुत्मन्तश्च खेचराः ॥₅॥

ददृशुस्ते तदा युद्धं लोकसंवर्तसंस्थितम् ।
नानाप्रहरणैर्भीमैः शूरयोः सम्प्रयुध्यतोः ॥₆॥

ऊचुः सुरासुराः सर्वे तदा विग्रहमागताः ।
प्रेक्षमाणा महायुद्धं वाक्यं भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥₇॥

दशग्रीवं जयेत्याहुरसुराः समवस्थिताः ।
देवा राममथोचुस्ते त्वं जयेति पुनः पुनः ॥₈॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद्राघवस्य स रावणः ।
प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन्प्रहरणं महत् ॥₉॥

वज्रसारं महानादं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।

शैलशृङ्गनिभैः कूटैश्चितं दृष्टिभयावहम् ॥₁₀॥

सधूममिव तीक्ष्णाग्रं युगान्ताग्निचयोपमम् ।
अतिरौद्रमनासाद्यं कालेनापि दुरासदम् ॥₁₁॥

त्रासनं सर्वभूतानां दारणं भेदनं तथा ।
प्रदीप्त इव रोषेण शूलं जग्राह रावणः ॥₁₂॥

तच्छूलं परमक्रुद्धो मध्ये जग्राह वीर्यवान् ।
अनेकैः समरे शूरैः राक्षसैः परिवारितः ॥₁₃॥

समुद्यम्य महाकायो ननाद युधि भैरवम् ।
संरक्तनयनो रोषात्स्वसैन्यमभिर्हर्षयन् ॥₁₄॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
प्राकम्पयत्तदा शब्दो राक्षसेन्द्रस्य दारुणः ॥₁₅॥

अतिनादस्य नादेन तेन तस्य दुरात्मनः ।
सर्वभूतानि वित्रेषुः सागरश्च प्रचुक्षुभे ॥₁₆॥

स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद्रावणो महत् ।
विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत् ॥₁₇॥

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः ।
तव भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान्हरिष्यति ॥₁₈॥

रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे ।
त्वां निहत्य रणश्लाघिन्करोमि तरसा समम् ॥₁₉॥

तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव ।
एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः ॥₂₀॥

आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः ।

उत्पतन्तं युगान्ताग्निं जलौघैरिव वासवः ॥₂₁॥

निर्ददाह स तान्बाणान्नामकार्मुकनिःसृतान् ।
रावणस्य महाशूलः पतङ्गानिव पावकः ॥₂₂॥

तान्दृष्ट्वा भस्मसाद्भूताञ्शूलसंस्पर्शचूर्णितान् ।
सायकानन्तरिक्षस्थान्नाघवः क्रोधमाहरत् ॥₂₃॥

स तां मातलिनीनीतां शक्तिं वासवनिर्मिताम् ।
जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः ॥₂₄॥

सा तोलिता बलवता शक्तिर्घण्टाकृतस्त्रना ।
नभः प्रज्वालयामास युगान्तोल्केव सप्रभा ॥₂₅॥

सा क्षिता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्शूले पपात ह ।
भिन्नः शक्त्या महाशूलो निपपात गतद्युतिः ॥₂₆॥

निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान् ।
रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकल्पैः शितैः शरैः ॥₂₇॥

निर्बिभेदोरसि तदा रावणं निशितैः शरैः ।
राघवः परमायत्तो ललाटे पत्रिभिस्त्रिभिः ॥₂₈॥

स शरैर्भिन्नसर्वाङ्गो गात्रप्रसृतशोणितः ।
राक्षसेन्द्रः समूहस्थः फुल्लशोक इवाबभौ ॥₂₉॥

स रामबाणैरतिविद्धगात्रो
निशाचरेन्द्रः क्षतजार्द्रगात्रः ।
जगाम खेदं च समाजमध्ये
क्रोधं च चक्रे सुभृशं तदानीम् ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकनवतितमः सर्गः॥

॥द्विनवतितमः सर्गः॥

स तु तेन तदा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो रणे ।
रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥₁॥

स दीप्तनयनो रोषाच्चापमायम्य वीर्यवान् ।
अभ्यर्दयत्सुसङ्क्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥₂॥

बाणधारासहस्रैस्तु स तोयद इवाम्बरात् ।
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयत् ॥₃॥

पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे ।
महागिरिरिवाकम्प्यः काकुस्थो न प्रकम्पते ॥₄॥

स शरैः शरजालानि वारयन्समरे स्थितः ।
गभस्तीनिव सूर्यस्य प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥₅॥

ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः ॥₆॥

स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः ।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान्किंशुकद्रुमः ॥₇॥

शराभिघातसंरब्धः सोऽपि जग्राह सायकान् ।
काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः ॥₈॥

ततोऽन्योन्यं सुसंरब्धावुभौ तौ रामरावणौ ।
शरान्धकारे समरे नोपालक्षयतां तदा ॥₉॥

ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ।

उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥₁₀॥

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम ।
हता ते विवशा यस्मात्तस्माच्च नासि वीर्यवान् ॥₁₁॥

मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने ।
वैदेहीं प्रसभं हत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे ॥₁₂॥

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शके ।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥₁₃॥

भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित ।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे ॥₁₄॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
श्लाघनीयं यशस्यं च कृतं कर्म महत्त्वया ॥₁₅॥

उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च ।
कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत्फलम् ॥₁₆॥

शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते ।
नैव लज्जास्ति ते सीतां चोरवद्व्यपकर्षतः ॥₁₇॥

यदि मत्संनिधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् ।
भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥₁₈॥

दिष्ट्यासि मम दुष्टात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः ।
अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥₁₉॥

अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
ऋव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु ॥₂₀॥

निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण ।

पिबन्तु रुधिरं तर्षाद्वाणशल्यान्तरोधितम् ॥₂₁॥

अद्य मद्वाणाभिन्नस्य गतासोः पतितस्य ते ।
कर्षन्बन्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान् ॥₂₂॥

इत्येवं स वदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥₂₃॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥₂₄॥

प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः ।
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥₂₅॥

शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः ।
भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥₂₆॥

हरीणां चाश्रमनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात् ।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥₂₇॥

यदा च शस्त्रं नारेभे न व्यकर्षच्छरासनम् ।
नास्य प्रत्यकरोद्धीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥₂₈॥

क्षिप्ताश्चापि शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च ।
न रणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालेऽभिवर्ततः ॥₂₉॥

सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम् ।
शनैर्युद्धादसम्भान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥₃₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः॥

॥त्रिनवतितमः सर्गः॥

स तु मोहात्सुसङ्क्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः ।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणो सूतमब्रवीत् ॥₁॥

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम् ।
भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा ॥₂॥

विमुक्तमिव मायाभिरस्तैरिव बहिष्कृतम् ।
मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे ॥₃॥

किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च ।
त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥₄॥

त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालसमार्जितम् ।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥₅॥

शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः ।
पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥₆॥

यस्त्वं रथमिमं मोहान्न चोद्वहसि दुर्मते ।
सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः ॥₇॥

न हीदं विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः ।
रिपूणां सदृशं चैतन्न त्वयैतत्स्वनुष्ठितम् ॥₈॥

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः ।
यदि वाप्युषितोऽसि त्वं स्मर्यन्ते यदि वा गुणाः ॥₉॥

एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना ।

अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥₁₀॥

न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः ।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥₁₁॥

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा प्रियमित्यप्रियं कृतम् ॥₁₂॥

नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम् ।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥₁₃॥

श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं मया रथः ।
नदीवेग इवाम्भोभिः संयुगे विनिवर्तितः ॥₁₄॥

श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा ।
न हि ते वीर सौमुख्यं प्रहर्षं वोपधारये ॥₁₅॥

रथोद्धहनखिन्नाश्च त इमे रथवाजिनः ।
दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥₁₆॥

निमित्तानि च भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः ।
तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम् ॥₁₇॥

देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीङ्गितानि च ।
दैन्यं हर्षश्च खेदश्च रथिनश्च बलाबलम् ॥₁₈॥

स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च ।
युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम् ॥₁₉॥

उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम् ।
सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना ॥₂₀॥

तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम् ।

रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥₂₁॥

न मया स्वेच्छया वीर रथोऽयमपवाहितः ।
भर्तृस्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं विभो ॥₂₂॥

आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन ।
तत्करिष्याम्यहं वीरं गतानृण्येन चेतसा ॥₂₃॥

सन्तुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः ।
प्रशस्येनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥₂₄॥

रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं कुरु ।
नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥₂₅॥

एवमुक्त्वा ततस्तुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।
ददौ तस्य शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ॥₂₆॥

ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः
प्रचोदयामास हयान्स सारथिः ।
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः
क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः॥

॥चतुर्नवतितमः सर्गः॥

तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महाध्वजम् ।
रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह ॥₁॥

कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा ।
तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधायुधम् ।
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवान्बुदम् ॥₂॥

तं दृष्ट्वा मेघसङ्काशमापतन्तं रथं रिपोः ।
गिरेर्वज्राभिमृष्टस्य दीर्यतः सदृशस्वनम् ।
उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम् ॥₃॥

मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः ।
यथापसव्यं पतता वेगेन महता पुनः ।
समरे हन्तुमात्मानं तथानेन कृता मतिः ॥₄॥

तदप्रमादमातिष्ठ प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः ।
विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मैघमिवोत्थितम् ॥₅॥

अविक्लवमसम्भ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम् ।
रश्मिसञ्चारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम् ॥₆॥

कामं न त्वं समाधेयः पुरन्दररथोचितः ।
युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये ॥₇॥

परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः ।
प्रचोदयामास रथं सूरसारथिसत्तमः ॥₈॥

अपसव्यं ततः कुर्वन्नावणस्य महारथम् ।

चक्रोत्क्षिप्तेन रजसा रावणं व्यवधूनयत् ॥९॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः ।
रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत् ॥१०॥

धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेण लङ्घयन् ।
जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ।
शरांश्च सुमहातेजाः सूर्यरश्मिसमप्रभान् ॥११॥

तदुपोढं महद्युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥१२॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
समीयुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः ॥१३॥

समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा लोमहर्षणाः ।
रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च ॥१४॥

ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि ।
वाता मण्डलिनस्तीव्रा अपसव्यं प्रचक्रमुः ॥१५॥

महद्भ्रुकुलं चास्य भ्रममाणं नभस्तले ।
येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति ॥१६॥

सन्ध्यया चावृता लङ्का जपापुष्पनिकाशया ।
दृश्यते सम्प्रदीतेव दिवसेऽपि वसुन्धरा ॥१७॥

सनिर्घाता महोल्काश्च सम्प्रचेतुर्महास्वनाः ।
विषादयन्त्यो रक्षांसि रावणस्य तदाहिताः ॥१८॥

रावणश्च यतस्तत्र प्रचचाल वसुन्धरा ।
रक्षसां च प्रहरतां गृहीता इव बाहवः ॥१९॥

ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः पतिताः सूर्यरश्मयः ।
दृश्यन्ते रावणस्याङ्गे पर्वतस्येव धातवः ॥₂₀॥

गृधैरनुगताश्चास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः ।
प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः ॥₂₁॥

प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून्समुत्किरन् ।
तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन्दृष्टिविलोपनम् ॥₂₂॥

निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः ।
दुर्विषह्य स्वना घोरा विना जलधरस्वनम् ॥₂₃॥

दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः ।
पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत् ॥₂₄॥

कुर्वन्त्यः कलहं घोरं सारिकास्तद्रथं प्रति ।
निपेतुः शतशस्तत्र दारुणा दारुणस्वनाः ॥₂₅॥

जघनेभ्यः स्फुलिङ्गांश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि सन्ततम् ।
मुमुचुस्तस्य तुरगास्तुल्यमग्निं च वारि च ॥₂₆॥

एवं प्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः ।
रावणस्य विनाशाय दारुणाः सम्प्रजज्ञिरे ॥₂₇॥

रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शिवानि च ।
बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः ॥₂₈॥

ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो
रणे निमित्तानि निमित्तकोविदः ।
जगाम हर्षं च परां च निर्वृतिम्
चकार युद्धेऽभ्यधिकं च विक्रमम् ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः॥

॥पञ्चनवतितमः सर्गः॥

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा ।
सुमहद्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥₁॥

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्वलम् ।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समतिष्ठत ॥₂॥

सम्प्रयुद्धौ ततो दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ ।
व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥₃॥

नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्थुः प्रेक्ष्य च सङ्ग्रामं नाभिजघ्नुः परस्परम् ॥₄॥

रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥₅॥

तौ तु तत्र निमित्तानि दृष्ट्वा राघवरावणौ ।
कृतबुद्धौ स्थिरामर्षौ युयुधाते अभीतवत् ॥₆॥

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः ।
धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥₇॥

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः शरान्सन्धाय वीर्यवान् ।
मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥₈॥

ते शरास्तमनासाद्य पुरन्दररथध्वजम् ।
रक्तशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले ॥₉॥

ततो रामोऽभिसङ्क्रुद्धश्चापमायम्य वीर्यवान् ।

कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा सम्प्रचक्रमे ॥₁₀॥

रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं शरम् ।
महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥₁₁॥

जगाम स महीं भित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ।
स निकृत्तोऽपतद्भूमौ रावणस्य रथध्वजः ॥₁₂॥

ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः सुमहाबलः ।
क्रोधजेनाग्निना सङ्क्षो प्रदीप्त इव चाभवत् ॥₁₃॥

स रोषवशमापन्नः शरवर्षं महद्वमन् ।
रामस्य तुरगान्दिव्याञ्शरैर्विव्याध रावणः ॥₁₄॥

ते विद्धा हरयस्तस्य नास्खलन्नापि बभ्रमुः ।
बभूवुः स्वस्थहृदयाः पद्मनालैरिवाहताः ॥₁₅॥

तेषामसम्भ्रमं दृष्ट्वा वाजिनां रावणस्तदा ।
भूय एव सुसङ्क्रुद्धः शरवर्षं मुमोच ह ॥₁₆॥

गदाश्च परिघांश्चैव चक्राणि मुसलानि च ।
गिरिशृङ्गाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान् ॥₁₇॥

मायाविहितमेतत्तु शस्त्रवर्षमपातयत् ।
सहस्रशस्ततो बाणानश्रान्तहृदयोद्यमः ॥₁₈॥

तुमुलं त्रासजननं भीमं भीमप्रतिस्वनम् ।
दुर्धर्ममभवद्युद्धे नैकशस्त्रमयं महत् ॥₁₉॥

विमुच्य राघवरथं समन्ताद्धानरे बले ।
सायकैरन्तरिक्षं च चकाराशु निरन्तरम् ।
मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥₂₀॥

व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे ।
प्रहसन्निव काकुत्स्थः सन्दधे सायकाञ्चितान् ॥₂₁॥

स मुमोच ततो बाणान्रणे शतसहस्रशः ।
तान्दृष्ट्वा रावणश्चक्रे स्वशरैः खं निरन्तरम् ॥₂₂॥

ततस्ताभ्यां प्रयुक्तेन शरवर्षेण भास्वता ।
शरबद्धमिवाभाति द्वितीयं भास्वदम्बरम् ॥₂₃॥

नानिमित्तोऽभवद्बाणो नातिभेत्ता न निष्फलः ।
तथा विसृजतोर्बाणान्नामरावणयोर्मृधे ॥₂₄॥

प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् ।
चक्रतुस्तौ शरौघैस्तु निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥₂₅॥

रावणस्य हयान्नामो हयान्नामस्य रावणः ।
जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः॥

॥षण्णवतितमः सर्गः॥

तौ तथा युध्यमानौ तु समरे रामरावणौ ।
ददृशुः सर्वभूतानि विस्मितेनान्तरात्मना ॥₁॥

अर्दयन्तौ तु समरे तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ।
परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः ॥₂॥

मण्डलानि च वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च ।
दर्शयन्तौ बहुविधां सूतौ सारथ्यजां गतिम् ॥₃॥

अर्दयन्नावणं रामो राघवं चापि रावणः ।
गतिवेगं समापन्नौ प्रवर्तन निवर्तने ॥₄॥

क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ।
चेरतुः संयुगमहीं सासारौ जलदाविव ॥₅॥

दर्शयित्वा तदा तौ तु गतिं बहुविधां रणे ।
परस्परस्याभिमुखौ पुनरेव च तस्थतुः ॥₆॥

धुरं धुरेण रथयोर्वक्त्रं वक्त्रेण वाजिनाम् ।
पताकाश्च पताकाभिः समेयुः स्थितयोस्तदा ॥₇॥

रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तान्हयान्प्रत्यपसर्पयत् ॥₈॥

स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ।
मुमोच निशितान्बाणान्राघवाय निशाचरः ॥₉॥

सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ।

जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत् ॥₁₀॥

चिक्षेप च पुनर्बाणान्वज्रपातसमस्वनान् ।
सारथिं वज्रहस्तस्य समुद्दिश्य निशाचरः ॥₁₁॥

मातलेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः शराः ।
न सूक्ष्ममपि सम्मोहं व्यथां वा प्रददुर्युधि ॥₁₂॥

तया धर्षणया क्रोद्धो मातलेर्न तथात्मनः ।
चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम् ॥₁₃॥

विंशतिं त्रिंशतं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः ।
मुमोच राघवो वीरः सायकान्स्यन्दने रिपोः ॥₁₄॥

गदानां मुसलानां च परिघाणां च निस्त्रिनैः ।
शराणां पुङ्खवातैश्च क्षुभिताः सप्तसागराः ॥₁₅॥

क्षुब्धानां सागराणां च पातालतलवासिनः ।
व्यथिताः पन्नगाः सर्वे दानवाश्च सहस्रशः ॥₁₆॥

चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना ।
भास्करो निष्प्रभश्चाभून्न ववौ चापि मारुतः ॥₁₇॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिंनरमहोरगाः ॥₁₈॥

स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्योऽस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः ।
जयतां राघवः सङ्क्षो रावणं राक्षसेश्वरम् ॥₁₉॥

ततः क्रुद्धो महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः ।
सन्धाय धनुषा रामः क्षुरमाशीविषोपमम् ।
रावणस्य शिरोऽच्छिन्दच्छ्रीमञ्ज्वलितकुण्डलम् ॥₂₀॥

तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा ।
तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः ॥₂₁॥

तत्क्षिप्रं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ।
द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः ॥₂₂॥

छिन्नमात्रं च तच्छीर्षं पुनरन्यत्स्म दृश्यते ।
तदप्यशनिसङ्काशैश्छिन्नं रामेण सायकैः ॥₂₃॥

एवमेव शतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम् ।
न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये ॥₂₄॥

ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दिवर्धनः ।
मार्गणैर्बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ॥₂₅॥

मारीचो निहतो यैस्तु खरो यैस्तु सुदूषणः ।
ऋक्षारण्ये विराधस्तु कबन्धो दण्डका वने ॥₂₆॥

त इमे सायकाः सर्वे युद्धे प्रत्ययिका मम ।
किं नु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः ॥₂₇॥

इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे ।
ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि ॥₂₈॥

रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ।
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ॥₂₉॥

देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत ॥₃₀॥

नैव रत्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न चक्षणम् ।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः॥

॥सप्तनवतितमः सर्गः॥

अथ संस्मारयामास राघवं मातलिस्तदा ।
अजानन्निव किं वीर ब्रमेनमनुवर्तसे ॥₁॥

विसृजास्मै वधाय ब्रमस्त्रं पैतामहं प्रभो ।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥₂॥

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ।
जग्राह स शरं दीप्तं निश्चसन्तमिवोरगम् ॥₃॥

यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महद्बाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥₄॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥₅॥

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करो ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरो ॥₆॥

जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम् ।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥₇॥

सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषं यथा ।
रथनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥₈॥

द्वाराणां परिघाणां च गिरीणामपि भेदनम् ।
नानारुधिरसिक्ताङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥₉॥

वज्रसारं महानादं नानासमितिदारुणम् ।

सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥₁₀॥

कङ्कगृध्रबलानां च गोमायुगणरक्षसाम् ।
नित्यं भक्षप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ॥₁₁॥

नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम् ।
वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः ॥₁₂॥

तमुत्तमेषु लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम् ।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ॥₁₃॥

अभिमन्य ततो रामस्तं महेषु महाबलः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥₁₄॥

स रावणाय सङ्क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम् ॥₁₅॥

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रबाहुविसर्जितः ।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥₁₆॥

स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः शरः ।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥₁₇॥

रुधिराक्तः स वेगेन जीवितान्तकरः शरः ।
रावणस्य हरन्प्राणान्विवेश धरणीतलम् ॥₁₈॥

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः ।
कृतकर्मा निभृतवत्स्वतूणीं पुनराविशत् ॥₁₉॥

तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं तत्ससायकम् ।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात् ॥₂₀॥

गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः ।

पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥₂₁॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः ।
हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः सम्प्रदुद्रुवुः ॥₂₂॥

नर्दन्तश्चाभिपेतुस्तान्वानरा द्रुमयोधिनः ।
दशग्रीववधं दृष्ट्वा विजयं राघवस्य च ॥₂₃॥

अर्दिता वानरैर्हृष्टैर्लङ्कामभ्यपतन्भयात् ।
हताश्रयत्वात्करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः ॥₂₄॥

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तं वधम् ॥₂₅॥

अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥₂₆॥

निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि ।
किरन्ती राघवरथं दुरवापा मनोहराः ॥₂₇॥

राघवस्तवसंयुक्ता गगने च विशुश्रुवे ।
साधु साध्विति वागग्र्या देवतानां महात्मनाम् ॥₂₈॥

आविवेश महान्हर्षो देवानां चारणैः सह ।
रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयङ्करे ॥₂₉॥

ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च महाबलम् ।
चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥₃₀॥

ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणा
दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत् ।
मही चकम्पे न च मारुता ववुः
स्थिरप्रभश्चाप्यभवद्दिवाकरः ॥₃₁॥

ततस्तु सुग्रीवविभीषणादयः
सुहृद्विशेषाः सहलक्ष्मणास्तदा ।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवम्
रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन् ॥₃₂॥

स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः
स्वजनबलाभिवृतो रणे रराज ।
रघुकुलनृपनन्दनो महौजाः
त्रिदशगणैरभिसंवृतो यथेन्द्रः ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः॥

॥अष्टनवतितमः सर्गः॥

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना ।
अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्षिताः ॥₁॥

वार्यमाणाः सुबहुशो वृष्टन्त्यः क्षितिपांसुषु ।
विमुक्तकेश्यो दुःखार्ता गावो वत्सहता यथा ॥₂॥

उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥₃॥

आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः ।
परिपेतुः कबन्धाङ्गां महीं शोणितकर्दमाम् ॥₄॥

ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः ।
करेण्व इव नर्दन्त्यो विनेदुर्हतयूथपाः ॥₅॥

ददृशुस्ता महाकायं महावीर्यं महाद्युतिम् ।
रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥₆॥

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु छिन्ना वनलता इव ॥₇॥

बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह ।
चरणौ काचिदालिङ्ग्य काचित्कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥₈॥

उद्धृत्य च भुजौ काचिद्भूमौ स्म परिवर्तते ।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥₉॥

काचिदङ्गे शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती ।

स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥₁₀॥

एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि ।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद्भूयस्ताः पर्यदेवयन् ॥₁₁॥

येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥₁₂॥

गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
भयं येन महद्दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥₁₃॥

असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योऽपि वा तथा ।
न भयं यो विजानाति तस्येदं मानुषाद्भयम् ॥₁₄॥

अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥₁₅॥

यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा ।
सोऽयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्बितः ॥₁₆॥

एवं वदन्त्यो बहुधा रुरुदुस्तस्य ताः स्त्रियः ।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः ॥₁₇॥

अशृण्वता तु सुहृदां सततं हितवादिनाम् ।
एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातिताः ॥₁₈॥

ब्रुवाणोऽपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता विभीषणः ।
धृष्टं परुषितो मोहात्त्वयात्मवधकाङ्क्षिणा ॥₁₉॥

यदि निर्यातिता ते स्यात्सीता रामाय मैथिली ।
न नः स्याद्वसनं घोरमिदं मूलहरं महत् ॥₂₀॥

वृत्तकामो भवेद्भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् ।

वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ॥₂₁॥

द्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात् ।
राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुलं निपातितम् ॥₂₂॥

न कामकारः कामं वा तव राक्षसपुङ्गव ।
दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते ॥₂₃॥

वानराणां विनाशोऽयं राक्षसानां च ते रणे ।
तव चैव महाबाहो दैवयोगादुपागतः ॥₂₄॥

नैवार्थेन न कामेन विक्रमेण न चाज्ञया ।
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥₂₅॥

विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः ।
कुर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः॥

॥एकोनशततमः सर्गः॥

तासां विलपमानानां तथा राक्षसयोषिताम् ।
ज्येष्ठा पत्नी प्रिया दीना भर्तारं समुदैक्षत ॥₁॥

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा ।
पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥₂॥

ननु नाम महाबाहो तव वैश्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥₃॥

ऋषयश्च महीदेवा गन्धर्वाश्च यशस्विनः ।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥₄॥

स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः ।
न व्यपत्रपसे राजन्किमिदं राक्षसर्षभ ॥₅॥

कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम् ।
अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥₆॥

मानुषाणामविषये चरतः कामरूपिणः ।
विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥₇॥

न चैतत्कर्म रामस्य श्रद्धधामि चमूमुखे ।
सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्शनम् ॥₈॥

इन्द्रियाणि पुरा जिह्वा जितं त्रिभुवणं त्वया ।
स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ॥₉॥

अथ वा रामरूपेण वासवः स्वयमागतः ।

मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥₁₀॥

यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
खरस्तव हतो भ्राता तदैवासौ न मानुषः ॥₁₁॥

यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेषां सुरैरपि ।
प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ॥₁₂॥

क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ।
उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ॥₁₃॥

अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुङ्गव ।
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ॥₁₄॥

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ।
सीतां धर्षयता मान्यां ब्रया ह्यसदृशं कृतम् ॥₁₅॥

न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली ।
मयाधिका वा तुल्या वा त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥₁₆॥

सर्वथा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः ।
तव तावदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥₁₇॥

मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ।
अल्पपुण्या ब्रह्मं घोरे पतिता शोकसागरे ॥₁₈॥

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ।
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता ब्रया ॥₁₉॥

विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ।
पश्यन्ती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ।
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीरवधात्तव ॥₂₀॥

सत्यवाक्स महाभागो देवरो मे यदब्रवीत् ।
अयं राक्षसमुख्यानां विनाशः पर्युपस्थितः ॥ 21 ॥

कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना ।
त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं रक्षसां कुलम् ॥ 22 ॥

न हि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः ।
स्त्रीस्त्वभावात्तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते ॥ 23 ॥

सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः ।
आत्मानमनुशोचामि त्वद्वियोगेन दुःखिताम् ॥ 24 ॥

नीलजीमूतसङ्काशः पीताम्बरशुभाङ्गदः ।
सर्वगात्राणि विक्षिप्य किं शेषे रुधिराप्नुतः ।
प्रसुप्त इव शोकार्ता किं मां न प्रतिभाषसे ॥ 25 ॥

महावीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः ।
यातुधानस्य दौहित्रीं किं त्वं मां नाभ्युदीक्षसे ॥ 26 ॥

येन सूदयसे शत्रून्समरे सूर्यवर्चसा ।
वज्रो वज्रधरस्येव सोऽयं ते सततार्चितः ॥ 27 ॥

रणे शत्रुप्रहरणो हेमजालपरिष्कृतः ।
परिघो व्यवकीर्णस्ते बाणैश्छिन्नः सहस्रधा ॥ 28 ॥

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा ।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥ 29 ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रियश्चैता निवर्तय ॥ 30 ॥

तं प्रश्रितस्ततो रामं श्रुतवाक्यो विभीषणः ।
विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ।

रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं प्रत्यभाषत ॥³¹॥

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ।
नाहमर्होऽस्मि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शकम् ॥³²॥

भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः ।
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ॥³³॥

नृशंस इति मां राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ।
श्रुत्वा तस्य गुणान्सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः ॥³⁴॥

तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः ।
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥³⁵॥

तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभवाच्च मे जितम् ।
अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर ॥³⁶॥

अधर्मानृतसंयुक्तः काममेष निशाचरः ।
तेजस्वी बलवाञ्छूरः सङ्ग्रामेषु च नित्यशः ॥³⁷॥

शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ।
महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः ॥³⁸॥

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥³⁹॥

त्वत्सकाशान्महाबाहो संस्कारं विधिपूर्वकम् ।
क्षिप्रमर्हति धर्मज्ञ त्वं यशोभाग्भविष्यसि ॥⁴⁰॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ।
संस्कारेणानुरूपेण योजयामास रावणम् ॥⁴¹॥

स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ।

ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ॥₄₂॥

प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः ।
रामपार्श्वमुपागम्य तदातिष्ठद्विनीतवत् ॥₄₃॥

रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
हर्षं लेभे रिपुं हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ॥₄₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकोनशततमः सर्गः॥

॥शततमः सर्गः॥

ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः ।
जग्मुस्तैस्तैर्विमानैः स्वैः कथयन्तः शुभाः कथाः ॥₁॥

रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम् ।
सुयुद्धं वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥₂॥

अनुरागं च वीर्यं च सौमित्रेर्लक्ष्मणस्य च ।
कथयन्तो महाभागा जग्मुर्हृष्टा यथागतम् ॥₃॥

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम् ।
अनुज्ञाय महाभागो मातलिं प्रत्यपूजयत् ॥₄॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातो मातलिः शक्रसारथिः ।
दिव्यं तं रथमास्थाय दिवमेवारुरोह सः ॥₅॥

तस्मिंस्तु दिवमारूढे सुरसारथिसत्तमे ।
राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे ॥₆॥

परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेनाभिवादितः ।
पूज्यमानो हरिश्रेष्ठैराजगाम बलालयम् ॥₇॥

अब्रवीच्च तदा रामः समीपपरिवर्तिनम् ।
सौमित्रिं सत्त्वसम्पन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥₈॥

विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ।
अनुरक्तं च भक्तं च मम चैवोपकारिणम् ॥₉॥

एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् ।

लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ॥₁₀॥

एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ।
तथेत्युक्त्वा तु संहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥₁₁॥

घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ।
लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ॥₁₂॥

अभ्यषिञ्चत्स धर्मात्मा शुद्धात्मानं विभीषणम् ।
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ॥₁₃॥

दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ॥₁₄॥

स तद्राज्यं महत्प्राप्य रामदत्तं विभीषणः ।
प्रकृतीः सान्त्वयित्वा च ततो राममुपागमत् ॥₁₅॥

अक्षतान्मोदकाँल्लाजान्दिव्याः सुमनसस्तथा ।
आजहुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः ॥₁₆॥

स तान्गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ।
मङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ॥₁₇॥

कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ।
प्रतिजग्राह तत्सर्वं तस्यैव प्रियकाम्यया ॥₁₈॥

ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं पार्श्वतः स्थितम् ।
अब्रवीद्राघवो वाक्यं हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥₁₉॥

अनुमान्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् ।
प्रविश्य रावणगृहं विनयेनोपसृत्य च ॥₂₀॥

वैदेह्या मां कुशलिनं ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।

आचक्ष्व जयतां श्रेष्ठ रावणं च मया हतम् ॥₂₁॥

प्रियमेतदुदाहृत्य मैथिल्यास्त्रं हरीश्वर ।
प्रतिगृह्य च सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे शततमः सर्गः॥

॥एकाधिकशततमः सर्गः॥

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥₁॥

प्रविश्य तु महातेजा रावणस्य निवेशनम् ।
ददर्श शशिना हीनां सातङ्कामिव रोहिणीम् ॥₂॥

निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च ।
रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₃॥

वैदेहि कुशली रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुरिन्दमः ॥₄॥

विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणस्य नयेन च ॥₅॥

पृष्ट्वा च कुशलं रामो वीरस्त्वां रघुनन्दनः ।
अब्रवीत्परमप्रीतः कृतार्थेनान्तरात्मना ॥₆॥

प्रियमाख्यामि ते देवि त्वां तु भूयः सभाजये ।
दिष्ट्वा जीवसि धर्मज्ञे जयेन मम संयुगे ॥₇॥

लब्धो नो विजयः सीते स्वस्था भव गतव्यथा ।
रावणः स हतः शत्रुर्लङ्का चेयं वशे स्थिता ॥₈॥

मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये ।
प्रतिज्ञेषा विनिस्तीर्णा बद्धा सेतुं महोदधौ ॥₉॥

सम्भ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ।

विभीषणविधेयं हि लङ्केश्वर्यमिदं कृतम् ॥₁₀॥

तदाश्चसिहि विश्वस्ता स्वगृहे परिवर्तसे ।
अयं चाभ्येति संहृष्टस्वदर्शनसमुत्सुकः ॥₁₁॥

एवमुक्ता समुत्पत्य सीता शशिनिभानना ।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याजहार न किञ्चन ॥₁₂॥

अब्रवीच्च हरिश्रेष्ठः सीतामप्रतिजल्पतीम् ।
किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे ॥₁₃॥

एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मे व्यवस्थिता ।
अब्रवीत्परमप्रीता हर्षगद्गदया गिरा ॥₁₄॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् ।
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥₁₅॥

न हि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवङ्गम ।
मत्प्रियाख्यानकस्येह तव प्रत्यभिनन्दनम् ॥₁₆॥

न च पश्यामि तत्सौम्य पृथिव्यामपि वानर ।
सदृशं मत्प्रियाख्याने तव दातुं भवेत्समम् ॥₁₇॥

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च ।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितुम् ॥₁₈॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ।
प्रगृहीताञ्जलिर्वाक्यं सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥₁₉॥

भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि ।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥₂₀॥

तवैतद्वचनं सौम्ये सारवत्स्निग्धमेव च ।

रत्नौघाद्विविधाच्चापि देवराज्याद्विशिष्यते ॥₂₁॥

अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः ।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि यत्स्थितम् ॥₂₂॥

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ।
हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥₂₃॥

क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम् ।
घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥₂₄॥

राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतं प्रयच्छ मे ।
इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥₂₅॥

मुष्टिभिः पाणिभिश्चैव चरणैश्चैव शोभने ।
घोरैर्जानुप्रहारैश्च दशनानां च पातनैः ॥₂₆॥

भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुध्नैस्तथा ।
भृशं शुष्कमुखीभिश्च दारुणैर्लङ्घनैर्हतैः ॥₂₇॥

एवम्प्रकारैर्बहुभिर्विप्रकारैर्यशस्विनि ।
हन्तुमिच्छाम्यहं देवि तवेमाः कृतकिल्बिषाः ॥₂₈॥

एवमुक्ता महिमता वैदेही जनकात्मजा ।
उवाच धर्मसहितं हनूमन्तं यशस्विनी ॥₂₉॥

राजसंश्रयवस्थानां कुर्वतीनां पराज्ञया ।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥₃₀॥

भाग्यवैषम्ययोगेन पुरा दुश्चरितेन च ।
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥₃₁॥

प्राप्तव्यं तु दशयोगान्मयैतदिति निश्चितम् ।

दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥₃₂॥

आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन् ।
हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम ॥₃₃॥

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः ।
ऋक्षेण गीतः श्लोको मे तं निबोध प्लवङ्गम ॥₃₄॥

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥₃₅॥

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥₃₆॥

लोकहिंसाविहाराणां रक्षसां कामरूपिणम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥₃₇॥

एवमुक्तस्तु हनुमान्सीतया वाक्यकोविदः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥₃₈॥

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी यशस्विनी ।
प्रतिसन्दिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥₃₉॥

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
अब्रवीद्ब्रष्टुमिच्छामि भर्तारं वानरोत्तम ॥₄₀॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्पवनात्मजः ।
हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महाद्युतिः ॥₄₁॥

पूर्णचन्द्राननं रामं द्रक्ष्यस्यार्ये सलक्ष्मणम् ।
स्थिरमित्रं हतामित्रं शचीव त्रिदशेश्वरम् ॥₄₂॥

तामेवमुक्ता राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ।

आजगाम महावेगो हनूमान्यत्र राघवः ॥₄₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकाधिकशततमः सर्गः॥

॥द्व्यधिकशततमः सर्गः॥

स उवाच महाप्रज्ञमभिगम्य प्लवङ्गमः ।
रामं वचनमर्थज्ञो वरं सर्वधनुष्मताम् ॥₁॥

यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ।
तां देवीं शोकसन्तप्तां मैथिलीं द्रष्टुमर्हसि ॥₂॥

सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
मैथिली विजयं श्रुत्वा तव हर्षमुपागमत् ॥₃॥

पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ।
भर्तारं द्रष्टुमिच्छामि कृतार्थं सहलक्ष्मणम् ॥₄॥

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः ।
अगच्छत्सहसा ध्यानमासीद्बाष्पपरिप्लुतः ॥₅॥

दीर्घमुष्णं च निश्चस्य मेदिनीमवलोकयन् ।
उवाच मेघसङ्काशं विभीषणमुपस्थितम् ॥₆॥

दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् ।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय माचिरम् ॥₇॥

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः ।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभिरचोदयत् ॥₈॥

दिव्याङ्गरागा वैदेही दिव्याभरणभूषिता ।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥₉॥

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम् ।

अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसाधिप ॥₁₀॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।
यथाह रामो भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥₁₁॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली भर्तृदेवता ।
भर्तृभक्तिव्रता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥₁₂॥

ततः सीतां शिरःस्नातां युवतीभिरलङ्कृताम् ।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥₁₃॥

आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम् ।
रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥₁₄॥

सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वाभिध्यानमास्थितम् ।
प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥₁₅॥

तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् ।
हर्षो दैन्यं च रोषश्च त्रयं राघवमाविशत् ॥₁₆॥

ततः पार्श्वगतं दृष्ट्वा सविमर्शं विचारयन् ।
विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥₁₇॥

राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत ।
वैदेही संनिकर्षं मे शीघ्रं समुपगच्छतु ॥₁₈॥

स तद्वचनमाज्ञाय राघवस्य विभीषणः ।
तूर्णमुत्सारणे यत्नं कारयामास सर्वतः ॥₁₉॥

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात्परिचक्रमुः ॥₂₀॥

ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वतः ।

वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्सृजुस्ततः ॥₂₁॥

तेषामुत्सार्यमाणानां सर्वेषां ध्वनिरुत्थितः ।
वायुनोद्धर्तमानस्य सागरस्येव निस्वनः ॥₂₂॥

उत्सार्यमाणांस्तान्दृष्ट्वा समन्ताज्जातसम्भ्रमान् ।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥₂₃॥

संरब्धश्चाब्रवीद्रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव ।
विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥₂₄॥

किमर्थं मामनादृत्य कृष्यतेऽयं ह्यया जनः ।
निवर्तयेनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥₂₅॥

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥₂₆॥

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धे न स्वयंवरे ।
न क्रतौ नो विवाहे च दर्शनं दुष्यते स्त्रियः ॥₂₇॥

सैषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे महति च स्थिता ।
दर्शनेऽस्या न दोषः स्यान्मत्समीपे विशेषतः ॥₂₈॥

तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां विभीषण ।
सीता पश्यतु मामेषा सुहृद्गणवृतं स्थितम् ॥₂₉॥

एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः ।
रामस्योपानयत्सीतां संनिकर्षं विनीतवत् ॥₃₀॥

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमांश्च प्लवङ्गमः ।
निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥₃₁॥

कलत्रनिरपेक्षैश्च झङ्गितैरस्य दारुणैः ।

अप्रीतमिव सीतायां तर्कयन्ति स्म राघवम् ॥₃₂॥

लज्जया ब्रवलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥₃₃॥

सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि ।
रुरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी ॥₃₄॥

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च परिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥₃₅॥

अथ समपनुदन्मनःक्लमं सा
सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तम्
विमलशशाङ्कनिभानना तदासीत् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वाधिकशततमः सर्गः॥

॥त्र्यधिकशततमः सर्गः॥

तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्लां रामः सम्प्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥₁॥

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जिह्वा मया रणे ।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेतदुपपादितम् ॥₂॥

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च मया युगपदुद्धृतौ ॥₃॥

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञात्प्रभवामीह चात्मनः ॥₄॥

या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥₅॥

सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजसः ॥₆॥

लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चावमर्दनम् ।
सफलं तस्य तच्छ्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः ॥₇॥

युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतश्च मे ।
सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥₈॥

निर्गुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ।
विभीषणस्य भक्तस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥₉॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सीता रामस्य तद्वचः ।

मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥₁₀॥

पश्यतस्तां तु रामस्य भूयः क्रोधोऽभ्यवर्तत ।
प्रभूताज्यावसिक्तस्य पावकस्येव दीप्यतः ॥₁₁॥

स बद्धा भ्रुकुटिं वक्त्रे तिर्यक्प्रेक्षितलोचनः ।
अब्रवीत्परुषं सीतां मध्ये वानररक्षसाम् ॥₁₂॥

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां परिमार्जता ।
तत्कृतं सकलं सीते शत्रुहस्तादमर्षणात् ॥₁₃॥

निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना ।
अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥₁₄॥

विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः ।
स तीर्णः सुहृदां वीर्यान्न ब्रुवन् मया कृतः ॥₁₅॥

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वशः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जता ॥₁₆॥

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढम् ॥₁₇॥

तद्रच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यतेष्टं जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे ब्रूया ॥₁₈॥

कः पुमान्हि कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वि पुनरादद्यात्सुहृल्लेखेन चेतसा ॥₁₉॥

रावणाङ्कपरिभ्रष्टां दृष्ट्वां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत् ॥₂₀॥

तदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया ।

नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः ॥₂₁॥

इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥₂₂॥

सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे विभीषणे ।
निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मनः ॥₂₃॥

न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
मर्षयते चिरं सीते स्वगृहे परिवर्तिनीम् ॥₂₄॥

ततः प्रियार्हश्चरणा तदप्रियम्
प्रियादुपश्रुत्य चिरस्य मैथिली ।
मुमोच बाष्पं सुभृशं प्रवेपिता
गजेन्द्रहस्ताभिहतेव वल्लरी ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्र्यधिकशततमः सर्गः॥

॥चतुरधिकशततमः सर्गः॥

एवमुक्ता तु वैदेही परुषं लोमहर्षणम् ।
राघवेण सरोषेण भृशं प्रव्यथिताभवत् ॥₁॥

सा तदश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली ।
श्रुत्वा भर्तृवचो रूक्षं लज्जया व्रीडिताभवत् ॥₂॥

प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा ।
वाक्शल्यैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥₃॥

ततो बाष्पपरिक्लिष्टं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् ।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥₄॥

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥₅॥

न तथास्मि महाबाहो यथा त्वमवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्र्येणैव ते शपे ॥₆॥

पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशङ्कसे ।
परित्यजेमां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥₇॥

यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥₈॥

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥₉॥

सहसंवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद ।

यद्यहं ते न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥₁₀॥

प्रेषितस्ते यदा वीरो हनूमानवलोककः ।
लङ्कास्थाहं त्वया वीर किं तदा न विसर्जिता ॥₁₁॥

प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ।
त्वया सन्त्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥₁₂॥

न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात्संशये न्यस्य जीवितम् ।
सुहृञ्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥₁₃॥

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥₁₄॥

अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम् ॥₁₅॥

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥₁₆॥

एवं ब्रुवाणा रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ।
अब्रवीलक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरं स्थितम् ॥₁₇॥

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥₁₈॥

अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्तया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥₁₉॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा ।
अमर्षवशमापन्नो राघवाननमैक्षत ॥₂₀॥

स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् ।

चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥₂₁॥

अधोमुखं ततो रामं शनैः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
उपासर्पत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥₂₂॥

प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥₂₃॥

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥₂₄॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् ।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःसङ्गेनान्तरात्मना ॥₂₅॥

जनः स सुमहांस्तत्र बालवृद्धसमाकुलः ।
ददर्श मैथिलीं तत्र प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥₂₆॥

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः ।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरधिकशततमः सर्गः॥

॥पञ्चाधिकशततमः सर्गः॥

ततो वैश्रवणो राजा यमश्चामित्रकर्शनः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च वरुणश्च परन्तपः ॥₁॥

षडर्धनयनः श्रीमान्महादेवो वृषध्वजः ।
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥₂॥

एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसंनिभैः ।
आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥₃॥

ततः सहस्ताभरणान्मृगह्य विपुलान्भुजान् ।
अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठाः प्राञ्जलिं राघवं स्थितम् ॥₄॥

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ।
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ॥₅॥

ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयम्प्रभुः ॥₆॥

रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः ।
अश्विनौ चापि ते कर्णौ चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥₇॥

अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परन्तप ।
उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥₈॥

इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ।
अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठान्नामो धर्मभृतां वरः ॥₉॥

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
योऽहं यस्य यतश्चाहं भगवांस्तद्वीतु मे ॥¹⁰॥

इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
अब्रवीच्छृणु मे राम सत्यं सत्यपराक्रम ॥¹¹॥

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः ।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥¹²॥

अक्षरं ब्रह्मसत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥¹³॥

शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृग्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्वलः ॥¹⁴॥

सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः ।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥¹⁵॥

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥¹⁶॥

सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परन्तप ॥¹⁷॥

प्रभवं निधनं वा ते न विदुः को भवानिति ।
दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥¹⁸॥

दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च ।
सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रधृक् ॥¹⁹॥

त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ।
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥²⁰॥

त्रैलोक्यान्धारयन्नाम देवगन्धर्वदानवान् ।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥₂₁॥

देवा गात्रेषु लोमानि निर्मिता ब्रह्मणा प्रभो ।
निमेषस्तेऽभवद्रात्रिरुन्मेषस्तेऽभवद्दिवा ॥₂₂॥

संस्कारास्तेऽभवन्वेदा न तदस्ति ब्रया विना ।
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥₂₃॥

अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षण ।
ब्रया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुराणे विक्रमैस्त्रिभिः ॥₂₄॥

महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्धा महासुरम् ।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥₂₅॥

वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
तदिदं नः कृतं कार्यं ब्रया धर्मभृतां वर ॥₂₆॥

निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।
अमोघं बलवीर्यं ते अमोघस्ते पराक्रमः ॥₂₇॥

अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तश्च ये नराः ।
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥₂₈॥

ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥₂₉॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चाधिकशततमः सर्गः॥

॥षष्ठाधिकशततमः सर्गः॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम् ।
अङ्गेनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ॥₁॥

तरुणादित्यसङ्काशां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥₂॥

अक्लिष्टमाल्याभरणां तथा रूपां मनस्विनीम् ।
ददौ रामाय वैदेहीमङ्गे कृत्वा विभावसुः ॥₃॥

अब्रवीच्च तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्या न विद्यते ॥₄॥

नैव वाचा न मनसा नानुध्यानान्न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौण्डीरा न त्वामतिचचार ह ॥₅॥

रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनात् ॥₆॥

रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वक्किन्ता त्वत्परायणा ।
रक्षिता राक्षसी सङ्घैर्विकृतैर्घोरदर्शनैः ॥₇॥

प्रलोभ्यमाना विविधं भर्त्स्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्वद्वतेनान्तरात्मना ॥₈॥

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व राघव ।
न किञ्चिदभिधातव्यमहमाज्ञापयामि ते ॥₉॥

एवमुक्तो महातेजा धृतिमान्दृढविक्रमः ।

अब्रवीच्छिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥₁₀॥

अवश्यं त्रिषु लोकेषु सीता पावनमर्हति ।
दीर्घकालोषिता चेयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥₁₁॥

बालिशः खलु कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।
इति वक्ष्यन्ति मां सन्तो जानकीमविशोध्य हि ॥₁₂॥

अनन्यहृदयां भक्तां मच्चित्तपरिरक्षणीम् ।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥₁₃॥

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥₁₄॥

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥₁₅॥

न हि शक्तः स दुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् ।
प्रधर्षयितुमप्राप्तां दीप्तामग्निशिखामिव ॥₁₆॥

नेयमर्हति चैश्वर्यं रावणान्तःपुरे शुभा ।
अनन्या हि मया सीतां भास्करेण प्रभा यथा ॥₁₇॥

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न हि हातुमियं शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥₁₈॥

अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम् ।
स्निग्धानां लोकमान्यानामेवं च ब्रुवतां हितम् ॥₁₉॥

इतीदमुक्त्वा वचनं महाबलैः
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामः प्रियया महाबलः
सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षष्ठाधिकशततमः सर्गः॥

॥सप्तमाधिकशततमः सर्गः॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं राघवेण सुभाषितम् ।
इदं शुभतरं वाक्यं व्याजहार महेश्वरः ॥₁॥

पुष्कराक्ष महाबाहो महावक्षः परन्तप ।
दिष्ट्या कृतमिदं कर्म त्वया शस्त्रभृतां वर ॥₂॥

दिष्ट्या सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः ।
अपावृत्तं त्वया सङ्क्षो राम रावणजं भयम् ॥₃॥

आश्वास्य भरतं दीनं कौसल्यां च यशस्विनीम् ।
कैकेयीं च सुमित्रां च दृष्ट्वा लक्ष्मणमातरम् ॥₄॥

प्राप्य राज्यमयोध्यायां नन्दयित्वा सुहृञ्जनम् ।
इक्ष्वाकूणां कुले वंशं स्थापयित्वा महाबल ॥₅॥

इष्ट्वा तुरगमेधेन प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा त्रिदिवं गन्तुमर्हसि ॥₆॥

एष राजा विमानस्थः पिता दशरथस्तव ।
काकुत्स्थ मानुषे लोके गुरुस्तव महायशः ॥₇॥

इन्द्रलोकं गतः श्रीमांस्त्वया पुत्रेण तारितः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥₈॥

महादेववचः श्रुत्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत्पितुः ॥₉॥

दीप्यमानं स्वयां लक्ष्म्या विरजोऽम्बरधारिणम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं प्रभुः ॥₁₀॥

हर्षेण महताविष्टो विमानस्थो महीपतिः ।
प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा पुत्रं दशरथस्तदा ॥₁₁॥

आरोप्याङ्कं महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे ॥₁₂॥

न मे स्वर्गो बहुमतः सम्मानश्च सुरर्षिभिः ।
त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥₁₃॥

कैकेय्या यानि चोक्तानि वाक्यानि वदतां वर ।
तव प्रव्राजनार्थानि स्थितानि हृदये मम ॥₁₄॥

त्वां तु दृष्ट्वा कुशलिनं परिष्वज्य सलक्ष्मणम् ।
अद्य दुःखाद्विमुक्तोऽस्मि नीहारादिव भास्करः ॥₁₅॥

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ।
अष्टावक्रेण धर्मात्मा तारितो ब्राह्मणो यथा ॥₁₆॥

इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
वधार्थं रावणस्येह विहितं पुरुषोत्तमम् ॥₁₇॥

सिद्धार्था खलु कौसल्या या त्वां राम गृहं गतम् ।
वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यते शत्रुसूदन ॥₁₈॥

सिद्धार्थाः खलु ते राम नरा ये त्वां पुरीं गतम् ।
जलार्द्रमभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ति वसुधाधिपम् ॥₁₉॥

अनुरक्तेन बलिना शुचिना धर्मचारिणा ।
इच्छेयं त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥₂₀॥

चतुर्दशसमाः सौम्य वने निर्यापितास्त्वया ।

वसता सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च धीमता ॥²¹॥

निवृत्तवनवासोऽसि प्रतिज्ञा सफला कृता ।
रावणं च रणे हत्वा देवास्ते परितोषिताः ॥²²॥

कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन ।
भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥²³॥

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥²⁴॥

सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया ।
स शापः कैकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो ॥²⁵॥

स तथेति महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम् ।
लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥²⁶॥

रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ।
कृता मम महाप्रीतिः प्राप्तं धर्मफलं च ते ॥²⁷॥

धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि ।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथैव च ॥²⁸॥

रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन ।
रामः सर्वस्य लोकस्य शुभेष्वभिरतः सदा ॥²⁹॥

एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अभिगम्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥³⁰॥

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मनिर्मितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परन्तपः ॥³¹॥

अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।

रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ॥₃₂॥

स तथोक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं प्राञ्जलिं स्थितम् ।
उवाच राजा धर्मात्मा वैदेहीं वचनं शुभम् ॥₃₃॥

कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति ।
रामेण त्वद्विशुद्ध्यर्थं कृतमेतद्वितैषिणा ॥₃₄॥

न त्वं सुभ्रु समाधेया पतिशुश्रूषणं प्रति ।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥₃₅॥

इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां तथा स्नुषाम् ।
इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो ज्वलन् ॥₃₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तमाधिकशततमः सर्गः॥

॥अष्टमाधिकशततमः सर्गः॥

प्रतिप्रयाते काकुत्स्थे महेन्द्रः पाकशासनः ।
अब्रवीत्परमप्रीतो राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥₁॥

अमोघं दर्शनं राम तवास्माकं परन्तप ।
प्रीतियुक्तोऽस्मि तेन त्वं ब्रूहि यन्मनसेच्छसि ॥₂॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया चापि भार्यया ॥₃॥

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि सर्वसुरेश्वर ।
वक्ष्यामि कुरु मे सत्यं वचनं वदतां वर ॥₄॥

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम् ।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥₅॥

मत्प्रियेष्वभिरक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति च ।
त्वत्प्रसादात्समेयुस्ते वरमेतदहं वृणे ॥₆॥

नीरुजान्निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान् ।
गोलाङ्गूलांस्तथैवर्क्षान्द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥₇॥

अकाले चापि मुख्यानि मूलानि च फलानि च ।
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥₈॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य राघवस्य महात्मनः ।
महेन्द्रः प्रत्युवाचेदं वचनं प्रीतिलक्षणम् ॥₉॥

महानयं वरस्तात त्वयोक्तो रघुनन्दन ।

समुत्थास्यन्ति हरयः सुप्ता निद्राक्षये यथा ॥₁₀॥

सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव ज्ञातिभिः स्वजनेन च ।
सर्व एव समेष्यन्ति संयुक्ताः परया मुदा ॥₁₁॥

अकाले पुष्पशबलाः फलवन्तश्च पादपाः ।
भविष्यन्ति महेष्वास नद्यश्च सलिलायुताः ॥₁₂॥

सव्रणैः प्रथमं गात्रैः संवृतैर्निव्रणैः पुनः ।
बभूवुर्वानराः सर्वे किमेतदिति विस्मितः ॥₁₃॥

काकुत्स्थं परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ।
ऊचुस्ते प्रथमं स्तुत्वा स्तवार्हं सहलक्ष्मणम् ॥₁₄॥

गच्छायोध्यामितो वीर विसर्जय च वानरान् ।
मैथिलीं सान्त्वयस्त्वेनामनुरक्तां तपस्विनीम् ॥₁₅॥

भ्रातरं पश्य भरतं त्वच्छ्लोकाद्व्रतचारिणम् ।
अभिषेचय चात्मानं पौरान्गत्वा प्रहर्षय ॥₁₆॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्य रामं सौमित्रिणा सह ।
विमानैः सूर्यसङ्काशैर्हृष्टा जग्मुः सुरा दिवम् ॥₁₇॥

अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वास्तांस्त्रिदशोत्तमान् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत्तदा ॥₁₈॥

ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता
महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी ।
श्रिया ज्वलन्ती विरराज सर्वतो
निशाप्रणीतेव हि शीतरश्मिना ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टमाधिकशततमः सर्गः॥

॥नवमाधिकशततमः सर्गः॥

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोत्थितमरिन्दमम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥₁॥

स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि माल्यानि विविधानि च ॥₂॥

अलङ्कारविदश्चेमा नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ।
उपस्थितास्त्वां विधिवत्स्नापयिष्यन्ति राघव ॥₃॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
हरीन्सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥₄॥

स तु ताम्यति धर्मात्मा ममहेतोः सुखोचितः ।
सुकुमारो महाबाहुः कुमारः सत्यसंश्रवः ॥₅॥

तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥₆॥

इत एव पथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
अयोध्यामायतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥₇॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥₈॥

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम् ।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेनाहृतं बलात् ॥₉॥

तदिदं मेघसङ्काशं विमानमिह तिष्ठति ।

तेन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गजज्वरः ॥₁₀॥

अहं ते यदनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥₁₁॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ।
अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि ॥₁₂॥

प्रीतियुक्तस्तु मे राम ससैन्यः ससुहृद्गणः ।
सत्क्रियां विहितां तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥₁₃॥

प्रणयाद्बहुमानाच्च सौहृदेन च राघव ।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खत्वाज्ञापयामि ते ॥₁₄॥

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषां चोपशृण्वताम् ॥₁₅॥

पूजितोऽहं त्वया वीर साचिव्येन परन्तप ।
सर्वात्मना च चेष्टिभिः सौहृदेनोत्तमेन च ॥₁₆॥

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर ।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥₁₇॥

मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥₁₈॥

कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
गुरूंश्च सुहृदश्चैव पौरांश्च तनयैः सह ॥₁₉॥

उपस्थापय मे क्षिप्रं विमानं राक्षसेश्वर ।
कृतकार्यस्य मे वासः कथञ्चिदिह सम्मतः ॥₂₀॥

अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।

मन्युर्न खलु कर्तव्यस्वरितस्त्वानुमानये ॥₂₁॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यमणिवेदिकम् ।
कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥₂₂॥

पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृतम् ।
शोभितं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हमपद्मविभूषितम् ॥₂₃॥

प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षितम् ।
घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥₂₄॥

तन्मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
बहुभिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतसंनिभौ ॥₂₅॥

तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥₂₆॥

उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे नवमाधिकशततमः सर्गः॥

॥दशमाधिकशततमः सर्गः॥

उपस्थितं तु तं दृष्ट्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
अविदूरे स्थितं रामं प्रत्युवाच विभीषणः ॥₁॥

स तु बद्धाञ्जलिः प्रह्वो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
अब्रवीच्चरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥₂॥

तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥₃॥

कृतप्रयत्नकर्माणो विभीषण वनौकसः ।
रत्नैरर्थैश्च विविभैर्भूषणैश्चाभिपूजय ॥₄॥

सहैभिरदिता लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥₅॥

एवं सम्मानिताश्चेमे मानार्हा मानद ब्रया ।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः ॥₆॥

त्यागिनं सङ्गृहीतारं सानुक्रोशं यशस्विनम् ।
यतस्त्वामवगच्छन्ति ततः सम्बोधयामि ते ॥₇॥

एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान्विभीषणः ।
रत्नार्थैः संविभागेन सर्वानेवान्वपूजयत् ॥₈॥

ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रत्नैरर्थैश्च यूथपान् ।
आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥₉॥

अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥₁₀॥

अब्रवीच्च विमानस्थः काकुत्स्थः सर्ववानरान् ।
सुग्रीवं च महावीर्यं राक्षसं च विभीषणम् ॥₁₁॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्विर्वानरोत्तमाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥₁₂॥

यत्तु कार्यं वयस्येन सुहृदा वा परन्तप ।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवता धर्मभीरुणा ।
किष्किन्धां प्रतियाह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥₁₃॥

स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥₁₄॥

अयोध्यां प्रतियास्यामि राजधानीं पितुर्मम ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः ॥₁₅॥

एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो रामं राक्षसश्च विभीषणः ।
अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् ॥₁₆॥

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च ।
अचिरेणागमिष्यामः स्वान्गृहान्नृपतेः सुत ॥₁₇॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः ।
अब्रवीद्राघवः श्रीमान्ससुग्रीवविभीषणान् ॥₁₈॥

प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृञ्जनः ।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥₁₉॥

क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं वानरैः सह ।
त्वमध्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्रविभीषण ॥₂₀॥

ततस्तत्पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया ।
अध्यारोहत्तरञ्शीघ्रं सामात्यश्च विभीषणः ॥₂₁॥

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥₂₂॥

ययौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे दशमाधिकशततमः सर्गः॥

॥एकादशाधिकशततमः सर्गः॥

अनुज्ञातं तु रामेण तद्विमानमनुत्तमम् ।
उत्पपात महामेघः श्वसनेनोद्धतो यथा ॥₁॥

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥₂॥

कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥₃॥

एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् ।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥₄॥

तवहेतोर्विशालाक्षि रावणो निहतो मया ।
कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ॥₅॥

लक्ष्मणेनेन्द्रजिघात्र रावणिर्निहतो रणे ।
विरूपाक्षश्च दुष्प्रेक्ष्यो महापार्श्वमहोदरौ ॥₆॥

अकम्पनश्च निहतो बलिनोऽन्ये च राक्षसाः ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥₇॥

अत्र मन्दोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत् ।
सपत्नीनां सहस्रेण सास्रेण परिवारिता ॥₈॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥₉॥

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलार्णवे ।

तवहेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥₁₀॥

पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् ।
अपारमभिगर्जन्तं शङ्खशुक्तिनिषेवितम् ॥₁₁॥

हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि ।
विश्रमार्थं हनुमतो भिक्षा सागरमुत्थितम् ॥₁₂॥

अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः ॥₁₃॥

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः ॥₁₄॥

दृश्यतेऽसौ महान्सीते सविद्युदिव तोयदः ।
ऋष्यमूको गिरिश्रेष्ठः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ॥₁₅॥

अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः ।
समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ॥₁₆॥

एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ।
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ॥₁₇॥

अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ।
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥₁₈॥

दृश्यतेऽसौ जनस्थाने सीते श्रीमान्वनस्पतिः ।
यत्र युद्धं महद्भूतं तवहेतोर्विलासिनि ।
रावणस्य नृशंसस्य जटायोश्च महात्मनः ॥₁₉॥

खरश्च निहतश्सङ्ख्यो दूषणश्च निपातितः ।
त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्वगैः ॥₂₀॥

पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शना ।
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हता बलात् ॥₂₁॥

एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शिवा ।
अगस्त्यस्याश्रमो ह्येष दृश्यते पश्य मैथिलि ॥²²॥

वैदेहि दृश्यते चात्र शरभङ्गाश्रमो महान् ।
उपयातः सहस्राक्षो यत्र शक्रः पुरन्दरः ॥²³॥

एते ते तापसावासा दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥²⁴॥

अस्मिन्देशे महाकायो विराधो निहतो मया ॥²⁵॥

असौ सुतनुशैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ।
यत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥²⁶॥

एषा सा यमुना दूरादृश्यते चित्रकानना ।
भरद्वाजाश्रमो यत्र श्रीमानेष प्रकाशते ॥²⁷॥

एषा त्रिपथगा गङ्गा दृश्यते वरवर्णिनि ।
शृङ्गवेरपुरं चैतद्ब्रुहो यत्र समागतः ॥²⁸॥

एषा सा दृश्यतेऽयोध्या राजधानी पितुर्मम ।
अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ॥²⁹॥

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ।
उत्पत्योत्पत्य ददृशुस्तां पुरीं शुभदर्शनाम् ॥³⁰॥

ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीम्
विशालकक्ष्यां गजवाजिसङ्कुलाम् ।
पुरीमयोध्यां ददृशुः प्लवङ्गमाः
पुरीं महेन्द्रस्य यथामरावतीम् ॥³¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे एकादशाधिकशततमः सर्गः॥

॥द्वादशाधिकशततमः सर्गः॥

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चभ्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥₁॥

सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् ।
शृणोषि कचिद्भगवन्सुभिक्षानामयं पुरे ।
कच्चिच्च युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः ॥₂॥

एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत् ॥₃॥

पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्र्वां प्रतीक्षते ।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥₄॥

त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम् ।
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम् ॥₅॥

पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितुर्वचनकारिणम् ।
स्वर्गभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥₆॥

दृष्ट्वा तु करुणा पूर्वं ममासीत्समितिजय ।
कैकेयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशनम् ॥₇॥

साम्प्रतं सुसमृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम् ।
समीक्ष्य विजितारिं त्वां मम प्रीतिरनुत्तमा ॥₈॥

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव ।
यत्तया विपुलं प्राप्तं जनस्थानवधादिकम् ॥₉॥

ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षतः सर्वतापसान् ।
मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च ॥₁₀॥

कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ।
सुग्रीवेण च ते सख्यं यच्च वाली हतस्त्वया ॥₁₁॥

मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ।
विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः ।
यथा च दीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ॥₁₂॥

सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सह वाहनः ।
यथा च निहतः सङ्क्षो रावणो देवकण्टकः ॥₁₃॥

समागमश्च त्रिदशैर्यथादत्तश्च ते वरः ।
सर्वं ममेतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल ॥₁₄॥

अहमप्यत्र ते दद्वि वरं शस्त्रभृतां वर ।
अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ॥₁₅॥

तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः ।
बाढमित्येव संहृष्टः श्रीमान्वरमयाचत ॥₁₆॥

अकालफलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः ।
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः ॥₁₇॥

निष्फलाः फलिनश्चासन्विपुष्पाः पुष्पशालिनः ।
शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वात्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे द्वादशाधिकशततमः सर्गः॥

॥त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः॥

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ।
चिन्तयित्वा ततो दृष्टिं वानरेषु न्यपातयत् ॥₁॥

प्रियकामः प्रियं रामस्ततस्त्वरितविक्रमम् ।
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥₂॥

अयोध्यां त्वरितो गच्छ क्षिप्रं त्वं प्लवगोत्तम ।
जानीहि कश्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥₃॥

शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् ।
निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम ॥₄॥

श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम् ।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥₅॥

अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च ।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥₆॥

भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम ।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥₇॥

हरणं चापि वैदेह्या रावणेन बलीयसा ।
सुग्रीवेण च संवादं वालिनश्च वधं रणे ॥₈॥

मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा चाधिगता त्वया ।
लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम् ॥₉॥

उपयानं समुद्रस्य सागरस्य च दर्शनम् ।

यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः ॥₁₀॥

वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च ।
महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ॥₁₁॥

जित्वा शत्रुगणान्नामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलः ॥₁₂॥

एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः ।
स च ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यद्यापि मां प्रति ॥₁₃॥

ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च ।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्वा व्याभाषणेन च ॥₁₄॥

सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥₁₅॥

सङ्गत्या भरतः श्रीमान्नाज्येनार्थी स्वयं भवेत् ।
प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः ॥₁₆॥

तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ।
यावन्न दूरं याताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥₁₇॥

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः ।
मानुषं धारयन्नूपमयोध्यां त्वरितो ययौ ॥₁₈॥

लङ्घयित्वा पितृपथं भुजगेन्द्रालयं शुभम् ।
गङ्गायमुनयोर्भीमं संनिपातमतीत्य च ॥₁₉॥

शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुह्यमासाद्य वीर्यवान् ।
स वाचा शुभया हृष्टो हनूमानिदमब्रवीत् ॥₂₀॥

सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः ।

ससीतः सह सौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥₂₁॥

पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः ।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यदैव राघवम् ॥₂₂॥

एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
उत्पपात महावेगो वेगवानविचारयन् ॥₂₃॥

सोऽपश्यद्रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा ।
गोमतीं तां च सोऽपश्यद्भीमं सालवनं तथा ॥₂₄॥

स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ।
आससाद द्रुमान्फुल्लान्निदिग्रामसमीपजान् ॥₂₅॥

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥₂₆॥

जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्षितम् ।
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ॥₂₇॥

समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥₂₈॥

पादुके ते पुरस्कृत्य शासन्तं वै वसुन्धराम् ।
चतुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥₂₉॥

उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥₃₀॥

न हि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
परिमोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ॥₃₁॥

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देववन्तमिवापरम् ।

उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः ॥₃₂॥

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वा कुशलमब्रवीत् ॥₃₃॥

प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यक्ष्यसि दारुणम् ।
अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥₃₄॥

निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥₃₅॥

लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥₃₆॥

एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः ।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहं जगाम ह ॥₃₇॥

ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।
हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥₃₈॥

अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य सम्भ्रमात् ।
सिषेच भरतः श्रीमान्विपुलैरश्रुबिन्दुभिः ॥₃₉॥

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥₄₀॥

गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् ।
सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्याश्च षोडश ॥₄₁॥

हेमवर्णाः सुनासोरूः शशिसौम्याननाः स्त्रियः ।
सर्वाभरणसम्पन्ना सम्पन्नाः कुलजातिभिः ॥₄₂॥

निशम्य रामागमनं नृपात्मजः

कपिप्रवीरस्य तदाद्भुतोपमम् ।
प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभवत्
पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद्वचः ॥₄₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः॥

॥चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः॥

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥₁॥

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥₂॥

राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः ।
कस्मिन्देशे किमाश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥₃॥

स पृष्टो राजपुत्रेण बृहत्यां समुपवेशितः ।
आचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने ॥₄॥

यथा प्रव्रजितो रामो मातुर्दत्ते वरे तव ।
यथा च पुत्रशोकेन राजा दशरथो मृतः ॥₅॥

यथा दूतैस्त्वमानीतस्तूर्णं राजगृहात्प्रभो ।
त्वयायोध्यां प्रविष्टेन यथा राज्यं न चेप्सितम् ॥₆॥

चित्रकूटं गिरिं गत्वा राज्येनामित्रकर्शनः ।
निमन्त्रितस्त्वया भ्राता धर्ममाचरिता सताम् ॥₇॥

स्थितेन राज्ञो वचने यथा राज्यं विसर्जितम् ।
आर्यस्य पादुके गृह्य यथासि पुनरागतः ॥₈॥

सर्वमेतन्महाबाहो यथावद्विदितं तव ।
त्वयि प्रतिप्रयाते तु यद्वृत्तं तन्निबोध मे ॥₉॥

अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम् ।

प्रविवेशाथ विजनं सुमहद्वण्डकावनम् ॥₁₀॥

तेषां पुरस्ताद्वलवान्गच्छतां गहने वने ।
विनदन्सुमहानादं विराधः प्रत्यदृश्यत ॥₁₁॥

तमुत्क्षिप्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम् ।
निखाते प्रक्षिपन्ति स्म नदन्तमिव कुञ्जरम् ॥₁₂॥

तत्कृत्वा दुष्करं कर्म भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सायाह्ने शरभङ्गस्य रम्यमाश्रममीयतुः ॥₁₃॥

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः ।
अभिवाद्य मुनीन्सर्वाञ्जनस्थानमुपागमत् ॥₁₄॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ॥₁₅॥

ततः पश्चाच्छूर्पणखा रामपार्श्वमुपागता ।
ततो रामेण सन्दिष्टो लक्ष्मणः सहस्रोत्थितः ॥₁₆॥

प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः ।
ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता ॥₁₇॥

रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः ।
लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः ॥₁₈॥

सा राममब्रवीदृष्ट्वा वैदेही गृह्यतामिति ।
अहो मनोहरः कान्त आश्रमे नो भविष्यति ॥₁₉॥

ततो रामो धनुष्पाणिर्धावन्तमनुधावति ।
स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा ॥₂₀॥

अथ सौम्या दशग्रीवो मृगं याते तु राघवे ।

लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा ।
जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव ॥²¹॥

त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ।
प्रगृह्य सीतां सहसा जगामाशु स रावणः ॥²²॥

ततस्त्वद्भुतसङ्काशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ।
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः ।
ददृशुर्विस्मितास्तत्र रावणं राक्षसाधिपम् ॥²³॥

प्रविवेर्षं तदा लङ्कां रावणो लोकरावणः ॥²⁴॥

तां सुवर्णपरिक्रान्ते शुभे महति वेष्मनि ।
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ॥²⁵॥

निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा गृध्रं प्रविव्यथे ॥²⁶॥

गृध्रं हतं तदा दग्ध्वा रामः प्रियसखं पितुः ।
गोदावरीमनुचरन्वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ।
आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ॥²⁷॥

ततः कबन्धवचनाद्रामः सत्यपराक्रमः ।
ऋश्यमूकं गिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ॥²⁸॥

तयोः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ।
इतरेतर संवादात्प्रगाढः प्रणयस्तयोः ॥²⁹॥

रामः स्वबाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ।
वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ॥³⁰॥

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ।
रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्यास्तु मार्गणम् ॥³¹॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ।
दशकोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ॥³²॥

तेषां नो विप्रनष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकाभितप्तानां महान्कालोऽत्यवर्तत ॥₃₃॥

भ्राता तु गृध्रराजस्य सम्पातिर्नाम वीर्यवान् ।
समाख्याति स्म वसतिं सीताया रावणालये ॥₃₄॥

सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः ॥₃₅॥

तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ।
कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम् ॥₃₆॥

तया समेत्य विधिवत्पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥₃₇॥

मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान्स महामणिः ॥₃₈॥

श्रुत्वा तां मैथिलीं हृष्टस्त्वाशशंसे स जीवितम् ।
जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः ॥₃₉॥

उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे लङ्कावधे मनः ।
जिघांसुरिव लोकांस्ते सर्वाल्लोकान्विभावसुः ॥₄₀॥

ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत् ।
अतरत्कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥₄₁॥

प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः ।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥₄₂॥

स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च ।
सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराल्लेभे परन्तपः ॥₄₃॥

स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतः ।
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥₄₄॥

तं गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥₄₅॥

ततः स सत्यं हनुमद्वचो महत्
निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः ।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणी
चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥₄₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः॥

॥पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः॥

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः ।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥₁॥

दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च ।
सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥₂॥

राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनागणाङ्गनाः ।
अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् ॥₃॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ।
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास वीर्यवान् ॥₄॥

समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च ।
स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम् ॥₅॥

सिध्न्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा ।
ततोऽभ्यवकिरंस्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः ॥₆॥

समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे ।
शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति ॥₇॥

स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुगन्धैः पञ्चवर्णकैः ।
राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशो नराः ॥₈॥

मत्तैर्नागसहस्रैश्च शातकुम्भविभूषितः ।
अपरे हेमकक्ष्याभिः सगज्याभिः करेणुभिः ।
निर्ययुस्त्वरया युक्ता रथैश्च सुमहारथाः ॥₉॥

ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः ॥₁₀॥

अश्वानां खुरशब्देन रथनेमिस्त्वेन च ।
शङ्खदुन्दुभिनादेन सञ्चचालेव मेदिनी ॥₁₁॥

कृत्स्नं च नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत् ।
द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ॥₁₂॥

माल्यमोदक हस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ।
शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिवन्दितः ॥₁₃॥

आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ।
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ॥₁₄॥

शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ।
उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥₁₅॥

भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः ।
प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैः सह ॥₁₆॥

समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ।
कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता ।
न हि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परन्तपम् ॥₁₇॥

अथैवमुक्ते वचने हनूमानिदमब्रवीत् ।
अर्थं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम् ॥₁₈॥

सदा फलान्कुसुमितान्वृक्षान्प्राप्य मधुस्रवान् ।
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् ॥₁₉॥

तस्य चैष वरो दत्तो वासवेन परन्तप ।
ससैन्यस्य तदातिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम् ॥₂₀॥

निस्त्रनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ।
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् ॥₂₁॥

रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य वालुकिनीं प्रति ।
मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवङ्गमाः ॥₂₂॥

तदेतद्दृश्यते दूराद्विमलं चन्द्रसंनिभम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ॥₂₃॥

रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना ।
धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतन्मनोजवम् ॥₂₄॥

एतस्मिन्नातरो वीरौ वैदेह्या सह राघवौ ।
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥₂₅॥

ततो हर्षसमुद्भूतो निस्त्रनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तितः ॥₂₆॥

रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः ।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥₂₇॥

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ।
स्वागतेन यथार्थेन ततो राममपूजयत् ॥₂₈॥

मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने लक्ष्मणाग्रजः ।
रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवापरः ॥₂₉॥

ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥₃₀॥

आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥₃₁॥

तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्गे भरतमारोप्य मुदितः परिष्वजे ॥₃₂॥

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः ।
अभ्यवादयत प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥₃₃॥

सुग्रीवं कैकयी पुत्रो जाम्बवन्तं तथाङ्गदम् ।
मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥₃₄॥

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ।
कुशलं पर्यपृष्ट्वन्त प्रहृष्टा भरतं तदा ॥₃₅॥

विभीषणं च भरतः सान्त्वयन्वाक्यमब्रवीत् ।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥₃₆॥

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ।
सीतायाश्चरणौ पश्चाद्वन्दे विनयान्वितः ॥₃₇॥

रामो मातरमासाद्य विषण्णं शोककर्षिताम् ।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन् ॥₃₈॥

अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
स मातृश्च तदा सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥₃₉॥

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥₄₀॥

तन्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः ।
आकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः ॥₄₁॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥₄₂॥

अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ।
एतत्ते रक्षितं राजन्नाज्यं निर्यातितं मया ॥⁴³॥

अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ।
यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥⁴⁴॥

अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं पुरं बलम् ।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥⁴⁵॥

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥⁴⁶॥

ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्गमारोप्य राघवः ।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥⁴⁷॥

भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥⁴⁸॥

अब्रवीच्च तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ।
वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ॥⁴⁹॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम् ॥⁵⁰॥

पुरोहितस्यात्मसमस्य राघवो
बृहस्पतेः शक्र इवामराधीअप् ।
निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे
सहैव तेनोपविवेश वीर्यवान् ॥⁵¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः॥

॥षोडशाधिकशततमः सर्गः॥

शिरस्यञ्जलिमादाय कैकेयीनन्दिवर्धनः ।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥₁॥

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्दामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥₂॥

धुरमेकाकिना न्यस्तामृषभेण बलीयसा ।
किशोरवद्गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥₃॥

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन् ।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥₄॥

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः ।
नान्वेतुमुत्सहे देव तव मार्गमरिन्दम ॥₅॥

यथा च रोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने ।
महांश्च सुदुरारोहो महास्कन्धः प्रशाखवान् ॥₆॥

शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयेत् ।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोप्यते ॥₇॥

एषोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्तुमर्हसि ।
यद्यस्मान्मनुजेन्द्र त्वं भक्तान्भृत्यान् शधि हि ॥₈॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु सर्वतः ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥₉॥

तूर्यसङ्घातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिस्वनैः ।

मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व शेष्व च ॥₁₀॥

यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।
तावच्चमिह सर्वस्य स्वामिब्रमभिवर्तय ॥₁₁॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरंजयः ।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥₁₂॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धकाः ।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्युपासत ॥₁₃॥

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥₁₄॥

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥₁₅॥

प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् ।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥₁₆॥

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्त्रिन्यो मनोहरम् ॥₁₇॥

ततो राघवपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् ।
चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥₁₈॥

ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः ।
योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥₁₉॥

अर्कमण्डलसङ्काशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम् ।
आरुरोह महाबाहू रामः सत्यपराक्रमः ॥₂₀॥

अयोध्यायां तु सचिवा राज्ञो दशरथस्य ये ।

पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥₂₁॥

मन्त्रयन्नामवृद्धार्थं वृत्त्यर्थं नगरस्य च ।
सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः ।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥₂₂॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वे सन्दिश्य तु पुरोहितम् ।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥₂₃॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः ।
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥₂₄॥

जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि सम्पर्यवीजयत् ॥₂₅॥

श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥₂₆॥

ऋषिसङ्घैर्तदाकाशे देवैश्च समरुद्रणैः ।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥₂₇॥

ततः शत्रुंजयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
आरुरोह महातेजाः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥₂₈॥

नवनागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥₂₉॥

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निस्त्रिनैः ।
प्रययू पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥₃₀॥

ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥₃₁॥

ते वर्धयिष्या काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥³²॥

अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥³³॥

स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि ययौ वृतः ॥³⁴॥

अक्षतं जातरूपं च गावः कन्यास्तथा द्विजाः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥³⁵॥

सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत्कर्म व्याचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ।
श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ॥³⁶॥

द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंवृतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश ह ॥³⁷॥

ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराः पताकास्ते गृहे गृहे ।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥³⁸॥

पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं चाभ्यवादयत् ॥³⁹॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम् ।
अथोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥⁴⁰॥

यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत् ।
मुक्तावैदूर्यसङ्कीर्णं सुग्रीवस्य निवेदय ॥⁴¹॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ।
पाणौ गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥⁴²॥

ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च ।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥⁴³॥

उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ।
अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥⁴⁴॥

सौवर्णान्वानरेन्द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान् ।
ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥⁴⁵॥

यथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम् ।
पूर्णेर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः ॥⁴⁶॥

एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः ।
उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडा इव शीघ्रगाः ॥⁴⁷॥

जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन् ।
नदीशतानां पञ्चानां जले कुम्भैरुपाहरन् ॥⁴⁸॥

पूर्वात्समुद्रात्कलशं जलपूर्णमथानयत् ।
सुषेणः सत्त्वसम्पन्नः सर्वरत्नविभूषितम् ॥⁴⁹॥

ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राञ्जलमाहरत् ॥⁵⁰॥

रक्तचन्दनकपूरैः संवृतं काञ्चनं घटम् ।
गवयः पश्चिमात्तोयमाजहार महार्णवात् ॥⁵¹॥

रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रमः ।
उत्तराच्च जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः ॥⁵²॥

अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह ।
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥⁵³॥

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ।

रामं रत्नमयो पीठे सहसीतं न्यवेशयत् ॥⁵⁴॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा ॥⁵⁵॥

अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥⁵⁶॥

ऋत्विग्निर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा ।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टाः सनैगमैः ॥⁵⁷॥

सर्वोषधिरसैश्चापि दैवतैर्नभसि स्थितैः ।
चतुर्हिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च सङ्गतैः ॥⁵⁸॥

छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥⁵⁹॥

मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ।
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः ॥⁶⁰॥

सर्वरत्नसमायुक्तं मणिरत्नविभूषितम् ।
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः ॥⁶¹॥

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणाः ।
अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ॥⁶²॥

भूमिः सस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवुः राघवोत्सवे ॥⁶³॥

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ।
ददौ शतं वृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ॥⁶⁴॥

त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ।
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ॥ 65 ॥

अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ।
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजर्षभः ॥ 66 ॥

वैदूर्यमणिचित्रे च वज्ररत्नविभूषिते ।
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ ॥ 67 ॥

मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम् ।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥ 68 ॥

अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ।
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे ॥ 69 ॥

अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ।
अवेक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥ 70 ॥

तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि ॥ 71 ॥

पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ।
ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ 72 ॥

हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥ 73 ॥

ततो द्विविद मैन्दाभ्यां नीलाय च परन्तपः ।
सर्वान्कामगुणान्वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥ 74 ॥

सर्ववानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरेश्वराः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥ 75 ॥

यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैर् ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥ 76 ॥

राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ।
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ 77 ॥

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमाम्
गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या
तां यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ 78 ॥

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो
यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये
ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥ 79 ॥

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृद्भ्रातृबान्धवः ॥ 80 ॥

पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत्पार्थिवर्षभः ॥ 81 ॥

राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ।
शताश्वमेधानाजहे सदृश्वान्भूरिदक्षिणान् ॥ 82 ॥

आजानुलम्बिबाहुश्च महास्कन्धः प्रतापवान् ।
लक्ष्मणानुचरो रामः पृथिवीमन्वपालयत् ॥ 83 ॥

न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं वापि रामे राज्यं प्रशासति ॥ 84 ॥

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थः कश्चिदस्पृशत् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ 85 ॥

सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥₈₆॥

आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥₈₇॥

नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः ।
कालवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥₈₈॥

स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ।
आसन्न्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ॥₈₉॥

सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ।
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥₉₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षोडशाधिकशततमः सर्गः॥

Chapter 7

॥उत्तरकाण्डः॥

॥प्रथमः सर्गः॥

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते ।
आजग्मुर्ऋषयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम् ॥₁॥

कौशिकोऽथ यवक्रीतो रैभ्यश्च वन एव च ।
कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः ॥₂॥

स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान्नमुचिः प्रमुचुस्तथा ।
आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये श्रिता दक्षिणां दिशम् ॥₃॥

पृषद्गुः कवषो धौम्यो रौद्रेयश्च महानृपिः ।
तेऽप्याजग्मुः सशिष्या वै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम् ॥₄॥

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि सप्तमहर्षयः ॥₅॥

सम्प्राप्येते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ।
विष्टिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥₆॥

प्रतिहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनादथ ।
समीपं राघवस्याशु प्रविवेश महात्मनः ॥₇॥

स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्रसमद्युतिम् ।
अगस्त्यं कथयामास सम्प्रातमृषिभिः सह ॥₈॥

श्रुत्वा प्राप्तान्मुनींस्तांस्तु बालसूर्यसमप्रभान् ।
तदोवाच नृपो द्वाःस्थं प्रवेशय यथासुखम् ॥₉॥

दृष्ट्वा प्राप्तान्मुनींस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।

रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेश ह ॥₁₀॥

तेषु काञ्चनचित्रेषु स्वास्तीर्णेषु सुखेषु च ।
यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषिपुङ्गवाः ॥₁₁॥

रामेण कुशलं पृष्टाः सशिष्याः सपुरोगमाः ।
महर्षयो वेदविदो रामं वचनमब्रुवन् ॥₁₂॥

कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ।
त्वां तु दिष्ट्वा कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम् ॥₁₃॥

न हि भारः स ते राम रावणो राक्षसेश्वरः ।
सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन्विजयेथा न संशयः ॥₁₄॥

दिष्ट्वा त्वया हतो राम रावणः पुत्रपौत्रवान् ।
दिष्ट्वा विजयिनं त्वाद्य पश्यामः सह भार्यया ॥₁₅॥

दिष्ट्वा प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः ।
अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते निशाचराः ॥₁₆॥

यस्य प्रमाणाद्विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ।
दिष्ट्वा ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥₁₇॥

दिष्ट्वा त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्वयुद्धमुपागतः ।
देवतानामवध्येन विजयं प्राप्तवानसि ॥₁₈॥

सङ्क्षो तस्य न किञ्चित्तु रावणस्य पराभवः ।
द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्वा ते रावणिर्हतः ॥₁₉॥

दिष्ट्वा तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः ।
मुक्तः सुररिपोर्वीर प्राप्तश्च विजयस्त्वया ॥₂₀॥

विस्मयस्त्वेष नः सौम्य संश्रुत्येन्द्रजितं हतम् ।

अवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ॥₂₁॥

दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ।
दिष्ट्वा वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ॥₂₂॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामृषीणां भावितात्मनाम् ।
विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥₂₃॥

भवन्तः कुम्भकर्णं च रावणं च निशाचरम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यो किं प्रशंसथ रावणिम् ॥₂₄॥

महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यान्किं प्रशंसथ रावणिम् ॥₂₅॥

कीदृशो वै प्रभावोऽस्य किं बलं कः पराक्रमः ।
केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥₂₆॥

शक्यं यदि मया श्रोतुं न खत्वाज्ञापयामि वः ।
यदि गुह्यं न चेद्वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ।
कथं शक्रो जितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः॥

॥द्वितीयः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
कुम्भयोनिर्महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁॥

शृणु राजन्यथावृत्तं यस्य तेजोबलं महत् ।
जघान च रिपून्पुच्छे यथावध्यश्च शत्रुभिः ॥₂॥

अहं ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव ।
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ॥₃॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः ।
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ॥₄॥

नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा ।
प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥₅॥

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः ।
तृणबिन्दाश्रमं गत्वा न्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥₆॥

तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः ।
गत्वाश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः ॥₇॥

देवपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः ।
क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ॥₈॥

सर्वर्तुषूपभोग्यत्वाद्रम्यत्वात्काननस्य च ।
नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ॥₉॥

अथ रुष्टो महातेजा व्याजहार महामुनिः ।

या मे दर्शनमागच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति ॥₁₀॥

तास्तु सर्वाः प्रतिगताः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः ।
ब्रह्मशापभयाद्भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ॥₁₁॥

तृणबिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ।
गत्वाश्रमपदं तस्य विचचार सुनिर्भया ॥₁₂॥

तस्मिन्नेव तु काले स प्राजापत्यो महानृषिः ।
स्वाध्यायमकरोत्तत्र तपसा द्योतितप्रभः ॥₁₃॥

सा तु वेदध्वनिं श्रुत्वा दृष्ट्वा चैव तपोधनम् ।
अभवत्पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा ॥₁₄॥

दृष्ट्वा परमसंविग्ना सा तु तद्रूपमात्मनः ।
इदं मे किं न्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाग्रतः स्थिता ॥₁₅॥

तां तु दृष्ट्वा तथा भूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत् ।
किं त्वमेतत्त्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः ॥₁₆॥

सा तु कृत्वाञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम् ।
न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदृशम् ॥₁₇॥

किं तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः ।
पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ॥₁₈॥

न च पश्याम्यहं तत्र काश्चिदप्यागतां सखीम् ।
रूपस्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा चाहमिहागता ॥₁₉॥

तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः ।
ध्यानं विवेश तच्चापि अपश्यदृषिकर्मजम् ॥₂₀॥

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः ।

गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ॥₂₁॥

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ।
भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥₂₂॥

तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्य ते ।
शुश्रूषातत्परा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥₂₃॥

तं ब्रुवाणं तु तद्वाक्यं राजर्षि धार्मिकं तदा ।
जिघृक्षुरब्रवीत्कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥₂₄॥

दत्त्वा तु स गतो राजा स्वमाश्रमपदं तदा ।
सापि तत्रावसत्कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ।
प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₂₅॥

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते गुणानां सम्पदा भृशम् ।
तस्मात्ते विरमाम्यद्य पुत्रमात्मसमं गुणैः ।
उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ॥₂₆॥

यस्मात्तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाभ्यस्यतो मम ।
तस्मात्स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ॥₂₇॥

एवमुक्त्वा तु सा कन्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
अचिरेणैव कालेन सूता विश्रवसं सुतम् ॥₂₈॥

स तु लोकत्रये ख्यातः शौचधर्मसमन्वितः ।
पितेव तपसा युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः॥

॥तृतीयः सर्गः॥

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥₁॥

सत्यवाञ्शीलवान्दक्षः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।
सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥₂॥

ज्ञात्वा तस्य तु तद्धृतं भरद्वाजो महानृषिः ।
ददौ विश्रवसे भार्या स्वां सुतां देववर्णिनीम् ॥₃॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ।
मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ॥₄॥

स तस्यां वीर्यसम्पन्नमपत्यं परमाद्भुतम् ।
जनयामास धर्मात्मा सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युतम् ॥₅॥

तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः स बभूव पितामहः ।
नाम चास्याकरोत्प्रीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥₆॥

यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव ।
तस्माद्वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥₇॥

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
अवर्धत महातेजा हुताहुतिरिवानलः ॥₈॥

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ।
चरिष्ये नियतो धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥₉॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।

पूर्णे वर्षसहस्रे तु तं तं विधिमवर्तत ॥₁₀॥

जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ।
एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येव वर्षवत् ॥₁₁॥

अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ।
गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ॥₁₂॥

परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं हि मे मतः ॥₁₃॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ।
भगवँल्लोकपालत्वमिच्छेयं वित्तरक्षणम् ॥₁₄॥

ततोऽब्रवीद्वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ।
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत् ॥₁₅॥

अहं हि लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः ।
यमेन्द्रवरुणानां हि पदं यत्तव चेप्सितम् ॥₁₆॥

तत्कृतं गच्छ धर्मज्ञ धनेशत्वमवाप्नुहि ।
यमेन्द्रवरुणानां हि चतुर्थोऽद्य भविष्यसि ॥₁₇॥

एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम् ।
प्रतिगृहीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ॥₁₈॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम् ।
कृतकृत्या वयं तात दत्त्वा तव महावरम् ॥₁₉॥

गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभस्तलम् ।
धनेशः पितरं प्राह विनयात्प्रणतो वचः ॥₂₀॥

भगवँल्लब्धवानस्मि वरं कमलयोनितः ।

निवासं न तु मे देवो विदधे स प्रजापतिः ॥₂₁॥

तत्पश्य भगवन्कश्चिद्देशं वासाय नः प्रभो ।
न च पीडा भवेद्यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥₂₂॥

एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
वचनं प्राह धर्मज्ञ श्रूयतामिति धर्मवित् ॥₂₃॥

लङ्का नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ।
राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ॥₂₄॥

रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैदूर्यतोरणा ।
राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः ।
शून्या रक्षोगणैः सर्वे रसातलतलं गतैः ॥₂₅॥

स त्वं तत्र निवासाय रोचयस्व मतिं स्वकाम् ।
निर्दोषस्तत्र ते वासो न च बाधास्ति कस्यचित् ॥₂₆॥

एतच्छ्रुत्वा तु धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः ।
निवेशयामास तदा लङ्कां पर्वतमूर्धनि ॥₂₇॥

नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सदा ।
अचिरेणैककालेन सम्पूर्णा तस्य शासनात् ॥₂₈॥

अथ तत्रावसत्प्रीतो धर्मात्मा नैर्ऋताधिपः ।
समुद्रपरिधानायां लङ्कायां विश्रवात्मजः ॥₂₉॥

काले काले विनीतात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः ।
अभ्यगच्छत्सुसंहृष्टः पितरं मातरं च सः ॥₃₀॥

स देवगन्धर्वगणैरभिष्टुतः
तथैव सिद्धैः सह चारणैरपि ।
गभस्तिभिः सूर्य इवोजसा वृतः

पितुः समीपं प्रययौ श्रिया वृतः ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः॥

॥चतुर्थः सर्गः॥

श्रुत्वागस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः ।
पूर्वमासीत्तु लङ्कायां रक्षसामिति सम्भवः ॥₁॥

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम् ।
अगस्त्यं तं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥₂॥

भगवन्पूर्वमप्येषा लङ्कासीत्पिशिताशिनाम् ।
इतीदं भवतः श्रुत्वा विस्मयो जनितो मम ॥₃॥

पुलस्त्यवंशादुद्धृता राक्षसा इति नः श्रुतम् ।
इदानीमन्यतश्चापि सम्भवः कीर्तितस्त्वया ॥₄॥

रावणात्कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद्विकटादपि ।
रावणस्य च पुत्रेभ्यः किं नु ते बलवत्तराः ॥₅॥

क एषां पूर्वको ब्रह्मन्किंनामा किन्तपोबलः ।
अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः पुरा ॥₆॥

एतद्विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ।
कौतूहलं कृतं मह्यं नुद भानुर्यथा तमः ॥₇॥

राघवस्य तु तच्छ्रुत्वा संस्कारालङ्कृतं वचः ।
ईषद्विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥₈॥

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसम्भवः ।
तासां गोपायने सत्त्वानसृजत्पद्मसम्भवः ॥₉॥

ते सत्त्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः ।

किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥₁₀॥

प्रजापतिस्तु तान्याह सत्त्वानि प्रहसन्निव ।
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानदः ॥₁₁॥

रक्षाम इति तत्रान्यैर्यक्षामेति तथापरैः ।
भुङ्क्विताभुङ्क्वितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥₁₂॥

रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।
यक्षाम इति यैरुक्तं ते वै यक्षा भवन्तु वः ॥₁₃॥

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसर्षभौ ।
मधुकैटभसङ्काशौ बभूवतुररिन्दमौ ॥₁₄॥

प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र न दारान्सोऽभिकाङ्क्षति ।
हेतिर्दारक्रियार्थं तु यत्नं परमथाकरोत् ॥₁₅॥

स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम भयावहाम् ।
उदावहदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ॥₁₆॥

स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुङ्गवः ।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केश इति श्रुतम् ॥₁₇॥

विद्युत्केशो हेतिपुत्रः प्रदीप्ताग्निसमप्रभः ।
व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुजम् ॥₁₈॥

स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ।
ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥₁₉॥

सन्ध्यादुहितरं सोऽथ सन्ध्यातुल्यां प्रभावतः ।
वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुङ्गवः ॥₂₀॥

अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति सन्ध्यया ।

चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥₂₁॥

सन्ध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः ।
रमते स तया सार्धं पौलोम्या मघवानिव ॥₂₂॥

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा ।
विद्युत्केशाद्गर्भमाप घनराजिरिवार्षावात् ॥₂₃॥

ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम् ।
प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम् ॥₂₄॥

तमुत्सृज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशाद्रतार्थिनी ।
रेमे सा पतिना सार्धं विस्मृत्य सुतमात्मजम् ॥₂₅॥

तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरदर्कसमद्युतिः ।
पाणिमास्ये समाधाय रुरोद घनराडिव ॥₂₆॥

अथोपरिष्ठाद्गच्छन्वै वृषभस्थो हरः प्रभुः ।
अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् ॥₂₇॥

कारुण्यभावात्पार्वत्या भवस्त्रिपुरहा ततः ।
तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयः समम् ॥₂₈॥

अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षयोऽव्ययः ।
पुरमाकाशगं प्रादात्पार्वत्याः प्रियकाम्यया ॥₂₉॥

उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज ।
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।
सद्य एव वयःप्राप्तिर्मातुरेव वयः समम् ॥₃₀॥

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः
श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ।
चचार सर्वत्र महामतिः खगः

खगं पुरं प्राप्य पुरन्दरो यथा ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥

॥पञ्चमः सर्गः॥

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् ।
ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥₁॥

तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा ।
तां सुकेशाय धर्मेण ददौ दक्षः श्रियं यथा ॥₂॥

वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ।
आसीद्देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः ॥₃॥

स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ।
अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेण्वेव महागजः ॥₄॥

देववत्यां सुकेशस्तु जनयामास राघव ।
त्रींस्त्रिनेत्रसमान्पुत्रान्नाक्षसान्नाक्षसाधिपः ।
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ॥₅॥

त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्रयः ।
त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः ॥₆॥

त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमवर्चसः ।
विवृद्धिमगमंस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ॥₇॥

वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वैश्वर्यं ततो महत् ।
तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥₈॥

प्रगृह्य नियमान्घोरान्नाक्षसा नृपसत्तम ।
विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूतभयावहम् ॥₉॥

सत्यार्जवदमोपेतैस्तपोभिर्भुवि दुष्करैः ।
सन्तापयन्तस्त्रीँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥₁₀॥

ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमास्थितः ।
सुकेशपुत्रानामन्त्य वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥₁₁॥

ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इव द्रुमाः ॥₁₂॥

तपसाराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ।
अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ।
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥₁₃॥

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा सुकेशतनयान्प्रभुः ।
प्रययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥₁₄॥

वरं लब्ध्वा ततः सर्वे राम रात्रिश्चरास्तदा ।
सुरासुरान्प्रबाधन्ते वरदानात्सुनिर्भयाः ॥₁₅॥

तैर्वध्यमानास्त्रिदशाः सर्पिसङ्घाः सचारणाः ।
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥₁₆॥

अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ।
ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥₁₇॥

गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ।
अस्माकमपि तावच्चं गृहं कुरु महामते ॥₁₈॥

हिमवन्तं समाश्रित्य मेरुं मन्दरमेव वा ।
महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ॥₁₉॥

विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ।
निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ॥₂₀॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ।
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्गच्छिन्नचतुर्दिशि ॥ 21 ॥

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा स्वर्णप्राकारतोरणा ।
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥ 22 ॥

तस्यां वसत दुर्धर्षाः पुर्या राक्षससत्तमाः ।
अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ 23 ॥

लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः ।
भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥ 24 ॥

विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राम राक्षसाः ।
सहस्रानुचरा गत्वा लङ्कां तामवसन्पुरीम् ॥ 25 ॥

दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम् ।
लङ्कामवाप्य ते हृष्टा विहरन्ति निशाचराः ॥ 26 ॥

नर्मदा नाम गन्धर्वी नानाधर्मसमेधिता ।
तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीद्धीश्रीकीर्तिसमद्युति ॥ 27 ॥

ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ।
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टा पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ 28 ॥

त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ।
मात्रा दत्ता महाभागा नक्षत्रे भगदैवते ॥ 29 ॥

कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयाः प्रभो ।
भार्याभिः सह चिक्रीडुरप्सरोभिरिवामराः ॥ 30 ॥

तत्र माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ।
स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत् ॥ 31 ॥

वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मतौ तथैव च ।
अनला चाभवत्कन्या सुन्दर्या राम सुन्दरी ॥³²॥

सुमालिनोऽपि भार्यासीत्पूर्णचन्द्रनिभानना ।
नाम्ना केतुमती नाम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥³³॥

सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः ।
केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥³⁴॥

प्रहस्तोऽकम्पनैश्चैव विकटः कालकार्मुकः ।
धूम्राक्शश्चाथ दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ॥³⁵॥

संहादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः ।
राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिता ।
कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥³⁶॥

मालेस्तु वसुदा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ।
भार्यासीत्पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षीवरोपमा ॥³⁷॥

सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामास यत्प्रभो ।
अपत्यं कथ्यमानं तन्मया त्वं शृणु राघव ॥³⁸॥

अनलश्चानिलश्चैव हरः सम्पातिरेव च ।
एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ॥³⁹॥

ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो
निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः ।
सुरान्सहेन्द्रानृषिनागदानवान्
बबाधिरे ते बलवीर्यदर्पिताः ॥⁴⁰॥

जगद्भ्रमन्तोऽनिलवद्गुरासदा
रणे च मृत्युप्रतिमाः समाहिताः ।

वरप्रदानादभिगर्विता भृशम्
ऋतुक्रियाणां प्रशमङ्कराः सदा ॥₄₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥

॥षष्ठः सर्गः॥

तैर्वध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः ।
भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम् ॥₁॥

ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम् ।
ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ॥₂॥

सुकेशपुत्रैर्भगवन्पितामहवरोद्धतैः ।
प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधन ॥₃॥

शरण्यान्यशरण्यानि आश्रमाणि कृतानि नः ।
स्वर्गाच्च च्यावितः शक्रः स्वर्गे क्रीडन्ति शक्रवत् ॥₄॥

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम् ।
अहं यमोऽहं वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ॥₅॥

इति ते राक्षसा देव वरदानेन दर्पिताः ।
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरःसराः ॥₆॥

तन्नो देवभयार्तानामभयं दातुमर्हसि ।
अशिवं वपुरास्थाय जहि दैवतकण्टकान् ॥₇॥

इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः ।
सुकेशं प्रति सापेक्ष आह देवगणान्मभुः ॥₈॥

नाहं तान्निहनिष्यामि अवध्या मम तेऽसुराः ।
किं तु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान्निहनिष्यति ॥₉॥

एवमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य सुरर्षभाः ।

गच्छन्तु शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान्प्रभुः ॥₁₀॥

ततस्ते जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् ।
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः ॥₁₁॥

शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च ।
ऊचुः सम्भ्रान्तवद्वाक्यं सुकेशतनयार्दिताः ॥₁₂॥

सुकेशतनयैर्देवत्रिभिस्त्रेताग्निसंनिभैः ।
आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहतानि नः ॥₁₃॥

लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।
तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान्नः क्षणदाचराः ॥₁₄॥

स त्वमस्मत्प्रियार्थं तु जहि तान्मधुसूदन ।
चक्रकृत्तास्यकमलान्निवेदय यमाय वै ॥₁₅॥

भयेष्वभयदोऽस्माकं नान्योऽस्ति भवता समः ।
नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥₁₆॥

इत्येवं दैवतैरुक्तो देवदेवो जनार्दनः ।
अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ॥₁₇॥

सुकेशं राक्षसं जाने ईशान वरदर्पितम् ।
तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥₁₈॥

तानहं समतिक्रान्तमर्यादान्नाक्षसाधमान् ।
सूदयिष्यामि सङ्ग्रामे सुरा भवत विज्वराः ॥₁₉॥

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यथा वासं ययुर्हृष्टाः प्रशमन्तो जनार्दनम् ॥₂₀॥

विबुधानां समुद्योगं माल्यवान्स निशाचरः ।

श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥₂₁॥

अमरा ऋषयश्चैव संहत्य किल शङ्करम् ।
अस्मद्वधं परीप्सन्त इदमूचुस्त्रिलोचनम् ॥₂₂॥

सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः ।
बाधन्तेऽस्मान्समुद्युक्ता घोररूपाः पदे पदे ॥₂₃॥

राक्षसैरभिभूताः स्म न शक्ताः स्म उमापते ।
स्वेषु वेश्मसु संस्थातुं भयात्तेषां दुरात्मनाम् ॥₂₄॥

तदस्माकं हितार्थे त्वं जहि तांस्तांस्त्रिलोचन ।
राक्षसान्हुङ्कृतेनैव दह प्रदहतां वर ॥₂₅॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः ।
शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥₂₆॥

अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे ।
मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यो वै तान्निहनिष्यति ॥₂₇॥

यः स चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।
हनिष्यति स तान्युद्धे शरणं तं प्रपद्यथ ॥₂₈॥

हरान्नावाप्य ते कामं कामारिमभिवाद्य च ।
नारायणालयं प्राप्तास्तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥₂₉॥

ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
सुरारीन्सूदयिष्यामि सुरा भवत विज्वराः ॥₃₀॥

देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ ।
प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं तच्चिन्तयथ यत्क्षमम् ॥₃₁॥

हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम् ।

दुःखं नारायणं जेतुं यो नो हन्तुमभीप्सति ॥³²॥

ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः ।
ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठं भगांशाविव वासवम् ॥³³॥

स्वधीतं दत्तमिष्टं च ऐश्वर्यं परिपालितम् ।
आयुर्निरामयं प्राप्तं स्वधर्मः स्थापितश्च नः ॥³⁴॥

देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रौघैः प्रविगाह्य च ।
जिता देवा रणे नित्यं न नो मृत्युकृतं भयम् ॥³⁵॥

नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ।
अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्व एव हि बिभ्यति ॥³⁶॥

विष्णोर्दोषश्च नास्त्यत्र कारणं राक्षसेश्वर ।
देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ॥³⁷॥

तस्मादद्य समुद्युक्ताः सर्वसैन्यसमावृताः ।
देवानेव जिघांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः ॥³⁸॥

इति माली सुमाली च माल्यवानग्रजः प्रभुः ।
उद्योगं घोषयित्वाथ राक्षसाः सर्व एव ते ।
युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जम्भवृत्रबला इव ॥³⁹॥

स्यन्दनैर्वारणेन्द्रैश्च ह्यैश्च गिरिसंनिभैः ।
खरैर्गोभिरथोष्ट्रैश्च शिंशुमारैर्भुजं गमैः ॥⁴⁰॥

मकरैः कच्छपैर्मनैर्विहङ्गैर्गरुडोपमैः ।
सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ॥⁴¹॥

त्यक्त्वा लङ्कां ततः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ।
प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ॥⁴²॥

लङ्काविपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ।
भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः ॥₄₃॥

भौमास्तथान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः ।
उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभावायोत्थिता द्रुतम् ॥₄₄॥

अस्थीनि मेघा वर्षन्ति उष्णं शोणितमेव च ।
वेलां समुद्रोऽप्युत्क्रान्तश्चलन्ते चाचलोत्तमाः ॥₄₅॥

अट्टहासान्विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनान् ।
भूताः परिपतन्ति स्म नृत्यमानाः सहस्रशः ॥₄₆॥

गृध्रचक्रं महद्वापि ज्वलनोद्गारिभिर्मुखैः ।
राक्षसानामुपरि वै भ्रमते कालचक्रवत् ॥₄₇॥

तानचिन्त्यमहोत्पातान्नाक्षसा बलगर्विताः ।
यन्त्येव न निवर्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः ॥₄₈॥

माल्यवांश्च सुमाली च माली च रजनीचराः ।
आसन्पुरःसरास्तेषां क्रतूनामिव पावकाः ॥₄₉॥

माल्यवन्तं तु ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ।
निशाचरा आश्रयन्ते धातारमिव देहिनः ॥₅₀॥

तद्वलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ।
जयेप्सया देवलोकं ययौ माली वशे स्थितम् ॥₅₁॥

राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ।
देवदूतादुपश्रुत्य दध्रे युद्धे ततो मनः ॥₅₂॥

स देवसिद्धिर्षिमहोरगैश्च
गन्धर्वमुख्याप्सरसोपगीतः ।
समाससादामरशत्रुसैन्यम्

चक्रासिसीरप्रवरादिधारी ॥₅₃॥

सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षम्
भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।
चचाल तद्राक्षसराजसैन्यम्
चलोपलो नील इवाचलेन्द्रः ॥₅₄॥

तथ शितैः शोणितमांसरूपितैर्-
युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ।
निशाचराः सम्परिवार्य माधवम्
वरायुधैर्निर्बिम्बिदुः सहस्रशः ॥₅₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः॥

॥सप्तमः सर्गः॥

नारायणगिरिं ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ।
अवर्षन्निषुवर्षेण वर्षेणाद्रिमिवाम्बुदाः ॥₁॥

श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तश्चरोत्तमैः ।
वृतोऽञ्जनगिरीवासीद्वर्षमाणैः पयोधरैः ॥₂॥

शलभा इव केदारं मशका इव पर्वतम् ।
यथामृतघटं जीवा मकरा इव चार्णवम् ॥₃॥

तथा रक्षोधनुर्मुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ।
हरिं विशन्ति स्म शरा लोकास्तमिव पर्यये ॥₄॥

स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजधूर्गताः ।
अश्वारोहाः सदश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे चराः ॥₅॥

राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।
निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायाम इव द्विजम् ॥₆॥

निशाचरैस्तुद्यमानो मीनैरिव महातिमिः ।
शार्ङ्गमायम्य गात्राणि राक्षसानां महाहवे ॥₇॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रवक्त्रैर्मनोजवैः ।
चिच्छेद तिलशो विष्णुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥₈॥

विद्राव्य शरवर्षं तं वर्षं वायुरिवोत्थितम् ।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ॥₉॥

सोऽम्बुजो हरिणा ध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट् ।

ररास भीमनिहादो युगान्ते जलदो यथा ॥₁₀॥

शङ्खराजरवः सोऽथ त्रासयामास राक्षसान् ।
मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ॥₁₁॥

न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराभवन् ।
स्यन्दनेभ्यश्च्युता योधाः शङ्खरावितदुर्बलाः ॥₁₂॥

शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः ।
विदार्य तानि रक्षांसि सुपुङ्खा विविशुः क्षितिम् ॥₁₃॥

भिद्यमानाः शरैश्चान्ये नारायणधनुश्च्युतैः ।
निपेतू राक्षसा भीमाः शैला वज्रहता इव ॥₁₄॥

व्रणैर्व्रणकरारीणामधोक्षजशरोद्भवैः ।
असृक्क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारामिवाचलाः ॥₁₅॥

शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा ।
राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः ॥₁₆॥

सूर्यादिव करा घोरा ऊर्मयः सागरादिव ।
पर्वतादिव नागेन्द्रा वार्योघा इव चाम्बुदात् ॥₁₇॥

तथा बाणा विनिर्मुक्ताः शार्ङ्गान्नरायणेरिताः ।
निर्धावन्तीषवस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥₁₈॥

शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा ।
द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥₁₉॥

द्वीपिना च यथा श्वानः शुना मार्जारका यथा ।
मार्जारिण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाखवः ॥₂₀॥

तथा ते राक्षसा युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ।

द्रवन्ति द्राविताश्चैव शायिताश्च महीतले ॥₂₁॥

राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः ।
वारिजं नादयामास तोयदं सुरराडिव ॥₂₂॥

नारायणशरग्रस्तं शङ्खनादसुविह्वलम् ।
ययौ लङ्कामभिमुखं प्रभङ्गं राक्षसं बलम् ॥₂₃॥

प्रभङ्गे राक्षसबले नारायणशराहते ।
सुमाली शरवर्षेण आववार रणे हरिम् ॥₂₄॥

उत्क्षिप्य हेमाभरणं करं करमिव द्विपः ।
ररास राक्षसो हर्षात्सतडित्तोयदो यथा ॥₂₅॥

सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
चिच्छेद यन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ॥₂₆॥

तैरश्चैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः ।
इन्द्रियाश्चैर्यथा भ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः ॥₂₇॥

माली चाभ्यद्रवद्युद्धे प्रगृह्य सशरं धनुः ।
मालेर्धनुश्श्रुता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः ।
विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चं पत्ररथा इव ॥₂₈॥

अर्द्यमानः शरैः सोऽथ मालिमुक्तैः सहस्रशः ।
चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ॥₂₉॥

अथ मौर्वी स्वनं कृत्वा भगवान्भूतभावनः ।
मालिनं प्रति बाणौघान्ससर्जासिगदाधरः ॥₃₀॥

ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः ।
पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव पुरामृतम् ॥₃₁॥

मालिनं विमुखं कृत्वा मालिमौलिं हरिर्बलात् ।
रथं च सध्वजं चापं वाजिनश्च न्यपातयत् ॥³²॥

विरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तश्चरोत्तमः ।
आपुष्पुवे गदापाणिर्गिर्यग्रादिव केषरी ॥³³॥

स तया गरुडं सङ्क्षो ईशानमिव चान्तकः ।
ललाटदेशेऽभ्यहनद्वज्रेणेन्द्रो यथाचलम् ॥³⁴॥

गदयाभिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम् ।
रणात्पराङ्मुखं देवं कृतवान्वेदनातुरः ॥³⁵॥

पराङ्मुखे कृते देवे मालिना गरुडेन वै ।
उदतिष्ठन्महानादो रक्षसामभिनर्दताम् ॥³⁶॥

रक्षसां नदतां नादं श्रुत्वा हरिहयानुजः ।
पराङ्मुखोऽप्युत्ससर्ज चक्रं मालिजिघांसया ॥³⁷॥

तत्सूर्यमण्डलाभासं स्वभासा भासयन्नभः ।
कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् ॥³⁸॥

तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रोत्कृतं विभीषणम् ।
पपात रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा ॥³⁹॥

ततः सुरैः सुसंहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः ।
सिंहनादरवो मुक्तः साधु देवेति वादिभिः ॥⁴⁰॥

मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली मल्यवानपि ।
सबलौ शोकसन्तप्तौ लङ्कां प्रति विधावितौ ॥⁴¹॥

गरुडस्तु समाश्वस्तः संनिवृत्य महामनाः ।
राक्षसान्द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ॥⁴²॥

नारायणोऽपीषुवराशनीभिर्-
विदारयामास धनुःप्रमुक्तैः ।
नक्तधरान्मुक्तविधूतकेशान्
यथाशनीभिः सतडिन्महेन्द्रः ॥₄₃॥

भिन्नातपत्रं पतमानशस्त्रम्
शरैरपध्वस्तविशीर्णदेहम् ।
विनिःसृतान्त्रं भयलोलनेत्रम्
बलं तदुन्मत्तनिभं बभूव ॥₄₄॥

सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणाम्
निशाचराणां सह कुञ्जराणाम् ।
रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः
पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ॥₄₅॥

सञ्छाद्यमाना हरिबाणजालैः
स्वबाणजालानि समुत्सृजन्तः ।
धावन्ति नक्तधरकालमेघा
वायुप्रणुन्ना इव कालमेघाः ॥₄₆॥

चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः
सधूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः ।
असिप्रहारैर्बहुधा विभक्ताः
पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ॥₄₇॥

चक्रकृत्तास्यकमला गदासधूर्णितोरसः ।
लाङ्गलश्लपितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ॥₄₈॥

केचिच्चैवासिना छिन्नास्तथान्ये शरताडिताः ।
निपेतुरम्बरात्तूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ॥₄₉॥

तदाम्बरं विगलितहारकुण्डलैर्-
निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ।

निपात्यमानैर्दृष्टे निरन्तरम्
निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥ 50 ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः॥

॥अष्टमः सर्गः॥

हन्यमाने बले तस्मिन्पद्मनाभेन पृष्ठतः ।
माल्यवान्संनिवृत्तोऽथ वेलातिग इवार्णवः ॥₁॥

संरक्तनयनः कोपाच्चलन्मौलिर्निशाचरः ।
पद्मनाभमिदं प्राह वचनं परुषं तदा ॥₂॥

नारायण न जानीषे क्षत्रधर्मं सनातनम् ।
अयुद्धमनसो भग्नान्योऽस्मान्हंसि यथेतरः ॥₃॥

पराङ्मुखवधं पापं यः करोति सुरेश्वर ।
स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥₄॥

युद्धश्चद्धाथ वा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर ।
अहं स्थितोऽस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत्तव ॥₅॥

उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ।
युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाभयम् ।
राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥₆॥

प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया ।
सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥₇॥

देवमेवं ब्रुवाणं तु रक्ताम्बुरुहलोचनम् ।
शक्त्या बिभेद सङ्क्रुद्धो राक्षसेन्द्रो ररास च ॥₈॥

माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्त्रना ।
हरेरुरसि बभ्राज मेघस्थेव शतहृदा ॥₉॥

ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः ।
माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥₁₀॥

स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता ।
काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्महोल्केवाञ्जनाचलम् ॥₁₁॥

सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभासावभासिते ।
अपतद्राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ॥₁₂॥

तया भिन्नतनुत्राणाः प्राविशद्विपुलं तमः ।
माल्यवान्पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥₁₃॥

ततः कार्णायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चितम् ।
प्रगृह्याभ्यहनद्देवं स्तनयोरन्तरे दृढम् ॥₁₄॥

तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् ।
ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ॥₁₅॥

ततोऽम्बरे महाञ्शब्दः साधु साध्विति चोत्थितः ।
आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत् ॥₁₆॥

वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् ।
व्यपोहद्वलवान्वायुः शुष्कपर्णचयं यथा ॥₁₇॥

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् ।
सुमाली स्वबलेः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ ॥₁₈॥

पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः ।
स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्कां हिया वृतः ॥₁₉॥

एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण ।
बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ॥₂₀॥

अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं भयार्दिताः ।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥₂₁॥

सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुनन्दन ।
स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ॥₂₂॥

ये द्वया निहतास्ते वै पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।
सुमाली माल्यवान्माली ये च तेषां पुरःसराः ।
सर्व एते महाभाग रावणाद्वलवत्तराः ॥₂₃॥

न चान्यो रक्षसां हन्ता सुरेष्वपि पुरंजय ।
ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥₂₄॥

भवान्नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः ।
राक्षसान्हन्तुमुत्पन्नो अजेयः प्रभुरव्ययः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टमः सर्गः॥

॥नवमः सर्गः॥

कस्यचिच्चथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ।
रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥₁॥

नीलजीमूतसङ्काशस्तप्तकाधनकुण्डलः ।
कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्ममिव श्रियम् ।
अथापश्यत्स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ॥₂॥

तं दृष्ट्वामरसङ्काशं गच्छन्तं पावकोपमम् ।
अथाब्रवीत्सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥₃॥

पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं तेऽतिवर्तते ।
ब्रह्मकृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः ॥₄॥

त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः सपद्मेव पुत्रिके ।
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः प्रतिगृह्यसे ॥₅॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ।
न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति पुत्रिके ॥₆॥

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥₇॥

सा त्वं मुनिवरश्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम् ।
गच्छ विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥₈॥

ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः ।
तेजसा भास्करसमा यादृशोऽयं धनेश्वरः ॥₉॥

एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः ।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ॥₁₀॥

सा तु तां दारुणां वेलामचिन्त्य पितृगौरवात् ।
उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ॥₁₁॥

स तु तां वीक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अब्रवीत्परमोदारो दीप्यमान इवौजसा ॥₁₂॥

भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता ।
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ॥₁₃॥

एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ।
आत्मप्रभावेन मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ॥₁₄॥

किं तु विद्धि हि मां ब्रह्मञ्चासनात्पितुरागताम् ।
कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥₁₅॥

स तु गत्वा मुनिध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह ।
विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ॥₁₆॥

दारुणायां तु वेलायां यस्मात्त्वं मामुपस्थिता ।
शृणु तस्मात्सुतान्भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यसि ॥₁₇॥

दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान् ।
प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान्क्रूरकर्मणः ॥₁₈॥

सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ।
भगवन्नेदृशाः पुत्रास्त्वत्तोऽर्हा ब्रह्मयोनिनः ॥₁₉॥

अथाब्रवीन्मुनिस्तत्र पश्चिमो यस्तवात्मजः ।
मम वंशानुरूपश्च धर्मात्मा च भविष्यति ॥₂₀॥

एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥²¹॥

दशशीर्षं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
ताम्रौष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥²²॥

जातमात्रे ततस्तस्मिन्सज्वालकवलाः शिवाः ।
ऋव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रिरे ॥²³॥

ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिस्त्रनाः ।
प्रबभौ न च खे सूर्यो महोल्काश्चापतन्भुवि ॥²⁴॥

अथ नामाकरोत्तस्य पितामहसमः पिता ।
दशशीर्षः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥²⁵॥

तस्य ब्रनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।
प्रमाणाद्यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥²⁶॥

ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना ।
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥²⁷॥

ते तु तत्र महारण्ये ववृधुः सुमहौजसः ।
तेषां क्रूरो दशग्रीवो लोकोद्वेगकरोऽभवत् ॥²⁸॥

कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन्धर्मसंश्रितान् ।
त्रैलोक्यं त्रासयन्दुष्टो भक्षयन्विचचार ह ॥²⁹॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपथे स्थितः ।
स्वाध्यायनियताहार उवास नियतेन्द्रियः ॥³⁰॥

अथ वित्तेश्वरो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आगच्छत्पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण महौजसम् ॥³¹॥

तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आस्थाय राक्षसीं बुद्धिं दशग्रीवमुवाच ह ॥₃₂॥

पुत्रवैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसा वृतम् ।
भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥₃₃॥

दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ।
यथा भवसि मे पुत्र शीघ्रं वैश्वरणोपमः ॥₃₄॥

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत्तदा ॥₃₅॥

सत्यं ते प्रतिजानामि तुल्यो भ्रात्राधिकोऽपि वा ।
भविष्याम्यचिरान्मातः सन्तापं त्यज हृद्गतम् ॥₃₆॥

ततः क्रोधेन तेनैव दशग्रीवः सहानुजः ।
प्राप्स्यामि तपसा काममिति कृत्वाध्यवस्य च ।
आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ॥₃₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः॥

॥दशमः सर्गः॥

अथाब्रवीद्विजं रामः कथं ते भ्रातरो वने ।
कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपश्चेरुर्महाव्रताः ॥₁॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीत्तत्र रामं प्रयत मानसम् ।
तांस्तान्धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥₂॥

कुम्भकर्णस्तदा यत्तो नित्यं धर्मपरायणः ।
तताप ग्रैष्मिके काले पञ्चस्वग्निष्ववस्थितः ॥₃॥

वर्षे मेघोदकक्लिन्नो वीरासनमसेवत ।
नित्यं च शैशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ॥₄॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यातिचक्रमुः ।
धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च ॥₅॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥₆॥

समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पपात पुष्पवर्षं च क्षुभिताश्चापि देवताः ॥₇॥

पञ्चवर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत ।
तस्थौ चोर्ध्वशिरो बाहुः स्वाध्यायधृतमानसः ॥₈॥

एवं विभीषणस्यापि गतानि नियतात्मनः ।
दशवर्षसहस्राणि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ॥₉॥

दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ।

पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ॥₁₀॥

एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ।
शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥₁₁॥

अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ।
छेत्तुकामः स धर्मात्मा प्राप्तश्चात्र पितामहः ॥₁₂॥

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः ।
वत्स वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥₁₃॥

शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ।
किं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥₁₄॥

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥₁₅॥

भगवन्प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद्भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्नमतो वृणे ॥₁₆॥

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
अवध्यः स्यां प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वतम् ॥₁₇॥

न हि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित ।
तृणभूता हि मे सर्वे प्राणिनो मानुषादयः ॥₁₈॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ।
उवाच वचनं राम सह देवैः पितामहः ॥₁₉॥

भविष्यत्येवमेवैतत्तव राक्षसपुङ्गव ।
शृणु चापि वचो भूयः प्रीतस्येह शुभं मम ॥₂₀॥

हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयानघ ।

पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ॥₂₁॥

एवं पितामहोक्तस्य दशग्रीवस्य रक्षसः ।
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि यानि तान्युत्थितानि वै ॥₂₂॥

एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं प्रजापतिः ।
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ॥₂₃॥

विभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ।
परितुष्टोऽस्मि धर्मज्ञ वरं वरय सुव्रत ॥₂₄॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ।
वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा इव रश्मिभिः ॥₂₅॥

भगवन्कृतकृत्योऽहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ।
प्रीतो यदि त्वं दातव्यं वरं मे शृणु सुव्रत ॥₂₆॥

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वश्रमेष्विह ।
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये ॥₂₇॥

एष मे परमोदार वरः परमको मतः ।
न हि धर्माभिरक्तानां लोके किञ्चन दुर्लभम् ॥₂₈॥

अथ प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ।
धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद्भविष्यति ॥₂₉॥

यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रकर्षण ।
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्नं ददामि ते ॥₃₀॥

कुम्भकर्णाय तु वरं प्रयच्छन्तमरिन्दम ।
प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥₃₁॥

न तावत्कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ।

जानीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः ॥₃₂॥

नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ।
अनेन भक्षिता ब्रह्मनृपयो मानुषास्तथा ॥₃₃॥

वरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयताममितप्रभ ।
लोकानां स्वस्ति चैव स्याद्भवेदस्य च संनतिः ॥₃₄॥

एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माचिन्तयत्पद्मसम्भवः ।
चिन्तिता चोपतस्थेऽस्य पार्श्वे देवी सरस्वती ॥₃₅॥

प्राञ्जलिः सा तु पर्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती ।
इयमस्म्यागता देवकिं कार्यं करवाण्यहम् ॥₃₆॥

प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ।
वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव या देवतेप्सिता ॥₃₇॥

तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ।
कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः ॥₃₈॥

कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ।
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ॥₃₉॥

एवमस्त्विति तं चोक्त्वा सह देवैः पितामहः ।
देवी सरस्वती चैव मुक्त्वा तं प्रययौ दिवम् ॥₄₀॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ।
कीर्दृशं किं निदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्युतम् ॥₄₁॥

एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ।
श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन्सुखम् ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशमः सर्गः॥

॥एकादशः सर्गः॥

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा तान्वै निशाचरान् ।
उदतिष्ठद्भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥₁॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ।
उदतिष्ठन्सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥₂॥

सुमाली चैव तैः सर्वैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः ।
अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥₃॥

दिष्ट्या ते पुत्रसम्प्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।
यस्त्वं त्रिभुवणश्रेष्ठाल्लब्धवान्वरमीदृशम् ॥₄॥

यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥₅॥

असकृत्तेन भग्ना हि परित्यज्य स्वमालयम् ।
विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ॥₆॥

अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोषिता ।
निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥₇॥

यदि नामात्र शक्यं स्यात्साम्ना दानेन वानघ ।
तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥₈॥

त्वं च लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।
सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल ॥₉॥

अथाब्रवीद्विशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ।

वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हस्येवं प्रभाषितुम् ॥₁₀॥

उक्तवन्तं तथा वाक्यं दशग्रीवं निशाचरः ।
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह सकारणम् ॥₁₁॥

दशग्रीव महाबाहो नार्हस्त्वं वक्तुमीदृशम् ।
सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम ॥₁₂॥

अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते किल ।
भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ॥₁₃॥

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवणेश्वरान् ।
दितिस्त्वजनयद्वैत्यान्कश्यपस्यात्मसम्भवान् ॥₁₄॥

दैत्यानां किल धर्मज्ञ पुरेयं सवनार्णवा ।
सपर्वता मही वीर तेऽभवन्प्रभविष्णवः ॥₁₅॥

निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥₁₆॥

नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम् ।
सुरैराचरितं पूर्वं कुरुष्वैतद्वचो मम ॥₁₇॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन दुरात्मना ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ॥₁₈॥

स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान् ।
वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ॥₁₉॥

त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः ।
प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ॥₂₀॥

प्रहस्त शीघ्रं गत्वा त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुङ्गवम् ।

वचनान्मम वित्तेषां सामपूर्वमिदं वचः ॥₂₁॥

इयं लङ्का पुरी राजत्राक्षसानां महात्मनाम् ।
त्वया निवेशिता सौम्य नैतद्युक्तं तवानघ ॥₂₂॥

तद्भवान्यदि साम्नेतां दद्यादतुलविक्रम ।
कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः ॥₂₃॥

इत्युक्तः स तदा गत्वा प्रहस्तो वाक्यकोविदः ।
दशग्रीववचः सर्वं वित्तेषाय न्यवेदयत् ॥₂₄॥

प्रहस्तादपि संश्रुत्य देवो वैश्रवणो वचः ।
प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥₂₅॥

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम ।
तवाप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्वैतद्धतकण्टकम् ॥₂₆॥

सर्वं कर्तास्मि भद्रं ते राक्षसेश वचोऽचिरात् ।
किं तु तावत्प्रतीक्षस्व पितुर्यावन्निवेदये ॥₂₇॥

एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ।
अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम् ॥₂₈॥

एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान्मम ।
दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता ।
मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥₂₉॥

ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
उवाच धनदं वाक्यं शृणु पुत्र वचो मम ॥₃₀॥

दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान्मम संनिधौ ।
मया निर्भर्त्सितश्चासीद्बहुधोक्तः सुदुर्मतिः ॥₃₁॥

स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंसस्वेति पुनः पुनः ।
श्रेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥³²॥

वरप्रदानसम्मूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः ।
न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥³³॥

तस्माद्गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम् ।
निवेशय निवासार्थं त्यज लङ्कां सहानुगः ॥³⁴॥

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनां प्रवरा नदी ।
काञ्चनैः सूर्यसङ्काशैः पङ्कजैः संवृतोदका ॥³⁵॥

न हि क्षमं ब्रूया तेन वैरं धनदरक्षसा ।
जानीषे हि यथानेन लब्धः परमको वरः ॥³⁶॥

एवमुक्तो गृहीत्वा तु तद्वचः पितृगौरवात् ।
सदार पौरः सामात्यः सवाहनधनो गतः ॥³⁷॥

प्रहस्तस्तु दशग्रीवं गत्वा सर्वं न्यवेदयत् ।
शून्या सा नगरी लङ्का त्रिंशद्योजनमायता ।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय ॥³⁸॥

एवमुक्तः प्रहस्तेन रावणो राक्षसस्तदा ।
विवेश नगरीं लङ्कां सभ्राता सबलानुगः ॥³⁹॥

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा
निवेशयामास पुरीं दशाननः ।
निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी
निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ॥⁴⁰॥

धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगौरवात्
न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम् ।
स्वलङ्कृतैर्भवनवरैर्विभूषिताम्

पुनरुदरस्येव तदामरावतीम् ॥₄₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकादशः सर्गः॥

॥द्वादशः सर्गः॥

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभ्यां सहितस्तदा ।
ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ॥₁॥

ददौ तां कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम् ।
स्वसां शूर्पणखां नाम विद्युञ्जिह्वाय नामतः ॥₂॥

अथ दत्त्वा स्वसारं स मृगयां पर्यटन्नृपः ।
तत्रापश्यत्ततो राम मयं नाम दितेः सुतम् ॥₃॥

कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः ।
अपृच्छत्को भवनेको निर्मनुष्य मृगे वने ॥₄॥

मयस्त्वथाब्रवीद्राम पृच्छन्तं तं निशाचरम् ।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं मम ॥₅॥

हेमा नामाप्सरास्तात श्रुतपूर्वा यदि त्वया ।
दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः ॥₆॥

तस्यां सक्तमनास्तात पञ्चवर्षशतान्यहम् ।
सा च दैवत कार्येण गता वर्षं चतुर्दशम् ॥₇॥

तस्याः कृते च हेमायाः सर्वं हेमपुरं मया ।
वज्रवैदूर्यचित्रं च मायया निर्मितं तदा ॥₈॥

तत्राहमरतिं विन्दंस्तया हीनः सुदुःखितः ।
तस्मात्पुराद्गृहीत्वा वनमागतः ॥₉॥

इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धिता ।

भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम् ॥₁₀॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि नराणां मानकाङ्क्षिणाम् ।
कन्या हि द्वे कुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥₁₁॥

द्वौ सुतौ तु मम तस्यां भार्यायां सम्बभूवतुः ।
मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरम् ॥₁₂॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः ।
त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति ॥₁₃॥

एवमुक्तो राक्षसेन्द्रो विनीतमिदमब्रवीत् ।
अहं पौलस्त्य तनयो दशग्रीवश्च नामतः ॥₁₄॥

ब्रह्मर्षेस्तं सुतं ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः ।
दातुं दुहितरं तस्य रोचयामास तत्र वै ॥₁₅॥

प्रहसन्प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः ।
द्वयं ममात्मजा राजन्हेमयाप्सरसा धृता ।
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥₁₆॥

बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ।
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत्पाणिसङ्ग्रहम् ॥₁₇॥

न हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ।
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ॥₁₈॥

अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम् ।
परेण तपसा लब्धां जघ्निर्वाँलक्ष्मणं यया ॥₁₉॥

एवं स कृतदारो वै लङ्कायामीश्वरः प्रभुः ।
गत्वा तु नगरं भार्ये भ्रातृभ्यां समुदावहत् ॥₂₀॥

वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ।
तां भार्या कुम्भकर्णस्य रावणः समुदावहत् ॥₂₁॥

गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मन ।
सरमा नाम धर्मज्ञो लेभे भार्या विभीषणः ॥₂₂॥

तीरे तु सरसः सा वै संजज्ञे मानसस्य च ।
मानसं च सरस्तात ववृधे जलदागमे ॥₂₃॥

मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहनाक्रन्दितं वचः ।
सरो मा वर्धतेत्युक्तं ततः सा सरमाभवत् ॥₂₄॥

एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ।
स्त्वां स्त्वां भार्यामुपादाय गन्धर्वा इव नन्दने ॥₂₅॥

ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमसूयत ।
स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ॥₂₆॥

जातमात्रेण हि पुरा तेन राक्षससूनुना ।
रुदता सुमहान्मुक्तो नादो जलधरोपमः ॥₂₇॥

जडीकृतायां लङ्कायां तेन नादेन तस्य वै ।
पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ॥₂₈॥

सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ।
रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वादशः सर्गः॥

॥त्रयोदशः सर्गः॥

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ।
निद्रा समभवत्तीव्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥₁॥

ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः ।
निद्रा मां बाधते राजन्कारयस्व ममालयम् ॥₂॥

विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् ।
अकुर्वन्कुम्भकर्णस्य कैलाससममालयम् ॥₃॥

विस्तीर्णं योजनं शुभ्रं ततो द्विगुणमायतम् ।
दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ॥₄॥

स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ।
वैदूर्यकृतशोभं च किङ्किणीजालकं तथा ॥₅॥

दन्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम् ।
सर्वर्तुसुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव ॥₆॥

तत्र निद्रां समाविष्टः कुम्भकर्णो निशाचरः ।
बहून्यब्दसहस्राणि शयानो नावबुध्यते ॥₇॥

निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः ।
देवर्षियक्षगन्धर्वान्बाधते स्म स नित्यशः ॥₈॥

उद्यानानि विचित्राणि नन्दनादीनि यानि च ।
तानि गत्वा सुसङ्क्रुद्धो भिनत्ति स्म दशाननः ॥₉॥

नदीं गज इव क्रीडन्वृक्षान्वायुरिव क्षिपन् ।

नगान्वज्र इव सृष्टो विध्वंसयति नित्यशः ॥₁₀॥

तथा वृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः ।
कुलानुरूपं धर्मज्ञ वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः ॥₁₁॥

सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्वरणस्तदा ।
लङ्कां सम्प्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ॥₁₂॥

स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद विभीषणम् ।
मानितस्तेन धर्मेण पृष्ठश्चागमनं प्रति ॥₁₃॥

पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनपि च बान्धवान् ।
सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम् ॥₁₄॥

स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
जयेन चाभिसम्पूज्य तूष्णीमासीन्मुहूर्तकम् ॥₁₅॥

तस्योपनीते पर्यङ्के वरास्तरणसंवृते ।
उपविश्य दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ॥₁₆॥

राजन्वदामि ते सर्वं भ्राता तव यदब्रवीत् ।
उभयोः सदृशं सौम्य वृत्तस्य च कुलस्य च ॥₁₇॥

साधु पर्याप्तमेतावत्कृतश्चारित्रसङ्ग्रहः ।
साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ॥₁₈॥

दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः ।
देवानां तु समुद्योगस्त्वत्तो राजञ्श्रुतश्च मे ॥₁₉॥

निराकृतश्च बहुशस्त्रयाहं राक्षसाधिप ।
अपराद्धा हि बाल्याद्य रक्षणीयाः स्वबान्धवाः ॥₂₀॥

अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम् ।

रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥₂₁॥

तत्र देवो मया दृष्टः सह देव्योमया प्रभुः ।
सव्यं चक्षुर्मया चैव तत्र देव्यां निपातितम् ॥₂₂॥

का न्वियं स्यादिति शुभा न खल्वन्येन हेतुना ।
रूपं ह्यनुपमं कृत्वा तत्र क्रीडति पार्वती ॥₂₃॥

ततो देव्याः प्रभावेन दग्धं सव्यं ममेक्षणम् ।
रेणुध्वस्तमिव ज्योतिः पिङ्गलब्धमुपागतम् ॥₂₄॥

ततोऽहमन्यद्विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम् ।
पूर्णं वर्षशतान्यष्टौ समवाप महाव्रतम् ॥₂₅॥

समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः ।
प्रीतः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥₂₆॥

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसानेन सुव्रत ।
मया चैतद्व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ॥₂₇॥

तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद्व्रतमीदृशम् ।
व्रतं सुदुश्चरं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुरा ॥₂₈॥

तत्सखित्वं मया सार्धं रोचयस्व धनेश्वर ।
तपसा निर्जितत्वाद्धि सखा भव ममानघ ॥₂₉॥

देव्या दग्धं प्रभावेन यच्च साव्यं तवेक्षणम् ।
एकाक्षि पिङ्गलेत्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम् ॥₃₀॥

एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शङ्करात् ।
आगम्य च श्रुतोऽयं मे तव पापविनिश्चयः ॥₃₁॥

तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषण ।

चिन्त्यते हि वधोपायः सर्पिसङ्घैः सुरैस्तव ॥₃₂॥

एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
हस्तान्दन्तांश सम्पीड्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥₃₃॥

विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यत्नं प्रभाषसे ।
नैव त्वमसि नैवासौ भ्रात्रा येनासि प्रेषितः ॥₃₄॥

हितं न स ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ।
महेश्वरसखित्वं तु मूढ श्रावयसे किल ॥₃₅॥

न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो ममायमिति मन्यते ।
तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः ॥₃₆॥

त्रैलोक्यानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
एतन्मुहूर्तमेषोऽहं तस्यैकस्य कृते च वै ।
चतुरो लोकपालांस्तान्नयिष्यामि यमक्षयम् ॥₃₇॥

एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान् ।
ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥₃₈॥

ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः ।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ तत्र धनेश्वरः ॥₃₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः॥

॥चतुर्दशः सर्गः॥

ततः स सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यं बलोत्कटैः ।
महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥₁॥

धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगृध्रुना ।
वृतः सम्प्रययौ श्रीमान्क्रोधाल्लोकान्दहन्निव ॥₂॥

पुराणि स नदीः शैलान्वनान्युपवनानि च ।
अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमाविशत् ॥₃॥

तं निविष्टं गिरौ तस्मिन्नाक्षसेन्द्रं निशम्य तु ।
राज्ञो भ्रातायमित्युक्त्वा गता यत्र धनेश्वरः ॥₄॥

गत्वा तु सर्वमाचख्युर्भ्रातुस्तस्य विनिश्चयम् ।
अनुज्ञाता ययुश्चैव युद्धाय धनदेन ते ॥₅॥

ततो बलस्य सङ्क्षोभः सागरस्येव वर्धतः ।
अभून्नैर्ऋतराजस्य गिरिं सञ्चालयन्निव ॥₆॥

ततो युद्धं समभवद्यक्षराक्षससङ्कुलम् ।
व्यथिताश्चाभवन्स्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥₇॥

तं दृष्ट्वा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः ।
हर्षान्नादं ततः कृत्वा रोषात्समभिवर्तत ॥₈॥

ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोरविक्रमः ।
ते सहस्रं सहस्राणामेकैकं समयोधयन् ॥₉॥

ततो गदाभिः परिघैरसिभिः शक्तितोमरैः ।

वध्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत ॥₁₀॥

तैर्निरुच्छ्वासवत्तत्र वध्यमानो दशाननः ।
वर्षमाणैरिव घनैर्यक्षेन्द्रैः संनिरुध्यत ॥₁₁॥

स दुरात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम् ।
प्रविवेश ततः सैन्यं नयन्यक्षान्यमक्षयम् ॥₁₂॥

स कक्षमिव विस्तीर्णं शुष्केन्धनसमाकुलम् ।
वातेनाग्निरिवायत्तोऽदहत्सैन्यं सुदारुणम् ॥₁₃॥

तैस्तु तस्य मृधेऽमात्यैर्महोदरशुकादिभिः ।
अल्पावशिष्टास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः ॥₁₄॥

केचित्त्रायुधभग्नाङ्गाः पतिताः समरक्षितौ ।
ओष्ठान्स्वदशनैस्तीक्ष्णैर्दशनतो भुवि पातिताः ॥₁₅॥

भयादन्योन्यमालिङ्ग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे ।
निषेदुस्ते तदा यक्षाः कूला जलहता इव ॥₁₆॥

हतानां स्वर्गसंस्थानां युध्यतां पृथिवीतले ।
प्रेक्षतामृषिसङ्घानां न बभूवान्तरं दिवि ॥₁₇॥

एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्णबलवाहनः ।
अगमत्सुमहान्यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ॥₁₈॥

तेन यक्षेण मारीचो विष्णुनेव समाहतः ।
पतितः पृथिवीं भेजे क्षीणपुण्य इवाम्बरात् ॥₁₉॥

प्राप्तसंज्ञो मुहूर्तेन विश्रम्य च निशाचरः ।
तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे ॥₂₀॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यरजतोक्षितम् ।

मर्यादां द्वारपालानां तोरणं तत्समाविशत् ॥₂₁॥

ततो राम दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम् ।
सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ॥₂₂॥

ततस्तोरणमुत्पात्य तेन यक्षेण ताडितः ।
राक्षसो यक्षसृष्टेन तोरणेन समाहतः ।
न क्षितिं प्रययौ राम वरात्सलिलयोनिनः ॥₂₃॥

स तु तेनैव तं यक्षं तोरणेन समाहनत् ।
नादृश्यत तदा यक्षो भस्म तेन कृतस्तु सः ॥₂₄॥

ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे यक्षा दृष्ट्वा पराक्रमम् ।
ततो नदीर्गहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥

॥पञ्चदशः सर्गः॥

ततस्तान्विद्रुतान्दृष्ट्वा यक्षाञ्शतसहस्रशः ।
स्वयमेव धनाध्यक्षो निर्जगाम रणं प्रति ॥₁॥

तत्र माणिचारो नाम यक्षः परमदुर्जयः ।
वृतो यक्षसहस्रैः स चतुर्भिः समयोधयत् ॥₂॥

ते गदामुसलप्रासशक्तितोमरमुद्गरैः ।
अभिघ्नन्तो रणे यक्षा राक्षसानभिदुद्रुवुः ॥₃॥

ततः प्रहस्तेन तदा सहस्रं निहतं रणे ।
महोदरेण गदया सहस्रमपरं हतम् ॥₄॥

क्रुद्धेन च तदा राम मारीचेन दुरात्मना ।
निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥₅॥

धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।
मुसलेनोरसि क्रोधात्ताडितो न च कम्पितः ॥₆॥

ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः ।
धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलो निपपात ह ॥₇॥

धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितम् ।
अभ्यधावत्सुसङ्क्रुद्धो माणिभद्रं दशाननः ॥₈॥

तं क्रुद्धमभिधावन्तं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।
शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गवः ॥₉॥

ततो राक्षसराजेन ताडितो गदया रणे ।

तस्य तेन प्रहारेण मुकुटः पार्श्वमागतः ।
तदा प्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरिति स्मृतः ॥₁₀॥

तस्मिंस्तु विमुखे यक्षे माणिभद्रे महात्मनि ।
संनादः सुमहान्नाम तस्मिञ्शैले व्यवर्धत ॥₁₁॥

ततो दूरात्प्रददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः ।
शुक्रप्रोष्टःपदाभ्यां च शङ्खपद्मसमावृतः ॥₁₂॥

स दृष्ट्वा भ्रातरं सङ्क्षो शापाद्विभ्रष्टगौरवम् ।
उवाच वचनं धीमान्युक्तं पैतामहे कुले ॥₁₃॥

मया त्वं वार्यमाणोऽपि नावगच्छसि दुर्मते ।
पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥₁₄॥

यो हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति मानवः ।
परिणामे स वि मूढो जानीते कर्मणः फलम् ॥₁₅॥

दैवतानि हि नन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् ।
येन त्वमीदृशं भावं नीतस्तच्च न बुध्यसे ॥₁₆॥

यो हि मातृह्णितृन्भ्रातृनाचर्याश्चावमन्यते ।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥₁₇॥

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम् ।
स पश्चात्तप्यते मूढो मृतो दृष्ट्वात्मनो गतिम् ॥₁₈॥

कस्यचिन्न हि दुर्बुधेऽच्छन्दतो जायते मतिः ।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥₁₉॥

बुद्धिं रूपं बलं वित्तं पुत्रान्माहात्म्यमेव च ।
प्रप्नुवन्ति नराः सर्वं स्वकृतैः पूर्वकर्मभिः ॥₂₀॥

एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ।
न त्वां समभिभाषिष्ये दुर्वृत्तस्यैष निर्णयः ॥²¹॥

एवमुक्त्वा ततस्तेन तस्यामात्याः समाहताः ।
मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥²²॥

ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना ।
गदयाभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानाद्वकम्पत ॥²³॥

ततस्तौ राम निघ्नन्तावन्योन्यं परमाहवे ।
न विह्वलौ न च श्रान्तौ बभूवतुरमर्षणैः ॥²⁴॥

आग्नेयमस्त्रं स ततो मुमोच धनदो रणे ।
वारुणेन दशग्रीवस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥²⁵॥

ततो मायां प्रविष्टः स राक्षसीं राक्षसेश्वरः ।
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविध्य महतीं गदाम् ॥²⁶॥

एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ।
कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ॥²⁷॥

ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स धनाधिपः ।
नन्दनं वनमानीय धनदो श्वासितस्तदा ॥²⁸॥

ततो निर्जित्य तं राम धनदं राक्षसाधिपः ।
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ॥²⁹॥

काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम् ।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकामफलद्रुमम् ॥³⁰॥

तत्तु राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्जितम् ।
जिह्वा वैश्रवणं देवं कैलासादवरोहत ॥³¹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः॥

॥षोडशः सर्गः॥

स जिह्वा भ्रातरं राम धनदं राक्षसाधिपः ।
महासेनप्रसूतिं तु ययौ शरवणं ततः ॥₁॥

अथापश्यद्दशग्रीवो रौक्मं शरवणं तदा ।
गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥₂॥

पर्वतं स समासाद्य किञ्चिद्रम्यवनान्तरम् ।
अपश्यत्पुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं दिवि ॥₃॥

विष्टब्धं पुष्पकं दृष्ट्वा कामगं ह्यगमं कृतम् ।
राक्षसश्चिन्तयामास सचिवैस्तैः समावृतः ॥₄॥

किमिदं यन्निमित्तं मे न च गच्छति पुष्पकम् ।
पर्वतस्योपरिस्थस्य कस्य कर्म त्विदं भवेत् ॥₅॥

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवं मारीचो बुद्धिकोविदः ।
नैतन्निष्कारणं राजन्पुष्पकोऽयं न गच्छति ॥₆॥

ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरो बली ।
नन्दीश्वर उवाचेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥₇॥

निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शङ्करः ॥₈॥

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
प्राणिनामेव सर्वेषामगम्यः पर्वतः कृतः ॥₉॥

स रोषात्ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य च ।
कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागमत् ॥₁₀॥

नन्दीश्वरमथापश्यदविदूरस्थितं प्रभुम् ।
दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ॥₁₁॥

स वानरमुखं दृष्ट्वा तमवज्ञाय राक्षसः ।
प्रहासं मुमुचे मौख्यात्सतोय इव तोयदः ॥₁₂॥

सङ्क्रुद्धो भगवान्नन्दी शङ्करस्यापरा तनुः ।
अब्रवीद्राक्षसं तत्र दशग्रीवमुपस्थितम् ॥₁₃॥

यस्माद्वानरमूर्तिं मां दृष्ट्वा राक्षसदुर्मते ।
मौख्यात्त्वमवजानीषे परिहासं च मुञ्चसि ॥₁₄॥

तस्मान्मद्रूपसंयुक्ता मद्दीर्यसमतेजसः ।
उत्पत्स्यन्ते वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥₁₅॥

किं बिदानीं मया शक्यं कर्तुं यत्त्वां निशाचर ।
न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ॥₁₆॥

अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं निशाचरः ।
पर्वतं तं समासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁₇॥

पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः ।
तदेतच्छैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥₁₈॥

केन प्रभावेन भवस्तत्र क्रीडति राजवत् ।
विज्ञातव्यं न जानीषे भयस्थानमुपस्थितम् ॥₁₉॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्भुजान्प्रक्षिप्य पर्वते ।
तोलयामास तं शैलं समृगव्यालपादपम् ॥₂₀॥

ततो राम महादेवः प्रहसन्वीक्ष्य तत्कृतम् ।
पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥₂₁॥

ततस्ते पीडितास्तस्य शैलस्याधो गता भुजाः ।
विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥₂₂॥

रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात्तथा ।
मुक्तो विरावः सुमहांस्तैलोक्यं येन पूरितम् ॥₂₃॥

मानुषाः शब्दवित्रस्ता मेनिरे लोकसङ्क्षयम् ।
देवताश्चापि सङ्क्षुब्धाश्चलिताः स्वेषु कर्मसु ॥₂₄॥

ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितस्तदा ।
मुक्त्वा तस्य भुजान्नाजन्नाह वाक्यं दशाननम् ॥₂₅॥

प्रीतोऽस्मि तव वीर्याच्च शौण्डीर्याच्च निशाचर ।
रवतो वेदना मुक्तः स्वरः परमदारुणः ॥₂₆॥

यस्माल्लोकत्रयं त्वेतद्रावितं भयमागतम् ।
तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना तेन भविष्यसि ॥₂₇॥

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ।
एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥₂₈॥

गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धः पथा येन त्वमिच्छसि ।
मया त्वमभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥₂₉॥

साक्षान्महेश्वरेणैवं कृतनामा स रावणः ।
अभिवाद्य महादेवं विमानं तत्समारुहत् ॥₃₀॥

ततो महीतले राम परिचक्राम रावणः ।
क्षत्रियान्सुमहावीर्यान्बाधमानस्ततस्ततः ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः॥

॥सप्तदशः सर्गः॥

अथ राजन्महाबाहुर्विचरन्स महीतलम् ।
हिमवद्वनमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥₁॥

तत्रापश्यत वै कन्यां कृष्टाजिनजटाधराम् ।
आर्षेण विधिना युक्तां तपन्तीं देवतामिव ॥₂॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ।
काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥₃॥

किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ।
न हि युक्ता तवैतस्य रूपस्येयं प्रतिक्रिया ॥₄॥

कस्यासि दुहिता भद्रे को वा भर्ता तवानघे ।
पृच्छतः शंस मे शीघ्रं को वा हेतुस्तपोऽर्जने ॥₅॥

एवमुक्ता तु सा कन्या तेनानार्येण रक्षसा ।
अब्रवीद्विधिवत्कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना ॥₆॥

कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिर्मम धार्मिकः ।
बृहस्पतिसुतः श्रीमान्बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ॥₇॥

तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ।
सम्भूता वान्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ॥₈॥

ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे ॥₉॥

न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान्नाक्षसेश्वर ।

कारणं तद्वदिष्यामि निशामय महाभुज ॥₁₀॥

पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरोत्तमः ।
अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिताः ॥₁₁॥

दातुमिच्छति धर्मात्मा तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ।
शम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ।
तेन रात्रौ प्रसुप्तो मे पिता पापेन हिंसितः ॥₁₂॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा दहनं सह ॥₁₃॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ।
करोमीति ममेच्छा च हृदये साधु विष्ठिता ॥₁₄॥

अहं प्रेतगतस्यापि करिष्ये काङ्क्षितं पितुः ।
इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तपः ॥₁₅॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुङ्गव ।
आश्रितां विद्धि मां धर्मं नारायणपतीच्छया ॥₁₆॥

विज्ञातस्त्वं हि मे राजन्गच्छ पौलस्त्यनन्दन ।
जानामि तपसा सर्वं त्रैलोके यद्धि वर्तते ॥₁₇॥

सोऽब्रवीद्रावणस्तत्र तां कन्यां सुमहाव्रताम् ।
अवरुह्य विमानाग्रात्कन्दर्पशरपीडितः ॥₁₈॥

अवलिप्तासि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ।
वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते धर्मसन्धयः ॥₁₉॥

त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे कर्तुमीदृशम् ।
त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवने वार्धकं विधिम् ॥₂₀॥

कश्च तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ।
वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ।
न मयासौ समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ॥₂₁॥

म मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ।
मूर्धजेषु च तां रक्षः करग्रेण परामृशत् ॥₂₂॥

ततो वेदवती क्रुद्धा केशान्हस्तेन साच्छिनत् ।
उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतबरा ॥₂₃॥

धर्षितायास्त्वयानार्य नेदानीं मम जीवितम् ।
रक्षस्तस्मात्प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ॥₂₄॥

यस्मात्तु धर्षिता चाहमपापा चाप्यनाथवत् ।
तस्मात्तव वधार्थं वै समुत्पत्स्याम्यहं पुनः ॥₂₅॥

न हि शक्यः स्त्रिया पाप हन्तुं त्वं तु विशेषतः ।
शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ॥₂₆॥

यदि त्वस्ति मया किञ्चित्कृतं दत्तं हुतं तथा ।
तेन ह्ययोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ॥₂₇॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलन्तं वै हुताशनम् ।
पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ॥₂₈॥

पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्ययासौ निहतस्त्वया ।
समुपाश्रित्य शैलाभं तव वीर्यममानुषम् ॥₂₉॥

एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पद्यते पुनः ।
क्षेत्रे हलमुखग्रस्ते वेदामग्निशिखोपमा ॥₃₀॥

एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे ।
त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः ।

सीतोत्पन्नेति सीतैषा मानुषैः पुनरुच्यते ॥₃₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तदशः सर्गः॥

॥अष्टादशः सर्गः॥

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः ।
पुष्पकं तत्समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥₁॥

ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः ।
उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु राक्षसः ॥₂॥

संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिभ्राता साक्षाद्बृहस्पतेः ।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मणैर्वृतः ॥₃॥

दृष्ट्वा देवास्तु तद्रक्षो वरदानेन दुर्जयम् ।
तां तां योनिं समापन्नास्तस्य धर्षणभीरवः ॥₄॥

इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः ।
कृकलासो धनाध्यक्षो हंसो वै वरुणोऽभवत् ॥₅॥

तं च राजानमासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।
प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोऽस्मीति वा वद ॥₆॥

ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम् ।
अवहासं ततो मुक्त्वा राक्षसो वाक्यमब्रवीत् ॥₇॥

अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव ।
धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥₈॥

त्रिषु लोकेषु कः सोऽस्ति यो न जानाति मे बलम् ।
भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥₉॥

ततो मरुत्तो नृपतिस्तं राक्षसमथाब्रवीत् ।

धन्यः खलु भवान्येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ॥₁₀॥

नाधर्मसहितं श्लाघ्यं न लोकप्रतिसंहितम् ।
कर्म दौरात्म्यकं कृत्वा श्लाघसे भ्रातृनिर्जयात् ॥₁₁॥

किं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम् ।
श्रुतपूर्वं हि न मया यादृशं भाषसे स्वयम् ॥₁₂॥

ततः शरासनं गृह्य सायकांश्च स पार्थिवः ।
रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ॥₁₃॥

सोऽब्रवीत्स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ।
श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं सम्प्रहारो न ते क्षमः ॥₁₄॥

माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं कुलं दहेत् ।
दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रूरत्वं दीक्षिते कुतः ॥₁₅॥

संशयश्च रणे नित्यं राक्षसश्चैष दुर्जयः ।
स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुतः पृथिवीपतिः ।
विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत् ॥₁₆॥

ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ।
रावणो जितवांश्चेति हर्षान्नादं च मुक्तवान् ॥₁₇॥

तान्भक्षयित्वा तत्रस्थान्महर्षीन्यज्ञमागतान् ।
वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीम् ॥₁₈॥

रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।
ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वान्यथाब्रुवन् ॥₁₉॥

हर्षात्तदाब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ उपकाराद्धिहङ्गम ॥₂₀॥

मम नेत्रसहस्रं यत्तत्ते बर्हे भविष्यति ।
वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणम् ॥₂₁॥

नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिप ।
सुराधिपाद्वरं प्राप्य गताः सर्वे विचित्रताम् ॥₂₂॥

धर्मराजोऽब्रवीद्राम प्राग्वंशे वायसं स्थितम् ।
पक्षिंस्तवास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य च वचः शृणु ॥₂₃॥

यथान्ये विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥₂₄॥

मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहङ्गम ।
यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्भविष्यसि ॥₂₅॥

ये च मद्विषयस्थास्तु मानवाः क्षुधयार्दिताः ।
त्वयि भुक्ते तु तृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥₂₆॥

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविचारिणम् ।
श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्ररथेश्वर ॥₂₇॥

वर्णो मनोहरः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः ।
भविष्यति तवोदग्रः शुक्लफेनसमप्रभः ॥₂₈॥

मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥₂₉॥

हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः ।
पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥₃₀॥

अथाब्रवीद्वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम् ।
हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतिस्तवाप्यहम् ॥₃₁॥

सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥₃₂॥

एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन्यज्ञोत्सवे सुराः ।
निवृत्ते सह राज्ञा वै पुनः स्वभवनं गताः ॥₃₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टादशः सर्गः॥

॥एकोनविंशः सर्गः॥

अथ जिह्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ।
नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकाङ्क्षी दशाननः ॥₁॥

स समासाद्य राजेन्द्रान्महेन्द्रवरुणोपमान् ।
अब्रवीद्राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥₂॥

निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एषो हि मम निश्चयः ।
अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो वो नोपपद्यते ॥₃॥

ततस्तु बहवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मणिश्चयाः ।
निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः ॥₄॥

दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरुरवाः ।
एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः ॥₅॥

अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।
सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवामरावतीम् ॥₆॥

प्राह राजानमासाद्य युद्धं मे सम्प्रदीयताम् ।
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि ममैतदिह शासनम् ॥₇॥

अनरण्यः सुसङ्क्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ।
दीयते द्वन्द्वयुद्धं ते राक्षसाधिपते मया ॥₈॥

अथ पूर्वं श्रुतार्थेन सञ्ज्ञितं सुमहद्भि यत् ।
निष्क्रामत्तन्नेरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥₉॥

नागानां बहुसाहस्रं वाजिनामयुतं तथा ।

महीं सञ्छाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं क्षणात् ॥₁₀॥

तद्रावणबलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ।
प्राणश्र्यत तदा राजन्हव्यं हुतमिवानले ॥₁₁॥

सोऽपश्यत नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महद्वलम् ।
महार्णवं समासाद्य यथा पश्चापगा जलम् ॥₁₂॥

ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन्स्वयम् ।
आसदाद नरेन्द्रास्तं रावणं क्रोधमूर्छितः ॥₁₃॥

ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ।
तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥₁₄॥

तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतं क्वचित् ।
वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो नगमूर्धनि ॥₁₅॥

ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ।
तलेन भिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ॥₁₆॥

स राजा पतितो भूमौ विह्वलाङ्गः प्रवेपितः ।
वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो महान् ॥₁₇॥

तं प्रहस्याब्रवीद्रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम् ।
किमिदानीं त्वया प्राप्तं फलं मां प्रति युध्यता ॥₁₈॥

त्रैलोके नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप ।
शङ्के प्रमत्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥₁₉॥

तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत् ।
किं शक्यमिह कर्तुं वै यत्कालो दुरतिक्रमः ॥₂₀॥

न ह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना ।

कालेनेह विपन्नोऽहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥₂₁॥

किं बिदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये ।
इक्ष्वाकुपरिभाविबाह्वो वक्ष्यामि राक्षस ॥₂₂॥

यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ।
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक्तथा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥₂₃॥

उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
राजा परमतेजस्वी यस्ते प्राणान्ह्रिष्यति ॥₂₄॥

ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः ।
तस्मिन्नुदाहते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाद्युता ॥₂₅॥

ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम् ।
स्वर्गते च नृपे राम राक्षसः स न्यवर्तत ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः॥

॥विंशः सर्गः॥

ततो वित्रासयन्मर्त्यान्मृथिव्यां राक्षसाधिपः ।
आससाद घने तस्मिन्नारदं मुनिसत्तमम् ॥₁॥

नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः ।
अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ॥₂॥

राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत ।
प्रीतोऽस्म्यभिजनोपेत विक्रमैरूर्जितैस्तव ॥₃॥

विष्णुना दैत्यघातैश्च तार्क्ष्यस्योरगधर्षणैः ।
त्वया समरमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ॥₄॥

किञ्चिद्वक्ष्यामि तावत्ते श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि ।
श्रुत्वा चानन्तरं कार्यं त्वया राक्षसपुङ्गव ॥₅॥

किमयं वध्यते लोकस्त्वयावध्येन दैवतैः ।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ॥₆॥

पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वरमानुषम् ।
लोकमेनं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥₇॥

क्वचिद्वादित्रनृत्तानि सेव्यन्ते मुदितैर्जनैः ।
रुदते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥₈॥

माता पितृसुतस्नेहैर्भार्या बन्धुमनोरमैः ।
मोहेनायं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥₉॥

तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम् ।

जित एव ब्रया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥₁₀॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमान इवौजसा ।
अब्रवीन्नारदं तत्र सम्प्रहस्याभिवाद्य च ॥₁₁॥

महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय ।
अहं खलूद्यतो गन्तुं विजयार्थी रसातलम् ॥₁₂॥

ततो लोकत्रयं जिह्वा स्थाप्य नागान्सुरान्वशे ।
समुद्रममृतार्थं वै मथिष्यामि रसालयम् ॥₁₃॥

अथाब्रवीद्दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः ।
क्व खल्विदानीं मार्गेण ब्रयानेन गमिष्यते ॥₁₄॥

अयं खलु सुदुर्गम्यः पितृराज्ञः पुरं प्रति ।
मार्गो गच्छति दुर्धर्षो यमस्यामित्रकर्शन ॥₁₅॥

स तु शारदमेघाभं मुक्त्वा हासं दशाननः ।
उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ॥₁₆॥

तस्मादेष महाब्रह्मन्वैवस्वतवधोद्यतः ।
गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ॥₁₇॥

मया हि भगवन्क्रोधात्प्रतिज्ञातं रणार्थिना ।
अवजेप्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ॥₁₈॥

तेनैष प्रस्थितोऽहं वै पितृराजपुरं प्रति ।
प्राणिसङ्केशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ॥₁₉॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च ।
प्रययौ दक्षिणामाशां प्रहृष्टैः सह मन्त्रिभिः ॥₂₀॥

नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।

चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ॥₂₁॥

येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः ।
क्षीणे चायुषि धर्मे च स कालो हिंस्यते कथम् ॥₂₂॥

यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः ।
तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेवाभिगच्छति ॥₂₃॥

यो विधाता च धाता च सुकृते दुष्कृते यथा ।
त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं नु विजेष्यति ॥₂₄॥

अपरं किं नु कृत्वैवं विधानं संविधास्यति ।
कौतूहलसमुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः॥

॥एकविंशः सर्गः॥

एवं सञ्चिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः ।
आख्यातुं तदथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति ॥₁॥

अपश्यत्स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् ।
विधानमुपतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥₂॥

स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षिं तत्र नारदम् ।
अब्रवीत्सुखमासीनमर्घ्यमावेद्य धर्मतः ॥₃॥

कच्चित्क्षेमं नु देवर्षे कच्चिद्धर्मो न नश्यति ।
किमागमनकृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित ॥₄॥

अब्रवीत्तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः ।
श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ॥₅॥

एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः ।
उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम् ॥₆॥

एतेन कारणेनाहं बरितोऽस्म्यागतः प्रभो ।
दण्डप्रहरणस्याद्य तव किं नु करिष्यति ॥₇॥

एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ।
ददृशे दिव्यमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ॥₈॥

तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः ।
कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपं समवर्तत ॥₉॥

स त्वपश्यन्महाबाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः ।

प्राणिनः सुकृतं कर्म भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम् ॥¹⁰॥

ततस्तान्वध्यमानांस्तु कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ।
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद्वली ॥¹¹॥

प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन बलीयसा ।
प्रेतगोपाः सुसंरब्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ॥¹²॥

ते प्राप्तेः परिधैः शूलैर्मुद्गरैः शक्तितोमरैः ।
पुष्पकं समवर्षन्त शूराः शतसहस्रशः ॥¹³॥

तस्यासनानि प्रासादान्वेदिकास्तरणानि च ।
पुष्पकस्य बभञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ॥¹⁴॥

देवनिष्ठानभूतं तद्विमानं पुष्पकं मृधे ।
भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ॥¹⁵॥

ततस्ते रावणामात्या यथाकामं यथाबलम् ।
अयुध्यन्त महावीर्याः स च राजा दशाननः ॥¹⁶॥

ते तु शोणितदिग्धाङ्गाः सर्वशस्त्रसमाहताः ।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् ॥¹⁷॥

अन्योन्यं च महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्युधि ।
यमस्य च महत्सैन्यं राक्षसस्य च मन्त्रिणः ॥¹⁸॥

अमात्यांस्तांस्तु सन्त्यज्य राक्षसस्य महौजसः ।
तमेव समधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् ॥¹⁹॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
विमाने राक्षसश्रेष्ठः फुल्लाशोक इवाबभौ ॥²⁰॥

स शूलानि गदाः प्रासाज्शक्तितोमरसायकान् ।

मुसलानि शिलावृक्षान्मुमोचास्त्रबलाद्वली ॥₂₁॥

तांस्तु सर्वान्समाक्षिप्य तदस्त्रमपहत्य च ।
जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रकः ॥₂₂॥

परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ।
भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमकारयन् ॥₂₃॥

विमुक्तकवचः क्रुद्धो सिक्तः शोणितविस्रवैः ।
स पुष्पकं परित्यज्य पृथिव्यामवतिष्ठत ॥₂₄॥

ततः स कार्मुकी बाणी पृथिव्यां राक्षसाधिपः ।
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथान्तकः ॥₂₅॥

ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं सन्धाय कार्मुके ।
तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तच्चापं व्यपकर्षत ॥₂₆॥

ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे ।
मुक्तो गुल्मान्द्रुमांश्चैव भस्मकृत्वा प्रधावति ॥₂₇॥

ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु ।
रणे तस्मिन्निपतिता दावदग्धा नगा इव ॥₂₈॥

ततः स सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः ।
ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥₂₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकविंशः सर्गः॥

॥द्वाविंशः सर्गः॥

स तु तस्य महानादं श्रुत्वा वैवस्वतो यमः ।
शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च सङ्क्षयम् ॥₁॥

स तु योधान्हतान्मत्वा क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
अब्रवीच्चरितं सूतं रथः समुपनीयताम् ॥₂॥

तस्य सूतो रथं दिव्यमुपस्थाप्य महास्वनम् ।
स्थितः स च महातेजा आरुरोह महारथम् ॥₃॥

पाशमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतो स्थितः ।
येन सङ्क्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥₄॥

कालदण्डश्च पार्श्वस्थो मूर्तिमान्स्यन्दने स्थितः ।
यमप्रहरणं दिव्यं प्रज्वलन्निव तेजसा ॥₅॥

ततो लोकास्त्रयस्त्रस्ताः कम्पन्ते च दिवौकसः ।
कालं क्रुद्धं तदा दृष्ट्वा लोकत्रयभयावहम् ॥₆॥

दृष्ट्वा तु ते तं विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ।
सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सर्वलोकभयावहम् ॥₇॥

लघुसच्चतया सर्वे नष्टसंज्ञा भयार्दिताः ।
नात्र योद्धुं समर्थाः स्म इत्युक्त्वा विप्रदुद्रुवुः ॥₈॥

स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् ।
नाक्षुभ्यत तदा रक्षो व्यथा चैवास्य नाभवत् ॥₉॥

स तु रावणमासाद्य विसृज्यशक्तितोमरान् ।

यमो मर्माणि सङ्क्रुद्धो राक्षसस्य न्यकृन्तत ॥₁₀॥

रावणस्तु स्थितः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह ।
तस्मिन्वैवस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥₁₁॥

ततो महाशक्तिशतैः पात्यमानैर्महोरसि ।
प्रतिकर्तुं स नाशक्रोद्राक्षसः शल्यपीडितः ॥₁₂॥

नानाप्रहरणैरेवं यमेनामित्रकर्शिना ।
सप्तरात्रं कृते सङ्क्रुद्धो न भग्नो विजितोऽपि वा ॥₁₃॥

ततोऽभवत्पुनर्युद्धं यमराक्षसयोस्तदा ।
विजयाकाङ्क्षिणोस्तत्र समरेष्वनिवर्तिनोः ॥₁₄॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ददृशुस्तद्राजाजिरम् ॥₁₅॥

संवर्त इव लोकानामभवद्युध्यतोस्तयोः ।
राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च ॥₁₆॥

राक्षसेन्द्रस्ततः क्रुद्धश्चापमायम्य संयुगे ।
निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन्बाणान्मुमोच ह ॥₁₇॥

मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरर्दयत् ।
यमं शरसहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ॥₁₈॥

ततः क्रुद्धस्य सहसा यमस्याभिविनिःसृतः ।
ज्वालामालो विनिश्वासो वदनात्क्रोधपावकः ॥₁₉॥

ततोऽपश्यंस्तदाश्चर्यं देवदानवराक्षसाः ।
क्रोधजं पावकं दीप्तं दिधक्षन्तं रिपोर्बलम् ॥₂₀॥

मृत्युस्तु परमक्रुद्धो वैवस्वतमथाब्रवीत् ।

मुञ्च मां देव शीघ्रं त्वं निहन्मि समरे रिपुम् ॥²¹॥

नरकः शम्बरो वृत्रः शम्भुः कार्तस्वरो बली ।
नमुचिर्विरोचनश्चैव तावुभौ मधुकैटभौ ॥²²॥

एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः ।
विनिपन्ना मया दृष्टाः का चिन्तास्मिन्निशाचरे ॥²³॥

मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्यहम् ।
न हि कश्चिन्मया दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥²⁴॥

बलं मम न खल्वेतन्मर्यादेषा निसर्गतः ।
संस्पृष्टो हि मया कश्चिन्न जीवेदिति निश्चयः ॥²⁵॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत्तत्र तं मृत्युमयमेनं निहन्यहम् ॥²⁶॥

ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ।
कालदण्डममोघं तं तोलयामास पाणिना ॥²⁷॥

यस्य पार्श्वेषु निश्छिद्राः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकस्पर्शसङ्काशो मुद्गरो मूर्तिमान्स्थितः ॥²⁸॥

दर्शनादेव यः प्राणान्प्राणिनामुपरुध्यति ।
किं पुनस्ताडनाद्वापि पीडनाद्वापि देहिनः ॥²⁹॥

स ज्वालापरिवारस्तु पिबन्निव निशाचरम् ।
करस्पृष्टो बलवता दण्डः क्रुद्धः सुदारुणः ॥³⁰॥

ततो विदुद्भुवः सर्वे सत्त्वास्तस्माद्रणाजिरात् ।
सुराश्च क्षुभिता दृष्ट्वा कालदण्डोद्यतं यमम् ॥³¹॥

तस्मिन्प्रहर्तुकामे तु दण्डमुद्यम्य रावणम् ।

यमं पितामहः साक्षाद्दर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥₃₂॥

वैवस्वत महाबाहो न खल्वतुलविक्रम ।
प्रहर्तव्यं त्वयैतेन दण्डेनास्मिन्निशाचरे ॥₃₃॥

वरः खलु मया दत्तस्तस्य त्रिदशपुङ्गव ।
तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं वचः ॥₃₄॥

अमोघो ह्येष सर्वासां प्रजानां विनिपातने ।
कालदण्डो मया सृष्टः पूर्वं मृत्युपुरस्कृतः ॥₃₅॥

तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो राक्षसमूर्धनि ।
न ह्यस्मिन्पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥₃₆॥

यदि ह्यस्मिन्निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः ।
म्रियेत वा दशग्रीवस्तथाप्युभयतोऽनृतम् ॥₃₇॥

राक्षसेन्द्रान्नियच्छाद्य दण्डमेनं वधोद्यतम् ।
सत्यं मम कुरुष्वेदं लोकांस्त्वं समवेक्ष्य च ॥₃₈॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ।
एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्भवान्हि नः ॥₃₉॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि ।
यन्मया यन्न हन्तव्यो राक्षसो वरदर्पितः ॥₄₀॥

एष तस्मात्प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः ।
इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥₄₁॥

दशग्रीवस्तु तं जिह्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
पुष्पकेण तु संहृष्टो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥₄₂॥

ततो वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः ।

जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥₄₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः॥

॥त्रयोविंशः सर्गः॥

स तु जिह्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम् ।
रावणस्तु जयश्लाघी स्वसहायान्ददर्श ह ॥₁॥

जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः ।
पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्विता रवणेन ह ॥₂॥

ततो रसातलं हृष्टः प्रविष्टः पयसो निधिम् ।
दैत्योरग गणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ॥₃॥

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ।
स्थाप्य नागान्वशे कृत्वा ययौ मणिमतीं पुरीम् ॥₄॥

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन् ।
राक्षसस्तान्समासाद्य युद्धेन समुपाह्वयत् ॥₅॥

ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः ।
नानाप्रहरणास्तत्र प्रयुद्धा युद्धदुर्मदाः ॥₆॥

तेषां तु युध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः ।
न चान्यतरयोस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥₇॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरव्ययः ।
आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ॥₈॥

निवातकवचानां तु निवार्य रणकर्म तत् ।
वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ॥₉॥

न ह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।

न भवन्तः क्षयं नेतुं शक्याः सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥₁₀॥

राक्षसस्य सखिबन्धं वै भवद्भिः सह रोचते ।
अविभक्ता हि सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ॥₁₁॥

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः ।
निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत्तदा ॥₁₂॥

अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरसुखोषितः ।
स्वपुरान्निर्विशेषं च पूजां प्राप्तो दशाननः ॥₁₃॥

स तूपधार्यं मायानां शतमेकोनमात्मवान् ।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी स बभ्राम रसातलम् ॥₁₄॥

ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयाभिरक्षितम् ।
तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ॥₁₅॥

ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव संस्थितम् ।
वरुणस्यालयं दिव्यमपश्यद्राक्षसाधिपः ॥₁₆॥

क्षरन्तीं च पयो नित्यं सुरभिं गामवस्थिताम् ।
यस्याः पयोविनिष्यन्दात्क्षीरोदो नाम सागरः ॥₁₇॥

यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिः प्रजाहितः ।
यं समासाद्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः ।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं सुरा चापि सुराशिनाम् ॥₁₈॥

यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः ।
प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ।
प्रविवेश महाघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः ॥₁₉॥

ततो धाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा ।
नित्यप्रहृष्टं ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम् ॥₂₀॥

ततो हत्वा बलाध्यक्षान्समरे तैश्च ताडितः ।
अब्रवीत्क्व गतो यो वो राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ॥₂₁॥

युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् ।
वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोऽस्मीति साञ्जलिः ॥₂₂॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः ।
पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन्गौश्च पुष्कर एव च ॥₂₃॥

ते तु वीर्यगुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः ।
युक्त्वा रथान्कामगमानुद्यद्भास्करवर्चसः ॥₂₄॥

ततो युद्धं समभवद्दारुणं लोमहर्षणम् ।
सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च रक्षसः ॥₂₅॥

अमात्यैस्तु महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः ।
वारुणं तद्धतं कृत्स्नं क्षणेन विनिपातितम् ॥₂₆॥

समीक्ष्य स्वबलं सङ्ख्यो वरुणस्या सुतास्तदा ।
अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः ॥₂₇॥

महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके ।
आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥₂₈॥

महदासीत्ततस्तेषां तुल्यं स्थानमवाप्य तत् ।
आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥₂₉॥

ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसंनिभैः ।
विमुखीकृत्य संहृष्टा विनेदुर्विविधान्रवान् ॥₃₀॥

ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं दृश्य धर्षितम् ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युद्धकाङ्क्षी व्यलोकयत् ॥₃₁॥

तेन तेषां हया ये च कामगाः पवनोपमाः ।
महोदरेण गदया हतास्ते प्रययुः क्षितिम् ॥₃₂॥

तेषां वरुणसूनूनां हत्वा योधान्ह्यांश्च तान् ।
मुमोचाशु महानादं विरथान्प्रेक्ष्य तान्स्थितान् ॥₃₃॥

ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्वरैः ।
महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥₃₄॥

ते तु त्यक्त्वा रथान्पुत्रा वरुणस्य महात्मनः ।
आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः ॥₃₅॥

धनूंषि कृत्वा सज्यानि विनिर्भिद्य महोदरम् ।
रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समभिद्रवन् ॥₃₆॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव विष्ठितः ।
शरवर्षं महावेगं तेषां मर्मस्त्रपातयत् ॥₃₇॥

मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च ।
पट्टसांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीस्तोमरांस्तथा ।
पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः ॥₃₈॥

अथ विद्धास्तु ते वीरा विनिष्पेतुः पदातयः ॥₃₉॥

ततो रक्षो महानादं मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान् ।
नानाप्रहरणैर्घोरैर्धारापातैरिवाम्बुदः ॥₄₀॥

ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले ।
रणात्स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः ॥₄₁॥

तानब्रवीत्ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ।
रावणं चाब्रवीन्मन्त्री प्रभासो नाम वारुणः ॥₄₂॥

गतः खलु महातेजा ब्रह्मलोकं जलेश्वरः ।

गान्धर्व वरुणः श्रोतुं यं ब्रमाह्वयसे युधि ॥₄₃॥

तत्किं तव वृथा वीर परिश्राम्य गते नृपे ।
ये तु संनिहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ॥₄₄॥

राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
हर्षान्नादं विमुञ्चन्वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥₄₅॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ।
लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ॥₄₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः॥

॥चतुर्विंशः सर्गः॥

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान् ।
जह्ने पथि नरेन्द्रर्षिदेवगन्धर्वकन्यकाः ॥₁॥

दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति ।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने संन्यवेशयत् ॥₂॥

तत्र पन्नगयक्षाणां मानुषाणां च रक्षसाम् ।
दैत्यानां दानवानां च कन्या जग्राह रावणः ॥₃॥

दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
शोकायत्तास्तरुण्यश्च समस्ता स्तननम्रिताः ॥₄॥

तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निभयसम्भवम् ।
प्रवेपमाना दुःखार्ता मुमुचुर्बाष्पजं जलम् ॥₅॥

तासां निश्चसमानानां निश्चसैः सम्प्रदीपितम् ।
अग्निहोत्रमिवाभाति संनिरुद्धाग्निपुष्पकम् ॥₆॥

काचिद्ध्वौ सुदुःखार्ता हन्यादपि हि मामयम् ।
स्मृत्वा मातृत्पितृन्भ्रातृन्पुत्रान्वै श्वशुरानपि ।
दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः ॥₇॥

कथं नु खलु मे पुत्रः करिष्यति मया विना ।
कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे ॥₈॥

हा कथं नु करिष्यामि भर्तारं दैवतं विना ।
मृत्यो प्रसीद याचे त्वां नय मां यमसादनम् ॥₉॥

किं नु मे दुष्कृतं कर्म कृतं देहान्तरे पुरा ।
ततोऽस्मि धर्षितानेन पतिता शोकसागरे ॥₁₀॥

न खल्विदानीं पश्यामि दुःखस्यान्तमिहात्मनः ।
अहो धिन्मानुषाँल्लोकान्नास्ति खल्वधमः परः ॥₁₁॥

यदुर्बला बलवता बान्धवा रावणेन मे ।
उदितेनैव सूर्येण तारका इव नाशिताः ॥₁₂॥

अहो सुबलवद्रक्षो वधोपायेषु रज्यते ।
अहो दुर्वृत्तमात्मानं स्वयमेव न बुध्यते ॥₁₃॥

सर्वथा सदृशस्तावद्विक्रमोऽस्य दुरात्मनः ।
इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ॥₁₄॥

यस्मादेष परख्यासु स्त्रीषु रज्यति दुर्मतिः ।
तस्माद्धि स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यति वारणः ॥₁₅॥

शप्तः स्त्रीभिः स तु तदा हततेजाः सुनिष्प्रभ ।
पतिव्रताभिः साध्वीभिः स्थिताभिः साधु वर्त्मनि ॥₁₆॥

एवं विलपमानासु रावणो राक्षसाधिपः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥₁₇॥

ततो राक्षसराजस्य स्वसा परमदुःखिता ।
पादयोः पतिता तस्य वक्तुमेवोपचक्रमे ॥₁₈॥

ततः स्वसारमुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ।
अब्रवीत्किमिदं भद्रे वक्तुमर्हसि मे द्रुतम् ॥₁₉॥

सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
हतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता कृता ॥₂₀॥

एते विर्याच्चया राजन्दैत्या विनिहता रणे ।
कालकेया इति ख्याता महाबलपराक्रमाः ॥₂₁॥

तत्र मे निहतो भर्ता गरीयाञ्जीवितादपि ।
स त्वया दयितस्तत्र भ्रात्रा शत्रुसमेन वै ॥₂₂॥

या त्वयास्मि हता राजन्स्त्वयमेवेह बन्धुना ।
दुःखं वैधव्यशब्दं च दत्तं भोक्ष्याम्यहं त्वया ॥₂₃॥

ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ।
तं निहत्य रणे राजन्स्त्वयमेव न लज्जसे ॥₂₄॥

एवमुक्तस्तया रक्षो भगिन्या क्रोशमानया ।
अब्रवीत्सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः ॥₂₅॥

अलं वत्से विषादेन न भेतव्यं च सर्वशः ।
मानदानविशेषैस्त्वां तोषयिष्यामि नित्यशः ॥₂₆॥

युद्धे प्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयकाङ्क्षी क्षिपञ्शरान् ।
नावगच्छामि युद्धेषु स्वान्परान्वाप्यहं शुभे ।
तेनासौ निहतः सङ्क्षो मया भर्ता तव स्वसः ॥₂₇॥

अस्मिन्काले तु यत्प्राप्तं तत्करिष्यामि ते हितम् ।
भ्रातुरैश्वर्यसंस्थस्य खरस्य भव पार्श्वतः ॥₂₈॥

चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ।
प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महौजसाम् ॥₂₉॥

तत्र मातृष्वसुः पुत्रो भ्राता तव खरः प्रभुः ।
भविष्यति सदा कुर्वन्त्यद्वक्ष्यसि वचः स्वयम् ॥₃₀॥

शीघ्रं गच्छत्वयं शूरो दण्डकान्परिरक्षितुम् ।
दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः ॥₃₁॥

स हि शप्तो वनोद्देशः क्रुद्धेनोशनसा पुरा ।
राक्षसानामयं वासो भविष्यति न संशयः ॥₃₂॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यं तस्यादिदेश ह ।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ॥₃₃॥

स तैः सर्वैः परिवृतो राक्षसैर्घोरदर्शनैः ।
खरः सम्प्रययौ शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः ॥₃₄॥

स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ।
सा च शूर्पणखा प्रीता न्यवसद्वण्डकावने ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥

॥पञ्चविंशः सर्गः॥

स तु दत्त्वा दशग्रीवो वनं घोरं खरस्य तत् ।
भगिनीं च समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत् ॥₁॥

ततो निकुम्भिला नाम लङ्कायाः काननं महत् ।
महात्मा राक्षसेन्द्रस्तत्प्रविवेश सहानुगः ॥₂॥

तत्र यूपशताकीर्णं सौम्यचैत्योपशोभितम् ।
ददर्श विष्ठितं यज्ञं सम्प्रदीप्तमिव श्रिया ॥₃॥

ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम् ।
ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादमरिन्दमम् ॥₄॥

रक्षःपतिः समासाद्य समाश्लिष्य च बाहुभिः ।
अब्रवीत्किमिदं वत्स वर्तते तद्वीहि मे ॥₅॥

उशना त्वब्रवीत्तत्र गुरुर्यज्ञसमृद्धये ।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः ॥₆॥

अहमाख्यामि ते राजञ्श्रूयतां सर्वमेव च ।
यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्ताः सुबहुविस्तराः ॥₇॥

अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः ।
राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥₈॥

माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुम्भिः सुदुर्लभे ।
वरांस्ते लब्धवान्पुत्रः साक्षात्पशुपतेरिह ॥₉॥

कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम् ।

मायां च तामसीं नाम यया सम्पद्यते तमः ॥₁₀॥

एतया किल सङ्ग्रामे मायया राक्षसेश्वर ।
प्रयुद्धस्य गतिः शक्या न हि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥₁₁॥

अक्षयाविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम् ।
अस्त्रं च बलवत्सौम्य शत्रुविध्वंसनं रणे ॥₁₂॥

एतान्सर्वान्वराँल्लब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन ।
अद्य यज्ञसमाप्तौ च तत्प्रतीक्षः स्थितो अहम् ॥₁₃॥

ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम् ।
पूजिताः शत्रवो यस्माद्भव्यैरिन्द्रपुरोगमाः ॥₁₄॥

एहीदानीं कृतं यद्धि तदकर्तुं न शक्यते ।
आगच्छ सौम्य गच्छामः स्वमेव भवनं प्रति ॥₁₅॥

ततो गत्वा दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः ।
स्त्रियोऽवतारयामास सर्वास्ता बाष्पविक्रवाः ॥₁₆॥

लक्षिण्यो रत्नबूताश्च देवदानवरक्षसाम् ।
नानाभूषणसम्पन्ना ज्वलन्त्यः स्वेन तेजसा ॥₁₇॥

विभीषणस्तु ता नारीर्दृष्ट्वा शोकसमाकुलाः ।
तस्य तां च मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥₁₈॥

ईदृशैस्तैः समाचारैर्यशोऽर्थकुलनाशनैः ।
धर्षणं प्राणिनां दत्त्वा स्वमतेन विचेष्टसे ॥₁₉॥

ज्ञातीन्वै धर्षयिष्येमास्त्वयानीता वराङ्गनाः ।
त्वामतिक्रम्य मधुना राजन्कुम्भीनसी हृता ॥₂₀॥

रावणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नावगच्छामि किं त्विदम् ।

को वायं यस्त्वयाख्यातो मधुरित्येव नामतः ॥₂₁॥

विभीषणस्तु सङ्क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम् ॥₂₂॥

मातामहस्य योऽस्माकं ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः ।
माल्यवानिति विख्यातो वृद्धप्राज्ञो निशाचरः ॥₂₃॥

पितुर्ज्येष्ठो जनन्याश्च अस्माकं द्वार्यकोऽभवत् ।
तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताभवत् ॥₂₄॥

मातृष्वसुरथास्माकं सा कन्या चानलोद्भवा ।
भवत्यस्माकमेषा वै भ्रातॄणां धर्मतः स्वसा ॥₂₅॥

सा हता मधुना राजन्नाक्षसेन बलीयसा ।
यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे ते मयि चान्तर्जलोषिते ॥₂₆॥

निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यांस्तव सम्मतान् ।
धर्षयित्वा हता राजन्गुप्ता ह्यन्तःपुरे तव ॥₂₇॥

श्रुत्वा बेतन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः ।
यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि दातृभिः ।
अस्मिन्नेवासिम्प्राप्तं लोके विदितमस्तु ते ॥₂₈॥

ततोऽब्रवीद्विशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सञ्जीभवन्तु च ॥₂₉॥

भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ।
वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः ॥₃₀॥

अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ।
इन्द्रलोकं गमिष्यामि युद्धकाङ्क्षी सुहृद्वतः ॥₃₁॥

ततो विजित्य त्रिदिवं वशे स्थाप्य पुरन्दरम् ।
निर्वृतो विहरिष्यामि त्रैलोक्यैश्वर्यशोभितः ॥₃₂॥

अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्युग्राणि रक्षसाम् ।
नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम् ॥₃₃॥

इन्द्रजित्त्वग्रतः सैन्यं सैनिकान्परिगृह्य च ।
रावणो मध्यतः शूरः कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ॥₃₄॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरत् ।
ते तु सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति ॥₃₅॥

रथैर्नागैः खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैर्महोरगैः ।
राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाकाशं निरन्तरम् ॥₃₆॥

दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराः सुरैः सह ।
रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन्त पृष्ठतः ॥₃₇॥

स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ।
न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ॥₃₈॥

सा प्रह्ला प्राञ्जलिर्भूत्वा शिरसा पादयोर्गता ।
तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी स्वसा ॥₃₉॥

तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ।
रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ॥₄₀॥

साब्रवीद्यदि मे राजन्प्रसन्नस्त्वं महाबल ।
भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद ॥₄₁॥

सत्यवाग्भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ।
त्वया ह्युक्तं महाबाहो न भेतव्यमिति स्वयम् ॥₄₂॥

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ।
क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम् ॥⁴³॥

सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयाय वै ।
तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात् ॥⁴⁴॥

इत्युक्ता सा प्रसुप्तं तं समुत्थाप्य निशाचरम् ।
अब्रवीत्सम्प्रहृष्टेव राक्षसी सुविपश्चितम् ॥⁴⁵॥

एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता निशाचरः ।
सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च ॥⁴⁶॥

तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ।
स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम् ॥⁴⁷॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ।
ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्यायमुपेत्य सः ॥⁴⁸॥

पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्राप्तपूजो दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान् ।
तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥⁴⁹॥

ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम् ।
राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥⁵⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥

॥षड्विंशः सर्गः॥

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् ।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥₁॥

उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि ।
स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादोपशोभितान् ॥₂॥

कर्णिकारवनैर्दिव्यैः कदम्बगहनैस्तथा ।
पद्मिनीभिश्च फुल्लाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥₃॥

घण्टानामिव संनादः शुश्रुवे मधुरस्वनः ।
अप्सरोगणसङ्घनां गायतां धनदालये ॥₄॥

पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ।
शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥₅॥

मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ।
प्रववौ वर्धयन्कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ॥₆॥

गेयात्पुष्पसमृद्ध्या च शैत्याद्वायोर्गुणैर्गिरिः ।
प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥₇॥

रावणः सुमहावीर्यः कामबाणवशं गतः ।
विनिश्चस्य विनिश्चस्य शशिनं समवैक्षत ॥₈॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्यपुष्पविभूषिता ।
सर्वाप्सररोवरा रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥₉॥

कृतैर्विशेषकैराद्रैः षडर्तुकुसुमोत्सवैः ।

नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवगुण्ठिता ॥₁₀॥

यस्य वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ।
ऊरू करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ ।
सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपलक्षिता ॥₁₁॥

तां समुत्थाय रक्षेन्द्रः कामबाणबलार्दितः ।
करे गृहीत्वा गच्छन्तीं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥₁₂॥

क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ।
कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥₁₃॥

तवाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥₁₄॥

स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ।
कस्योरस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥₁₅॥

सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामचितं पृथु ।
अध्यारोक्ष्यति कस्तेऽद्य स्वर्गं जघनरूपिणम् ॥₁₆॥

मद्विशिष्टः पुमान्कोऽन्यः शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ।
मामतीत्य हि यस्य त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥₁₇॥

विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ।
त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव तुल्यो मम न विद्यते ॥₁₈॥

तदेष प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः ।
यः प्रभुश्चापि भर्ता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥₁₉॥

एवमुक्ताब्रवीद्रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः ।
प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥₂₀॥

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्तुयां धर्षणं यदि ।
धर्मतश्च स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद्वीमि ते ॥₂₁॥

अब्रवीत्तां दशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम् ।
सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं मे स्नुषा भवेः ॥₂₂॥

बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ।
धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुङ्गव ॥₂₃॥

पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ।
ख्यातो यस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्यसौ ॥₂₄॥

धर्मतो यो भवेद्विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ।
क्रोधाद्यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ॥₂₅॥

तस्यास्मि कृतसङ्केता लोकपालसुतस्य वै ।
तमुद्दिश्य च मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ॥₂₆॥

यस्य तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ।
तेन सत्येन मां राजन्मोक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥₂₇॥

स हि तिष्ठति धर्मात्मा साम्प्रतं मत्समुत्सुकः ।
तन्न विघ्नं सुतस्येह कर्तुमर्हसि मुञ्च माम् ॥₂₈॥

सद्गिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ।
माननीयो मया हि त्वं लालनीया तथास्मि ते ॥₂₉॥

एवं ब्रुवाणां रम्भां तां धर्मार्थसहितं वचः ।
निर्भर्त्स्य राक्षसो मोहात्प्रतिगृह्य बलाद्वली ।
काममोहाभिसंरब्धो मैथुनायोपचक्रमे ॥₃₀॥

सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ।
गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता ॥₃₁॥

सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलिः ।
नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह ॥₃₂॥

तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ।
अब्रवीत्किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे ॥₃₃॥

सा तु निश्चसमाना च वेपमानाथ साञ्जलिः ।
तस्मै सर्वं यथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ॥₃₄॥

एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ।
तेन सैन्यसहायेन निशेह परिणाम्यते ॥₃₅॥

आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिन्दम ।
गृहीत्वा तेन पृष्टास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा ॥₃₆॥

मया तु सर्वं यत्सत्यं तद्धि तस्मै निवेदितम् ।
काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत्तद्वचो मम ॥₃₇॥

याच्यमानो मया देव स्नुषा तेऽहमिति प्रभो ।
तत्सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात्तेनास्मि धर्षिता ॥₃₈॥

एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि मानद ।
न हि तुल्यं बलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य च ॥₃₉॥

एवं श्रुत्वा तु सङ्क्रुद्धस्तदा वैश्वरणात्मजः ।
धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं सम्प्रविवेश ह ॥₄₀॥

तस्य तत्कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ।
मुहूर्ताद्रोषताम्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना ॥₄₁॥

गृहीत्वा सलिलं दिव्यमुपस्पृश्य यथाविधि ।
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ॥₄₂॥

अकामा तेन यस्माच्च बलाद्भद्रे प्रधर्षिता ।
तस्मात्स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ॥₄₃॥

यदा बकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ॥₄₄॥

तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्युता ॥₄₅॥

प्रजापतिमुखाश्चापि सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ।
ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वा तस्य मृत्युं च रक्षसः ॥₄₆॥

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।
नारीषु मैथुनं भावं नाकामास्त्रभ्यरोचयत् ॥₄₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः॥

॥सप्तविंशः सर्गः॥

कैलासं लङ्घयित्वाथ दशग्रीवः सराक्षसः ।
आससाद महातेजा इन्द्रलोकं निशाचरः ॥₁॥

तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यतः ।
देवलोकं ययौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ॥₂॥

श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रः सञ्चलितासनः ।
अब्रवीत्तत्र तान्देवान्सर्वानेव समागतान् ॥₃॥

आदित्यान्सवसूनुद्रान्विश्वान्साध्यान्मरुद्गणान् ।
सञ्जीभवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥₄॥

एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमा युधि ।
संनह्यन्त महासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥₅॥

स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति ।
विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥₆॥

विष्णो कथं करिष्यामो महावीर्यपराक्रम ।
असौ हि बलवान्नक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥₇॥

वरप्रदानाद्वलवान्न खल्वन्येन हेतुना ।
तच्च सत्यं हि कर्तव्यं वाक्यं देव प्रजापतेः ॥₈॥

तद्यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ ।
बन्मतं समवष्टभ्य यथा दग्धास्तथा कुरु ॥₉॥

न ह्यन्यो देव देवानामापत्सु सुमहाबल ।

गतिः परायणं वास्ति त्वामृते पुरुषोत्तम ॥₁₀॥

त्वं हि नारायणः श्रीमान्पद्मनाभः सनातनः ।
त्वयाहं स्थापितश्चैव देवराज्ये सनातने ॥₁₁॥

तदाख्याहि यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम् ।
असिचक्रसहायस्त्वं युध्यसे संयुगे रिपुम् ॥₁₂॥

एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः ।
अब्रवीन्न परित्रासः कार्यस्ते श्रूयतां च मे ॥₁₃॥

न तावदेष दुर्वृत्तः शक्यो दैवतदानवैः ।
हन्तुं युधि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥₁₄॥

सर्वथा तु महत्कर्म करिष्यति बलोत्कटः ।
रक्षः पुत्रसहायोऽसौ दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥₁₅॥

ब्रवीषि यत्तु मां शक्र संयुगे योत्स्यसीति ह ।
नैवाहं प्रतियोत्स्ये तं रावणं राक्षसाधिपम् ॥₁₆॥

अनिहत्य रिपुं विष्णुर्न हि प्रतिनिवर्तते ।
दुर्लभश्चैष कामोऽद्य वरमासाद्य राक्षसे ॥₁₇॥

प्रतिजानामि देवेन्द्र त्वत्समीपं शतक्रतो ।
राक्षसस्याहमेवास्य भविता मृत्युकारणम् ॥₁₈॥

अहमेनं वधिष्यामि रावणं ससुतं युधि ।
देवतास्तोषयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपस्थितम् ॥₁₉॥

एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्रुवे रजनीक्षये ।
तस्य रावणसैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ॥₂₀॥

अथ युद्धं समभवद्देवराक्षसयोस्तदा ।

घोरं तुमुलनिर्हादं नानाप्रहरणायुधम् ॥²¹॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
युद्धार्थमभ्यधावन्त सचिवा रावणाज्ञया ॥²²॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्वमहोदरो ।
अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥²³॥

संहादिर्धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो महामुखः ।
जम्बुमाली महामाली विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥²⁴॥

एतैः सर्वैर्महावीर्यैर्वृतो राक्षसपुङ्गवः ।
रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ॥²⁵॥

स हि देवगणान्सर्वान्नानाप्रहरणैः शितैः ।
विध्वंसयति सङ्क्रुद्धः सह तैः क्षणदाचरैः ॥²⁶॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ।
सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश महारणम् ॥²⁷॥

ततो युद्धं समभवत्सुराणां राक्षसैः सह ।
क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥²⁸॥

ततस्ते राक्षसाः शूरा देवांस्तान्समरे स्थितान् ।
नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ॥²⁹॥

सुरास्तु राक्षसान्घोरान्महावीर्यान्स्वतेजसा ।
समरे विविधैः शस्त्रैरनयन्यमसादनम् ॥³⁰॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सुमाली नाम राक्षसः ।
नानाप्रहरणैः क्रुद्धो रणमेवाभ्यवर्तत ॥³¹॥

देवानां तद्वलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ।

विध्वंसयति सङ्क्रुद्धो वायुर्जलधरानिव ॥₃₂॥

ते महाबाणवर्षेऽश्व शूलैः प्रासैश्च दारुणैः ।
पीड्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्समाहिताः ॥₃₃॥

ततो विद्राव्यमाणेषु त्रिदशेषु सुमालिना ।
वसूनामष्टमो देवः सावित्रो व्यवतिष्ठत ॥₃₄॥

संवृतः स्त्रैरनीकैस्तु प्रहरन्तं निशाचरम् ।
विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ॥₃₅॥

सुमत्तयोस्तयोरासीद्युद्धं लोके सुदारुणम् ।
सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ॥₃₆॥

ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ।
महान्स पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ॥₃₇॥

हत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैः शितैः ।
गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ॥₃₈॥

तां प्रदीप्तां प्रगृह्याशु कालदण्डनिभां शुभाम् ।
तस्य मूर्धनि सावित्रः सुमालेर्विनिपातयत् ॥₃₉॥

तस्य मूर्धनि सोल्काभा पतन्ती च तदा बभौ ।
सहस्राक्षसमुत्सृष्टा गिराविव महाशनिः ॥₄₀॥

तस्य नैवास्थि कायो वा न मांसं ददृशे तदा ।
गदया भस्मसाद्भूतो रणे तस्मिन्निपातितः ॥₄₁॥

तं दृष्ट्वा निहतं सङ्क्रुद्धो राक्षसास्ते समन्ततः ।
दुद्रुवुः सहिताः सर्वे क्रोशमाना महास्वनम् ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥

॥ अष्टाविंशः सर्गः ॥

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम् ।
विद्रुतं चापि स्वं सैन्यं लक्षयित्वादितं शरैः ॥₁॥

ततः स बलवान्क्रुद्धो रावणस्य सुतो युधि ।
निवर्त्य राक्षसान्सर्वान्मेघनादो व्यतिष्ठत ॥₂॥

स रथेनाग्निवर्णेन कामगेन महारथः ।
अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥₃॥

ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ।
विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा देवास्तस्य च दर्शनात् ॥₄॥

न तत्रावस्थितः कश्चिद्रणे तस्य युयुत्सतः ।
सर्वानाविध्य वित्रस्तान्दृष्ट्वा शक्रोऽभ्यभाषत ॥₅॥

न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणं प्रति ।
एष गच्छति मे पुत्रो युद्धार्थमपराजितः ॥₆॥

ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः ।
रथेनाद्भुतकल्पेन सङ्ग्राममभिवर्तत ॥₇॥

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम् ।
रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य व्यवस्थिताः ॥₈॥

तेषां युद्धं महदभूत्सदृशं देवरक्षसाम् ।
कृते महेन्द्रपुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥₉॥

ततो मातलिपुत्रे तु गोमुखे राक्षसात्मजः ।

सारथौ पातयामास शरान्काञ्चनभूषणान् ॥₁₀॥

शचीसुतस्त्वपि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।
तं चैव रावणिं क्रुद्धः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ॥₁₁॥

ततः क्रुद्धो महातेजा रक्षो विस्फारितेक्षणः ।
रावणिः शक्रपुत्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥₁₂॥

ततः प्रगृह्य शस्त्राणि सारवन्ति महान्ति च ।
शतघ्नीस्तोमरान्प्रासान्गदाखड्गपरश्वधान् ।
सुमहान्त्यद्रिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः ॥₁₃॥

ततः प्रव्यथिता लोकाः संजज्ञे च तमो महत् ।
तस्य रावणपुत्रस्य तदा शत्रूनभिघ्नतः ॥₁₄॥

ततस्तद्वैतबलं समन्तात्तं शचीसुतम् ।
बहुप्रकारमस्त्रस्थं तत्र तत्र स्म धावति ॥₁₅॥

नाभ्यजानंस्तदान्योन्यं शत्रून्वा दैवतानि वा ।
तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात्परिधावितम् ॥₁₆॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ।
दैतेयस्तेन सङ्गृह्य शचीपुत्रोऽपवाहितः ॥₁₇॥

गृहीत्वा तं तु नप्तारं प्रविष्टः स महोदधिम् ।
मातामहोऽर्यकस्तस्य पौलोमी येन सा शची ॥₁₈॥

प्रणाशं दृश्य तु सुरा जयन्तस्यातिदारुणम् ।
व्यथिताश्चाप्रहृष्टाश्च समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥₁₉॥

रावणिस्त्वथ संहृष्टो बलैः परिवृतः स्त्रकैः ।
अभ्यधावत देवांस्तान्मुमोच च महास्वनम् ॥₂₀॥

दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य रावणेश्चापि विक्रमम् ।
मातलिं प्राह देवेन्द्रो रथः समुपनीयताम् ॥²¹॥

स तु दिव्यो महाभीमः सञ्ज एव महारथः ।
उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो मनोजवः ॥²²॥

ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडिद्वन्तो महास्वनाः ।
अग्रतो वायुचपला गच्छन्तो व्यनदंस्तदा ॥²³॥

नानावाद्यानि वाद्यन्त स्तुतयश्च समाहिताः ।
ननृतुश्चाप्सरःसङ्घाः प्रयाते वासवे रणम् ॥²⁴॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः साध्यैश्च समरुद्रणैः ।
वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥²⁵॥

निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषं पवनो ववौ ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीन्महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥²⁶॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥²⁷॥

पन्नगैः सुमहाकायैर्वेष्टितं लोमहर्षणैः ।
येषां निश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगम् ॥²⁸॥

दैत्यैर्निशाचरैः शूरे रथः सम्परिवारितः ।
समराभिमुखो दिव्यो महेन्द्रमभिवर्तत ॥²⁹॥

पुत्रं तं वारयित्वासौ स्वयमेव व्यवस्थितः ।
सोऽपि युद्धाद्विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥³⁰॥

ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह ।
शस्त्राभिवर्षणं घोरं मेघानामिव संयुगे ॥³¹॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ।
नाज्ञायत तदा युद्धे सह केनाप्ययुध्यत ॥³²॥

दत्तैर्भुजाभ्यां पद्भ्यां च शक्तितोमरसायकैः ।
येन केनैव संरब्धस्ताडयामास वै सुरान् ॥³³॥

ततो रुद्रैर्महाभागैः सहादित्यैर्निशाचरः ।
प्रयुद्धस्तैश्च सङ्ग्रामे कृत्तः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥³⁴॥

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं त्रिदशैः समरुद्रणैः ।
रणे विद्रावितं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ॥³⁵॥

केचिद्विनिहताः शस्त्रैर्वेष्टन्ति स्म महीतले ।
वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥³⁶॥

रथान्नागान्खरानुष्ट्रान्यन्नगांस्तुरगांस्तथा ।
शिंशुमारान्वराहांश्च पिशाचवदनांस्तथा ॥³⁷॥

तान्समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुच्छ्रिताः ।
देवैस्तु शस्त्रसंविद्धा मग्निरे च निशाचराः ॥³⁸॥

चित्रकर्म इवाभाति स तेषां रणसम्प्लवः ।
निहतानां प्रमत्तानां राक्षसानां महीतले ॥³⁹॥

शोणितोदक निष्यन्दाकङ्कगृध्रसमाकुला ।
प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥⁴⁰॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
निरीक्ष्य तद्वलं सर्वं देवतैर्विनिपातितम् ॥⁴¹॥

स तं प्रतिविगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ।
त्रिदशान्समरे निघ्नञ्शक्रमेवाभ्यवर्तत ॥⁴²॥

ततः शक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम् ।
यस्य विस्फारघोषेण स्वनन्ति स्म दिशो दश ॥₄₃॥

तद्विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।
निपातयामास शरान्पावकादित्यवर्चसः ॥₄₄॥

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो व्यवस्थितः ।
शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥₄₅॥

प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः ।
नाज्ञायत तदा किञ्चित्सर्वं हि तमसा वृतम् ॥₄₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टाविंशः सर्गः॥

॥एकोनत्रिंशः सर्गः॥

ततस्तमसि संजाते राक्षसा दैवतैः सह ।
अयुध्यन्त बलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥₁॥

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां महद्वलम् ।
दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम् ॥₂॥

तस्मिंस्तु तमसा नद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युध्यमानाः परस्परम् ॥₃॥

इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः ।
तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ॥₄॥

स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं निहतं रावणो रणे ।
क्रोधमभ्यागमत्तीव्रं महानादं च मुक्तवान् ॥₅॥

क्रोधात्सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ह ।
परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तं नयस्व माम् ॥₆॥

अद्वैतांस्त्रिदशान्सर्वान्विक्रमैः समरे स्वयम् ।
नानाशस्त्रैर्महासारैर्नाशयामि नभस्तलात् ॥₇॥

अहमिन्द्रं वधिष्यामि वरुणं धनदं यमम् ।
त्रिदशान्विनिहत्याशु स्वयं स्थास्याम्यथोपरि ॥₈॥

विषादो न च कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम् ।
द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तं नयस्व माम् ॥₉॥

अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तामहे वयम् ।

नय मामद्य तत्र बभूवुदयो यत्र पर्वतः ॥₁₀॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तुरगान्स मनोजवान् ।
आदिदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः ॥₁₁॥

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा ।
रथस्थः समरस्थांस्तान्देवान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥₁₂॥

सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत्तावन्मम रोचते ।
जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ॥₁₃॥

एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा ।
गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ॥₁₄॥

न ह्येष हन्तुं शक्योऽद्य वरदानात्सुनिर्भयः ।
तद्गृहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ॥₁₅॥

यथा बलिं निगृह्यैतत्त्रैलोक्यं भुज्यते मया ।
एवमेतस्य पापस्य निग्रहो मम रोचते ॥₁₆॥

ततोऽन्यं देशमास्थाय शक्रः सन्त्यज्य रावणम् ।
अयुध्यत महातेजा राक्षसान्नाशयन्त्रणे ॥₁₇॥

उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तितः ।
दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ॥₁₈॥

ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः ।
देवतानां बलं कृत्स्नं शरवर्षैरवाकिरत् ॥₁₉॥

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रविष्टं तं बलं स्वकम् ।
न्यवर्तयदसम्भ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥₂₀॥

एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः ।

हा हताः स्मेति तं दृष्ट्वा ग्रस्तं शक्रेण रावणम् ॥₂₁॥

ततो रथं समारुह्य रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
तत्सैन्यमतिसङ्क्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥₂₂॥

स तां प्रविश्य मायां तु दत्तां गोपतिना पुरा ।
अदृश्यः सर्वभूतानां तत्सैन्यं समवाकिरत् ॥₂₃॥

ततः स देवान्सन्त्यज्य शक्रमेवाभ्ययाद्भुतम् ।
महेन्द्रश्च महातेजा न ददर्श सुतं रिपोः ॥₂₄॥

स मातलिं ह्यांश्चैव ताडयित्वा शरोत्तमैः ।
महेन्द्रं बाणवर्षेण शीघ्रहस्तो ह्यवाकिरत् ॥₂₅॥

ततः शक्रो रथं त्यक्त्व विसृज्य च स मातलिम् ।
ऐरावतं समारुह्य मृगयामास रावणिम् ॥₂₆॥

स तु माया बलाद्रक्षः सङ्ग्रामे नाभ्यदृश्यत ।
किरमाणः शरौघेन महेन्द्रममितौजसम् ॥₂₇॥

स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं मेनेऽथ रावणिः ।
तदैनं मायया बद्धा स्वसैन्यमभितोऽनयत् ॥₂₈॥

तं दृष्ट्वाथ बलात्तस्मिन्माययापहतं रणे ।
महेन्द्रममराः सर्वे किं न्वेतदिति चुक्रुशुः ।
न हि दृश्यति विद्यावान्मायया येन नीयते ॥₂₉॥

एतस्मिन्नन्तरे चापि सर्वे सुरगणास्तदा ।
अभ्यद्रवन्सुसङ्क्रुद्धा रावणं शस्त्रवृष्टिभिः ॥₃₀॥

रावणस्तु समासाद्य वस्त्रादित्यमरुद्गणान् ।
न शशाक रणे स्थातुं न योद्धुं शस्त्रपीडितः ॥₃₁॥

तं तु दृष्ट्वा परिश्रान्तं प्रहारैर्जर्जरच्छविम् ।
रावणिः पितरं युद्धेऽदर्शनस्थोऽब्रवीदिदम् ॥³²॥

आगच्छ तात गच्छावो निवृत्तं रणकर्म तत् ।
जितं ते विदितं भोऽस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥³³॥

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ।
स गृहीतो मया शक्रो भग्नमानाः सुराः कृताः ॥³⁴॥

यथेष्टं भुङ्क्त्व त्रैलोक्यं निगृह्य रिपुमोजसा ।
वृथा ते किं श्रमं कृत्वा युद्धं हि तव निष्फलम् ॥³⁵॥

स दैवतबलात्तस्मान्निवृत्तो रणकर्मणः ।
तच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं स्वस्थचेता दशाननः ॥³⁶॥

अथ रणविगतज्वरः प्रभुर्-
विजयमवाप्य निशाचराधिपः ।
भवनमभि ततो जगाम हृष्टः
स्वसुतमवाप्य च वाक्यमब्रवीत् ॥³⁷॥

अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्तैर्-
मम कुलमानविवर्धनं कृतम् ।
यदमरसमविक्रमं त्वया
त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ॥³⁸॥

त्वरितमुपनयस्व वासवम्
नगरमितो ब्रज सैन्यसंवृतः ।
अहमपि तव गच्छतो द्रुतम्
सह सचिवैरनुयामि पृष्ठतः ॥³⁹॥

अथ स बलवृतः सवाहनः
त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ।
स्वभवनमुपगम्य राक्षसो

मुदितमना विससर्ज राक्षसान् ॥₄₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥

॥त्रिंशः सर्गः॥

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य गता लङ्कां सुरास्तदा ॥₁॥

तं रावणं समासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् ।
अब्रवीद्गगने तिष्ठन्सान्त्वपूर्वं प्रजापतिः ॥₂॥

वत्स रावण तुष्टोऽस्मि तव पुत्रस्य संयुगे ।
अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥₃॥

जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।
कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि स्वसुतेन वै ॥₄॥

अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावणरावणिः ।
इन्द्रजिच्चिति विख्यातो जगत्येष भविष्यति ॥₅॥

बलवाञ्छत्रुनिर्जेता भविष्यत्येष राक्षसः ।
यमाश्रित्य ब्रया राजन्स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥₆॥

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः ।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्ति दिवौकसः ॥₇॥

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः ।
अमरत्वमहं देव वृणोमीहास्य मोक्षणे ॥₈॥

अब्रवीत्तु तदा देवो रावणिं कमलोद्भवः ।
नास्ति सर्वामरत्वं हि केषाञ्चित्प्राणिनां भुवि ॥₉॥

अथाब्रवीत्स तत्रस्थमिन्द्रजित्पद्मसम्भवम् ।

श्रूयतां या भवेत्सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥₁₀॥

ममेष्टं नित्यशो देव हव्यैः सम्पूज्य पावकम् ।
सङ्ग्राममवतर्तुं वै शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥₁₁॥

तस्मिंश्चेदसमाप्ते तु जप्यहोमे विभावसोः ।
युध्येयं देव सङ्ग्रामे तदा मे स्याद्विनाशनम् ॥₁₂॥

सर्वो हि तपसा चैव वृणोत्यमरतां पुमान् ।
विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ॥₁₃॥

एवमस्त्विति तं प्राह वाक्यं देवः प्रजापतिः ।
मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः ॥₁₄॥

एतस्मिन्नन्तरे शक्रो दीनो भ्रष्टाम्बरस्रजः ।
राम चिन्तापरीतात्मा ध्यानतत्परतां गतः ॥₁₅॥

तं तु दृष्ट्वा तथाभूतं प्राह देवः प्रजापतिः ।
शक्रक्रतो किमुत्कण्ठां करोषि स्मर दुष्कृतम् ॥₁₆॥

अमरेन्द्र मया बह्व्यः प्रजाः सृष्टाः पुरा प्रभो ।
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥₁₇॥

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः पर्यचिन्तयम् ॥₁₈॥

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ।
यद्यत्प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत्तदुद्धृतम् ॥₁₉॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ।
अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रवर्तितम् ॥₂₀॥

निर्मितायां तु देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ ।

भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥₂₁॥

त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ।
स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरन्दर ॥₂₂॥

सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः ।
न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च सा ॥₂₃॥

ततस्तस्य परिज्ञाय मया स्थैर्यं महामुनेः ।
ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥₂₄॥

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः ।
आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥₂₅॥

त्वं क्रुद्धस्त्विह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः ।
दृष्ट्वांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥₂₆॥

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना ।
दृष्टस्त्वं च तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ॥₂₇॥

ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा ।
गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥₂₈॥

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयम् ।
तस्मात्त्वं समरे राजञ्शत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥₂₉॥

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ।
मानुषेष्वपि सर्वेषु भविष्यति न संशयः ॥₃₀॥

तत्राधर्मः सुबलवान्समुत्थास्यति यो महान् ।
तत्रार्थं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्थं निपतिष्यति ॥₃₁॥

न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति पुरन्दर ।

एतेनाधर्मयोगेन यस्त्वयेह प्रवर्तितः ॥₃₂॥

यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद्भुवः स न भविष्यति ।
एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥₃₃॥

तां तु भार्या विनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत्सुमहातपाः ।
दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥₃₄॥

रूपयौवनसम्पन्ना यस्माच्चमनवस्थिता ।
तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यसि ॥₃₅॥

रूपं च तत्प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति सुदुर्लभम् ।
यत्तवेदं समाश्रित्य विभ्रमेऽयमुपस्थितः ॥₃₆॥

तदा प्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विताः ।
शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपागतम् ॥₃₇॥

तत्स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यच्चया कृतम् ।
येन त्वं ग्रहणं शत्रोर्गतो नान्येन वासव ॥₃₈॥

शीघ्रं यजस्व यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ।
पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसि त्रिदिवं ततः ॥₃₉॥

पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ।
नीतः संनिहितश्चैव अर्यकेण महोदधौ ॥₄₀॥

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ।
पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवताः ॥₄₁॥

एतदिन्द्रजितो राम बलं यत्कीर्तितं मया ।
निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोऽन्ये च किं पुनः ॥₄₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः॥

॥एकत्रिंशः सर्गः॥

ततो रामो महातेजा विस्मयात्पुनरेव हि ।
उवाच प्रणतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥₁॥

भगवन्किं तदा लोकाः शून्या आसन्दिजोत्तम ।
धर्षणां यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥₂॥

उताहो हीनवीर्यास्ते बभ्रुवुः पृथिवीक्षितः ।
बहिष्कृता वरास्तैश्च बहवो निर्जिता नृपाः ॥₃॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ।
उवाच रामं प्रहसन्पितामह इवेश्वरम् ॥₄॥

स एवं बाधमानस्तु पार्थिवान्पार्थिवर्षभ ।
चचार रावणो राम पृथिव्यां पृथिवीपते ॥₅॥

ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।
सम्प्राप्तो यत्र साम्निध्यं परमं वसुरेतसः ॥₆॥

तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रतापाद्वसुरेतसः ।
अर्जुनो नाम यस्याग्निः शरकुण्डे शयः सदा ॥₇॥

तमेव दिवसं सोऽथ हैहयाधिपतिर्बली ।
अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥₈॥

रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ।
क्वार्जुनो वो नृपः सोऽद्य शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥₉॥

रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेप्सुर्नृवरेण तु ।

ममागमनमव्यग्रेर्युष्माभिः संनिवेद्यताम् ॥₁₀॥

इत्येवं रावणेनोक्तास्तेऽमात्याः सुविपश्चितः ।
अब्रुवन्नाक्षसपतिमसाम्निध्यं महीपतेः ॥₁₁॥

श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ।
अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्संनिभं गिरिम् ॥₁₂॥

स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ।
अपश्यद्रावणो विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ॥₁₃॥

सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ।
प्रपात पतितैः शीतैः साट्टहासमिवाम्बुभिः ॥₁₄॥

देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोगणकिंनरैः ।
साह स्त्रीभिः क्रीडमानैः स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम् ॥₁₅॥

नदीभिः स्यन्दमानाभिरगतिप्रतिमं जलम् ।
स्फुटीभिश्चलजिह्वाभिर्वमन्तमिव विष्टितम् ॥₁₆॥

उल्कावन्तं दरीवन्तं हिमवत्संनिभं गिरिम् ।
पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ॥₁₇॥

चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ।
महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलक्ष्मजोत्तमैः ।
उष्णाभितप्तैस्तृषितैः सङ्क्षोभितजलाशयाम् ॥₁₈॥

चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ।
सारसैश्च सदामत्तैः कोकूजद्भिः समावृताम् ॥₁₉॥

फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम् ।
विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलिसुमेखलाम् ॥₂₀॥

पुष्परेण्वनुलिताङ्गीं जलफेनामलांशुकाम् ।
जलावगाहसंस्पर्शा फुल्लोत्पलशुभेक्षणाम् ॥₂₁॥

पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् ।
इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥₂₂॥

स तस्याः पुलिने रम्ये नानाकुसुमशोभिते ।
उपोपविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ।
नर्मदा दर्शजं हर्षमाप्तवान्नाक्षसेश्वरः ॥₂₃॥

ततः सलीलं प्रहसान्नावणो राक्षसाधिपः ।
उवाच सचिवांस्तत्र मारीचशुकसारणान् ॥₂₄॥

एष रश्मिसहस्रेण जगत्कृत्वेव काञ्चनम् ।
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ।
मामासीनं विदिबेह चन्द्रायाति दिवाकरः ॥₂₅॥

नर्मदा जलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।
मद्भयादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ॥₂₆॥

इयं चापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा नर्म वर्धिनी ।
लीनमीनविहङ्गोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥₂₇॥

तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥₂₈॥

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां नृणाम् ।
महापद्ममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥₂₉॥

अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मानं विप्रमोक्ष्यथ ॥₃₀॥

अहमप्यत्र पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ।
पुष्पोपहरं शनकैः करिष्यामि उमापतेः ॥₃₁॥

रावणेनैवमुक्तास्तु मारीचशुकसारणाः ।
समहोदरधूम्राक्षा नर्मदामवगाहिरे ॥³²॥

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभ्यते नर्मदा नदी ।
वामनाञ्जनपद्मादौर्गङ्गा इव महागजैः ॥³³॥

ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदाया वराम्भसि ।
उत्तीर्य पुष्पाण्याजहुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ॥³⁴॥

नर्मदा पुलिने रम्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ।
राक्षसेन्द्रेर्मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ॥³⁵॥

पुष्पेषूपहृतेष्वेव रावणो राक्षसेश्वरः ।
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ॥³⁶॥

तत्र स्नात्वा च विधिवञ्जत्वा जप्यमनुत्तमम् ।
नर्मदा सलिलात्तस्मादुत्ततार स रावणः ॥³⁷॥

रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सप्तराक्षसाः ।
यत्र यत्र स याति स्म रावणो राक्षसाधिपः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥³⁸॥

वालुकवेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥³⁹॥

ततः सतामार्तिहरं हरं परम्
वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ
प्रसार्य हस्तान्प्रणनर्त चायतान् ॥⁴⁰॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः॥

॥द्वात्रिंशः सर्गः॥

नर्मदा पुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः स रावणः ।
पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद्देशाददूरतः ॥₁॥

अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।
क्रीडिते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥₂॥

तासां मध्यगतो राज रराज स ततोऽर्जुनः ।
करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥₃॥

जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ।
रुरोध नर्मदा वेगं बाहुभिः स तदार्जुनः ॥₄॥

कार्तवीर्यभुजासेतुं तञ्जलं प्राप्य निर्मलम् ।
कूलापहारं कुर्वाणं प्रतिस्नोतः प्रधावति ॥₅॥

समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ।
स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृद्धाल इवाबभौ ॥₆॥

स वेगः कार्तवीर्येण सम्प्रेषिट इवाम्भसः ।
पुष्पोपहारं तत्सर्वं रावणस्य जहार ह ॥₇॥

रावणोऽर्धसमाप्तं तु उत्सृज्य नियमं तदा ।
नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥₈॥

पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्गारसंनिभम् ।
वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ॥₉॥

ततोऽनुद्भ्रान्तशकुनां स्वाभाव्ये परमे स्थिताम् ।

निर्विकाराङ्गनाभासां पश्यते रावणो नदीम् ॥₁₀॥

सव्येतरकराङ्गुल्या सशब्दं च दशाननः ।
वेगप्रभवमन्वेष्टुं सोऽदिशच्छुकसारणौ ॥₁₁॥

तौ तु रावणसन्दिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ ।
व्योमान्तरचरौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमोन्मुखौ ॥₁₂॥

अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ तु निशाचरौ ।
पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ॥₁₃॥

बृहत्सालप्रतीकशं तोयव्याकुलमूर्धजम् ।
मदरक्तान्तनयनं मदनाकारवर्चसम् ॥₁₄॥

नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम् ।
गिरिं पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ॥₁₅॥

बालानां वरनारीणां सहस्रेणाभिसंवृतम् ।
समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम् ॥₁₆॥

तमद्भुततमं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ ।
संनिवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतुः ॥₁₇॥

बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर ।
नर्मदां रोधवद्बुद्धा क्रीडापयति योषितः ॥₁₈॥

तेन बाहुसहस्रेण संनिरुद्धजला नदी ।
सागरोद्गारसङ्काशानुद्गारान्सृजते मुहुः ॥₁₉॥

इत्येवं भाषमाणौ तौ निशम्य शुकसारणौ ।
रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा उत्तस्थौ युद्धलालसः ॥₂₀॥

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन्प्रस्थिते राक्षसेश्वरे ।

सकृदेव कृतो रावः सरक्तः प्रेषितो घनैः ॥₂₁॥

महोदरमहापार्श्वधूम्राक्षशुकसारणैः ।
संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद्यत्र सोऽर्जुनः ॥₂₂॥

नातिदीर्घेण कालेन स ततो राक्षसो बली ।
तं नर्मदा हृदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः ॥₂₃॥

स तत्र स्त्रीपरिवृतं वाशिताभिरिव द्विपम् ।
नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम् ॥₂₄॥

स रोषाद्रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः ।
इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ॥₂₅॥

अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै ।
युद्धार्थं समनुप्राप्तो रावणो नाम नामतः ॥₂₆॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते ।
उत्तस्थुः सायुधास्तं च रावणं वाक्यमब्रुवन् ॥₂₇॥

युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भोः साधु रावण ।
यः क्षीबं स्त्रीवृतं चैव योद्धुमिच्छसि नो नृपम् ।
वाशितामध्यगं मत्तं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥₂₈॥

क्षमस्त्वाद्य दशग्रीव उष्यतां रजनी त्वया ।
युद्धश्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात समरेऽर्जुनम् ॥₂₉॥

यदि वापि त्वरा तुभ्यं युद्धतृष्णासमावृता ।
निहत्यास्मांस्ततो युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ॥₃₀॥

ततस्ते रावणामात्यैरमात्याः पार्थिवस्य तु ।
सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥₃₁॥

ततो हलहलाशब्दो नर्मदा तिर आबभौ ।
अर्जुनस्यानुयात्राणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥₃₂॥

द्विषुभिस्तोमरैः शूलैर्वज्रकल्पैः सकर्षणैः ।
सरावणानर्दयन्तः समन्तात्समभिद्रुताः ॥₃₃॥

हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत्सुदारुणः ।
सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निस्त्रनः ॥₃₄॥

रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः ।
कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निर्दहन्त्यग्नितेजसः ॥₃₅॥

अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः ।
क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्द्वाररक्षिभिः ॥₃₆॥

उक्त्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं स ततोऽर्जुनः ।
उत्ततार जलात्तस्माद्भङ्गातोयादिवाञ्जनः ॥₃₇॥

क्रोधदूषितनेत्रस्तु स ततोऽर्जुन पावकः ।
प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ॥₃₈॥

स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् ।
अभिद्रवति रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥₃₉॥

बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम् ।
गारुडं वेगमास्थाय आपपातैव सोऽर्जुनः ॥₄₀॥

तस्य मर्गं समावृत्य विन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः ।
स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ॥₄₁॥

ततोऽस्य मुसलं घोरं लोहबद्धं मदोद्धतः ।
प्रहस्तः प्रेषयन्क्रुद्धो ररास च यथाम्बुदः ॥₄₂॥

तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसंनिभः ।
प्रहस्तकरमुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ॥₄₃॥

आधावमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ।
निपुणं वधयामास सगदो गजविक्रमः ॥₄₄॥

ततस्तमभिदुद्राव प्रहस्तं हैहयाधिपः ।
भ्रामयाणो गदां गुर्वी पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ॥₄₅॥

तेनाहतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।
निपपात स्थितः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥₄₆॥

प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ।
समहोदरधूम्राक्षा अपसृप्ता रणाजिरात् ॥₄₇॥

अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते च निपातिते ।
रावणोऽभ्यद्रवत्तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥₄₈॥

सहस्रबाहोस्तद्युद्धं विंशद्बाहोश्च दारुणम् ।
नृपराक्षसयोस्तत्र आरब्धं लोमहर्षणम् ॥₄₉॥

सागराविव सङ्क्षुब्धो चलमूलाविवाचलौ ।
तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥₅₀॥

बलोद्धतौ यथा नागौ वाशितार्थे यथा वृषौ ।
मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥₅₁॥

रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तौ तथा राक्षसार्जुनौ ।
परस्परं गदाभ्यां तौ ताडयामासतुर्भृशम् ॥₅₂॥

वज्रप्रहारानचला यथा घोरान्विषेहिरे ।
गदाप्रहारांस्तद्वत्तौ सहेते नरराक्षसौ ॥₅₃॥

यथाशनिरवेभ्यस्तु जायते वै प्रतिश्रुतिः ।
तथा ताभ्यां गदापातैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥ 54 ॥

अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ।
काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ 55 ॥

तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥ 56 ॥

नार्जुनः खेदमाप्नोति न राक्षसगणेश्वरः ।
सममासीत्तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥ 57 ॥

शृङ्गैर्महर्षभौ यद्वदन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ।
परस्परं विनिघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ 58 ॥

ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महाहवे ॥ 59 ॥

वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ।
दुर्बलेव यथा सेना द्विधाभूतापतत्क्षितौ ॥ 60 ॥

स त्वर्जुनप्रमुक्तेन गदापातेन रावणः ।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥ 61 ॥

स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः ।
सहसा प्रतिजग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ 62 ॥

स तं बाहुसहस्रेण बलाद्गृह्य दशाननम् ।
बबन्ध बलवान्राजा बलिं नारायणो यथा ॥ 63 ॥

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः ।
साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥ 64 ॥

व्याघ्रो मृगमिवादाय सिंहराडिव दन्तिनम् ।
ररास हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ॥⁶⁵॥

प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् ।
सह ते राकसैः क्रुद्ध अभिदुद्राव पार्थिवम् ॥⁶⁶॥

नक्तश्चराणां वेगस्तु तेषामापततां बभौ ।
उद्धृत आतपापाये समुद्राणामिवाद्भुतः ॥⁶⁷॥

मुध मुधेति भाषन्तस्तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ।
मुसलानि च शूलानि उत्ससर्जुस्तदार्जुने ॥⁶⁸॥

अप्राप्तान्येव तान्याशु असम्भ्रान्तस्तदार्जुनः ।
आयुधान्यमरारीणां जग्राह रिपुसूदनः ॥⁶⁹॥

ततस्तेरेव रक्षांसि दुधरैः प्रवरायुधैः ।
भिच्चा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥⁷⁰॥

राक्षसांस्त्रासयित्वा तु कार्तवीर्यार्जुनस्तदा ।
रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्भुतः ॥⁷¹॥

स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करैर्-
द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसंनिभः ।
तदार्जुनः सम्प्रविवेश तां पुरीम्
बलिं निगृह्यैव सहस्रलोचनः ॥⁷²॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः॥

॥त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

रावणग्रहणं तत्तु वायुग्रहणसंनिभम् ।
ऋषिः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ॥₁॥

ततः पुत्रसुतस्नेहात्कम्प्यमानो महाधृतिः ।
माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महानृषिः ॥₂॥

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ।
पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसन्तापविक्रमः ॥₃॥

सोऽमरावतिसङ्काशां हृष्टपुष्टजनावृताम् ।
प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥₄॥

पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दृशम् ।
ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयन् ॥₅॥

पुलस्त्य इति तं श्रुत्वा वचनं हैहयाधिपः ।
शिरस्यञ्जलिमुद्धृत्य प्रत्युद्गच्छद्विजोत्तमम् ॥₆॥

पुरोहितोऽस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तथैव च ।
पुरस्तात्प्रययौ राज्ञ इन्द्रस्येव बृहस्पतिः ॥₇॥

ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् ।
अर्जुनो दृश्य सम्प्राप्तं ववन्देन्द्र इवेश्वरम् ॥₈॥

स तस्य मधुपर्कं च पादमर्घ्यं च दापयन् ।
पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा ॥₉॥

अद्येयममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता ।

अद्याहं तु द्विजेन्द्रेन्द्र यस्मात्पश्यामि दुर्दृशम् ॥₁₀॥

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुलमुद्धृतम् ।
यत्ते देवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणाविमौ ॥₁₁॥

इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ।
ब्रह्मन्किं कुर्म किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ॥₁₂॥

तं धर्मेऽग्निषु भृत्येषु शिवं पृष्ट्वाथ पार्थिवम् ।
पुलस्त्योवाच राजानं हैहयानां तदार्जुनम् ॥₁₃॥

राजेन्द्रामलपद्माक्षपूर्णचन्द्रनिभानन ।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥₁₄॥

भयाद्यस्यावतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ ।
सोऽयमद्य त्वया बद्धः पौत्रो मेऽतीवदुर्जयः ॥₁₅॥

तत्पुत्रक यशः स्फीतं नाम विश्रावितं त्वया ।
मद्वाक्यादाच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम् ॥₁₆॥

पुलस्त्याज्ञां स गृह्णाथ अकिञ्चनवचोऽर्जुनः ।
मुमोच पार्थिवेन्द्रेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥₁₇॥

स तं प्रमुक्त्वा त्रिदशारिमर्जुनः
प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः ।
अहिंसाकं सख्यमुपेत्य साग्निकम्
प्रणम्य स ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥₁₈॥

पुलस्त्येनापि सङ्गम्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
परिष्वङ्गकृतातिथ्यो लज्जमानो विसर्जितः ॥₁₉॥

पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ।
मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥₂₀॥

एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात्तु धर्षणात् ।
पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मोक्षमवाप्तवान् ॥₂₁॥

एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ।
नावज्ञा परतः कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥₂₂॥

ततः स राजा पिशिताशनानाम्
सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम् ।
पुनर्नराणां कदनं चकार
चचार सर्वा पृथिवीं च दर्पात् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥

॥चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः ।
चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथा कृतः ॥₁॥

राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुते यं बलाधिकम् ।
रावणस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ॥₂॥

ततः कदाचित्किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् ।
गत्वाह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥₃॥

ततस्तं वानरामात्यस्तारस्तारापिता प्रभुः ।
उवाच रावणं वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥₄॥

राक्षसेन्द्र गतो वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत् ।
नान्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ॥₅॥

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः सन्ध्यामन्वास्य रावण ।
इमं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥₆॥

एतानस्थिचयान्यश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ।
युद्धार्थिनामिमे राजन्वानराधिपतेजसा ॥₇॥

यद्वामृतरसः पीतस्त्रया रावणराक्षस ।
तथा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ॥₈॥

अथ वा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।
वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव भास्करम् ॥₉॥

स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो राक्षसेश्वरः ।

पुष्पकं तत्समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ॥₁₀॥

तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् ।
रावणो वालिनं दृष्ट्वा सन्ध्योपासनतत्परम् ॥₁₁॥

पुष्पकादवरुह्याथ रावणोऽञ्जनसंनिभः ।
ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमाद्रवत् ॥₁₂॥

यदृच्छयोन्मीलयता वालिनापि स रावणः ।
पापाभिप्रायवान्दृष्टश्चकार न च सम्भ्रमम् ॥₁₃॥

शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा ।
न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्चयम् ॥₁₄॥

जिघृक्षमाणमदैनं रावणं पापबुद्धिनम् ।
कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्यामि महार्णवान् ॥₁₅॥

द्रक्ष्यन्त्यरिं ममाङ्गस्थं संसितोरुकराम्बरम् ।
लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ॥₁₆॥

इत्येवं मतिमास्थाय वाली कर्णमुपाश्रितः ।
जपन् नैगमान्मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव ॥₁₇॥

तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ ।
प्रयत्नवन्तौ तत्कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ ॥₁₈॥

हस्तग्राह्यं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् ।
पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः ॥₁₉॥

ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः ।
खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम् ॥₂₀॥

स तं पीडयमानस्तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः ।

जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा ॥₂₁॥

अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणे दशानने ।
मुमोक्षयिषवो घोरा रवमाणा ह्यभिद्रवन् ॥₂₂॥

अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेऽम्बरमध्यगः ।
अन्वीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥₂₃॥

तेऽशकृवन्तः सम्प्राप्तं वालिनं राक्षसोत्तमाः ।
तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्तः पतन्ति च ॥₂₄॥

वालिमार्गादपाक्रामन्पर्वतेन्द्रा हि गच्छतः ॥₂₅॥

अपक्षिगणसम्पातो वानरेन्द्रो महाजवः ।
क्रमशः सागरान्सर्वान्सन्ध्याकालमवन्दत ॥₂₆॥

सभाज्यमानो भूतैस्तु खेचरैः खेचरो हरिः ।
पश्चिमं सागरं वाली आजगाम सरावणः ॥₂₇॥

तत्र सन्ध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।
उत्तरं सागरं प्रायाद्वहमानो दशाननम् ॥₂₈॥

उत्तरे सागरे सन्ध्यामुपासित्वा दशाननम् ।
वहमानोऽगमद्वाली पूर्वमम्बुमहानिधिम् ॥₂₉॥

तत्रापि सन्ध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ।
किष्किन्धाभिमुखो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥₃₀॥

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु सन्ध्यामन्वास्य वानरः ।
रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्धोपवनेऽपतत् ॥₃₁॥

रावणं तु मुमोचाथ स्वकक्षात्कपिसत्तमः ।
कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन्नावणं प्रति ॥₃₂॥

विस्मयं तु महद्भवा श्रमलोकनिरीक्षणः ।
राक्षसेशो हरीशं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥₃₃॥

वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः ।
युद्धेप्सुरहं सम्प्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ॥₃₄॥

अहो बलमहो वीर्यमहो गम्भीरता च ते ।
येनाहं पशुवद्बृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ॥₃₅॥

एवमश्रान्तवद्वीर शीघ्रमेव च वानर ।
मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीरः क्रमिष्यति ॥₃₆॥

त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवङ्गम ।
मनोऽनिलसुपर्णानां तव वा नात्र संशयः ॥₃₇॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥₃₈॥

दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥₃₉॥

ततः प्रज्वालयेत्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ।
भ्रातृत्वमुपसम्पन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥₄₀॥

अन्योन्यं लम्बितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ।
किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥₄₁॥

स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ।
अमात्यैरागतैर्नीचस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥₄₂॥

एवमेतत्पुरावृत्तं वालिना रावणः प्रभो ।
धर्षितश्च कृतश्चापि भ्राता पावकसंनिधौ ॥₄₃॥

बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम् ।
सोऽपि तया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥⁴⁴॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥

॥पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

अपृच्छत ततो रामो दक्षिणाशालयं मुनिम् ।
प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोऽर्थवत् ॥₁॥

अतुलं बलमेताभ्यां वालिनो रावणस्य च ।
न ह्येतौ हनुमद्वीर्यैः समाविति मतिर्मम ॥₂॥

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥₃॥

दृष्ट्वोदधिं विषीदन्तीं तदैष कपिवाहिनीम् ।
समाश्वास्य कपीन्भूयो योजनानां शतं प्लुतः ॥₄॥

धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तथा ।
दृष्ट्वा सम्भाषिता चापि सीता विश्वासिता तथा ॥₅॥

सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किङ्करा रावणात्मजः ।
एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥₆॥

भूयो बन्धाद्विमुक्तेन सम्भाषित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृता तेन पावकेनेव मेदिनी ॥₇॥

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥₈॥

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्तो मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥₉॥

हनूमान्यदि मे न स्याद्दानराधिपतेः सखा ।

प्रवृत्तमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान्भवेत् ॥₁₀॥

किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया ।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा ॥₁₁॥

न हि वेदितवान्मन्ये हनूमानात्मनो बलम् ।
यदृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम् ॥₁₂॥

एतन्मे भगवन्सर्वं हनूमति महामुने ।
विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥₁₃॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्ततः ।
हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁₄॥

सत्यमेतद्रघुश्रेष्ठ यद्वीषि हनूमतः ।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥₁₅॥

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य ऋषिभिः पुरा ।
न वेदिता बलं येन बली सन्नरिमर्दनः ॥₁₆॥

बाल्येऽप्येतेन यत्कर्म कृतं राम महाबल ।
तन्न वर्णयितुं शक्यमतिबालतयास्य ते ॥₁₇॥

यदि वास्ति त्वभिप्रायस्तच्छ्रोतुं तव राघव ।
समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥₁₈॥

सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः ।
यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केषरी नाम वै पिता ॥₁₉॥

तस्य भार्या बभूवेष्टा ह्यञ्जनेति परिश्रुता ।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥₂₀॥

शालिशूकसमाभासं प्रासूतेमं तदाञ्जना ।

फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहने चरा ॥₂₁॥

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशार्दितः ।
रुरोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरभराडिव ॥₂₂॥

ततोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम् ।
ददृशे फललोभाच्च उत्पपात रविं प्रति ॥₂₃॥

बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् ।
ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः ॥₂₄॥

एतस्मिन्लवमाने तु शिशुभावे हनूमति ।
देवदानवसिद्धानां विस्मयः सुमहानभूत् ॥₂₅॥

नाप्येवं वेगवान्वायुर्गरुडो न मनस्तथा ।
यथायं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम् ॥₂₆॥

यदि तावच्छिशोरस्य ईदृशौ गतिविक्रमौ ।
यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति ॥₂₇॥

तमनुप्लवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मनः ।
सूर्यदाहभयाद्रक्षस्तुषारचयशीतलः ॥₂₈॥

बहुयोजनसाहस्रं क्रमत्येष ततोऽम्बरम् ।
पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः ॥₂₉॥

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः ।
कार्यं चात्र समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥₃₀॥

यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः ।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥₃₁॥

अनेन च परामृष्टो राम सूर्यरथोपरि ।

अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः ॥₃₂॥

स इन्द्रभवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः ।
अब्रवीद्भुक्कुटीं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम् ॥₃₃॥

बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्रार्कौ मम वासव ।
किमिदं तत्त्वया दत्तमन्यस्य बलवृत्रहन् ॥₃₄॥

अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः ।
अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम् ॥₃₅॥

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः सम्भ्रमान्वितः ।
उत्पपातासनं हिता उद्वहन्काञ्चनस्रजम् ॥₃₆॥

ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्रवम् ।
शृङ्गारकारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाट्टहासिनम् ॥₃₇॥

इन्द्रः करीन्द्रमारुह्य राहुं कृत्वा पुरःसरम् ।
प्रायाद्यत्राभवत्सूर्यः सहानेन हनूमता ॥₃₈॥

अथातिरभसेनागाद्राहुरुत्सृज्य वासवम् ।
अनेन च स वै दृष्ट आधावञ्छैलकूटवत् ॥₃₉॥

ततः सूर्यं समुत्सृज्य राहुमेवमवेक्ष्य च ।
उत्पपात पुनर्व्योमं ग्रहीतुं सिंहिकासुतम् ॥₄₀॥

उत्सृज्यार्कमिमं राम आधावन्तं प्लवङ्गमम् ।
दृष्ट्वा राहुः परावृत्य मुखशेषः पराङ्मुखः ॥₄₁॥

इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः ।
इन्द्र इन्द्रेति सन्तासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥₄₂॥

राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितः स्वरः ।

श्रुत्वेन्द्रोवाच मा भैषीरयमेनं निहन्म्यहम् ॥₄₃॥

ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महत्तदिदमित्यपि ।
फलं तं हस्तिराजानमभिदुद्राव मारुतिः ॥₄₄॥

तदास्य धावतो रूपमैरावतजिघृक्षया ।
मुहूर्तमभवद्धोरमिन्द्राग्नोरिव भास्वरम् ॥₄₅॥

एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः ।
हस्तान्तेनातिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत् ॥₄₆॥

ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः ।
पतमानस्य चैतस्य वामो हनुरभज्यत ॥₄₇॥

तस्मिंस्तु पतिते बाले वज्रताडनविह्वले ।
चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामशिवाय च ॥₄₈॥

विष्णून्नाशयमावृत्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः ।
रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥₄₉॥

वायुप्रकोपाद्भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः ।
सन्धिभिर्भज्यमानानि काष्ठभूतानि जज्ञिरे ॥₅₀॥

निःस्वधं निर्वषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम् ।
वायुप्रकोपात्तैलोक्यं निरयस्थमिवाबभौ ॥₅₁॥

ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
प्रजापतिं समाधावन्नसुखार्ताः सुखैषिणः ॥₅₂॥

ऊचुः प्राञ्जलयो देवा दरोदरनिभोदराः ।
त्वया स्म भगवन्सृष्टाः प्रजानाथ चतुर्विधाः ॥₅₃॥

त्वया दत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः ।

सोऽस्मान्प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सत्तम ॥⁵⁴॥

रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः ।
तस्माच्चां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता विभो ॥⁵⁵॥

वायुसंरोधजं दुःखमिदं नो नुद शत्रुहन् ॥⁵⁶॥

एतत्प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ।
कारणादिति तानुक्त्वा प्रजाः पुनरभाषत ॥⁵⁷॥

यस्मिन्वः कारणे वायुश्चक्रोध च रुरोध च ।
प्रजाः शृणुध्वं तत्सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम् ॥⁵⁸॥

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ।
राहोर्वचनमाज्ञाय राज्ञा वः कोपितोऽनिलः ॥⁵⁹॥

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ।
शरीरं हि विना वायुं समतां याति रेणुभिः ॥⁶⁰॥

वायुः प्राणाः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ।
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ॥⁶¹॥

अद्वैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ।
अद्वैवेमे निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः ॥⁶²॥

तद्यामस्तत्र यत्रास्ते मारुतो रुक्प्रदो हि वः ।
मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुतम् ॥⁶³॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः
सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकः ।
जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः
सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः ॥⁶⁴॥

ततोऽर्कवैश्वानरकाश्चनप्रभम्

सुतं तदोत्सङ्गतं सदागतेः ।
चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्
सदेवसिद्धर्षिभुजङ्गरक्षसः ॥ 65 ॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

॥षट्त्रिंशः सर्गः॥

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः ।
शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥₁॥

चलत्कुण्डलमौलिस्रक्तपनीयविभूषणः ।
पादयोन्यपतद्वायुस्तिस्त्रोऽवस्थाय वेधसे ॥₂॥

तं तु वेदविदाद्यस्तु लम्बाभरणशोभिना ।
वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥₃॥

स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलीलं पद्मजन्मना ।
जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान् ॥₄॥

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा ।
चचार सर्वभूतेषु संनिरुद्धं यथापुरा ॥₅॥

मरुद्रोगविनिर्मुक्ताः प्रजा वै मुदिताभवन् ।
शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥₆॥

ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुक्षिधामा त्रिदशार्चितः ।
उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥₇॥

भो महेन्द्राग्निवरुणधनेश्वरमहेश्वराः ।
जानतामपि तत्सर्वं हितं वक्ष्यामि श्रूयताम् ॥₈॥

अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति ।
ददतास्य वरान्सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टिदान् ॥₉॥

ततः सहस्रनयनः प्रीतिरक्तः शुभाननः ।

कुशे शयमयीं मालां समुत्क्षिप्येदमब्रवीत् ॥₁₀॥

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा क्षतः ।
नामैष कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥₁₁॥

अहमेवास्य दास्यामि परमं वरमुत्तमम् ।
अतः प्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥₁₂॥

मार्ताण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥₁₃॥

यदा तु शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ॥₁₄॥

वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति ।
वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥₁₅॥

यमोऽपि दण्डावध्यत्नमरोगत्वं च नित्यशः ।
दिशतेऽस्य वरं तुष्ट अविषादं च संयुगे ॥₁₆॥

गदेयं मामिका नैनं संयुगेषु वधिष्यति ।
इत्येवं वरदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः ॥₁₇॥

मत्तो मदायुधानां च न वध्योऽयं भविष्यति ।
इत्येवं शङ्करेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः ॥₁₈॥

सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति ।
दीर्घायुश्च महात्मा च इति ब्रह्माब्रवीद्वचः ॥₁₉॥

विश्वकर्मा तु दृष्ट्वैनं बालसूर्योपमं शिशुम् ।
शिल्पिनां प्रवरः प्राह वरमस्य महामतिः ॥₂₀॥

विनिर्मितानि देवानामायुधानीह यानि तु ।

तेषां सङ्ग्रामकाले तु अवध्योऽयं भविष्यति ॥₂₁॥

ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलङ्कृतम् ।
चतुर्मुखस्तुष्टमुखो वायुमाह जगद्गुरुः ॥₂₂॥

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयङ्करः ।
अजेयो भविता तेऽत्र पुत्रो मारुतमारुतिः ॥₂₃॥

रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च ।
रोमहर्षकराण्येष कर्ता कर्माणि संयुगे ॥₂₄॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं तेऽमरैः सह ।
यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥₂₅॥

सोऽपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत् ।
अञ्जनायास्तमाख्याय वरं दत्तं विनिःसृतः ॥₂₆॥

प्राप्य राम वरानेष वरदानबलान्वितः ।
बलेनात्मनि संस्थेन सोऽपूर्यत यथार्णवः ॥₂₇॥

बलेनापूर्यमाणो हि एष वानरपुङ्गवः ।
आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥₂₈॥

स्रुग्भाण्डानग्निहोत्रं च वल्कलानां च सञ्चयान् ।
भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान्सुशान्तानां करोत्ययम् ॥₂₉॥

सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यं ब्रह्मणा कृतम् ।
जानन्त ऋषयस्तं वै क्षमन्ते तस्य नित्यशः ॥₃₀॥

यदा केषरिणा त्वेष वायुना साञ्जनेन च ।
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः ॥₃₁॥

ततो महर्षयः क्रुद्धा भृग्वङ्गिरसवंशजाः ।

शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः ॥₃₂॥

बाधसे यत्समाश्रित्य बलमस्मान्म्लवङ्गम ।
तदीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः ॥₃₃॥

ततस्तु हततेजौजा महर्षिवचनौजसा ।
एषो श्रमाणि नात्येति मृदुभावगतश्चरन् ॥₃₄॥

अथ ऋक्षरजा नाम वालिसुग्रीवयोः पिता ।
सर्ववानरराजासीत्तेजसा इव भास्करः ॥₃₅॥

स तु राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां हरीश्वरः ।
ततस्त्वर्क्षरजा नाम कालधर्मेण सङ्गतः ॥₃₆॥

तस्मिन्नस्तमिते वाली मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ।
पित्र्ये पदे कृतो राजा सुग्रीवो वालिनः पदे ॥₃₇॥

सुग्रीवेण समं त्वस्य अद्वैधं छिद्रवर्जितम् ।
अहार्यं सख्यमभवदनिलस्य यथाग्निना ॥₃₈॥

एष शापवशादेव न वेदबलमात्मनः ।
वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥₃₉॥

न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोऽपि वालिना ।
वेदयानो न च ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥₄₀॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रतापैः
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्-
हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥₄₁॥

असौ पुरा व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः पृष्ठगमः कपीन्द्रः ।

उद्यद्भिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयदप्रमेयः ॥₄₂॥

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य
लोकान्दिधक्षोरिव पावकस्य ।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य
हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥₄₃॥

एषोऽपि चान्ये च महाकपीन्द्राः
सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ।
सतारतारेयनलाः सरम्भाः
बत्कारणाद्राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥₄₄॥

तदेतत्कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
हनूमतो बालभावे कर्मैतत्कथितं मया ॥₄₅॥

दृष्टः सम्भाषितश्चासि राम गच्छमहे वयम् ।
एवमुक्त्वा गताः सर्वे ऋषयस्ते यथागतम् ॥₄₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥

॥सप्तत्रिंशः सर्गः॥

विमृश्य च ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥₁॥

दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम् ।
उदोगश्च कृतो राजन्भरतेन ब्रया सह ॥₂॥

तद्भवानद्य काशेर्यीं पुरीं वाराणसीं व्रज ।
रमणीयां ब्रया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम् ॥₃॥

एतावदुक्त्वा उत्थाय काकुत्स्थः परमासनात् ।
पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम् ॥₄॥

विसृज्य तं वयस्यं स स्वागतान्पृथिवीपतीन् ।
प्रहसन्नाघवो वाक्यमुवाच मधुराक्षरम् ॥₅॥

भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता ।
धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा ॥₆॥

युष्माकं च प्रभावेन तेजसा च महात्मनाम् ।
हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधिपः ॥₇॥

हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसां हतः ।
रावणः सगणो युद्धे सपुत्रः सहबान्धवः ॥₈॥

भवन्तश्च समानीता भरतेन महात्मना ।
श्रुत्वा जनकराजस्य कानने तनयां हताम् ॥₉॥

उद्युक्तानां च सर्वेषां पार्थिवानां महात्मनाम् ।

कालो ह्यतीतः सुमहान्गमने रोचतां मतिः ॥₁₀॥

प्रत्यूचुस्तं च राजानो हर्षेण महतान्विताः ।
दिष्ट्या त्वं विजयी राम राज्यं चापि प्रतिष्ठितम् ॥₁₁॥

दिष्ट्या प्रत्याहता सीता दिष्ट्या शत्रुः पराजितः ।
एष नः परमः काम एषा नः कीर्तिरुत्तमा ॥₁₂॥

यत्त्वां विजयिनं राम पश्यामो हतशात्रवम् ।
उपपन्नं च काकुत्स्थ यत्त्वमस्मान्प्रशंससि ॥₁₃॥

प्रशंसार्हा हि जानन्ति प्रशंसां वक्तुमीदृशीम् ।
आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः सदा भवान् ॥₁₄॥

भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा ॥₁₅॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥

॥ अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवाः सर्वतो दिशम् ।
कम्पयन्तो महीं वीराः स्वपुराणि प्रहृष्टवत् ॥₁॥

अक्षौहिणी सहस्रेस्ते समवेतास्त्रनेकशः ।
हृष्टाः प्रतिगताः सर्वे राघवार्थे समागताः ॥₂॥

ऊचुश्चैव महीपाला बलदर्पसमन्विताः ।
न नाम रावणं युद्धे पश्यामः पुरतः स्थितम् ॥₃॥

भरतेन वयं पश्चात्समानीता निरर्थकम् ।
हता हि राक्षसास्तत्र पार्थिवैः स्युर्न संशयः ॥₄॥

रामस्य बाहुवीर्येण पालिता लक्ष्मणस्य च ।
सुखं पारे समुद्रस्य युध्येम विगतज्वराः ॥₅॥

एताश्चान्याश्च राजानः कथास्तत्र सहस्रशः ।
कथयन्तः स्वराष्ट्राणि विविशुस्ते महारथाः ॥₆॥

यथापुराणि ते गत्वा रत्नानि विविधानि च ।
रामाय प्रियकामार्थमुपहारान्नृपा ददुः ॥₇॥

अश्वात्रत्नानि वस्त्राणि हस्तिनश्च मदोत्कटान् ।
चन्दनानि च दिव्यानि दिव्यान्याभरणानि च ॥₈॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महारथः ।
आदाय तानि रत्नानि अयोध्यामगमन्पुनः ॥₉॥

आगताश्च पुरीं रम्यामयोध्यां पुरुषर्षभाः ।

ददुः सर्वाणि रत्नानि राघवाय महात्मने ॥₁₀॥

प्रतिगृह्य च तत्सर्वं प्रीतियुक्तः स राघवः ।
सर्वाणि तानि प्रददौ सुग्रीवाय महात्मने ॥₁₁॥

विभीषणाय च ददौ ये चान्ये ऋक्षवानराः ।
हनूमत्प्रमुखा वीरा राक्षसाश्च महाबलाः ॥₁₂॥

ते सर्वे हृष्टमनसो रामदत्तानि तान्यथ ।
शिरोभिर्धारयामासुर्बाहुभिश्च महाबलाः ॥₁₃॥

पपुश्चैव सुगन्धीनि मधूनि विविधानि च ।
मांसानि च सुमृष्टानि फलान्यास्वादयन्ति च ॥₁₄॥

एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो गतस्तदा ।
मुहूर्तमिव तत्सर्वं रामभक्त्या समर्थयन् ॥₁₅॥

रेमे रामः स तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः ।
राजभिश्च महावीर्यै राक्षसैश्च महाबलैः ॥₁₆॥

एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शैशिरः सुखम् ।
वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानां च सर्वशः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टात्रिंशः सर्गः॥

॥एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

तथा स्म तेषां वसतामृक्षवानररक्षसाम् ।
राघवस्तु महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥₁॥

गम्यतां सौम्य किष्किन्धां दुराधर्षं सुरासुरैः ।
पालयस्व सहामात्यै राज्यं निहतकण्टकम् ॥₂॥

अङ्गदं च महाबाहो प्रीत्या परमयान्वितः ।
पश्य त्वं हनुमन्तं च नलं च सुमहाबलम् ॥₃॥

सुषेणं श्वशुरं शूरं तारं च बलिनां वरम् ।
कुमुदं चैव दुर्धर्षं नीलं च सुमहाबलम् ॥₄॥

वीरं शतबलिं चैव मैन्दं द्विविदमेव च ।
गजं गवाक्षं गवयं शरभं च महाबलम् ॥₅॥

ऋक्षराजं च दुर्धर्षं जाम्बवन्तं महाबलम् ।
पश्य प्रीतिसमायुक्तो गन्धमादनमेव च ॥₆॥

ये चान्ये सुमहात्मानो मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
पश्य त्वं प्रीतिसंयुक्तो मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥₇॥

एवमुक्त्वा च सुग्रीवं प्रशस्य च पुनः पुनः ।
विभीषणमथोवाच रामो मधुरया गिरा ॥₈॥

तङ्कां प्रशाधि धर्मेण सम्मतो ह्यसि पार्थिव ।
पुरस्य राक्षसानां च भ्रातुर्वैश्वरणस्य च ॥₉॥

मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन्कथञ्चन ।

बुद्धिमन्तो हि राजानो ध्रुवमश्नन्ति मेदिनीम् ॥₁₀॥

अहं च नित्यशो राजन्सुग्रीवसहितस्त्वया ।
स्मर्तव्यः परया प्रीत्या गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥₁₁॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा ऋष्यवानरराक्षसाः ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥₁₂॥

तव बुद्धिर्महाबाहो वीर्यमद्भुतमेव च ।
माधुर्यं परमं राम स्वयम्भोरिव नित्यदा ॥₁₃॥

तेषामेवं ब्रुवाणानां वानराणां च रक्षसाम् ।
हनूमत्प्रणतो भूत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥₁₄॥

स्नेहो मे परमो राजस्त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितः ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छति ॥₁₅॥

यावद्रामकथां वीर श्रोष्येऽहं पृथिवीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु मम प्राणा न संशयः ॥₁₆॥

एवं ब्रुवाणं राजेन्द्रो हनूमन्तमथासनात् ।
उत्थाय च परिष्वज्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁₇॥

एवमेतत्कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत्स्थास्यति मे कथा ॥₁₈॥

चरिष्यति कथा यावल्लोकानेषा हि मामिका ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्ति प्राणास्तव न संशयः ॥₁₉॥

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात्स राघवः ।
वैदूर्यतरलं स्नेहादाबबन्धे हनूमति ॥₂₀॥

तेनोरसि निबद्धेन हारेण स महाकपिः ।

रराज हेमशैलेन्द्रश्चन्द्रेणाक्रान्तमस्तकः ॥₂₁॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वानराः ।
प्रणम्य शिरसा पादौ प्रजग्मुस्ते महाबलाः ॥₂₂॥

सुग्रीवश्चैव रामेण परिष्वक्तो महाभुजः ।
विभीषणश्च धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतः ॥₂₃॥

सर्वे च ते बाष्पगलाः साश्रुनेत्रा विचेतसः ।
सम्मूढा इव दुःखेन त्यजन्ते राघवं तदा ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चत्वारिंशः सर्गः॥

विसृज्य च महाबाहुर्ऋक्षवानरराक्षसान् ।
भ्रातृभिः सहितो रामः प्रमुमोद सुखी सुखम् ॥₁॥

अथापराहसमये भ्रातृभिः सह राघवः ।
शुश्राव मधुरां वाणीमन्तरिक्षात्प्रभाषिताम् ॥₂॥

सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वदनेन माम् ।
कैलासशिखरात्प्राप्तं विद्धि मां पुष्करं प्रभो ॥₃॥

तव शासनमाज्ञाय गतोऽस्मि धनदं प्रति ।
उपस्थातुं नरश्रेष्ठ स च मां प्रत्यभाषत ॥₄॥

निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ।
निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसाधिपम् ॥₅॥

ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
रावणे सगणे सौम्य सपुत्रामात्यबान्धवे ॥₆॥

स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना ।
वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥₇॥

एष मे परमः कामो यत्त्वं राघवनन्दनम् ।
वहेर्लोकस्य संयानं गच्छस्व विगतज्वरः ॥₈॥

तच्छासनमहं ज्ञात्वा धनदस्य महात्मनः ।
त्वत्सकाशं पुनः प्राप्तः स एवं प्रतिगृह्ण माम् ॥₉॥

बाढमित्येव काकुत्स्थः पुष्पकं समपूजयत् ।

लाजाक्षतैश्च पुष्पैश्च गन्धैश्च सुसुगन्धिभिः ॥₁₀॥

गम्यतां च यथाकाममागच्छेस्त्वं यदा स्मरे ।
एवमस्त्विति रामेण विसृष्टः पुष्पकः पुनः ।
अभिप्रेतां दिशं प्रायात्पुष्पकः पुष्पभूषितः ॥₁₁॥

एवमन्तर्हिते तस्मिन्पुष्पके विविधात्मनि ।
भरतः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥₁₂॥

अत्यद्भुतानि दृश्यन्ते त्वयि राज्यं प्रशासति ।
अमानुषाणां सत्त्वानां व्याहृतानि मुहुर्मुहुः ॥₁₃॥

अनामयाच्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम् ।
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव ॥₁₄॥

पुत्रान्नार्यः प्रसूयन्ते वपुष्मन्तश्च मानवाः ।
हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिनः ॥₁₅॥

काले च वासवो वर्षं पातयत्यमृतोपमम् ।
वायवश्चापि वायन्ते स्पर्शवन्तः सुखप्रदाः ॥₁₆॥

ईदृशो नश्चिरं राजा भवत्विति नरेश्वर ।
कथयन्ति पुरे पौरा जना जनपदेषु च ॥₁₇॥

एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ।
श्रुत्वा रामो मुदा युक्तः प्रमुमोद सुखी सुखम् ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकचत्वारिंशः सर्गः॥

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम् ।
प्रविवेश महाबाहुरशोकवनितां तदा ॥₁॥

चन्दनागरुचूतैश्च तुङ्गकालेयकैरपि ।
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिताम् ॥₂॥

प्रियङ्गुभिः कदम्बैश्च तथा कुरबकैरपि ।
जम्बूभिः पाटलीभिश्च कोविदारैश्च संवृताम् ॥₃॥

सर्वदा कुसुमै रम्यैः फलवद्भिर्मनोरमैः ।
चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसङ्कुलैः ॥₄॥

कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः ।
शोभितां शतशस्त्रैश्चूतवृक्षावतंसकैः ॥₅॥

शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः ।
नीलाञ्जननिभाश्चान्ये भान्ति तत्र स्म पादपाः ॥₆॥

दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हमणिसोपानस्फटिकान्तरकुट्टिमाः ॥₇॥

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
प्राकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः ॥₈॥

तत्र तत्र वनोद्देशे वैदूर्यमणिसंनिभैः ।
शाद्वलैः परमोपेताः पुष्पितद्रुमसंयुताः ॥₉॥

नन्दनं हि यथेन्द्रस्य ब्राह्मं चैत्ररथं यथा ।

तथारूपं हि रामस्य काननं तन्निवेशितम् ॥₁₀॥

बह्वासनगृहोपेतां लतागृहसमावृताम् ।
अशोकवनिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः ॥₁₁॥

आसने तु शुभाकारे पुष्पस्तबकभूषिते ।
कुथास्तरणसंवीते रामः संनिषसाद ह ॥₁₂॥

सीतां सङ्गृह्य बाहुभ्यां मधुमैरेयमुत्तमम् ।
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिन्द्रो यथामृतम् ॥₁₃॥

मांसानि च विचित्राणि फलानि विविधानि च ।
रामस्याभ्यवहारार्थं किङ्करास्तूर्णमाहरन् ॥₁₄॥

उपनृत्यन्ति राजानं नृत्यगीतविशारदाः ।
बालाश्च रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशं गताः ॥₁₅॥

एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरुचिराननाम् ।
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् ॥₁₆॥

तथा तु रममाणस्य तस्यैवं शिशिरः शुभः ।
अत्यक्रामन्नेन्द्रस्य राघवस्य महात्मनः ॥₁₇॥

पूर्वाह्णे पौरकृत्यानि कृत्वा धर्मेण धर्मवित् ।
शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥₁₈॥

सीता च देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्निकानि तु ।
श्वश्रूणामविशेषेण सर्वासां प्राञ्जलिः स्थिता ॥₁₉॥

ततो राममुपागच्छद्विचित्रबहुभूषणा ।
त्रिविष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची ॥₂₀॥

दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम् ।

प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥₂₁॥

अपत्यलाभो वैदेहि ममायं समुपस्थितः ।
किमिच्छसि हि तद्ब्रूहि कः कामः क्रियतां तव ॥₂₂॥

प्रहसन्ती तु वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत् ।
तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ॥₂₃॥

गङ्गातीरे निविष्टानि ऋषीणां पुण्यकर्मणाम् ।
फलमूलाशिनां वीर पादमूलेषु वर्तितुम् ॥₂₄॥

एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिषु ।
अप्येकरात्रं काकुत्स्थ वसेयं पुण्यशालिषु ॥₂₅॥

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि श्वो गमिष्यस्यसंशयम् ॥₂₆॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
मध्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम सुहृद्भृतः ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥

॥द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ।
कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्ततः ॥₁॥

विजयो मधुमत्तश्च काश्यपः पिङ्गलः कुशः ।
सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्रः समागधः ॥₂॥

एते कथा बहुविधा परिहाससमन्विताः ।
कथयन्ति स्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः ॥₃॥

ततः कथायां कस्याश्चिद्राघवः समभाषत ।
काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषु च ॥₄॥

मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदा जनाः ।
किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं नु लक्ष्मणम् ॥₅॥

किं नु शत्रुघ्नमाश्रित्य कैकेयीं मातरं च मे ।
वक्तव्यतां च राजानो नवे राज्ये व्रजन्ति हि ॥₆॥

एवमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
स्थिताः कथाः शुभा राजन्वर्तन्ते पुरवासिनाम् ॥₇॥

अयं तु विजयः सौम्य दशग्रीववधाश्रितः ।
भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यते पुरुषर्षभ ॥₈॥

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
कथयस्व यथातथ्यं सर्वं निरवशेषतः ॥₉॥

शुभाशुभानि वाक्यानि यान्याहुः पुरवासिनः ।

श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्या न कुर्यामशुभानि च ॥₁₀॥

कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयो विगतज्वरः ।
कथयन्ते यथा पौरा जना जनपदेषु च ॥₁₁॥

राघवेणैवमुक्तस्तु भद्रः सुरुचिरं वचः ।
प्रत्युवाच महाबाहुं प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥₁₂॥

शृणु राजन्यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम् ।
चत्तरापणरथ्यासु वनेषूपवनेषु च ॥₁₃॥

दुष्करं कृतवान्नामः समुद्रे सेतुबन्धनम् ।
अकृतं पूर्वकैः कैश्चिद्देवैरपि सदानवैः ॥₁₄॥

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः ।
वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥₁₅॥

हत्वा च रावणं युद्धे सीतामाहृत्य राघवः ।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥₁₆॥

कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ।
अङ्गमारोप्य हि पुरा रावणेन बलाद्धताम् ॥₁₇॥

लङ्कामपि पुनर्नीतामशोकवनिकां गताम् ।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्सते ॥₁₈॥

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति ।
यथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुवर्तते ॥₁₉॥

एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ।
नगरेषु च सर्वेषु राजञ्जनपदेषु च ॥₂₀॥

तस्यैतद्भाषितं श्रुत्वा राघवः परमार्तवत् ।

उवाच सर्वान्सुहृदः कथमेतन्निवेद्यताम् ॥₂₁॥

सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च ।
प्रत्यूचू राघवं दीनमेवमेतन्न संशयः ॥₂₂॥

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरितम् ।
विसर्जयामास तदा सर्वास्ताञ्शत्रुतापनः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥

॥त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

विसृज्य तु सुहृद्वर्गं बुद्ध्या निश्चित्य राघवः ।
समीपे द्वाःस्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥₁॥

शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
भरतं च महाबाहुं शत्रुघ्नं चापराजितम् ॥₂॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
लक्ष्मणस्य गृहं गत्वा प्रविवेशानिवारितः ॥₃॥

उवाच च तदा वाक्यं वर्धयित्वा कृताञ्जलिः ।
द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥₄॥

बाढमित्येव सौमित्रिः श्रुत्वा राघवशासनम् ।
प्राद्रवद्रथमारुह्य राघवस्य निवेशनम् ॥₅॥

प्रयान्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा द्वाःस्थो भरतमन्तिकात् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥₆॥

भरतस्तु वचः श्रुत्वा द्वाःस्थाद्रामसमीरितम् ।
उत्पपातासनात्तूर्णं पद्भ्यामेव ततोऽगमत् ॥₇॥

दृष्ट्वा प्रयान्तं भरतं त्वरमाणः कृताञ्जलिः ।
शत्रुघ्नभवनं गत्वा ततो वाक्यं जगाद ह ॥₈॥

एह्यागच्छ रघुश्रेष्ठ राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
गतो हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महायशः ॥₉॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य शत्रुघ्नो रामशासनम् ।

शिरसा वन्द्य धरणीं प्रययौ यत्र राघवः ॥₁₀॥

कुमारानागताञ्श्रुत्वा चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ।
अवाक्शिरा दीनमना द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥₁₁॥

प्रवेशय कुमारांस्त्वं मत्समीपं ब्रान्वितः ।
एतेषु जीवितं मह्यमेते प्राणा बहिश्चराः ॥₁₂॥

आज्ञप्तास्तु नरेन्द्रेण कुमाराः शुक्लवाससः ।
प्रह्लाः प्राञ्जलयो भूत्वा विविशुस्ते समाहिताः ॥₁₃॥

ते तु दृष्ट्वा मुखं तस्य सग्रहं शशिनं यथा ।
सन्ध्यागतमिवादित्यं प्रभया परिवर्जितम् ॥₁₄॥

बाष्पपूर्णे च नयने दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
हतशोभं यथा पद्मं मुखं वीक्ष्य च तस्य ते ॥₁₅॥

ततोऽभिवाद्य बरिताः पादौ रामस्य मूर्धभिः ।
तस्थुः समाहिताः सर्वे रामश्चाश्रूण्यवर्तयत् ॥₁₆॥

तान्परिष्वज्य बाहुभ्यामुत्थाप्य च महाभुजः ।
आसनेष्वाध्वमित्युक्त्वा ततो वाक्यं जगाद ह ॥₁₇॥

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो मम जीवितम् ।
भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥₁₈॥

भवन्तः कृतशास्त्रार्था बुद्धौ च परिनिष्ठिताः ।
सम्भूय च मदर्थोऽयमन्वेष्टव्यो नरेश्वराः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥

॥चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् ।
उवाच वाक्यं काकुत्स्थो मुखेन परिशुष्यता ॥₁॥

सर्वे शृणुत भद्रं वो मा कुरुध्वं मनोऽन्यथा ।
पौराणां मम सीतायां यादृशी वर्तते कथा ॥₂॥

पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।
वर्तते मयि बीभत्सः स मे मर्माणि कृन्तति ॥₃॥

अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
सीतां पापसमाचारामानयेयं कथं पुरे ॥₄॥

जानासि हि यथा सौम्य दण्डके विजने वने ।
रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितो मया ॥₅॥

प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ।
अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः ॥₆॥

चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां संनिधौ पुरा ।
ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम् ॥₇॥

एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसंनिधौ ।
लङ्काद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता ॥₈॥

अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ।
ततो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागतः ॥₉॥

अयं तु मे महान्वादः शोकश्च हृदि वर्तते ।

पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ॥₁₀॥

अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ।
पतत्येवाधर्माँल्लोकान्यावच्छब्दः स कीर्त्यते ॥₁₁॥

अकीर्तिर्निन्दते दैवैः कीर्तिर्देवेषु पूज्यते ।
कीर्त्यर्थं च समारम्भः सर्व एव महात्मनाम् ॥₁₂॥

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान्वा पुरुषर्षभाः ।
अपवादभयाद्भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ॥₁₃॥

तस्माद्भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोकसागरे ।
न हि पश्याम्यहं भूयः किञ्चिद्दुःखमतोऽधिकम् ॥₁₄॥

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ।
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ॥₁₅॥

गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेः सुमहात्मनः ।
आश्रमो दिव्यसङ्काशस्तमसातीरमाश्रितः ॥₁₆॥

तत्रैनां विजने कक्षे विसृज्य रघुनन्दन ।
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम ॥₁₇॥

न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथञ्चन ।
अप्रीतिः परमा मह्यं भवेत्तु प्रतिवारिते ॥₁₈॥

शापिताश्च मया यूयं भुजाभ्यां जीवितेन च ।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथञ्चन ॥₁₉॥

मानयन्तु भवन्तो मां यदि मच्छासने स्थिताः ।
इतोऽद्य नीयतां सीता कुरुष्व वचनं मम ॥₂₀॥

पूर्वमुक्तोऽहमनया गङ्गातीरे महाश्रमान् ।

पश्येयमिति तस्याश्च कामः संवर्त्यतामयम् ॥₂₁॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण पिहितेक्षणः ।
प्रविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥

॥पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

ततो रजन्यां व्युष्टायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
सुमन्त्रमब्रवीद्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥₁॥

सारथे तुरगाञ्शीघ्रं योजयस्व रथोत्तमे ।
स्वास्तीर्णं राजभवनात्सीतायाश्चासनं शुभम् ॥₂॥

सीता हि राजभवनादाश्रमं पुण्यकर्मणाम् ।
मया नेया महर्षीणां शीघ्रमानीयतां रथः ॥₃॥

सुमन्त्रस्तु तथेत्युक्त्वा युक्तं परमवाजिभिः ।
रथं सुरुचिरप्रख्यं स्वास्तीर्णं सुखशय्यया ॥₄॥

आदायोवाच सौमित्रि मित्राणां हर्षवर्धनम् ।
रथोऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्यं क्रियतां प्रभो ॥₅॥

एवमुक्तः सुमन्त्रेण राजवेश्म स लक्ष्मणः ।
प्रविश्य सीतामासाद्य व्याजहार नरर्षभः ॥₆॥

गङ्गातीरे मया देवि मुनीनामाश्रमे शुभे ।
शीघ्रं गत्वोपनेयासि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥₇॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही लक्ष्मणेन महात्मना ।
प्रहर्षमतुलं लेभे गमनं चाभ्यरोचयत् ॥₈॥

वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ।
गृहीत्वा तानि वैदेही गमनायोपचक्रमे ॥₉॥

इमानि मुनिपत्नीनां दास्याम्याभरणान्यहम् ।

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ।
प्रययौ शीघ्रतुरगो रामस्याज्ञामनुस्मरन् ॥₁₀॥

अब्रवीच्च तदा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
अशुभानि बहून्यद्य पश्यामि रघुनन्दन ॥₁₁॥

नयनं मे स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पश्च जायते ।
हृदयं चैव सौमित्रे अस्वस्थमिव लक्षये ॥₁₂॥

औत्सुक्यं परमं चापि अधृतिश्च परा मम ।
शून्यामिव च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ॥₁₃॥

अपि स्वस्ति भवेत्तस्य भ्रातुस्ते भ्रातृभिः सह ।
श्वश्रूणां चैव मे वीर सर्वासामविशेषतः ॥₁₄॥

पुरे जनपदे चैव कुशलं प्राणिनामपि ।
इत्यञ्जलिकृता सीता देवता अभ्ययाचत ॥₁₅॥

लक्ष्मणोऽर्थं तु तं श्रुत्वा शिरसा वन्द्य मैथिलीम् ।
शिवमित्यब्रवीद्धृष्टो हृदयेन विशुष्यता ॥₁₆॥

ततो वासमुपागम्य गोमतीतीर आश्रमे ।
प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः सूतमब्रवीत् ॥₁₇॥

योजयस्व रथं शीघ्रमद्य भागीरथीजलम् ।
शिरसा धारयिष्यामि त्र्यम्बकः पर्वते यथा ॥₁₈॥

सोऽश्वान्विचारयित्वाशु रथे युक्त्वा मनोजवान् ।
आरोहस्वेति वैदेहीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥₁₉॥

सा तु सूतस्य वचनादारुरोह रथोत्तमम् ।
सीता सौमित्रिणा सार्धं सुमन्त्रेण च धीमता ॥₂₀॥

अथार्धदिवसं गत्वा भागीरथ्या जलाशयम् ।
निरीक्ष्य लक्ष्मणो दीनः प्ररुरोद महास्वनम् ॥₂₁॥

सीता तु परमायत्ता दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम् ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञ किमिदं रुद्यते त्वया ॥₂₂॥

जाह्नवीतीरमासाद्य चिराभिलषितं मम ।
हर्षकाले किमर्थं मां विषादयसि लक्ष्मण ॥₂₃॥

नित्यं त्वं रामपादेषु वर्तसे पुरुषर्षभ ।
कच्चिद्विनाकृतस्तेन द्विरात्रे शोकमागतः ॥₂₄॥

ममापि दयितो रामो जीवितेनापि लक्ष्मण ।
न चाहमेवं शोचामि मैवं त्वं बालिशो भव ॥₂₅॥

तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान् ।
ततो धनानि वासांसि दास्याम्याभरणानि च ॥₂₆॥

ततः कृत्वा महर्षीणां यथार्हमभिवादनम् ।
तत्र चैकां निशामुष्य यास्यामस्तां पुरीं पुनः ॥₂₇॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रमृज्य नयने शुभे ।
तितीर्षुर्लक्ष्मणो गङ्गां शुभां नावमुपाहरत् ॥₂₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥

॥षट्त्वारिंशः सर्गः॥

अथ नावं सुविस्तीर्णां नैषादीं राघवानुजः ।
आरुरोह समायुक्तां पूर्वमारोप्य मैथिलीम् ॥₁॥

सुमन्त्रं चैव सरथं स्थापयतामिति लक्ष्मणः ।
उवाच शोकसन्तप्तः प्रयाहीति च नाविकम् ॥₂॥

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः ।
उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पगद्गदः ॥₃॥

हृद्रतं मे महच्छल्यं यदस्म्यार्येण धीमता ।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥₄॥

श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्योर्वा यत्परं भवेत् ।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥₅॥

प्रसीद न च मे रोषं कर्तुमर्हसि सुव्रते ।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ॥₆॥

रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मनः ।
मैथिली भृशसंविग्ना लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥₇॥

किमिदं नावगच्छामि ब्रूहि तच्चेन लक्ष्मण ।
पश्यामि त्वां च न स्वस्थमपि क्षेमं महीपतेः ॥₈॥

शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत्त्वं सन्तापमात्मनः ।
तद्भूयाः संनिधौ मह्यमहमाज्ञापयामि ते ॥₉॥

वैदेह्या चोद्यमानस्तु लक्ष्मणो दीनचेतनः ।

अवाङ्मुखो बाष्पगलो वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁₀॥

श्रुत्वा परिषदो मध्ये अपवादं सुदारुणम् ।
पुरे जनपदे चैव बत्कृते जनकात्मजे ॥₁₁॥

न तानि वचनीयानि मया देवि तवाग्रतः ।
यानि राज्ञा हृदि न्यस्तान्यमर्षः पृष्ठतः कृतः ॥₁₂॥

सा त्वं त्यक्त्वा नृपतिना निर्दोषा मम संनिधौ ।
पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ॥₁₃॥

आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ।
राज्ञः शासनमाज्ञाय तवैवं किल दौर्हृदम् ॥₁₄॥

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम् ।
पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे ॥₁₅॥

राज्ञो दशरथस्यैष पितुर्मे मुनिपुङ्गवः ।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ॥₁₆॥

पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः ।
उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे ॥₁₇॥

पतिव्रतात्तमास्थाय रामं कृत्वा सदा हृदि ।
श्रेयस्ते परमं देवि तथा कृत्वा भविष्यति ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्त्वारिंशः सर्गः॥

॥सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा ।
परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥₁॥

सा मुहूर्तमिवासंज्ञा बाष्पव्याकुलितेक्षणा ।
लक्ष्मणं दीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥₂॥

मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते ॥₃॥

किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः ।
याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती ॥₄॥

पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी ।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे विपरिवर्तिनी ॥₅॥

सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता ।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा ॥₆॥

किं च वक्ष्यामि मुनिषु किं मयापकृतं नृपे ।
कस्मिन्वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना ॥₇॥

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥₈॥

यथाज्ञां कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः शृणु चेदं वचो मम ॥₉॥

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिः प्रग्रहेण च ।

शिरसा वन्द्य चरणौ कुशलं ब्रूहि पार्थिवम् ॥₁₀॥

यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो ह्येष धर्मः स्यादेषा कीर्तिरनुत्तमा ॥₁₁॥

यत्नं पौरजनं राजन्धर्मेण समवाप्नुयाः ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ।
यथापवादं पौराणां तथैव रघुनन्दन ॥₁₂॥

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
शिरसा धरणीं गत्वा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥₁₃॥

प्रदक्षिणं च कृत्वा स रुदन्नेव महास्वनम् ।
आरुरोह पुनर्नावं नाविकं चाभ्यचोदयत् ॥₁₄॥

स गत्वा चोत्तरं कूलं शोकभारसमन्वितः ।
सम्मूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद्भुतम् ॥₁₅॥

मुहुर्मुहुरपावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत् ।
वेष्टन्तीं परतीरस्थां लक्ष्मणः प्रययावथ ॥₁₆॥

दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।
निरीक्षमाणामुद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत् ॥₁₇॥

सा दुःखभारावनता तपस्विनी
यशोधरा नाथमपश्यती सती ।
रुरोद सा बर्हिणनादिते वने
महास्वनं दुःखपरायणा सती ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥

॥ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

सीतां तु रुदतीं दृष्ट्वा ये तत्र मुनिदारकाः ।
प्राद्रवन्त्यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरग्र्यधीः ॥₁॥

अभिवाद्य मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।
सर्वे निवेदयामासुस्तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥₂॥

अदृष्टपूर्वा भगवन्कस्याप्येषा महात्मनः ।
पत्नी श्रीरिव सम्मोहाद्विरोति विकृतस्वरा ॥₃॥

भगवन्साधु पश्येमां देवतामिव खाद्युताम् ।
न ह्येनां मानुषीं विद्वः सत्क्रियास्याः प्रयुज्यताम् ॥₄॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा बुद्ध्या निश्चित्य धर्मवित् ।
तपसा लब्धचक्षुष्मान्प्राद्रवद्यत्र मैथिली ॥₅॥

तं तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित्पद्भ्यां महामुनिः ।
अर्घ्यमादाय रुचिरं जाह्नवीतीरमाश्रितः ।
ददर्श राघवस्येष्टां पत्नीं सीतामनाथवत् ॥₆॥

तां सीतां शोकभारार्ता वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ।
उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ॥₇॥

स्रुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी सती ।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥₈॥

आयान्त्येवासि विज्ञाता मया धर्मसमाधिना ।
कारणं चैव सर्वं मे हृदयेनोपलक्षितम् ॥₉॥

अपापां वेद्मि सीते त्वां तपोलब्धेन चक्षुषा ।
विशुद्धभावा वैदेहि साम्प्रतं मयि वर्तसे ॥₁₀॥

आश्रमस्याविदूरे मे तापस्यस्तपसि स्थिताः ।
तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥₁₁॥

इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं विस्रब्धा विगतज्वरा ।
यथा स्वगृहमभ्येत्य विषादं चैव मा कृथाः ॥₁₂॥

श्रुत्वा तु भाषितं सीता मुनेः परममद्भुतम् ।
शिरसा वन्द्य चरणौ तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥₁₃॥

तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ।
अन्वयाद्यत्र तापस्यो धर्मनित्याः समाहिताः ॥₁₄॥

तं दृष्ट्वा मुनिमायान्तं वैदेह्यानुगतं तदा ।
उपाजग्मुर्मुदा युक्ता वचनं चेदमब्रुवन् ॥₁₅॥

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ चिरस्यागमनं प्रभो ।
अभिवादयामः सर्वास्त्वामुच्यतां किं च कुर्महे ॥₁₆॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिरिदमब्रवीत् ।
सीतेयं समनुप्राप्ता पत्नी रामस्य धीमतः ॥₁₇॥

स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती ।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥₁₈॥

इमां भवत्यः पश्यन्तु स्नेहेन परमेण ह ।
गौरवान्मम वाक्यस्य पूज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥₁₉॥

मुहुर्मुहुश्च वैदेहीं परिसान्ध्य महायशाः ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृतः पुनरायान्महातपाः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः॥

॥एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

दृष्ट्वा तु मैथिलीं सीतामाश्रमं सम्प्रवेशिताम् ।
सन्तापमकरोद्धोरं लक्ष्मणो दीनचेतनः ॥₁॥

अब्रवीच्च महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रसारथिम् ।
सीतासन्तापजं दुःखं पश्य रामस्य धीमतः ॥₂॥

अतो दुःखतरं किं नु राघवस्य भविष्यति ।
पत्नीं शुद्धसमाचारां विसृज्य जनकात्मजाम् ॥₃॥

व्यक्तं देवादहं मन्ये राघवस्य विनाभवम् ।
वैदेह्या सारथे सार्धं देवं हि दुरतिक्रमम् ॥₄॥

यो हि देवान्सगन्धर्वानसुरान्सह राक्षसैः ।
निहन्याद्राघवः क्रुद्धः स दैवमनुवर्तते ॥₅॥

पुरा मम पितुर्वाक्यैर्दण्डके विजने वने ।
उषितो नववर्षाणि पञ्च चैव सुदारुणे ॥₆॥

ततो दुःखतरं भूयः सीताया विप्रवासनम् ।
पौराणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ॥₇॥

को नु धर्माश्रयः सूत कर्मण्यस्मिन्यशोहरे ।
मैथिलीं प्रति सम्प्राप्तः पौरैर्हीनार्थवादिभिः ॥₈॥

एता बहुविधा वाचः श्रुत्वा लक्ष्मणभाषिताः ।
सुमन्त्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₉॥

न सन्तापस्त्वया कार्यः सौमित्रे मैथिलीं प्रति ।

दृष्टमेतत्पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणाग्रतः ॥₁₀॥

भविष्यति दृढं रामो दुःखप्रायोऽल्पसौख्यवान् ।
त्वां चैव मैथिलीं चैव शत्रुघ्नभरतौ तथा ।
सन्त्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता महान् ॥₁₁॥

न बिदं त्वयि वक्तव्यं सौमित्रे भरतेऽपि वा ।
राज्ञा वोऽव्याहृतं वाक्यं दुर्वासा यदुवाच ह ॥₁₂॥

महाराजसमीपे च मम चैव नरर्षभ ।
ऋषिणा व्याहृतं वाक्यं वसिष्ठस्य च संनिधौ ॥₁₃॥

ऋषेस्तु वचनं श्रुत्वा मामाह पुरुषर्षभः ।
सूत न क्वचिदेवं ते वक्तव्यं जनसंनिधौ ॥₁₄॥

तस्याहं लोकपालस्य वाक्यं तत्सुसमाहितः ।
नैव जाबनृतं कुर्यामिति मे सौम्य दर्शनम् ॥₁₅॥

सर्वथा नास्त्यवक्तव्यं मया सौम्य तवाग्रतः ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा श्रूयतां रघुनन्दन ॥₁₆॥

यद्यप्यहं नरेन्द्रेण रहस्यं श्रावितः पुरा ।
तच्चाप्युदाहरिष्यामि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥₁₇॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य गम्भीरार्थपदं महत् ।
तथ्यं ब्रूहीति सौमित्रिः सूतं वाक्यमथाब्रवीत् ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तथा सञ्चोदितः सूतो लक्ष्मणेन महात्मना ।
तद्वाक्यमृषिणा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥₁॥

पुरा नाम्ना हि दुर्वासा अत्रेः पुत्रो महामुनिः ।
वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये स वार्षिक्यमुवास ह ॥₂॥

तमाश्रमं महातेजाः पिता ते सुमहायशाः ।
पुरोधसं महात्मानं दिदृक्षुरगमत्स्वयम् ॥₃॥

स दृष्ट्वा सूर्यसङ्काशं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
उपविष्टं वसिष्ठस्य सव्ये पार्श्वे महामुनिम् ।
तौ मुनी तापसश्रेष्ठौ विनीतस्त्वभ्यवादयत् ॥₄॥

स ताभ्यां पूजितो राजा स्वागतेनासनेन च ।
पादेन फलमूलैश्च सोऽप्यास्ते मुनिभिः सह ॥₅॥

तेषां तत्रोपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ।
बभूवुः परमर्षीणां मध्यादित्यगतेऽहनि ॥₆॥

ततः कथायां कस्याश्चित्प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ।
उवाच तं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ॥₇॥

भगवन्किम्प्रमाणेन मम वंशो भविष्यति ।
किमायुश्च हि मे रामः पुत्राश्चान्ये किमायुषः ॥₈॥

रामस्य च सुता ये स्युस्तेषामायुः कियद्भवेत् ।
काम्यया भगवन्ब्रूहि वंशस्यास्य गतिं मम ॥₉॥

तच्छ्रुत्वा व्याहतं वाक्यं राज्ञो दशरथस्य तु ।
दुर्वासाः सुमहातेजा व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥₁₀॥

अयोध्यायाः पती रामो दीर्घकालं भविष्यति ।
सुखिनश्च समृद्धाश्च भविष्यन्त्यस्य चानुजाः ॥₁₁॥

कस्मिंश्चित्करणे त्वां च मैथिलीं च यशस्विनीम् ।
सन्त्यजिष्यति धर्मात्मा कालेन महता किल ॥₁₂॥

दशवर्षसहस्रणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥₁₃॥

समृद्धैर्हयमेधैश्च इष्ट्वा परपुरंजयः ।
राजवंशांश्च काकुत्स्थो बहून्संस्थापयिष्यति ॥₁₄॥

स सर्वमखिलं राज्ञो वंशस्यास्य गतागतम् ।
आख्याय सुमहातेजास्तूष्णीमासीन्महाद्युतिः ॥₁₅॥

तूष्णीम्भूते मुनौ तस्मिन् राजा दशरथस्तदा ।
अभिवाद्य महात्मानौ पुनरायात्पुरोत्तमम् ॥₁₆॥

एतद्वचो मया तत्र मुनिना व्याहतं पुरा ।
श्रुतं हृदि च निक्षिप्तं नान्यथा तद्विष्यति ॥₁₇॥

एवं गते न सन्तापं गन्तुमर्हसि राघव ।
सीतार्थे राघवार्थे वा दृढो भव नरोत्तम ॥₁₈॥

तच्छ्रुत्वा व्याहतं वाक्यं सूतस्य परमाद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥₁₉॥

तयोः संवदतोरेवं सूतलक्ष्मणयोः पथि ।
अस्तमर्को गतो वासं गोमत्यां तावथोषतुः ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तत्र तां रजनीमुष्य गोमत्यां रघुनन्दनः ।
प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥₁॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथः ।
अयोध्यां रत्नसम्पूर्णां हृष्टपुष्टजनावृताम् ॥₂॥

सौमित्रिस्तु परं दैन्यं जगाम सुमहामतिः ।
रामपादौ समासाद्य वक्ष्यामि किमहं गतः ॥₃॥

तस्यैवं चिन्तयानस्य भवनं शशिसंनिभम् ।
रामस्य परमोदारं पुरस्तात्समदृश्यत ॥₄॥

राज्ञस्तु भवनद्वारि सोऽवतीर्य नरोत्तमः ।
अवाङ्मुखो दीनमनाः प्राविवेशानिवारितः ॥₅॥

स दृष्ट्वा राघवं दीनमासीनं परमासने ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां ददर्शाग्रजमग्रतः ॥₆॥

जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो दीनचेतनः ।
उवाच दीनया वाचा प्राञ्जलिः सुसमाहितः ॥₇॥

आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य विसृज्य जनकात्मजाम् ।
गङ्गातीरे यथोद्दिष्टे वाल्मीकेराश्रमे शुभे ।
पुनरस्म्यागतो वीर पादमूलमुपासितुम् ॥₈॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र कालस्य गतिरीदृशी ।
बद्धिधा न हि शोचन्ति सत्त्ववन्तो मनस्विनः ॥₉॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥₁₀॥

शक्तस्त्वमात्मनात्मानं विजेतुं मनसैव हि ।
लोकान्सर्वाश्च काकुत्स्थ किं पुनर्दुःखमीदृशम् ॥₁₁॥

नेदृशेषु विमुह्यन्ति बद्धिधाः पुरुषर्षभाः ।
यदर्थं मैथिली त्यक्ता अपवादभयान्नृप ॥₁₂॥

स त्वं पुरुषशार्दूल धैर्येण सुसमाहितः ।
त्यजेमां दुर्बलां बुद्धिं सन्तापं मा कुरुष्व ह ॥₁₃॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थो लक्ष्मणेन महात्मना ।
उवाच परया प्रीत्या सौमित्रिं मित्रवत्सलम् ॥₁₄॥

एवमेतन्नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण ।
परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ॥₁₅॥

निर्वृतिश्च कृता सौम्य सन्तापश्च निराकृतः ।
भवद्वाक्यैः सुमधुरैरनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ततः सुमन्त्रस्त्वागम्य राघवं वाक्यमब्रवीत् ।
एते निवारिता राजन्द्वारि तिष्ठन्ति तापसाः ॥₁॥

भार्गवं च्यवनं नाम पुरस्कृत्य महर्षयः ।
दर्शनं ते महाराज चोदयन्ति कृतबराः ।
प्रीयमाणा नरव्याघ्र यमुनातीरवासिनः ॥₂॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामः प्रोवाच धर्मवित् ।
प्रवेश्यन्तां महात्मानो भार्गवप्रमुखा द्विजाः ॥₃॥

राज्ञस्त्वाज्ञां पुरस्कृत्य द्वाःस्थो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
प्रवेशयामास ततस्तापसान्सम्मतान्बहून् ॥₄॥

शतं समधिकं तत्र दीप्यमानं स्वतेजसा ।
प्रविष्टं राजभवनं तापसानां महात्मनाम् ॥₅॥

ते द्विजाः पूर्णकलशैः सर्वतीर्थाम्बु सत्कृतम् ।
गृहीत्वा फलमूलं च रामस्याभ्याहरन्बहु ॥₆॥

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं रामः प्रीतिपुरस्कृतः ।
तीर्थोदकानि सर्वाणि फलानि विविधानि च ॥₇॥

उवाच च महाबाहुः सर्वानेव महामुनीन् ।
इमान्यासनमुख्यानि यथार्हमुपविश्यताम् ॥₈॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ।
बृसीषु रुचिराख्यासु निषेदुः काश्चनीषु ते ॥₉॥

उपविष्टानृषींस्तत्र दृष्ट्वा परपुरंजयः ।
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥₁₀॥

किमागमनकार्यं वः किं करोमि तपोधनाः ।
आज्ञाप्योऽहं महर्षीणां सर्वकामकरः सुखम् ॥₁₁॥

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम् ।
सर्वमेतद्विजार्थं मे सत्यमेतद्वीमि वः ॥₁₂॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साधुवादो महानभूत् ।
ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम् ॥₁₃॥

ऊचुश्च ते महात्मानो हर्षेण महतान्विताः ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ तवैव भुवि नान्यतः ॥₁₄॥

बहवः पार्थिवा राजन्नतिक्रान्ता महाबलाः ।
कार्यगौरवमश्रुत्वा प्रतिज्ञां नाभ्यरोचयन् ॥₁₅॥

त्वया पुनर्ब्राह्मणगौरवादियम्
कृता प्रतिज्ञा ह्यनवेक्ष्य कारणम् ।
कुरुष्व कर्ता ह्यसि नात्र संशयो
महाभयात्तातुमृषींस्त्वमर्हसि ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

ब्रुवद्भिरेवमृषिभिः काकुत्स्थो वाक्यमब्रवीत् ।
किं कार्यं ब्रूत भवतां भयं नाशयितास्मि वः ॥₁॥

तथा वदति काकुत्स्थे भार्गवो वाक्यमब्रवीत् ।
भयं नः शृणु यन्मूलं देशस्य च नरेश्वर ॥₂॥

पूर्वं कृतयुगे राम दैतेयः सुमहाबलः ।
लोलापुत्रोऽभवञ्ज्येष्ठो मधुर्नाम महासुरः ॥₃॥

ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुलाभवत् ॥₄॥

स मधुर्वीर्यसम्पन्नो धर्मे च सुसमाहितः ।
बहुमानाच्च रुद्रेण दत्तस्तस्याद्भुतो वरः ॥₅॥

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य महावीर्यं महाप्रभम् ।
ददौ महात्मा सुप्रीतो वाक्यं चैतदुवाच ह ॥₆॥

त्वयायमतुलो धर्मो मत्प्रसादात्कृतः शुभः ।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम् ॥₇॥

यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरुध्येर्महासुर ।
तावच्छूलं तवेदं स्यादन्यथा नाशमाप्नुयात् ॥₈॥

यश्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः ।
तं शूलं भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम् ॥₉॥

एवं रुद्राद्वरं लब्ध्वा भूय एव महासुरः ।

प्रणिपत्य महादेवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁₀॥

भगवन्मम वंशस्य शूलमेतदनुत्तमम् ।
भवेत्तु सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥₁₁॥

तं ब्रुवाणं मधुं देवः सर्वभूतपतिः शिवः ।
प्रत्युवाच महादेवो नैतदेवं भविष्यति ॥₁₂॥

मा भूते विफला वाणी मत्प्रसादकृता शुभा ।
भवतः पुत्रमेकं तु शूलमेतद्भविष्यति ॥₁₃॥

यावत्करस्थः शूलोऽयं भविष्यति सुतस्य ते ।
अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥₁₄॥

एवं मधुर्वरं लब्ध्वा देवात्सुमहदद्भुतम् ।
भवनं चासुरश्रेष्ठः कारयामास सुप्रभम् ॥₁₅॥

तस्य पत्नी महाभागा प्रिया कुम्भीनसी हि या ।
विश्वावसोरपत्यं सा ह्यनलायां महाप्रभा ॥₁₆॥

तस्याः पुत्रो महावीर्यो लवणो नाम दारुणः ।
बाल्यात्प्रभृति दुष्टात्मा पापान्येव समाचरत् ॥₁₇॥

तं पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा दुःखसमन्वितः ।
मधुः स शोकमापेदे न चैनं किञ्चिदब्रवीत् ॥₁₈॥

स विहाय द्वयं लोकं प्रविष्टो वरुणालयम् ।
शूलं निवेश्य लवणे वरं तस्मै न्यवेदयत् ॥₁₉॥

स प्रभावेन शूलस्य दौरात्म्येनात्मनस्तथा ।
सन्तापयति लोकांस्त्रीन्विशेषेण तु तापसान् ॥₂₀॥

एवम्प्रभावो लवणः शूलं चैव तथाविधम् ।

श्रुत्वा प्रमाणं काकुत्स्थ ब्रं हि नः परमा गतिः ॥₂₁॥

बहवः पार्थिवा राम भयार्तेर्ऋषिभिः पुरा ।
अभयं याचिता वीर त्रातारं न च विद्वहे ॥₂₂॥

ते वयं रावणं श्रुत्वा हतं सबलवाहनम् ।
त्रातारं विद्वहे राम नान्यं भुवि नराधिपम् ।
तत्परित्रातुमिच्छामो लवणाद्भयपीडिताः ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

तथोक्ते तानृषीन्नामः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
किमाहारः किमाचारो लवणः क्व च वर्तते ॥₁॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
ततो निवेदयामासुर्लवणो ववृधे यथा ॥₂॥

आहारः सर्वसत्त्वानि विशेषेण च तापसाः ।
आचारो रौद्रता नित्यं वासो मधुवने सदा ॥₃॥

हत्वा दशसहस्राणि सिंहव्याघ्रमृगद्विपान् ।
मानुषांश्चैव कुरुते नित्यमाहारमाह्निकम् ॥₄॥

ततोऽपराणि सत्त्वानि खादते स महाबलः ।
संहारे समनुप्राप्ते व्यादितास्य द्ववान्तकः ॥₅॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यमुवाच स महामुनीन् ।
घातयिष्यामि तद्रक्षो व्यपगच्छतु वो भयम् ॥₆॥

तथा तेषां प्रतिज्ञाय मुनीनामुग्रतेजसाम् ।
स भ्रातृन्सहितान्सर्वानुवाच रघुनन्दनः ॥₇॥

को हन्ता लवणं वीराः कस्यांशः स विधीयताम् ।
भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्याथवा पुनः ॥₈॥

राघवेणैवमुक्तस्तु भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
अहमेनं वधिष्यामि ममांशः स विधीयताम् ॥₉॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा शौर्यवीर्यसमन्वितम् ।

लक्ष्मणावरजस्तस्थौ हिवा सौवर्णमासनम् ॥₁₀॥

शत्रुघ्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं प्रणिपत्य नराधिपम् ।
कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुनन्दनः ॥₁₁॥

आर्येण हि पुरा शून्या अयोध्या रक्षिता पुरी ।
सन्तापं हृदये कृत्वा आर्यस्यागमनं प्रति ॥₁₂॥

दुःखानि च बहूनीह अनुभूतानि पार्थिव ।
शयानो दुःखशय्यासु नन्दिग्रामे महात्मना ॥₁₃॥

फलमूलाशनो भूत्वा जटाचीरधरस्तथा ।
अनुभूयेदृशं दुःखमेष राघवनन्दनः ।
प्रेष्ये मयि स्थिते राजन्न भूयः क्लेशमाप्नुयात् ॥₁₄॥

तथा ब्रुवति शत्रुघ्ने राघवः पुनरब्रवीत् ।
एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम् ॥₁₅॥

राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे ।
निवेशय महाबाहो भरतं यद्यवेक्षसे ॥₁₆॥

शूरस्त्वं कृतविद्यश्च समर्थः संनिवेशने ।
नगरं मधुना जुष्टं तथा जनपदाञ्शुभान् ॥₁₇॥

यो हि वंशं समुत्पाट्य पार्थिवस्य पुनः क्षये ।
न विधत्ते नृपं तत्र नरकं स निगच्छति ॥₁₈॥

स त्वं हत्वा मधुसूतं लवणं पापनिश्चयम् ।
राज्यं प्रशाधि धर्मेण वाक्यं मे यद्यवेक्षसे ॥₁₉॥

उत्तरं च न वक्तव्यं शूर वाक्यान्तरे मम ।
बालेन पूर्वजस्याज्ञा कर्तव्या नात्र संशयः ॥₂₀॥

अभिषेकं च काकुत्स्थ प्रतीच्छस्व मयोद्यतम् ।

वसिष्ठप्रमुखैर्विप्रैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

एवमुक्तस्तु रामेण परां व्रीडामुपागतः ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो मन्दं मन्दमुवाच ह ॥₁॥

अवश्यं करणीयं च शासनं पुरुषर्षभ ।
तव चैव महाभाग शासनं दुरतिक्रमम् ।
अयं कामकरो राजंस्तवास्मि पुरुषर्षभ ॥₂॥

एवमुक्ते तु शूरेण शत्रुघ्नेन महात्मना ।
उवाच रामः संहृष्टो लक्ष्मणं भरतं तथा ॥₃॥

सम्भारानभिषेकस्य आनयध्वं समाहिताः ।
अद्यैव पुरुषव्याघ्रमभिषेक्ष्यामि दुर्जयम् ॥₄॥

पुरोधसं च काकुत्स्थौ नैगमानृत्विजस्तथा ।
मन्त्रिणश्चैव मे सर्वानानयध्वं ममाज्ञया ॥₅॥

राज्ञः शासनमाज्ञाय तथाकुर्वन्महारथाः ।
अभिषेकसमारम्भं पुरस्कृत्य पुरोधसम् ।
प्रविष्टा राजभवनं पुरन्दरगृहोपमम् ॥₆॥

ततोऽभिषेको ववृधे शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
सम्प्रहर्षकरः श्रीमान्नाघवस्य पुरस्य च ॥₇॥

ततोऽभिषिक्तं शत्रुघ्नमङ्कमारोप्य राघवः ।
उवाच मधुरां वाणीं तेजस्तस्याभिपूरयन् ॥₈॥

अयं शरस्त्रमोघस्ते दिव्यः परपुरंजयः ।
अनेन लवणं सौम्यं हन्तासि रघुनन्दन ॥₉॥

सृष्टः शरोऽयं काकुत्स्थ यदा शेते महार्णवे ।
स्वयम्भूरजितो देवो यं नापश्यन्सुरासुराः ॥₁₀॥

अदृश्यः सर्वभूतानां तेनायं हि शरोत्तमः ।
सृष्टः क्रोधाभिभूतेन विनाशार्थं दुरात्मनोः ।
मधुकैटभयोर्वीर विघाते वर्तमानयोः ॥₁₁॥

स्रष्टुकामेन लोकांस्त्रींस्तौ चानेन हतौ युधि ।
अनेन शरमुख्येन ततो लोकांश्चकार सः ॥₁₂॥

नायं मया शरः पूर्वं रावणस्य वधार्थिना ।
मुक्तः शत्रुघ्न भूतानां महांस्त्रासो भवेदिति ॥₁₃॥

यच्च तस्य महच्छूलं त्र्यम्बकेण महात्मना ।
दत्तं शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥₁₄॥

तत्संनिक्षिप्य भवने पूज्यमानं पुनः पुनः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य प्राप्नोत्याहारमात्मनः ॥₁₅॥

यदा तु युद्धमाकाङ्क्षन्कश्चिदेनं समाह्वयेत् ।
तदा शूलं गृहीत्वा तद्भस्म रक्षः करोति तम् ॥₁₆॥

स त्वं पुरुषशार्दूल तमायुधविवर्जितम् ।
अप्रविष्टपुरं पूर्वं द्वारि तिष्ठ धृतायुधः ॥₁₇॥

अप्रविष्टं च भवनं युद्धाय पुरुषर्षभ ।
आह्वयेथा महाबाहो ततो हन्तासि राक्षसम् ॥₁₈॥

अन्यथा क्रियमाणे तु अवध्यः स भविष्यति ।
यदि त्वेवं कृते वीर विनाशमुपयास्यति ॥₁₉॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं शूलस्य च विपर्ययम् ।
श्रीमतः शितिकण्ठस्य कृत्यं हि दुरतिक्रमम् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥षट्धाशतमः सर्गः॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं प्रशस्य च पुनः पुनः ।
पुनरेवापरं वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥₁॥

इमान्यश्वसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभ ।
रथानां च सहस्रे द्वे गजानां शतमेव च ॥₂॥

अन्तरापणवीथ्यश्च नानापण्योपशोभिताः ।
अनुगच्छन्तु शत्रुघ्न तथैव नटनर्तकाः ॥₃॥

हिरण्यस्य सुवर्णस्य अयुतं पुरुषर्षभ ।
गृहीत्वा गच्छ शत्रुघ्न पर्याप्तधनवाहनः ॥₄॥

बलं च सुभृतं वीर हृष्टपुष्टमनुत्तमम् ।
सम्भाष्य सम्प्रदानेन रञ्जयस्व नरोत्तम ॥₅॥

न ह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवाः ।
सुप्रीतो भृत्यवर्गस्तु यत्र तिष्ठति राघव ॥₆॥

अतो हृष्टजनाकीर्णां प्रस्थाप्य महतीं चमूम् ।
एक एव धनुष्पानिस्तद्वच्छ त्वं मधोर्वनम् ॥₇॥

यथा त्वां न प्रजानाति गच्छन्तं युद्धकाङ्क्षिणम् ।
लवणस्तु मधोः पुत्रस्तथा गच्छेरशङ्कितः ॥₈॥

न तस्य मृत्युरन्योऽस्ति कश्चिद्धि पुरुषर्षभ ।
दर्शनं योऽभिगच्छेत स वध्यो लवणेन हि ॥₉॥

स ग्रीष्मे व्यपयाते तु वर्षरात्र उपस्थिते ।

हन्यास्त्वं लवणं सौम्य स हि कालोऽस्य दुर्मतेः ॥₁₀॥

महर्षीस्तु पुरस्कृत्य प्रयान्तु तव सैनिकाः ।
यथा ग्रीष्मावशेषेण तरेयुर्जाह्नवीजलम् ॥₁₁॥

ततः स्थाप्य बलं सर्वं नदीतीरे समाहितः ।
अग्रतो धनुषा सार्धं गच्छ त्वं लघुविक्रम ॥₁₂॥

एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुघ्नस्तान्महाबलान् ।
सेनामुख्यान्समानीय ततो वाक्यमुवाच ह ॥₁₃॥

एते वो गणिता वासा यत्र यत्र निवत्स्यथ ।
स्थातव्यं चाविरोधेन यथा बाधा न कस्यचित् ॥₁₄॥

तथा तांस्तु समाज्ञाप्य निर्याप्य च महद्वलम् ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं चाभ्यवादयत् ॥₁₅॥

रामं प्रदक्षिणं कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ।
राणेण चाभ्यनुज्ञातः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥₁₆॥

लक्ष्मणं भरतं चैव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
पुरोधसं वसिष्ठं च शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ।
प्रदक्षिणमथो कृत्वा निर्जगाम महाबलः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्षाशत्तमः सर्गः॥

॥सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

प्रस्थाप्य तद्वलं सर्व मासमात्रोषितः पथि ।
एक एवाशु शत्रुघ्नो जगाम बरितस्तदा ॥₁॥

द्विरात्रमन्तरे शूर उष्य राघवनन्दनः ।
वाल्मीकेराश्रमं पुण्यमगच्छद्वासमुत्तमम् ॥₂॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ।
कृताञ्जलिरथो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₃॥

भगवन्वस्तुमिच्छामि गुरोः कृत्यादिहागतः ।
श्वः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीचीं वारुणीं दिशम् ॥₄॥

शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
प्रत्युवाच महात्मानं स्वागतं ते महायशः ॥₅॥

स्वमाश्रममिदं सौम्य राघवाणां कुलस्य ह ।
आसनं पादमर्घ्यं च निर्विशङ्कः प्रतीच्छ मे ॥₆॥

प्रतिगृह्य ततः पूजां फलमूलं च भोजनम् ।
भक्षयामास काकुत्स्थस्तृप्तिं च परमां गतः ॥₇॥

स तु भुक्त्वा महाबाहुर्महर्षिं तमुवाच ह ।
पूर्वं यज्ञविभूतीयं कस्याश्रमसमीपतः ॥₈॥

तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् ।
शत्रुघ्न शृणु यस्येदं बभूवायतनं पुरा ॥₉॥

युष्माकं पूर्वको राजा सुदासस्य महात्मनः ।

पुत्रो मित्रसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिकः ॥₁₀॥

स बाल एव सौदासो मृगयामुपचक्रमे ।
चञ्चूर्यमाणं ददृशे स शूरो राक्षसद्वयम् ॥₁₁॥

शार्दूलरूपिणौ घोरौ मृगान्बहुसहस्रशः ।
भक्षयाणावसन्तुष्टौ पर्याप्तिं च न जग्मतुः ॥₁₂॥

स तु तौ राक्षसौ दृष्ट्वा निर्मृगं च वनं कृतम् ।
क्रोधेन महताविष्टो जघानैकं महेषुणा ॥₁₃॥

विनिपात्य तमेकं तु सौदासः पुरुषर्षभः ।
विज्वरो विगतामर्षो हतं रक्षोऽभ्यवैक्षत ॥₁₄॥

निरीक्षमाणं तं दृष्ट्वा सहायस्तस्य रक्षसः ।
सन्तापमकरोद्धोरं सौदासं चेदमब्रवीत् ॥₁₅॥

यस्मादनपराद्धं त्वं सहायं मम जघ्निवान् ।
तस्मात्तवापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिक्रियाम् ॥₁₆॥

एवमुक्त्वा तु तं रक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ।
कालपर्याययोगेन राजा मित्रसहोऽभवत् ॥₁₇॥

राजापि यजते यज्ञं तस्याश्रमसमीपतः ।
अश्वमेधं महायज्ञं तं वसिष्ठोऽभ्यपालयत् ॥₁₈॥

तत्र यज्ञो महानासीद्बहुवर्षगणायुतान् ।
समृद्धः परया लक्ष्म्या देवयज्ञसमोऽभवत् ॥₁₉॥

अथावसाने यज्ञस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
वसिष्ठरूपी राजानमिति होवाच राक्षसः ॥₂₀॥

अद्य यज्ञावसानान्ते सामिपं भोजनं मम ।

दीयतामिति शीघ्रं वै नात्र कार्या विचारणा ॥₂₁॥

तच्छ्रुत्वा व्याहतं वाक्यं रक्षसा कामरूपिणा ।
भक्षसंस्कारकुशलमुवाच पृथिवीपतिः ॥₂₂॥

हविष्यं सामिषं स्वादु यथा भवति भोजनम् ।
तथा कुरुष्व शीघ्रं वै परितुष्येद्यथा गुरुः ॥₂₃॥

शासनात्पार्थिवेन्द्रस्य सूदः सम्भ्रान्तमानसः ।
स च रक्षः पुनस्तत्र सूदवेषमथाकरोत् ॥₂₄॥

स मानुषमथो मांसं पार्थिवाय न्यवेदयत् ।
इदं स्वादुहविष्यं च सामिषं चान्नमाहृतम् ॥₂₅॥

स भोजनं वसिष्ठाय पत्न्या सार्धमुपाहरत् ।
मदयन्त्या नरव्याघ्र सामिषं रक्षसा हृतम् ॥₂₆॥

ज्ञात्वा तदामिषं विप्रो मानुषं भोजनाहृतम् ।
क्रोधेन महताविष्टो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥₂₇॥

यस्माच्च भोजनं राजन्ममैतद्वातुमिच्छसि ।
तस्माद्भोजनमेतत्ते भविष्यति न संशयः ॥₂₈॥

स राजा सह पत्न्या वै प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
पुनर्वसिष्ठं प्रोवाच यदुक्तं ब्रह्मरूपिणा ॥₂₉॥

तच्छ्रुता पार्थिवेन्द्रस्य रक्षसा विकृतं च तत् ।
पुनः प्रोवाच राजानं वसिष्ठः पुरुषर्षभम् ॥₃₀॥

मया रोषपरीतेन यदिदं व्याहतं वचः ।
नैतच्छक्यं वृथा कर्तुं प्रदास्यामि च ते वरम् ॥₃₁॥

कालो द्वादश वर्षाणि शापस्यास्य भविष्यति ।

मत्प्रसादाच्च राजेन्द्र अतीतं न स्मरिष्यसि ॥₃₂॥

एवं स राजा तं शापमुपभुज्यारिमर्दनः ।
प्रतिलेभे पुना राज्यं प्रजाश्चैवान्वपालयत् ॥₃₃॥

तस्य कल्माषपादस्य यज्ञस्यायतनं शुभम् ।
आश्रमस्य समीपेऽस्मिन्यस्मिन्पृच्छसि राघव ॥₃₄॥

तस्य तां पार्थिवेन्द्रस्य कथां श्रुत्वा सुदारुणाम् ।
विवेश पर्णशालायां महर्षिमभिवाद्य च ॥₃₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

यामेव रात्रिं शत्रुघ्न पर्णशालां समाविशत् ।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥₁॥

ततोऽर्धरात्रसमये बालका मुनिदारकाः ।
वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम् ।
तस्य रक्षां महातेजः कुरु भूतविनाशिनीम् ॥₂॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनिर्हर्षमुपागमत् ।
भूतघ्नीं चाकरोत्ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम् ॥₃॥

कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ।
वाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम् ॥₄॥

यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसंस्कृतैः ।
निर्मार्जनीयस्तु भवेत्कुश इत्यस्य नामतः ॥₅॥

यश्चापरो भवेत्ताभ्यां लवेन सुसमाहितः ।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवश्चेति स नामतः ॥₆॥

एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ।
मत्कृतभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः ॥₇॥

ते रक्षां जगृहुस्तां च मुनिहस्तात्समाहिताः ।
अकुर्वन्श्च ततो रक्षां तयोर्विगतकल्मषाः ॥₈॥

तथा तां क्रियमाणां तु रक्षां गोत्रं च नाम च ।
सङ्कीर्तनं च रामस्य सीतायाः प्रसवौ शुभौ ॥₉॥

अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत्प्रियम् ।
पर्णशालां गतो रात्रौ दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥₁₀॥

तथ तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघुविक्रमा ॥₁₁॥

प्रभाते तु महावीर्यः कृत्वा पौर्वाहिकं क्रमम् ।
मुनिं प्राञ्जलिरामन्त्य प्रायात्पश्चान्मुखः पुनः ॥₁₂॥

स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि ।
ऋषीणां पुण्यकीर्तिनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥₁₃॥

स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुखैर्नृपः ।
कथाभिर्बहुरूपाभिर्वासं चक्रे महायशाः ॥₁₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टपञ्चाशत्तमः सर्गः॥

॥एकोनषष्टितमः सर्गः॥

अथ रात्र्यां प्रवृत्तायां शत्रुघ्नो भृगुनन्दनम् ।
पप्रच्छ च्यवनं विप्रं लवणस्य बलाबलम् ॥₁॥

शूलस्य च बलं ब्रह्मन्के च पूर्वं निपातिताः ।
अनेन शूलमुखेन द्वन्द्वयुद्धमुपागताः ॥₂॥

तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाश्च्यवनो रघुनन्दनम् ॥₃॥

असङ्ख्येयानि कर्माणि यान्यस्य पुरुषर्षभ ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवे यद्वृत्तं तच्छृणुष्व मे ॥₄॥

अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली ।
मान्धाता इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥₅॥

स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्नां शासने पृथिवीपतिः ।
सुरलोकमथो जेतुमुद्योगमकरोन्नृपः ॥₆॥

इन्द्रस्य तु भयं तीव्रं सुराणां च महात्मनाम् ।
मान्धातरि कृतोद्योगे देवलोकजिगीषया ॥₇॥

अर्धासनेन शक्रस्य राज्यार्धेन च पार्थिवः ।
वन्द्यमानः सुरगणैः प्रतिज्ञामध्यरोहत ॥₈॥

तस्य पापमभिप्रायं विदिता पाकशासनः ।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमुवाच युवनाश्वजम् ॥₉॥

राजा त्वं मानुषे लोके न तावत्पुरुषर्षभ ।

अकृत्वा पृथिवीं वश्यां देवराज्यमिहेच्छसि ॥₁₀॥

यदि वीर समग्रा ते मेदिनी निखिला वशे ।
देवराज्यं कुरुष्वेह सभृत्यबलवाहनः ॥₁₁॥

इन्द्रमेवं ब्रुवाणं तु मान्धाता वाक्यमब्रवीत् ।
क्व मे शक्र प्रतिहतं शासनं पृथिवीतले ॥₁₂॥

तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः ।
मधुपुत्रो मधुवने नाज्ञां ते कुरुतेऽनघ ॥₁₃॥

तच्छ्रुत्वा विप्रियं घोरं सहस्राक्षेण भाषितम् ।
व्रीडितोऽवाङ्मुखो राजा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥₁₄॥

आमन्त्र्य तु सहस्राक्षं हिया किञ्चिदवाङ्मुखः ।
पुनरेवागमच्छ्रीमानिमं लोकं नरेश्वरः ॥₁₅॥

स कृत्वा हृदयेऽमर्षं सभृत्यबलवाहनः ।
आजगाम मधोः पुत्रं वशे कर्तुमनिन्दितः ॥₁₆॥

स काङ्क्षमाणो लवणं युद्धाय पुरुषर्षभः ।
दूतं सम्प्रेषयामास सकाशं लवणस्य सः ॥₁₇॥

स गत्वा विप्रियाण्याह बहूनि मधुनः सुतम् ।
वदन्तमेवं तं दूतं भक्षयामास राक्षसः ॥₁₈॥

चिरायमाणे दूते तु राजा क्रोधसमन्वितः ।
अर्दयामास तद्रक्षः शरवृष्ट्या समन्ततः ॥₁₉॥

ततः प्रहस्य लवणः शूलं जग्राह पाणिना ।
वधाय सानुबन्धस्य मुमोचायुधमुत्तमम् ॥₂₀॥

तच्छूलं दीप्यमानं तु सभृत्यबलवाहनम् ।

भस्मीकृत्य नृपं भूयो लवणस्यागमत्करम् ॥₂₁॥

एवं स राजा सुमहान्हतः सबलवाहनः ।
शूलस्य च बलं वीर अप्रमेयमनुत्तमम् ॥₂₂॥

श्वः प्रभाते तु लवणं वधिष्यसि न संशयः ।
अगृहीतायुधं क्षिप्रं ध्रुवो हि विजयस्तव ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः॥

॥षष्ठितमः सर्गः॥

कथां कथयतां तेषां जयं चाकाङ्क्षतां शुभम् ।
व्यतीता रजनी शीघ्रं शत्रुघ्नस्य महात्मनः ॥₁॥

ततः प्रभाते विमले तस्मिन्काले स राक्षसः ।
निर्गतस्तु पुराद्वीरो भक्षाहारप्रचोदितः ॥₂॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः शत्रुघ्नो यमुनां नदीम् ।
तीर्त्वा मधुपुरद्वारि धनुष्पाणिरतिष्ठत ॥₃॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते क्रूरकर्मा स राक्षसः ।
आगच्छद्बहुसहस्रं प्राणिनामुद्वहन्भरम् ॥₄॥

ततो ददर्श शत्रुघ्नं स्थितं द्वारि धृतायुधम् ।
तमुवाच ततो रक्षः किमनेन करिष्यसि ॥₅॥

ईदृशानां सहस्राणि सायुधानां नराधम ।
भक्षितानि मया रोषात्कालमाकाङ्क्षसे नु किम् ॥₆॥

आहारश्चाप्यसम्पूर्णो ममायं पुरुषाधम ।
स्वयं प्रविष्टो नु मुखं कथमासाद्य दुर्मते ॥₇॥

तस्यैवं भाषमाणस्य हसतश्च मुहुर्मुहुः ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो रोषादश्रूण्यवर्तयत् ॥₈॥

तस्य रोषाभिभूतस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
तेजोमया मरीच्यस्तु सर्वगात्रैर्विनिष्पतन् ॥₉॥

उवाच च सुसङ्क्रुद्धः शत्रुघ्नस्तं निशाचरम् ।

योद्धुमिच्छामि दुर्बुद्धे द्वन्द्वयुद्धं त्वया सह ॥₁₀॥

पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता रामस्य धीमतः ।
शत्रुघ्नो नाम शत्रुघ्नो वधाकाङ्क्षी तवागतः ॥₁₁॥

तस्य मे युद्धकामस्य द्वन्द्वयुद्धं प्रदीयताम् ।
शत्रुस्त्वं सर्वजीवानां न मे जीवन्गमिष्यसि ॥₁₂॥

तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु राक्षसः प्रहसन्निव ।
प्रत्युवाच नरश्रेष्ठं दिष्ट्या प्राप्तोऽसि दुर्मते ॥₁₃॥

मम मातृष्वसुभ्राता रावणो नाम राक्षसः ।
हतो रामेण दुर्बुद्धे स्त्रीहेतोः पुरुषाधम ॥₁₄॥

तच्च सर्वं मया क्षान्तं रावणस्य कुलक्षयम् ।
अवज्ञां पुरतः कृत्वा मया यूयं विशेषतः ॥₁₅॥

न हताश्च हि मे सर्वे परिभूतास्तृणं यथा ।
भूताश्चैव भविष्याश्च यूयं च पुरुषाधमाः ॥₁₆॥

तस्य ते युद्धकामस्य युद्धं दास्यामि दुर्मते ।
ईप्सितं यादृशं तुभ्यं सञ्जये यावदायुधम् ॥₁₇॥

तमुवाचाथ शत्रुघ्नः क्व मे जीवन्गमिष्यसि ।
दुर्बलोऽप्यागतः शत्रुर्न मोक्तव्यः कृतात्मना ॥₁₈॥

यो हि विक्लवया बुद्ध्या प्रसरं शत्रवे ददौ ।
स हतो मन्दबुद्धिर्बादयथा कापुरुषस्तथा ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठितमः सर्गः॥

॥एकषष्टितमः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥₁॥

पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य दन्तान्कटकटाय्य च ।
लवणो रघुशार्दूलमाह्वयामास चासकृत् ॥₂॥

तं ब्रुवाणं तथा वाक्यं लवणं घोरविक्रमम् ।
शत्रुघ्नो देव शत्रुघ्न इदं वचनमब्रवीत् ॥₃॥

शत्रुघ्नो न तदा जातो यदान्ये निर्जितास्त्वया ।
तदद्य बाणाभिहतो व्रज तं यमसादनम् ॥₄॥

ऋषयोऽप्यद्य पापात्मन्मया त्वां निहतं रणे ।
पश्यन्तु विप्रा विद्वांसस्त्रिदशा इव रावणम् ॥₅॥

त्वयि मद्बाणनिर्दग्धे पतितेऽद्य निशाचर ।
पुरं जनपदं चापि क्षेममेतद्भविष्यति ॥₆॥

अद्य मद्बाहुनिष्क्रान्तः शरो वज्रनिभाननः ।
प्रवेक्ष्यते ते हृदयं पद्ममंशुरिवार्कजः ॥₇॥

एवमुक्तो महावृक्षं लवणः क्रोधमूर्छितः ।
शत्रुघ्नोरसि चिक्षेप तं शूरः शतधाच्छिनत् ॥₈॥

तद्दृष्ट्वा विफलं कर्म राक्षसः पुनरेव तु ।
पादपान्सुबहून्गृह्य शत्रुघ्ने व्यसृजद्वली ॥₉॥

शत्रुघ्नश्चापि तेजस्वी वृक्षानापततो बहून् ।

त्रिभिश्चतुर्भिरैकैकं चिच्छेद नतपर्वभिः ॥₁₀॥

ततो बाणमयं वर्षं व्यसृजद्राक्षसोरसि ।
शत्रुघ्नो वीर्यसम्पन्नो विव्यथे न च राक्षसः ॥₁₁॥

ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुत्पाट्य लीलया ।
शिरस्यभ्यहनच्छूरं स्रस्ताङ्गः स मुमोह वै ॥₁₂॥

तस्मिन्निपतिते वीरे हाहाकारो महानभूत् ।
ऋषीणां देव सङ्घानां गन्धर्वाप्सरसामपि ॥₁₃॥

तमवज्ञाय तु हतं शत्रुघ्नं भुवि पातितम् ।
रक्षो लब्धान्तरमपि न विवेश स्वमालयम् ॥₁₄॥

नापि शूलं प्रजग्राह तं दृष्ट्वा भुवि पातितम् ।
ततो हत इति ज्ञात्वा तान्भक्षान्समुदावहत् ॥₁₅॥

मुहूर्तालब्धसंज्ञस्तु पुनस्तस्थौ धृतायुधः ।
शत्रुघ्नो राक्षसद्वारि ऋषिभिः सम्प्रपूजितः ॥₁₆॥

ततो दिव्यममोघं तं जग्राह शरमुत्तमम् ।
ज्वलन्तं तेजसा घोरं पूरयन्तं दिशो दश ॥₁₇॥

वज्राननं वज्रवेगं मेरुमन्दर गौरवम् ।
नतं पर्वसु सर्वेषु संयुगेष्वपराजितम् ॥₁₈॥

असृक्कन्दनदिग्धाङ्गं चारुपत्रं पतत्रिणम् ।
दानवेन्द्राचलेन्द्राणामसुराणां च दारुणम् ॥₁₉॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं युगान्ते समुपस्थिते ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि परित्रासमुपागमन् ॥₂₀॥

सदेवासुरगन्धर्वं समुनिं साप्सरोगणम् ।

जगद्धि सर्वमस्वस्थं पितामहमुपस्थितम् ॥₂₁॥

ऊचुश्च देवदेवेशं वरदं प्रपितामहम् ।
कच्चिल्लोकक्षयो देव प्राप्तो वा युगसङ्ख्यः ॥₂₂॥

नेदृशं दृष्टपूर्वं न श्रुतं वा प्रपितामह ।
देवानां भयसम्मोहो लोकानां सङ्ख्यः प्रभो ॥₂₃॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामनः ।
भयकारणमाचष्टे देवानामभयङ्करः ॥₂₄॥

वधाय लवणस्याजौ शरः शत्रुघ्नधारितः ।
तेजसा यस्य सर्वे स्म सम्मूढाः सुरसत्तमाः ॥₂₅॥

एषो हि पूर्वं देवस्य लोककर्तुः सनातनः ।
शरस्तेजोमयो वत्सा येन वै भयमागतम् ॥₂₆॥

एष वै कैटभस्यार्थे मधुनश्च महाशरः ।
सृष्टो महात्मना तेन वधार्थं दैत्ययोस्तयोः ॥₂₇॥

एवमेतं प्रजानीध्वं विष्णोस्तेजोमयं शरम् ।
एषा चैव तनुः पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मनः ॥₂₈॥

इतो गच्छता पश्यध्वं वध्यमानं महात्मना ।
रामानुजेन वीरेण लवणं राक्षसोत्तमम् ॥₂₉॥

तस्य ते देवदेवस्य निशम्य मधुरां गिरम् ।
आजग्मुर्यत्र युध्येते शत्रुघ्नलवणावुभौ ॥₃₀॥

तं शरं दिव्यसङ्काशं शत्रुघ्नकरधारितम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥₃₁॥

आकाशमावृतं दृष्ट्वा देवैर्हि रघुनन्दनः ।

सिंहनादं मुहुः कृत्वा ददर्श लवणं पुनः ॥₃₂॥

आहूतश्च ततस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मना ।
लवणः क्रोधसंयुक्तो युद्धाय समुपस्थितः ॥₃₃॥

आकर्णात्स विकृष्याथ तद्धनुर्धन्विनां वरः ।
स मुमोच महाबाणं लवणस्य महोरसि ।
उरस्तस्य विदार्याशु प्रविवेश रसातलम् ॥₃₄॥

गत्वा रसातलं दिव्यं शरो विबुधपूजितः ।
पुनरेवागमत्तूर्णमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ॥₃₅॥

शत्रुघ्नशरनिर्भिन्नो लवणः स निशाचरः ।
पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥₃₆॥

तच्च दिव्यं महच्छूलं हते लवणराक्षसे ।
पश्यतां सर्वभूतानां रुद्रस्य वशमन्वगात् ॥₃₇॥

एकेषुपातेन भयं निहत्य
लोकत्रयस्यास्य रघुप्रवीरः ।
विनिर्बभावुद्यतचापबाणः
तमः प्रणुदेव सहस्ररश्मिः ॥₃₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः॥

॥द्विषष्टितमः सर्गः॥

हते तु लवणे देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ।
ऊचुः सुमधुरां वाणीं शत्रुघ्नां शत्रुतापनम् ॥₁॥

दिष्ट्या ते विजयो वत्स दिष्ट्य लवणराक्षसः ।
हतः पुरुषशार्दूलवरं वरय राघव ॥₂॥

वरदाः स्म महाबाहो सर्व एव समागताः ।
विजयाकाङ्क्षिणस्तुभ्यममोघं दर्शनं हि नः ॥₃॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा शूरो मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
प्रत्युवाच महाबाहुः शत्रुघ्नः प्रयतात्मवान् ॥₄॥

इमां मधुपुरीं रम्यां मधुरां देव निर्मिताम् ।
निवेशं प्रप्नुयां शीघ्रमेष मेऽस्तु वरो मतः ॥₅॥

तं देवाः प्रीतमनसो बाढमित्येव राघवम् ।
भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः ॥₆॥

ते तथोक्त्वा महात्मानो दिवमारुरुहुस्तदा ।
शत्रुघ्नोऽपि महातेजास्तां सेनां समुपानयत् ॥₇॥

सा सेन शीघ्रमागच्छच्छ्रुत्वा शत्रुघ्नशासनम् ।
निवेशनं च शत्रुघ्नः शासनेन समारभत् ॥₈॥

सा पुरी दिव्यसङ्काशा वर्षे द्वादशमे शुभा ।
निविष्टा शूरसेनानां विषयश्चाकुतोभयः ॥₉॥

क्षेत्राणि सस्य युक्तानि काले वर्षति वासवः ।

अरोगा वीरपुरुषा शत्रुघ्नभुजपालिता ॥₁₀॥

अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ।
शोभिता गृहमुख्यैश्च शोभिता चबरापणैः ॥₁₁॥

यच्च तेन महच्छून्यं लवणेन कृतं पुरा ।
शोभयामास तद्दीरो नानापण्यसमृद्धिभिः ॥₁₂॥

तां समृद्धां समृद्धार्थः शत्रुघ्नो भरतानुजः ।
निरीक्ष्य परमप्रीतः परं हर्षमुपागमत् ॥₁₃॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम् ।
रामपादौ निरीक्षेयं वर्षे द्वादशमे शुभे ॥₁₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥

॥त्रिषष्टितमः सर्गः॥

ततो द्वादशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपालिताम् ।
अयोध्यां चकमे गन्तुमल्पभृत्यबलानुगः ॥₁॥

मन्त्रिणो बलमुख्यांश्च निवर्त्य च पुरोधसम् ।
जगाम रथमुख्येन हययुक्तेन भास्वता ॥₂॥

स गत्वा गणितान्वासान्सप्ताष्टौ रघुनन्दनः ।
अयोध्यामगमत्तूर्णं राघवोत्सुकदर्शनः ॥₃॥

स प्रविश्य पुरीं रम्यां श्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः ।
प्रविवेश महाबाहुर्यत्र रामो महाद्युतिः ॥₄॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा रामं सत्यपराक्रमम् ॥₅॥

यदाज्ञप्तं महाराज सर्वं तत्कृतवानहम् ।
हतः स लवणः पापः पुरी सा च निवेशिता ॥₆॥

द्वादशं च गतं वर्षं त्वां विना रघुनन्दन ।
नोत्सहेयमहं वस्तुं त्वया विरहितो नृप ॥₇॥

स मे प्रसादं काकुत्स्थ कुरुष्वामितविक्रम ।
मातृहीनो यथा वत्सस्त्वां विना प्रवसाम्यहम् ॥₈॥

एवं ब्रुवाणं शत्रुघ्नं परिष्वज्येदमब्रवीत् ।
मा विषादं कृथा वीर नैतत्क्षत्रिय चेष्टितम् ॥₉॥

नावसीदन्ति राजानो विप्रवासेषु राघव ।

प्रजाश्च परिपाल्या हि क्षत्रधर्मेण राघव ॥₁₀॥

काले काले च मां वीर अयोध्यामवलोकितुम् ।
आगच्छ त्वं नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव ॥₁₁॥

ममापि त्वं सुदयितः प्राणैरपि न संशयः ।
अवश्यं करणीयं च राज्यस्य परिपालनम् ॥₁₂॥

तस्मात्त्वं वस काकुत्स्थ पञ्चरात्रं मया सह ।
ऊर्ध्वं गन्तासि मधुरां सभृत्यबलवाहनः ॥₁₃॥

रामस्यैतद्वचः श्रुत्वा धर्मयुक्तं मनोऽनुगम् ।
शत्रुघ्नो दीनया वाचा बाढमित्येव चाब्रवीत् ॥₁₄॥

स पञ्चरात्रं काकुत्स्थो राघवस्य यथाज्ञया ।
उष्य तत्र महेष्वासो गमनायोपचक्रमे ॥₁₅॥

आमन्त्र्य तु महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
भरतं लक्ष्मणं चैव महारथमुपारुहत् ॥₁₆॥

दूरं ताभ्यामनुगतो लक्ष्मणेन महात्मना ।
भरतेन च शत्रुघ्नो जगामाशु पुरीं तदा ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥

॥चतुःषष्टितमः सर्गः॥

प्रस्थाप्य तु स शत्रुघ्नं भ्रातृभ्यां सह राघवः ।
प्रमुमोद सुखी राज्यं धर्मेण परिपालयन् ॥₁॥

ततः कतिपयाहःसु वृद्धो जानपदो द्विजः ।
शवं बालमुपादाय राजद्वारमुपागमत् ॥₂॥

रुदन्बहुविधा वाचः स्नेहाक्षरसमन्विताः ।
असकृत्पुत्रपुत्रेति वाक्यमेतदुवाच ह ॥₃॥

किं नु मे दुष्कृतं कर्म पूर्वं देहान्तरे कृतम् ।
यदहं पुत्रमेकं त्वां पश्यामि निधनं गतम् ॥₄॥

अप्राप्तयौवनं बालं पञ्चवर्षसमन्वितम् ।
अकाले कालमापन्नं दुःखाय मम पुत्रक ॥₅॥

अल्पैरहोभिर्निधनं गमिष्यामि न संशयः ।
अहं च जननी चैव तव शोकेन पुत्रक ॥₆॥

न स्मराम्यनृतं ह्युक्तं न च हिंसां स्मराम्यहम् ।
केन मे दुष्कृतेनाद्य बाल एव ममात्मजः ।
अकृत्वा पितृकार्याणि नीतो वैवस्वतक्षयम् ॥₇॥

नेदृशं दृष्टपूर्वं मे श्रुतं वा घोरदर्शनम् ।
मृत्युरप्राप्तकालानां रामस्य विषये यथा ॥₈॥

रामस्य दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ।
त्वं राजञ्जीवयस्वैनं बालं मृत्युवशं गतम् ॥₉॥

भ्रातृभिः सहितो राजन्दीर्घमायुरवाप्नुहि ।
उषिताः स्म सुखं राज्ये तवास्मिन्सुमहाबल ॥₁₀॥

सम्प्रत्यनाथो विषय इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
रामं नाथमिहासाद्य बालान्तकरणं नृपम् ॥₁₁॥

राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः ।
असद्वृत्ते तु नृपतावकाले म्रियते जनः ॥₁₂॥

यदा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेशु च ।
कुर्वते न च रक्षास्ति तदाकालकृतं भयम् ॥₁₃॥

सव्यक्तं राजदोषोऽयं भविष्यति न संशयः ।
पुरे जनपदे वापि तदा बालवधो ह्ययम् ॥₁₄॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्निन्दयानो मुहुर्मुहुः ।
राजानं दुःखसन्तप्तः सुतं तमुपगूहति ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥

॥पञ्चषष्टितमः सर्गः॥

तथा तु करुणं तस्य द्विजस्य परिदेवितम् ।
शुश्राव राघवः सर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥₁॥

स दुःखेन सुसन्तप्तो मन्त्रिणः समुपाह्वयत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च भ्रातृश्च सहनैगमान् ॥₂॥

ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः ।
राजानं देवसङ्काशं वर्धस्वेति ततोऽब्रुवन् ॥₃॥

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः ।
कात्यायनोऽथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥₄॥

एते द्विजर्षभाः सर्वे आगनेषूपवेशिताः ।
मन्त्रिणो नैगमाश्चैव यथार्हमनुकूलतः ॥₅॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ।
रघवः सर्वमाचष्टे द्विजो यस्मात्प्ररोदिति ॥₆॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राज्ञो दीनस्य नारदः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमृषीणां संनिधौ नृपम् ॥₇॥

शृणु राजन्यथाकाले प्राप्तोऽयं बालसङ्ख्यः ।
श्रुत्वा कर्तव्यतां वीर कुरुष्व रघुनन्दन ॥₈॥

पुरा कृतयुगे राम ब्राह्मणा वै तपस्विनः ।
अब्राह्मणस्तदा राजन्न तपस्वी कथञ्चन ॥₉॥

तस्मिन्युगे प्रज्वलिते ब्रह्मभूते अनावृते ।

अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे दीर्घदर्शिनः ॥₁₀॥

ततस्त्रेतायुगं नाम मानवानां वपुष्मताम् ।
क्षत्रिया यत्र जायन्ते पूर्वेण तपसान्विताः ॥₁₁॥

वीर्येण तपसा चैव तेऽधिकाः पूर्वजन्मनि ।
मानवा ये महात्मानस्तस्मिंस्त्रेतायुगे युगे ॥₁₂॥

ब्रह्मक्षत्रं तु तत्सर्वं यत्पूर्वमपरं च यत् ।
युगयोरुभयोरासीत्समवीर्यसमन्वितम् ॥₁₃॥

अपश्यन्तस्तु ते सर्वे विशेषमधिकं ततः ।
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य सर्वतः ॥₁₄॥

अधर्मः पादमेकं तु पातयत्पृथिवीतले ।
अधर्मेण हि संयुक्तास्तेन मन्दाभवन्द्भिजाः ॥₁₅॥

ततः प्रादुष्कृतं पूर्वमायुषः परिनिष्ठितम् ।
शुभान्येवाचरँल्लोकाः सत्यधर्मपरायणाः ॥₁₆॥

त्रेतायुगे ब्रवर्तन्त ब्राह्मणाः क्षत्रियश्च ये ।
तपोऽतप्यन्त ते सर्वे शुश्रूषामपरे जनाः ॥₁₇॥

स धर्मः परमस्तेषां वैश्यशूद्रमथागमत् ।
पूजां च सर्ववर्णानां शूद्राश्चक्रुर्विशेषतः ॥₁₈॥

ततः पादमधर्मस्य द्वितीयमवतारयत् ।
ततो द्वापरसङ्ख्या सा युगस्य समजायत ॥₁₉॥

तस्मिन्द्वापरसङ्ख्ये तु वर्तमाने युगक्षये ।
अधर्मश्चानृतं चैव ववृधे पुरुषर्षभ ॥₂₀॥

तस्मिन्द्वापरसङ्ख्याते तपो वैश्यान्समाविशत् ।

न शूद्रो लभते धर्ममुग्रं तप्तं नरर्षभ ॥₂₁॥

हीनवर्णो नरश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः ।
भविष्या शूद्रयोन्यां हि तपश्चर्या कलौ युगे ॥₂₂॥

अधर्मः परमो राम द्वापरे शूद्रधारितः ।
स वै विषयपर्यन्ते तव राजन्महातपाः ।
शूद्रस्तप्यति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधो ह्ययम् ॥₂₃॥

यो ह्यधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य हि ।
करोति राजशार्दूल पुरे वा दुर्मतिर्नरः ।
क्षिप्रं हि नरकं याति स च राजा न संशयः ॥₂₄॥

स त्वं पुरुषशार्दूल मार्गस्त्वं विषयं स्वकम् ।
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर ॥₂₅॥

एवं ते धर्मवृद्धिश्च नृणां चायुर्विवर्धनम् ।
भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवितम् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चषष्ठितमः सर्गः॥

॥षट्षष्टितमः सर्गः॥

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वामृतमयं यथा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥₁॥

गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं समाश्वासय लक्ष्मण ।
बालस्य च शरीरं तत्तैलद्रोण्यां निधापय ॥₂॥

गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्च सुसुगन्धिभिः ।
यथा न क्षीयते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥₃॥

यथा शरीरे बालस्य गुप्तस्याक्लिष्टकर्मणः ।
विपत्तिः परिभेदो वा भवेन्न च तथा कुरु ॥₄॥

तथा सन्दिश्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः ॥₅॥

इङ्गितं स तु विज्ञाय पुष्पको हेमभूषितः ।
आजगाम मुहूर्तेन सम्पीपं राघवस्य वै ॥₆॥

सोऽब्रवीत्प्रणतो भूत्वा अयमस्मि नराधिप ।
वश्यस्तव महाबाहो किङ्करः समुपस्थितः ॥₇॥

भाषितं रुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिपः ।
अभिवाद्य महर्षीस्तान्विमानं सोऽध्यरोहत ॥₈॥

धनुर्गृहीत्वा तूणीं च खगदं च रुचिरप्रभम् ।
निक्षिप्य नगरे वीरौ सौमित्रिभरतावुभौ ॥₉॥

प्रायात्प्रतीचीं स मरून्विचिन्वंश्च समन्ततः ।

उत्तरामगमच्छ्रीमान्दिशं हिमवदावृतम् ॥₁₀॥

अपश्यमानस्तत्रापि स्वल्पमप्यथ दुष्कृतम् ।
पूर्वामपि दिशं सर्वामथापश्यन्नराधिपः ॥₁₁॥

दक्षिणां दिशमाक्रामत्ततो राजर्षिनन्दनः ।
शैवलस्योत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥₁₂॥

तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः ।
ददर्श राघवः श्रीमौलम्बमानमधो मुखम् ॥₁₃॥

अथैनं समुपागम्य तप्यन्तं तप उत्तमम् ।
उवाच राघवो वाक्यं धन्यस्त्वमसि सुव्रत ॥₁₄॥

कस्यां योन्यां तपोवृद्धवर्तसे दृढविक्रम ।
कौतूहलात्त्वां पृच्छामि रामो दाशरथिर्ह्यहम् ॥₁₅॥

मनीषितस्ते को न्वर्थः स्वर्गलाभो वराश्रयः ।
यमश्रित्य तपस्तप्तं श्रोतुमिच्छामि तापस ॥₁₆॥

ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वासि दुर्जयः ।
वैश्यो वा यदि वा शूद्रः सत्यमेतद्वीहि मे ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥

॥सप्तषष्टितमः सर्गः॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अवाक्शिरास्तथाभूतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁॥

शूद्रयोन्यां प्रसूतोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः ।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः ॥₂॥

न मिथ्याहं वदे राजन्देवलोकजिगीषया ।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः ॥₃॥

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् ।
निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ॥₄॥

तस्मिन्मुहूर्ते बालोऽसौ जीवेन समयुज्यत ॥₅॥

ततोऽगस्त्याश्रमपदं रामः कमललोचनः ।
स गत्वा विनयेनैव तं नत्वा मुमुदे सुखी ॥₆॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आतिथ्यं परमं प्राप्य निषसाद नराधिपः ॥₇॥

तमुवाच महातेजाः कुम्भयोनिर्महातपाः ।
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥₈॥

त्वं मे बहुमतो राम गुणैर्बहुभिरुत्तमैः ।
अतिथिः पूजनीयश्च माम राजन्हृदि स्थितः ॥₉॥

सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम् ।
ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापितः सुतः ॥₁₀॥

उष्यतां चेह रजनीं सकाशे मम राघव ।
प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्ता स्वपुरमेव हि ॥₁₁॥

इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ।
प्रतिगृहीष्व काकुत्स्थ मत्प्रियं कुरु राघव ॥₁₂॥

दत्तस्य हि पुनर्दानं सुमहत्फलमुच्यते ।
तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्तत्प्रतीच्छ नरर्षभ ॥₁₃॥

तद्रामः प्रतिजग्राह मुनेस्तस्य महात्मनः ।
दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥₁₄॥

प्रतिगृह्य ततो रामस्तदाभरणमुत्तमम् ।
आगमं तस्य दिव्यस्य प्रष्टुमेवोपचक्रमे ॥₁₅॥

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्वपुषा युक्तमुत्तमम् ।
कथं भगवता प्राप्तं कुतो वा केन वाहतम् ॥₁₆॥

कुतूहलतया ब्रह्मन्पृच्छामि त्वां महायशः ।
आश्चर्याणां बहूनां हि निधिः परमको भवान् ॥₁₇॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ।
शृणु राम यथावृत्तं पुरा त्रेतायुगे गते ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तषष्ठितमः सर्गः॥

॥अष्टषष्टितमः सर्गः॥

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीदरण्यं बहुविस्तरम् ।
समन्तादोजनशतं निर्मृगं पक्षिवर्जितम् ॥₁॥

तस्मिन्निर्मानुषेऽरण्ये कुर्वाणस्तप उत्तमम् ।
अहमाक्रमितुं शौम्य तदरण्यमुपागमम् ॥₂॥

तस्य रूपमरण्यस्य निर्देष्टुं न शशाक ह ।
फलमूलैः सुखास्वादैर्बहुरूपैश्च पादपैः ॥₃॥

तस्यारण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् ।
पद्मोत्पलसमाकीर्णं समतिक्रान्तशैवलम् ॥₄॥

तदाश्चर्यमिवात्यर्थं सुखास्वादमनुत्तमम् ।
अरजस्कं तथाक्षोभ्यं श्रीमत्पक्षिगणायुतम् ॥₅॥

तस्मिन्सरःसमीपे तु महदद्भुतमाश्रमम् ।
पुराणं पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम् ॥₆॥

तत्राहमवसं रात्रिं नैदाधीं पुरुषर्षभ ।
प्रभाते काल्यमुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे ॥₇॥

अथापश्यं शवं तत्र सुपुष्टमजरं क्वचित् ।
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या तस्मिंस्तोयाशये नृप ॥₈॥

तमर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तं तत्र राघव ।
विष्टितोऽस्मि सरस्तीरे किं न्विदं स्यादिति प्रभो ॥₉॥

अथापश्यं मुहूर्तात्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।

विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् ॥₁₀॥

अत्यर्थं स्वर्गिणं तत्र विमाने रघुनन्दन ।
उपास्तेऽप्सरसां वीर सहस्रं दिव्यभूषणम् ।
गान्ति गेयानि रम्याणि वादयन्ति तथापराः ॥₁₁॥

पश्यतो मे तदा राम विमानादवरुह्य च ।
तं शवं भक्षयामास स स्वर्गी रघुनन्दन ॥₁₂॥

ततो भुक्त्वा यथाकामं मांसं बहु च सुष्ठु च ।
अवतीर्य सरः स्वर्गी संस्पृष्टमुपचक्रमे ॥₁₃॥

उपस्पृश्य यथान्यायं स स्वर्गी पुरुषर्षभ ।
आरोढुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम् ॥₁₄॥

तमहं देवसङ्काशमारोहन्तमुदीक्ष्य वै ।
अथाहमब्रुवं वाक्यं तमेव पुरुषर्षभ ॥₁₅॥

को भवान्देवसङ्काश आहारश्च विगर्हितः ।
ब्रूयायं भुज्यते सौम्य किं कथं वक्तुमर्हसि ॥₁₆॥

आश्चर्यमीदृशो भावो भास्वरो देवसम्मतः ।
आहारो गर्हितः सौम्य श्रोतुमिच्छामि तच्चतः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टषष्टितमः सर्गः॥

॥एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

भुक्त्वा तु भाषितं वाक्यं मम राम शुभाक्षरम् ।
प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेदं स स्वर्गी रघुनन्दन ॥₁॥

शृणु ब्रह्मन्यथावृत्तं ममैतत्सुखदुःखयोः ।
दुरतिक्रमणीयं हि यथा पृच्छसि मां द्विज ॥₂॥

पुरा वैदर्भको राजा पिता मम महायशः ।
सुदेव इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥₃॥

तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन्द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ।
अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान्सुरथोऽभवत् ॥₄॥

ततः पितरि स्वर्याति पौरा मामभ्यषेचयन् ।
तत्राहं कृतवान्राज्यं धर्मेण सुसमाहितः ॥₅॥

एवं वर्षसहस्राणि समतीतानि सुव्रत ।
राज्यं कारयतो ब्रह्मन्प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥₆॥

सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्विज्ञातायुर्द्विजोत्तम ।
कालधर्मं हृदि न्यस्य ततो वनमुपागमम् ॥₇॥

सोऽहं वनमिदं दुर्गं मृगपक्षिविवर्जितम् ।
तपश्चर्तुं प्रविष्टोऽस्मि समीपे सरसः शुभे ॥₈॥

भ्रातरं सुरथं राज्ये अभिषिच्य नराधिपम् ।
इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं मया चिरम् ॥₉॥

सोऽहं वर्षसहस्राणि तपस्त्रीणि महामुने ।

तत्त्वा सुदुष्करं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥₁₀॥

ततो मां स्वर्गसंस्थं वै क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ।
बाधेते परमोदार ततोऽहं व्यथितेन्द्रियः ॥₁₁॥

गत्वा त्रिभुवणश्रेष्ठं पितामहमुवाच ह ।
भगवन्ब्रह्मलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥₁₂॥

कस्येयं कर्मणः प्राप्तिः क्षुत्पिपासावशोऽस्मि यत् ।
आहारः कश्च मे देव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥₁₃॥

पितामहस्तु मामाह तवाहारः सुदेवज ।
स्वादूनि स्नानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः ॥₁₄॥

स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम् ।
अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते ॥₁₅॥

दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि वने सत्त्वनिषेविते ।
तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया ॥₁₆॥

स त्वं सुपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् ।
भक्षयस्त्वामृतरसं सा ते तृप्तिर्भविष्यति ॥₁₇॥

यदा तु तद्वनं श्वेत अगस्त्यः सुमहानृषिः ।
आक्रमिष्यति दुर्धर्षस्तदा कृच्छाद्विमोक्ष्यसे ॥₁₈॥

स हि तारयितुं सौम्य शक्तः सुरगणानपि ।
किं पुनस्त्वां महाबाहो क्षुत्पिपासावशं गतम् ॥₁₉॥

सोऽहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य निश्चयम् ।
आहारं गर्हितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥₂₀॥

बहून्वर्षगणान्ब्रह्मभुज्यमानमिदं मया ।

क्षयं नाभ्येति ब्रह्मर्षे तृप्तिश्चापि ममोत्तमा ॥₂₁॥

तस्य मे कृच्छ्रभूतस्य कृच्छ्रादस्माद्विमोक्षय ।
अन्येषामगतिर्ह्यत्र कुम्भयोनिमृते द्विजम् ॥₂₂॥

इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ।
प्रतिगृहीष्व ब्रह्मर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥₂₃॥

तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ।
तारणायोपजग्राह तदाभरणमुत्तमम् ॥₂₄॥

मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ।
मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेः स ननाश ह ॥₂₅॥

प्रनष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा ।
तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं पुनः ॥₂₆॥

तेनेदं शक्रतुल्येन दिव्यमाभरणं मम ।
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतदर्शनम् ॥₂₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्ततितमः सर्गः॥

तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वागस्त्यस्य राघवः ।
गौरवाद्विस्मयाच्चैव भूयः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥₁॥

भगवंस्तद्वनं घोरं तपस्तप्यति यत्र सः ।
श्वेतो वैदर्भको राजा कथं तदमृगद्विजम् ॥₂॥

निःसत्त्वं च वनं जातं शून्यं मनुजवर्जितम् ।
तपश्चर्तुं प्रविष्टः स श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥₃॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
वाक्यं परमतेजस्वी वक्तुमेवोपचक्रमे ॥₄॥

पुरा कृतयुगे राम मनुर्दण्डधरः प्रभुः ।
तस्य पुत्रो महानासीदिक्ष्वाकुः कुलवर्धनः ॥₅॥

तं पुत्रं पूर्वके राज्ये निक्षिप्य भुवि दुर्जयम् ।
पृथिव्यां राजवंशानां भव कर्तेत्युवाच ह ॥₆॥

तथेति च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव ।
ततः परमसंहृष्टो मनुः पुनरुवाच ह ॥₇॥

प्रीतोऽस्मि परमोदारकर्ता चासि न संशयः ।
दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥₈॥

अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानवेषु वै ।
स दण्डो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥₉॥

तस्मादण्डे महाबाहो यत्नवान्भव पुत्रक ।

धर्मो हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥₁₀॥

इति तं बहु सन्दिश्य मनुः पुत्रं समाधिना ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥₁₁॥

प्रयाते त्रिदिवे तस्मिन्निश्वाकुरमितप्रभः ।
जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥₁₂॥

कर्मभिर्बहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतः सुतान् ।
जनयामास धर्मात्मा शतं देवसुतोपमान् ॥₁₃॥

तेषामवरजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन ।
मूढश्चाकृतिविद्यश्च न शुश्रूषति पूर्वजान् ॥₁₄॥

नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽल्पतेजसः ।
अवश्यं दण्डपतनं शरीरेऽस्य भविष्यति ॥₁₅॥

स पश्यमानस्तं दोषं घोरं पुत्रस्य राघव ।
विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्यं प्रादादरिन्दम ॥₁₆॥

स दण्डस्तत्र राजाभूद्रम्ये पर्वतरोधसि ।
पुरं चाप्रतिमं राम न्यवेशयदनुत्तमम् ॥₁₇॥

पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो ।
पुरोहितं चोशनसं वरयामास सुव्रतम् ॥₁₈॥

एवं स राजा तद्राज्यं कारयत्सपुरोहितः ।
प्रहृष्टमनुजाकीर्णं देवराज्यं यथा दिवि ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ततितमः सर्गः॥

॥एकसप्ततितमः सर्गः॥

एतदाख्याय रामाय महर्षिः कुम्भसम्भवः ।
अस्यामेवापरं वाक्यं कथायामुपचक्रमे ॥₁॥

ततः स दण्डः काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम् ।
अकरोत्तत्र मन्दात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ॥₂॥

अथ काले तु कस्मिंश्चिद्राजा भार्गवमाश्रमम् ।
रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रे मासि मनोरमे ॥₃॥

तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
विचरन्तीं वनोद्देशे दण्डोऽपश्यदनुत्तमाम् ॥₄॥

स दृष्ट्वा तां सुदुर्मेधा अनङ्गशरपीडितः ।
अभिगम्य सुसंविग्नः कन्यां वचनमब्रवीत् ॥₅॥

कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य वासि सुता शुभे ।
पीडितोऽहमनङ्गेन पृच्छामि त्वां सुमध्यमे ॥₆॥

तस्य त्वेवं ब्रुवाणस्य मोहोन्मत्तस्य कामिनः ।
भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं नृपम् ॥₇॥

भार्गवस्य सुतां विद्धि देवस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अरजां नाम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥₈॥

गुरुः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः ।
व्यसनं सुमहत्क्रुद्धः स ते दद्यान्महातपाः ॥₉॥

यदि वात्र मया कार्यं धर्मदृष्टेन सत्पथा ।

वरयस्व नृप श्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥₁₀॥

अन्यथा तु फलं तुभ्यं भवेद्धोराभिसंहितम् ।
क्रोधेन हि पिता मेऽसौ त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् ॥₁₁॥

एवं ब्रुवाणामरजां दण्डः कामशरार्दितः ।
प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरस्याधाय सोऽञ्जलिम् ॥₁₂॥

प्रसादं कुरु सुश्रोणि न कालं क्षेप्तुमर्हसि ।
बलकृते हि मम प्राणा विदीर्यन्ते शुभानने ॥₁₃॥

त्वां प्राप्य हि वधो वापि पापं वापि सुदारुणम् ।
भक्तं भजस्व मां भीरु भजमानं सुविह्वलम् ॥₁₄॥

एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोर्भ्यां गृह्य बलाद्वली ।
विस्फुरन्तीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥₁₅॥

तमनर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम् ।
नगरं प्रययौ चाशु मधुमन्तमनुत्तमम् ॥₁₆॥

अरजापि रुदन्ती सा आश्रमस्याविदूरतः ।
प्रतीक्षते सुसन्नस्ता पितरं देवसंनिभम् ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः॥

॥द्विसप्ततितमः सर्गः॥

स मुहूर्तादुपश्रुत्य देवर्षिरमितप्रभः ।
स्वमाश्रमं शिष्य वृतः क्षुधार्तः संन्यवर्तत ॥₁॥

सोऽपश्यदरजां दीनां रजसा समभिप्लुताम् ।
ज्योत्स्नामिवारुणग्रस्तां प्रत्यूषे न विराजतीम् ॥₂॥

तस्य रोषः समभवत्क्षुधार्तस्य विशेषतः ।
निर्दहन्निव लोकांस्त्रीञ्शिष्यांश्चेदमुवाच ह ॥₃॥

पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्याविदितात्मनः ।
विपत्तिं घोरसङ्काशां क्रुद्धामग्निशिखामिव ॥₄॥

क्षयोऽस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य दुरात्मनः ।
यः प्रदीप्तां हुताशस्य शिखां वै स्प्रष्टुमिच्छति ॥₅॥

यस्मात्स कृतवान्पापमीदृशं घोरदर्शनम् ।
तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः ॥₆॥

सप्तरात्रेण राजासौ सभृत्यबलवाहनः ।
पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥₇॥

समन्ताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः ।
धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥₈॥

सर्वसत्त्वानि यानीह स्थावराणि चराणि च ।
महता पांसुवर्षेण नाशं यास्यन्ति सर्वशः ॥₉॥

दण्डस्य विषयो यावत्तावत्सर्वसमुच्छ्रयः ।

पांसुभुत इवालक्ष्यः सप्तरात्राद्भविष्यति ॥₁₀॥

इत्युक्त्वा क्रोधसन्तपस्तमाश्रमनिवासिनम् ।
जनं जनपदान्तेषु स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥₁₁॥

श्रुत्वा तूशसनो वाक्यं स आश्रमावसथो जनः ।
निष्क्रान्तो विषयात्तस्य स्थानं चक्रेऽथ बाह्यतः ॥₁₂॥

स तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् ।
इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता ॥₁₃॥

इदं योजनपर्यन्तं सरः सुरुचिरप्रभम् ।
अरजे विज्वरा भुङ्क्व कालश्चात्र प्रतीक्ष्यताम् ॥₁₄॥

त्वत्समीपे तु ये सत्त्वा वासमेष्यन्ति तां निशाम् ।
अवध्याः पांसुवर्षेण ते भविष्यन्ति नित्यदा ॥₁₅॥

इत्युक्त्वा भार्गवो वासमन्यत्र समुपाक्रमत् ।
सप्ताहाद्भस्मसाद्भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना ॥₁₆॥

तस्यासौ दण्डविषयो विन्ध्यशैवलसानुषु ।
शप्तो ब्रह्मर्षिणा तेन पुरा वैधर्मके कृते ॥₁₇॥

ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते ।
तपस्विनः स्थिता यत्र जनस्थानमथोऽभवत् ॥₁₈॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव ।
सन्ध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते ॥₁₉॥

एते महर्षयः सर्वे पूर्णकुम्भाः समन्ततः ।
कृतोदको नरव्याघ्र आदित्यं पर्युपासते ॥₂₀॥

स तैर्ऋषिभिरभ्यस्तः सहितैर्ब्रह्मसत्तमैः ।

रविरस्तं गतो राम गच्छोदकमुपस्पृश ॥₂₁॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः॥

॥त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः सन्ध्यामुपासितुम् ।
उपाक्रामत्सरः पुण्यमप्सरोभिर्निषेवितम् ॥₁॥

तत्रोदकमुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
आश्रमं प्राविशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः ॥₂॥

अस्यागस्त्यो बहुगुणं फलमूलं तथौषधीः ।
शाकानि च पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत् ॥₃॥

स भुक्तवान्नरश्रेष्ठस्तदन्नमृतोपमम् ।
प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपावसत् ॥₄॥

प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाह्निकमरिन्दमः ।
ऋषिं समभिचक्राम गमनाय रघूत्तमः ॥₅॥

अभिवाद्याब्रवीद्रामो महर्षिं कुम्भसम्भवम् ।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि मामनुज्ञातुमर्हसि ॥₆॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनेन महात्मनः ।
द्रष्टुं चैवागमिष्यामि पावनार्थमिहात्मनः ॥₇॥

तथा वदति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
उवाच परमप्रीतो धर्मनेत्रस्तपोधनः ॥₈॥

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् ।
पावनः सर्वलोकानां त्वमेव रघुनन्दन ॥₉॥

मुहूर्तमपि राम त्वां ये नु पश्यन्ति केचन ।

पाविताः स्वर्गभूतास्ते पूज्यन्ते दिवि दैवतैः ॥₁₀॥

ये च त्वां घोरचक्षुर्भिरीक्षन्ते प्राणिनो भुवि ।
हतास्ते यमदण्डेन सदो निरयगामिनः ॥₁₁॥

गच्छ चारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ।
प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥₁₂॥

एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिः प्रग्रहो नृपः ।
अभ्यवादयत प्राज्ञस्तमृषिं पुण्यशीलिनम् ॥₁₃॥

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं तांश्च सर्वास्तपोधनान् ।
अध्यारोहत्तदव्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् ॥₁₄॥

तं प्रयान्तं मुनिगणा आशीर्वादैः समन्ततः ।
अपूजयन्महेन्द्राभं सहस्राक्षमिवामराः ॥₁₅॥

स्वस्थः स ददृशे रामः पुष्पके हेमभूषिते ।
शशी मेघसमीपस्थो यथा जलधरागमे ॥₁₆॥

ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते पूज्यमानस्ततस्ततः ।
अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थो विमानादवरोहत ॥₁₇॥

ततो विसृज्य रुचिरं पुष्पकं कामगामिनम् ।
कक्ष्यान्तरविनिक्षिप्तं द्वाःस्थं रामोऽब्रवीद्वचः ॥₁₈॥

लक्ष्मणं भरतं चैव गत्वा तौ लघुविक्रमौ ।
ममागमनमाख्याय शब्दापय च मां चिरम् ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥

॥चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
द्वाःस्थः कुमारावाहूय राघवाय न्यवेदयत् ॥₁॥

दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तौ प्रियौ भरतलक्ष्मणौ ।
परिष्वज्य ततो रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥₂॥

कृतं मया यथातथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् ।
धर्मसेतुमतो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥₃॥

युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम् ।
सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मो हि शाश्वतः ॥₄॥

इष्ट्वा तु राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः ।
सुहुतेन सुयज्ञेन वरुणत्वमुपागमत् ॥₅॥

सोमश्च राजसूयेन इष्ट्वा धर्मेण धर्मवित् ।
प्राप्तश्च सर्वलोकानां कीर्तिं स्थानं च शाश्वतम् ॥₆॥

अस्मिन्नहनि यच्छ्रेयश्चिन्त्यतां तन्मया सह ।
हितं चायति युक्तं च प्रयतौ वक्तुमर्हथ ॥₇॥

श्रुता तु राघवस्यैतद्वाक्यं वाक्यविशारदः ।
भरतः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₈॥

त्वयि धर्मः परः साधो त्वयि सर्वा वसुन्धरा ।
प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम ॥₉॥

महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः ।

निरीक्षन्ते महात्मानो लोकनाथं यथा वयम् ॥₁₀॥

प्रजाश्च पितृवद्राजन्मश्यन्ति त्वां महाबल ।
पृथिव्यां गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव ॥₁₁॥

स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्तासि कथं नृप ।
पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते ॥₁₂॥

पृथिव्यां ये च पुरुषा राजन्यौरुषमागताः ।
सर्वेषां भविता तत्र क्षयः सर्वान्तकोपमः ॥₁₃॥

स त्वं पुरुषशार्दूल गुणैरतुलविक्रम ।
पृथिवीं नार्हसे हन्तुं वशे हि तव वर्तते ॥₁₄॥

भरतस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा मृतमयं यथा ।
प्रहर्षमतुलं लेभे रामः सत्यपराक्रमः ॥₁₅॥

उवाच च शुभां वाणीं कैकेय्या नन्दिवर्धनम् ।
प्रीतोऽस्मि परितुष्टोऽस्मि तवाद्य वचनेन हि ॥₁₆॥

इदं वचनमक्लीबं त्वया धर्मसमाहितम् ।
व्याहृतं पुरुषव्याघ्र पृथिव्याः परिपालनम् ॥₁₇॥

एष तस्मादभिप्रायाद्राजसूयात्क्रतूत्तमान् ।
निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन वै ॥₁₈॥

प्रजानां पालनं धर्मो राज्ञां यज्ञेन सम्मितः ।
तस्माच्छृणोमि ते वाक्यं साधूक्तं सुसमाहितम् ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः॥

॥पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

तथोक्तवति रामे तु भरते च महात्मनि ।
लक्ष्मणोऽपि शुभं वाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ॥₁॥

अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम् ।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां क्रतुपुङ्गवः ॥₂॥

श्रूयते हि पुरावृत्तं वासवे सुमहात्मनि ।
ब्रह्महत्यावृतः शक्रो हयमेधेन पावितः ॥₃॥

पुरा किल महाबाहो देवासुरसमागमे ।
वृत्रो नाम महानासीद्वैतेयो लोकसम्मतः ॥₄॥

विस्तीर्णा योजनशतमुच्छ्रितस्त्रिगुणं ततः ।
अनुरागेण लोकांस्तीन्नेहात्पश्यति सर्वतः ॥₅॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
शशास पृथिवीं सर्वां धर्मेण सुसमाहितः ॥₆॥

तस्मिन्प्रशासति तदा सर्वकामदुघा मही ।
रसवन्ति प्रसूतानि मूलानि च फलानि च ॥₇॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सुसम्पन्ना महात्मनः ।
स राज्यं तादृशं भुङ्क्ते स्फीतमद्भुतदर्शनम् ॥₈॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना तपः कुर्यामनुत्तमम् ।
तपो हि परमं श्रेयस्तपो हि परमं सुखम् ॥₉॥

स निक्षिप्य सुतं ज्येष्ठं पौरेषु परमेश्वरम् ।

तप उग्रमुपातिष्ठत्तापयन्सर्वदेवताः ॥₁₀॥

तपस्तप्यति वृत्रे तु वासवः परमार्तवत् ।
विष्णुं समुपसङ्क्रम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥₁₁॥

तपस्यता महाबाहो लोका वृत्रेण निर्जिताः ।
बलवान्स हि धर्मात्मा नैनं शक्यामि बाधितुम् ॥₁₂॥

यद्यसौ तप आतिष्ठेद्भूय एव सुरेश्वर ।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदस्य वशानुगाः ॥₁₃॥

त्वं चैनं परमोदारमुपेक्षसि महाबल ।
क्षणं हि न भवेद्वृत्रः क्रुद्धे त्वयि सुरेश्वर ॥₁₄॥

यदा हि प्रीतिसंयोगं त्वया विष्णो समागतः ।
तदा प्रभृति लोकानां नाथत्वमुपलब्धवान् ॥₁₅॥

स त्वं प्रसादं लोकानां कुरुष्व सुमहायशः ।
त्वत्कृतेन हि सर्वं स्यात्प्रशान्तमजरं जगत् ॥₁₆॥

इमे हि सर्वे विष्णो त्वां निरीक्षन्ते दिवौकसः ।
वृत्रघतेन महता एषां साह्यं कुरुष्व ह ॥₁₇॥

त्वया हि नित्यशः साह्यं कृतमेषां महात्मनाम् ।
असह्यमिदमन्येषामगतीनां गतिर्भवान् ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः॥

॥षट्सप्ततितमः सर्गः॥

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा शत्रुनिबर्हणः ।
वृत्रघातमशेषेण कथयेत्याह लक्ष्मणम् ॥₁॥

राघवेणैवमुक्तस्तु सुमित्रानन्दवर्धनः ।
भूय एव कथां दिव्यां कथयामास लक्ष्मणः ॥₂॥

सहस्राक्षवचः श्रुत्वा सर्वेषां च दिवौकसाम् ।
विष्णुर्देवानुवाचेदं सर्वानिन्द्रपुरोगमान् ॥₃॥

पूर्वं सौहृदबद्धोऽस्मि वृत्रस्य सुमहात्मनः ।
तेन युष्मत्प्रियार्थं वै नाहं हन्मि महासुरम् ॥₄॥

अवश्यं करणीयं च भवतां सुखमुत्तमम् ।
तस्मादुपायमाख्यास्ये येन वृत्रं हनिष्यथ ॥₅॥

त्रिधा भूतं करिष्येऽहमात्मानं सुरसत्तमाः ।
तेन वृत्रं सहस्राक्षो हनिष्यति न संशयः ॥₆॥

एकोऽंशो वासवं यातु द्वितीयो वज्रमेव तु ।
तृतीयो भूतलं शक्रस्ततो वृत्रं हनिष्यति ॥₇॥

तथा ब्रुवति देवेशे देवा वाक्यमथाब्रुवन् ।
एवमेतन्न सन्देहो यथा वदसि दैत्यहन् ॥₈॥

भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामो वृत्रासुरवधैषिणः ।
भजस्व परमोदारवासवं स्वेन तेजसा ॥₉॥

ततः सर्वे महात्मानः सहस्राक्षपुरोगमाः ।

तदरण्यमुपाक्रामन्यत्र वृत्रो महासुरः ॥₁₀॥

तेऽपश्यंस्तेजसा भूतं तपन्तमसुरोत्तमम् ।
पिबन्तमिव लोकांस्त्रीन्निर्दहन्तमिवाम्बरम् ॥₁₁॥

दृष्ट्वैव चासुरश्रेष्ठं देवास्त्रासमुपागमन् ।
कथमेनं वधिष्यामः कथं न स्यात्पराजयः ॥₁₂॥

तेषां चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
वज्रं प्रगृह्य बाहुभ्यां प्रहिणोद्धृत्रमूर्धनि ॥₁₃॥

कालाग्निनेव घोरेण दीप्तेनेव महार्चिषा ।
प्रतप्तं वृत्रशिरसि जगत्त्रासमुपागमत् ॥₁₄॥

असम्भाव्यं वधं तस्य वृत्रस्य विबुधाधिपः ।
चिन्तयानो जगामाशु लोकस्यान्तं महायशाः ॥₁₅॥

तमिन्द्रं ब्रह्महत्याशु गच्छन्तमनुगच्छति ।
अपतच्चास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥₁₆॥

हतारयः प्रनष्टेन्द्रा देवाः साग्निपुरोगमाः ।
विष्णुं त्रिभुवणश्रेष्ठं मुहुर्मुहुरपूजयन् ॥₁₇॥

त्वं गतिः परमा देव पूर्वजो जगतः प्रभुः ।
रथार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्बमुपजग्मिवान् ॥₁₈॥

हतश्चायं त्वया वृत्रो ब्रह्महत्या च वासवम् ।
बाधते सुरशार्दूल मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥₁₉॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ।
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ॥₂₀॥

पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ।

पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्नमकुतोभयः ॥₂₁॥

एवं सन्दिश्य देवानां तां वाणीममृतोपमा ।
जगाम विष्णुर्देवेशः स्तूयमानस्त्रिविष्टपम् ॥₂₂॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्षप्ततितमः सर्गः॥

॥सप्तसप्ततितमः सर्गः॥

तथा वृत्रवधं सर्वमखिलेन स लक्ष्मणः ।
कथयित्वा नरश्रेष्ठः कथाशेषमुपाक्रमत् ॥₁॥

ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे ।
ब्रह्महत्यावृतः शक्रः संज्ञां लेभे न वृत्रहा ॥₂॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ।
कालं तत्रावसत्कश्चिद्वेष्टमानो यथोरगः ॥₃॥

अथ नष्टे सहस्राक्षे उद्विग्नमभवज्जगत् ।
भूमिश्च ध्वस्तसङ्काशा निःस्नेहा शुष्ककानना ॥₄॥

निःस्रोतसश्चाम्बुवाहा हृदाश्च सरितस्तथा ।
सङ्क्षोभश्चैव सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ॥₅॥

क्षीयमाणे तु लोकेऽस्मिन्सम्भ्रान्तमनसः सुराः ।
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तं यज्ञं समुपानयन् ॥₆॥

ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः ।
तं देशं सहिता जग्मुर्यत्रेन्द्रो भयमोहितः ॥₇॥

ते तु दृष्ट्वा सहस्राक्षं मोहितं ब्रह्महत्याया ।
तं पुरस्कृत्य देवेशमश्वमेधं प्रचक्रिरे ॥₈॥

ततोऽश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः ।
ववृधे ब्रह्महत्यायाः पावनार्थं नरेश्वर ॥₉॥

ततो यज्ञसमाप्तौ तु ब्रह्महत्या महात्मनः ।

अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं क्व मे स्थानं विधास्यथ ॥¹⁰॥

ते तामूचुस्ततो देवास्तुष्टाः प्रीतिसमन्विताः ।
चतुर्धा विभजात्मानमात्मनैव दुरासदे ॥¹¹॥

देवानां भाषितं श्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् ।
संनिधौ स्थानमन्यत्र वरयामास दुर्वसा ॥¹²॥

एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै ।
द्वितीयेन तु वृक्षेषु सत्यमेतद्वीमि वः ॥¹³॥

योऽयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु ।
त्रिरात्रं दर्पपर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी ॥¹⁴॥

हन्तारो ब्राह्मणान्ये तु प्रेक्षापूर्वमदूषकान् ।
तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः ॥¹⁵॥

प्रत्यूचुस्तां ततो देवा यथा वदसि दुर्वसे ।
तथा भवतु तत्सर्वं साधयस्व यथेप्सितम् ॥¹⁶॥

ततः प्रीत्यान्विता देवाः सहस्राक्षं ववन्दिरे ।
विज्वरः पूतपाप्मा च वासवः समपद्यत ॥¹⁷॥

प्रशान्तं च जगत्सर्वं सहस्राक्षे प्रतिष्ठते ।
यज्ञं चाद्भुतसङ्काशं तदा शक्रोऽभ्यपूजयत् ॥¹⁸॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावो रघुनन्दन ।
यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव ॥¹⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः॥

॥ अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणेनोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजाः प्रहसन्नाघवो वचः ॥₁॥

एवमेतन्नरश्रेष्ठ यथा वदसि लक्ष्मण ।
वृत्रघातमशेषेण वाजिमेधफलं च यत् ॥₂॥

श्रूयते हि पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रो बाह्लीश्वरः श्रीमानिलो नाम सुधार्मिकः ॥₃॥

स राजा पृथिवीं सर्वां वशे कृत्वा महायशः ।
राज्यं चैव नरव्याघ्र पुत्रवत्पर्यपालयत् ॥₄॥

सुरैश्च परमोदारैर्देतेयैश्च महासुरैः ।
नागराक्षसगन्धर्वैर्यक्षैश्च सुमहात्मभिः ॥₅॥

पूज्यते नित्यशः सौम्य भयार्ते रघुनन्दन ।
अबिभ्यंश्च त्रयो लोकाः सरोषस्य महात्मनः ॥₆॥

स राजा तादृशो ह्यासीद्धर्मे वीर्ये च निष्ठितः ।
बुद्ध्या च परमोदारो बाह्लीकानां महायशः ॥₇॥

स प्रचक्रे महाबाहुर्मृगयां रुचिरे वने ।
चैत्रे मनोरमे मासि सभृत्यबलवाहनः ॥₈॥

प्रजघ्ने स नृपोऽरण्ये मृगाञ्शतसहस्रशः ।
हृत्वेव तृप्तिर्नाभूच्च राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥₉॥

नानामृगाणामयुतं वध्यमानं महात्मना ।

यत्र जातो महासेनस्तं देशमुपचक्रमे ॥₁₀॥

तस्मिंस्तु देवदेवेशः शैलराजसुतां हरः ।
रमयामास दुर्धर्षैः सर्वैरनुचरैः सह ॥₁₁॥

कृत्वा स्त्रीभूतमात्मानमुमेशो गोपतिध्वजः ।
देव्याः प्रियचिकीर्षुः स तस्मिन्पर्वतनिर्झरे ॥₁₂॥

ये च तत्र वनोद्देशे सत्त्वाः पुरुषवादिनः ।
यच्च किञ्चन तत्सर्वं नारीसंज्ञं बभूव ह ॥₁₃॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा स ह्यलः कर्दमात्मजः ।
निघ्नन्मृगसहस्राणि तं देशमुपचक्रमे ॥₁₄॥

स दृष्ट्वा स्त्रीकृतं सर्वं सव्यालमृगपक्षिणम् ।
आत्मानं सानुगं चैव स्त्रीभूतं रघुनन्दन ॥₁₅॥

तस्य दुःखं महत्त्वासीद्दृष्ट्वात्मानं तथा गतम् ।
उमापतेश्च तत्कर्म ज्ञात्वा त्रासमुपागमत् ॥₁₆॥

ततो देवं महात्मानं शितिकण्ठं कपर्दिनम् ।
जगाम शरणं राजा सभृत्यबलवाहनः ॥₁₇॥

ततः प्रहस्य वरदः सह देव्या महायशाः ।
प्रजापतिसुतं वाक्यमुवाच वरदः स्वयम् ॥₁₈॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे कर्दमेय महाबल ।
पुरुषत्त्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत ॥₁₉॥

ततः स राजा शोकार्ताः प्रत्याख्यातो महात्मना ।
न स जग्राह स्त्रीभूतो वरमन्यं सुरोत्तमात् ॥₂₀॥

ततः शोकेन महता शैलराजसुतां नृपः ।

प्रणिपत्य महादेवीं सर्वेणैवान्तरात्मना ॥²¹॥

ईशे वराणां वरदे लोकानामसि भामिनि ।
अमोघदर्शने देवि भजे सौम्ये नमोऽस्तु ते ॥²²॥

हृद्रतं तस्य राजर्षेर्विज्ञाय हरसंनिधौ ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं देवी रुद्रस्य सम्मता ॥²³॥

अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तथा ह्यहम् ।
तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि ॥²⁴॥

तदद्भुततमं श्रुत्वा देव्या वरमनुत्तमम् ।
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा राजा वाक्यमथाब्रवीत् ॥²⁵॥

यदि देवि प्रसन्ना मे रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
मासं स्त्रीत्वमुपासित्वा मासं स्यां पुरुषः पुनः ॥²⁶॥

ईप्सितं तस्य विज्ञाय देवी सुरुचिरानना ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यमेवमेतद्भविष्यति ॥²⁷॥

राजन्यपुरुषभूतस्त्वं स्त्रीभावं न स्मरिष्यसि ।
स्त्रीभूतश्चापरं मासं न स्मरिष्यसि पौरुषम् ॥²⁸॥

एवं स राजा पुरुषो मामं भूत्वाथ कार्दमिः ।
त्रैलोक्यसुन्दरी नारी मासमेकमिलाभवत् ॥²⁹॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः॥

॥एकोनाशीतितमः सर्गः॥

तां कथामिलसम्बद्धां रामेण समुदीरिताम् ।
लक्ष्मणो भरतश्चैव श्रुत्वा परमविस्मितौ ॥₁॥

तौ रामं प्राञ्जलीभूत्वा तस्य राज्ञो महात्मनः ।
विस्तरं तस्य भावस्य तदा पप्रच्छतुः पुनः ॥₂॥

कथं स राजा स्त्रीभूतो वर्तयामास दुर्गतिम् ।
पुरुषो वा यदा भूतः कां वृत्तिं वर्तयत्यसौ ॥₃॥

तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
कथयामास काकुलस्तस्य राज्ञो यथा गतम् ॥₄॥

तमेव प्रथमं मासं स्त्रीभूत्वा लोकसुन्दरी ।
ताभिः परिवृता स्त्रीभिर्येऽस्य पूर्वं पदानुगाः ॥₅॥

तत्काननं विगाह्याशु विजहे लोकसुन्दरी ।
द्रुमगुल्मलताकीर्णं पद्भ्यां पद्मदलेक्षणा ॥₆॥

वाहनानि च सर्वाणि सन्त्यक्त्वा वै समन्ततः ।
पर्वताभोगविवरे तस्मिन्नेमे झला तदा ॥₇॥

अथ तस्मिन्वनोद्देशे पर्वतस्याविदूरतः ।
सरः सुरुचिरप्रख्यं नानापक्षिगणायुतम् ॥₈॥

ददर्श सा झला तस्मिन्बुधं सोमसुतं तदा ।
ज्वलन्तं स्वेन वपुषा पूर्णं सोममिवोदितम् ॥₉॥

तपन्तं च तपस्तीव्रमम्भोमध्ये दुरासदम् ।

यशक्सरं कामगमं तारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥₁₀॥

सा तं जलाशयं सर्वं क्षोभयामास विस्मिता ।
सह तैः पूर पुरुषैः स्त्रीभूतै रघुनन्दन ॥₁₁॥

बुधस्तु तां निरीक्ष्यैव कामबाणाभिपीडितः ।
नोपलेभे तदात्मानं चचाल च तदाम्भसि ॥₁₂॥

इलां निरीक्षमाणः स त्रैलोक्याभ्यधिकां शुभाम् ।
चिन्तां समभ्यतिक्रामत्का न्वियं देवताधिका ॥₁₃॥

न देवीषु न नागीषु नासुरीष्वप्सरःसु च ।
दृष्टपूर्वा मया काचिद्रूपेणैतेन शोभिता ॥₁₄॥

सदृशीयं मम भवेद्यदि नान्यपरिग्रहा ।
इति बुद्धिं समास्थाय जलात्स्थलमुपागमत् ॥₁₅॥

स आश्रमं समुपागम्य चतस्रः प्रमदास्ततः ।
शब्दापयत धर्मात्मा ताश्चैनं च ववन्दिरे ॥₁₆॥

स ताः पप्रच्छ धर्मात्म कस्यैषा लोकसुन्दरी ।
किमर्थमागता चेह सत्यमाख्यात माचिरम् ॥₁₇॥

शुभं तु तस्य तद्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ।
श्रुत्वा तु ताः स्त्रियः सर्वा ऊचुर्मधुरया गिरा ॥₁₈॥

अस्माकमेषा सुश्रोणी प्रभुत्वे वर्तते सदा ।
अपतिः काननान्तेषु सहास्माभिरटत्यसौ ॥₁₉॥

तद्वाक्यमव्यक्तपदं तासां स्त्रीणां निशम्य तु ।
विद्यामावर्तनीं पुण्यामावर्तयत स द्विजः ॥₂₀॥

सोऽर्थं विदिन्वा निखिलं तस्य राज्ञो यथागतम् ।

सर्वा एव स्त्रियस्ताश्च बभाषे मुनिपुङ्गवः ॥₂₁॥

अत्र किं पुरुषा भद्रा अवसञ्जैलरोधसि ।
वत्स्यथास्मिन्निरो यूयमवकाशो विधीयताम् ॥₂₂॥

मूलपुत्रफलैः सर्वा वर्तयिष्यथ नित्यदा ।
स्त्रियः किम्पुरुषान्नाम भर्तृन्समुपलप्स्यथ ॥₂₃॥

ताः श्रुत्वा सोमपुत्रस्य वाचं किम्पुरुषीकृताः ।
उपासां चक्रिरे शैलं बह्व्यस्ता बहुधा तदा ॥₂₄॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः॥

॥अशीतितमः सर्गः॥

श्रुत्वा किम्पुरुषोत्पत्तिं लक्ष्मणो भरतस्तदा ।
आश्चर्यमिति चाब्रूतामुभौ रामं जनेश्वरम् ॥₁॥

अथ रामः कथामेतां भूय एव महायशाः ।
कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिसुतस्य वै ॥₂॥

सर्वास्ता विद्वता दृष्ट्वा किंनरीर्ऋषिसत्तमः ।
उवाच रूपसम्पन्नां तां स्त्रियं प्रहसन्निव ॥₃॥

सोमस्याहं सुदयितः सुतः सुरुचिरानने ।
भजस्व मां वरारोहे भक्त्या स्निग्धेन चक्षुषा ॥₄॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शून्ये स्वजनवर्जिता ।
इला सुरुचिरप्रख्यं प्रत्युवाच महाग्रहम् ॥₅॥

अहं कामकरी सौम्य तवास्मि वशवर्तिनी ।
प्रशाधि मां सोमसुत यथेच्छसि तथा कुरु ॥₆॥

तस्यास्तदद्भुतप्रख्यं श्रुत्वा हर्षसमन्वितः ।
स वै कामी सह तया रेमे चन्द्रमसः सुतः ॥₇॥

बुधस्य माधवो मासस्तामिलां रुचिराननाम् ।
गतो रमयतोऽत्यर्थं क्षणवत्तस्य कामिनः ॥₈॥

अथ मासे तु सम्पूर्णे पूर्णेन्दुसदृशाननः ।
प्रजापतिसुतः श्रीमाञ्जयने प्रत्यबुध्यत ॥₉॥

सोऽपश्यत्सोमजं तत्र तप्यन्तं सलिलाशये ।

ऊर्ध्वबाहुं निरालम्बं तं राजा प्रत्यभाषत ॥₁₀॥

भगवन्पर्वतं दुर्गं प्रविष्टोऽस्मि सहानुगः ।
न च पश्यामि तत्सैन्यं क्व नु ते मामका गताः ॥₁₁॥

तच्छ्रुत्वा तस्य राजर्षेर्नष्टसंज्ञस्य भाषितम् ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं सान्त्वयन्परया गिरा ॥₁₂॥

अश्रमवर्षेण महता भृत्यास्ते विनिपातिताः ।
त्वं चाश्रमपदे सुप्तो वातवर्षभयार्दितः ॥₁₃॥

समाश्वसिहि भद्रं ते निर्भयो विगतज्वरः ।
फलमूलाशनो वीर वस चेह यथासुखम् ॥₁₄॥

स राजा तेन वाक्येन प्रत्याश्वस्तो महायशाः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं दीनो भृत्यजनक्षयात् ॥₁₅॥

त्यक्ष्याम्यहं स्वकं राज्यं नाहं भृत्यैर्विना कृतः ।
वर्तयेयं क्षणं ब्रह्मन्समनुज्ञातुमर्हसि ॥₁₆॥

सुतो धर्मपरो ब्रह्मज्येष्ठो मम महायशाः ।
शशबिन्दुरिति ख्यातः स मे राज्यं प्रपत्स्यते ॥₁₇॥

न हि शक्ष्याम्यहं गत्वा भृत्यदारान्सुखान्वितान् ।
प्रतिवक्तुं महातेजः किञ्चिदप्यशुभं वचः ॥₁₈॥

तथा ब्रुवति राजेन्द्रे बुधः परममद्भुतम् ।
सान्त्वपूर्वमथोवाच वासस्त इह रोचताम् ॥₁₉॥

न सन्तापस्त्वया कार्यः कार्दमेय महाबल ।
संवत्सरोषितस्येह कारयिष्यामि ते हितम् ॥₂₀॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बुधस्याक्लिष्टकर्मणः ।

वासाय विदधे बुद्धिं यदुक्तं ब्रह्मवादिना ॥₂₁॥

मासं स स्त्री तदा भूत्वा रमयत्यनिशं शुभा ।
मासं पुरुषभावेन धर्मबुद्धिं चकार सः ॥₂₂॥

ततः स नवमे मासि इला सोमसुतात्मजम् ।
जनयामास सुश्रोणी पुरुरवसमात्मजम् ॥₂₃॥

जातमात्रं तु सुश्रोणी पितुर्हस्ते न्यवेशयत् ।
बुधस्य समवर्णाभमिलापुत्रं महाबलम् ॥₂₄॥

बुधोऽपि पुरुषीभूतं समाश्वास्य नराधिपम् ।
कथाभी रमयामास धर्मयुक्ताभिरात्मवान् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अशीतितमः सर्गः॥

॥एकाशीतितमः सर्गः॥

तथोक्तवति रामे तु तस्य जन्म तदद्भुतम् ।
उवाच लक्ष्मणो भूयो भरतश्च महायशाः ॥₁॥

सा प्रिया सोमपुत्रस्य संवत्सरमथोषिता ।
अकरोत्किं नरश्रेष्ठ तच्चं शंसितुमर्हसि ॥₂॥

तयोस्तद्वाक्यमाधुर्यं निशम्य परिपृच्छतोः ।
रामः पुनरुवाचेमां प्रजापतिसुते कथाम् ॥₃॥

पुरुषत्वं गते शूरे बुधः परमबुद्धिमान् ।
संवर्त परमोदारमाजुहाव महायशाः ॥₄॥

च्यवनं भृगुपुत्रं च मुनिं चारिष्टनेमिनम् ।
प्रमोदनं मोदकरं ततो दुर्वाससं मुनिम् ॥₅॥

एतान्सर्वान्समानीय वाक्यज्ञस्तत्त्वदर्शिनः ।
उवाच सर्वान्सुहृदो धैर्येण सुसमाहितः ॥₆॥

अयं राजा महाबाहुः कर्दमस्य झलः सुतः ।
जानीतैनं यथा भूतं श्रेयो ह्यस्य विधीयताम् ॥₇॥

तेषां संवदतामेव तमाश्रममुपागमत् ।
कर्दमः सुमहातेजा द्विजैः सह महात्मभिः ॥₈॥

पुलस्त्यश्च ऋतुश्चैव वषट्कारस्तथैव च ।
ओङ्कारश्च महातेजास्तमाश्रममुपागमन् ॥₉॥

ते सर्वे हृष्टमनसः परस्परसमागमे ।

हितैषिणो बाह्नि पतेः पृथग्वाक्यमथाब्रुवन् ॥₁₀॥

कर्दमस्त्वब्रवीद्वाक्यं सुतार्थं परमं हितम् ।
द्विजाः शृणुत मद्वाक्यं यच्छ्रेयः पार्थिवस्य हि ॥₁₁॥

नान्यं पश्यामि भैषज्यमन्तरेण वृषध्वजम् ।
नाश्वमेधात्परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मनः ॥₁₂॥

तस्माद्यजामहे सर्वे पार्थिवार्थे दुरासदम् ।
कर्दमेनैवमुक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभाः ।
रोचयन्ति स्म तं यज्ञं रुद्रस्याराधनं प्रति ॥₁₃॥

संवर्तस्य तु राजर्षिः शिष्यः परपुरंजयः ।
मरुत्त इति विख्यातस्तं यज्ञं समुपाहरत् ॥₁₄॥

ततो यज्ञो महानासीद्बुधाश्रमसमीपतः ।
रुद्रश्च परमं तोषमाजगाम महायशाः ॥₁₅॥

अथ यज्ञसमाप्तौ तु प्रीतः परमया मुदा ।
उमापतिर्द्विजान्सर्वानुवाचेदमिलां प्रति ॥₁₆॥

प्रीतोऽस्मि हयमेधेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः ।
अस्य बाह्निपतेश्चैव किं करोमि प्रियं शुभम् ॥₁₇॥

तथा वदति देवेशे द्विजास्ते सुसमाहिताः ।
प्रसादयन्ति देवेशं यथा स्यात्पुरुषस्त्रिला ॥₁₈॥

ततः प्रीतमना रुद्रः पुरुषत्वं ददौ पुनः ।
इलायै सुमहातेजा दत्त्वा चान्तरधीयत ॥₁₉॥

निवृत्ते हयमेधे तु गते चादर्शनं हरे ।
यथागतं द्विजाः सर्वे अगच्छन्दीर्घदर्शिनः ॥₂₀॥

राजा तु बाह्निमुत्सृज्य मध्यदेशे ह्यनुत्तमम् ।
निवेशयामास पुरं प्रतिष्ठानं यशस्करम् ॥²¹॥

शशबिन्दुस्तु राजासीद्बाह्यां परपुरंजयः ।
प्रतिष्ठानं इलो राजा प्रजापतिसुतो बली ॥²²॥

स काले प्राप्तवाँल्लोकमिलो ब्राह्ममनुत्तमम् ।
ऐलः पुरुरवा राजा प्रतिष्ठानमवाप्तवान् ॥²³॥

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभौ ।
स्त्रीभूतः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम् ॥²⁴॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः॥

॥द्व्यशीतितमः सर्गः॥

एतदाख्याय काकुत्स्थो भ्रातृह्याममितप्रभः ।
लक्ष्मणं पुनारेवाह धर्मयुक्तमिदं वचः ॥₁॥

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम् ।
द्विजांश्च सर्वप्रवरानश्वमेधपुरस्कृतान् ॥₂॥

एतान्सर्वान्समाहूय मन्त्रयित्वा च लक्ष्मण ।
हयं लक्ष्मणसम्पन्नं विमोक्ष्यामि समाधिना ॥₃॥

तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ।
द्विजान्सर्वान्समाहूय दर्शयामास राघवम् ॥₄॥

ते दृष्ट्वा देवसङ्काशं कृतपादाभिवन्दनम् ।
राघवं सुदुराधर्षमाशीर्भिः समपूजयन् ॥₅॥

प्राञ्जलिस्तु ततो भूत्वा राघवो द्विजसात्तमान् ।
उवाच धर्मसंयुक्तमश्वमेधाश्रितं वचः ॥₆॥

स तेषां द्विजमुख्यानां वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
अश्वमेधाश्रितं श्रुत्वा भृशं प्रीतोऽभवत्तदा ॥₇॥

विज्ञाय तु मतं तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रेषयस्व महाबाहो सुग्रीवाय महात्मने ॥₈॥

शीघ्रं महद्भिर्हरिभिर्बहिभिश्च तदाश्रयैः ।
सार्धमागच्छ भद्रं ते अनुभोक्तुं मखोत्तमम् ॥₉॥

विभीषणश्च रक्षोभिः कामगैर्बहुभिर्वृतः ।

अश्वमेधं महाबाहुः प्राप्नोतु लघुविक्रमः ॥₁₀॥

राजानश्च नरव्याघ्र ये मे प्रियचिकीर्षवः ।
सानुगाः क्षिप्रमायान्तु यज्ञभूमिमनुत्तमाम् ॥₁₁॥

देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मपरायणाः ।
निमन्त्रयस्व तान्सर्वानश्वमेधाय लक्ष्मण ॥₁₂॥

ऋषयश्चा महाबाहो आहूयन्तां तपोधनाः ।
देशान्तरगता ये च सदाराश्च महर्षयः ॥₁₃॥

यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिषे वने ।
आज्ञाप्यतां महाबाहो तद्धि पुण्यमनुत्तमम् ॥₁₄॥

शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् ।
अयुतं तिलमुद्रस्य प्रयात्बग्रे महाबल ॥₁₅॥

सुवर्णकोट्यो बहुला हिरण्यस्य शतोत्तराः ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्बग्रे महामतिः ॥₁₆॥

अन्तरापणवीथ्यश्च सर्वाश्च नटनर्तकान् ।
नैगमान्बालवृद्धांश्च द्विजांश्च सुसमाहितान् ॥₁₇॥

कर्मान्तिकांश्च कुशलाञ्जलिपिनश्च सुपण्डितान् ।
मातरश्चैव मे सर्वाः कुमारान्तःपुराणि च ॥₁₈॥

काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षार्हां यज्ञकर्मणि ।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्बग्रे महामतिः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वाशीतितमः सर्गः॥

॥ त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

तत्सर्वमखिलेनाशु प्रस्थाप्य भरताग्रजः ।
हयं लक्ष्मणसम्पन्नं कृष्णसारं मुमोच ह ॥₁॥

ऋत्विग्भिर्लक्ष्मणं सार्धमश्वे च विनियुज्य सः ।
ततोऽभ्यगच्छत्काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिषम् ॥₂॥

यज्ञवाटं महाबाहुर्दृष्ट्वा परममद्भुतम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे श्रीमानिति च सोऽब्रवीत् ॥₃॥

नैमिषे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः ।
आजग्मुः सर्वराष्ट्रेभ्यस्तान्नामः प्रत्यपूजयत् ॥₄॥

उपकार्यान्महार्हांश्च पार्थिवानां महात्मनाम् ।
सानुगानां नरश्रेष्ठो व्यादिदेश महाद्युतिः ॥₅॥

अन्नपानानि वस्त्राणि सानुगानां महात्मनाम् ।
भरतः सन्ददावाशु शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥₆॥

वानराश्च महात्मानः सुग्रीवसहितास्तदा ।
विप्राणां प्रणताः सर्वे चक्रिरे परिवेषणम् ॥₇॥

विभीषणश्च रक्षोभिः स्रग्विभिर्बहुभिर्वृतः ।
ऋषीणामुग्रतपसां किङ्करः पर्युपस्थितः ॥₈॥

एवं सुविहितो यज्ञो हयमेधोऽभ्यवर्तत ।
लक्ष्मणेनाभिगुप्ता च हयचर्या प्रवर्तिता ॥₉॥

नान्यः शब्दोऽभवत्तत्र हयमेधे महात्मनः ।

छन्दतो देहि विस्रब्धो यावत्तुष्यन्ति याचकाः ।
तावद्दानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यते ॥₁₀॥

न कश्चिन्मलिनस्तत्र दीनो वाप्यथ वा कृशः ।
तस्मिन्यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजनावृते ॥₁₁॥

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः ।
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलङ्कृतम् ॥₁₂॥

रजतानां सुवर्णानां रत्नानामथ वाससाम् ।
अनिशं दीयमानानां नान्तः समुपदृश्यते ॥₁₃॥

न शक्रस्य न सोमस्य यमस्य वरुणस्य वा ।
ईदृशो दृष्टपूर्वो न एवमूचुस्तपोधनाः ॥₁₄॥

सर्वत्र वानरास्तस्थुः सर्वत्रैव च राक्षसाः ।
वासो धनानि कामिभ्यः पूर्णहस्ता ददुर्भृशम् ॥₁₅॥

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः ।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः॥

॥चतुरशीतितमः सर्गः॥

वर्तमाने तथाभूते यज्ञे परमकेऽद्भुते ।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥₁॥

स दृष्ट्वा दिव्यसङ्काशं यज्ञमद्भुतदर्शनम् ।
एकान्ते ऋषिवाटानां चकार उटजाञ्शुभान् ॥₂॥

स शिष्यावब्रवीद्धृष्टो युवां गत्वा समाहितौ ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ॥₃॥

ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च ।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥₄॥

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च वर्तते ।
ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ॥₅॥

इमानि च फलान्यत्र स्वादूनि विविधानि च ।
जातानि पर्वताग्रेषु आस्वाद्यास्वाद्य गीयताम् ॥₆॥

न यास्यथः श्रमं वत्सो भक्षयित्वा फलानि वै ।
मूलानि च सुमृष्टानि नगरात्परिहास्यथ ॥₇॥

यदि शब्दापयेद्रामः श्रवणाय महीपतिः ।
ऋषीणामुपविष्टानां ततो गेयं प्रवर्तताम् ॥₈॥

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया वै परया मुदा ।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा ॥₉॥

लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनकाङ्क्षया ।

किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलोपभोगिनाम् ॥₁₀॥

यदि पृच्छेत्स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ हि ब्रूतामेवं नराधिपम् ॥₁₁॥

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वा पूर्वदर्शितम् ।
मूर्छयित्वा सुमधुरं गायेतां विगतज्वरौ ॥₁₂॥

आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम् ।
पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥₁₃॥

तद्युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाधिना ।
गायेतां मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥₁₄॥

इति सन्दिश्य बहुशो मुनिः प्राचेतसस्तदा ।
वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्महायशः ॥₁₅॥

तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ
निवेश्य वाणीमृषिभाषितां शुभाम् ।
समुत्सुकौ तौ सुखमूषतुर्निशाम्
यथाश्विनौ भार्गवनीतिसंस्कृतौ ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः॥

॥पञ्चाशीतितमः सर्गः॥

तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ ।
यथोक्तमृषिणा पूर्वं तत्र तत्राभ्यगायताम् ॥₁॥

तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वचर्यां ततस्ततः ।
अपूर्वा पाठ्य जातिं च गेयेन समलङ्कृताम् ॥₂॥

प्रमाणैर्बहुभिर्बद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम् ।
बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत् ॥₃॥

अथ कर्मान्तरे राजा समानीय महामुनीन् ।
पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान्नेगमांस्तथा ॥₄॥

पौराणिकाञ्छब्दवितो ये च वृद्धा द्विजातयः ।
एतान्सर्वान्समानीय गातारौ समवेशयत् ॥₅॥

हृष्टा ऋषिगणास्तत्र पार्थिवाश्च महौजसः ।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां राजानं गायकौ च तौ ॥₆॥

परस्परमथोचुस्ते सर्व एव समं ततः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्विम्बमिवोद्धृतौ ॥₇॥

जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ॥₈॥

तेषां संवदतामेवं श्रोतृणां हर्षवर्धनम् ।
गेयं प्रचक्रतुस्तत्र तावुभौ मुनिदारकौ ॥₉॥

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ।

न च तृप्तिं ययुः सर्वे श्रोतारो गेय सम्पदा ॥₁₀॥

प्रवृत्तमादितः पूर्वं सर्गान्नारददर्शनात् ।
ततः प्रभृति सर्गाश्च यावद्विंशत्यगायताम् ॥₁₁॥

ततोऽपराहसमये राघवः समभाषत ।
श्रुत्वा विंशतिसर्गास्तान्भरतं भ्रातृवत्सलः ॥₁₂॥

अष्टादश सहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ।
ददस्व शीघ्रं काकुत्स्थ बालयोर्मा वृथा श्रमः ॥₁₃॥

दीयमानं सुवर्णं तन्नागृहीतां कुशीलवौ ।
ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥₁₄॥

वन्येन फलमूलेन निरतु स्त्रो वनौकसौ ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥₁₅॥

तथा तयोः प्रब्रुवतोः कौतूहलसमन्विताः ।
श्रोतारश्चैव रामश्च सर्व एव सुविस्मिताः ॥₁₆॥

तस्य चैवागमं रामः काव्यस्य श्रोतुमुत्सुकः ।
पप्रच्छ तौ महातेजास्तावुभौ मुनिदारकौ ॥₁₇॥

किम्प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः ।
कर्ता काव्यस्य महतः को वासौ मुनिपुङ्गवः ॥₁₈॥

पृच्छन्तं राघवं वाक्यमूचतुर्मुनिदारकौ ।
वाल्मीकिर्भगवान्कर्ता सम्प्राप्तो यज्ञसंनिधिम् ।
येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं सम्प्रदर्शितम् ॥₁₉॥

आदिप्रभृति राजेन्द्र पञ्चसर्ग शतानि च ।
प्रतिष्ठा जीवितं यावत्तावद्राजञ्शुभाशुभम् ॥₂₀॥

यदि बुद्धिः कृता राजञ्श्रवणाय महारथ ।
कर्मान्तरे क्षणी हूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः ॥₂₁॥

बाढमित्यब्रवीद्रामस्तौ चानुज्ञाप्य राघवम् ।
प्रहृष्टौ जग्मतुर्वासं यत्रासौ मुनिपुङ्गवः ॥₂₂॥

रामोऽपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः ।
श्रुत्वा तद्गीतमाधुर्यं कर्मशालामुपागमत् ॥₂₃॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः॥

॥षडशीतितमः सर्गः॥

रामो बहून्यहान्येव तद्गीतं परमाद्भुतम् ।
शुश्राव मुनिभिः सार्धं राजभिः सह वानरैः ॥₁॥

तस्मिन्गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ॥₂॥

मद्वचो ब्रूत गच्छध्वमिति भगवतोऽन्तिकम् ॥₃॥

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा ।
करोद्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥₄॥

छन्दं मुनेस्तु विज्ञाय सीतायाश्च मनोगतम् ।
प्रत्ययं दातुकामायास्ततः शंसत मे लघु ॥₅॥

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा ।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममेह च ॥₆॥

श्रुत्वा तु राघवस्यैतद्वचः परममद्भुतम् ।
दूताः सम्प्रययुर्वाटं यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ॥₇॥

ते प्रणम्य महात्मानं ज्वलन्तममितप्रभम् ।
ऊचुस्ते राम वाक्यानि मृदूनि मधुराणि च ॥₈॥

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम् ।
विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥₉॥

एवं भवतु भद्रं वो यथा तुष्यति राघवः ।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ॥₁₀॥

तथोक्ता मुनिना सर्वे रामदूता महौजसः ।
प्रत्येत्य राघवं सर्वे मुनिवाक्यं बभाषिरे ॥₁₁॥

ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थः श्रुत्वा वाक्यं महात्मनः ।
ऋषींस्तत्र समेतांश्च राज्ञश्चैवाभ्यभाषत ॥₁₂॥

भगवन्तः सशिष्या वै सानुगश्च नराधिपाः ।
पश्यन्तु सीताशपथं यश्चैवान्योऽभिकाङ्क्षते ॥₁₃॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ।
सर्वेषमृषिमुख्यानां साधुवादो महानभूत् ॥₁₄॥

राजानश्च महात्मानः प्रशंसन्ति स्म राघवम् ।
उपपन्नं नरश्रेष्ठ त्वय्येव भुवि नान्यतः ॥₁₅॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा शोभूत इति राघवः ।
विसर्जयामास तदा सर्वास्ताञ्शत्रुसूदनः ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षडशीतितमः सर्गः॥

॥सप्ताशीतितमः सर्गः॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां यज्ञवाटगतो नृपः ।
ऋषीन्सर्वान्महातेजाः शब्दापयति राघवः ॥₁॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।
विश्वामित्रो दीर्घतपा दुर्वासाश्च महातपाः ॥₂॥

अगस्त्योऽथ तथाशक्तिर्भार्गवश्चैव वामनः ।
मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्मौद्गल्यश्च महातपाः ॥₃॥

भार्गवश्च्यवनश्चैव शतानन्दश्च धर्मवित् ।
भरद्वाजश्च तेजस्वी अग्निपुत्रश्च सुप्रभः ॥₄॥

एते चान्ये च मुनयो बहवः संशितव्रताः ।
राजानश्च नरव्याघ्राः सर्व एव समागताः ॥₅॥

राक्षसाश्च महावीर्या वानराश्च महाबलाः ।
समाजग्मुर्महात्मानः सर्व एव कुतूहलात् ॥₆॥

क्षत्रियाश्चैव वैश्याश्च शूद्राश्चैव सहस्रशः ।
सीताशपथवीक्षार्थं सर्व एव समागताः ॥₇॥

तथा समागतं सर्वमश्वभूतमिवाचलम् ।
श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥₈॥

तमृषिं पृष्ठतः सीता सान्वगच्छदवाङ्मुखी ।
कृताञ्जलिर्बाष्पगला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥₉॥

तां दृष्ट्वा श्रीमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुगामिनीम् ।

वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुकारो महानभूत् ॥₁₀॥

ततो हलहला शब्दः सर्वेषामेवमाबभौ ।
दुःखजेन विशालेन शोकेनाकुलितात्मनाम् ॥₁₁॥

साधु सीतेति केचित्तु साधु रामेति चापरे ।
उभावेव तु तत्रान्ये साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥₁₂॥

ततो मध्यं जनौघानां प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ।
सीतासहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम् ॥₁₃॥

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ।
अपापा ते परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥₁₄॥

लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत ।
प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ॥₁₅॥

इमौ च जानकी पुत्रावुभौ च यमजातकौ ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षो सत्यमेतद्वीमि ते ॥₁₆॥

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन ।
न स्मराम्यनृतं वाक्यं तथेमौ तव पुत्रकौ ॥₁₇॥

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
तस्याः फलमुपाश्रीयामपापा मैथिली यथा ॥₁₈॥

अहं पञ्चसु भूतेषु मनःषष्ठेषु राघव ।
विचिन्त्य सीतां शुद्धेति न्यगृह्णां वननिझरि ॥₁₉॥

इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता ।
लोकापवादभीतस्य दास्यति प्रत्ययं तव ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः॥

॥अष्टाशीतितमः सर्गः॥

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ।
प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये दृष्ट्वा तां देववर्णिनीम् ॥₁॥

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित् ।
प्रत्ययो हि मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥₂॥

प्रत्ययो हि पुरा दत्तो वैदेह्या सुरसंनिधौ ।
सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥₃॥

जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥₄॥

अभिप्रायं तु विज्ञाय रामस्य सुरसत्तमाः ।
पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागताः ॥₅॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वे देशा मरुद्गणाः ।
अश्विनावृषिगन्धर्वा अप्सराणां गणास्तथा ।
साध्याश्च देवाः सर्वे ते सर्वे च परमर्षयः ॥₆॥

ततो वायुः शुभः पुण्यो दिव्यगन्धो मनोरमः ।
तं जनौघं सुरश्रेष्ठो ह्लादयामास सर्वतः ॥₇॥

तदद्भुतमिवाचिन्त्यं निरीक्षन्ते समाहिताः ।
मानवाः सर्वराष्ट्रेभ्यः पूर्वं कृतयुगे यथा ॥₈॥

सर्वान्समागतान्दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवान्मुखी ॥₉॥

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥₁₀॥

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत्तदद्भुतम् ।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥₁₁॥

ध्रियमाणं शिरोभिस्तन्नागैरमितविक्रमैः ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा सर्वरत्नविभूषितम् ॥₁₂॥

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेषयत् ॥₁₃॥

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम् ।
पुण्यवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥₁₄॥

साधुकारश्च सुमहान्देवानां सहस्रोत्थितः ।
साधु साध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥₁₅॥

एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः ।
व्याजहुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ॥₁₆॥

यज्ञवाटगताश्चापि मुनयः सर्व एव ते ।
राजानश्च नरव्याघ्रा विस्मयान्नोपरेमिरे ॥₁₇॥

अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
दानवाश्च महाकायाः पाताले पन्नगाधिपाः ॥₁₈॥

केचिद्विनेदुः संहृष्टाः केचिद्भयानपरायणाः ।
केचिद्रामं निरीक्षन्ते केचित्सीतामचेतनाः ॥₁₉॥

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत्समागमः ।
तं मुहूर्तमिवात्यर्थं सर्वं सम्मोहितं जगत् ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः॥

॥एकोननवतितमः सर्गः॥

तदावसाने यज्ञस्य रामः परमदुर्मनाः ।
अपश्यमानो वैदेहीं मेने शून्यमिदं जगत् ।
शोकेन परमायत्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥₁॥

विसृज्य पार्थिवान्सर्वानृक्षवानरराक्षसान् ।
जनौघं ब्रह्ममुख्यानां वित्तपूर्णं व्यसर्जयत् ॥₂॥

ततो विसृज्य तान्सर्वान्नामो राजीवलोचनः ।
हृदि कृत्वा तदा सीतामयोध्यां प्रविवेश सः ॥₃॥

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः ।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत् ॥₄॥

दशवर्षसहस्राणि वाजिमेधमुपाकरोत् ।
वाजपेयान्दशगुणांस्तथा बहुसुवर्णकान् ॥₅॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः ।
ईजे ऋतुभिरन्यैश्च स श्रीमानाप्तदक्षिणैः ॥₆॥

एवं स कालः सुमहान्राज्यस्थस्य महात्मनः ।
धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद्राघवस्य तु ॥₇॥

ऋक्षवानररक्षांसि स्थिता रामस्य शासने ।
अनुरज्यन्ति राजानो अहन्यहनि राघवम् ॥₈॥

काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदस्तथा ॥₉॥

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तदा ।
नाधर्मश्चाभवत्कश्चिद्रामे राज्यं प्रशासति ॥₁₀॥

अथ दीर्घस्य कालस्य राममाता यशस्विनी ।
पुत्रपौत्रैः परिवृता कालधर्ममुपागमत् ॥₁₁॥

अन्वियाय सुमित्रापि कैकेयी च यशस्विनी ।
धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिदिवे पर्यवस्थिता ॥₁₂॥

सर्वाः प्रतिष्ठिताः स्वर्गे राज्ञा दशरथेन च ।
समागता महाभागाः सह धर्मं च लेभिरे ॥₁₃॥

तासां रामो महादानं काले काले प्रयच्छति ।
मातृणामविशेषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥₁₄॥

पित्र्याणि बहुरत्नानि यज्ञान्परमदुस्तरान् ।
चकार रामो धर्मात्मा पितृन्देवान्विवर्धयन् ॥₁₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः॥

॥नवतितमः सर्गः॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य युधाजित्केकयो नृपः ।
स्वगुरुं प्रेषयामास राघवाय महात्मने ॥₁॥

गार्ग्यमङ्गिरसः पुत्रं ब्रह्मर्षिममितप्रभम् ।
दश चाश्वसहस्राणि प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥₂॥

कम्बलानि च रत्नानि चित्रवस्त्रमथोत्तमम् ।
रामाय प्रददौ राजा बहून्याभरणानि च ॥₃॥

श्रुत्वा तु राघवो गार्ग्यं महर्षिं समुपागतम् ।
मातुलस्याश्वपतिनः प्रियं दूतमुपागतम् ॥₄॥

प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः क्रोशमात्रं सहानुगः ।
गार्ग्यं सम्पूजयामास धनं तत्प्रतिगृह्य च ॥₅॥

पृष्ट्वा च प्रीतिदं सर्वं कुशलं मातुलस्य च ।
उपविष्टं महाभागं रामः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥₆॥

किमाह मातुलो वाक्यं यदर्थं भगवानिह ।
प्राप्तो वाक्यविदां श्रेष्ठ साक्षादिव बृहस्पतिः ॥₇॥

रामस्य भाषितं श्रुत्वा ब्रह्मर्षिः कार्यविस्तरम् ।
वक्तुमद्भुतसङ्काशं राघवायोपचक्रमे ॥₈॥

मातुलस्ते महाबाहो वाक्यमाह नरर्षभ ।
युधाजित्प्रीतिसंयुक्तं श्रूयतां यदि रोचते ॥₉॥

अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ।

सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः ॥₁₀॥

तं च रक्षन्ति गन्धर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः ।
शैलूषस्य सुता वीरास्तिस्रः कोट्यो महाबलाः ॥₁₁॥

तान्विनिर्जित्य काकुत्स्थ गन्धर्वविषयं शुभम् ।
निवेशय महाबाहो द्वे पुरे सुसमाहितः ॥₁₂॥

अन्यस्य न गतिस्तत्र देशश्चायं सुशोभनः ।
रोचतां ते महाबाहो नाहं त्वामनृतं वदे ॥₁₃॥

तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतो महर्षेर्मातुलस्य च ।
उवाच बाढमित्येवं भरतं चान्ववैक्षत ॥₁₄॥

सोऽब्रवीद्राघवः प्रीतः प्राञ्जलिप्रग्रहो द्विजम् ।
इमौ कुमारौ तं देशं ब्रह्मर्षे विजयिष्यतः ॥₁₅॥

भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च ।
मातुलेन सुगुप्तौ तौ धर्मेण च समाहितौ ॥₁₆॥

भरतं चाग्रतः कृत्वा कुमारौ सबलानुगौ ।
निहत्य गन्धर्वसुतान्द्वे पुरे विभजिष्यतः ॥₁₇॥

निवेश्य ते पुरवरे आत्माजौ संनिवेश्य च ।
आगमिष्यति मे भूयः सकाशमतिधार्मिकः ॥₁₈॥

ब्रह्मर्षिमेवमुक्त्वा तु भरतं सबलानुगम् ।
आज्ञापयामास तदा कुमारौ चाभ्यषेचयत् ॥₁₉॥

नक्षत्रेण च सौम्येन पुरस्कृत्याङ्गिरः सुतम् ।
भरतः सह सैन्येन कुमाराभ्यां च निर्ययौ ॥₂₀॥

सा सेना शक्रयुक्तेव नरगान्निर्ययावथ ।

राघवानुगता दूरं दुराधर्षा सुरासुरैः ॥₂₁॥

मांसाशीनि च सत्त्वानि रक्षांसि सुमहान्ति च ।
अनुजग्मुश्च भरतं रुधिरस्य पिपासया ॥₂₂॥

भूतग्रामाश्च बहवो मांसभक्षाः सुदारुणाः ।
गन्धर्वपुत्रमांसानि भोक्तुकामाः सहस्रशः ॥₂₃॥

सिंहव्याघ्रसृगालानां खेचराणां च पक्षिणाम् ।
बहूनि वै सहस्राणि सेनाया ययुरग्रतः ॥₂₄॥

अध्यर्धमासमुषिता पथि सेना निरामया ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा केकयं समुपागमत् ॥₂₅॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवतितमः सर्गः॥

॥एकनवतितमः सर्गः॥

श्रुत्वा सेनापतिं प्राप्तं भरतं केकयाधिपः ।
युधाजिद्गार्ग्यसहितं परां प्रीतिमुपागमत् ॥₁॥

स निर्ययौ जनौघेन महता केकयाधिपः ।
त्वरमाणोऽभिचक्राम गन्धर्वान्देवरूपिणः ॥₂॥

भरतश्च युधाजिच्च समेतौ लघुविक्रमौ ।
गन्धर्वनगरं प्राप्तौ सबलौ सपदानुगौ ॥₃॥

श्रुत्वा तु भरतं प्राप्तं गन्धर्वास्ते समागताः ।
योद्धुकामा महावीर्या विनदन्तः समन्ततः ॥₄॥

ततः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
सप्तरात्रं महाभीमं न चान्यतरयोर्जयः ॥₅॥

ततो रामानुजः क्रुद्धः कालस्यास्त्रं सुदारुणम् ।
संवर्तं नाम भरतो गन्धर्वेष्वभ्ययोजयत् ॥₆॥

ते बद्धाः कालपाशेन संवर्तेन विदारिताः ।
क्षणेनाभिहतास्तिस्रस्तत्र कोट्यो महात्मना ॥₇॥

तं घातं घोरसङ्काशं न स्मरन्ति दिवौकसः ।
निमेषान्तरमात्रेण तादृशानां महात्मनाम् ॥₈॥

हतेषु तेषु वीरेषु भरतः कैकयीसुतः ।
निवेशयामास तदा समृद्धे द्वे पुरोत्तमे ।
तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्करं पुष्करावतौ ॥₉॥

गन्धर्वदेशो रुचिरो गान्धारविषयश्च सः ।
वर्षैः पञ्चभिराकीर्णो विषयैर्नागैरेस्तथा ॥₁₀॥

धनरत्नौघसम्पूर्णो काननैरुपशोभिते ।
अन्योन्यसङ्घर्षकृते स्पर्धया गुणविस्तरे ॥₁₁॥

उभे सुरुचिरप्रख्ये व्यवहारैरकल्मषैः ।
उद्यानयानौघवृते सुविभक्तान्तरापणे ॥₁₂॥

उभे पुरवरे रम्ये विस्तरैरुपशोभिते ।
गृहमुख्यैः सुरुचिरैर्विमानैः समवर्णिभिः ॥₁₃॥

शोभिते शोभनीयैश्च देवायतनविस्तरैः ।
निवेश्य पञ्चभिर्वर्षैर्भरतो राघवानुजः ।
पुनरायान्महाबाहुरयोध्यां कैकयीसुतः ॥₁₄॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं साक्षाद्धर्ममिवापरम् ।
राघवं भरतः श्रीमान्ब्रह्माणमिव वासवः ॥₁₅॥

शशंस च यथावृत्तं गन्धर्ववधमुत्तमम् ।
निवेशनं च देशस्य श्रुत्वा प्रीतोऽस्य राघवः ॥₁₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकनवतितमः सर्गः॥

॥द्विनवतितमः सर्गः॥

तच्छ्रुत्वा हर्षमापेदे राघवो भ्रातृभिः सह ।
वाक्यं चान्द्रुतसङ्काशं भ्रातृन्प्रोवाच राघवः ॥₁॥

इमौ कुमारौ सौमित्रे तव धर्मविशारदौ ।
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च राज्याहौ दृढधन्विनौ ॥₂॥

इमौ राज्येऽभिषेक्ष्यामि देशः साधु विधीयताम् ।
रमणीयो ह्यसम्बाधो रमेतां यत्र धन्विनौ ॥₃॥

न राज्ञां यत्र पीदा स्यान्नाश्रमाणां विनाशनम् ।
स देशो दृश्यतां सौम्य नापराध्यामहे यथा ॥₄॥

तथोक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह ।
अयं कारापथो देशः सुरमण्यो निरामयः ॥₅॥

निवेश्यतां तत्र पुरमङ्गदस्य महात्मनः ।
चन्द्रकेतोश्च रुचिरं चन्द्रकान्तं निरामयम् ॥₆॥

तद्वाक्यं भरतेनोक्तं प्रतिजग्राह राघवः ।
तं च कृता वशे देशमङ्गदस्य न्यवेशयत् ॥₇॥

अङ्गदीया पुरी रम्या अङ्गदस्य निवेशिता ।
रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥₈॥

चन्द्रकेतुस्तु मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता ।
चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा ॥₉॥

ततो रामः परां प्रीतिं भरतो लक्ष्मणस्तथा ।

ययुर्युधि दुराधर्षा अभिषेकं च चक्रिरे ॥₁₀॥

अभिषिच्य कुमारौ द्वौ प्रस्थाप्य सबलानुगौ ।
अङ्गदं पश्चिमा भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम् ॥₁₁॥

अङ्गदं चापि सौमित्रिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
चन्द्रकेतोस्तु भरतः पार्ष्णिग्राहो बभूव ह ॥₁₂॥

लक्ष्मणस्त्वङ्गदीयायां संवत्सरमथोषितः ।
पुत्रे स्थिते दुराधर्षे अयोध्यां पुनरागमत् ॥₁₃॥

भरतोऽपि तथैवोष्य संवत्सरमथाधिकम् ।
अयोध्यां पुनरगम्य रामपादावुपागमत् ॥₁₄॥

उभौ सौमित्रिभरतौ रामपादावनुव्रतौ ।
कालं गतमपि स्नेहान्न जज्ञातेऽतिधार्मिकौ ॥₁₅॥

एवं वर्षसहस्राणि दशतेषां ययुस्तदा ।
धर्मे प्रयतमानानां पौरकार्येषु नित्यदा ॥₁₆॥

विहृत्य लाकं परिपूर्णमानसाः
श्रिया वृता धर्मपथे परे स्थिताः ।
त्रयः समिद्धा इव दीप्ततेजसा
हुताग्नयः साधु महाध्वरे त्रयः ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः॥

॥त्रिनवतितमः सर्गः॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य रामे धर्मपथे स्थिते ।
कालस्तापसरूपेण राजद्वारमुपागमत् ॥₁॥

सोऽब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं धृतिमन्तं यशस्विनम् ।
मां निवेदय रामाय सम्प्राप्तं कार्यगौरवात् ॥₂॥

दूतो ह्यतिबलस्याहं महर्षेरमितौजसः ।
रामं दिदृक्षुरायातः कार्येण हि महाबल ॥₃॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः ।
न्यवेदयत रामाय तापसस्य विवक्षितम् ॥₄॥

जयस्व राजन्धर्मेण उभौ लोकौ महाद्युते ।
दूतस्त्वां द्रष्टुमायातस्तपस्वी भास्करप्रभः ॥₅॥

तद्वाक्यं लक्ष्मणेनोक्तं श्रुत्वा राम उवाच ह ।
प्रवेश्यतां मुनिस्तात महौजास्तस्य वाक्यधृक् ॥₆॥

सौमित्रिस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तं मुनिम् ।
ज्वलन्तमिव तेजोभिः प्रदहन्तमिवांशुभिः ॥₇॥

सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
ऋषिर्मधुरया वाचा वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥₈॥

तस्मै रामो महातेजाः पूजामर्घ्यं पुरोगमाम् ।
ददौ कुशलमव्यग्रं प्रष्टुं चैवोपचक्रमे ॥₉॥

पृष्ठश्च कुशलं तेन रामेण वदतां वरः ।

आसने काञ्चने दिव्ये निषसाद महायशाः ॥₁₀॥

तमुवाच ततो रामः स्वागतं ते महामुने ।
प्रापयस्व च वाक्यानि यतो दूतस्त्वमागतः ॥₁₁॥

चोदितो राजसिंहेन मुनिर्वाक्यमुदीरयत् ।
द्वन्द्वमेतत्प्रवक्तव्यं न च चक्षुर्हतं वचः ॥₁₂॥

यः शृणोति निरीक्षेद्वा स वध्यस्तव राघव ।
भवेद्वै मुनिमुख्यस्य वचनं यद्यवेक्षसे ॥₁₃॥

तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
द्वारि तिष्ठ महाबाहो प्रतिहारं विसर्जय ॥₁₄॥

स मे वध्यः खलु भवेत्कथां द्वन्द्वसमीरिताम् ।
ऋषेर्मम च सौमित्रे पश्येद्वा शृणुया च यः ॥₁₅॥

ततो निक्षिप्य काकुत्स्थो लक्ष्मणं द्वारसङ्ग्रहे ।
तमुवाच मुनिं वाक्यं कथयस्वेति राघवः ॥₁₆॥

यत्ते मनीषितं वाक्यं येन वासि समाहितः ।
कथयस्व विशङ्कस्त्वं ममापि हृदि वर्तते ॥₁₇॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः॥

॥चतुर्नवतितमः सर्गः॥

शृणु राम महाबाहो यदर्थमहमाहतः ।
पितामहेन देवेन प्रेषितोऽस्मि महाबल ॥₁॥

तवाहं पूर्वके भावे पुत्रः परपुरंजय ।
मायासम्भावितो वीर कालः सर्वसमाहरः ॥₂॥

पितामहश्च भगवानाह लोकपतिः प्रभुः ।
समयस्ते महाबाहो स्वर्लोकान्परिरक्षितुम् ॥₃॥

सङ्क्षिप्य च पुरा लोकान्मायया स्वयमेव हि ।
महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥₄॥

भोगवन्तं ततो नागमनन्तमुदके शयम् ।
मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्त्वौ महाबलौ ॥₅॥

मधुं च कैटभं चैव ययोरस्थिचयैर्वृता ।
द्वयं पर्वतसम्बाधा मेदिनी चाभवन्मही ॥₆॥

पद्मे दिव्यार्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
प्राजापत्यं त्वया कर्म सर्वं मयि निवेशितम् ॥₇॥

सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपासे जगत्पतिम् ।
रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजः करो भवान् ॥₈॥

ततस्त्वमपि दुर्धर्षस्तस्माद्भावात्सनातनात् ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥₉॥

अदित्यां वीर्यवान्पुत्रो भ्रातृणां हर्षवर्धनः ।

समुत्पन्नेषु कृत्येषु लोकसाहाय कल्पसे ॥₁₀॥

स त्वं वित्रास्यमानासु प्रजासु जगतां वर ।
रावणस्य वधाकाङ्क्षी मानुषेषु मनोऽदधाः ॥₁₁॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
कृत्वा वासस्य नियतिं स्वयमेवात्मनः पुरा ॥₁₂॥

स त्वं मनोमयः पुत्रः पूर्णायुर्मानुषेष्विह ।
कालो नरवरश्रेष्ठ समीपमुपवर्तितुम् ॥₁₃॥

यदि भूयो महाराज प्रजा इच्छस्युपासितुम् ।
वस वा वीर भद्रं ते एवमाह पितामहः ॥₁₄॥

अथ वा विजिगीषा ते सुरलोकाय राघव ।
सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः ॥₁₅॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तं वाक्यं कालसमीरितम् ।
राघवः प्रहसन्वाक्यं सर्वसंहारमब्रवीत् ॥₁₆॥

श्रुतं मे देवदेवस्य वाक्यं परममद्भुतम् ।
प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसम्भवा ॥₁₇॥

भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः ।
हृद्रतो ह्यसि सम्प्राप्तो न मेऽस्त्यत्र विचारणा ॥₁₈॥

मया हि सर्वकृत्येषु देवानां वशवर्तिनाम् ।
स्थातव्यं सर्वसंहारे यथा ह्याह पितामहः ॥₁₉॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः॥

॥पञ्चनवतितमः सर्गः॥

तथा तयोः कथयतोर्दुर्वासा भगवानृषिः ।
रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत् ॥₁॥

सोऽभिगम्य च सौमित्रिमुवाच ऋषिसत्तमः ।
रामं दर्शय मे शीघ्रं पुरा मेऽर्थोऽतिवर्तते ॥₂॥

मुनेस्तु भाषितं श्रुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।
अभिवाद्य महात्मानं वाक्यमेतदुवाच ह ॥₃॥

किं कार्यं ब्रूहि भगवन्को वार्थः किं करोम्यहम् ।
व्यग्रो हि राघवो ब्रह्मन्मुहूर्तं वा प्रतीक्षताम् ॥₄॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिशार्दूलः क्रोधेन कलुषीकृतः ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥₅॥

अस्मिन्क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय ।
विषयं त्वां पुरं चैव शपिष्ये राघवं तथा ॥₆॥

भरतं चैव सौमित्रे युष्माकं या च सन्ततिः ।
न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि ॥₇॥

तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं वाक्यं तस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥₈॥

एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत्सर्वविनाशनम् ।
इति बुद्ध्या विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत् ॥₉॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः कालं विसृज्य च ।

निष्पत्य बरितं राजा अत्रेः पुत्रं ददर्श ह ॥₁₀॥

सोऽभिवाद्य महात्मानं ज्वलन्तमिव तेजसा ।
किं कार्यमिति काकुत्स्थः कृताञ्जलिरभाषत ॥₁₁॥

तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा मुनिवरः प्रभुः ।
प्रत्याह रामं दुर्वासाः श्रूयतां धर्मवत्सल ॥₁₂॥

अद्य वर्षसहस्रस्य समाप्तिर्मम राघव ।
सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तवानघ ॥₁₃॥

तच्छ्रुत्वा वचनं रामो हर्षेण महतान्वितः ।
भोजनं मुनिमुख्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥₁₄॥

स तु भुक्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तदन्नममृतोपमम् ।
साधु रामेति सम्भाष्य स्वमाश्रममुपागमत् ॥₁₅॥

तस्मिन्नाते महातेजा राघवः प्रीतमानसः ।
संस्मृत्य कालवाक्यानि ततो दुःखमुपेयिवान् ॥₁₆॥

दुःखेन च सुसन्तप्तः स्मृत्वा तद्धोरदर्शनम् ।
अवान्मुखो दीनमना व्याहर्तुं न शशाक ह ॥₁₇॥

ततो बुद्ध्या विनिश्चित्य कालवाक्यानि राघवः ।
नैतदस्तीति चोक्त्वा स तूष्णीमासीन्महायशः ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः॥

॥षण्णवतितमः सर्गः॥

अवाङ्मुखमथो दीनं दृष्ट्वा सोममिवाप्लुतम् ।
राघवं लक्ष्मणो वाक्यं हृष्टो मधुरमब्रवीत् ॥₁॥

न सन्तापं महाबाहो मदर्थं कर्तुमर्हसि ।
पूर्वनिर्माणबद्धा हि कालस्य गतिरीदृशी ॥₂॥

जहि मां सौम्य विस्रब्दः प्रतिज्ञां परिपालय ।
हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥₃॥

यदि प्रीतिर्महाराज यदनुग्राह्यता मयि ।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥₄॥

लक्ष्मणेन तथोक्तस्तु रामः प्रचलितेन्द्रियः ।
मन्त्रिणः समुपानीय तथैव च पुरोधसम् ॥₅॥

अब्रवीच्च यथावृत्तं तेषां मध्ये नराधिपः ।
दुर्वासोऽभिगमं चैव प्रतिज्ञां तापसस्य च ॥₆॥

तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणः सर्वे सोपाध्यायाः समासत ।
वसिष्ठस्तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ॥₇॥

दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते लोमहर्षणम् ।
लक्ष्मणेन वियोगश्च तव राम महायशः ॥₈॥

त्यजैनं बलवान्कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।
विनष्टायां प्रतिज्ञायां धर्मो हि विलयं व्रजेत् ॥₉॥

ततो धर्मे विनष्टे तु त्रैलोके सचराचरम् ।

सदेवर्षिगणं सर्वं विनश्येत न संशयः ॥₁₀॥

स त्वं पुरुषशार्दूल त्रैलोक्यस्याभिपालनम् ।
लक्ष्मणस्य वधेनाद्य जगत्स्वस्थं कुरुष्व ह ॥₁₁॥

तेषां तत्समवेतानां वाक्यं धर्मार्थसंहितम् ।
श्रुत्वा परिषदो मध्ये रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥₁₂॥

विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद्धर्मविपर्ययः ।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनामुभयं समम् ॥₁₃॥

रामेण भाषिते वाक्ये बाष्पव्याकुलितेक्षणः ।
लक्ष्मणस्त्वरितः प्रायात्स्वगृहं न विवेश ह ॥₁₄॥

स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः ।
निगृह्य सर्वस्रोतांसि निःश्वासं न मुमोच ह ॥₁₅॥

अनुच्छ्वसन्तं युक्तं तं सशक्राः साप्सरोगणाः ।
देवाः सर्षिगणाः सर्वे पुष्पैरवकिरंस्तदा ॥₁₆॥

अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् ।
प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रो दिवं सम्प्रविवेश ह ॥₁₇॥

ततो विष्णोश्चतुर्भागमागतं सुरसत्तमाः ।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वेऽपूजयन् नृपिभिः सह ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः॥

॥सप्तनवतितमः सर्गः॥

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः ।
पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत् ॥₁॥

अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम् ।
अयोध्यायां पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम् ॥₂॥

प्रवेशयत सम्भारान्मा भूत्कालात्ययो यथा ।
अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम् ॥₃॥

तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं सर्वाः प्रकृतयो भृशम् ।
मूर्धभिः प्रणता भूमौ गतसत्त्वा इवाभवन् ॥₄॥

भरतश्च विसंज्ञोऽभूच्छ्रुत्वा रामस्य भाषितम् ।
राज्यं विगर्हयामास राघवं चेदमब्रवीत् ॥₅॥

सत्येन हि शपे राजन्स्वर्गलोके न चैव हि ।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥₆॥

इमौ कुशीलवौ राजन्नभिषिञ्च नराधिप ।
कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥₇॥

शत्रुघ्नस्य तु गच्छन्तु दूतास्त्वरितविक्रमाः ।
इदं गमनमस्माकं स्वर्गायाख्यान्तु माचिरम् ॥₈॥

तच्छ्रुत्वा भरतेनोक्तं दृष्ट्वा चापि ह्यधो मुखान् ।
पौरान्दुःखेन सन्तप्तान्वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥₉॥

वत्स राम इमाः पश्य धरणीं प्रकृतीर्गताः ।

ज्ञात्वैषामीप्सितं कार्यं मा चैषां विप्रियं कृथाः ॥₁₀॥

वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्य प्रकृतीजनम् ।
किं करोमीति काकुत्स्थः सर्वान्वचनमब्रवीत् ॥₁₁॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो रामं वचनमब्रुवन् ।
गच्छन्तमनुगच्छामो यतो राम गमिष्यसि ॥₁₂॥

एषा नः परमा प्रीतिरेष धर्मः परो मतः ।
हृद्रता नः सदा तुष्टिस्तवानुगमने दृढा ॥₁₃॥

पौरेषु यदि ते प्रीतिर्यदि स्नेहो ह्यनुत्तमः ।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थ समं गच्छाम सत्पथम् ॥₁₄॥

तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा ।
वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर ॥₁₅॥

स तेषां निश्चयं ज्ञात्वा कृतान्तं च निरीक्ष्य च ।
पौराणां दृढभक्तिं च बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ॥₁₆॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा तस्मिन्नहनि राघवः ।
कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥₁₇॥

अभिषिञ्चन्महात्मानावुभावेव कुशीलवौ ।
रथानां तु सहस्राणि त्रीणि नागायुतानि च ॥₁₈॥

दश चाश्वसहस्राणि एकैकस्य धनं ददौ ।
बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ ॥₁₉॥

अभिषिच्य तु तौ वीरौ प्रस्थाप्य स्वपुरे तथा ।
दूतान्सम्प्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥₂₀॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः॥

॥अष्टनवतितमः सर्गः॥

ते दूता रामवाक्येन चोदिता लघुविक्रमाः ।
प्रजग्मुर्मधुरां शीघ्रं चक्रुर्वासं न चाध्वनि ॥₁॥

ततस्त्रिभिरहो रात्रेः सम्प्राप्य मधुरामथ ।
शत्रुघ्नाय यथावृत्तमाचख्युः सर्वमेव तत् ॥₂॥

लक्ष्मणस्य परित्यागं प्रतिज्ञां राघवस्य च ।
पुत्रयोरभिषेकं च पौरानुगमनं तथा ॥₃॥

कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधसि ।
कुशावतीति नाम्ना सा कृता रामेण धीमता ॥₄॥

श्राविता च पुरी रम्या श्रावतीति लवस्य च ।
अयोध्यां विजनां चैव भरतं राघवानुगम् ॥₅॥

एवं सर्वं निवेद्याशु शत्रुघ्नाय महात्मने ।
विरेमुस्ते ततो दूतास्त्वर राजन्निति ब्रुवन् ॥₆॥

श्रुत्वा तं घोरसङ्काशं कुलक्षयमुपस्थितम् ।
प्रकृतीस्तु समानीय काञ्चनं च पुरोहितम् ॥₇॥

तेषां सर्वं यथावृत्तमाख्याय रघुनन्दनः ।
आत्मनश्च विपर्यासं भविष्यं भ्रातृभिः सह ॥₈॥

ततः पुत्रद्वयं वीरः सोऽभ्यषिञ्चन्नराधिपः ।
सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् ॥₉॥

द्विधाकृत्वा तु तां सेनां माधुरीं पुत्रयोर्द्वयोः ।

धनधान्यसमायुक्तौ स्थापयामास पार्थिवौ ॥₁₀॥

ततो विसृज्य राजानं वैदिशे शत्रुघातिनम् ।
जगाम बरितोऽयोध्यां रथेनैकेन राघवः ॥₁₁॥

स ददर्श महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
क्षौमसूक्ष्माम्बरधरं मुनिभिः सार्धमक्षयैः ॥₁₂॥

सोऽभिवाद्य ततो रामं प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः ।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञो धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥₁₃॥

कृत्वाभिषेकं सुतयोर्युक्तं राघवयोर्धनैः ।
तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥₁₄॥

न चान्यदत्र वक्तव्यं दुस्तरं तव शासनम् ।
त्यक्तुं नार्हसि मां वीर भक्तिमन्तं विशेषतः ॥₁₅॥

तस्य तां बुद्धिमक्लीबां विज्ञाय रघुनन्दनः ।
बाढमित्येव शत्रुघ्नं रामो वचनमब्रवीत् ॥₁₆॥

तस्य वाक्यस्य वाक्यान्ते वानराः कामरूपिणः ।
ऋक्षराक्षससङ्घाश्च समापेतुरनेकशः ॥₁₇॥

देवपुत्रा ऋषिसुता गन्धर्वाणां सुतास्तथा ।
राम क्षयं विदित्रा ते सर्व एव समागताः ॥₁₈॥

ते राममभिवाद्याहुः सर्व एव समागताः ।
तवानुगमने राजन्सम्प्राप्ताः स्म महायशः ॥₁₉॥

यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ ।
यमदण्डमिवोद्यम्य त्वया स्म विनिपातिताः ॥₂₀॥

एवं तेषां वचः श्रुत्वा ऋष्कवानररक्षसाम् ।

विभीषणमथोवाच मधुरं श्लक्ष्णया गिरा ॥₂₁॥

यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावच्चं वै विभीषण ।
राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थः स्वं धरिष्यसि ॥₂₂॥

प्रजाः संरक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥₂₃॥

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
जीविते कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां विलोपय ॥₂₄॥

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ।
तावच्चं धारयन्प्राणान्प्रतिज्ञामनुपालय ॥₂₅॥

तथैवमुक्त्वा काकुत्स्थः सर्वास्तानृक्षवानरान् ।
मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत् ॥₂₆॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः॥

॥एकोनशततमः सर्गः॥

प्रभातायां तु शर्वर्या पृथुवक्षा महायशाः ।
रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत् ॥₁॥

अग्निहोत्रं व्रजबग्रे सर्पिर्ज्वलितपावकम् ।
वाजपेयातपत्रं च शोभयानं महापथम् ॥₂॥

ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः ।
चकार विधिवद्धर्म्यं महाप्रास्थानिकं विधिम् ॥₃॥

ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्म चावर्तयन्परम् ।
कुशान्गृहीत्वा पाणिभ्यां प्रसज्य प्रययावथ ॥₄॥

अव्याहरन्क्वचित्किञ्चिन्निश्चेष्टो निःसुखः पथि ।
निर्जगाम गृहात्तस्मादीप्यमानो यथांशुमान् ॥₅॥

रामस्य पार्श्वे सव्ये तु पद्मा श्रीः सुसमाहिता ।
दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाग्रतः ॥₆॥

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रहम् ।
अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥₇॥

वेदा ब्राह्मणरूपेण सावित्री सर्वरक्षिणी ।
ओङ्कारोऽथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः ॥₈॥

ऋषयश्च महात्मानः सर्व एव महीसुराः ।
अन्वगच्छन्त काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपागतम् ॥₉॥

तं यान्तमनुयान्ति स्म अन्तःपुरचराः स्त्रियः ।

सवृद्धबालदासीकाः सवर्षवरकिङ्कराः ॥₁₀॥

सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ।
रामव्रतमुपागम्य राघवं समनुव्रताः ॥₁₁॥

ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समाहिताः ।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमन्वगच्छन्महामतिम् ॥₁₂॥

मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्राः सहबान्धवाः ।
सानुगा राघवं सर्वे अन्वगच्छन्महष्टवत् ॥₁₃॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ।
अनुजग्मुः प्रगच्छन्तं राघवं गुणरञ्जिताः ॥₁₄॥

स्नातं प्रमुदितं सर्वं हृष्टपुष्पमनुत्तमम् ।
दृप्तं किलिकिलाशब्दैः सर्वं राममनुव्रतम् ॥₁₅॥

न तत्र कश्चिद्दीनोऽभूद्दीडितो वापि दुःखितः ।
हृष्टं प्रमुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥₁₆॥

द्रष्टुकामोऽथ निर्याणं राज्ञो जानपदो जनः ।
सम्प्राप्तः सोऽपि दृष्ट्वैव सह सर्वैरनुव्रतः ॥₁₇॥

ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः ।
अगच्छन्परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥₁₈॥

॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनशततमः सर्गः॥

॥शततमः सर्गः॥

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥₁॥

अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥₂॥

आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥₃॥

पपात पुष्पवृष्टिश्च वायुमुक्ता महौघवत् ॥₄॥

तस्मिंस्तूर्यशताकीर्णे गन्धर्वाप्सरसङ्कुले ।
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे ॥₅॥

ततः पितामहो वाणीमन्तरिक्षादभाषत ।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥₆॥

भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्वकां तनुम् ।
वैष्णवीं तां महातेजस्तदाकाशं सनातनम् ॥₇॥

त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित्प्रजानते ।
ऋते मायां विशालाक्ष तव पूर्वपरिग्रहाम् ॥₈॥

त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं सर्वसङ्ग्रहम् ।
यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ॥₉॥

पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः ।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥₁₀॥

ततो विष्णुगतं देवं पूजयन्ति स्म देवताः ।
साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥¹¹॥

ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः ।
सुपर्णनागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥¹²॥

सर्वं हृष्टं प्रमुदितं सर्वं पूर्णमनोरथम् ।
साधु साध्विति तत्सर्वं त्रिदिवं गतकल्मषम् ॥¹³॥

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह ।
एषां लोकाञ्जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥¹⁴॥

इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता मनस्विनः ।
भक्ता भाजयितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते ॥¹⁵॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ।
लोकान्सान्तानिकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥¹⁶॥

यच्च तिर्यग्गतं किञ्चिद्राममेवानुचिन्तयत् ।
प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या वै सन्ताने तु निवत्स्यति ।
सर्वैरेव गुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे ॥¹⁷॥

वानराश्च स्त्रवां योनिमृक्षाश्चैव तथा ययुः ।
येभ्यो विनिःसृता ये ये सुरादिभ्यः सुसम्भवाः ॥¹⁸॥

ऋषिभ्यो नागयक्षेभ्यस्तांस्तानेव प्रपेदिरे ।
तथोक्तवति देवेशे गोप्रतारमुपागताः ॥¹⁹॥

भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्चुविक्लवाः ।
अवगाह्य जलं यो यः प्राणी ह्यासीत्प्रहृष्टवत् ॥²⁰॥

मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ।
तिर्यग्योनिगताश्चापि सम्प्राप्ताः सरयूजलम् ॥²¹॥

दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ।
गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च ॥₂₂॥

प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपागमन् ।
देवानां यस्य या योनिर्वानरा ऋष्क राक्षसाः ॥₂₃॥

तामेव विविशुः सर्वे देवान्निक्षिप्य चाम्भसि ।
तथा स्वर्गगतं सर्वं कृत्वा लोकगुरुर्दिवम् ॥₂₄॥

जगाम त्रिदशैः सार्धं हृष्टैर्हृष्टो महामतिः॥₂₅॥
॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे शततमः सर्गः॥
